॥ अर्हम् ॥

[णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स]

भाग १] जैन [अंक १

जैन साहित्य संशोधक

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि

विषयक विविध निबन्ध-संग्रह।

संपादक

मुनिराज श्रीजिनविजयजी।

प्रकाशक—

जैन साहित्य संशोधक समाज।

ठि० भारत जैन विद्यालय, फर्ग्युसन कॉलेज रोड, पूना सिटी।

वार्षिक मूल्य ५ रु०] [प्रतिअंक मूल्य १॥ रु०

विषय-सूची ।

(हिन्दी लेख विभाग)

निवेदन.

गत मार्गशीर्ष मासमां ज्यारे आ संस्थानी स्थापना अने पत्रनी योजना संबंधीनुं आवेदन पत्र प्रकट करवामां आव्युं हतुं. त्यारे बे त्रण मासमां प्रस्तुत अंक छपाई प्रकट थई शकशे एवी धारणा राखवामां आवी हती. अने तदनुसार फाल्गुन पूर्णिमा अथवा तो महावीर जयन्तिना प्रसंगे वाचकोना मां आ अंक पहोंचाडवानी सूचना आपी हती. परंतु प्रेसनी अगवडना लीधे सूचित समय ऊपर प्रकट थई शक्यो नथी. वर्तमानमां अनुभवाती छापखानासंबंधी कल्पनातीत कठिनताओ दृष्टिपात करतां तो आजे वैशाख मासनी समाप्तिमां-पण वाचकोना हाथमां अमे आ अंक पहों-चाडवा ज समर्थ थया छीए तेथी वाचकोए आनन्द ज प्रकट करवो जोईए. कारण के, म्होंमांग्या चार्ज गोठवी ज आपी देवा छतां पण, ज्यारे केटलाए प्रेसोमांथी रखडी रखडीने लखाण पाछुं जेमनुं तेम अमारी पासे आव्युं त्यारे तो आटली मुद्दते पण आ अंक छपाई प्रकट थई शकशे एवी अमने बिलकुल आशा रही न हती. परंतु, जे प्रेसमांथी आ अंक मुद्रित थई प्रकट थाय छे तेना भला चालकोए जेम तेम करीने पण छेवटे आ काम करी आपवानी गोठवण करी अमारा परिश्रमने सफळ कर्यो छे अने तेथी ज आटला विलंबे पण अमे रसिक वाचकोने आ निबन्धसंग्रहना वाचननो लाभ आपी शकवा समर्थ थया छीए.

आ अंक त्रैमासिकना नामे नहीं परंतु एक निबंधसंग्रहना नामे प्रकट थाय छे तेनुं कारण ए छे के, त्रैमासिकरूपे प्रकट करवा माटे सरकार पासे डिक्लेरेशन कराववुं पडे छे. हाल तुरतमां, केटलांक कारणोने लीधे अमे ए भांजगडमां पडवा इच्छता न होवाथी, निबन्ध-संग्रहना नामे ज यथावसरे आवा अंको प्रकट करता रहीशुं.

बीजो अंक हवे बनतसरे ज प्रकाशित थई जशे एवी आशा रखाय छे. ए अंकमां, कदंब नामे प्रसिद्ध एक जूना प्राचीन जैन राजवंशनां केटलांक ताम्रपत्रो, मथुराना पुरातन शिलालेखो प्रो. वेबरनो जैनागमविषयक निबन्ध, डॉ. जेकोबीनी आचारांगसूत्रनी प्रस्तावना, केटलीक ऐतिहासिक नोंधो, तथा गच्छोनी पट्टावली विगेरे लेखो प्रकट थशे.

आ अंकना प्रकाशन दरम्यान, जे जे सद्गृहस्थोए संस्थाना लाईफमेंबर थई प्रस्तुत कार्यमां उदार सहायता आपी छे तेमनां सुनामो धन्यवादपूर्वक अत्र प्रकट करवामां आवे छे.

रु. १०० श्रीयुत केशरीचंदजी भंडारी, इन्दोर.
रु. १०० शाह अमृतलाल एन्ड भगवानदास मुंबई.
रु. १०० शाह मगनभाई हाथीभाई, पूना.
रु. १०० शाह चतुरलाल वीरचंद कृष्णाजी पूना
रु. १०० शाह हरगोविंददास रामजी, मुंबई
रु. १०० शाह बाबुलाल नानचंद भगवानदास झवेरी, पूना.
रु. १०० शाह मणिलाल केशवलाल, पूना.
रु. १०० शाह धनजीभाई वखतचंद साणंद-वाला, हाल पूना

आ शिवाय, श्रीयुत मनसुखलाल रवजीभाई महेता (मुंबई) ए छपाववा माटे १८ रीम कागळो पहोंचाड्या छे अने आरा निवासी बाबु कुमार देवेन्द्र प्रसादजीए पोताना खर्चे आ अंकमां आपेलां बन्ने दर्शनीय चित्रो तैयार करी मोकल्यां छे. तेथी तेओ पण धन्यवादने पात्र छे.

तथा, आ समाजना संस्थापक अने पत्रना संपादक मुनिश्रीनी साहित्यसेवास्वरूप प्रवृत्तिमां छेल्ला दोढ वर्षथी, दानवीर उदारात्मा शेठ परमानन्द दास रतनजी (निवासस्थान, घाटकोपर, मुंबई) तरफथी जे मुख्य सहायता मळ्या करे छे, तेथी तेमनुं पण, आ स्थळे, समाज तरफ थी अन्तःकरणपूर्वक अभिनन्दन करवुं उचित गणाशे.

आशा छे के आवी ज रीते बीजा पण सद्गृहस्थो यथाशक्ति पोतानी उदारता बतावी जैन धर्मना आ गौरव प्रकाशक पुण्य कार्यमां सहायक थई स्वद्रव्यने सफळ बनावशे.

निवेदक—

व्यवस्थापक, जैन सा. सं. समाज.

हनुमान छापखाना, ९२५ सदाशिव पेठ, पुणे शहर.

निर्ग्रन्थ प्रवचन।

सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं—' इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तं जहा–पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि। दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि, अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि। एवमेगेसिं णो णायं भवइ। अत्थि मे आया उववाइए, णत्थि मे आया उववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि।'

से जं पुण जाणेज्जा सह सम्मइयाए, परवागरणेणं, अण्णेसिं अंतिए वा सोच्चा; तं जहा–पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि। एवमेगेसिं णायं भवइ, अत्थि मे आया उववाइए। जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो अणुसंचरइ सोहं। से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी।

[श्रमण भगवान् श्रीमहावीर देवके शासनके मुख्य प्रवर्तक पंचम गणधर आर्य सुधर्मस्वामीने अपने प्रधान शिष्य आर्य जम्बू अनगारसे कहा कि—]

'हे आयुष्मन् मैंने [ज्ञातपुत्र निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर देवके] मुखसे सुना है भगवानने इस प्रकार कहा है कि ' इस जगतमें किसी एक जीवात्माको यह ज्ञान नहीं होता है कि [मैं कौन सी दिशामेंसे यहां पर आया हूं, अर्थात् – जैसे कि, पूर्व दिशामेंसे आया हूं, या दक्षिण दिशामेंसे आया हूं; पश्चिम दिशामेंसे आया हूं, या उत्तर दिशामेंसे आया हूं; ऊर्द्ध दिशामेंसे आया हूं, या अधो दिशामेंसे आया हूं, [वैसे ही] अन्य किसी दिशा या विदिशामेंसे आया हूं। [इसी तरह] किसी एकको यह भी नहीं ज्ञात होता कि मेरा आत्मा पुनर्जन्मवाला है अथवा नहीं है ? मैं कौन हूं ? । यहांसे मरकर मैं परजन्ममें कौन होऊंगा ?।''

"जो पुनः [कोई एक जीवात्मा] अपनी सन्मतिसे या दूसरेके कथनसे, अथवा किसी अन्य–ज्ञानीके पाससे यह जान लेता है कि, मैं अमुक दिशामेंसे आया हूं; अर्थात् जैसे कि मैं पूर्व दिशामेंसे आया हूं यावत् अन्य दिशा–विदिशामेंसे आया हूं। [वैसे ही यह भी जान ले कि– मेरा आत्मा पुनर्जन्मवाला है। जो इन दिशा विदिशाओंमें आता जाता है [अर्थात् ऊपर बतलाई हुई] सर्व दिशा–विदिशाओंमेंसे आता जाता है वही मैं हूं। भगवान् कहते हैं –ऐसा जो ज्ञाता है] वह आत्मवादी (आत्माको समझने वाला), लोकवादी (जगतको जानने वाला) कर्मवादी (कर्मके रहस्यको माननेवाला), और क्रियावादी (कर्तव्यको करनेवाला) कहलाता है।'

उद्बोधन।

श्रमण भगवान् श्री महावीर तीर्थंकर प्ररूपित 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का जो आदिम उद्गार, इस 'उद्बोधन' के अग्रभागमें हमने उद्धृत किया है वह जैसे बाह्य दृष्टिसे इस प्रस्तुत प्रयत्नमें–पत्रके प्रकाशनमें–प्रारंभिक मंगलाचरण स्वरूप है; वैसेही आंतर दृष्टिसे, प्रयत्नगत मुख्य ध्येयकाभी पूर्ण उद्बोधक है। ज्ञातपुत्र निर्ग्रन्थ प्रभु महावीर देवका प्रत्येक विचार 'द्रव्य' और 'भाव' दोनों नयोंकी अपेक्षासे युक्त हो कर प्रवर्तित है। उस अनेकान्तवादी अर्हतका प्रत्येक उद्गार व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों दृष्टियोंको साथ लेकर व्यवहृत हुआ है। इसलिये उपर्युद्धृत उद्गार भी व्यवहार और

परमार्थ—द्रव्य और भाव—दोनों भावोंसे उपलक्षित है। व्यवहारसे, जैसे कोई 'संज्ञा' यानि चैतन्य हीन—मूढात्मा यह नहीं जान सकता कि मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, कहां जाऊंगा, ये सब दिखाई देनेवाले लोग कौन हैं; मेरा क्या कर्तव्य—कर्म है और मैं क्या कर रहा हूं; इत्यादि। इस प्रकारके विचार—विहीन आत्माका कोई अभ्युदय नहीं हो सकता; वह अपने जीवनको प्रगतिमान नहीं बना सकता। ऐसा मनुष्य, मनुष्य स्वरूप हो कर भी पशु ही की कोटिमें गिना जाता है। पशुके जीवनमें और ऐसे 'संज्ञा' हीन मनुष्यके जीवनमें कोई अंतर नहीं होता। ऐसा प्राणी अनात्मज्ञ, लोक-व्यवहारानभिज्ञ, कर्तव्य विचार विहीन और प्रवृत्ति-शून्य कहा जाता है। वैसे ही परमार्थ भावसे, जो आत्मा अध्यात्मभाव पराङ्मुख और ऐहिक विषय-आसक्त है वह भी वास्तविकमें 'संज्ञा' यानि 'सम्यग्ज्ञान' हीन ही है। ऐसा परमार्थ-ज्ञानशून्य आत्मा भी (वह फिर चाहे व्यवहार में कितना ही बुद्धिमान, प्रयत्नशील, प्रपञ्चपटु और सतत उद्योगी हो) यह नहीं विचार सकता कि, यथार्थमें मैं कौन हूं, मेरे आत्माका क्या स्वरूप है, मैं किस लोकमेंसे यहां पर आया हूं, मेरा पुनर्जन्म होता है या नहीं, मैं इस जन्मसे मर कर कहां जाऊंगा इत्यादि। इस प्रकारके विचार-शून्य आत्मा का भी उद्धार नहीं हो सकता। उसको मोक्षमार्गकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वह अंध पुरुषकी तरह अज्ञान मार्गमें इधर उधर भटकता फिरता है—संसार परिभ्रमण करता रहता है। उसको इच्छित स्थानकी प्राप्ति नहीं हो सकती और सिद्ध-स्वरूप नहीं बन सकता।

जो आत्मा अध्यात्मस्वरूपका जिज्ञासु है, अपने आंतरिक गमनागमनका विचार करता रहता है, आत्माके यथार्थ स्वरूपको समझनेके लिये प्रयत्न करता रहता है, वही आपना उद्धार कर सकता है। वैसे जिज्ञासु अतएव विचारवान मनुष्यको सत्यमार्ग मिल सकता है और उसके द्वारा वह इच्छित स्थानको प्राप्त कर सकता है। वह जन्म-मरण के बन्धनसे मुक्त हो कर सिद्ध-बुद्ध बन सकता है। निर्ग्रंथ तीर्थंकर ऐसे आत्मिक विचार करनेवाले पुरुष ही को 'आत्मवादी'—आत्मज्ञ कहते हैं। उनके मतसे, जो आत्मा 'आत्मवादी' यानि अपने स्वरूपको जान सकता है वही 'लोकवादी' अर्थात् जगत्के सत्य स्वरूपको जाननेवाला होता है। क्यों कि जो अपने आंतर स्वरूपको नहीं जान सकता वह बाह्य स्वरूपको भी नहीं जान सकता। यह आंतर-बाह्य ज्ञान परस्पर सापेक्ष है। इसीलिये भगवानने आगे चलकर यह कहा है कि—

जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ,
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ।

आचाराङ्गसूत्र १-७।

जो इसप्रकार लोकवादी होता है वही 'कर्मवादी' अर्थात् कर्मकी विचित्र शक्तियोंका—जगत्के कार्य कारण-भावका—ज्ञाता हो सकता है; और इसी तरह कर्मवादी बनने पर फिर वह 'क्रियावादी' अर्थात् सम्यक् और असम्यक् प्रवृत्ति (कर्तव्याकर्तव्य) का स्वरूप और रहस्य समझनेवाला बन सकता है। क्रियावादी आत्मा आत्म-हितकर प्रवृत्तिका आचरण कर अंतमें कर्मसे मुक्त हो कर अमरत्व प्राप्त कर सकता है। प्रभु महावीर उपदिष्ट मोक्षमार्गका यही यथार्थ क्रम है। मोक्षशास्त्रके प्रणेता महर्षिने जो

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

इस प्रकार मोक्षमार्ग बतलाया है वह भी इसी क्रमको लक्ष्य कर है।

आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होना—अपने स्वरूप की प्रतीति होना—सम्यग्दर्शन है। इसीका नाम आत्मश्रद्धा भी है। जिसको ऐसा साक्षात्कार—ऐसी प्रतीति-आत्मश्रद्धा होती है वही आत्मवादी कहलाता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त आत्माहीको सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। जिसको यह दिव्य दर्शन हो जाता है, जो अपनी आत्मश्रद्धामें लीन हो जाता है, उसको फिर सर्व चराचर जगत्का ज्ञान हो जाता है। इसीलिये यह कहा जाता है कि—

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।

दूसरे शब्दोंमें कहें तो जिसने एक (आत्मा) को जान लिया उसने सब (जगत्) को जान लिया—

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ।

इस प्रकारका सम्यग्ज्ञानवान् ही 'लोकवादी

और 'कर्मवादी' कहा जाता है। ऐसा ही ज्ञानी सदाचारी-अर्थात् सम्यक् चारित्रका पालन करने वाला-होता है। सम्यग्दर्शनी और सम्यग्ज्ञानीका जो आचरण वही सम्यक् चारित्र है। ऐसे ही सम्यक् चारित्री को क्रियावादी कहते हैं।

एवं सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्रवान अथवा आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी, और क्रियावादी आत्मा ही इस जन्ममरणरूप तांतोंसे बनी हुई जगज्जंजाल स्वरूप जालसे छुटकारा पाकर मुक्त बन सकता है। वही आत्मा अजर, अमर, और अचल स्वरूपको प्राप्त कर सकता है—सच्चिदानन्द-पूर्ण बन सकता है।

* * *

जिस तरह निर्ग्रन्थ मुनीश्वरका यह प्रवचन परमार्थ-पारलौकिक रहस्यका उद्बोधक है, वैसे व्यावहारिक-इहलौकिक रहस्यका भी उद्बोधक है। इस प्रवचनमें कही गई बातें जैसे आत्माके आंतर स्वरूपका विकास-क्रम प्रकट करती हैं, वैसे इस जगतके मनुष्य, समाज और देशकी व्यावहारिक दशाका भी विकास-क्रम बतलाती हैं।

जो कोई मनुष्य, समाज और राष्ट्र 'संज्ञा' (चैतन्य) हीन हो कर अपने गतागत यानि भूत-भविष्यका विचार नहीं करता, वह यह नहीं जान सकता कि मेरा भूतकाल कैसा था, वर्तमानमें क्या हालत है और भविष्यमें कैसी दशा होगी। उसे यह नहीं मालूम हो सकता कि, वह किस दशामेंसे समुत्थित हुआ है, किस दशामें विद्यमान है और किस दशामें जा कर लीन होगा। इस प्रकारका 'संज्ञा'—शून्य मनुष्य, समाज और राष्ट्र भगवानके मतसे अनात्मवादी है-अपनी हालतको न जानने वाला अज्ञान है। ऐसे अज्ञान मनुष्य, समाज या राष्ट्रको जगत (लोक) की स्थितिका कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता और उसे कर्तव्याकर्तव्य (कर्म) का भी कुछ भान नहीं होता। इस तरह वह मनुष्य आदि फिर अन्तमें क्रियाशून्य -उद्यमहीन हो जाता है। वह अक्रियावादी बन जाता है। कर्तव्यशून्य मनुष्य कभी उन्नति नहीं प्राप्त कर सकता। उसकी क्रमशः अवनति ही होती जाती है; और अन्तमें नष्ट दशाको प्राप्त होता है।

इसके विपरीत जो मनुष्य, समाज और राष्ट्र 'संज्ञा' यानि चैतन्यवाला है और जो अपनी पूर्वापर दशाका विचार करता रहता है—भूत, भविष्यत् और वर्तमान अवस्थाको सोच करता है-वह आत्मदर्शी (आत्मवादी) कहलाता है। ऐसे आत्मदर्शी मनुष्य आदिको जगत्की परिस्थितिका ठीक ठीक ज्ञान मिलता रहता है और कर्तव्यकर्मका भी उसे पूरा हाल मालूम होता रहता है। निर्ग्रन्थ प्रभु उसको लोकवादी और कर्मवादी कहते हैं। इस प्रकारके विचारवान् और ज्ञानवान् मनुष्य आदि अपनी उन्नतिके लिये क्रियाशील बनता है। क्रियाशील मनुष्य ही इच्छित सुख प्राप्त कर सकता है और दुःखोंसे मुक्त हो सकता है इसीलिये जैनधर्मका यह मुद्रालेख है कि-

ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः।

ज्ञान और क्रिया (चारित्र-आचरण) अर्थात ज्ञानयोग और कर्मयोग इन दोनोंके संयुक्त सामर्थ्यसे मोक्ष मिलता है।

* * *

भगवान महावीर देवके प्रवचनका यह व्यावहारिक रहस्य जगतके प्रत्येक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और धर्मके लिये विचारणीय है। जैनधर्मका तो यह स्वकीय आविष्कृत सिद्धान्त है, इसलिये उस के अनुयायी व्यक्ति और समाजको तो अवश्य ही इसकी विचारणा करनी चाहिए। जैन तत्वज्ञानके कथनानुसार कालका स्वरूप पदार्थमात्रके स्वरूप में परिवर्तन करनेका है। प्रत्येक वस्तुमें, कालके प्रभावसे प्रतिक्षण रूपान्तर होता रहता है। इस नियमानुसार, व्यावहारिक दृष्टिसे विचार किया जाय तो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और धर्मके स्वरूपमें भी सदैव परिवर्तन-रूपान्तर हुआ ही करता है। जैनधर्म और जैन समाज भी इसी सनातन नियमके स्वाधीन है। रूपान्तर या परिवर्तन जो होता रहता है वह अच्छा ही होता रहता है या बुरा ही होता रहता है; ऐसा कोई विशिष्ट नियम इस जगतमें नहीं देखा जाता। कभी अच्छेका रूपान्तर बुरेके रूपमें होता है; कभी बुरे का भले के रूपमें। कभी तदवस्थ यानें जैसा का वैसा ही होता है। परीवर्तनके अच्छेबुरेका आधार देश, काल, मनुष्योंका आचार,

व्यवहार, इत्यादि अनेक कारणोंके ऊपर निर्भर है। जो व्यक्ति आदि 'सही' याने विचारवान् है वह तो इस, देश-काल-कृत परिवर्तनकी दशाओंका निरंतर विचार किया करता है और समयानुसार उचित प्रवृत्ति कर उन्नत होनेकी-प्रगति करनेकी-चेष्टा करता रहता है। इतिहास-शास्त्रका आविष्कार और अध्ययन-अध्यापन इसी लक्ष्यको लेकर प्रवर्तित हुआ है। इस शास्त्रके द्वारा जगत्के धर्म, समाज और राष्ट्रोंका भूतकालीन स्वरूप ज्ञात हो सकता है और उससे वर्तमानिक दशाकी तुलना कर भविष्यद् दशाका अनुमान किया जा सकता है। इतिहासके अध्ययनसे प्रत्येक समाज, धर्म और राष्ट्र अपनी उन्नति-अवनतिका विचार कर सकता है और उसके कार्य-कारण-भावको जान सकता है। इसलिये जगत्का प्रत्येक सभ्य और शिक्षित जन-समूह अपने अपने इतिहासके अन्वेषण और अध्ययनमें विशेष रूप से प्रवर्तित है। भारतवर्षमें भी अब इस विषयकी ओर शिक्षित मनुष्योंका लक्ष्य खींचा जा रहा है और दिन-प्रतिदिन इस विषयकी गवेषणा करनेवाले विद्वान् संख्यामें बढ़ते जाते हैं।

आज तक जो कुछ भारतवर्षके भूतकालके विषयमें लिखा हुआ है वह पश्चिमीय विद्वानोंहीके परिश्रमका फल है। इन विदेशी लेखकोंका एक तो ध्येय ही जुदा था और दूसरी बात यह है कि उन्होने प्राचीन भारतका अवलोकन, वर्तमान भारतकी अवनत-दशाको आदर्श मानकर किया। इसलिये उनके लेखोंमें और विचारोंमें सत्यकी अपेक्षा संकुचितता अधिक है। सिवाय, उन्होंने भारतके इतिहासका आरंभ वहींसे माना है जहांसे उसके पतनकी शुरूआत हुई है। वास्तविकमें आर्यावर्तकी उन्नत अवस्था का इतिहास अभी तक अंधकार ही में विलुप्त है। इसके उद्धारके प्रयत्न अब कहीं कहीं होने लगे हैं।

जैन धर्म भारतवर्षका एक प्रधान धर्म है। इसलिये समुच्चय भारतके इतिहासमें इसका भी बहुत बडा हिस्सा है। अतः इसके स्वतंत्र इतिहासके अन्वेषणकी भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी वैदिक और बौद्ध धर्मके इतिहासकी है। जैन धर्मके इतिहासान्वेषणके विना भारतका इतिहास बहुत अंशमें अपूर्ण ही रहेगा।

जैन इतिहासके अन्वेषणके लिये मुख्य क्षेत्र दो हैं—एक साहित्य और दूसरा स्थापत्य। जैन साहित्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कानडी, तामिल, तेलुगु, गुजराती, हिन्दी आदि जैसी भारतकी प्राचीन-अर्वाचीन सबही प्रधान प्रधान भाषाओंमें व्याप्त है, इसी तरह जैन स्थापत्य भी पंजाब, बंगाल, उडीसा, मद्रास, हैदराबाद, वऱ्हाड, कर्नाटक, मध्यभारत, युक्त प्रांत, मेवाड, मारवाड, मालवा, गुजरात, सिंध, कच्छ इत्यादि भारतके सब देशों और प्रदेशोंमें उपलब्ध है। इस प्रकार भारतवर्षीय बहु-भाषा-व्यापी जैन साहित्य और बहु-प्रदेश-व्यापी जैन स्थापत्यको देखते हुए, इस बातका सहज अनुमान हो सकता है कि भूतकालमें जैन धर्मका भारत वर्षमें कितना प्रभाव रहा होगा और उसका इतिहास कितना उज्ज्वल होगा। यह हर्षकी बात है कि, भारत सरकारके पुरातत्त्व-विभागके द्वारा ब्राह्मण और बौद्ध स्थापत्यके साथ साथ जैन स्थापत्यका भी अन्वेषण-संरक्षणादि होता रहता है, और उक्त विभागके विवरणात्मक-पुस्तकों (रिपोर्टों) में तत्संबंधी ऐतिहासिक पर्यालोचन भी यथा समय प्रकट होता रहता है। इस प्रकार कितने एक अंशमें जैन स्थापत्यके उद्धारका तो उद्घाटन हो रहा है; परन्तु, जैन साहित्यके बारेमें अभीतक कोई ऐसी महत्त्ववाली प्रवृत्तिका प्रारंभ कहीं नहीं हुआ है।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें कितने एक विद्या-विलासी और निष्पक्ष-अभ्यासी जर्मन विद्वानोंने जैन साहित्यका कितनाक संशोधन-पर्यालोचन किया था, और उसके कारण जैन धर्मके विषयमें जो कितनीक भ्रान्तियां, कुछ पाश्चात्य और उनके अन्धभक्त एतद्देशीय विद्वानोंके बीचमें फैली हुई थीं, वे कई अंशोंमें निकल गईं। परंतु, जैन समाजकी अज्ञानता और अकर्मण्यताके कारण न तो उन विद्वानोंको कुछ अपने कार्यमें उत्तेजक आश्वासन ही मिला और न प्राचीन और प्रतिष्ठित पुस्तकादि साधन ही मिले। इस लिये जैन साहित्यके विषयमें अभीतक विद्वानोंके न कोई भी महत्त्व-दर्शक विचार ही प्रकट हुए हैं और न कोई जैन साहित्यके जिज्ञासु ही दिखाई देते हैं। सैंकडों ही विद्वानोंको तो अभीतक जैन साहित्य कितना और कैसा है इसकी कल्पना मात्र भी नहीं है।

भारतके भाग्याकाशमें अब सौभाग्यके सूर्यका उदय होने लगा है और हजारों वर्षोंसे छाई हुई जडता (अंधकार) का नाश होने जा रहा है। भारतके सेंकडों ही सपूत आलस्यका त्याग कर कार्यक्षेत्रमें ऊठ खडे हुए हैं और भावी अभ्युदयके साथ भूतकालीन गौरवके उद्घाटनमें भी कई दत्तचित्त हो रहे हैं। अनेक सज्जन भारतीय इतिहास और साहित्यके क्षेत्रमें उत्साहपूर्वक कार्य करने लगे हैं और इनमेंसे कोई कोई विद्वान् जैन साहित्यका परिचय प्राप्त करने के लिये भी उत्सुकता दिखाने लगे हैं।

इधर, जैन समाज भी कुछ कुछ जागृत हो रहा है और अपने साहित्यके संरक्षण और प्रकाशनकी तरफ लक्ष्य लगा रहा है। यद्यपि यह हर्षकी बात है; परंतु, जिनके नेतृत्वमें यह कार्य हो रहा है, उनमें एक तो विचार-संकुचितताकी मात्रा अधिक है और दूसरी बात यह है कि जैन के सिवाय बाहरके जगत्का उन्हें किंचित् भी परिचय नहीं है—अथवा बहुत ही कम है। इसलिये वर्तमान में जो कुछ साहित्य जैसे वैसे छपकर प्रकट भी हो रहा है—और परिमाणमें वह है भी बहुत कुछ—तो भी अन्य विद्वानोंको उसका दर्शनमात्र भी नहीं होने पाता है। और इस प्रकार विद्वानोंके लिये जैन साहित्यके परिचय करनेका द्वार अभी तक बिलकुल बन्ध ही सा है। ऐसी स्थिति होनेसे, अब ऐसे एक साधनकी बहुत आवश्यकता है कि, जिसके द्वारा जैन साहित्यका, जिज्ञासु विद्वानोंको यथेष्ट परिचय मिलनेके साथ विस्तृत स्वरूपभी मालूम होता रहे; और जैन विद्वानोंको जगत के अन्यान्य विद्वानोंके विचार, परिश्रम, अभ्यासादिकके साथ कर्तव्य की दिशाका उपयुक्त ज्ञान भी मिलता रहे। इसी आवश्यकताकी किञ्चित् पूर्तिके लिये इस 'जैन साहित्य संशोधक' को जन्म दिया गया है।

आशा है, कि विज्ञ लेखक और पाठकगण इस साहित्य, समाज और अंशतः देश-सेवाके पवित्र कार्यमें सहभागी बन कर सबही यथाशक्ति अपने अपने योग्य कर्तव्यका पालन करेंगे। तथास्तु।

सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र।

जैनधर्मके प्रमाणशास्त्रके मूल प्रतिष्ठापक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, और आप्तकी मीमांसा-द्वारा स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) का समर्थन करनेवाले स्वामी समन्तभद्र,-दोनों जैनधर्मके महान् प्रभावक और समर्थ संरक्षक महात्मा हैं। इन दोनों महापुरुषोंकी कृतियोंके देखनेसे, इनके स्वभाव और प्रभावमें एक सविशेष समानता प्रतीत होती है। दोनोंहीने परमात्मा महावीरके सूक्ष्म सिद्धान्तोंका उत्तम स्थिरीकरण किया और भविष्यमें होनेवाले प्रतिपक्षियोंके कर्कश तर्कप्रहारसे जैनदर्शनको अक्षुण्ण रखनेके लिये अमोघ-शक्तिशाली प्रमाण-शास्त्रका सुदृढ संकलन किया।

इन्हीं दोनों महावादियों द्वारा सुप्रतिष्ठित जैनतर्ककी मूल भित्तियों पर मल्लवादी, अजितयशा, हरिभद्र, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, अमृतचन्द्र, अनन्तवीर्य, अभयदेव, शान्तिसूरि, जिनेश्वर, वादी देवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, मल्लिषेण, गुणरत्न, धर्मभूषण और यशोविजय आदि समर्थ जैन नैयायिकोंने बडे बडे तर्कग्रन्थोंके विशाल और दुर्गम दुर्गोंका निर्माण कर जैनधर्मके तात्त्विक साम्राज्यको इतर वादीरूप परचक्रके लिये अजेय बनाया है।

हमें अभी तक यह पूर्णतया निश्चित ज्ञात नहीं हुआ है कि ये दोनों महापुरुष कब और किस संप्रदायमें हुए हैं, परंतु पूर्वपरंपरासे जो मान्यता चली आ रही है उसके आशयानुसार यह कह सकते हैं कि सिद्धसेन दिवाकर तो श्वेताम्बर-संप्रदायमें, विक्रमराजाके समयमें, और स्वामी समन्तभद्र दिगम्बर-संप्रदायमें, विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें हुए हैं।

सिद्धसेन दिवाकर।

दन्तकथाके कथनानुसार सिद्धसेन विक्रमराजाके—जिसके नामसे भारतवर्षका सुप्रसिद्ध संवत् चलता है—गुरु थे। ऐतिहासिकोंने भी इस कथनमें कुछ तथ्य स्वीकार किया है और 'ज्योतिर्विदाभरण' के

'धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥'

इस श्लोकमें क्षपणक नामसे जिस व्यक्तिको विक्रमराजाकी सभाके नौ रत्नोंमेंसे एक रत्न बतलाया है वह सिद्धसेन दिवाकर ही होना चाहिए, ऐसा अनुमान किया गया है ÷। यहां पर हमें इस कथनकी ऐतिहासिक सत्यासत्यताका विचार नहीं करना है, इसलिये इस विषयमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय प्रकट करना नहीं चाहते। हमारे इस लेखका उद्देश्य केवल सिद्धसेन और समन्तभद्रकी परस्पर कुछ तुलना और उनके सामर्थ्यके बारेमें किञ्चित् वक्तव्य प्रकट करना है।

उपलब्ध जैनवाङ्मयका सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसे पहले जैनदर्शनमें तर्कशास्त्रविषयक कोई स्वतंत्र सिद्धान्त प्रचलित नहीं था। उनके पूर्वमें प्रमाण-शास्त्रविषयक बातें केवल आगम-ग्रन्थोंहीमें, अस्पष्ट रूपसे संकलित थीं; और उस समयतक उन बातोंका कुछ अधिक प्रयोजन भी नहीं था। सिद्धसेनसूरिके पहलेका जमाना तर्क-प्रधान नहीं था किन्तु आगम-प्रधान था। आप्त-पुरुषका कथन मात्र ही तबतक सर्वथा शिरोधार्य समझा जाता था। जैनधर्मके सहचर ब्राह्मण और बौद्धधर्मकी भी यही अवस्था थी। परंतु महर्षि गौतमके 'न्यायसूत्र' के संकलनके बाद धीरे धीरे तर्कका जोर बढ़ने लगा और जुदा जुदा दर्शनोंके विचारोंका समर्थन करनेके लिये स्वतंत्र सिद्धान्तोंकी रचना होने लगी। लगभग उसी समयमें भगवान गौतमबुद्धका साम्यवाद और मध्यममार्ग ब्राह्मणोंके कर्मजालसे संत्रस्त हुए साधारण लोगोंमें अधिक आदर पाने लगा था और थोडेही समयमें उसने सम्राटके सिंहासन तकको भी अपना अनुयायी बना लेनेकी महत्ता प्राप्त कर ली थी।

इस प्रकार बौद्धधर्मके बढ़ते जाते प्रभावको देखकर कुछ मनस्वी ब्राह्मणोंने बुद्धदेवके सरल और सीधे साधे वचनोंको युक्तिशून्य और प्राकृतजनप्रिय मात्र बतलानेके उद्योगका आरंभ किया। महर्षि गौतम उन्हीं मनस्वी ब्राह्मणोंके नेता थे। बुद्धिमान भिक्षुओं (बौद्धश्रमणों) को जब इस उद्योगके रहस्यका पता लग गया तब उन्होंने भी अपने आप्तके नामधारी गौतममुनिके तर्कजालके फंदेमें न फँसनेका सावधानीका रास्ता ढूंढना शुरू किया। केवल लोकहितकी दृष्टिसे, प्रचलित लोकभाषामें, आबालगोपालको बोध करनेके लिये रचे गये पाली पिटकोंके पारायणसे भिक्षुकगणको जब, तार्किक ब्राह्मणोंके तर्कप्रपञ्चका समाधान करनेमें समर्थ होते न देखा तब, आर्य नागार्जुन नामक प्रतिभाशाली महाश्रमणने शून्यवादकी स्थापनाके लिये गूढ विचारगर्भित मध्यमावतारका प्रणयन किया। जिस तर्कपद्धतिसे ब्राह्मण विद्वान् श्रमणोंके सरल विचारोंपर कठिन कटाक्ष किया करते थे, श्रमण विद्वान भी अब उसी पद्धतिसे अपने 'मायावाद' के अदृश्य बाण ब्राह्मणोंके ऊपर चलाने लगे। इस प्रकार ब्राह्मण और बौद्ध विद्वानोंमें तर्कशास्त्रीय युद्ध बढ़ता गया, और शनैः शनैः श्रमणसमूह इस विषयमें अधिकाधिक उन्नति प्राप्त करता गया। उसमें आचार्य दिङ्नाग आदि बडे बडे न्यायवित् श्रमण उत्पन्न हुए और उन्होंने शाक्यसूनु भगवान बुद्धके प्राकृतजनप्रिय सरल सिद्धान्तोंको विद्वानोंके लिये भी साधारणतः दुर्गम तथा गूढ बना दिये और उनकी गुत्थी सुलझानेके लिये अपने प्रतिपक्षियोंको चिरकाल तक विवश किया।

ब्राह्मणों और श्रमणोंके बीचमें होनेवाले इस वाग्युद्धकी शब्दध्वनि निर्जनवनोंमें घूमनेवाले जैन निर्ग्रन्थोंके कानोंतक भी जा पहुँची। ध्यानमग्न निर्ग्रन्थ इस ध्वनिके मतलबको समझनेका प्रयत्न कर ही रहे थे कि इतनेमें स्वयं ज्ञातपुत्र भगवान महावीरके 'मोक्षमार्ग' का उपहास सूचित करनेवाले शब्द भी उन्हें अस्फुट रीतिसे सुनाई देने लगे। इस स्थितिका विचार कर, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके ज्ञाता 'क्षपणक' (जैन श्रमण या निर्ग्रन्थ) भी अपनी 'शासनरक्षा' का उपाय सोचने लगे। बौद्ध श्रमण 'शून्यवाद' के सिद्धान्तको जिस तर्कपद्धति द्वारा प्रबल और व्यवस्थित बनाते हुए बुद्धदेवके शासनको स्थिर

÷ देखो, डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषणलिखित 'न्यायावतार'की भूमिका तथा 'मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास।'

बनाते जा रहे थे, उसी पद्धतिका आश्रय ले कर निर्ग्रन्थ क्षपणकोंने भी 'स्याद्वाद' के सिद्धान्तको समर्थ और सुस्थित बनाकर महावीरदेवके शासनको अचल बनानेका निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि पाली पिटकोंके पारायण मात्रसे जिस प्रकार बौद्ध श्रमण अपने शासनका संरक्षण करनेमें समर्थ नहीं हुए, उसी प्रकार प्राकृत आगमोंके प्रवचन मात्रसे जैन निर्ग्रन्थोंका 'मोक्षमार्ग' भी अब निर्भय नहीं रह सकता। इस लिये तर्कप्रधान प्रकरणग्रंथोंका प्रणयन करना अत्यावश्यक है।

इन्हीं निर्ग्रंथोंमेंसे, सबसे प्रथम आचार्य उमास्वाति (मी) ने तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी रचना कर समग्र जैनतत्त्वोंको एकत्र संगृहीत किया। अपने जीवनमें वे इस कार्यको पूर्ण करके पिछले प्रतिभाशाली क्षपणकोंके लिये ऐसी सूचना कर गये कि इन संगृहीत जैनतत्त्वोंके अर्थ प्रमाण और नयके द्वारा निश्चित करने चाहिएँ (-प्रमाण नयैरधिगमः)। 'मोक्षशास्त्र' के रचयिता महर्षिकी इस अर्थपूर्ण सूचनाके महत्त्वको समझ कर जिन पिछले महामति क्षपणकोंने इस दिशामें प्रयत्न करना शुरू किया और प्रमाण और नयकी व्यवस्था करनेके लिये नवीन शास्त्ररचना करनी शुरू की, सिद्धसेन दिवाकर उन्हीं सबके प्रधान अग्रणी हैं। उन्होंने ही सबसे पहले 'न्यायावतार' नामक तर्कप्रकरणकी रचना कर 'जैन प्रमाण' का पाया स्थिर किया और 'सम्मति प्रकरण' नामक महातर्कग्रन्थका प्रणयन कर 'नयवाद' का मूल दृढ किया।

सिद्धसेन दिवाकरकी कृतियोंके अवलोकनसे मालूम पडता है कि ये बडे स्पष्टभाषी और स्वतंत्र विचारके उपासक थे। प्रकृतिसे वे बडे तेजस्वी थे और प्रतिभासे 'श्रुतकेवली' थे। उनकी कृतियोंमें जो स्वतंत्र विचारकी झलक दिखाई दे रही है वह अन्य किसीकी भी कृतिमें नहीं। साक्षात् उनके ग्रन्थोंके देखनेसे, तथा पिछले ग्रंथकारोंने उनके विषयमें जो उल्लेख किये हैं उनके पढनेसे, ज्ञात होता है, कि जैनधर्मके कितने एक परंपरागत विचारोंसे सिद्धसेनके विचार भिन्नत्व रखते थे। पूर्वकालीन तथा समकालीन अन्यान्य जैन विद्वानोंके विचारोंमें और सिद्धसेनसूरिके विचारोंमें परस्पर बहुत कुछ उल्लेख-योग्य मतभेद था। दिवाकरजी साक्षात् जैनसूत्रोंके-जैनागमोंके-कथनको भी अपनी तर्कबुद्धिकी कसोटीपर कसकर तदनुकूल उसका अर्थ किया करते थे। केवल पूर्वपरंपरासे चले आने अथवा पूर्वाचार्योंको स्वीकृत होनेहीके कारण वे किसी सिद्धान्तको शिरोधार्य नहीं कर लेते थे। युक्तियुक्त बातहीको वे स्वीकार किया करते थे, चाहे वह पूर्वाचार्योंको सम्मत हो या न हो।

जिस तरह वर्तमानमें बहुधा देखा जाता है कि कोई भी स्वतंत्र विचारक किसी भी पूर्वपरंपरासे चली आती हुई बातमें कुछ 'ननु नच' करता है, या उसके प्रतिकूल कुछ अर्थ या अभिप्राय प्रदर्शित करता है, तो झट बहुतसे गतानुगतिक और लकीरके फकीर बने हुए पण्डितम्मन्य महाशय एकदम चिल्ला उठते हैं कि, 'यह बात तो शास्त्रविरुद्ध है, यह अभिप्राय तो परंपरा-प्रचलित अभिप्रायसे प्रतिकूल है;' उसीतरह शायद दिवाकरजीके जमानेमें भी चलता रहा होगा। उनके कितने ही उद्गारोंसे मालूम पडता है कि जब कभी वे कोई पूर्वपरंपरासे अथवा पूर्वाचार्योंके मतसे भिन्नार्थक विचार प्रदर्शित करते होंगे तब बहुतसे पुराणप्रिय पण्डित उनके नवीन विचारका प्रतिषेध करते हुए यही दलील देते होंगे कि-" महाराज, आपके विचार तो पूर्वाचार्योंके विचारसे विरुद्ध जाते हैं; क्या आप पूर्वपुरुषोंसे अधिक ज्ञानवान हैं, जो उनके कथनमें शंका उपस्थित करते हैं? क्या आपके जैसी शंका उनको नहीं करनी आती थी?" इत्यादि। ऐसे ही 'मृतरूढगौरव' प्रिय पण्डितोंका मुख मुद्रित करनेके लिये दिवाकरजीने एक द्वात्रिंशिका*में बडी ही मार्मिकताके साथ अपने हृदयका जोश प्रकट करते हुए निम्न श्लोक कहा है—

* बत्तीस पद्योंका जो एक प्रकरण होता है उसे द्वात्रिंशिका कहते हैं। कहा जाता है कि सिद्धसेन दिवाकरने ३२-३२ पद्योंवाली ऐसी ३२ द्वात्रिंशिकायें बनाई थीं। प्रसिद्ध ग्रंथ 'न्यायावतार' भी इन्हीं द्वात्रिंशत्-द्वात्रिंशिकाओंमेंसे एक द्वात्रिंशिकारूप है। वर्तमानमें ये सब ३२ ही द्वात्रिंशिकायें उपलब्ध नहीं होतीं। 'न्यायावतार' सहित कुल २१ द्वात्रिंशिकायें ही मिलती हैं। भावनगरकी 'जैनधर्मप्रसारक सभा' ने 'सिद्धसेन ग्रंथमाला' के नामसे इन द्वात्रिंशिकाओं और 'सम्मतिप्रकरण' को मूल रूपमें छपवा कर प्रकट कर दिया है। सिद्धसेनसूरिकी ये द्वात्रिंशिकायें बहुत ही गूढ और गंभीरार्थक हैं। इनको ऊपर ऊपरसे हमने कई

जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः
पुरातनैरेव समो भविष्यति ।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु
कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत् ॥

इसका भावार्थ यह है। दिवाकरजी पुरातन-प्रियोंको उद्दिष्ट करके कहते हैं कि, पुरातन पुरातन क्या पुकारा करते हो, यह (मैं) जन भी मरने बाद, कुछ काल अनन्तर पुरातन हो जायगा और फिर अन्य पुरातनोंहीके समान इसकी भी गणना होने लगेगी। अर्थात् मरे बाद सब ही पुरातन माने जाते हैं। भला, ऐसी अनवस्थित पुरातनताके कारण कौन बुद्धिमान मनुष्य किसी प्रकारकी परीक्षा किये बिना, आँख मूँद कर, केवल पुरातनोंके नामहीसे चाहे जिस सिद्धान्तका स्वीकार कर लेगा ?

इसी तरह एक जगह और भी दिवाकरजीने पुराणप्रियोंके प्रति इस प्रकार स्पष्ट कहा है:—

'यदेव किञ्चिद्विषमप्रकल्पितं
पुरातनैरुक्तमिति प्रशस्यते ।
विनिश्चिताऽप्यद्यमनुष्यवाक्कृति-
र्न पठ्यते यत्स्मृतिमोह एव सः ॥'

अर्थात् पुरातनोंने चाहे अयुक्त भी कहा हो तो भी उनके कथनकी तो प्रशंसा ही करते रहना और आजकलके—वर्तमानकालीन—मनुष्योंकी युक्तिद्वारा सुनिश्चित विचारवाली भी वाणी (कृति) को पढना तक नहीं! यह केवल मुग्ध मनुष्योंका स्मृतिमोह है, अन्य कुछ भी नहीं।

उनके ऐसे ही और भी अनेक चुभनेवाले उद्गार यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। मालूम पडता है कि दिवाकरजीके ऐसे कोरे परंतु युक्तियुक्त उवाचोंको सुनकर उनके विरोधी निरुत्तरित हो कर मन ही मनमें खूब चिढते रहते होंगे; और जिस तरह आजकलके पुराणप्रिय मनुष्य, जब स्वतंत्र विचारवाले किसी बुद्धिमान विचारकके विचारोंका समाधान नहीं कर सकते तब, अपने भक्तोंके सामने अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिये, नवीन विचारोंपर नास्तिकताका आरोप करके उनकी उपेक्षा करने-करानेका नाटक करते-

इन पद्योंको पढकर देखा परंतु सबका आशय स्पष्ट रीतिसे बहुत कम समझमें आता है। अफसोस तो इस बातका है कि जैनधर्ममें हजारों ही बडे बडे ग्रंथकार और टीकाकार हो गये हैं, परन्तु किसीने भी इन द्वात्रिंशिकाओंका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये शब्दार्थमात्र प्रकाशक व्याख्या भी लिखी हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। इसका कारण हमारी समझमें नहीं आता। इन द्वात्रिंशिकाओंकी अपूर्वार्थता और कर्ताकी महत्ताका खयाल करते हैं, तब तो यह विचार आता है कि इनके ऊपर अनेक वार्तिक और बडे बडे व्याख्यान लिखे जाने चाहिए थे। और 'न्यायावतार' के ऊपर ऐसे अनेक वार्तिक और व्याख्यान लिखे भी गये हैं। फिर नहीं मालूम, क्यों इन सबके लिये ऐसा नहीं किया गया। शायद अतिगहनार्थक होनेहीके कारण इनका रहस्य प्रकट करनेके लिये किसीकी हिम्मत न चली हो। योग्य और बहुश्रुत विद्वानोंसे प्रति हमारा निवेदन है कि वे इनका अर्थ स्फुट करनेके लिये सफल परिश्रम करें। इन कृतियोंमें बहुत ही अपूर्व विचार भरे हुए हैं। हमारे विचारसे जैनसाहित्य भरमें ऐसी अन्य अपूर्व कृतियां नहीं हैं।

सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचंद्रने 'अन्ययोगव्यवच्छेद' और 'अयोगव्यवच्छेद' नामकी दो द्वात्रिंशिकायें बनाई हैं (जिनमेंसे एकके ऊपर मल्लिषेणसूरिने 'स्याद्वादमंजरी' नामक विद्वत्प्रिय उत्तम व्याख्या लिखी है), वे इन्हींकी अनुकरण हैं। स्वयं हेमचन्द्रसूरिने अपनी प्रथम द्वात्रिंशिकाके प्रारंभहीमें सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंका महत्त्व बतलाते हुए लिखा है कि—

'क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था
अशिक्षितालापकला क्व चैषा।'

अर्थात्—सिद्धसेनसूरिकी बनाई हुई महान् अर्थवाली स्तुतियाँ कहाँ और अशिक्षित मनुष्यके आलाप जैसी मेरी यह रचना कहाँ। इसी कथनसे ज्ञात हो जायगा कि सिद्धसेनसूरिकी ये स्तुतियां कैसी महत्त्ववाली हैं। इन बहुतसी द्वात्रिंशिकाओंमें मुख्य कर अर्हन महावीरकी अनेक प्रकारसे स्तवना की गई है, इस लिये इनको स्तुतियाँ कहते हैं, और अतएव बहुतसी जगह 'आह च स्तुतिकारः' ऐसा उल्लेख सिद्धसेनसूरिके लिये किया गया है।

१ सिद्धसेनसूरिका यह उद्गार उनके समकालीन और सहचारी महाकवि कालिदासके मालविकाग्निमित्रमेंके—

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥'

इस उद्गारके साथ कितनी अर्थसमता रखता है! महाकवि कालिदास और सिद्धसेन दिवाकर दोनों महाराज वीरविक्रमादित्यकी राजसभाके उज्ज्वल रत्न थे। मालूम पडता है दोनोंकी अलौकिक प्रतिभा और लोकोत्तर कृतियोंने उस समयके पुराणप्रिय पण्डितोंको ईर्ष्यालुहृदया बना दिये होंगे और अतएव वे सर्व साधारणमें पुरातनताके बहाने इनके गौरवमें न्यूनता लानेकी व्यर्थ चेष्टायें किया करते होंगे। शायद ऐसे ही ईर्ष्यादग्ध विदग्धोंको मौनव्रत दिलानेके लिये इन समर्थ पुरुषोंको ये उद्गार निकालने पडे होंगे।

कराते दिखाई देते हैं, इसी तरह, उस पुराणे जमानेमें भी यही हाल चलता रहा होगा और अत एव शायद दिवाकरजीने निम्नलिखित आर्षवचन बडे मजाकके साथ कहा होगाः—

'परेय जातस्य किलाद्य युक्तिमत्
पुरातनानां किल दोषवद्वचः।
किमेव जाल्मः कृत इत्युपेक्षितुं
प्रपञ्चनायास्य जनस्य सेत्स्यति॥'

अर्थात्—'कलके जन्मे हुएके वचन तो आज युक्तिमत् बताये जाते हैं और पुरातन पुरुषोंके दोषवाले माने जाते हैं! अफसोस, इससे अधिक और क्या मूर्खता हो सकती है? ऐसे बोलनेवाले आलिम मनुष्योंकी तो उपेक्षा ही करनी चाहिए। उनके सुधारनेके लिये और कोई दूसरा उपाय नहीं है।' इस प्रकारके उद्गार निकालकर 'उपेक्षा करनेका' ढोंग रचनेवाले पुराणप्रेमियोंको दिवाकरजी कहते हैं कि, बडी खुशीकी बात है—आपकी इस उपेक्षासे हमको तो लाभ ही होगा। क्यों कि हमारे विचारोंका प्रतिरोध करनेवाला कोई न निकलनेसे उनका तो और खूब प्रसार ही होगा!

विज्ञ पाठक दिवाकरजीके इन उद्गारोंको पढ कर उनकी विचारस्वतंत्रता और निर्भयताका बहुत कुछ अनुमान कर सकेंगे। ऐसे स्वतंत्र और निर्भीक उद्गार जैनसाहित्यमें तो क्या समग्र संस्कृत-साहित्यमें भी मिलने मुश्किल हैं।

* * *

सिद्धसेन दिवाकरका जैनागमोंके रूढ अभिप्रायसे भिन्न-विचारवाला एक सिद्धान्त जैन-(श्वेताम्बर) साहित्यमें बहुत प्रसिद्ध और बहु-विवेचित है। यह सिद्धान्त केवलज्ञान और केवलदर्शनके स्वरूपके साथ सम्बन्ध रखता है। पाठकोंको इस सिद्धान्तका पूरा परिचय करानेके लिये यहां पर अवकाश नहीं है, तो भी संक्षेपमें सूचनमात्र अवश्य कर देना चाहते हैं।

श्वेताम्बर संप्रदायमें जो सिद्धान्त ग्रन्थ (सूत्रग्रन्थ) विद्यमान हैं, उनमें, केवली (सर्वज्ञ) को केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों, युगपत यानि एक साथ नहीं होते परंतु क्रमशः—एक दफह केवलज्ञान और एक दफह केवलदर्शन, इस प्रकार बारी बारी से होने का उल्लेख किया हुआ है। अर्थात्ः एक क्षण (जैन पारिभाषिक शब्द समय) में केवलज्ञान रहता है और दूसरे क्षणमें केवलदर्शन। इसी तरह प्रतिक्षण क्रमशः केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वरूप केवलीका उपयोग परिवर्तित हुआ करता है। सिद्धसेनसूरिको यह विचार सम्मत नहीं है। वे इस विचारमें युक्ति-संगतता नहीं समझते। तर्क और युक्ति से वे इस मान्यताको अयुक्त सिद्ध करते हैं। उनके विचारसे केवलीको केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों युगपत्-एक ही समयमें होना युक्तिसंगत है। और वास्तविकमें, अन्तमें वे दिखाते हैं दोनोंमें परस्पर कोई भेद ही नहीं मानते—दोनोंको एक ही बतलाते हैं। इस विचारको उन्होंने अपने 'सम्मतिप्रकरण' में खूब ऊहापोह किया है। सिद्धसेनजीके इस विचारभेदके कारण उस समयके सिद्धान्त-ग्रन्थ-पाठी और आगमभक्ति-प्रवण आचार्यगण उनको 'तर्कम्मन्य' जैसे तिरस्कारव्यञ्जक विशेषणोंसे अलंकृत कर, उनके प्रति अपना सामान्य अनादर-भाव प्रकट किया करते थे। सिद्धसेनजीके बाद सिद्धान्तग्रन्थपाठी आचार्योंमें जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण नामक एक बहुत समर्थ प्रतिभाशाली आचार्य हुए। उन्होंने आगमोंके विस्तरित रहस्यको समझानेके लिये 'विशेषावश्यकभाष्य' नामक अपना ग्रन्थ रचा था। इस भाष्यमें क्षमाश्रमणजीने दिवाकरजीके उक्त विचारभेदका खूब ही खण्डन किया है और उनको आगम-विरुद्धभाषी बतला कर उनके सिद्धान्तको असत्य बतलाया है। 'तत्त्वार्थसूत्र' ऊपर बहुत बडी टीका लिखनेवाले[2] सिद्धसेनगणी कि जो भाष्यानुसारी सिद्धसेन कहाते भी '

'एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः॥ १-३१॥'

इस सूत्रकी व्याख्यामें दिवाकरजीके विचारभेद ऊपर अपने ठीक बाग्बाण चलाये हैं। गणीजीके कुछ वाक्य देखिए—

---

१ यह भाष्य, मलधारी आचार्य हेमचंद्र विरचित बृहद्वृत्तिके साथ काशीकी यशोविजयग्रंथमालामें मुद्रित हुआ है।

२ श्वेताम्बर संप्रदायमें तत्त्वार्थसूत्रपर यही एक प्रसिद्ध और प्रौढ टीका है। यह टीका भाष्यके ऊपर लिखी गई है। ऐतिहासिक दृष्टिसे, तत्त्वार्थसूत्रकी दिगम्बर श्वेताम्बर संप्रदायकी अन्यान्य टीकाओंमें इस टीकाका महत्त्व अधिक है। इस विषयमें हम कभी विस्तारके साथ लिखेंगे।

" यद्यपि केचित् पण्डितम्मन्याः सूत्राण्यन्यथाकारमर्थमाचक्षते तर्कबलानुविद्धबुद्धयो वारंवारेणोपयोगो नास्ति, तत्तु न प्रमाणयामः, यत आम्नाये भूयांसि सूत्राणि वारंवारेणोपयोगं प्रतिपादयन्ति। "

जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण और सिद्धसेनगणी आदि दिवाकरजीके विचारभेदमें केवल आगम-प्रामाण्यकी दलीलके सिवा और कुछ नहीं कह सके। युक्तिसे वे भी दिवाकरजीके विचारके कायल होते थे, परंतु अन्तमें यही कह कर वे छूट जाते थे कि युक्ति और तर्कसे चाहे जो सिद्ध होता हो परंतु आगम-लिखित उल्लेखोंके विरुद्ध-विचारको हम कभी नहीं आदर दे सकते। सिद्धसेनगणी लिखते हैं कि–

स्वमनीषिका सिद्धान्तविरोधिनी न प्रमाणम्, ...त्यभ्युपेयते।' ...' न चान्यथा जिनवचनं कर्तुं शक्यते सुविद्भुषापीति।'

मालूम पडता है इस प्रकारकी तर्क प्रियताके कारण ही पिछले जैन साहित्यमें दिवाकरजी 'तार्किक' के नामसे प्रसिद्ध रहे हैं।

[बहुतसे पाठक यह नहीं जानते होंगे कि श्वेताम्बर आचार्योंके इस विशिष्ट मतभेदके बारेमें दिगम्बर आचार्योंका क्या मत है? उनके लिये हम यहां पर यह नोट कर देते हैं कि, दिगम्बर साहित्यमें इस बारेमें एक ही सिद्धान्त उल्लिखित है और वह सिद्धसेन दिवाकरका सिद्धान्त है। अर्थात् दिगम्बराचार्योंको दिवाकरजी ही का मत मान्य है। दिगम्बर ग्रन्थोंमें सर्वत्र केवलज्ञानीको ज्ञान और दर्शन दोनों युगपत् लिखे हुए हैं। उनमें श्वेताम्बर-आगमोंके मुताबिक

'जुगवं दो णत्थि ओगा'

अर्थात्–एक साथ दो उपयोग नहीं होते–यह विचार कहीं देखनेमें नहीं आता। इतना ही नहीं बल्कि 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में भट्ट अकलंकदेवने

'केवलि-श्रुत-सङ्घ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य'

(६-१२) इस सूत्रकी व्याख्यामें

'पिण्डाभ्यवहारजीविनः, केवलदशानिर्हरणाः, अलाबूपात्रपरिग्रहाः कालभेदवृत्तज्ञानदर्शनाः, केवलिनः इत्यादि वचनं केवलिष्ववर्णवादः।'

ऐसा उल्लेख कर, श्वेताम्बरोंकी, केवलीको कवलाहार माननेकी जो दिगम्बर-मत-विरुद्ध दूसरी प्रसिद्ध मान्यता है, उसीकी तरह, इस क्रमोपयोगवादकी मान्यताको भी, केवलज्ञानीके अवर्णवाद स्वरूप बतलाकर दर्शनमोह कर्मके बन्धका कारण बतलाया है। अकलंकदेवके इस कथनके विरुद्ध श्वेताम्बर विद्वान् सिद्धसेनगणीने इसी सूत्रकी व्याख्यामें।

"दिगम्बरत्वाद्विगतत्रपाः, क्रमोपयोगभाजः", समवसरणभूमावप्कायभूम्यारम्भानुमोदिनः, सर्वोपायनिपुणा अप्याति दुष्करदुरपचरमार्गोपदेशिनः इत्याद्यवर्णोद्भासनम्।'

इस प्रकार उल्लेख कर, केवलज्ञानीको क्रमशः ज्ञान दर्शन होनेवाले मत (विचार) में युक्ति-रहितता मानने या प्रतिपादन करनेवालोंके विचारको दर्शन मोहकर्मके बन्धका कारण बतलाया है!!]

सिद्धसेनसूरिके लिये एक यह भी किम्वदन्ती प्रचलित है कि, इन्होंने एक दफह जैन श्रमणसंघके सामने यह विचार प्रदर्शित किया था कि, 'जैनागम ग्रंथ' जो प्राकृतभाषामें बने हुए हैं इसलिये विद्वानोंका उनके प्रति विशेष आदर नहीं होता–विदग्धगण उन्हें ग्रामीण भाषाके ग्रन्थ समझकर उनका अवलोकन नहीं करते–इस लिये यदि श्रमण-गण अनुमति दे तो मैं उन्हें संस्कृतभाषामें परिवर्तित कर देना चाहता हूं। दिवाकरजीके इन विचारोंको सुन कर श्रमण-संघ एकदम चौंक उठा और 'मिच्छामि दुक्कडं' का उच्चारण करता हुआ, इनसे कहने लगा कि, 'महाराज, इस अकर्तव्य विचारको अपने हृदयमें स्थान देकर आपने तीर्थंकर, गणधर और जिन-प्रवचन की महती 'आशातना' (अवज्ञा) की है। ऐसा कलुषित विचार करनेके, और श्रमण-संघ के सामने ऐसे उद्गार निकालनेके कारण, जैन शास्त्रानुसार, आप 'संघबाह्य' के भयङ्करकी शिक्षा पानेके अधिकारी हुए हैं।' दिवाकरजी संघके इस कथनको सुनकर चकित हो गये; और अपने सरल विचारसे भी संघको इतनी अप्रीति हुई इसलिये उनको बडा खेद हुआ। संघसे तुरन्त उन्होंने क्षमा-प्रार्थना की और जो प्रायश्चित्त दिये जाने योग्य हो उसे देनेकी विज्ञप्ति की। कहा जाता है कि संघने उन्हें शास्त्रानुसार बारह वर्षतक 'बहिष्कृत' रूपमें रहनेका 'पाराञ्चित' नामक प्रायश्चित्त दिया, जिसे दिवाकरजीने सादर स्वीकार कर संघाज्ञाका पालन किया। प्रायश्चित्तकी मर्यादा पूर्ण हो जाने पर संघने उनको पुनः

अपने अंदर सामिलकर पूर्ववत् उनका सत्कार किया। इस किम्वदन्तीमें कितना तथ्यांश है उसका विचार हम यहां पर नहीं करना चाहते, केवल इतना कह देना चाहते हैं कि इस रूपकमें कुछ न कुछ ऐतिहासिक सत्य गर्भित अवश्य है। ऊपर जो हमने थोडासा इनके विचार-स्वातंत्र्य और स्पष्ट-भाषित्वका परिचय दिया है, उससे यह जाना जा सकता है कि, यदि जैनागमोंके सम्बन्धमें इन्होंने ऐसी कोई बात श्रमणसंघके सामने प्रदर्शित की हो अथवा कृतिरूपसे उपस्थित कर दी हो कि जिससे पुराणप्रिय और आगमप्रवण श्रमण-वर्गको बडा असंतोष हुआ हो, तो, उसमें कोई असंभवता नहीं है।

तत्कालीन श्रमणसंघमें अथवा कुछ काल तक पीछे भी आगमाभ्यासी सैद्धान्तिकोंमें सिद्धसेनसूरिके प्रति आदरभाव अल्परूपमें भले ही जागृत रहा हो; परंतु परवादियोंके किये जानेवाले प्रचण्ड आक्रमणसे जैनशासनकी रक्षा करनेके लिये प्रमाण और नयवादके प्रबलयुक्तिपूर्ण सिद्धान्तोंकी स्थापनारूप जिस दुर्गम-दुर्गके मूलको वे दृढ बना गये, इस लिये उनके अनुगामी और पश्चाद्वर्ती सब ही समर्थ जैन विद्वानोंने उनका बडे गौरवके साथ स्मरण किया है। महातार्किक आचार्य मल्लवादीने सम्मतिप्रकरण उपर टीका[1] लिख कर उनके प्रति अपनी उत्तम भक्ति प्रकट की। जैनधर्मके अनन्यसाधारण और अप्रतिम तत्त्वज्ञ आचार्य हरिभद्रने तो उन्हें साक्षात् 'श्रुतकेवली' लिख कर उनका अनुपम आदर किया है[2]। तत्पश्चात् महात्मा सिद्धर्षिने न्यायावतार ऊपर व्याख्या[3] लिख कर, तर्कपञ्चानन अभयदेवसूरिने 'सम्मतिप्रकरण' पर २५ हजार श्लोक प्रमाण विस्तृत और प्रौढ टीका[1] बना कर, शान्त्याचार्य और जिनेश्वरसूरिने 'न्यायावतार' के सटीक वार्तिक[2] रच कर, सिद्धसेनसूरिके, जैनतर्कशास्त्र विषयक सूत्रधारत्वका सगौरव समर्थन किया है। प्रचण्ड तार्किक वादी देवसूरिने उन्हें अपना मार्गदर्शक बतलाया है[4]; और सर्वतंत्रस्वतंत्र आचार्य हेमचंद्रने उनकी कृतियोंके सामने अपनी विद्वन्मनोरंजक कृतियोंको भी 'आशिक्षितालापकला' वाली बतलाई हैं।

* * *

जिस तरह श्वेताम्बर संप्रदायके प्रसिद्ध आचार्योंने सिद्धसेन दिवाकरकी प्रशंसा की है वैसे दिगम्बर संप्रदायके सूरिवरोंने भी उनके विषयमें स्तुतिपरक उद्गार प्रकट कर, समुचित गौरव किया है।

हरिवंश पुराणके कर्ता महाकवि जिनसेन सूरि (प्रथम) ने, अपने पुराण-रूप महाकाव्य की प्रस्तावनामें समन्तभद्रादि बडे बडे प्रभावक आचार्यों का स्मरणीय उल्लेख करते हुए सिद्धसेनसूरिका भी— उनकी सूक्तियों की प्रशंसा द्वारा—सादर स्मरण किया है। यथा--

१ यह टीका अभीतक कहीं उपलब्ध नहीं हुई है। ४-५ सौ वर्ष पहले की बनी हुई एक ग्रन्थसूचि हमारे पास है उसमें इस टीकाका नाम लिखा हुआ मौजूद है।

२ देखो, 'पञ्चवस्तु' ग्रन्थका निम्न लिखित गाथा-युगल

भण्णइ एगंतेणं अम्हाण कम्मवायो णो इट्ठो।
णो सहाववाओ सुअकेवलिणा जओ भणिअं॥
आयरिय-सिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठिअ-जसेण।
दूसमणिसादिवायर-कप्पत्तणओ तदक्खेण॥

डेक्कनकालेज संग्रहीत हस्तलिखित पु. पृ. १३१.

३ यह व्याख्या पाटणकी 'हेमचन्द्राचार्य जैनसभा' की ओरसे छपकर प्रकाशित हुई है। इस व्याख्याके ऊपर राजशेखर सूरिका बनाया हुआ संक्षिप्त 'टिप्पनक' भी है

१ इस टीकाका थोडासा प्रारंभिक भाग काशीकी 'यशोविजयजैनग्रन्थमाला' में प्रकाशित हुआ है। संपूर्ण ग्रंथ अभीतक नहीं छपा।

२ जिनेश्वरसूरिके वार्तिकका नाम 'प्रमालक्षण' है और वह केवल न्यायावतार सूत्रके आदिम श्लोकका विस्तार स्वरूप है। इस ग्रन्थके विषयमें विशेष जाननेके लिये, देखो जैनहितैषी मासिक पत्र के भाग १२, संख्या १, में मुद्रित हमारा 'प्रमालक्षण' शीर्षक लेख। यह ग्रंथ अमदाबादके सेठ मनसुखभाई भगुभाई ने छपवा कर प्रकट किया है।

३ शान्त्याचार्यका वार्तिक भी जिनेश्वरसूरिके वार्तिक की तरह न्यायावतारके प्रथम श्लोककी व्याख्यारूप है। इसका नाम 'प्रमाण कलिका' है। यह काशी के पंडित पत्रमें पं. विट्ठलशास्त्री द्वारा संशोधित हो कर प्रकाशित हुआ है, परंतु इतना अशुद्ध छपा है कि जिससे एक पृष्ठ भी शुद्ध पढना-समझना कठिन है।

४ देखो, 'स्याद्वादरत्नाकर' के प्रारंभमें निम्न गत श्लोक

श्रीसिद्धसेन–हरिभद्रमुखाः प्रसिद्धा-
स्ते सूरयो मयि भवन्तु कृतप्रसादाः।
येषां विमृश्य सततं विविधान् निबन्धान्
शास्त्रं चिकीर्षति तनुप्रतिभोऽपि मादृक्॥

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः ।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥

इसी तरह आदिपुराणके कर्ता महाकवि जिनसेनाचार्य (द्वितीय) ने भी अपने महापुराणके प्रारंभमें निम्न लिखित श्लोक द्वारा सिद्धसेन सूरिके पाण्डित्यकी प्रभुताका उल्लेख कर उनके प्रति अपना आदर-भाव प्रकाशित किया है।—

प्रवादिकरियूथानां केशरी नयकेशरः ।
सिद्धसेनकविर्जीयाद् विकल्पनखराङ्कुरः ॥

भट्ट-अकलंक देवके ग्रन्थोंमें भी सिद्धसेन सूरिके वचन प्रमाणतया उद्धृत किये हुए दिखाई देते हैं[1]। इससे उनकी प्रामाणिकताका पूरा परिचय मिल जाता है और जैन धर्मके दोनों सम्प्रदायोंमें उनकी प्रतिष्ठा एकरूपसे स्वीकृत की गई है यह स्पष्ट जाना जा सकता है।

लक्ष्मीभद्र नामक दिगम्बर विद्वानके बनाये हुए एकान्त खण्डन नामक ग्रन्थमें

अनेकान्तलक्ष्मीविलासाऽऽवासाः सिद्धसेनार्य्या असिद्धिं प्रत्यपादयन्

'असिद्धं सिद्धसेनस्य..........'

'नित्याद्येकान्तहेतावुक्तविनिहितः
सिद्धसेनो ह्यसिद्धम् ।

इत्यादि प्रकारके उल्लेखों द्वारा, सिद्धसेनसूरिका समन्तभद्रादिक आचार्योंके साथ हेतुके स्वरूप-विषयक विचार-विरोधका आदर युक्त वर्णन किया हुआ है, और इस प्रकार समन्तभद्रादिकके समान ही उनकी प्रामाणिकता स्वीकृत की गई है[1]।

सिद्धसेनसूरिके बारेमें लिखे गये इन ऊपर्युक्त विचारोंके अवलोकनसे विज्ञ पाठक जान सकेंगे कि जैन धर्मके समर्थक आचार्योंमें उनका कितना ऊंचा आसन है और पिछले लेखकों द्वारा वे कितने सत्कृत हुए हैं।

स्वामी समन्तभद्र ।

अब हम कुछ हाल सिद्धसेनसूरि ही के समानासनासीन स्वामी समन्तभद्रके बारेमें निवेदन करना चाहते हैं।

श्वेताम्बर साहित्यमें जो स्थान सिद्धसेन दिवाकरको मिला है वही स्थान दिगम्बर साहित्यमें स्वामी समन्तभद्रको प्राप्त है। श्वेताम्बर संप्रदायके तर्कशास्त्र-विषयक साहित्य ऊपर जितना प्रभाव सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंका पडा है, उतना ही प्रभाव दिगम्बर संप्रदायके तद्विषयक वाङ्मय ऊपर स्वामी समन्तभद्रकी कृतियोंका पडा है। जिस तरह श्वेताम्बर साहित्यमें सिद्धसेनके पूर्वकालीन कोई स्वतंत्र तर्क-विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, वैसे ही दिगम्बर साहित्यमें समन्तभद्रके पूर्वका वैसा कोई ग्रंथ नहीं है। श्वेताम्बर संप्रदायमें संस्कृत भाषाके पद्यात्मक प्रौढ ग्रंथोंके प्रथम प्रणेता जैसे सिद्धसेन हैं, वैसे ही दिगम्बर संप्रदायमें समन्तभद्र हैं। इन दोनों विद्वानोंके पहले, दोनों संप्रदायोंमें संस्कृत भाषाका विशेष अभ्यास और आदर नहीं था। तब तक जैन श्रमणोंमें प्राकृत भाषा ही का प्रभुत्व था। श्रमणोंके अभ्यासके विषय भी बहुत नहीं थे। जिस तरह, वर्तमानमें श्वेताम्बर संप्रदायकी स्थानकवासी (ढूंढिया) नामक शाखाके साधुओंमें बहुधा देखा जाता है कि उनमें केवल मूल-सूत्रोंका पाठ कंठस्थ कर लेनेके तथा सारा दिन बैठे बैठे वह पाठ मात्र पढते-वांचते रहनेके सिवा, न कोई सूत्रोंके अर्थका विशेष

---

१ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके ८ वें अध्यायके १ म सूत्रके १७ वें वार्तिकमें, सिद्धसेन सूरिका, प्रथम द्वात्रिंशिकान्तर्गत निम्न लिखित सुप्रसिद्ध पद्य उद्धृत किया हुआ है।

सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु
स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तसंपदः।
तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता
जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः ॥

यह पद्य और भी अनेकानेक ग्रंथकारों द्वारा यत्र तत्र उद्धृत किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस पद्यगत विचार सिद्धसेनसूरिके मौलिक विचार हैं।

१ इस विचार-विरोधके स्पष्टीकरणके लिये किसी अगले अंकमें हम एक आधा छोटासा लेख लिखना चाहते हैं। पाठक तब ही ध्यान पूर्वक इस विषयको पढें। यहां पर तो सिर्फ सूचन मात्र कर दिया गया है।

विचार किया जाता है और न कोई व्याकरण, काव्य कोषादिका अभ्यास किया जाता है; उसी तरह शायद उस पुराणे जमानेके बहुतसे श्रमणोंका हाल रहा होगा सम्मतितर्कके अन्तमें, सिद्धसेनसूरिने

' तम्हा आहिगयसुत्तेण अत्थसंपायणम्मि जइअव्वं। '

इत्यादि प्रकारका जो उल्लेख किया है और सूत्र (मूलपाठ) के साथ अर्थसंपादन करनेमें भी यतियोंको यत्न करना चाहिए, ऐसा जो उपदेश दिया है, उससे हमारे इस विचारकी पुष्टि होती है। अर्थ-परिज्ञानके सिवाय, और व्याकरण, काव्य, कोष, आदिक सर्व-साधारण ज्ञानके सिवाय मनुष्यको न तत्त्वबोध हो सकता है और न वह दूसरोंको करा सकता है। सर्व-साधारण परिज्ञानके उक्त सब साधन भारतवर्षमें प्राचीन कालसे एक मात्र संस्कृत भाषा ही में उपलब्ध होते हैं। वर्तमानमें अंग्रेजीकी तरह प्राचीनकालमें संस्कृत ही विद्वानोंके व्यवहारकी मुख्य भाषा थी। इस लिये जैनश्रमणोंको बहुज्ञ और विशिष्ट विद्वान् बनानेके लिये संस्कृत भाषाके अध्ययन-अध्यापनकी, आवश्यकता थी। यह आवश्यकता तब ही पूरी हो सकती है जब उत्तम और प्रौढ विचार के ग्रंथ इस भाषामें बनाये गये हों और जिनके सीखनेकी श्रमणोंको खास जरूरत मालूम देती हो। इस लिये सिद्धसेन दिवाकरने संस्कृत ही में अपने प्रौढ और गंभीर विचार लिपिबद्ध करने शुरू किये। परंतु, जैन श्रमणोंमें संस्कृतका नया ही प्रवेश था, इस लिये, जैसे वर्तमानमें इंग्रेजी भाषाके देशी विद्वानोंको अपने विशिष्ट विचार इंग्रेजी ही में व्यक्त करना अधिक पसंद होने पर भी, स्वदेशनिवासी सर्वसाधारण जनसमूहको, अपने विचारोंका परिचय करानेके लिये मातृभाषामें भी कुछ थोडा-बहुत लिखना पडता है; वैसे ही शायद सिद्धसेनसूरिको, (यहां पर सिद्धसेनको लक्ष्य कर यह कथन लिख रहे हैं, इसलिये प्रधानतः उनका ही जिकर करना पडता है, परंतु यह बात इस प्रकारके अन्य विद्वानोंके लिये भी समझ लेनी चाहिए) संस्कृत भाषा ही में लिखना विशेष प्रिय होने पर भी, सभी श्रमणोंको अपने मौलिक अतएव नवीन विचारोंका परिचय कराने के लिये, श्रमण-समूहकी साधारण और प्रिय भाषा जो उस समय प्राकृत थी, उसमें भी कुछ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। ' सम्मतिप्रकरण ' का प्राकृत भाषा में होना हमारे इस अनुमान का विशिष्ट कारण है। ऐसा न होता तो फिर, वैसा प्रौढ और तर्क-प्रवण ग्रंथ संस्कृत भाषाके अत्यंत अनुरागी और महाकवि हो कर भी वे प्राकृत जैसी सरल और साधारण भाषामें क्यों लिखते ? ।

समन्तभद्र स्वामीने प्राकृत भाषामें कोई ग्रंथ-रचना की है या नहीं, इस का कुछ पता नहीं लग सकता। परन्तु उनके नामसे जितने ग्रंथ वर्तमानमें प्रचलित और प्रसिद्ध हैं—और उन को उन्हीं की कृति माननेमें कोई विशेष सन्देह जनक कारण भी नहीं है—उनके विषयका विचार करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने प्राकृतमें कोई रचना नहीं की होगी। ' रत्नकरण्डक श्रावकाचार ' का विषय प्राकृतमें गूंथे जानेके योग्य था। ऐसे धर्मतत्त्व-प्रतिपादक ग्रंथ, जैन साहित्यमें संस्कृतकी अपेक्षा प्राकृत ही में अधिक उपलब्ध हैं. और समाजको प्रिय भी इसी भाषाके ग्रंथ अधिक हो सकते हैं। क्यों कि अज्ञान बालक-बालिकायें और मन्दमति स्त्रियें भी उन्हें सरलतापूर्वक पढ सकती हैं। श्वेताम्बर संप्रदायमें तो बहुत अर्वाचीन काल तक भी ऐसे ग्रंथ प्राकृत ही में लिखे गये हैं। रत्नकरण्डकका दिगम्बर संप्रदायमें सभी स्त्री-पुरुष पाठ पढने-सुनते रहते हैं, इस लिये संस्कृतकी अपेक्षा यह ग्रंथ प्राकृत में होता तो लोगोंको और भी अधिक सुगम और सरल पडता। परंतु हमारे विचारसे, दिगम्बराचार्योंमें, स्वामी कुन्दकुन्दके बाद, प्राकृत भाषा ऊपरसे बिलकुल प्रेम ऊठ गया था। और उसके ऊठ जानेमें मुख्य कारण स्वामी समन्तभद्रका संस्कृत-प्रेम और उनकी उसीमें रची गई सब कृतियें हैं। समन्तभद्रकी देखादेखी पिछले प्रायः सब ही दिगम्बर विद्वान्, विशेष कर संस्कृत ही में ग्रंथ-रचना करते रहे हैं। अस्तु।

हमारे इस लिखनेका मतलब यही है कि, सिद्ध-

सेन और समन्तभद्र दोनों जैन समाजमें संस्कृत-भाषा के विशिष्ट लेखक और प्रचारक थे।

हम ऊपर सूचित कर आये हैं कि सिद्धसेनके पूर्व ही में बौद्ध और ब्राह्मणों के बीचमें तर्क युद्ध की शुरूआत हो चुकी थी, और इसलिये बौद्ध श्रमणों को पाली भाषाके प्रवाहमेंसे निकलकर संस्कृतके स्रोतमें दाखल होना पडा था और ब्राह्मणोंके समान ही तर्क-विषयक साहित्यका संगठन कर भगवान गौतम बुद्धके शासनका संरक्षण करनेमेंव कटिबद्ध हो रहे थे। उन बौद्ध श्रमणोंका प्रभाव जैन निर्ग्रन्थों पर बहुत असर कारक पडा और उनको अपने कार्य में सफल होते देख जैन निर्ग्रन्थोंने भी उसी मार्गका अनुसरण करना शुरू किया।

बौद्धोंके साथ वाद-विवाद करते हुए ब्राह्मणों की दृष्टि, शनैः शनैः बौद्धों ही के समान बहुतसे आचार-विचार रखनेवाले और अतएव ब्राह्मण-वर्चस्व का विनिपात करनेवाले जैन निर्ग्रन्थोंके, शान्त परंतु स्थिर भावसे बढते जाते सामर्थ्य और लोकप्रियत्व ऊपर भी पडने लगी। यद्यपि जैन निर्ग्रन्थ उस समय अपना प्रशमरसपरिपूर्ण जीवन केवल निर्जन-वनोंमें घूमते और धर्मध्यानमें मग्न रहते ही बिताते थे। उन्हें अपना अनुरक्त-वर्ग बढानेका या सम्राटोंके गुरु बननेका कोई लोभ नहीं था। जनसमूहके विशेष संसर्गसे वे दूर दूर रहते थे। इसलिये ब्राह्मणोंको अपनी आजीविका और लोकप्रतिष्ठामें उनकी तरफसे किसी विशेष आघात के आनेकी आशंका करनेका अधिक कारण नहीं था। तथापि, बौद्ध श्रमणोंकी जनहितकर प्रवृत्ति और सेवाभावनासे आकर्षित हो कर लोकमत दिन प्रतिदिन जो उनका अनुरक्त होता जाता था और ब्राह्मणोंके प्रति जो शिथिलादर होता जाता था, इसके कारण मनस्वी ब्राह्मणोंकी सात्त्विक वृत्ति तमःप्रधान बन गई थी। इस कारणसे, उन्होंने अनात्मवादी बुद्धानुरागियोंके साथ साथ परम आत्मवादी निर्ग्रन्थानुयायियोंको भी 'नास्तिक' 'नास्तिक' कह कह कर परमाप्त भगवान् महावीर के मोक्षमार्गका तिरस्कार करना शुरू कर दिया था। और इस प्रकार मुमुक्षु आत्माओंके कल्याणके मार्गमें कांटे बिछा कर उन्हें मार्ग भ्रष्ट करनेके प्रयत्नका प्रारंभ किया गया था। समाधिशील निर्ग्रन्थोंको, अपने मानधर्मका इस प्रकार विपर्यास और दुरुपयोग होते देख जगत्के कल्याणार्थ और परमपुरुष महावीरके मोक्षमार्गका सत्यत्व स्थापनार्थ, मौनधर्मका त्याग करना पडा; और फिर बौद्ध भिक्षुओंकी तरह वे भी जन सहवासमें आ कर, वाद-विवादके युद्ध-क्षेत्रमें उपस्थित हो कर, अपने प्रतिपक्षियोंका मुकाबला करने लगे। ऐसे ही एक विवाद-क्षेत्रमें, वृद्धवादी नामक निर्ग्रन्थाचार्यके साथ वाद करते हुए चतुर्दशविद्यापारंगत ब्राह्मणकुल-भूषण सिद्धसेन पराजित हुए थे, और 'जो मुझे शास्त्रवादमें पराजित करे उसका मैं शिष्य बनूंगा,' ऐसी गर्विष्ठ प्रतिज्ञा करनेवाले विद्योन्मत्त परंतु कृत-प्रतिज्ञाका पूर्ण निर्वाह करने जितना दृढ मनोबल रखनेके कारण सत्य-प्रतिज्ञ सिद्धसेनको अपने विजेता आचार्यके पास निर्ग्रन्थ-दीक्षा ले कर 'ब्राह्मणवर' से 'श्रमणवर' होना पडा था।

सिद्धसेनके उद्गारोंसे पता लगता है कि उस समय निर्ग्रन्थोंकी सरल वाद-पद्धति और आकर्षक शांतवृत्तिका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पडता था। निर्ग्रन्थ अकेले-दुकेले ही ऐसे स्थलों पर जा पहुंचते थे, और ब्राह्मणादि परवादी विस्तृत-शिष्य समूह और जनसमुदायके सहित राजसी ठाठ-माठ के साथ पेश आते थे, तो भी जो यश निर्ग्रन्थोंको मिलता था वह उन प्रतिवादियोंको अप्राप्य था। यह बात स्वयं सिद्धसेनसूरिने, महावीर स्तुतिरूप प्रथम द्वात्रिंशिकामें इस प्रकार प्रकट की है:—

अलब्धनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतस—
स्तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः।
न तावदप्येकसमूहसंहताः
प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः॥

इस कथनसे उस समयकी लोकरुचिका भी पता लगता है कि लोक ब्राह्मणोंके जल्पवितण्डा परिपूर्ण शुष्कवाद और कर्मकाण्डके प्रपंचसे कितने

ऊब गये थे और शांतिपूर्ण सात्त्विक मार्गके कितने उत्सुक बन गये थे। अस्तु।

सिद्धसेन निर्ग्रन्थ-दीक्षा लेनेके पहले सर्व-शास्त्र-पारंगत विद्वान् ब्राह्मण थे यह बात ऊपर सूचित की जा चुकी है। इस लिये निर्ग्रन्थ बनते ही उन्होंने अपनी सर्वज्ञकल्प शास्त्र-ज्ञताका, जैन तत्त्वोंको न्यायसंगत बनानेमें और स्याद्वादके सिद्धान्तको नय और प्रमाण द्वारा सुव्यवस्थित बनाने में, पूरा उपयोग किया। ब्राह्मणवर्ग अपने प्रतिपक्षियों पर जो 'नास्तिकता' का कुत्सित आरोप कर सर्व साधारण-में मिथ्याभ्रान्ति फैलानेका उद्योग किये करता था उसका प्रतिवाद और निराकरण करनेके लिये तथा यथार्थमें आप्त-पुरुष कौन है, और किसका सिद्धान्त स्वीकरणीय होना चाहिए, इस विषयका उद्घाटन करनेके लिये, सिद्धसेनने बडे गभीर और उच्च विचारवाले भिन्न भिन्न दृष्टिसे अनेक प्रकरण लिखे। ये वेही प्रकरण हैं जिनका जिकर हम ऊपर द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशिकाओंके नामसे कर आये हैं। इन प्रकरणोंमें उन्होंने अपने पक्षका समर्थन और परपक्षका निरसन इतनी उत्तमता, इतनी मार्मिकता और इतनी गभीरता के साथ किया है कि जिनको पढ कर सहृदय विद्वानोंको काव्यका, तर्कशास्त्रका और सत्यके साक्षात्कारका एक साथ ही आनंद आ सकता है। यह एक विचारणीय और ऐतिहासिक सत्य है कि, ब्राह्मणों के वर्चस्वका और कर्ममार्गका विरोध करनेवाले कृष्ण, महावीर, गौतमबुद्ध आदि क्षत्रिय-वीर ही हैं और अध्यात्म मार्गकी गवेषणा कर जगत्को उसका उपदेश देनेवाले भी एक मात्र वे ही हैं; परंतु इन क्षत्रिय धर्म-प्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंको संगत, सुस्थित और सुप्रचालित करनेवाले फिर वेही ब्राह्मण ही हैं। भागवत, जैन और बौद्ध धर्मके समर्थ लेखक और आचार्योंकी जातिकी तरफ दृष्टि करते हैं तो अधिकांश ब्राह्मण जाति ही के ऐसे सरस्वती-वर-लब्ध पुत्र उत्पन्न किये हुए दिखाई देते हैं। निःसंशय ब्राह्मण जातिने जगतके अज्ञानका नाश करनेमें सर्वाधिक श्रेष्ठ कार्य किया है। और इसी कार्यके लिये यदि वह जगत्के ऊपर अपने पूज्यत्वका अधिकार सदैवके लिये रखे तो उसमें उसकी कोई अनुचितता नहीं है।

सिद्धसेन सूरिके बाद, दिगम्बर संप्रदायमें, उनके ही जैसे प्रतिभाशाली और प्रतापवान् आचार्य स्वामी समन्तभद्र हुए। समन्तभद्रके समयका अनुमान किया जाय ऐसा कोई भी विशिष्ट प्रमाण अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है, और न कोई वैसी विश्वसनीय जीवनकथा ही उनके बारेमें दृष्टिगोचर होती है। इस लिये वे कब हुए इस बारे में कुछ भी नहीं कह सकते। दिगम्बर पट्टावलियोंकी गणनानुसार विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें उनका अस्तित्व बताया जाता है। हमने इस विषयमें अभीतक कुछ भी विशेष विचार नहीं किया है। हम जो कुछ ऊपर ऊपरसे अनुमान कर सके हैं उसका सार इतना ही है कि सिद्धसेनके बाद थोडे ही समयमें समन्तभद्र हुए होंगे। इन दोनों की लेखशैली, विचारशैली और भाषाशैली बहुत कुछ मिलती जुलती है। भेद है तो केवल इतना ही है कि सिद्धसेनकी कृतियोंमें गूढार्थता अधिक है और समन्तभद्रकी कृतियों में स्पष्टार्थता।

इन दोनों आचार्योंके जीवनवृत्तांत-संबंधमें जो दंतकथायें पिछले जैनग्रंथोंमें देखी जाती हैं उनमें भी लगभग एक ही बात, कुछ थोडेसे फेरफारके साथ, कही हुई है। सिद्धसेनके बारेमें लिखा हुआ है कि, उन्होंने अवन्ती (उज्जैनी) के राजा विक्रमादित्यके अत्याग्रह करनेसे, वहांके जगत्प्रसिद्ध महाकालेश्वरकी स्तुति करनी शुरू की जिसके प्रभावको महाकालेश्वरका महालिंग सहन न कर सकनेके कारण उसके टुकडे टुकडे हो गये और फिर उसमेंसे जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रकट हुई। इससे राजा बडा आश्चर्य चकित हुआ और सिद्धसेनके पादतलमें मस्तक रख कर उनको अपना गुरु बनाया।

इधर, समन्तभद्रकी कथामें भी इसके जैसी ही बात लिखी मिलती है। उन्होंने वाराणसी (काशी) के राजा शिवकोटिके आग्रह करने पर वहां के विश्वविख्यात विश्वेश्वर महादेवकी जब स्तवना करनी

प्रारंभ की तो उसके सामर्थ्यसे विश्वेश्वरका महालिंग फट कर उसमेंसे चतुर्मुख जैनमूर्ति प्रकट हुई! समन्तभद्रके इस प्रभावसे मुग्ध हो कर वह राजा उनका शिष्य बन गया!।

मालूम नहीं इन दतकथाओंमें कितना तथ्य है। इनके आकार-प्रकारसे तो विद्वानोंको ऐसाही भास हो सकता है कि केवल इन आचार्योंकी महिमा बढाने के लिये ये कथायें मनगढन्त बना ली गई हैं, और सिद्धसेनकी कथा ही में कुछ नाम परिवर्तन कर समन्तभद्रको भी लागू कर दी गई है। परन्तु संभव है कि इनमें कुछ ऐतिहासिक सत्यांश भी हो। सिद्धसेनने अवन्तीकी और समन्तभद्रने काशीकी ब्राह्मण-परिषदमें—जिस तरह न्यायाचार्य यशोविजयजीने काशीकी विद्वत्सभामें विजय प्राप्त किया था वैसे--दार्शनिक वाद-विवाद कर विजय प्राप्त किया हो, और उसके स्मरणार्थ उन उन स्थानोंमें जैन मंदिरोंकी प्रतिष्ठा करवा कर जैन धर्मका खूब जयजयकार करवाया हो। ऐसी बातें समय समय पर अनेक जगह होती रही हैं, इस लिये सिद्धसेन और समन्तभद्रके समयमें भी ऐसी ही कोई बात बनी हो और उसीको लेकर ऊपर्युक्त दंतकथा--अर्द्धसत्य-मिश्रित होकर--प्रचलित हो गई हो, तो उसमें कोई असंभवनीयता नहीं है। अवन्ती और वाराणसी ये दोनों नगरियां प्राचीन कालसे ब्राह्मणोंकी राजधानियांसी बनी हुई हैं। उस समयमें जितने बडे बडे दिग्गज विद्वान् हुआ करते थे वे अवश्य इन क्षेत्रोंकी यात्रा किया करते थे और वहांके विद्वत्समाजोंमें भिन्न भिन्न विषयोंपर शास्त्रार्थ कर अपने पाण्डित्यका प्रमाणपत्र तथा वियजपताका प्राप्त कर कृतकृत्य होते थे। सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों बडे प्रखर वाग्मी और प्रचण्ड वादी थे इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। उनकी ऐसी प्रसिद्धि तब ही हो सकी होगी जब उन्होंने अवन्ती और वाराणसी जैसी सरस्वतीके वरपुत्रोंकी वासभूमिमें जा कर वहांके दिग्गज विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ कर महती प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी। इसलिये इन दन्तकथाओंमें कुछ सत्यांश अवश्य होना चाहिए, ऐसा अनुमान करनेकी तरफ हमारी चित्तवृत्ति सहज खींची जाती है।

सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों महाकवि और महावादी थे। उनका महाकवित्व तो उनकी चिरंजीव कृतियोंमें स्पष्ट प्रतिभासित हो रहा है और महावादित्वका अनुमान उनकी कृतियोंमें कूट कूट कर भरे हुए पाण्डित्यको देख कर सहज किया जा सकता है। इन प्रवादि-करि-केशरियोंने अपने जीवनमें कहां कहां पर किन किन विद्वानोंके साथ वाद-विवाद कर दिग्विजयिपना प्राप्त किया था इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। सिद्धसेनकी कथाओंमें, उनके मालव देशमें विचरण के साथ दक्षिण देशमें विचरण करनेका भी उल्लेख किया हुआ है, इस लिये इन देशोंमें तो उनके पाण्डित्यके प्रकाश-किरण सर्वत्र अवश्य फैले ही होंगे। अन्य देशोंके विषयमें कुछ नहीं कह सकते। समन्तभद्रके दिग्विजयका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। दक्षिणके प्रसिद्ध दिगम्बर जैन तीर्थस्थल श्रवणबेलगोलाके विन्ध्यगिरि पर्वत ऊपर एक मन्दिरमें 'मल्लिषेण प्रशस्ति' नामका एक बहुत बडा शिलालेख है। इस लेखमें समन्तभद्रके परिचायक कुछ प्राचीन पद्य उत्कीर्तित हैं जिनमेंसे निम्न लिखित पद्यमें उनके दिग्विजय-क्षेत्रका अच्छा उल्लेख किया हुआ है।--

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुढक्कविषये काञ्चीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं सङ्कटम्
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्॥

इस पद्यमें समन्तभद्र को स्वयं अपने मुखसे किसी एक राजाकी सभामें यह बात कहते हुए बताये गये हैं कि, उन्होंने कौनसे कौनसे देशोंमें वाद-विवाद कर विजयपताका प्राप्त की है। पद्यका अर्थ इस प्रकार है:—

१ आजकल जैसे निरक्षर भट्टाचार्य भी 'शास्त्रविशारद' और 'व्याख्यानवाचस्पति' अपने आपको बडे धार्ष्ट्य के साथ कहलाते फिरते हैं, वैसे धृष्ट उस जमानेमें नहीं होते थे। और यदि कोई मूर्ख वैसा करनेका साहस कर भी लेता तो तीसरे ही दिन लोग उसके दंड-कमंडलु छीन कर, लंगोटीभर बहिष्कृत कर देते थे।

" पहले मैंने पाटलीपुत्र नगर (पटना) में वादकी भेरी बजाई, फिर मालवा, सिन्धु देश, ढक्क (ढाका—बंगाल), काञ्चीपुर और वैदिश (भिलसेके आसपासका देश) में भेरी बजाई। और अब बडे बडे विद्वान् वीरोंसे भरे हुए इस करहाटक (कराड, जिला सतारा) नगरको प्राप्त हुआ हूं। इस प्रकार हे राजन्, मैं वाद करनेके लिये सिंहके समान इतस्ततः क्रीडा करता फिरता हूं ।"

इस उल्लेखसे जाना जाता है कि समन्तभद्र स्वामी भारतके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण: सब ही खण्डोंमें घूमे थे और सब देशोंके विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्मकी विजय-दुन्दुभि बजवाई थी।

समन्तभद्र स्वामीकी कृतियोंके देखनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसूरिने अपनी कृतियोंमें जो बात संक्षेपसे सूचित की है, समन्तभद्रने उसीको व्यवस्थितरूपमें विस्तारके साथ वर्णन की है। सिद्धसेन अपने ग्रंथमें प्रमाण और नयके लक्षण स्थिर मात्र कर गये थे; समन्तभद्रने अपने ग्रंथमें उनके अनुसार मीमांसा कर उन्हें सफल, संगत और सिद्ध कर दिखाये। सिद्धसेनने आप्त-पुरुषके बारेमें संक्षिप्त और प्रकीर्ण विचार प्रदर्शित किये थे; समन्तभद्रने उन्हीं विचारोंको विस्तृत और क्रमबद्ध रूपमें ग्रथित कर संपूर्णरूपसे आप्तकी मीमांसा की। इस प्रकार, सिद्धसेनने जैन धर्मके तत्त्वज्ञानको अंकुरित होनेमें जलसिंचनका काम किया; तो समन्तभद्रने उसको स्वच्छंद और निर्भय रीतिसे ऊंचे बढनेमें कांटोंकी बाडका काम किया। इन्हीं दो महापुरुषोंके सुप्रयत्न और स्तुत्य जीवनसे जैनदर्शन सजीवन रहा और इन्हीं के बताये हुए मार्गका अवलंबन कर, पिछले समर्थ आचार्योंने (जिनमेंसे कितने एकके नाम हम इस लेखके प्रारंभहीमें लिख आये हैं) उसे खूब पल्लवित किया।

सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंके समान समन्तभद्राचार्यकी कृतियोंका भी, पिछले आचार्योंने बडा गौरव किया। उनपर संक्षिप्त और विस्तृत ऐसे अनेक भाष्य-टीका आदि लिख कर उनकी खूब प्रतिष्ठा बढाई। समन्तभद्रकी कृतियोंमें सबसे अधिक मान 'आप्तमीमांसाको' मिला है। यह दिखनेमें ११४ श्लोकोंका एक छोटासा ग्रंथ मालूम देता है, पर इसका गांभीर्य इतना है कि, इसपर सैंकडों-हजारों श्लोकोंवाले बडे बडे गहन भाष्य-विवरण आदि लिखे जाने पर भी विद्वानोंको यह दुर्गम्यसा दिखाई देता है।

सबसे पहले इसपर महान् तार्किक भट्ट अकलंक देवने अष्टशती (आठ सौ श्लोक परिमाणवाला) नामका अल्पाक्षर और बह्वर्थवाला गंभीर भाष्य लिखा। इस भाष्यके ऊपर प्रचण्ड विद्वान् आचार्य विद्यानन्दीने अष्टसहस्री (आठ हजार श्लोक प्रमाण) नामक विशद व्याख्या बनाई। समुच्चय संस्कृत साहित्यमें भिन्न भिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों-विचारोंकी आलोचना-प्रत्यालोचना करनेवाला यह एक महान् और प्रौढ ग्रंथरत्न है। इसमें ब्राह्मण और बौद्ध धर्मके सब ही तात्त्विक संप्रदायोंके तत्त्व-विचारोंका बडा मार्मिक और युक्तिपूर्ण पद्धतिसे खण्डन-मण्डन किया गया है। और अन्तमें जैन धर्मका स्याद्वाद-सिद्धान्त कितना प्रमाणयुक्त और अखण्डनीय है, यह विचार बडे गौरवके साथ सिद्ध किया गया है।

इस ग्रंथकी महत्ताका पता इतने हीसे लग जायगा कि, श्वेताम्बर संप्रदायके महान् नैयायिक और समर्थ ग्रंथकार उपाध्याय यशोविजय जैसे पूर्ण सांप्रदायिक विद्वानने भी, इस कृतिके गांभीर्यसे मुग्ध हो कर, इस पर, मूल ग्रंथके जितनी ही श्लोक प्रमाण (अर्थात् आठ हजार श्लोकवाली) और उतनी ही प्रौढ टिप्पणी लिखी है। और इस

१ विद्वद्रत्नमाला (श्रीनाथूरामप्रेमी लिखित), पृ. १६९

१ आकलूज निवासी सेठ नाथारंगजी गान्धीने पं. वंशीधर जी शास्त्रीद्वारा संशोधित करवा कर जो अष्टसहस्री छपवाई है उसके साथ यदि यशोविजयजीकी यह टिप्पणी भी (टिप्पणी क्या टीकाकी भी टीका) छपवा दी जाती तो 'सोनेमें सुगन्ध' आ जाती। हमें इस बातका पता नहीं लगा कि शास्त्री वंशीधरजीने अपनी अष्टसहस्रीकी भूमिकामें इस महती टिप्पणीका नामोल्लेख तक क्यों नहीं किया। क्या उन्हें इसका अस्तित्व मालूम नहीं था अथवा अन्य किसी कारणसे वैसा नहीं कर सके ?।

प्रकार 'अष्टसहस्री' को 'षोडशसहस्री' बना कर उसके महत्त्वको द्विगुणित कर दिया है। संपूर्ण जैन साहित्यमें यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिस पर, दूसरे संप्रदायके एक ऐसे विद्वान्ने व्याख्या लिखी है, जो योग्यतामें मूल कर्तासे रत्तीभर भी न्यून नहीं हो कर, सर्वथा सांप्रदायिक-भावका पूर्ण समर्थक था।

समन्तभद्र स्वामीके इन महान् टीकाकारोंके सिवा जिनसेन, वादीभसिंह, वीरनन्दी, शुभचन्द्राचार्य इत्यादि अन्यान्य सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध दिगम्बर ग्रंथकारोंने भी उनके कवित्व, वाग्मित्व और पाण्डित्यकी भूरि भूरि प्रशंसा और स्तुति की है। और सभीने उनको जैन धर्मका एक महान् संरक्षक और समर्थक रूपमें स्वीकृत किया है।

राष्ट्रकूट वंशीय प्रतापी नृपति महाराजा अमोघवर्षके परमगुरु और सुप्रसिद्ध महापुराण आदिपुराणके कर्ता महाकवि जिनसेनने अपने पुराणकी प्रस्तावनामें स्वामी समन्तभद्रकी प्रशंसा करते हुए निम्नगत उद्गार प्रकट किये हैं--

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे ।
यद्वचोवज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः ॥
कवीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि ।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥

हरिवंश महापुराणके प्रणेता जिनसेन (प्रथम) ने भी स्वकीय पुराणके प्रारंभमें समन्तभद्रके वचनको भगवान् महावीरके वचनतुल्य लिखा है। यथा-

जीवसिद्धिं विधायेह कृतयुक्त्यनुशासनम् ।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥

गद्यचिन्तामणि नामक सुप्रसिद्ध गद्यकाव्यके रचयिता महाकवि वादीभसिंहने समन्तभद्रके वचनस्वरूप वज्रपातके कारण परवादीरूप करोडों पर्वत चूरचूर हो गये बतलाये हैं। यथा--

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः
समन्तभद्रप्रमुखा मुनीश्वराः ।
जयन्तु वाग्वज्रनिपातपाटित-
प्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥

अध्यात्मज्ञानके समुद्रस्वरूप ज्ञानार्णव ग्रन्थके निर्माता आत्मज्ञानी शुभचन्द्रने समन्तभद्रके कृतिस्वरूप सूर्यके सम्मुख अपनी कृतिको खद्योततुल्य उपहासपात्र लिख कर समन्तभद्रके वचनोंकी महत्ता प्रकट की है ---

समन्तभद्रादिकवीन्द्रभास्वतां
स्फुरन्ति यत्रामलसूक्तरश्मयः ।
व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यतां
न तत्र किं ज्ञानलवोद्धता जनाः ॥

चन्द्रप्रभचरितके कर्ता महाकवि वीरनन्दीने, मोतियोंके बने हुए हारसे कंठको विभूषित करना दुर्लभ नहीं है, परन्तु समन्तभद्रके वचनरूप मुक्ताफलसे गूंथे हुए काव्यस्वरूप हारसे कंठको अलंकृत करना परम दुर्लभ बतलाया है—

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका
नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता ।
न हारयष्टिः परमेव दुर्लभा
समन्तभद्रादिभवा च भारती ॥

इसी प्रकार और भी अनेकानेक ग्रन्थकारोंने विविध प्रकारसे समन्तभद्र स्वामीकी स्तवना और प्रशंसा की है। इतना गौरव शायद ही अन्य किसी आचार्यका किया गया हो।

* * *

दिगम्बर विद्वानोंने तो समन्तभद्र स्वामीको इस प्रकार अपना प्रमाणभूत पुरुष माना ही है परंतु श्वेतांबर विद्वानोंने भी उनकी प्रामाणिकाग्रगण्यताको खुले दिलसे स्वीकार किया है। हरिभद्र, वादी देव, हेमचन्द्र और मलयगिरि जैसे श्वेताम्बरशिरोमणि सूरियोंने भी प्रसंगोपात्त उनकी कृतिका उल्लेख या अवतरण कर उन्हें एक प्रमाणभूत पुरुषकी कोटिमें स्थान दिया है। हरिभद्रसूरिने उनको 'वादिमुख्य' के महत्त्व-सूचक विशेषणसे सम्बोधित किया है और अनेकान्तजयपताकामें निम्न लिखित दो श्लोक इनके नामसे उद्धृत किये हैं। यथा—

आह च वादिमुख्यः समन्तभद्रः[1]—

' बोधात्मा चेच्छब्दस्य न स्यादन्यत्र तच्छ्रुतिः ।

यद्बोद्धारं परित्यज्य न बोधोऽन्यत्र गच्छति ॥

न च स्यात्प्रत्ययो लोके यः श्रोत्रा न प्रतीयते ।

शब्दाभेदेन सत्येवं सर्वः स्यात्परचित्तवत्* ' ॥

अनेकान्तजयपताका पृ. ४३ (अमदाबाद)।

आचार्यवर्य हेमचंद्रने अपने सिद्धहैमशब्दानुशासन नामक व्याकरणके प्रारंभमें, दूसरे सूत्रकी व्याख्यामें ' स्तुतिकारोऽप्याह ' ऐसा उल्लेख कर निम्न गत स्तुतिपद्य उद्धृत किया है जो इन्हीं समन्तभद्र स्वामीका बनाया हुआ है और बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रमें उपलब्ध होता है । पद्य यह है—

नयास्तव स्यात्पदलाञ्छना इमे

रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।

भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो

भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥

यही पद्य मलयगिरिसूरिने आवश्यकसूत्रकी अपनी अपूर्ण टीकामें, ' आद्यस्तुतिकारोऽप्याह '— आद्य---प्रथम स्तुतिकार भी कहते हैं–ऐसा उल्लेख कर, उध्दृत किया है । इस उल्लेखसे स्पष्ट जाना जाता है कि ये प्रसिद्ध स्तुतिकार माने जाते थे इतना ही नहीं परंतु आद्य---सबसे पहले होने वाले—स्तुतिकारका मान प्राप्त थे।हरिभद्रादि श्वेताम्बराग्रणी आचार्योंने सिद्धसेन दिवाकरको भी वादिमुख्य और स्तुतिकारके विशेषणोंसे उल्लिखित किया है; और उपर्युक्त प्रमाणानुसार समन्तभद्र स्वामिको भी इन्हीं विशेषणोंसे अलंकृत किया है । इससे यही अनुमान हो सकता है कि श्वेताम्बरोंकी दृष्टिमें सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों समान पूज्य और समान सत्कारास्पद हैं । इधर, सिद्धसेन सूरिको भी जिस प्रकार श्वेताम्बराचार्योंने अपना श्रद्धास्पद और प्रमाणभूत पुरुष माना है, वैसे, जैसा कि हम ऊपर सप्रमाण लिख आये हैं, दिगम्बराचार्योंने भी उन्हें अपना स्तुतिपात्र और शिरसावंद्य माना है; अतः दिगम्बरोंकी दृष्टिमें भी सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों समान गुणगणालंकृत हैं । इससे यह स्वतः सिद्ध हो गया कि, समग्र जैनसमाज और जैन साहित्यमें इन दोनों महापुरुषोंका ज्ञानप्रभान्वित, सत्त्वपरिपूर्ण और निर्ग्रन्थगणवन्द्य सिंहासन, समान स्थान और समान रूपमें संस्थापित है ।

१ ' समन्तभद्र ' यह नाम टीकामें लिखा है, जो स्वयं ग्रंथकार ही की बनाई हुई है । मूलमें केवल ' वादिमुख्य ' विशेषण ही का उल्लेख है ।

* शान्त्याचार्य विरचित प्रमाणकलिका और वादी देवसूरि रचित स्याद्वादरत्नाकरमें भी ये दोनों श्लोक समन्तभद्रके नामसे अवतारित हैं । जहां तक हम जान सके, समन्तभद्रकी उपलब्ध कृतियोंमेंसे किसीमें भी ये श्लोक नहीं पाये जाते । इस लिये, यह स्पष्ट मालूम पडता है कि स्वामीकी केवल इतनी ही कृतियें नहीं है जो अभीतक जानी गई हैं । इनके सिवा, और भी कृतियें होनी चाहिएं जो अद्यापि अज्ञात या अप्राप्य हैं ।

॥ अर्हम् ॥

हरिभद्रसूरिका समय-निर्णय।

जैन धर्मके श्वेताम्बर संप्रदायमें हरिभद्र नामके एक बहुत प्रसिद्ध और महान् विद्वान् आचार्य हो गये हैं। उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषामें धर्म-विचार और दर्शनिक विषयके अनेक उत्तमोत्तम और गभीरतत्त्व-प्रतिपादक ग्रंथ लिखे हैं। इन ग्रंथोंमें सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, अद्वैत, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि सब ही दर्शनों और मतोंकी उन्होंने अनेक तरहसे आलोचना—प्रत्यालोचना की है। इस प्रकारके भिन्न भिन्न मतोंके सिद्धान्तोंकी विवेचना करते समय, अपने विरोधिमतवाले विचारकोंका भी गौरवपूर्वक नामोल्लेख करनेवाले और समभावपूर्वक मृदु और मधुर शब्दों द्वारा विचार-मीमांसा करनेवाले ऐसे जो कोई विद्वान् भारतीय साहित्यके इतिहासमें उल्लेख किये जाने योग्य हों तो उनमें हरिभद्रका नाम सबसे पहले लिखने योग्य है।

यों तो जैन इतिहासके पुरातन साधनोंको देखनेसे, उनमें हरिभद्र नामके अनेक आचार्योंके हो जानेका पता मिलता है; परंतु जिनको उद्देश्य करके हमने इस निबन्धके लिखनेका प्रारंभ किया है, उन्हें सबसे पहले होनेवाले—अर्थात् प्रथम हरिभद्र समझना चाहिए। हमारे आजके इस लेखका उद्देश्य इन्हीं प्रथम हरिभद्र सूरिके अस्तित्व-समयका विचार और निर्णय करना है।

हरिभद्र-सूरिका प्रादुर्भाव जैन इतिहासमें बडे महत्त्वका स्थान रखता है। जैन धर्मके—जिसमें मुख्य कर श्वेताम्बर संप्रदायके—उत्तरकालीन (आधुनिक) स्वरूपके संगठन-कार्यमें उनके जीवनने बहुत बडा भाग लिया है। उत्तरकालीन जैन साहित्यके इतिहासमें वे प्रथम लेखक माने जाने योग्य हैं, और जैन समाजके इतिहासमें, नवीन संगठनके एक प्रधान व्यवस्थापक कहलाने योग्य हैं। इस प्रकार, वे जैनधर्मके पूर्वकालीन और उत्तरकालीन इतिहासके मध्यवर्ती सीमास्तंभ समान हैं। उनके समयका यथार्थ निर्णय हो जाने पर, समुच्चय जैन इतिहासके सूत्र-पुंजकी एक बहुत बडी गांठ सुलझ सकेगी। केवल जैन साहित्य और समाजके इतिहास ही की दृष्टिसे हरिभद्रके जीवन-समयके निर्णयकी उपयोगिता है, यह बात नहीं है; परंतु भारतवर्षके कई जैनेतर धर्मधुरन्धर आचार्यों तथा गीर्वाणगिराके कई प्रतिष्ठित लेखकोंके समय-विचारकी दृष्टिसे भी उसकी बहुत उपयोगिता है।

जैसा कि हमने प्रारंभ ही में सूचित किया है, हरिभद्र एक बहुत बडे दार्शनिक विद्वान् थे और इस विषयके उन्होंने अनेक उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे हैं। इन ग्रंथोंमें उन्होंने भारतके वैदिक, बौद्ध और चार्वाक आदि सभी मतोंके पुरातन और प्रसिद्ध प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ताओंके तात्त्विक विचारोंकी जगह जगह आलोचना प्रत्यालोचना की है। इस कारण, हरिभद्रके समय-निर्णयसे उनके पूर्ववर्ती उन अन्य दार्शनिकोंके समयके बारेमें भी बहुतसी ज्ञातव्य और निर्णायक बातें मिल सकती हैं; और आजतक जो कितनीएक परस्पर विरुद्ध ऐसी आनुमानिक बातें पुरातत्त्वज्ञोंके मनको शंकाशील और चिन्तापूर्ण बनाए रहीं हैं, उनके लिये, एक और नई दिशामें प्रयत्न कर सन्दिग्ध सिद्धान्तोंके पुनर्विचारका नया मार्ग मिल सकता है।

युरोपियन स्कॉलरोंमेंसे शायद सबसे पहले प्रो. पिटर्सनने अपनी ४ थी रिपोर्टमें[2] 'उपमितिभव-

१ देखो, प्रोफेसर पिटर्सन साहबकी, बंबई इलाखेमें हस्तलिखित पुस्तकोंके शोधके बारेमें लिखी हुई, ४ थी रीपोर्ट, पृष्ठ (परिशिष्ट), १३७; तथा पं. हरगोविन्ददास लिखित, संस्कृत 'हरिभद्रसूरिचरित्रम्,' पृष्ठ १।

२ देखो, रिपोर्ट, पृष्ठ ५; तथा परिशिष्ट (Index of Authors) पृष्ठ ७९.

प्रपञ्चा कथा ' नामक धार्मिक नीतिके स्वरूपको अनुपम रीतिसे प्रदर्शित करनेवाले संस्कृत साहित्यके एक सर्वोत्तम ग्रंथके रचयिता जैन साधु सिद्धर्षिका परिचय लिखते हुए, साथमें इन हरिभद्र सूरिके समयका भी उल्लेख किया था। इसके बाद डॉ. क्लाट (Klatt), प्रो० ल्युमन (Leumann) जेकोबी (Jacobi), बेलिनी (Ballini) और मिरोनौ (Mironov)[६] आदि अन्य विद्वानोंने भी प्रसंगवशात् अपने अपने लेखोंमें इस विषयका यथासमय थोडा बहुत विचार किया हुआ दिखाई देता है। परंतु इन सबमें जैनधर्मके विशिष्ट अभ्यासी डॉ. जेकोबीका परिश्रम विशेष उल्लेखके योग्य है। उन्हीं ही ने सबसे पहले हरिभद्रके समयका निर्देश करनेवाले पुरातन कथनके सत्य होनेमें सन्देह प्रकट किया था। सन् १९०५ में भावनगर (हाल बाम्बई) निवासी जैन गृहस्थ मि. एम्. जी. कापडिया, सोलीसिटर, के कुछ प्रश्न करने पर उक्त डॉ. साहबने, इस विषयमें फिर विशेष ऊहापोह करना शुरू किया,[७] और अन्तमें अपने शोधके परिणाममें जो कुछ निष्कर्ष मालूम हुआ, उसको, उन्होंने 'बिब्लीओथिका इंडिका ' में प्रकाशित उपमितिभवप्रपञ्चा कथाकी प्रस्तावनामें लिपिबद्ध कर प्रकट किया। इसी बीचमें डॉ. सतीशचंद्र विद्याभूषण महाशयकी 'मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास ' (History of the Mediaval school of Indian Logic. नामक उपयुक्त पुस्तक प्रकट हुई। इस पुस्तकमें अन्यान्य प्रसिद्ध जैन नैयायिकोंके समान हरिभद्रके समयके विषयमें भी विद्याभूषणजीने अपना विचार प्रदर्शित किया है। परंतु १२ वीं शताब्दीमें होने वाले इसी नामके एक दूसरे आचार्यके साथ इनकी कुछ कृतियोंका सम्बन्ध लगा कर इस विषयमें कुछ और उलटी गडबड फैलानेकी चेष्टाके सिवा अन्य अधिक वे कुछ नहीं कर सके। प्रस्तुत हरिभद्र के उन प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथोंका, जिनका निर्देश आगे पर किया जायगा, नामोल्लेख तक भी विद्याभूषणजी अपनी इस पुस्तकमें नहीं कर सके! इससे यह ज्ञात होता है कि उनको हरिभद्रके विशाल साहित्यका कुछ भी हाल मालूम नहीं हो सका। तदनन्तर रशियन विद्वान् डॉ. मीरोनौ ने भी अपने 'दिग्नागका न्यायप्रवेश और उसपर हरिभद्र की टीका ' इस शीर्षक लेख में, (जो बनारसके जैनशासन नामक एक सामयिक पत्रके विशेषांकमें छपा है) प्रस्तुत प्रश्न के सम्बन्धमें कुछ मीमांसा की है।

यद्यपि डॉ. जेकोबीने, जैसाकि ऊपर लिखा गया है, इस विषयमें कुछ विशेष ऊहपोह कर महत्त्वके मुद्दोंका विचार किया है, तथापि हरिभद्रके सब ही ग्रंथोंका सूक्ष्मदृष्टिसे अवलोकन कर उनमें मिलते हुए आंतर प्रमाणोंके खोजनेकी उन्होंने बिल्कुल चेष्टा नहीं की, और इस लिये वे अपने मंतव्यके समर्थनार्थ निश्चयात्मक ऐसे कुछ भी प्रमाण नहीं दे सके। इस प्रकार यह प्रश्न अभी तक विना हल हुए ही जैसा का वैसा संशयात्मक दशामें विद्यमान है। आजके इस लेखका उद्देश, हरिभद्रके ग्रंथसमूहका ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर उनमेंसे मिलते हुए आंतर प्रमाणोंके आधार पर तथा और भी बाह्य प्रमाण जितने मिल सके हैं उन सबका ठीक ठीक विचार कर, इस प्रश्न का निराकरण करना है।

हरिभद्रसूरिके समयका निर्णय, मुख्य कर उनके बनाये हुए ग्रंथोंमेंसे मिलते हुए साधक-बाधक ऐसे आंतर प्रमाणोंके ऊपर आधार रखता है। इस

---

३ Klatt, Onomasticon.

४ Zeitschrift der Deutschen Morgenland, Gesellschaft, XLIII, A. p. 348.

५ Ballini, Contributo allo studio della upo Katha etc. (R Acad dei Lincei, Reudiconti XV ser. 5, a sec. 5, 6, 12, p. 5.

६ ' जैन शासन ' दीवालीनो खास अंक '

७ डॉ. जेकोबी और मि. कापडियाके बीचमें जो पत्रव्यवहार इस विषयमें हुआ था, वह बम्बईसे प्रसिद्ध होनेवाले ' जैन श्वेताम्बर कान्फरन्स हेरल्ड ' नामक पत्रके ई. स. १९१५के जुलाई-आक्टोबर मासके संयुक्त अंकोंमें प्रकट हुआ है।

लिये प्रथम हम यहां पर, उनके कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रंथोंकी नामावली दे देते हैं। हरिभद्रसूरिने अपने जीवनमें जैन साहित्यको जितना पुष्ट किया है उतना अन्य किसीने नहीं किया। उनके बनाये हुए ग्रंथोंकी संख्या बहुत ही बडी है। पूर्वपरंपराके कथनानुसार, वे १४०० या १४४० अथवा १४४४ ग्रंथोंके प्रणेता बतलाये जाते हैं[८]! यह संख्या हमारे जैसे आजकलके मनुष्योंको बहुत ही अधिक और अतएव अतिशयोक्ति पूर्ण मालूम देती है; परंतु साथमें यह बात भी अवश्य खयालमें रखने लायक है, कि इस संख्याके सूचक उल्लेख ८ सौ ९ सौ जितने वर्षोंसे भी अधिक पुराणे मिलते हैं। इस संख्याका अर्थ चाहे जैसा हो; परंतु इतना बात तो पूर्ण सत्य है कि वर्तमानमें जितने ग्रंथ जैन साहित्यमें हरिभद्रके नामसे प्रचलित और प्रसिद्ध हैं, उतने अन्य किसीके नामसे नहीं। और यही एक बात उनके अपारमित ग्रंथकर्तृत्वकी पुष्टिमें स्पष्ट प्रमाण-स्वरूप है। वर्तमानमें उपलब्ध होनेवाले उनके ग्रंथोंमेंसे विशेष प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित और प्रौढ ग्रंथोंके नाम इस प्रकार हैं:—

१ अनेकान्तवाद प्रवेश।
२ अनेकान्तजयपताका स्वोपज्ञवृत्ति सहित।
३ अनुयोगद्वार सूत्रवृत्ति।
४ अष्टकप्रकरण।
५ आवश्यकसूत्रबृहद्वृत्ति।
६ उपदेशपदप्रकरण।
७ दशवैकालिकसूत्रवृत्ति।
८ दिग्नागकृत न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति।
९ धर्मबिन्दुप्रकरण।
१० धर्मसंग्रहणीप्रकरण।
११ नन्दीसूत्रलघुवृत्ति।
१२ पञ्चाशकप्रकरण।
१३ पंचवस्तुप्रकरणटीका।
१४ पंचसूत्रप्रकरणटीका।
१५ प्रज्ञापनासूत्रप्रदेशव्याख्या।
१६ योगदृष्टिसमुच्चय।
१७ योगबिन्दु।
१८ ललितविस्तरा नामक चैत्यवन्दनसूत्रवृत्ति।
१९ लोकतत्त्वनिर्णय।
२० विंशतिकाप्रकरण।
२१ षड्दर्शनसमुच्चय।
२२ शास्त्रवार्तासमुच्चय, स्वकृतव्याख्यासहित।
२३ श्रावकप्रज्ञप्ति।
२४ समराइच्चकहा।
२५ सम्बोधप्रकरण।
२६ सम्बोधसप्ततिकाप्रकरण।

हरिभद्रसूरिके बनाये हुए ग्रथोंकी संख्या इतनी विशाल होने पर भी, उसमें कहीं पर, उनके जीवनके सम्बन्धमें कुछ भी विशेष बात लिखी हुई नहीं मिलती। भारतके अन्यान्य प्रसिद्ध विद्वानोंकी तरह उन्होंने भी अपने ग्रंथोंमें, अपने जीवनसंबंधी किसी प्रकारका उल्लेख नहीं किया। लिखनेमें मात्र अपने संप्रदायका, गच्छका, गुरुका और एक विदुषी धर्मजननी आर्याका नाम कई जगह लिखा है। यह भी एक सौभाग्यकी बात है। क्यों कि दूसरे ऐसे अनेक विद्वानोंके बारेमें तो इतना भी उल्लेख नहीं मिलता। हरिभद्रके किये हुए इन गुर्वादिके नामोंके उल्लेखानुसार, उनका संप्रदाय श्वेताम्बर था। गच्छका नाम विद्याधर, गच्छपति आचार्यका नाम जिनभट, दीक्षाप्रदायक गुरुका नाम जिनदत्त, और धर्मजननी साध्वीका नाम याकिनी महत्तरा था। इन सब बातोंका उल्लेख, उन्होंने एक ही जगह, आवश्यकसूत्रकी टीकाके अंतमें इस प्रकार किया है:—

" समाप्ता चेयं शिष्यहिता नामावश्यकटीका। कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभटनिगदानुसारिणो विद्याधरकुलतिलकाचार्यजिनदत्तशिष्यस्य धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनोरल्पमतेराचार्यहरिभद्रस्य [१०]। "

८ इस विषयके उल्लेखोंके लिये देखो पं. श्रीहरगोविन्ददास लिखित संस्कृत 'हरिभद्रसूरिचरित्रम्।' पृष्ठ १६-२०।

९ हरिभद्रसूरिके उपलब्ध सब ही ग्रथोंके नामसंग्रहके लिये, देखो, जैन ग्रंथावली, पृ. ९८–१०३; तथा उक्त पंडित लिखित हरिभद्रसूरिचरित्र, पृ. २०–३०।

१०. देखो, पिटर्सन साहबकी ३ री रिपोर्ट, पृष्ठ २०१; तथा ४ थी रिपोर्ट, परिशिष्ट, पृष्ठ ६७। वेबर साहबकी बर्लिनकी रिपोर्ट, पुस्तक २, पृष्ठ ७८६।

[टिप्पणी—हरिभद्रसूरिके गुरुके नामके सम्बन्धमें डॉ. जेकोबी और अन्य कई विद्वानोंको एक खास भ्रम हो रहा है। वे हरिभद्रके गुरुका नाम जिनभद्र या जिनभट समझते है। डॉ. जेकोबीने, जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटीके, ४० वें जर्नल (पुस्तक) में, पृ. ९४ पर, यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि, आचाराङ्गसूत्रकी टीका बनानेवाले आचार्य शीलाङ्क और हरिभद्र दोनों गुरुबन्धु थे—एक ही गुरुके शिष्य थे। क्यों कि दोनोंके गुरुका नाम जिनभद्र या जिनभट है। और इसी लिये वे दोनों समकालीन भी थे। परंतु उनका यह कथन ठीक नहीं है। क्यों कि इस आवश्यक सूत्रकी टीकाके अन्तिम वाक्यसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि हरिभद्रके दीक्षाप्रदायक गुरु तो विद्याधर गच्छीय आचार्य जिनदत्त थे। जिनभट सूरि या तो हरिभद्रके विद्यागुरु होंगे या अन्य किसी कारणसे उन्हें वे अपने विशेष पूज्य समझते होंगे। इसी लिये, इस उपर्युक्त वाक्यमें उन्होंने प्रथम जिनभटका नामोल्लेख किया है और अपनेको उनका आज्ञाधारक (–निगदानुसारिणो) बतलाया है। इस प्रकार जिनभट और जिनदत्त दोनों हरिभद्रके समान पूज्य होनेके कारण कहीं तो उन्होंने जिनदत्त सूरिका (जैसा कि समराइच्चकहाके अंतमें) उल्लेख किया है और कहीं जिनभट सूरिका। (देखो, प्रज्ञापनासूत्रवृत्तिका अन्तिम पद्य; किल्हॉर्न साहबकी रिपोर्ट, पृ. ३१)। प्रभावक चरित्र आदि ग्रंथोंमें यद्यपि हरिभद्रके गुरुका नाम मात्र जिनभट ही लिखा हुआ मिलता है, परंतु उसके कथनकी अपेक्षा साक्षात् ग्रंथकारका यह उपर्युक्त कथन विशेष प्रामाणिक होना चाहिए। डॉ. जेकोबीने जो उनके गुरुका नाम जिनभद्र बतलाया है वह इस उल्लेखसे भ्रान्तिमूलक सिद्ध हो जाता है। जिनभट और जिनभद्र शब्दके बोलने और लिखनेमें प्रायः समानता ही होनेके कारण, इस भ्रान्तिका होना बहुत स्वाभाविक है। रही बात, शीलाङ्क और हरिभद्रके समकालीन होनेकी, सो उसका निर्णय तो इस निबन्धका अगला भाग पूर्ण पढ लेने पर अपने आप हो जायगा।]

आवश्यकसूत्रकी टीकाके उपर्युक्त अंतिम उल्लेखसे अधिक कोई बात हरिभद्रने अपने किसी ग्रंथमें नहीं लिखी। इस लिये उनके जीवनके बारेमें इससे अधिक कोई बात, उन्हींके शब्दोंमें मिल सके, ऐसी आशा रखनी तो सर्वथा निरर्थक है। परंतु पिछले कई ग्रंथोंमें—चाहे किम्वदन्ती ही के रूपमें क्यों न हो—उनके विषयमें कई प्रकारकी भिन्न भिन्न बातें लिखी हुई अवश्य मिलती हैं। हमारे इस लेखका उद्देश्य हरिभद्रके चरितवर्णन करनेका नहीं है, इस लिये, इस बारेमें हम कोई विशेष बात नहीं लिखना चाहते। परंतु, पाठकोंके सूचनार्थ, मुख्य कर जिन जिन ग्रंथोंमें ह ने हरिभद्रके जीवनसम्बन्धी छोटे बडे उल्लेख देखे हैं उनके नाम यहां पर निर्दिष्ट किये देते हैं।

इन ग्रंथोंमें सबसे विशेष उल्लेख योग्य प्रभाचन्द्र रचित प्रभावक चारित्र है। यह ग्रंथ विक्रमसंवत् १३३४ में बना है। इस ग्रंथके ९ वें प्रबन्धमें, उत्तम प्रकारकी काव्यशैलीमें, विस्तारपूर्वक हरिभद्रका चरित वर्णित किया हुआ है (–इस चरितमें कही गई बातें कहां तक सत्य हैं उसके बारेमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय यहां पर नहीं दे सकते)। इस ग्रंथके बाद राजशेखरसूरिके (वि. सं. १४०५ में) बनाये हुए प्रबन्धकोष नामक ऐतिहासिक और किम्वदन्ती स्वरूप कितनेएक प्रबन्धोंके संग्रहात्मक ग्रंथमें भी इनके विषयमें कितनाएक वर्णन किया हुआ मिलता है। हरिभद्रसूरिके जीवनसम्बन्धमें कुछ विस्तारके साथ बातें इन्हीं दो पुस्तकोंमें लिखी हुई मिलती हैं। संक्षेपमें तो कुछ उल्लेख, इन ग्रंथोंके पूर्व बने हुए ग्रंथोंमें भी कहीं कहीं मिल आते हैं। ऐसे ग्रंथोंमें, काल-क्रमकी दृष्टिसे, प्रथम ग्रन्थ मुनिचंद्रसूरिरचित उपदेशपद (जो हरिभद्र ही का बनाया हुआ एक प्रकरण ग्रंथ है) की टीका[11] है। इस टीकाके अंतमें, बहुत ही संक्षेपमें,–परंतु प्रभावक चरित्रकारने अपने प्रबन्धमें जितना चरित वर्णित किया है उसका बहुत कुछ सार बतलानेवाला–हरिभद्रके जीवनका सूचन किया है। दूसरा ग्रंथ, भद्रेश्वरसूरिका बनाया हुआ प्राकृतभाषामय कथावली नामक है[12]। इसमें चौवीस ही ती-

११ यह टीका वि. सं. ११७४ में समाप्त हुई थी।

१२ यह ग्रंथ कब बना इसका कोई उल्लेख नहीं मिला। रचनाशैली और कर्ताके नामसे अनुमान होता है कि १२ वीं शताब्दीमें इसका प्रणयन हुआ होगा। इस शताब्दीमें भद्रेश्वर नामके दो तीन विद्वानोंके हो जानेके उल्लेख मिलते हैं।

र्थकरोंके चरित्रोंके साथ अंतमें भद्रबाहु, वज्रस्वामी सिद्धसेन आदि आचार्योंकी कथायें भी लिखी हुई है, जिनमें अंतमें हरिभद्रकी जीवनकथा भी सम्मिलित है। इसी तरह थोडासा हाल गणधरसार्द्धशतककी सुमतिगणीकी बनाई हुई बृहत् टीकामें भी उल्लिखित है।[13]

इन सब ग्रंथोंमें लिखे हुए वर्णनोंपरसे जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि हरिभद्र पूर्वावस्थामें एक बडे विद्वान् और वैदिक ब्राह्मण थे। चित्रकूट (मेवाडकी इतिहास प्रसिद्ध वीरभूमि चितोड गढ) इनका निवास-स्थान था। याकिनी महत्तरा नामक एक विदुषी जैन आर्या (श्रमणी = साध्वी) के समागमसे उनको जैनधर्मपर श्रद्धा हो गई थी और उसी साध्वीके उपदेशानुसार उन्होंने जैनशास्त्र-प्रतिपादित-संन्यासधर्म-श्रमणव्रतका स्वीकार कर लिया था। इस संन्यासावस्थामें जनसमाजको निरंतर सद्बोध देनेके सिवा उन्होंने अपना समग्र जीवन सतत साहित्यसेवामें व्यतीत किया था। धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयके अनेकानेक उत्तमोत्तम मौलिक ग्रंथ और ग्रंथविवरण लिखकर उन्होंने जैनसाहित्यका-और उसके द्वारा समुच्चय भारतीय साहित्यका भी-बडा भारी उपकार किया है। जैनधर्मके पवित्र पुस्तक जो आगम कहे जाते हैं, वे प्राकृत भाषामें बने हुए होनेके कारण विद्वानोंको और साथमें अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको भी अल्प उपकारी हो रहे थे इस लिये उन पर सरल संस्कृत टीकायें लिख कर उन्हें सबके लिये सुबोध बना देनेके पुण्यकार्यका प्रारंभ इन्हीं महात्माने किया था। इनके पहले आगम ग्रंथों पर शायद संस्कृत टीकायें नहीं लिखी गई थीं। उस समय तक प्राकृतभाषामय चूर्णियें ही लिखी जाती थीं। निदान वर्तमानमें तो इनके पूर्वकी किसी सूत्रकी कोई संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं है। अस्तु।

इनके बनाये हुए आध्यात्मिक और तात्त्विक ग्रंथोंका स्वाध्याय करनेसे मालूम पडता है कि, ये प्रकृतिसे बडे सरल, आकृतिसे बडे सौम्य, और वृत्तिसे बडे उदार थे। इनका स्वभाव सर्वथा गुणानुरागी था। जैनधर्म ऊपर अनन्य श्रद्धा रखने पर, और इस धर्मके एक महान् समर्थक होने पर भी, इनका हृदय निष्पक्षपातपूर्ण था। सत्यका आदर करनेमें ये सदैव तत्पर रहते थे। धर्म और तत्त्वके विचारोंका ऊहापोह करते समय ये अपनी मध्यस्थता और गुणानुरागिताकी किञ्चित् भी उपेक्षा नहीं करते थे। जिस किसी भी धर्म या संप्रदायका जो कोई भी विचार इनकी बुद्धिमें सत्य प्रतीत होता था उसे ये तुरन्त स्वीकार कर लेते थे। केवल धर्म-भेद या संप्रदाय-भेद ही के कारण ये किसी पर कटाक्ष नहीं करते थे-जैसे कि भारतके अन्यान्य बहुतसे प्रसिद्ध आचार्यों और दार्शनिकोंने किये हैं। बुद्धदेव, कपिल, व्यास, पतञ्जलि, आदि विभिन्न धर्मप्रवर्तकों और मतपोषकोंका उल्लेख करते समय इन्होंने उनके लिये, भगवान्, महामुनि, महर्षि, इत्यादि प्रकारके बडे गौरवसूचक विशेषणोंका प्रयोग किया है— जो बात हमें इस प्रकारके दूसरे ग्रन्थकारोंकी लेखनशैलीमें बहुत कमदृष्टिगोचर होती है। कहनेका तात्पर्य यही है कि ये एक बडे उदारचेता साधु पुरुष थे। सत्यके उपासक थे। भारतवर्षके समुचित धर्माचार्योंके पुण्यश्लोक इतिहासमें ये एक उच्च श्रेणिमें विराजमान होने योग्य संविग्नहृदयी जैनाचार्य थे।

हरिभद्रके जीवनके विषयमें उपर्युक्त थोडीसी प्रासंगिक बातें लिख कर, अब हम, प्रस्तुत निबन्धके मुख्य विषयकी विवेचना करना चाहते हैं।

हरिभद्रसूरिके जीवन-वृत्तान्तके विषयमें अल्प-स्वल्प उल्लेख करनेवाले जिन ग्रंथोंके नाम हमने ऊपर सूचित किये हैं, उनमें इस बातका कोई उल्लेख या सूचन नहीं है कि ये सूरि किस समयमें हुए हैं। इस लिये, प्रस्तुत विचारविवेचनमें उन ग्रंथोंसे हमें किसी प्रकार की साक्षात् सहायता के मिलनेकी तो बिलकुल आशा नहीं है। यदि, उन ग्रंथोंमें जीवनवृत्तांतके साथ हरिभद्रके समयका सूचक भी कोई उल्लेख किया हुआ होता, तो उनके दिये हुए वर्णनोंमें कुछ और विशेष महत्ता और विश्वसनीयता आ जाती। परंतु, वास्तवमें, उन

[13] इस वृत्तिकी रचना-समाप्ति वि. सं. १२९५ में हुई थी।

ग्रंथकारोंका उद्देश्य कोई सन्-संवत्वार अन्वेषणात्मक इतिहास लिखनेका नहीं था। उनका उद्देश्य तो मात्र अपने धर्मके समर्थक और प्रभावक आचार्यों तथा विद्वानोंने, धर्मकी प्रभावनाके लिये, किस प्रकारके लोगोंको चमत्कार बतलाये अथवा किस प्रकार परवादियोंके पाण्डित्यका पराभव किया; इत्यादि प्रकारकी जो जनमनरंजन बातें पूर्वपरंपरासे कंठस्थ चली आती थीं, उनको पुस्तकारूढ कर शाश्वत बनानेका; और इस प्रकारसे सर्वसाधारणमें धर्मप्रभावकी महत्ता प्रदर्शित करनेका था। हां, इस उद्देश्यकी दृष्टिसे प्रबन्धादि लिखते समय प्रबन्धलेखकको यदि प्रबन्धनायकके विषयमें किसी विशेष घटनासूचक संवतादिका कहींसे उल्लेख जो प्राप्त हो जाता था, तो उसे वह अपने निबन्धमें कभी कभी ग्रथित भी कर देता था। परंतु, जिस आतुरताके साथ आज कल हम सन् संवतादिकी प्राप्तिके लिये उत्सुक रहते हैं और उसके अन्वेषणके लिये दीर्घ परिश्रम करते रहते हैं, वैसी प्रकृति भारतवर्षके पुराणे प्रबन्धलेखकोंकी नहीं दिखाई देती।

यद्यपि हमारा यह उपर्युक्त कथन भारतवासी विद्वानोंके लिये सर्वसाधारण है; तथापि, हमें लिखते हुए एक प्रकारसे हर्ष होता है कि, जैन धर्मके जुने विद्वानोंमें कुछ ऐसी प्रकृतिवाले विद्वान् भी हो गये हैं, जो इस कथनके अपवाद-स्वरूप हैं। इन विद्वानोंके बनाए हुए निबन्धोंमेंसे दो चार ऐसे निबन्ध भी जैनसाहित्यकी शोभा बढा रहे हैं, जिन्हें हम निस्सन्देह रीतिसे—उनके कर्ताके समयमें उपलब्ध हो सकने वाली तद्विषयक साधन-सामग्रीकी अपेक्षासे—आधुनिक अन्वेषणात्मक पद्धतिसे लिखे जानेका सम्मान दे सकते हैं[१४]। यह बात अलग है कि, कदाचित् इन प्रबन्धोंमेंका ऐतिहासिक निष्कर्ष, हमारी आधुनिक अन्वेषणाके निष्कर्षके मुकाबले, किसी अंशमें, सत्य नहीं प्रतीत हो (और ऐसा निर्विवाद सत्य तो आज कल भी सभी ऐतिहासिक सिद्धान्तोंमें कहां स्वीकृत है)। क्यों कि हमारी आधुनिक साधन-सामग्री और उस पुराणे जमानेकी साधन-सामग्रीमें आकाश-पाताल जितना अन्तर है। अस्तु।

यद्यपि, उक्त कथनानुसार, हरिभद्रके जीवन-वृत्तान्तका सूचन करनेवाले ग्रंथोंमें, उनके समयका कोई निर्देश किया हुआ नहीं मिलता; तथापि जैन गुरुपरंपरा-सम्बन्धी जो कितनेएक कालगणनात्मक प्रबन्धादि उपलब्ध हैं, उनमेंसे किसी किसीमें, इनके समयका उल्लेख किया हुआ अवश्य विद्यमान है। इस प्रकारके कालगणनात्मक प्रबन्धोंमें, प्रथम और प्रधानतया जो प्रबन्ध उल्लेखयोग्य है, वह अञ्चलगच्छीय आचार्य मेरुतुङ्गका बनाया हुआ विचारश्रेणि नामक[१५] है। मेरुतुङ्गाचार्यने अपना प्रबन्धचिन्तामणि[१६] नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ वि. सं. १३६० में समाप्त किया था। प्रस्तुत विचारश्रेणि-

१४ मेरुतुङ्गाचार्य विरचित–विचारश्रेणि; किसी अज्ञातनामा विद्वान्की बनाई हुई—गुर्वावलीविशुद्धि; धर्मसागरोपाध्यायकृत—प्रवचनपरीक्षान्तर्गत कुछ भाग; समयसुन्दररचित—सामाचारीप्रकरणगत कुछ विभाग; इत्यादि प्रकारके प्रबन्ध हमारे इस कथनके उदाहरण स्वरूप हैं।

१५ यह प्रबन्ध पुरातत्त्वज्ञोंको सुपरिचित है। महावीर निर्वाण और विक्रम संवत् के विषयकी आलोचनामें इतिहासज्ञोंको मुख्य कर यही प्रबन्ध विषयभूत हो रहा है (देखो, डॉ. जेकोबीकी कल्पसूत्रकी प्रस्तावना; और, जार्लचा पेंटियरका महावीर समयनिर्णय नामक निबन्ध; इण्डियन एंटिक्वेरी, पु. ४३)। शायद, सबसे पहले, प्रसिद्ध शोधक डॉ. भाऊ दाजीने, सन १८७२ में, बम्बईकी रायल एशियाटिक सोसाईटीकी शाखाके सभ्योंके सम्मुख इस प्रबन्ध पर एक निबन्ध पढा था। (वह निबन्ध, इसी सोसायटिके वृत्तपत्र (जर्नल) के ९ वें भागमें, पृ. १४७–१५७ पर प्रकट हुआ है) डॉ. बुल्हरने इसको इंग्रेजी नाम "Catena of Enquiries" दिया है (–इं. ऐ. पु. २; पृ. ३६२)। आश्चर्य है कि यह ऐसा विवेचनीय प्रबन्ध अभी तक मूलरूपमें कहीं प्रकट नहीं हुआ। पाठकोंको जान कर खुशी होगी कि थोडे ही समयमें हम इसे छपवा कर प्रकट करना चाहते हैं।

१६ यह ग्रंथ गुजराती भाषांतर सहित, अमदाबादके रामचंद्र दीनानाथ शास्त्रीने, सन १८८८ में छपवा कर प्रकट किया है। इसका इंग्रेजी अनुवाद भी बंगालकी रायल एशियाटिक सोसाइटिने प्रकट किया है।

में वि. सं. १३७१ में, समरासाहने[17] शत्रुंजयका जो उद्धार किया था, उसका उल्लेख किया हुआ है। इस लिये विक्रमकी १४ वीं शताब्दीके पिछले पादमें इस प्रबन्धकी रचना हुई, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। इस प्रबन्धमें एक पुराणी प्राकृत गाथा उद्धृत की हुई है, जिसमें लिखा है कि, विक्रम संवत् ५८५ में हरिभद्रसूरिका स्वर्गवास हुआ था। गाथा इस प्रकार है—

पंचसए पणसीए[18] विक्कम कालाउ झत्ति अत्थमिओ।
हरिभद्दसूरि-सूरो भवियाणं दिसउ कल्लाणं ॥

अर्थात्-' विक्रम संवत् ५८५ में अस्त (स्वर्गस्थ) होने वाले हरिभद्रसूरिरूप सूर्य भव्यजनोंको कल्याण प्रदान करें।'

यहां पर यह बात खास ध्यानमें रख लेनेकी है कि यह गाथा मेरुतुंगने 'उक्तं च-' कह कर अपने प्रबन्धमें उद्धृत की है-नई नहीं बनाई है। मेरुतुङ्गाचार्यके, निश्चितरूपसे पहलेके बने हुए किसी ग्रंथमें यह गाथा अभी तक हमारे देखनेमें नहीं आई। इस लिये यह कुछ भी नहीं कह सकते कि यह गाथा कितनी प्राचीन है। परन्तु मेरुतुङ्गसे तो निश्चित ही १००-२०० वर्ष पुराणी अवश्य होनी चाहिए। विचारश्रेणिमें ' जं रयणिं कालगओ ' इत्यादि वाक्यसे प्रारंभ होने वालीं, और महावीर निर्वाण और विक्रम संवत्के बीचके राजवंशोंका समयनिरूपण करने वाली जो तीन प्राकृत गाथाएं हैं, प्रायः वैसी ही गाथाएं तो ' तित्थोग्गालियपइण्णा ' नामक प्राकृत ग्रंथमें भी मिलती हैं; परंतु हरिभद्रके मृत्यु-समयका विधान करनेवाली प्रस्तुत गाथा वहां पर नहीं दिखाई देती। इस लिये यह भी नहीं कह सकते कि मेरुतुंगने कौनसे ग्रन्थमेंसे इसे उद्धृत की है। खैर, कुछ भी हो, परंतु इतनी बात तो सत्य है कि १४ वीं शताब्दीसे तो यह गाथा अवश्य पूर्वकी बनी हुई है।

इसी गाथाको प्रद्युम्नसूरिने[19] अपने 'विचारसार

[17] इस उद्धारका विशेष उल्लेख, हमारी शत्रुंजयतीर्थोद्धार प्रबन्ध नामक पुस्तकके उपोद्घात, पृ. ३१-३३ में किया हुआ है।

[18] प्रो. पिटर्सनने अपनी ३री रिपोर्टके पृ. २७२ पर, प्रद्युम्नसूरिविरचित 'विचारसारप्रकरण' के, और पृ. २८४ पर, समयसुंदर गणिके ' गाथासहस्री ' नामक ग्रंथके, जो अवतरण किये हैं उनमें यह प्रकृत गाथा भी सम्मिलित है। वहां पर, ' पणसीए ' के स्थान पर ' पणतीए ' ऐसा पाठ मुद्रित है। इस पाठ-भेदके कारण, कई विद्वान् ५८५ के बदले ५३५ के वर्षमें हरिभद्रकी मृत्यु हुई मानते हैं; परंतु, वास्तविकमें वह पाठ अशुद्ध है। क्योंकि प्राकृत भाषाके नियमानुसार ३५ के अंकके लिये ' पणतीसे ' शब्द होता है, 'पणतीए' नहीं। यद्यपि, लेखक—पुस्तककी नकल उतारनेवाले—के प्रमादसे 'पणतीसे' की जगह 'पणतीए' पाठका लिखा जाना बहुत सहज है, और इस लिये 'पणतीए' के बदले ' पणतीसे ' के शुद्ध पाठकी कल्पना कर ८५ के स्थान पर ३५ की संख्या गिन लेनेमें, भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे कोई अनुचितता नहीं कही जा सकती; परंतु, प्रकृत विषयके कालसूचक अन्यान्य उल्लेखोंके संवादानुसार यहां पर ' पणसीए ' पाठका होना ही युक्तिसंगत और प्रमाणविहित है। बहुतसी हस्तलिखित प्रतियोंमें भी यही पाठ उपलब्ध होता है। प्रो. वेबरने, बर्लिनके राजकीय पुस्तकालयमें संरक्षित संस्कृत-प्राकृत पुस्तकोंकी रिपोर्टके, भाग २, पृ. ९२३ पर भी, 'पणसीए' पाठ ही को शुद्ध लिखा है और 'पणतीए' को अशुद्ध।

[19] ये सूरि धर्मघोषसूरिके शिष्य, देवप्रभके शिष्य थे। इनका निश्चित समय ज्ञात नहीं हुआ। संभव है कि कदाचित् ये मेरुतुंगके पूर्ववर्ती हों, और 'विचारश्रेणि' में की बहुतसी प्राकृत गाथायें इन्हींके 'विचारसार प्रकरण' मेंसे ली गई हों—यद्यपि इसमें भी वे सब गाथायें संगृहीत मात्र ही हैं, नवीन रचित नहीं। यदि विशेष खोज करने पर, इन संग्रहकारके समयका पता लग गया और ये मेरुतुंगसे पूर्ववर्ती निश्चित हुए, तो फिर हरिभद्रकी मृत्युसंवत्सूचक प्रकृत गाथाके प्रथम अवतरणका मान, इन्हींके इस 'विचारसार प्रकरण' को देना होगा। इस प्रकरणमें, एक दूसरी बात यह भी है कि, प्रकृत गाथाके साथ, प्रकरणकारने 'अह वा' (सं. अथ वा) लिख कर एक दूसरी भी प्राकृत गाथा लिखी—उध्दृत की—है, जिसमें वीर-निर्वाणसे १०५५ वर्षबाद हरिभद्र हुए, ऐसा कथन है। इस गाथाके उध्दृत करनेका मतलब, लेखकको इतना ही मालूम देता है कि हरिभद्रसूरिका स्वर्ग-समय प्रधान गाथामें जो वि. सं. ५८५ बतलाया है वह इस दूसरी गाथाके कथनसे भी समर्थित होता

प्रकरण ' में, और समयसुंदर गणिने[20] स्व-संगृहीत 'गाथासहस्री' नामक प्रबन्धमें भी उद्धृत की है। पुनः इसी गाथाके आशयको लेकर कुलमंडनसूरिने[21] 'विचारामृतसंग्रह' में, और धर्मसागर[22] उपाध्यायने तपागच्छगुर्वावली में, लिखा है कि, महावीर निर्वाणके पश्चात् १०५५ वें (वीर नि. ४७० अनन्तर विक्रम संवत्‌की शुरूआत, तदनन्तर ५८५; ४७० + ५८५ = १०५५) वर्षमें हरिभद्रसूरिका स्वर्गवास हुआ था। इन पिछले दोनों ग्रंथकारोंका कथन क्रमशः इस प्रकार है—

(१) 'श्रीवीरनिर्वाणात् सहस्रवर्षे पूर्वश्रुतव्यवच्छिन्नम्। श्रीहरिभद्रसूरयस्तदनु पञ्चपञ्चाशता वर्षैर्दिवं प्राप्ताः।' —विचारामृतसंग्रह।

(२) श्रीवीरात् पञ्चपञ्चाशदधिकसहस्रवर्षे विक्रमात् पञ्चाशीत्यधिकपञ्चशतवर्षे याकिनीसूनुः श्रीहरिभद्रसूरिः स्वर्गभाक्। —तपागच्छगुर्वावली।

मुनिसुन्दरसूरिने जो तपागच्छकी पद्यबद्ध गुर्वावली (संवत् १४६६) बनाई है उसमें हरिभद्रसूरिको मानदेवसूरि (द्वितीय) के मित्र बतलाये हैं। इन मानदेवका समय पट्टावलियोंकी गणना और मान्यता अनुसार विक्रमकी ६ ठी शताब्दी समझा जाता है। अतः यह उल्लेख भी हरिभद्रसूरिके गाथोक्त समयका संवादी गिना जाता है। मुनिसुन्दरसूरिका उल्लेख इस प्रकार है–

अभूद् गुरुः श्रीहरिभद्रमित्रं
श्रीमानदेवः पुनरेव सूरिः।
यो मान्द्यतो विस्मृतसूरिमन्त्रं
लेभेऽम्बिकाऽऽस्यात्तपसोज्जयन्ते[23] ॥

—गुर्वावली (यशोवि. ग्रं. काशी) पृ. ४।

इस प्रकार इन सब ग्रंथकारोंके मतसे हरिभद्रसूरिका सत्ता-समय विक्रमकी ६ ठी शताब्दी है और उनका स्वर्गवास सं. ५८५ (ई. स. ५२९) में हुआ था।

परंतु, इसी प्रकारके बाह्य-प्रमाणोंमें, कुछ ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिनके कारण इस गाथोक्त समयकी सत्यताके बारेमें विद्वानोंको बहुत समयसे संदेह उत्पन्न हो रहा है। इन प्रमाणोंमें, जो मुख्य उल्लेख योग्य है, वह बहुत महत्त्वका और उपर्युक्त समयसाधक प्रमाणोंसे भी बहुत प्राचीन है। यह प्रमाण महात्मा सिद्धर्षिके महान् ग्रन्थ उपमितिभवप्रपञ्चा कथामें उल्लिखित है। यह कथा संवत् ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, गुरुवारके दिन, जब चंद्रमा पुनर्वसु नक्षत्रमें स्थित था, तब समाप्त हुई थी। ऐसा स्पष्ट उल्लेख, इस कथाकी प्रशस्तिमें सिद्धर्षिने स्वयं किया है। यथा–

संवत्सरशतनवके द्विषष्टिसहितेऽतिलङ्घिते चास्याः।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत् ॥

यद्यपि ग्रन्थकर्ताने यहां पर मात्र केवल 'संवत्' शब्द ही का प्रयोग किया है जिससे स्पष्टतया यह

है। क्योंकि ५८५का विक्रम-वत्सर महावीर संवत् १०५५ के बराबर (४७०+५८५=१०५५) ही होता है। प्रद्युम्नसूरि संगृहीत दूसरी प्राकृत गाथा इस प्रकार है—

पण पन्न-दस-सएहिं हरिसूरी आसि तत्थ पुव्वकई।
तेरसवरिससएहिं अईएहिं वि बप्पभट्टिपहू ॥

पिटर्सन, रिपोर्ट ३. पृ. २७२।

२० समयसुन्दरगणिने गाथासहस्री सं. १६८६ में बनाई है। देखो,–पि. रि. ३, पृ. २९०।

—विचारसार प्रकरण और गाथासहस्रीमें प्रस्तुत गाथाके चतुर्थ पादमें कुछ पाठ-भेद है, परंतु अर्थ-तात्पर्य एक ही होनेसे उसके उल्लेखकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

२१ ये आचार्य विक्रमकी १५ वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुए हैं।

२२ धर्मसागरजी १७ वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमें विद्यमान थे।

२३ धर्मसागरगणिने अपनी पट्टावलिमें इसी पद्यका समानार्थक एक दूसरा पद्य उध्दृत किया है। यथा–

विद्यासमुद्रहरिभद्रमुनीन्द्रमित्रं
सूरिर्बभूव पुनरेव हि मानदेवः।
मान्द्यात् प्रयातमपि योऽनघसूरिमन्त्रं
लेभेऽम्बिकामुखगिरा तपसोज्जयन्ते ॥

यही पद्य पुनः पूर्णिमागच्छकी पट्टावलीमें भी मिलता है।—देखो, पं. हरगोविन्ददासका हरिभद्रचरित्र पृ. १८।

नहीं ज्ञात हो सकता कि, वीर, विक्रम, शक, गुप्त आदि संवतोंमेंसे प्रस्तुतमें कौनसा संवत् कथाकारको विवक्षित है; तथापि, संवत्के साथ मास, तिथि, वार और नक्षत्रका भी स्पष्ट उल्लेख किया हुआ होनेसे, ज्योतिर्गणितके नियमानुसार गिनती करने पर, प्रकृतमें विक्रम संवत् ही का विधान किया गया है, यह बात स्पष्ट मालूम पड़ जाती है। सिद्धर्षिके लिखे हुए इस संवत्, मास और तिथि आदिकी तुलना ई. स. के साथ की जाय तो, गणित करनेसे, ९०६ ई. के. मई महिनेकी १ ली तारिखके बराबर इसकी एकता होती है। इस तारीखको भी वारगुरु ही आता है और चन्द्रमा भी सूर्योदयसे लेकर मध्यान्ह कालके बाद तक पुनर्वसु नक्षत्र ही में रहता है।[२४]

इस कथाकी प्रशस्तिमें सिद्धर्षिने प्रारंभमें ९ श्लोकों द्वारा अपनी मूल गुरुपरंपराका उल्लेख कर, फिर हरिभद्रसूरिकी विशिष्ट प्रशंसा की है और उन्हें अपना धर्मबोधकर गुरु बतलाये हैं। प्रशस्तिमें हरिभद्रकी प्रशंसावाले निम्नलिखित तीन[२५] पद्य मिलते हैं। —

(१५) आचार्यहरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः ।
प्रस्तावे भावतो हन्त स एवाद्ये निवेदितः ॥
(१६) विषं विनिर्धूय कुवासनामयं
व्यचीचरद् यः कृपया मदाशये ।
अचिन्त्यवीर्येण सुवासनासुधां
नमोऽस्तु तस्मै हरिभद्रसूरये ॥
(१७) अनागतं परिज्ञाय चैत्यवन्दनसंश्रया।
मदर्थैव कृता येन वृत्तिर्ललितविस्तरा ॥[२६]

इन पद्योंका भावार्थ इस प्रकार है—

(१५) आचार्य हरिभद्र मेरे धर्मबोधकर—धर्मका बोध (उपदेश) करनेवाले—गुरु हैं। इस कथाके प्रथम प्रस्तावमें मैंने इन्हीं धर्मबोधकर गुरुका निवेदन किया है।

(१६) जिसने कृपा करके अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे मेरे हृदयमेंसे कुवासना-दुर्वि-

२४ किसी किसीकी कल्पना इस संवत्को वीर-निर्वाण-संवत् माननेकी होती है। अगर इस कल्पनाके मुताबिक गणित करके देखा जाय तो वी० सं. ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल ५ मीके दिन ई. स. ४३६ के मई मासकी ७ वी तारीख आती है। वार उस दिन भी गुरु ही मिलता है, परंतु चन्द्रमा उस दिन प्रातःकालमें २ घंटे तक पुष्य नक्षत्रमें रह कर फिर अश्लेषा नक्षत्रमें चला जाता है; इस लिये नक्षत्र उस दिन ग्रंथमें लिखे मुताबिक नहीं मिलता। इसके सिवा इस कल्पनामें एक बडा और प्रत्यक्ष विरोध भी है। उक्त प्राकृत गाथामें जो हरिभद्रका मृत्युसमय बतलाया गया है उससे, यह समय लगभग १०० वर्ष जितना उलटा पीछे चला जाता है—अर्थात् सिद्धर्षि हरिभद्रके भी शतवर्ष पूर्ववर्ती हो जाते हैं! सिद्धर्षिका, जैसा कि आगे चल कर बतलाया जायगा, हरिभद्रके पहले होना सर्वथा असिद्ध है। इस लिये सिद्धर्षिका लिखा हुआ यह संवत् विक्रम संवत् ही है।

प्रो. पिटर्सनने अपनी ४ थी रीपोर्टके ५ वें पृष्ठ ऊपर सिद्धर्षिके इस संवत्को वीरनिर्वाण संवत् मान कर, और उसके मुकाबलेमें विक्रम संवत् ४९२ के बदले ५९२ लिख कर गाथोक्त हरिभद्रके समयके साथ मेल मिलाना चाहा है। परंतु इस गिनतीमें तो प्रत्यक्ष रूप से ही १०० वर्ष की भई भूल की गई है। क्यों कि ९६२ में से ४७० वर्ष निकाल देनेसे, शेष ४९२ रहते हैं, ५९२ नहीं। इस लिये पिटर्सन साहबकी कल्पनामें कुछ भी तथ्य नहीं है। डॉ. जेकोबीने भी इस कल्पनाको त्याज्य बतलाया है। देखो, उपमितिभवप्रपंचाकी प्रस्तावना—पृष्ठ ८ की पाद टीका।

२५ डॉ. जेकोबी, इन पद्योंके पहलेके और ३ (नं. १२-१३-१४ वाले) श्लोकोंको भी हरिभद्र ही की प्रशंसामें लिखे हुए समझते हैं और उनका भाषान्तर भी उन्होंने अपनी प्रस्तावना (पृ. ५) में दिया है। परंतु यह डॉ० साहबका भ्रम है। उन तीन पद्योंमें हरिभद्रकी प्रशंसा नहीं है परंतु सिद्धर्षिकी प्रशंसा है। इनके पूर्वके दूसरे दो (नं. १०-११) श्लोकोंमें भी सिद्धर्षि ही का जिकर है। वास्तवमें हमारे विचारसे नं. १० से १३ तकके ४ पद्य स्वयं सिद्धर्षिके बनाए हुए नहीं है, परन्तु उनके शिष्य या अन्य किसी दूसरे विद्वान्के बनाये हुए है। अतएव वे वहां पर प्रक्षिप्त हैं। सिद्धर्षि, स्वयं अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करनेवाले बहिर्मुख आत्मा नहीं थे। वे बडे नम्र, लघुताप्रिय और अध्यात्मस्वरूपमें लीन रहनेवाले सन्त पुरुष थे। वे अपने लिये 'सिद्धान्तनिधि' ' महाभाग ' और ' गणधरतुल्य ' जैसे मानभरे हुए विशेषणोंका प्रयोग कभी नहीं कर सकते।

२६ उपमितिभवप्रपञ्चा कथा, (बिब्लिओथिका इन्डिका.) पृ. १२६०।

चाररूप विषको निकाल कर सुवासना-सद्विचार स्वरूप सुधा (अमृत) का सिंचन किया है, उस आचार्य हरिभद्रको नमस्कार हो।

(१७) उन्होंने (हरिभद्रसूरिने) अनागत याने भविष्यमें होनेवाले मुझको जानकर मानों मेरे ही लिये चैत्यवन्दनसूत्रका आश्रय लेकर ललितविस्तरा नामक वृत्ति बनाई है।

इस अवतरणसे ज्ञात होता है कि सिद्धर्षि हरिभद्रको एक प्रकारसे अपने गुरु मानते हैं। वे उन्हीं से अपनेको धर्मप्राप्ति हुई कहते हैं, और ललितविस्तरावृत्ति नामक ग्रन्थ, जो हरिभद्रके ग्रन्थोंमेंसे एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है उसे, अपने ही लिये बनाया गया बतलाते हैं। इस प्रकार, इस प्रशस्तिगत कथनके प्रथम दर्शनसे तो हरिभद्र और सिद्धर्षिके बीचमें गुरु-शिष्यभावका होना स्थापित होता है। और जब ऐसा गुरुशिष्यभावका सम्बन्ध उनमें रहा तो फिर वे प्रत्यक्ष ही दोनों समकालीन सिद्ध हुए, और वैसा होने पर हरिभद्रका उक्त गाथा-विहित सत्ता-समय असत्य साबित होगा।

इस प्रकार हरिभद्रसूरिके समय-विचारमें सिद्धर्षिका सम्बन्ध एक प्रधान स्थान रखता है। इस लिये प्रथम यहां पर इस बातका ऊहापोह करना आवश्यक है कि सिद्धर्षिके इस कथनके बारेमें उनके चारित्रलेखक जैन ग्रन्थकारोंका क्या अभिप्राय है।

सिद्धर्षिके जीवनवृत्तान्तकी तरफ दृष्टिपात करते हैं तो, उनके निजके ग्रन्थमें तो, इस उपर्युक्त प्रशस्तिके कथनके सिवा, और कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। इस लिये उनके निजके ही शब्दोंमें तो अपनेको यह बात नहीं मालूम हो सकती, कि, हरिभद्रको वे अपने धर्मबोधकर गुरु किस कारणसे कहते हैं और ललितविस्तरावृत्तिको अपने ही लिये बनाई गई क्यों बतलाते हैं?।

पिछले जैन लेखकोंके लेखों-ग्रन्थोंमें सिद्धर्षिके जीवन-वृत्तान्तके विषयमें जो कथा-प्रबन्धादि उपलब्ध होते हैं, उनमें कालक्रमकी दृष्टिसे सबसे प्राचीन, तथा वर्णनकी दृष्टिसे भी प्रधान, ऐसा प्रभावकचरित्रान्तर्गत सिद्धर्षि-प्रबन्ध है। इस प्रबन्धमें सिद्धर्षिका जो जीवन वर्णित है उसमें इस बातका किञ्चित् भी जिकर नहीं किया गया है कि, हरिभद्र, सिद्धर्षिके एक गुरु थे और उनसे उनको धर्मबोध मिला था। हरिभद्र और सिद्धर्षिके बीचमें एक प्रकारसे गुरुशिष्यका सम्बन्ध था, इस बातका सूचन प्रभावकचरित्रकारने न हरिभद्र ही के प्रबन्धमें किया है और न सिद्धर्षि ही के प्रबन्ध में। केवल इतना ही नहीं, परंतु इन दोनोंके चरित्र-प्रबन्ध पास पासमें भी वे नहीं रखते। उन्होंने हरिभद्रका चरित्र ९ वें प्रबन्धमें गुंथा है और सिद्धर्षिका १४ वें प्रबन्धमें। इस लिये प्रभावकचरित्रकारके मतसे तो हरिभद्र और सिद्धर्षिके बीचमें न किसी प्रकारका साक्षात् गुरुशिष्य जैसा सम्बन्ध था और न वे दोनों समकालीन थे।

परन्तु, सिद्धर्षिने अपनी कथाकी प्रशस्तिमें जो उक्त प्रकारसे हरिभद्रका उल्लेख किया है, उसे प्रभावकचरित्रकर्ता जानते ही नहीं है यह बात नहीं है। उन्होंने सिद्धर्षिका वह कथन केवल देखा ही नहीं है किंतु उसे अपने प्रबन्धमें यथावत् उद्धृत तक कर लिया है। परंतु, उस कथनका सम्बन्ध वे और ही तरहसे लगाते हैं। उनका कहना है कि, सिद्धर्षिने जैन शास्त्रोंका पूर्ण अभ्यास करके, फिर न्यायशास्त्रका विशिष्ट अभ्यास करनेके लिये किसी प्रान्तस्थ बौद्ध विद्यापीठमें जा कर रहनेका विचार किया। जानेके पहले उन्होंने जब अपने गुरु गर्गस्वामीके पास अनुमति मांगी तो गुरुजीने अपनी असम्मति प्रकट की और कहा कि वहां पर जानेसे तेरा धर्मविचार भ्रष्ट हो जायगा। सिद्धर्षिने गुरुजीके इस कथन पर दुर्लक्ष्य कर चल ही दिया और अपने इच्छित स्थान पर जा कर बौद्ध प्रमाण शास्त्रका अध्ययन करना शुरू किया। अध्ययन करते करते उनका विश्वास जैनधर्म ऊपरसे ऊठता गया और बौद्ध धर्म पर श्रद्धा बढती गई। अध्ययनकी समाप्ति हो जाने पर, उन्होंने बौद्धधर्मकी दीक्षा लेनेका विचार किया, परंतु, पहले ही से वचनबद्ध हो आनेके कारण, जैनधर्मका त्याग करनेके पहले वे एक वार अपने पूर्वगुरुके पास मिलनेके लिये आये। शान्तमूर्ति गर्गमुनिने सिद्धर्षि-

की स्वधर्म ऊपरसे चलित-चित्तताको देख कर अपने मुखसे किसी प्रकारका उन्हें उपदेश देना मुनासब नहीं समझा। उन्होंने ऊठ कर पहले सिद्धर्षिका स्वागत किया और फिर उन्हें एक आसन पर बिठा कर, हरिभद्रसूरिकी बनाई हुई ललितविस्तारावृत्ति, जिसमें बौद्ध वगैरह सभी दर्शनोंके सिद्धान्तोंकी बहुत ही संक्षेपमें परंतु बडी मार्मिकताके साथ मीमांसा कर जैनतीर्थंकरकी परमाप्तता स्थापित की गई है, उसको पढनेके लिये दी। पुस्तक दे कर गर्गमुनि जिनचैत्यको वन्दन करनेके लिये चले गये और सिद्धर्षिको कह गये कि, जब तक मैं चैत्यवन्दन करके वापस आऊं तब तक तुम इस ग्रन्थको वाचते रहो। सिद्धर्षि गुरुजीके चले जाने पर ललितविस्तराको ध्यानपूर्वक पढने लगे। ज्यों ज्यों वे हरिभद्रके निष्पक्ष, युक्तिपूर्ण, प्रौढ और प्राञ्जल विचार पढते जाते थे त्यों त्यों उनके विचारोंमें बडी तीव्रताके साथ क्रांति होती जाती थी। सारा ग्रंथ पढ लेने पर उनका विश्वास जो बौद्ध संसर्गके कारण जैनधर्म ऊपरसे ऊठ गया था वह फिर पूर्ववत् दृढ हो गया, और बौद्ध धर्मपरसे उनकी रुचि सर्वथा हट गई। इतनेमें गर्गमुनिजी चैत्यवन्दन करके उपाश्रयमें वापस आ पहुंचे। सिद्धर्षि गुरुजीको आते देख एक दम आसन ऊपरसे ऊठ खडे हुए और उनके पैरोंमें अपना मस्तक रख कर, स्वधर्म परसे जो इस प्रकार अपना चित्तभ्रंश हुआ उसके लिये पश्चात्ताप करने लगे। गुरुजीने मिष्टवचनोंसे उन्हें शान्त कर उनके मनको संतुष्ट किया। अन्तमें वे फिर जैनधर्मके महान् प्रभावक हुए। इत्यादि। इस प्रकार हरिभद्रके बनाये हुए ग्रन्थके अवलोकनसे सिद्धर्षिकी मिथ्याभ्रान्ति नष्ट हुई और सद्धर्मकी प्राप्ति हुई इस लिये उन्होंने हरिभद्रसूरिको अपना धर्मबोधकर गुरु माना और ललितविस्तराको मानों अपने ही लिये बनाई गई समझी। इसके सिवा प्रभावकचरित्रके कर्ता इन दोनोंमें परस्पर और किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं मानते।

परन्तु, दूसरे कितने एक ग्रन्थकार प्रभावकचरित्रके इस कथनके साथ पूर्ण मतैक्य नहीं रखते। उनके कथनानुसार तो सिद्धर्षि और हरिभद्र दोनों समकालीन थे और सिद्धर्षिको बौद्ध संसर्गके कारण स्वधर्मसे भ्रष्ट होते देख कर उनको प्रतिबोध करनेके लिये ही हरिभद्र सूरिने ललितविस्तरा वृत्ति बनाई थी। इन ग्रन्थकारोंमें मुख्यकर राजशेखरसूरिका (सं. १४०५ में बना हुआ) प्रबन्धकोष अथवा चतुर्विंशतिप्रबन्ध है। इस ग्रन्थमें हरिभद्रसूरिका जो चरित-प्रबन्ध है उसमें साथमें सिद्धर्षिका भी वर्णन किया हुआ है। इस प्रबन्धमें तो सिद्धर्षिको साक्षात् हरिभद्र ही के दीक्षित शिष्य बतलाये हैं। गर्गमुनि वगैरहका नामनिर्देश तक नहीं है। प्रकृत बातके विषयका बाकी सब हाल प्रायः ऊपर (प्रभावकचरित्र) के जैसा ही है। मात्र इतनी विशेषता है कि, बौद्ध गुरुके पाससे जब सिद्धर्षि अपनी प्रतिज्ञानुसार, हरिभद्रसूरिको मिलनेके लिये आये तब बौद्ध गुरुने भी उन्हें पुनर्मीलनके लिये प्रतिज्ञाबद्ध कर लिये थे। हरिभद्रसूरिने उनको सद्बोध दिया जिससे उनका मन फिर जैन धर्म ऊपर श्रद्धावान् हो गया। परंतु प्रतिज्ञानिर्वाहके कारण वे पुनः एक वार बौद्ध गुरुके पास गये। वहां उसने फिर उनको बहकाया और वे फिर हरिभद्रसे मिलने आये। हरिभद्रने पुनः समझाये और पुनः बौद्धाचार्यके पास गये। इस प्रकार २१ दफह उन्होंने गमनागमन किया। आखिरमें हरिभद्रने उन पर दया लाकर प्रबलतर्कपूर्ण ललितविस्तरा वृत्ति बनाई, जिसे पढ कर उनका मन सर्वथा निर्भ्रान्त हुआ और वे जैनधर्म ऊपर स्थिरचित्त हुए। इसके बाद उन्होंने १६ हजार श्लोक प्रमाण उपमितिभवप्रपञ्चा कथा बनाई और उसके अन्तमें उक्त प्रकारसे हरिभद्रसूरिकी प्रशंसा की।[२७]

इसी वृत्तान्तका यथावत् सूचक संक्षिप्त उल्लेख मुनिसुन्दरसूरिने उपदेशरत्नाकरमें, और रत्नशेखरसूरिने श्राद्धप्रतिक्रमणार्थदीपिका टीका (सं. १४९६) में किया है। दोनों उल्लेख क्रमशः इस प्रकार हैं:--

२७ देखो, प्रोफेसर मणिलाल नभुभाई द्विवेदीका किया हुआ और बडौदा राज्यकी ओरसे छपाया हुआ 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' का गुजराती भाषान्तर, पृ. ४७-४८।

(१) 'ये पुनः कुगुर्वादिसङ्गत्या सम्यग्दर्शनचारित्राणि वमन्ति ते शुभधर्मवासं प्रतीत्य वाम्याः । बौद्धसङ्गत्यैकविंशतिकृत्वोऽर्हद्धर्मत्यागिश्रीहरिभद्रसूरिशिष्यपश्चात्तदुपज्ञललितविस्तराप्रतिबुद्धश्रीसिद्धवत् ।'

–उपदेशरत्नाकर, पृ० १८

(२) 'मिथ्यादृष्टिसंस्तवे हरिभद्रसूरिशिष्यसिद्धसाधुर्ज्ञातम्, स सौगतमतरहस्यमर्मग्रहणार्थं गतः । ततस्तैर्भावितो गुरुदत्तवचनत्वान्मुत्कलापनायागतो गुरुभिर्बोधितो बौद्धानामपि दत्तवचनत्वान्मुत्कलापनार्थं गतः । एवमेकविंशतिवारान् गतागतमकारीति । तत्प्रतिबोधनार्थं गुरुकृतललितविस्तराख्यशक्रस्तववृत्त्या दृढं प्रतिबुद्धः श्रीगुरुपार्श्वे तस्थौ ।'

—श्राद्धप्रतिक्रमणार्थ दीपिका ।

इस प्रकार इन ग्रन्थकारोंके मतसे तो सिद्धर्षि साक्षात् हरिभद्रसूरि ही के हस्त-दीक्षित शिष्य थे। इनके मतको कहां तक प्रामाणिक समझना चाहिए, यह एक विचारणीय प्रश्न है। क्यों कि ये तो सिद्धर्षिके दीक्षागुरु, जो गर्गमुनि हैं और जिनकी पूर्व-गुरुपरंपरा तकका उल्लेख सिद्धर्षिने स्वयं अपनी कथाकी प्रशस्तिमें किया है, उनका सूचन तक बिल्कुल नहीं करते और खुद हरिभद्र ही के पास इनका दीक्षा लेना बतलाते हैं। सो यह कथन स्पष्टतया प्रमाण विरुद्ध दिखाई दे रहा है। सिवा सिद्धर्षि जैसे अपूर्व प्रतिभाशाली पुरुषको इस तरह २१ वार इधर उधर धक्के खिलाकर एक बिल्कुल भोंदूके जैसा चित्रित किया है इस लिये इनके कथनकी किंमत बहुत कम आंकी जा सकती है।

सिद्धर्षिके जीवन सम्बन्धी, प्रभावक चरित्र और प्रबन्धकोषके लेखकोंके उक्त मतोंसे कुछ भिन्न एक तीसरा मत भी है जो पडिवाल गच्छकी एक प्राकृत पट्टावलीमें मिलता है। यह पट्टावली कबकी बनी हुई है और कैसी विश्वसनीय है; सो तो उसे पूरी देखेविना नहीं कह सकते । मुनि धनविजयजीने चतुर्थस्तुतिनिर्णयशंकोद्धार नामक पुस्तकमें, इस पट्टावलीमेंसे प्रस्तुत विषयका जो पाठ उद्धृत किया है उसी परसे हम यहां पर यह तीसरा मत उल्लिखित कर रहे हैं। इस पट्टावलीके लेखकके मतसे सिद्धर्षिके मूल दीक्षागुरु तो गर्गाचार्य या गर्गमुनि ही थे-हरिभद्र नहीं। हरिभद्र और सिद्धर्षिके गुरुशिष्यभावके सम्बन्धमें पट्टावलीकारका कथन इस प्रकार है:—पूर्वोक्त कथानुसार, बौद्धसंसर्गके कारण जब सिद्धर्षिके विचारोंमें वारंवार परिवर्तन होने लगा तब उनके गुरु गर्गर्षिने हरिभद्रसूरीको, जो बौद्धमतके बडे भारी ज्ञाता थे, विज्ञप्ति की कि कोई ऐसा उपाय कीजिए कि जिससे सिद्धर्षिका मन स्वधर्ममें स्थिर हो जाय। फिर सिद्धर्षि जब अपने गुरुके पास पुनर्मीलनके लिये आये तब हरिभद्रने उनको बहुत कुछ समझाया परन्तु वे सन्तुष्ट न हुए और वापस बौद्धमठमें चले गये। इससे फिर हरिभद्रने तर्कपूर्ण ऐसी ललितविस्तरा वृत्ति बनाई। इसके बाद हरिभद्रका मृत्यु हो गया। मरते समय वे गर्गाचार्यको वह वृत्ति सोंपते गये और कहते गये कि अब जो सिद्धर्षि आवें तो उन्हें यह वृत्ति पढनेको देना। गर्गाचार्यने बादमें ऐसा ही किया और अन्तमें उस वृत्तिके अवलोकनसे सिद्धर्षिका मन स्थिर हुआ। इसी लिये उन्होंने हरिभद्रको अपना गुरु माना और उस वृत्तिको 'मदर्थं निर्मिता' बतलाई।

२८ इस पट्टावलीमें, सिद्धर्षिके गुरु गर्गाचार्य और उनके गुरु दुर्ग स्वामीके स्वर्गमनकी साल भी लिखी हुई है। यथा 'अह दुग्गसामी विक्कमओ ९०२ वरिसे देवलोयं गतो । तस्सीसो सिरिसेणो आयरियपए ठिओ । गग्गायरियावि विक्कमओ ९१२ वरिसे कालं गया तप्पए सिद्धायरिओ । एवं दो आयरिया विहरई ।' अर्थात्-दुर्गस्वामी विक्रमसंवत् ९०२ में स्वर्ग गये। उनके शिष्य श्रीषेण आचार्य पद ऊपर बैठे । गर्गाचार्य भी विक्रम संवत् ९१२ में मरणशरण हुए। उनके पट्ट पर सिद्धर्षि बैठे । इस प्रकार श्रीषेण और सिद्धर्षि दोनों आचार्य एक साथ रहते थे । यदि यह कथन सच है तो इसके ऊपरसे सिद्धर्षिके दीर्घायु होनेका अनुमान किया जा सकता है। क्यों कि उनके गुरु गर्गस्वामी जब ९१२ में मृत्यु प्राप्त हुए थे, तो कमसे कम १०-१२ वर्ष पहले तो सिद्धर्षिने उनके पास दीक्षा अवश्य ही ली

इस प्रकार हरिभद्र और सिद्धर्षिके सम्बन्धके विषयमें जैन ग्रन्थकारोंके तीन भिन्न भिन्न मत उपलब्ध होते हैं। तीनों मतोंमें यह एक बात तो समान रूपमें उपलब्ध होती है कि सिद्धर्षिका चित्त बौद्ध संसर्गके कारण स्वधर्म ऊपरसे चलायमान हो गया था और वह फिर हरिभद्रसूरिकी बनाई हुई ललितविस्तरा वृत्तिके अवलोकनसे पुनः दृढ हुआ था। इस कथनसे, सिद्धर्षिने ललितविस्तरा वृत्तिके लिये जो 'मदर्थं निर्मिता' ऐसा उल्लेख किया है, उसकी संगति तो एक प्रकारसे लग जाती है; परंतु मुख्य बात जो हरिभद्र और सिद्धर्षिके बीचमें गुरुशिष्यभावके विषयकी है, उसके बारेमें इन ग्रन्थकारोंमें, उक्त प्रकारसे, परस्पर बहुत कुछ मत-भेद है। और इस लिये सिद्धर्षिके

'आचार्यहरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः।'

इस उल्लेखकी संगति उनके जीवनकथा-लेखकोंके लेखोंके आधार ऊपरसे ठीक ठीक नहीं लगाई जा सकती।

सिद्धर्षिके चरित्रलेखकोंके मतोंका एकंदर सार इस प्रकार हैः—

(१) प्रभावकचरित्रके मतसे सिद्धर्षि गर्गर्षि या गर्गमुनिके शिष्य थे। हरिभद्रका उन्हें कभी साक्षात् समागम नहीं हुआ था। केवल उनकी बनाई हुई ललितविस्तरा वृत्तिके पढनेसे उन्हें स्वधर्मपर पुनः श्रद्धा हुई थी, इस लिये कृतज्ञता ज्ञापन करनेके लिये उन्होंने हरिभद्रसूरिको अपना धर्मबोधकर गुरु लिखा है।

(२) प्रबन्धकोषके मतसे सिद्धर्षि स्वयं हरिभद्र ही के हस्त दीक्षित शिष्य थे। गर्गमुनि वगैरहका कोई सम्बन्ध नहीं था। हरिभद्रके शिष्य होनेके कारण अर्थात् वे उनके समकालीन ही थे।

(३) पाडिवालगच्छीय पट्टावलिके मतसे सिद्धर्षिके दीक्षागुरु तो गर्गस्वामी ही थे। परंतु हरिभद्रसूरिका समागम भी उनको हुआ था। इस लिये वे दोनों कुछ कालतक समकालीन अवश्य थे।

सिद्धर्षिके विषयमें एक और उल्लेख हमारे देखनेमें आया है जिसे हम प्रमाणकी दृष्टिसे नहीं किन्तु विचित्रताकी दृष्टिसे यहां पर सूचित किये देते हैं। जैन श्वे० कॉन्फरन्स हेरल्ड नामक मासिक पत्रके सन् १९१५ के जुलाई-अक्टोबर मासके संयुक्त अंकमें, एक गुजराती भाषामें लिखी हुई तपागच्छकी अपूर्ण पट्टावली छपी है। इस पट्टावलीमें हरिभद्रसूरिका भी वर्णन दिया गया है। इस वर्णनके अंतमें लिखा है कि, सिद्धर्षि हारिभद्रके भाणेज (भागिनेय) थे और उन्होंने उपमितिभवप्रपञ्चा कथा, श्रीचंद्रकेवलीचरित्र तथा विजयचंद्रकेवली चरित्र नामके ग्रन्थ बनाये थे (—देखो उक्त पत्र, पृ० ३५१)।

प्रभावक चरित्रमें सिद्धर्षिके सम्बन्धमें जो जो बातें लिखी हैं उनमें दो बातें और भी ऐसी हैं जो उनके समयका विचार करते समय उल्लित कर दी जाने योग्य हैं। पहली बात यह है कि, सिद्धर्षिको सुप्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य शिशुपालवधके कर्ता कवीश्वर माघके चचेराभाई (पितृव्यपुत्र) लिखे हैं;[29] और दूसरी बात यह है कि, कुवलयमाला कथाके कर्ता दाक्षिण्यचिन्ह सूरिको सिद्धर्षिके गुरुभ्राता बतलाये हैं।[30] परंतु महाकवि माघका समय ईस्वीकी ७ वीं शताब्दीका मध्य भाग निश्चित किया गया है;[31] और कुवलयमाला कथाके कर्ता दाक्षिण्यचिन्हसूरिका समय जैसा कि हम बतलायेंगे ई. स. की ८ वीं शताब्दीका अंतिम भाग निर्णीत है। इस कारणसे, जब तक सिद्धर्षिका लिखा हुआ उक्त ९६२ का वर्ष, एक तो प्रक्षिप्त या झूठा नहीं सिद्ध होता; और दूसरा वह विक्रम संवत्के

होगी। इधर ९६२ में उन्होंने अपनी कथा समाप्त की है। दीक्षा लेनेके पूर्वमें भी कमसे कम १५–२० वर्षकी उम्र होनी चाहिए। इस हिसाबसे उनकी आयु न्यूनसे न्यून भी ८० वर्षकी तो अवश्य होनी चाहिए।

२९. देखो, प्रभावकचरित्र–सिद्धर्षिप्रबन्ध, श्लो. ३-२०।

३० ,, ,, ,, ,, ८९।

३१ देखो, डॉ. जेकोबीकी उप०की प्रस्तावना, पृ. १३; तथा, श्रीयुत केशवलाल हर्षधराय ध्रुवका गुजराती अमरुशतक, प्रस्तावना, पृ. ९ (४ थी आवृत्ति)।

सिवा और किसी संवत्का साबित नहीं किया जाता, तब तक प्रभावकचरित्रकी ये दोनों बातें कपोलकल्पित ही माननी पडेंगीं।

डॉ.मिरोनौ (Dr. N. Mironow) ने Bulletin de l'Académie Imperiale des Sciences de St.-Petersburg, 19 " में सिद्धर्षि ऊपर एक लेख प्रकाशित किया है जिसमें श्रीचंद्रकेवलीचरित्र नामक ग्रंथमें से निम्न लिखित दो श्लोक उद्धृत किये हैं[३२]।

वस्वङ्केषु (५९८) मिते वर्षे श्रीसिद्धर्षिरिदं महत्।
प्राक् प्राकृतचरित्राद्धि चरित्रं संस्कृतं व्यधात्॥

तस्मान्नानार्थसन्दोहादुद्धृतेयं कथात्र च।
न्यूनाधिकान्यथायुक्तेर्मिथ्यादुष्कृतमस्तु मे॥

इन श्लोकोंका सार मात्र इतना ही है कि— सिद्धर्षिने संवत् ५९८ में, प्राकृत भाषामें बने हुए पूर्वके श्रीचंद्रकेवलीचरित्र ऊपरसे संस्कृतमें नया चरित्र बनाया था। सिद्धर्षि अपनी उपमि० कथाके बननेका संवत्सर ९६२ लिखते हैं और इस चरित्रमें ५९८ वर्षका उल्लेख किया हुआ है। इस प्रकार इन दोनों वर्षोंके बीचमें ३६४ वर्षका अन्तर रहता है। इस लिये डॉ. मिरोनौका कथन है कि यदि इस ५९८ वें वर्षको गुप्त संवत् मान लिया जाय तो इस विरोधका सर्वथा परिहार हो जाता है। क्यों कि ५९८ गुप्त संवत्में ३७६ वर्ष सामिल कर देने पर विक्रम संवत् ९७४ हो जाता है और यह समय सिद्धर्षिके उपमि० कथावाले संवत्सर ९६२ के समीपमें आ पहुंचता है।

इस प्रकार सिद्धर्षिके समयादिके बारेमें जितने उल्लेख हमारे देखनेमें आये हैं उन सबका सार हमने यहां पर दे दिया है। हरिभद्रसूरिके समय-विचारके साथ सिद्धर्षिके समय-विचारका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे हमें यहां पर इस विषयका इतना विस्तार करनेकी आवश्यकता पडी है।

सिद्धर्षि-विषयक इन उपर्युक्त उल्लेखोंसे पाठक यह जान सकेंगे कि हरिभद्रसूरि और सिद्धर्षिके गुरुशिष्यभावके सम्बन्धमें, और इसी कारणसे इन दोनोंके सत्ता-समयके विषयमें जैन ग्रन्थकारोंके परस्पर कितने विरुद्ध विचार उपलब्ध होते हैं। परंतु आश्चर्य यह है कि इन इतने विचारोंमेंभी कोई ऐसा निश्चित और विश्वसनीय विचार हमें नहीं मालूम देता, जिसके द्वारा इस प्रश्नका निराकरण किया जा सके कि हरिभद्र और सिद्धर्षिके बीचके गुरुशिष्यभावका क्या अर्थ है?-वे दोनों समकालीन थे या नहीं?। इस लिये अब हमको,इन सब उल्लेखोंको यहीं छोड कर, खुद सिद्धर्षि और हरिभद्र ही के ग्रन्थोंके आन्तर प्रमाणोंका ऊहापोह करके; तथा अन्य ग्रंथोंमें मिलते हुए इसी विषयके संवादी उल्लेखोंके पूर्वापरभावका यथासाधन विचार करके, उनके द्वारा इन दोनों महात्माओंके सम्बन्ध और समयकी मीमांसा करनेकी आवश्यकता है। उसके सिवा, इस विषयका निराकरण होनी अशक्य है।

इस विषयके विचारके लिये हमने जितने प्रमाण संगृहीत किये हैं उनकी विस्तृत विवेचना करनेके पहले, हम यहां पर जैनदर्शनदिवाकर डॉ. हर्मन जेकोबीने बडे परिश्रमके साथ, प्रकृत विषयमें कितनेएक साधकबाधक प्रमाणोंका सूक्ष्मबुद्धिपूर्वक ऊहापोह करके, स्वसंपादित उपमितिभवप्रपञ्चाकी प्रस्तावनामें जो विचार प्रकाशित किये हैं उनका उल्लेख करना मुनासब समझते हैं।

डॉ. साहब अपनी प्रस्तावनामें सिद्धर्षिके जीवनचरित्रके बारेमें उल्लेख करते हुए, प्रारंभमें उपमितिकी प्रशस्तिमें जो गुरुपरंपरा लिखी हुई है उसका सार दे कर हरिभद्रकी प्रशंसावाले पद्योंका अनुवाद देते हैं। और फिर लिखते हैं कि—

"मेरा विश्वास है कि हरिभद्र और सिद्धर्षि विषयक इन उपर्युक्त श्लोकोंके पढनेसे सभी निष्पक्षपात पाठकोंको निश्चय हो जायगा कि इनमें शिष्यने अपने साक्षात् गुरुका वर्णन किया है परंतु 'परंपरागुरु' का नहीं। जिन प्रथम युरोपीय विद्वान् प्रो. ल्युमनने (जर्मन ओरिएन्टल सोसायटिका जर्नल, पु. ४३ पृ. ३४८ पर) इन श्लोकोंका अर्थ किया है उनका भी यही मंतव्य था, और हमारे

३२ डॉ. जेकोबीने भी अपनी उप०की प्रस्तावनाके अंतमें, साक्षिप्त टिप्पणके साथ इन श्लोकोंको छपवा दिये हैं।

इस अनुमानकी, उपमितिभवप्रपंचाके प्रथम प्रस्तावमें सिद्धर्षिने जो हकीकत लिखी है उससे, पुष्टि भी होती है। वहां पर, भिक्षुक निष्पुण्यक आत्मसुधारके प्रारंभसे ले कर अन्तमें जब वह अपना कुत्सित भोजन फेंक देता है और पात्रको धोकर स्वच्छ कर डालता है; अर्थात् आलंकारिक भाषाको छोड कर सीधे शब्दोंमें कहें तो, जब वह दीक्षा ले लेता है तब तक उस भिक्षुकको–इस सारे समय में–धर्मबोधकर गुरु उपदेश देने वाले और रास्ता बतानेवाले वर्णित किये गये हैं। सिद्धर्षि स्वयं कहते हैं कि इस रूपककथामें वर्णित धर्मबोधकर गुरु आचार्य हरिभद्र ही हैं, और भिक्षुक निष्पुण्यक स्वयं मैं ही हूं। इससे स्पष्टतया जाना जाता है कि सिद्धर्षिको दीक्षा लेने तक सद्बोध देनेवाले और सन्मार्ग पर लानेवाले साक्षात हरिभद्र ही थे।

"यद्यपि सिद्धर्षिके स्वकीय कथनानुसार वे हरिभद्रके समकालीन ही थे, परंतु जैनग्रन्थोक्त दन्तकथा, इन दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंके बीचमें ४ शताब्दी जितना अन्तर बतलाती है। जैन परंपरा मुताबिक हरिभद्रका मृत्यु संवत ५८५ में हुआ था और उपमितिभवप्रपञ्चाकी रचना, रचयिताके उल्लेखानुसार ९६२ में हुई थी। हरिभद्र और सिद्धर्षिके बीचमें समय-व्यवधान बतलानेवाली दन्तकथा १३ वें शतकमें भी प्रचलित थी, ऐसा मालूम देता है। क्यों कि प्रभावकचरित्रकार हरिभद्र और सिद्धर्षिके चरित्रोंमें, इन दोनोंके साक्षात्कारके विषयमें कुछ भी नहीं लिखते। यद्यपि, वे इनके समयके सूचक वर्षोंका उल्लेख नहीं करते हैं, तथापि, इन दोनोंको वे समकालीन मानते हों ऐसा बिलकुल मालूम नहीं देता। क्यों कि वैसा मानते तो इनके चरित्रोंमें इस बातका अवश्य उल्लेख करते। तथा इन दोनोंके चरित्र जो दूर दूर पर दिये हैं, –हरिभद्रका चरित्र ९ वें सर्गमें और सिद्धर्षिका १४ वें सर्ग दिया है–वैसा न करके पासपासमें देते। प्रस्तुत विषयमें इस दन्तकथाके वास्तविक मूल्यका निर्णय करनेके लिये हरिभद्र और सिद्धर्षिके समय विचारकी, और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे विषयोंकी पर्यालोचना करनी आवश्यक है।

"कथाकी प्रशस्तिके अन्तमें सिद्धर्षि लिखते हैं कि, यह ग्रन्थ, संवत् ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल ५मी गुरुवारके दिन जब चन्द्र पुनर्वसु नक्षत्रमें विद्यमान था, तब समाप्त हुआ। इसमें यह नहीं लिखा हुआ है कि, यह ९६२ का वर्ष वीर, विक्रम, गुप्त, शक आदिमेंसे कौनसे संवत्सरका है। यदि यह वर्ष विक्रम संवत्का मान लिया जाय तो उस दिनके विषयमें लिखे गये वार आदि सब ठीक ठीक मिल जाते हैं। विक्रम संवत् ९६२ के ज्येष्ठ शुक्ल ५मी के दिन ईस्वी सन् ९०६के मई मासकी १ली तारीख आती है। उस दिन चन्द्रमा सूर्योदयसे लेकर मध्यान्हकालके बाद तक पुनर्वसु नक्षत्र में था। वार भी गुरु ही था। परंतु इस वर्षको वीर संवत माने तो उस दिन ई. स. ४३६ के मई मासकी ७ वीं तारीख आती है। वार उस दिन भी गुरु ही आता है, परंतु चंद्रमा सूर्योदयके समय पुष्य नक्षत्रमें रह कर फिर दो घंटे बाद अश्लेषा नक्षत्रमें चला जाता है। इस लिये नक्षत्र बराबर नहीं मिलता। अतः प्रस्तुत संवत वीरसंवत् नहीं होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि, यदि इसे वीरसंवत् माना जाय तो वह विक्रम संवत् ४९२ होता है और इससे तो सिद्धर्षि अपने गुरु हरिभद्र, जो दंतकथाके कथनानुसार विक्रम संवत् ५८५ में स्वर्गस्थ हुए, उनसे भी पूर्वमें हो जानेवाले सिद्ध होते हैं। इस लिये सिद्धर्षिका संवत् निस्सन्देह विक्रम संवत् ही है और वह ई. स. ९०६ बराबर है।'

"जैन परंपरा प्रचलित दन्तकथा मुजब हरिभद्रका मृत्यु समय विक्रम संवत् ५८५ (ई. स. ५२९) अर्थात वीर संवत् १०५५ है। यह समय हरिभद्रके ग्रन्थोंमें लिखी हुई कितनीएक बातोंके साथ सम्बद्ध नहीं होता। षड्दर्शनसमुच्चय नामक ग्रन्थमें हरिभद्र दिग्नाग शाखाके बौद्धन्यायका संक्षिप्त सार देते हैं, उसमें प्रत्यक्षकी व्याख्या 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तं' ऐसी दी हुई है। यह व्याख्या न्यायबिन्दुके प्रथम परिच्छेदमें धर्मकीर्तिकी दी हुई व्याख्याके साथ शब्दशः मिलती है। दिग्नागकी व्याख्यामें 'अभ्रान्त' शब्द नहीं मिलता उनकी

व्याख्या इस प्रकार है—' प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नाम-जात्याद्यसंयुतम् ।' (देखो, न्यायवार्तिक, पृ. ४४; तात्पर्य टीका, पृ. १०२; तथा सतीशचन्द्र विद्याभूषण लिखित—मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास, पृ. ८५, नोट २.) हरिभद्रसूरिकी दी हुई व्याख्यामें आवश्यकीय 'अभ्रान्त' शब्दकी वृद्धि हुई है, इस लिये जाना जाता है कि उन्होंने धर्मकीर्तिका अनुकरण किया है। धर्मकीर्तिका समय जैन दन्तकथामें बतलाये गये हरिभद्रके मृत्युसमयसे १०० वर्ष पीछे माना जाता है। इस लिये हारिभद्रका यह संवत् सत्य नहीं होना चाहिए। पुनः षड्दर्शनसमुच्चयके ११ वें श्लोकमें हरिभद्रसूरि बौद्धन्याय सम्मत लिंग (हेतु) के तीन रूप इस प्रकार लिखते हैं--

रूपाणि पक्षधर्मत्वं सपक्षे विद्यमानता ।
विपक्षे नास्तिता हेतोरेवं त्रीणि विभाव्यताम् ॥

यह बौद्ध न्यायका सुज्ञात सिद्धान्त है, परंतु हरिभद्र प्रयुक्त पक्षधर्मत्व पद खास ध्यान खींचने लायक है। क्यों कि न्यायशास्त्रके पुराणे ग्रन्थोंमें यह पद दृष्टिगोचर नहीं होता। प्राचीन न्यायग्रन्थोंमें इस पदवाच्य भावको दूसरे शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। यह पद न्यायग्रन्थोंमें पीछेसे प्रयुक्त होने लगा है। इससे जाना जाता है कि हारिभद्रसूरि, कहे जानेवाले समयसे बादमें हुए होने चाहिए। अष्टक प्रकरण नामक अपने ग्रन्थके ४ थे अष्टकमें हरिभद्र सूरिने शिवधर्मोत्तरका उल्लेख किया है। इससे भी यही बात जानी जाती है; क्यों कि अज्ञात समयका यह ग्रन्थ बहुत पुरातन हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। शंकरकी श्वेताश्वतर उपनिषद्की टीकामें इस ग्रंथका नाम मिलता है। यदि, हारिभद्रसूरिके ग्रन्थोंका ठीक ठीक अभ्यास किया जाय, और उनका बराबर शोध लगाया जाय तो, दन्तकथामें बतलाये हुए समयसे वे अर्वाचीन समयमें हुए थे, इसका प्रायः निर्णय हो जायगा।

"हारिभद्रसूरिके स्वर्गमनकी साल (जो विक्रम संवत् ५८५ और वीर संवत् १०५५ है) १६ वी शताब्दीसे प्राचीन नहीं ऐसे ग्रन्थोंमेंसे मिल आती है। पिछले ग्रन्थकारोंने यह साल मनगढन्त खडी कर दी है, ऐसा कहनेका मेरा आशय नहीं है, परंतु वास्तविक बातका भ्रान्त अर्थ करनेके कारण यह भूल उत्पन्न हुई है, ऐसा मैं समजता हूं। अन्तिम नोटमें (-देखो नीचे* दी हुई टिप्पणी) दिखलाये हुए मेरे अनुमानका स्वीकार करके प्रो० ल्युमन लिखते हैं (जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटिका जर्नल पु. ४३ पृ. ३४८.) कि ' अन्यान्य सालोंके (वही जर्नल पु. ३७, पृ. ५४० नोट.) समान हरिभद्रके स्वर्गमनकी सालके बारेमें भी संवत् लिखनेमें ग्रंथकारोंको भ्रान्ति हुई है। ५८५ की जो साल है वह वीर या विक्रम संवत् की नहीं है परंतु गुप्त संवत् की है। गुप्त संवत् ईस्वी सन् ३१९ में शुरू हुआ था। इस हिसाबसे हरिभद्रके स्वर्गमनकी साल ई. स. ९०४ आती है; अर्थात् उपमितिभवप्रपञ्चाकी रचनासमाप्तिके २ वर्ष पहले आती है। यह कथन सच हो सकता है; परन्तु, दन्तकथामें प्रचलित वीर संवत् की १०५५ वाली साल ली जाय और भ्रान्ति (भूल) उसमेंसे उत्पन्न हुई है ऐसा माना जाय तो इस दन्तकथावाली सालमें होनेवाली भ्रान्तिका खुलासा एक दूसरी तरह से भी किया जा सकता है। इस कल्पनाके करनेमें मुझे निम्न लिखित कारण मिलता है। 'पउमचरियं' नामक ग्रन्थके अन्तमें, उसके कर्ता विमलसूरि कहते हैं कि, यह ग्रन्थ उन्होंने वीर निर्वाण बाद ५३० (दूसरी पुस्तकमें ५२०) वे वर्षमें बनाया है। ग्रन्थकर्ताके इस कथनको नहीं माननेमें कोई कारण नहीं है। परंतु वह ग्रंथ ईस्वीसन्के ४ थे वर्षमें बना था, यह मानना कठिन लगता है। मेरे अभिप्रायके मुताबिक 'पउमचरियं' ईस्वीसन्की ३ री या ४ थी शताब्दीमें बना हुआ होना चाहिए। चाहे जैसा हो; परन्तु पूर्वकालमें महावीर निर्वाण काल-

*जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटिके जर्नलकी ४० वीं जिल्दमें, पृ. ९४ पर, मैंने लिखा है कि–हरिभद्रसूरि और शीलाङ्काचार्य दोनोंके गुरु जिनभद्र या जिनभट थे, इस लिये वे दोनों समकालीन थे। शीलाङ्कने आचाराङ्गसूत्र ऊपर ७९८, ई. स. ८७६ में टीका लिखी है।

की गणना वर्तमान गणनाकी तरह एक ही प्रकार-से नहीं होती थी। ऐसा सन्देह लानेमें कारण मिलते हैं; और अगर ऐसा न हो तो भी प्राचीन कालमें निर्वाण समयकी गणनामें भूल अवश्य चली आती थी, जो पीछेसे सुधार ली गई है ।"

—डॉ. जेकोबीकी उपमि० प्रस्तावना, पृ. ६–१०।

डॉ. साहबके इस सब कथनका एकंदर सार इतना ही है कि वे हरिभद्र और सिद्धर्षि--दोनोंको समकालीन मानते हैं और उनका समय सिद्धर्षि-के लेखानुसार विक्रमकी १० वीं शताब्दी स्वीकरणीय बतलाते हैं। हरिभद्रकी मृत्यु-संवत् सूचक गाथामें जो ५८५ वर्षका जिकर है वह वर्ष विक्रम संवत्सरका नहीं परंतु गुप्त संवत्सरका समझना चाहिए। गुप्त संवत् और विक्रम संवत्के बीचमें ३७६ वर्ष का अन्तर रहता है। इस लिये ५८५ में ३७६ मिलानेसे ९६१ होते हैं। इधर सिद्धर्षिकी कथाके ९६२ में समाप्त होनेका स्पष्ट उल्लेख है ही। अतः वे दोनों बराबर समकालीन सिद्ध हो जाते हैं। हरिभद्रके मृत्यु संवत् ५८५ को विक्रमीय न माननेमें मुख्य कारण, एक तो सिद्धर्षि जो उनको अपना गुरु बतलाते हैं वह है, और दूसरा यह है कि हरिभद्रके निजके ग्रन्थोंमें ऐसे ग्रन्थकारोंका उल्लेख अथवा सूचन है, जो विक्रमीय ६ ठी शताब्दीके बाद हुए हैं। इस लिये उनका उतने पुराणे समयमें होना दोनों तरहसे असंगत है।

[टिप्पणी- मुनि धनविजयजीने चतुर्थस्तुतिनिर्णयशंकोद्धार नामक पुस्तकमें हरिभद्र और सिद्धर्षिके समकालीन होनेमें कुछ दो–एक और दूसरे प्रमाण दिये हैं जिन्हें भी संग्रहकी दृष्टिसे यहां पर लिख देते हैं। उन्होंने एक प्रमाण खरतर गच्छीय रंगविजय लिखित पट्टावलीका दिया है। इस पट्टावलीमें वि. सं. १०८० में होनेवाले जिनेश्वरसूरिसे पूर्वके ४ थे पट्ट ऊपर हरिभद्रसूरि हुए, ऐसा उल्लेख है। अर्थात जिनेश्वरसूरि ३३ वें पट्टधर थे और हरिभद्रसूरि २९ वें पट्टधर। इस उल्लेखानुसार, मुनि धनविजयजीका कहना है कि, १०८० मेंसे ४ पट्टके २५० वर्ष निकाल देनेसे शेष ८३० वर्ष रहते हैं, सो इस समयमें हरिभद्रसूरि हुए होंगे। (जब इस उल्लेख के आधार पर हरिभद्रको सिद्धर्षिके समकालीन सिद्ध करना है तो फिर ४ पट्टके २५० वर्ष जितने अव्यवहार्य संख्यावाले वर्षोंके निकालनेकी क्या जरूरत है। ऐतिहासिक विद्वान् सामान्य रीतिसे एक मनुष्यके व्यावहारिक जीवनके २० वर्ष गिनते हैं और इस प्रकार एक शताब्दीमें पांच पुरुष-परंपराके हो जानेका साधारण सिद्धान्त स्वीकार करते हैं। इस लिये ४ पट्टके ज्यादहसे ज्यादह सौ सवासौ वर्ष बाद कर, हरिभद्रको सीधे सिद्धर्षिके समकालीन मान लेनेमें अधिक युक्ति संगतता है।)

दूसरा प्रमाण धनविजयजीने यह दिया है कि–रत्नसंचय प्रकरणमें, निम्न लिखित गाथार्धमें हरिभद्रका समय वीर संवत् १२५५ लिखा है। यथा—

'पणपण्णबारससए हरिभद्दो सूरि आसि पुव्वकए'

इस गाथाके 'टवार्थ' में लिखा है कि—'वीरथी बारसें पंचावन वर्षे श्रीहरिभद्रसूरि थया। पूर्वसंघ (?) ना करनार।' इस पर धनविजयजी अपनी टिप्पणी करते हैं कि, वीर संवत् १२५५ मेंसे ४७० वर्ष निकाल देनेपर विक्रम संवत् ७८५ आते हैं। संभव है कि, हरिभद्र सूरिका आयुष्य सौ वर्ष जितना दीर्घ हो और इस कारणसे वे सिद्धर्षिके, निदान बाल्यावस्थामें तो, समकालीन हो सकते हैं (!)।

तीसरा प्रमाण उन्होंने यह लिखा है:–दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रकी टीकाके कर्ता ब्रह्मर्षिने 'सुमतिनागिलचतुष्पदी' में लिखा है कि, महानिशीथसूत्रके उद्धारकर्ता हरिभद्रसूरि वीरनिर्वाणबाद १४०० वर्षमें हुए। यथा—

'वरस चउदसे वीरह पछे,
ए ग्रंथ लखिओ तेणे अ छे।
दसपूर्वलग सूत्र कहाय,
पछे न एकान्ते कहवाय॥'

इस कथनानुसार विक्रम संवत ९३० में हरिभद्र हुए सिद्ध होते हैं। उनके बाद ३२ वें वर्षमें सिद्धर्षिने उपमितिभवप्रपञ्चा कथा बनाई। इस प्रमाणानुसार भी ये दोनों समकालीन ही सिद्ध होते हैं।]

जेकोबी साहबने हरिभद्रसूरिके समग्र ग्रन्थ देखे विना ही–केवल षड्दर्शनसमुच्चयमेंके बौद्धन्यायसम्मत प्रत्यक्ष प्रमाणके लक्षणको देख कर ही–उन्होंने जो धर्मकीर्तिके बाद हरिभद्रके होनेका अनुमान किया है, वह निःसन्देह उनकी शोधक बुद्धि और सूक्ष्म प्रतिभाका उत्तम परिचय देता है। क्यों कि, जैसा हम आगे चल कर सविस्तर लिखेंगे, हरिभद्रने केवल धर्मकीर्तिकथित लक्षणका अनुकरण मात्र ही नहीं किया है, परंतु उन्होंने ब-

पने अनेकान्तजयपताकादि दूसरे ग्रन्थोंमें इन महान् बौद्ध तार्किकके हेतुबिन्दु आदि ग्रन्थोंमेंसे अनेक अवतरण भी दिये हैं और पचासों वार साक्षात् उनका स्पष्ट नामोल्लेख तक भी किया है। इस लिये डॉ. साहबका यह अनुमान निःसन्देहरूपसे सत्य है कि धर्मकीर्ति हरिभद्रके पुरोगामी थे। परंतु इस प्रमाण और कथनसे हरिभद्रका सिद्धर्षिके साथ एक कालमें होना हम नहीं स्वीकार सकते। यदि डॉ. जेकोबीके कथनके विरुद्ध जानेवाला कोई निश्चित प्रमाण हमें नहीं मिलता, तब तो उनके उक्त निर्णयमें भी अविश्वास लानेकी हमें कोई जरूरत नहीं होती और नाही इस विषयके पुनर्विचारकी आवश्यकता होती। परंतु हमारे सम्मुख एक ऐसा असन्दिग्ध प्रमाण उपस्थित है जो स्पष्टरूपसे डॉ. साहबके निर्णयके विरुद्ध जाता है। इसी विरुद्ध प्रमाणकी उपलब्धिके कारण इस विषयकी हमें फिरसे जांच करने की जरूरत मालूम पडी और तदनुसार प्रकृत उपक्रम किया गया है।

अपनी इस जांचके परिणाममें हमें जो जो नये प्रमाण मिले हैं उनको क्रमशः उल्लिखित करनेके पहले और उन प्रमाणोंके आधार पर जो सिद्धान्त हमने स्थिर किया है उसका विस्तृत स्वरूप बतलानेके पहले, पाठकोंके ज्ञानसौकर्यार्थ, अपने निर्णयका सारांश हम प्रथम यहीं पर कह देते हैं कि, हमारे शोधके मुताबिक हरिभद्रसूरि न तो उक्त प्राकृत गाथा आदि लेखोंमें बतलाये मुजिब ६ ठी शताब्दी में विद्यमान थे; और न डॉ. जेकोबी साहब आदि लेखकोंके कथनानुसार, सिद्धर्षिके समान १० वीं शताब्दीमें मौजूद थे। परंतु श्रमण भगवान् श्रीमहावीरदेव प्ररूपित आर्हत दर्शनके अजरामर सिद्धान्तस्वरूप 'अनेकान्तवाद' की 'जयपताका' को भारतवर्षके आध्यात्मिक आकाशमें उन्नत उन्नततर रूपसे उडाने वाले ये 'श्वेतभिक्षु' महात्मा अपने उज्ज्वल और आदर्श जीवनसे, आठवीं शताब्दीके सौभाग्यको अलंकृत करते थे।

अपने इस निर्णयको प्रमाणित करनेके लिये हमें केवल दो ही बातोंका समाधान करना होगा। एक तो सिद्धर्षिने जो हरिभद्र सूरिको अपने धर्मबोधकर गुरु बतलाये हैं, उसका क्या तात्पर्य है, इस बातका: और दूसरा, प्राकृत गाथामें और उसके अनुसार अन्यान्य पूर्वोक्त ग्रन्थोंमें हरिभद्रका स्वर्गगमन जो विक्रम संवत्के ५८५ वें वर्षमें लिखा है उसका स्वीकार क्यों नहीं किया जाता, इस बातका। इसमें पहली बातका-सिद्धर्षिके लिखे हुए हरिभद्रपरक गुरुत्वका-समाधान इस प्रकार है—

उपमितिभवप्रपञ्चा कथामें लिखे हुए सिद्धर्षिके एतद्विषयक वाक्योंका सूक्ष्मबुद्धिपूर्वक विचार किया जाय और उनका पूर्वापर सम्बन्ध लगाया जाय तो प्रतीत होगा कि, सिद्धर्षि हरिभद्रको अपने साक्षात् (प्रत्यक्ष) गुरु नहीं मानते परंतु परोक्षगुरु-अर्थात् आरोपितरूपसे गुरु-मानते हैं। उपमि० की प्रशस्तिमें जो उन्होंने अपनी गुरुपरंपरा दी है, उसका विचार यहां अवश्य कर्तव्य है। इस प्रशस्तिके पाठसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सिद्धर्षिके दीक्षाप्रदायक गुरु गर्गर्षि थे-अर्थात् उन्होंने गर्गर्षिके हाथसे दीक्षा ली थी। प्रशस्तिके सातवें पद्यमें यह बात स्पष्ट लिखी हुई है। यथा—

सद्दीक्षादायकं तस्य स्वस्य चाहं गुरूत्तमम्।
नमस्यामि महाभागं गर्गर्षिमुनिपुङ्गवम्॥

प्रशस्तिके पाठसे यह भी ज्ञात होता है कि, गर्गर्षि मात्र सिद्धर्षिके 'दीक्षा गुरु' थे, बाकी और सब प्रकारका गुरुभाव उन्होंने दुर्गस्वामीमें स्थापित किया है। क्यों कि दुर्गस्वामीकी प्रशंसामें जब उन्होंने ५-६ श्लोक लिखे हैं और अपनेको उनका 'चरणरेणुकल्प' लिखा है, तब गर्गर्षिको केवल एक श्लोकमें नमस्कार मात्र किया है। साथमें इस उपर्युद्धृत श्लोकमें दुर्गस्वामीको भी दीक्षा देने वाले गर्गर्षि ही बतलाये हैं। इससे यह भी अनुमान होता है कि, शायद, गर्गर्षि मूल सूराचार्यके शिष्य और देल्लमहत्तरके गुरुबन्धु होंगे।[३३] उन्होंने

[३३] ऊपरका कथन लिखे बाद पीछेसे जब प्रभावकचरित्र में देखा तो उसमें वही बात लिखी मिली जो हमने अनुमानित की है। अर्थात् प्रभा० कारने गर्गर्षिको सूराचार्य ही के 'विनेय' (शिष्य) लिखे हैं। यथा—

'आसीन्निर्वृत्तिगच्छे च सूराचार्यो धियां निधिः।
तद्विनेयश्च गर्गर्षिरहं दीक्षागुरुस्तव॥'

प्रभावकचरित्र, पृ० २०१, श्लो. ८५।

दुर्गस्वामीको दीक्षा अपने हाथसे दी होगी, परंतु गुरुतया देल्लमहत्तरका नाम प्रकट किया होगा (–ऐसा प्रकार आज भी देखा जाता है और दूसरे जुने ग्रन्थोंमें इस प्रकारके उदाहरणोंके अनेक उल्लेख भी मिल आते हैं)। सिद्धर्षिको भी उन्होंने या तो दुर्गस्वामीके ही नामसे दीक्षा दी होगी, अथवा अपने नामसे दीक्षा देकर भी उनको दुर्गस्वामीके स्वाधीन कर दिये होंगे, जिससे शास्त्राभ्यास आदि सब कार्य उन्होंने उन्हींके पास किया होगा। और इस कारणसे सिद्धर्षिने मुख्य कर उन्हींको गुरुतया स्वीकृत किये होंगे। यह चाहे जैसे हो; परंतु कहनेका तात्पर्य यह है कि सिद्धर्षिकी प्रशस्तिके पाठसे तो उनके गुरु दुर्गस्वामी और साथमें गर्गर्षि ज्ञात होते हैं। ऐसी दशामें यहां पर, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि डॉ. जेकोबीके कथनानुसार सिद्धर्षिको धर्मबोध करनेवाले सूरि यदि साक्षात्‌रूपसे आचार्य हरिभद्र ही होते तो फिर वे उन्हींके पास दीक्षा ले कर उनके हस्तदीक्षित शिष्य क्यों नहीं होते? गर्गर्षि और दुर्गस्वामीके शिष्य बननेका क्या कारण? इसके समाधानके लिये डॉ. जेकोबीने कोई विचार नहीं किया।

पाठक यहां पर हमसे भी इसी तरहका उलटा प्रश्न यह कर सकते हैं कि जब हमारे विचारसे हरिभद्र सिद्धर्षिके साक्षात् या वास्तविक गुरु नहीं थे तो फिर स्वयं उन्होंने

'आचार्य हरिभद्रो मे धर्मबोधकरो गुरुः।'

ऐसा उल्लेख क्यों किया? इस उल्लेखका क्या मतलब है?।

इस प्रश्नका यद्यपि हमको भी अभी तक यथार्थ समाधान नहीं हुआ है, तथापि इतनी बात तो हमें निश्चितरूपसे प्रतीत होती है कि हरिभद्रका सिद्धर्षिको कभी साक्षात्कार नहीं हुआ था। प्रमाणमें, प्रथम तो सिद्धर्षिका ही उल्लेख ले लिया जाय। उपमि० की प्रशस्तिमेंके हरिभद्रकी प्रशंसावाले जो तीन श्लोक हम पहले लिख आये हैं उनमेंका तीसरा श्लोक विचारने लायक है। इस श्लोकमें सिद्धर्षि 'अनागतं परिज्ञाय' ऐसा वाक्य-प्रयोग करते हैं। 'अनागत' शब्दका यहां पर दो तरहसे अर्थ लिया जा सकता है — एक तो, यह शब्द सिद्धर्षिका विशेषण हो सकता है; और इसका विशेष्य मां(मुझको) यह अध्याहृत रहता है; इस विचारसे, इसका अर्थ 'अनागत याने भविष्यमें होनेवाले ऐसे मुझको जानकर' ऐसा होता है। दूसरा यह शब्द क्रियाविशेषण भी बन सकता है, और उसका व्याकरणशास्त्रकी पद्धति अनुसार 'अनागतं यथा स्यात् तथा परिज्ञाय' ऐसा शाब्दबोध होता है। इसका अर्थ 'अनागत याने भविष्यमें जैसा होगा वैसा जान कर' ऐसा होता है। दोनों तरहके अर्थका तात्पर्य एक ही है और वह यह है कि सिद्धर्षिके विचारसे हरिभद्रका ललितविस्तरारूप बनानेवाला कार्य भविष्यत्कालीन उपकारकी दृष्टिसे है। इससे यह स्वतः स्पष्ट है कि हरिभद्रने ललितविस्तरा किसी अपने समानकालीन शिष्यके विशिष्ट बोधके लिये नहीं बनाई थी। और जब ऐसा है तो, तर्कसरणिके अनुसार यह

३४ असलमें यह श्लोक दूसरा होना चाहिए और जो दूसरा है वह तीसरा होना चाहिए। क्यों कि इस श्लोकका अन्वयार्थ पहले श्लोकके साथ सम्बन्ध रखता है। प्रभावक चरित्रमें इसी क्रमसे ये श्लोक लिखे हुए भी उपलब्ध हैं। (देखो, पृ० २०४)

३५ मुनि धनविजयजीने चतुर्थस्तुतिनिर्णयशंकोद्धारमें 'अनागत' शब्दका प्रसिद्ध अर्थ जो 'भविष्यत्' वाचक है उसे छोड कर और कई प्रकारके विलक्षण अर्थ किये हैं और उनके द्वारा सिद्धर्षिका हरिभद्रसूरिके समान कालमें होना साबित किया है। धनविजयजीके ये विलक्षण अर्थ इस प्रकार हैं:—"'अनागत' याने बौद्धमेंसे मुझको (सिद्धर्षिको) नहीं आया हुआ जान कर; अथवा, 'अनागत' याने जैनमतसे अज्ञात जान कर; तथा, 'अनागत' याने भविष्यमें मैं बौद्धपरिभावितमति हो जाऊंगा, ऐसा जान कर; पुनः 'अनागत' याने आगमनकर्ताका भिन्नत्व (!) जान कर–अर्थात् २२ वीं बार बौद्धधर्ममेंसे मुझे नहीं आता जान कर; फिर, 'अनागत' याने संपूर्णबोधको प्राप्त हुआ न जान कर; चैत्यवन्दनका आश्रय ले कर, श्रीहरिभद्रसूरिने मेरे प्रतिबोधके लिये ललितविस्तरा वृत्ति बनाई। इस तरह का 'अनागतं' परिज्ञाय इस श्लोकका अर्थ संभवित लगता है(!)।'

स्वयंसिद्ध हो गया कि, उस वृत्तिको अपने ही विशिष्ट बोधके लिये रची गई माननेवाला शिष्य, उन आचार्यसे अवश्य पीछे ही के कालमें हुआ था। हमारे विचारसे, प्रस्तुत श्लोकके उत्तरार्धमें ललितविस्तराके विशेषणरूपमें 'मदर्थैव कृता– (मेरे ही लिये की गई)' ऐसा जो पाठ है उसकी जगह 'मदर्थेव कृता– (मानों मेरे लिये की गई)', ऐसा होना चाहिए। क्यों कि उक्त रीतिसे जब सिद्धर्षि अपना अस्तित्व हरिभद्रके बाद-किसी समयमें-होना सूचित करते हैं तो फिर उनकी कृतिको निश्चयरूपसे (एवकार शब्दका प्रयोग कर) अपने ही लिये बनाई गई कैसे कह सकते हैं? इस लिये यहां पर 'इव' जैसे उपमावाचक (आरोपित अर्थसूचक) शब्दका प्रयोग ही अर्थ संगत है। बहुत संभव है कि उपमि० की दूसरी हस्तलिखित पुस्तकोंमें इस प्रकारका पाठभेद मिल भी जायँ।

ललितविस्तरा वृत्ति सिद्धर्षिको किस रूपमें उपकारक हो पडी थी, अथवा किस कारणसे उन्होंने उसका स्मरण किया है, इस बातका पता उनके लेखसे बिल्कुल नहीं लगता। उनके चरित्रलेखक, जो, बौद्धधर्मके संसर्गके कारण जैनधर्मपरसे उनका चित्तभ्रंश होना और फिर इस वृत्तिके अवलोकनसे पुनः स्थिर होना, इत्यादि प्रकारकी बातें लिखते हैं, वे कहां तक सत्य हैं इसका कोई निर्णय नहीं हो सकता। ललितविस्तराकी पञ्जिका लिखनेवाले मुनिचंद्रसूरि, जो सिद्धर्षिसे मात्र २०० वर्ष बाद हुए हैं वे भी, इस प्रवादकी पुष्टिमें प्रमाणरूप गिना जाय, ऐसा ही अपना अभिप्राय लिखते हैं[३७]।

३६ प्रभावक चरित्रमें 'मदर्थं निर्मिता येन' ऐसा पाठ मुद्रित है। इसी तरह दूसरी पुस्तकोंमें उक्त प्रकारका दूसरा पाठ भी मिलना बहुत संभवित है।

३७ मुनिचन्द्रसूरिने पञ्जिकामें ललितविस्तरा वृत्तिकी विवृति करनेके लिये अपनी असमर्थता बताते हुए निम्न लिखित पद्य लिखा है।—

'यो बुद्ध्वा किल सिद्धसाधुरखिलव्याख्यातृचूडामणिः
सम्बुद्धः सुगतप्रणीतसमयाभ्यासाच्चलच्चेतनः।
यत्कर्तुः स्वकृतौ पुनर्गुरुतया चक्रे नमस्यामसौ
को ह्येनां विवृणोतु नाम विवृतिं स्मृत्यै तथाप्यात्मनः॥'

परंतु, इधर जब हम एक तरफ ललितविस्तरामें चर्चित विषयका विचार करते हैं और दूसरी तरफ उपमितिमें वर्णित सिद्धर्षिके आन्तर जीवनका अभ्यास करते हैं तब, इन दोनों ग्रन्थोंमें, इस प्रचलित प्रवादकी सत्यताका निश्चायक ऐसा कोई भी प्रमाण हमारी दृष्टिमें नहीं आता। ललितविस्तरामें यद्यपि अर्हद्देवकी आप्तता और पूज्यता बडी गभीर और हृदयङ्गमरीतिसे स्थापित की गई है, तथापि उसमें ऐसा कोई विशेष विचार नहीं है जिसके अवलोकनसे, बौद्धन्यायशास्त्रके विशिष्ट अभ्यासके कारण सिद्धर्षि जैसे प्रतिभाशाली और जैनशास्त्रके पारदर्शी विद्वान्‌का स्वधर्मसे चलायमान हो जानेवाला मन सहजमें पुनः स्थिर हो जाय। हां, यदि हरिभद्र ही के बनाये हुए अनेकान्तजयपताकादि ग्रंथोंके लिये ऐसा विधान किया हुआ होता तो उसमें अवश्य सत्य माननेकी श्रद्धा उत्पन्न हो सकती है। क्यों कि उन ग्रन्थोंमें बौद्ध शास्त्रके समग्र कुतर्कोंका बडा अकाट्य युक्तियों द्वारा संपूर्ण निराकरण किया गया है। दूसरी बात यह है कि, यदि सिद्धर्षिका उक्त प्रवादानुसार वैसा जो विश्वविश्रुत धर्मभ्रंश हुआ होता तो उसका जिकर वे उपमिति०के प्रथम प्रस्तावमें अपने 'स्वसंवेदन' में अवश्य करते। क्यों कि सांसारिक कुवासनाजन्य धर्मभ्रंशका वर्णन विस्तारके साथ उन्होंने दो तीन जगह किया है (देखो, उप० पृ. ७३,-७४) परंतु दार्शनिक कुसंस्कारजन्य धर्मभ्रंशका उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। यद्यपि एक जगह, कुतर्कवाले ग्रन्थ और उनके प्रणेता कुतीर्थिक, मुग्ध जनको किस प्रकार भ्रान्त करते हैं और तत्त्वाभिमुखतासे किस प्रकार पराङ्मुख बनाते हैं, उसका उल्लेख आया है (देखो, उप० पृ० ४६); तथापि वह सर्वसाधारण और निष्पुण्यककी भगवद्धर्मप्राप्तिके पूर्वका वर्णन होनेसे उस परसे सिद्धर्षिके प्रावादिक धर्मभ्रंशका कुछ भी सूचन नहीं होता। अतः इस बातका हम कुछ निर्णय नहीं कर सके कि ललितविस्तरा वृत्तिका स्मरण सिद्धर्षिने क्यों किया है। हां, इतनी बात तो जानी जाती है कि यह वृत्ति उन्हें अभ्यस्त अवश्य थी और इस पर उनकी

भक्ति थी। क्यों कि इस वृत्तिकी वाक्यशैलीका उन्होंने अपने महान् ग्रन्थमें उत्तम अनुकरण किया है, इतना मात्र ही नहीं है परंतु इसमें जितने उत्तम उत्तम धार्मिक भावनावाले वाक्य हैं वे सब एक दूसरी जगह ज्यों के त्यों अन्तर्हित भी कर लिये हैं। उदाहरणके लिये चतुर्थ प्रस्तावमें जहां पर नरवाहन राजा विचक्षण नामके सूरिके पास जा कर बैठता है, तब सूरिने जो उपदेशात्मक वाक्य उसे कहे हैं वे सब सिद्धर्षिने ललितविस्तरा ही मेंसे ज्यों के त्यों उद्धृत किये हैं (देखो, उपमि. पृ. ४७७, और ललित० पृ.७८-७)। इसी तरह, सातवें प्रस्तावमें भी एक जगह बहुतसा उपदेशात्मक अवतरण यथावत् उद्धृत (अन्तर्हित) किया हुआ है (उपमि. पृ १०९२ और ललित. पृ. १६६)। इससे यह निश्चित ज्ञात होता है कि सिद्धर्षिको यह ग्रन्थ बहुत प्रिय था और इस प्रियतामें कारणभूत, किसी प्रकारका इस ग्रन्थका, उनके ऊपर विशिष्ट उपकारकत्व ही होगा। बिना ऐसे विशिष्ट उपकारकत्वके, उक्त रीतिसे, इस ग्रन्थका सिद्धर्षिद्वारा बहुमान किया जाना संभवित और संगत नहीं लगता। जिस ग्रन्थके अध्ययन वा मननसे अपना आत्मा उपकृत होता है, उस ग्रन्थके प्रणेता महानुभावको भी अपना उपकारी मानना-समजना और तदर्थ उसको नमस्कारादि करना, यह एक कृतज्ञ और सज्जनका प्रसिद्ध लक्षण है, और वह सर्वानुभव सिद्ध ही है। अतः हरिभद्रके समकालीन न होने पर भी सिद्धर्षिका, उनको गुरुतया पूज्य मान कर नमस्कारादि करना और उन्हें अपना परमोपकारी बतलाना तथा उनकी बनाई हुई ललितविस्तरा वृत्तिके लिये ' मदर्थेव कृता--मानो मेरे लिये की गई ' की भावनात्मक कल्पना करना सर्वथा युक्तिसंगत है।

उपर्युक्त कथनानुसार सिद्धर्षि हरिभद्रसूरिकी अपेक्षासे अनागत यानें भविष्यकालवर्ती थे, यह बात निश्चित सिद्ध होती है। इसी बातका विशिष्ट उल्लेख उन्होंने, उपमिति० के प्रथम प्रस्तावमें और भी स्पष्ट रूपसे कर दिया है। इस प्रस्तावमें, सिद्धर्षिने, निष्पुण्यक भिखारीके राजमन्दिरके चौकमें प्रविष्ट होने पर उस पर महाराजकी दयार्द्र दृष्टिके पडनेका, और उस दृष्टिपातको देख कर, महाराजकी पाकशालाके धर्मबोधकर नामक अधिकारीके मनमें, उसके कारणका विचार करनेका, जो रूपकात्मक वर्णन दिया है, उस वर्णनको फिर अपने अन्तरङ्ग जीवन ऊपर घटाते हुए तथा रूपकका अर्थ स्फुट करते हुए उन्होंने लिखा है कि—

' यथा च तां महाराजदृष्टिं तत्र रोरे निपतन्तीं धर्मबोधकराभिधानो महानसनियुक्तो निरीक्षितवानित्युक्तम्, तथा परमेश्वरावलोकनां मज्जीवे भवतीं धर्मबोधकरणशीलो ' धर्मबोधकरः ' इति यथार्थाभिधानो मन्मार्गोपदेशकः ' सूरिः ' स निरीक्षते स्म,

(उपमिति. पृ. ८०)

अर्थात्--' पहले जो भोजनशालाके अधिकारी धर्मबोधकरने उस भिखारीपर पडती हुई महाराजकी दृष्टि देखी ऐसा कहा गया है, उसका भावार्थ ' धर्मका बोध (उपदेश) करनेमें तत्पर होनेके कारण 'धर्मबोधकर' के यथार्थ नामको धारण करनेवाले ऐसे जो मेरे मार्गोपदेशक सूरि हैं, उन्होंने मेरे जीवन ऊपर पडती हुई परमेश्वरकी अवलोकना (ज्ञानदृष्टि) को देखी, ऐसा समझना चाहिए। '

इस रूपकको अपने जीवनपर इस प्रकार उपमित करते हुए सिद्धर्षिके मनमें यह स्वाभाविक शंका उत्पन्न हुई होगी कि, ' रूपकमें जो धर्मबोधकरका, भिखारीपर पडती हुई दृष्टिके देखनेका वर्णन दिया गया है वह तो साक्षात्‌रूपमें है। अर्थात्, जब भिखारी ऊपर महाराजकी दृष्टि पडती थी तब धर्मबोधकर (पाकशालाधिपति) वहां पर प्रत्यक्ष रूपसे हाजर था। परंतु इस उपमितार्थमें तो यह बात पूर्णरूपसे घट नहीं सकती। क्यों कि, परमेश्वर तो सर्वज्ञ होनेसे उनकी दृष्टिका पडना तो मेरे ऊपर वर्तमानमें भी सुघटित है, परंतु जिनको मैंने आपना धर्मबोधकर गुरु माना है, वे (हरिभद्र) सूरि तो मेरे इस वर्तमान जीवनमें विद्यमान हैं ही नहीं और न वे परमेश्वरकी तरह सर्वज्ञ ही माने जा सकते हैं, इस लिये इस उपमानकी अर्थ-

संगति कैसे लगाई जाय ? [पाठक यहां पर यह बात ध्यानमें रक्खें कि सिद्धर्षिने इस सारे प्रसङ्गमें जिस धर्मबोधकर गुरु का वर्णन किया है वह हरिभद्रसूरिको ही लक्ष्य कर है। क्यों कि, प्रशस्तिमें यह बात खास तौरसे, उन्होंने लिख दी है। देखो ऊपर पृष्ठ ३९ पर, हरिभद्रकी प्रशंसामें लिखे गये तीन श्लोकोंमें का पहला श्लोक।]

इस शङ्काका उन्मूलन करनेके लिये और प्रकृत उपमानकी अर्थ सङ्गति लगानेके लिये उस क्रान्तदर्शी महर्षिने अपने अनुपम प्रातिभ कौशलसे निम्न लिखित कल्पनाका निर्माण कर अपूर्व बुद्धिचातुर्य बतलाया है। वे लिखते हैं कि—

' सद्ध्यानबलेन विमलीभूतात्मानः परहितैकनिरतचित्ता भगवन्तो ये योगिनः पश्यन्त्येव देशकालव्यवहितानामपि जन्तूनां छद्मस्थावस्थायामपि वर्तमाना दत्तोपयोगा भगवदवलोकनाया योग्यताम्। पुरोवर्तिनां पुनः प्राणिनां भगवदागमपरिकर्मितमतयोऽपि योग्यतां लक्षयन्ति, तिष्ठन्तु विशिष्टज्ञाना इति। ये च मम सदुपदेशदायिनो भगवन्तः सूरयस्ते विशिष्टज्ञाना एव, यतः कालव्यवहितैरनागतमेव तैर्ज्ञातः समस्तोऽपि मदीयो वृत्तान्तः। स्वसंवेदनसिद्धमेतदस्माकमिति। '

उप० पृ० ८०।

अर्थात्—' सद्ध्यानके बलसे जिनका आत्मा निर्मल हो गया है और जो परहितमें सदा तत्पर रहते हैं ऐसे योगी महात्मा, छद्मस्थावस्था याने असर्वज्ञदशामें भी विद्यमान हो कर, अपने उपयोग (ज्ञान) द्वारा, देशान्तर और कालांतरमें होनेवाले प्राणियोंकी, भगवानके दृष्टिपातके योग्य ऐसी, योग्यताको जान लेते हैं। तथा इसी तरह जिनकी मति भगवानके आगमोंके अध्ययनसे विशुद्ध हो गई है वैसे आगमाभ्यासी पुरुष भी इस प्रकारकी योग्यताको जान सकते हैं तो फिर विशिष्टज्ञानियों (श्रुतज्ञानियों) की तो बात ही क्या है ? । और जो मेरेको सदुपदेश देनेवाले आचार्य महाराज हैं वे तो विशिष्टज्ञानी ही हैं। इस लिये ' कालसे व्यवहित ' याने कालांतरमें (पूर्वकालमें) होने पर भी, उन्होंने ' अनागत, याने भविष्यकालमें होनेवाला मेरा समग्र वृत्तांत जान लिया था। यह बात हमारी स्वसंवेदन (स्वानुभव) सिद्ध है। '

इस उल्लेख पर किसी प्रकारकी टीकाकी जरूरत नहीं है। स्पष्टरूपसे सिद्धर्षि कहते हैं कि, मेरेसे कालव्यवहित अर्थात् पूर्वकालमें हो जानेवाले धर्मबोधकर सूरि (जो स्वयं हरिभद्र ही हैं) ने जो अनागत याने भविष्यकालमें होनेवाला मेरा समग्र वृत्तान्त जान लिया था उसका कारण यह है कि वे विशिष्टज्ञानी थे। हरिभद्र सूरि सचमुच ही सिद्धर्षिके जीवनके बारेमें कोई भविष्यलेख लिख गये थे या कथागत उपमितार्थकी संगतिके लिये सिद्धर्षिको यह स्वोद्भावित कल्पना मात्र है, इस बातके विचारनेकी यहां पर कोई आवश्यकता नहीं है। यहां पर इस उल्लेखकी उपयोगिता इसी दृष्टिसे है कि, इसके द्वारा हम यह स्पष्ट जान सके हैं कि हरिभद्रसूरि सिद्धर्षिके समकालीन नहीं हैं किन्तु पूर्वकालीन हैं।

इस प्रकार सिद्धर्षिके निजके उल्लेखसे तो हरिभद्रसूरिकी पूर्वकालीनता सिद्ध होती ही है, परंतु इस पूर्वकालीनताका विशेष साधक और अधिक स्पष्ट प्रमाण प्राकृत साहित्यके एक मुकुटमणिसमान ' कुवलयमाला ' नामक कथाग्रन्थमेंसे भी मिलता है। यह कथा दाक्षिण्यचिन्हके उपनामवाले उद्योतनसूरिने बनाई है। इसकी रचना-समाप्ति शक संवत् सात सौ के समाप्त होनेमें जब एक दिन न्यून था तब,-अर्थात् शक संवत् ६९९, के चैत्रकृष्ण १४ के दिन--[३८] हुई थी। यह उल्लेख कर्ताने, स्वयं प्रशस्तिमें निम्न प्रकारसे किया है—

'........ अह चोद्दसीए चित्तस्स किण्हपक्खम्मि।
निम्मविया बोहकरी भव्वाणं होउ सव्वाणं॥ '

× × × ×

३८ राजपूताना और उत्तर भारतमें पूर्णिमान्त मास माना जाता है। इस लिये यहां पर इसी पूर्णिमान्त मासकी अपेक्षासे चैत्रकृष्णका उल्लेख किया हुआ है। दक्षिण भारतकी अपेक्षासे फाल्गुनकृष्ण समझना चाहिए। क्यों कि वहां पर अमान्त मास प्रचलित है। गुजरातमें भी यही अमान्त मास प्रचलित है।

'सगकाले वोलीणे वरिसाण सएहिं सत्तहिं गएहिं ।
एगदिणे णूणेहिं एस समत्ता वरण्हम्मि ॥'

[टिप्पणीः–यह कथा प्राकृत साहित्यमें एक अमूल्य रत्न-समान है। खेदकी बात है कि ऐसे उत्तम और महत्त्वके ग्रन्थ पर आज तक किसी शोधक विद्वानकी दृष्टितक नहीं पड़ी । इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति, डेक्कनकालेजमें संरक्षित, बम्बई सरकारके सुप्रसिद्ध पुस्तकालयमें संगृहीत है। यह कथा चम्पू के ढंग पर बनी हुई है । इसकी रचनाशैली बाणकी हर्षाख्यायिका या त्रिविक्रमकी नलचम्पू के जैसी है। काव्य-चमत्कृति उत्तम प्रकारकी और भाषा बहुत मनोरम है। प्राकृतभाषाके अभ्यासियोंके लिये यह एक अनुपम ग्रन्थ है। इस कथामें कविने कौतुक और विनोदके वशीभूत हो कर मुख्य प्राकृत भाषाके सिवा अपभ्रंश और पैशाची भाषामें भी कितनेएक वर्णन लिखे हैं, जिनकी उपयोगिता भाषाशास्त्रियोंकी दृष्टिसे और भी अत्यधिक है। अपभ्रंश भाषामें लिखे गए इतने प्राचीन वर्णन अभी तक अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त हुए हैं। इस लिये, इस दृष्टिसे विद्वानोंके लिये यह एक बहुत महत्त्वकी चीज है। इस कथाका विस्तृत परिचय हम एक स्वतंत्र लेख द्वारा देना चाहते हैं। सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचंद्र सूरिके गुरुवर श्रीदेवचन्द्रसूरिने 'संतिनाह चरियं' के उपोद्घात में, पूर्व कवियों और उनके उत्तम ग्रंथोंकी प्रशंसा करते हुए इस कथाके कर्ताकी भी इस प्रकार प्रशंसा की है--

दक्खिन्नइंदसूरिं नमामि वरवण्णभासिया सगुणा।
कुवलयमाल व्व महा कुवलयमाला कहा जस्स ॥

इस कथाका संक्षिप्त संस्कृत रूपान्तर १४ वीं शताब्दीमें होनेवाले रत्नप्रभसूरि नामके एक विद्वानने किया है जिसे भावनगरकी जैन आत्मानन्द सभाने छपवा कर प्रकट किया है।

इस कथा और इसके कर्ताका उल्लेख प्रभावक चरित्रके सिद्धर्षि प्रबन्धमें आया हुआ है। वहां पर ऐसा वर्णन लिखा है कि–'दाक्षिण्यचन्द्र नामके सिद्धर्षिके एक गुरु भ्राता थे। उन्होंने शृंगाररससे भरी हुई ऐसी कुवलयमाला कथा बनाई थी। सिद्धर्षिने जब 'उपदेशमाला' नामक ग्रंथ ऊपर बालावबोधिनी टीका लिखी तब दाक्षिण्यचन्द्रने उनका उपहास करते हुए कहा कि पुराणे ग्रंथोंके अक्षरों को कुछ उलटा पुलटा कर नया ग्रंथ बनानेमें क्या महत्त्व है ? शास्त्र तो 'समरादित्यचरित' जैसा कहा जा सकता है जिसके पढनेसे मनुष्य भूख-प्यासको भी भूल जाते हैं। अथवा मेरी बनाई हुई कुवलयमाला कथा भी कुछ वैसी ही कही जा सकती है, जिसके बांचनेसे मनुष्यको उत्तरोत्तर रसाल्हाद आता रहता है। तुमारी रचना तो लेखक (लिपिकर=लिखे हुए पुस्तककी नकल करनेवाला) की तरह मात्र नकल बनाने जैसी है। अपने गुरुभ्राता के ऐसे उपहासात्मक वचन सिद्धर्षिके दिलमें चुभ गये और फिर उन्होंने अष्ट प्रस्ताववाली सुप्रसिद्ध उपमितिभवप्रपंचा कथाकी अपूर्व रचना की। इस सुबोध कथाके आल्हादक व्याख्यानको सुन कर जैन समाज (संघ) ने सिद्धर्षिको मानप्रद ऐसी 'व्याख्याता' की पदवी समर्पित की। इत्यादि। (देखो, प्रभावकचरित्र, निर्णयसागर, पृष्ठ २०१-२०२ श्लोक ८८-९७)

(डॉ. जेकोबी, प्रभावकचरित्रके इस वर्णनको बराबर समझ नहीं सके इस लिये उन्होंने 'कुवलयमाला कथा' को सिद्धर्षि ही की कृति समझ कर असम्बद्ध अर्थ लिख दिया है। (देखो, जेकोबी साहबकी उपमितिभव० की प्रस्तावना, पृष्ठ०१२, तथा परिशिष्ट, पृष्ठ० १०५)

कुवलयमाला कथाकी प्रशस्तिके देखनेसे मालूम पडता है कि प्रभावक चरित्रके कर्ताका उपर्युक्त कथन बिल्कुल असत्य है। क्यों कि कुवलयमालाकी रचना उपमितिभवप्रपंचाकी रचनासे १२७ वर्ष पूर्व हुई है, इस लिये दाक्षिण्यचन्द्र (चिन्ह) का सिद्धर्षिके गुरुभ्राता होनेका और उक्त रीतिसे उपहासात्मक वाक्योंके कहनेका कोई भी सम्बन्ध सत्य नहीं हो सकता।]

इस कथाके प्रारंभमें बाणभट्टकी 'हर्षाख्यायिका' और धनपाल कविकी 'तिलकमञ्जरी' आदि कथाओंकी तरह, कितनेएक प्राचीन कवि और उनके ग्रन्थोंकी प्रशंसा की हुई है। इस कविप्रशंसामें, अन्तमें, हरिभद्रसूरिकी भी--उनकी बनाई हुई प्रशमरस परिपूर्ण प्राकृत भाषात्मक 'समराइच्चकहा' के उल्लेख पूर्वक--इस प्रकार प्रशंसा की गई है—

जो इच्छइ भवविरहं भवविरहं को न वंदए सुयणो ।
समयसयसत्थगुरुणो समरमियंका[३९] कहा जस्स ॥

— डेक्कनका० संगृहीत पुस्तक, पृ. २।

३९ हरिभद्रसूरिने तो स्वयं अपने इस ग्रंथका नाम 'समराइच्चकहा' अथवा 'समराइच्चचरियं' (चरियं समराइच्चस्स, पृ० ५, पं. १२) लिखा है, परंतु यहां पर 'समरमियंका' (सं० समरमृगाङ्का) ऐसा नाम उल्लिखित है; सो इस पाठभेदका कारण समझमें नहीं आता।

हरिभद्रसूरिने प्रायः अपने सभी ग्रन्थोंके अंतमें, किसी न किसी तरह अर्थ-सम्बन्ध घटा करके 'भवविरह' अथवा 'विरह' इस शब्दका प्रयोग अवश्य किया है। इस लिये वे 'विरहाङ्क' कवि या ग्रन्थकार कहे जाते हैं। इनके ग्रन्थोंके सबसे पहले टीकाकार जिनेश्वरसूरिने (वि. सं. १०८०) अष्टक प्रकरणकी टीकामें, अन्तमें जहां पर 'विरह' शब्द आया है वहां पर, इस बारेमें स्पष्ट लिखा भी है कि--

'विरह' शब्देन हरिभद्राचार्यकृतत्वं प्रकरणस्यावेदितम्, विरहाङ्कत्वाद् हरिभद्रसूरेरिति।'

ऐसा ही उल्लेख अभयदेवसूरि (पंचाशकप्रकरणकी टीकामें) और मुनिचन्द्रसूरि (ललितविस्तरापंजिकामें) आदिने भी किया है। इसी आशयसे, कुवलयमालाके कर्ताने भी यहां पर श्लेषके रूपमें 'भवविरह' शब्दका युगल प्रयोग कर हरिभद्रसूरिका स्मरण किया है। साथमें उनकी 'समराइच्चकहा' का भी उल्लेख है, इससे, इस कुशङ्का के लिये तो यहां पर, किञ्चित् भी अवकाश नहीं है कि, इन हरिभद्रके सिवा और किसी ग्रंथकारका इस उल्लेखमें स्मरण हो। अस्तु।

इसी तरह, इस कथाकी प्रशस्तिमें भी हरिभद्रसूरिका उल्लेख मिलता हैं, जिसका विचार आगे चल कर किया जायगा। इससे स्पष्ट है कि, हरिभद्रको, शक संवत् ७००, अर्थात् विक्रम संवत् ८३५=ई. सं. ७७८ से तो अर्वाचीन किसी तरह नहीं मान सकते।

इस प्रकार, हरिभद्रसूरि सिद्धर्षिके समकालीन नहीं थे, इस बातका समाधान तो हो चुका है।

--महाकवि धनपालने भी तिलकमञ्जरी कथाकी पीठिकामें इस ग्रन्थकी निम्न प्रकारसे प्रशंसा की है--

निरोद्धुं पार्यते केन समरादित्यजन्मनः।
प्रशमस्य वशीभूतं समरादित्यजन्मनः॥

इसी तरह देवचन्द्रसूरिने 'सन्तिनाहचरियं' की प्रस्तावनामें भी इस कथा-प्रबन्धका स्मरण किया है। यथा--

वंदे सिरिहरिभद्दं सूरिं विउसयणणिग्गयपयावं।
जेण य कहापबन्धो समराइच्चो विणिम्मविओ॥
(-पिटर्सन रिपोर्ट, ५, पृ. ७३)

अब यहां पर, यह दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि, जब हरिभद्र इस प्रकार सिद्धर्षिके समकालीन नहीं माने जा सकते, तब फिर पूर्वोक्त गाथाके कथनानुसार उन्हें विक्रम की ६ ठी शताब्दीमें मान लेनेमें क्या आपत्ति है? क्यों कि उस समयका बाधक मुख्य कर जो सिद्धर्षिका उल्लेख समझा जाता है वह तो उपर्युक्त रीतिसे निर्मूल सिद्ध होता है।

इस प्रश्नके समाधानके लिये विशेष गवेषणाकी जरूरत होनेसे, जब हमने हरिभद्रके प्रसिद्ध प्रासिद्ध सब ही उपलब्ध ग्रंथोंका, इस दृष्टि से, ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया, तो उनमें अनेक ऐसे स्पष्ट प्रमाण मिल आये कि जिनकी ऐतिहासिक पूर्वापरताका विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि 'गाथा' में बतलाये मुजब हरिभद्रका स्वर्गगमन वि. सं. ५८५ में--एवं ६ ठी शताब्दीमें उनका होना सत्य नहीं माना जा सकता।

जैसा कि हम प्रारंभ ही में सूचित कर आये हैं, हरिभद्रसूरिने अपने दार्शनिक और तात्त्विक ग्रंथोंमें कितनेएक ब्राह्मण, बौद्ध आदि दार्शनिक विद्वानोंके --नामोल्लेख पूर्वक--विचारों और सिद्धान्तों की आलोचना-प्रत्यालोचना की है। इस कारणसे उन उन विद्वानोंके सत्ता-समयका विचार करनेसे हरिभद्रके समयका भी ठीक ठीक विचार और निर्णय किया जा सकता है। अतः अब हम इसी बातका विचार करना शुरू करते हैं।

हरिभद्रसूरिके ग्रंथोंमें मुख्य कर निम्न लिखित दार्शनिकों और शास्त्रकारोंके नाम मिल आते हैं:-[४०]

ब्राह्मण--

अवधूताचार्य	आसुरि
ईश्वर कृष्ण	कुमारिल-मीमांसक
पतञ्जलि-भाष्यकार	पतञ्जलि-योगाचार्य
पाणिनि-वैयाकरण	भगवद् गोपेन्द्र
भर्तृहरि-वैयाकरण	व्यास महर्षि
विन्ध्यवासी	शिवधर्मोत्तर

४० इन ग्रंथकारोंके नामोंके सिवा, कितने ही संप्रदायों, सांप्रदायिकों और तैर्थिकोंके उल्लेख भी इनके ग्रंथोंमें यत्र तत्र मिलते हैं परंतु उनके उल्लेखोंसे प्रकृत विचारमें कोई विशेष सहायता न मिलनेके कारण यहां पर वे नहीं दिये जाते।

बौद्ध—	जैन—
कुक्काचार्य	अजितयशाः
दिवाकर (?)	उमास्वाति
दिग्नागाचार्य	जिनदास महत्तर*
धर्मपाल	जिनभद्र गणि क्ष०
धर्मकीर्ति	देववाचक
धर्मोत्तर	भद्रबाहु
भदन्तादिन्न	मल्लवादी
वसुबन्धु	समन्तभद्र
शान्तरक्षित	सिद्धसेन-दिवाकर
शुभगुप्त	संघदास-गणि*

[**टिप्पणी**:—इन ग्रन्थकारोंके अतिरिक्त, हरिभद्रके प्रबन्धों-ग्रन्थोंमें कितने ही जैन-अजैन ग्रन्थोंके भी नाम मिलते हैं। इनमेंका एक नाम खास उनके समयके विचारमें भी विचारणीय है। आवश्यकसूत्रकी शिष्यहिता नामक बृहद्वृत्तिमें, एक जगह, निर्देश्य-निर्देशक विषयक नाम निर्देशके विचारमें, हरिभद्रसूरिने, ५–६ ग्रन्थोंके नाम लिखे हैं, जिनमें '**वासवदत्ता**' और '**प्रियदर्शना**'का भी नामनिर्देश है[४१]। '**वासवदत्ता**' सुबन्धु कविकी प्रसिद्ध आख्यायिका वा कथा है। यद्यपि इसके समयके बारेमें विद्वानोंमें कुछ मत-भेद है, परंतु सामान्यरूपसे ६ ठी शताब्दीमें इस कविका अस्तित्व बतलाया जाता है। '**प्रियदर्शना**'[४२] एक सुप्रसिद्ध नाटिका है और वह स्थानेश्वरके चक्रवर्ती नृपति कवि हर्षकी बनाई हुई है। हर्षका समय सर्वथा निश्चित है। ई. स. ६४८ में इस प्रतापी और विद्याविलासी नृपतिकी मृत्यु हुई थी। ई. स. की ७ वीं शताब्दीका पूरा पूर्वार्द्ध हर्षके पराक्रमी जीवनसे व्याप्त था। हमारे एक वृद्धमित्र साक्षरवर श्री के. ह. ध्रुवने प्रियदर्शनाके गुजराती भाषान्तरकी भूमिकामें, इसका रचना-समय ई. स. ६१४ के लगभग अनुमानित किया है[४३]। इस ऊपरसे प्रस्तुत विषयमें, यह बात जानी जाती है कि **प्रियदर्शना**का नामनिर्देश करनेवाले हरिभद्र सूरि उसके रचना समय बाद ही कभी हुए होंगे। प्राकृतगाथामें बतलाये मुताबिक हरिभद्र ६ ठी शताब्दीमें नहीं हुए, ऐसा जो निर्णय हम करना चाहते हैं, उसमें यह भी एक प्रमाण है, इतनी बात ध्यानमें रख लेने लायक है।]

इस नामावलीमेंके कितनेएक नामोंका तो अभी तक विद्वानोंको शायद परिचय ही नहीं है। कितनेएक नाम विद्वत्समाजमें परिचित तो हैं परंतु उन नामधारी व्यक्तियोंके अस्तित्वके बारेमें पुराविद् पण्डितोंमें परस्पर सैंकडों ही वर्षों जितना बडा मतभेद है। कोई किसी विद्वानका अस्तित्व पहली शताब्दी बतलाता है, तो कोई पांचवी छठी शताब्दी बतलाता है। कोई किसी आचार्यको ई. स. के भी सौ दो सौ वर्ष पहले हुए साबित करता है, तो कोई उन्हें ९ वीं १० वीं शताब्दीसे भी अर्वाचीन सिद्ध करता है। इस प्रकार ऊपर दी हुई नामावलीमेंके कितने ही विद्वानोंके समयके विषयमें विद्वानोंका एकमत नहीं है। तथापि, देश और विदेशके विशेषज्ञ विद्वानोंने दीर्घपरिश्रमपूर्वक विस्तृत ऊहापोह करके, इस नामावलीमेंके कई विद्वानोंके समयका ठीक ठीक निर्णय भी किया है; और वह बहुमतसे निर्णीतरूपमें स्वीकृत भी हुआ है। इस-

---

* ये नाम, उनके ग्रंथोंके दिये हुए अवतरणोंसे सूचित हैं।

४१ देखो, आवश्यकसूत्रकी हारिभद्री वृत्ति, पृ. १०६, यथा–'**निर्देश्यवशाद् यथा--वासवदत्ता, प्रियदर्शनेति।**' —जिनभद्रगणिने विशेषावश्यक भाष्यमें, इसी प्रसंग पर,

'**अहवा निद्दिट्ठवसा वासवदत्ता-तरंगवइयाइं।**'

ऐसा लिख कर **वासवदत्ता** और **तरंगवती** (जो, गाथा सप्तशतीके संग्राहक प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय कवि नृपति सातवाहन या हालके समकालीन जैनाचार्य पादलिप्त या पालित्त कविकी बनाई हुई है) का उल्लेख किया है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणका समय ६ ठी शताब्दी है, इस लिये ७ वीं शताब्दीमें जन्म पानेवाली '**प्रियदर्शना**' का नाम उनके उल्लेखमें नहीं आ सकता, यह स्वतःसिद्ध है। जिनभद्रजीके इस प्रमाणसे, वासवदत्ताके कर्ता सुबन्धुका समय जो बहुतसे विद्वान् ६ ठी शताब्दी बतलाते हैं और उसे बाणका पुरोगामी मानते हैं, सो हमारे विचारसे ठीक मालूम देता है।

४२ वर्तमानमें इस नाटिकाकी जितनी संस्कृत आवृत्तियां प्रकाशित हुई हैं उन सबमें इसका नाम '**प्रियदर्शिका**' ऐसा छपा हुआ है, परंतु श्रीयुत केशवलालजी ध्रुवने, अपने गुजराती अनुवादकी प्रस्तावनामें (देखो, पृ. ७६, नोट.) यह साबित किया है कि इसका मूल नाम '**प्रियदर्शिका**' नहीं किंतु '**प्रियदर्शना**' होना चाहिए; और अपनी पुस्तकपर उन्होंने यही नाम छपवाया भी है। सो ध्रुव महाशयके इस अविष्कारका हरिभद्रके प्रकृत उल्लेखसे प्रामाणिक समर्थन होता है।

४३ देखो, पृ. ७९, पहली आवृत्ति।

लिये, इन विद्वानोंके समयका विचार, हरिभद्रके समय-विचारमें बडा उपयोगी हो कर उसके द्वारा हम ठीक ठीक यह जान सकेंगे कि हरिभद्र किस समयमें हुए होने चाहिए।

ऊपर जो आचार्यनामावली दी है उसमें वैयाकरण भर्तृहरिका भी नाम सम्मिलित है। अनेकान्तजयपताकाके चतुर्थ अधिकारमें, शब्द ब्रह्मकी मीमांसा करते हुए दो तीन स्थलपर हरिभद्रने इनका नामोल्लेख किया है और इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ वाक्यपदीयमेंसे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। यथा—

(१) आह च शब्दार्थतत्त्वविद् (भर्तृहरिः)—[44]

' वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥
न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन जायते ॥'[45]

(२) उक्तं च (भर्तृहरिणा)—

' यथानुवाकः श्लोको वेति। '[46]

(अनेकान्तजयपताका, अमदाबाद पृष्ठ. ४१.)

चीनदेश निवासी प्रसिद्ध प्रवासी इत्सींग[47] ई. स. की ७ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें भारतमें भ्रमण करनेको आया था। उसने अपने देशमें जा कर ई. स. ६९५ में अपना भ्रमण-वृत्तान्त लिखा। इसमें, उसने, उस समय भारतवर्षमें व्याकरणशास्त्रका अध्ययन-अध्यापन जिस रीतिसे प्रचलित था उसका वर्णन लिखा है और साथ में मुख्य मुख्य वैयाकरणोंके नाम भी लिखे हैं। भर्तृहरिके विषयमें भी उसने लिखा है कि—ये एक प्रसिद्ध वैयाकरण थे, और इन्होंने ७०० श्लोककी संख्या वाले वाक्यपदीय ग्रंथकी रचना की है। इस ग्रंथका जिकर करके उस प्रवासीने यह भी लिखा है कि इसके कर्ताकी ई. स. ६५० में मृत्यु हो गई है। इत्सींगके इस उल्लेखके विरुद्धमें आज तक कोई विशेष प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ: इस लिये इसे सत्य मान लेनेमें कोई हरकत नहीं है।

महान् मीमांसक कुमारिलने 'तंत्रवार्तिक' के प्रथम प्रकरणमें शब्दशास्त्रियोंकी खूब खबर ली है। उसमें पाणिनि, कात्यायन और पतंजलीके साथ साथ भर्तृहरिके ऊपर भी आक्षेप किये गये हैं। 'वाक्यपदीय' मेंसे अनेक श्लोकोंको उद्धृत कर

४४ अनेकान्तजयपताका ऊपर हरिभद्रने स्वयं एक संक्षिप्त परंतु शब्दार्थका परिस्फुट करने वाली टीका लिखी है। [इस टीका के अन्तमे ऐसा उल्लेख है—'कृतिर्धर्मतो जा (या) किनीमहत्तरासूनोराचार्यश्रीहरिभद्रस्य। टीकाप्येषाऽवचूर्णिका प्राय। भावार्थमात्रावेदिनी नाम तस्यैवेति] इस टीकामें मूलग्रंथमें जिन जिन विद्वानोंके विचारोंका–अवतरणोंका संग्रह किया गया है उन सबके प्रायः नाम लिख दिये हैं। मूल ग्रंथमें उन्होंने कहीं पर भी किसी के मुख्य नाम का उल्लेख न कर के जिस शास्त्रका जो पारंगत ज्ञाता है उसके सूचक किसी विशेषणसे अथवा और किसी प्रसिद्ध उपनामसे उस उस विद्वान का स्मरण किया है। फिर टीकामें उन सबका स्पष्ट नामोल्लेख भी कर दिया है। कहीं पर मूल ग्रन्थमें 'उक्तं च' मात्र कह कर ही अन्योक्त अवतरण उद्धृत कर दिया है और फिर टिकामें उसी तरह नाम लिख दिया है। यही क्रम 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' की स्वोपज्ञ टीकामें भी उपलब्ध होता है। इस क्रमानुसार, ऊपर जो 'शब्दार्थतत्त्वविद्' विशेषण है उसका परिस्फुट टीकामें 'शब्दार्थतत्त्वविद् भर्तृहरिः' ऐसा किया है। अर्थात् इससे 'शब्दार्थतत्त्वविद्' यह विशेषण भर्तृहरि का है, ऐसा समझना चाहिए। आगे पर जहां कहीं हम टीकामेंसे ऐसे मुख्य नामोंको उद्धृत करें वहां पर पाठक इस नोटको लक्ष्यमें रक्खें।

४५ काशीमें मुद्रित वाक्यपदीयके प्रथमकाण्डमें ये दोनों श्लोक (पृष्ठ ४६–७) पूर्वापर के क्रमसे अर्थात् आगे पीछे लिखे हुए मिलते हैं। पिछले श्लोकके ४ थे पादमें 'सर्वं शब्देन भासते' ऐसा पाठ भेद भी उपलब्ध है। प्रसिद्ध दिगम्बर विद्वान् विद्यानन्दी ने 'अष्टसहस्री' [पृ. १३०] मे और प्रभाचंद्रने 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' [पृ. ११] मे भी इन दोनों श्लोकोंको वाक्य पदीयके क्रमसे उद्धृत किये हैं। वादी देवसूरिने भी 'स्याद्वादरत्नाकर' (पृ. ४३) में इन को दिया है।

४६ वाक्यपदीय, पृ. ८३ में यह पूरा श्लोक इस प्रकार है
यथानुवाकः श्लोको वा सोढत्वमुपगच्छति।
आवृत्त्या, न तु स ग्रन्थः प्रत्यावृत्त्या निरूप्यते ॥

४७ देखो, प्रो. मॅक्ष मुलर लिखित India: what it can teach us ?, पृष्ठ २१०।

उनकी तीक्ष्ण समालोचना की है। उदाहरणके लिये 'वाक्यपदीय' और 'तन्त्रवार्तिक' मेंसे निम्न लिखित स्थल ले लीये जाँय।

वाक्यपदीयके (पृ० १३२) दूसरे प्रकरणमें १२१ वां श्लोक इस प्रकार है:—

अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्यलक्षणम्।
अपूर्वदेवतास्वर्गैः सममाहुर्गवादिषु ॥

कुमारिल भट्टने तन्त्रवार्तिकमें इस श्लोकको दो जगह (बनारस की आवृत्ति पृ. २५१-२५४) उद्धृत किया है। यथा—

'यथाहुः—

'अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्यलक्षणम्।
अपूर्वदेवतास्वर्गैः सममाहुर्गवादिषु ॥' इति।

यत्तु 'अपूर्वदेवतास्वर्गैः सममाहुः।' इति, तत्राभिधीयते।

वाक्यपदीयके प्रथम प्रकरणमेंके ७ वें श्लोकका उत्तरार्द्ध, तन्त्रवार्तिक (पृष्ठ २०९-१०) में कुमारिलने उद्धृत किया है और उसमें शब्दपरावर्तन कर भर्तृहरिके विचारका अवस्कन्दन किया है:—

यदपि केनचिदुक्तम्—

'तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।' इति तद्रूपरसगन्धस्पर्शेष्वपि वक्तव्यमासीत्।
को हि प्रत्यक्षगम्यार्थे शास्त्रात्तत्त्वावधारणम्।
शास्त्रलोकस्वभावज्ञ ईदृशं वक्तुमर्हति ? ॥

अत एव श्लोकस्योत्तरार्द्धं वक्तव्यम्—

'तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति श्रोत्रेन्द्रियादृते।'
न ह्यत्र कश्चिद्विप्रतिपद्यते बधिरेष्वेवमदृष्टत्वात्।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो. का. बा. पाठकने अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामक निबन्धमें[४७] इस ऊपर लिखे गये प्रमाणाधारसे निर्णीत किया है कि कुमारिल ई.स.की ८ वीं शताब्दीके पूर्व भागमें हुए होंगे। अध्यापक पाठक लिखते हैं कि—"मेरे विचारसे यह तो स्पष्ट है कि कुमारिलके समयमें व्याकरणशास्त्रके ज्ञाताओंमें भर्तृहरि भी एक विशिष्ट प्रमाणभूत विद्वान् माने जाते थे। भर्तृहरि अपने जीवनकालमें तो इतने प्रसिद्ध हुएही नहीं होंगे कि जिससे पाणिनि-संप्रदायके अनुयायी, उन्हें अपने संप्रदायका एक आप्त पुरुष समझने लगे हों और अतएव पाणिनि और पतंजलिके साथ वे भी महान् मीमांसककी समालोचनाके निशान बने हों। इसी कारणसे हुएनत्सांग, जिसने ई. स. ६२९-६४५ के बीचमें भारत-भ्रमण किया था, उसने इनका नाम तक नहीं लिखा, परंतु इत्सींग, जिसने उक्त समयसे आधी शताब्दी बाद अपना प्रवास-वृत्त लिखा है, वह लिखता है कि भारत-वर्ष के पांचों खण्डोंमें भर्तृहरि एक प्रख्यात वैयाकरणके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इस विवेचनसे हम ऐसा निर्णय कर सकते हैं कि जिस वर्षमें तन्त्रवार्तिककी रचना हुई उसके और भर्तृहरिके मृत्युवाले ई.स.६५०के बीचमें आधी शताब्दी बीत चुकी होगी। अतएव कुमारिल ई. स. की ८ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें विद्यमान होने चाहिए।"

हरिभद्रने अपने अनेक ग्रन्थोंमें मीमांसा-दर्शनकी आलोचना-प्रत्यालोचना की है। शास्त्रवार्ता-समुच्चयके १०वें प्रकरणमें मीमांसक प्रतिपादित 'सर्वज्ञ-निषेध' पर विचार किया गया है। उसमें पूर्वपक्षमें कुमारिल भट्टके मीमांसा-श्लोकवार्तिकके-

'प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते।
वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥'[४९]

इस श्लोकका, 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' (उक्त प्रकरणमें के ४ थे श्लोक)के

'प्रमाणपञ्चकाऽवृत्तिस्तत्राभाव प्रमाणता।'[५०]

इस श्लोकार्द्धमें केवल अर्थशः ही नहीं परंतु शब्दशः अनुकरण किया हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। इसी तरह, मीमांसा-श्लोकवार्तिकके चोदना-सूत्र वाले प्रकरणमें-जहां पर वेदोंकी स्वतः प्रमाणता स्थापित करनेकी मीमांसा की हुई है- निम्न लिखित श्लोकार्द्ध कुमारिलने लिखा है:—

'तस्मादालोकवद् वेदे सर्वसाधारणे सति।'
मीमांसा श्लोकवार्तिक, पृ. ७४।

---

४७ जर्नल आव दि बॉम्बे ब्रेंच रोयल एशियाटिक सोसायटी, पु. १८, पृ. २१३-२३८।

४९ मीमांसा श्लोकवार्तिक, पृष्ठ ४७३।

५० शास्त्रवार्तासमुच्चय, (देवचंद ला. पुस्तकोद्धार फंडसे मुद्रित) पृष्ठ ३४९।

इसी श्लोकार्द्धको शास्त्रवार्ता-समुच्चयके उक्त प्रकरणमें हरिभद्रने भी निम्नलिखित श्लोकमें तद्वत्-फक्त प्रारंभके एक शब्दका परिवर्तन कर-उद्धृत किया है। यथा—

आहचालोकवद्वेदे सर्वसाधारणे सति।
धर्माधर्मपरिज्ञाता किमर्थं कल्प्यते नरः॥ [५१]

और फिर इस श्लोककी स्वोपज्ञ-व्याख्यामें 'आह च कुमारिलादिः' इस प्रकार स्वयं ग्रंथकर्ताने साथमें साक्षात् कुमारिलका नामोल्लेख भी कर दिया है।

इस प्रमाणसे यह ज्ञात हो गया कि हरिभद्रने जैसे वैयाकरण भर्तृहरिकी आलोचना की है वैसे ही भर्तृहरिके आलोचक मीमांसक कुमारिलकी भी समालोचना की है।

ऊपर लिखे मुताबिक प्रो. पाठकके निर्णयानुसार कुमारिलका समय जो ई. स. की ८ वीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध मान लिया जाय तो फिर हरिभद्रका समय भी वही मानना चाहिए। क्यों कि इस शताब्दीके उत्तरार्द्धके मध्य-भागमें-ई. स. ७७८ में-समाप्त होनेवाली कुवलयमाला कथामें पूर्वोक्त उल्लेखानुसार स्पष्ट रूपसे हरिभद्रका नामस्मरण किया हुआ विद्यमान है। ऐसी दशामें उल्लिखित कुमारिल-समय और यह हरिभद्र समय दोनों एक ही हो जाते हैं। अतएव इन दोनों आचार्योंको समकालीन मान लेनेके सिवा दूसरा कोई मत दिखाई नहीं देता।

इस मतकी पुष्टिमें अन्य प्रमाण भी यथेष्ट उपलब्ध होते हैं, सो भी बतलाते हैं।

हरिभद्रके ग्रंथोंमें जिन जिन बौद्ध विद्वानोंके नाम मिलते हैं उनकी सूचि ऊपर दी गई है। इन विद्वानोंमेंसे आचार्य वसुबन्धु और महामति दिग्नाग तो प्राकृत गाथामें उल्लिखित हरिभद्रके मृत्यु-समयसे निर्विवाद रीतिसे पूर्वकाल ही में हो चुके हैं, इस लिये उनके जिकरकी तो यहां पर कोई अपेक्षा नहीं है, परंतु धर्मपाल, धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर और शांतरक्षित आदि विद्वान् गाथोक्त हरिभद्रके मृत्युसमयसे अर्वाचीन कालमें हुए हैं; ऐसा ऐतिहासिकोंका बहुमत है। इस लिये हरिभद्रका समय भी गाथोक्त समयसे अवश्य अर्वाचीन मानना पडेगा। यहां पर प्रथम हम हरिभद्रके ग्रंथोंमेंसे उन कुछ अवतरणोंको उद्धृत कर देते हैं जिनमें धर्मपालादि बौद्ध विद्वानोंका जिकर पाया जाता है। फिर उनके समयका विचार करेंगे।

अनेकान्तजयपताकाके ४ थे परिच्छेदमें, जहां पर पदार्थोंमें अनेकधर्मोंके अस्तित्वका स्थापन किया गया है, वहां पर एक प्रतिपक्षी बौद्धके मुखसे निम्न लिखित पंक्तियोंका उच्चारण ग्रंथकारने करवाया है—

'स्यादेतसिद्धसाधनम्, एतदुक्तमेव नः पूर्वाचार्यैः-द्विविधा हि रूपादीनां शक्तिः— सामान्या प्रतिनियता च। तत्र सामान्या यथा घटसन्निवेशिनामुदकाद्याहरणादिकार्यकरणशक्तिः। प्रतिनियता यथा चक्षुर्विज्ञानादिकार्यकरणशक्तिरिति।'

(अनेकान्तजयपताका, अमदाबाद, पृ. ५०)

इस अवतरणके पूर्वभागमें जो 'नः पूर्वाचार्यैः-' यह वाक्यांश है, इसकी स्फुट व्याख्या स्वयं ग्रंथकार ने इस प्रकार की है—

'नः—अस्माकंपूर्वाचार्यैः—धर्मपाल-धर्मकीर्त्यादिभिः।'

इससे स्पष्ट है कि उद्धृत अवतरणको हरिभद्रने धर्मपाल और धर्मकीर्तिके विचारोंका सूचक बतलाया है। धर्मपालका स्पष्ट नामोल्लेख तो फक्त इसी एक ही जगह हमारे देखनेमें आया है, परंतु धर्मकीर्तिका नाम तो पचासों जगह और भी लिखा हुआ दिखाई देता है। 'अनेकान्तजयपताका' ग्रंथ खास कर, भिन्न भिन्न बौद्धाचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें जैनधर्मके अनेकान्तवादका जो खण्डन किया था उसका समर्पक उत्तर देने ही के लिये रचा गया था। तार्किकचक्रचूडामणि आचार्य धर्मकीर्तिकी प्रखर प्रतिभा और प्राञ्जल लेखिनीने भारतके तत्कालीन सब ही दर्शनोंके साथ जैनधर्मके ऊपर भी प्रचण्ड आक्रमण किया था। इस लिये हरिभद्रने, जहां कहीं थोडासा भी मौका मिल गया वहीं पर धर्म-

५१ शास्त्रवार्तासमुच्चय, बम्बई (दे. ला. जैनपुस्तकोद्धार फंड) पृ. ३५४.

५२ अनेकान्तजयपताकाकी तरह इस ग्रंथपर भी हरिभद्रने स्वयं एक संक्षिप्त व्याख्या लिखि है जो उपलब्ध है।

कीर्तिके भिन्न भिन्न विचारोंकी सौम्यभाव पूर्वक परंतु मर्मान्तक रीतिसे चिकित्सा कर, जैनधर्म पर किये गये उनके आक्रमणोंका सूद सहित बदला चुकवा लेनेकी सफल चेष्टा की है। हरिभद्रने धर्मकीर्तिका विशेष कर 'न्यायवादी' के पाण्डित्यप्रदर्शक विशेषणसे उल्लेख किया है और कहीं कहीं पर उनके बनाए हुए 'हेतुबिन्दु' और 'वार्तिक' आदि ग्रंथोंका भी नामस्मरण किया है। यथा—

(१) उक्तं च धर्मकीर्तिना 'न तत्र किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवल' मिति वार्तिके।

(अनेकां. यशोविजय जैनग्रंथमाला, पृ. १०)

(२) आह च न्यायवादी (धर्मकीर्तिर्वार्तिके)—[५३]
न प्रत्यक्षं कस्यचित् निश्चायकं, तद् यमपि गृह्णाति तन्न निश्चयेन, किं तर्हि? तत्प्रतिभासेन।

(पृ. १७७.)

यदाह न्यायवादी (धर्मकीर्तिर्वार्तिके)—

(३) 'प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिद्ध्यति।
प्रत्यात्मवेद्यः सर्वेषां विकल्पो नाम संश्रयः॥
संहृत्य सर्वतश्चिन्तां स्तिमितेनान्तरात्मना।
स्थितोऽपि चक्षुषा रूपमीक्षते साऽक्षजा मतिः॥
पुनर्विकल्पयन् किञ्चिदासीद् मे कल्पनेदृशी।
इति वेत्ति न पूर्वोक्तावस्थायामिन्द्रियाद् गतौ॥

इत्यादि, तदप्राकृतमवसेयम्। (पृष्ठ. २०७)।

(४) आह च न्यायवादी (धर्मकीर्तिः)—
अर्थानां यच्च सामान्यमन्यव्यावृत्तिलक्षणम्।
यन्निष्ठास्त इमे शब्दा न रूपं तस्य किञ्चन॥'

(अनेकां. अमदाबाद, पृ. ३७)

(५) उक्तं च न्यायवादिना (धर्मकीर्तिना)—
पररूपं स्वरूपेण यया संव्रियते धिया।
एकार्थप्रतिभासिन्या भावानाश्रित्य भेदिनः॥
तया संवृतनानात्वाः संवृत्या भेदिनः स्वयम्।
अभेदिन इवाभान्ति भावा रूपेण केनचित्॥
तस्या अभिप्रायवशात्सामान्यं सत् प्रकीर्तितम्।
तदसत् परमार्थेन यथा सङ्कल्पितं तथा॥

(वही प्रति पृ. ३९)

(६) तथा चोक्तम् (न्यायविदा वार्तिके)—
नीलपीतादियज्ज्ञानाद् बहिर्वदवभासते।
तन्न सत्यमतो नास्ति विज्ञेयं तत्त्वतो बहिः॥
तदपेक्षया (क्षा ?) च संवित्तेर्मता या कर्तृरूपता।
साऽप्यतत्त्वमतः संविदद्वयेति विभाव्यते॥

(वही प्रति पृ. ५४)

(७) एवं च यदाह न्यायवादी—(धर्मकीर्तिः)—
बीजादङ्कुरजन्माग्नेर्धूमात्सिद्धिरितीदृशी।
बाह्यार्थाश्रयिणी यापि कारकज्ञापकस्थितिः॥
सापि तद्रूपनिर्भासास्तथा नियतसङ्गमाः।
बुद्धीराश्रित्य कल्प्येत यदि किंवा विरुद्ध्यते॥
इत्यादि तदसांप्रतमिति दर्शितं भवति।

(वही प्रति पृ. ५७)

(८) ग्राह्यग्राहकभावलक्षणएव तयोः प्रतिबन्ध इति चेत्, न, अस्य धर्मकीर्तिना—(भवत्तार्किकचूडामणिना)—अनङ्गीकृतत्वात्।'

(वही प्रति पृ. ६०)

(९) यच्चोक्तमेतेन कारणानां भिन्नेभ्यः स्वभावेभ्यः कार्यस्य भिन्ना एव विशेषा इत्येतदपि प्रत्युक्तमिति। एतदप्ययुक्तं, कारणानां भिन्नेभ्यः स्वभावेभ्यः कार्यस्य तस्य तदविरोधात्, तदेकानेकस्वभावत्वात् तथोपलब्धेः, धर्मकीर्तिनाप्यभ्युपगमत्वात्, 'हेतुबिन्दौ' भिन्नस्वभावेभ्यश्चक्षुरादिभ्यः सहकारिभ्य एककार्योत्पत्तौ न कारणभेदात्कार्यभेदः स्यात्' इत्याशङ्क्य 'न यथास्वं स्वभावभेदेन तद्विशेषोपयोगतस्तदुपयोगकार्यस्वभाव विशेषासङ्करात्' इत्यादेः (ग्रन्थात्) स्वयमेवाभिधानात्।

(वही प्रति, पृ. ६६)

आचार्य धर्मपाल और न्यायवादी धर्मकीर्ति इन दोनोंमें गुरुशिष्यका सम्बन्ध था और ये ई. स. की ७ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें विद्यमान थे। चीनी प्रवासी हुएनत्सांग जब ई. स. ६३५में नालन्दाके विद्यापीठ

---

५३ कोष्ठमें लिखा हुआ पाठ टीकामें उपलब्ध है।

में पहुंचा था तब उसे मालूम हुआ कि उसके आनेके कुछ ही समय पहले, आचार्य धर्मपाल जो विद्यापीठके अध्यक्षस्थान पर नियुक्त थे, निवृत्त हो गये थे। हुएनत्सांगके समय धर्मपालके शिष्य आचार्य शीलभद्र अपने गुरुके स्थान पर प्रतिष्ठित थे। उन्हींके पाससे हुएनत्सांगने विद्यालाभ किया था। इस वृत्तान्तसे यह ज्ञान होता है कि धर्मपाल ई. स. ६०० से ६३५ के बीचमें विद्यमान थे।

महामति धर्मकीर्ति भी धर्मपालके शिष्य थे इसलिये उनके बादके २५ वर्ष धर्मकीर्तिके अस्तित्वके मानने चाहिए। अर्थात् ई. स. ६३५ से ६५० तक वे विद्यमान होंगे। इस विचारकी पुष्टिमें दूसरा भी प्रमाण मिलता है। तिब्बतीय इतिहास लेखक तारानाथने लिखा है कि टिबेटके राजा स्रोत्संगम्पो जो ई. स. ६१७ में जन्मा था और जिसने ६०९-९८ तक राज्य किया था, उसके समयमें आचार्य धर्मकीर्ति तिब्बतमें आये थे। इस उल्लेखसे ज्ञात होता है कि हुएनत्सांग जब नालंदाके विद्यापीठमें अभ्यास करता था तब धर्मकीर्ति बहुत छोटी उम्रके होंगे। इस लिये उसने अपने प्रवास-वृत्तांतमें उनका नामोल्लेख नहीं किया। परंतु हुएनत्सांगके बादके चीनी यात्री इत्सींगने-जिसने ई. स. ६७१-६९५ तक भारतमें भ्रमण किया था-अपने यात्रावर्णनमें लिखा है कि दिग्नागाचार्यके पीछे धर्मकीर्तिने न्यायशास्त्रको खूब पल्लवित किया है। इससे जाना जाता है कि इत्सींगके समयमें धर्मकीर्तिकी प्रसिद्धि खूब हो चुकी थी। अतः इन सब कथनोंके मेलसे धर्मकीर्तिका अस्तित्व उक्त समयमें (ई. स ६३५-६५०) मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

अध्यापक का. बा. पाठकने अपने 'भर्तृहरि और कुमारिल' नामक निबन्धमें लिखा है कि-'मीमांसाश्लोकवार्तिकके शून्यवाद्-प्रकरणमें कुमारिलने बौद्धमतके 'आत्मा बुद्धिसे भेदवाला दिखाई देता है' इस विचारका खण्डन किया है। श्लोकवार्तिककी व्याख्यामें इस स्थान पर सुचरितामिश्रने धर्मकीर्तिका निम्न लिखित श्लोक, जिसको शंकराचार्य और सुरेश्वराचार्यने भी लिखा है, बारंवार उद्धृत किया है।

अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः।
ग्राह्य-ग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥

इससे यह मालूम होता है कि कुमारिलने दिग्नाग और धर्मकीर्ति-दोनों के विचारोंकी समालोचना की है। अतः यह सिद्ध होता है कि कुमारिल धर्मकीर्तिके बाद हुए। धर्मकीर्ति जब ईस्वी की ७ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें विद्यमान थे तब कुमारिल कमसे कम उसी शताब्दीके अंतमें होने चाहिए। कुमारिलका नामोल्लेख, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, हरिभद्रने किया है और हरिभद्रका नामस्मरण कुवलयमालाकथाके लिखनेवाले दाक्षिण्यचिन्हने। दाक्षिण्यचिन्हका समय ई. स. की ८ वीं शताब्दीका तृतीय भाग निश्चित है। अतः हरिभद्रका अस्तित्व उसके प्रथमार्धमें या मध्यम-भाग में मानना पडेगा। इस प्रकार, भर्तृहरि और कुमारिलके कालक्रमसे विचारा जाय; अथवा धर्मकीर्ति और कुमारिलके कालक्रमसे विचारा जाय-दोनों गणनासे हरिभद्रका ८ वीं शताब्दी ही में-फिर चाहे उसके आरंभमें या मध्यमें-होना निश्चित होता है।

इसी तरहका, परंतु इनसे भी विशिष्ट, और एक प्रमाण है। नन्दीसूत्र नामक जैन आगम ग्रंथ ऊपर हरिभद्र सूरिने ३३३६ श्लोक प्रमाण संस्कृत टीका लिखी है। इस टीकामें, (जिस तरह आवश्यकसूत्रकी टीकामें, आवश्यकचूर्णिमेंसे शतशः प्राकृत पाठ उद्धृत किये हैं वैसे) उन्होंने बहुतसी जगह, इसी सूत्र पर जिनदास महत्तरकी बनाई हुई चूर्णि नामक प्राकृत भाषामय पुरातन व्याख्यामेंसे जैसेके वैसे बडे लंबे लंबे अवतरण दिये हैं। जिनदास महत्तरने नन्दीचूर्णि शक संवत् ५९८ (= विक्रम संवत् ७३३ = ई. स. ६७६) में समाप्त की थी। इस समयका उल्लेख, इस चूर्णिके अन्तमें स्पष्ट रूपसे इस प्रकार किया हुआ है:—

'शकराज्ञः पञ्चसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेषु अष्टनवतिषु नन्द्यध्ययनचूर्णिः समाप्ता।' [५४]

५४ नन्दीसूत्रचूर्णि, डेक्कनकालेज पुस्तक संग्रह, नं. ११९३, सन् १८८४—८७. चार—पांच सौ वर्ष पहलेके किसी एक जैन विद्वानूने

उदाहरणके लिये, हरिभद्रसूरिने नन्दीचूर्णिमेंसे जो पाठ अपनी टीकामें उद्धृत किये हैं उनमेंसे एक दो पाठ यहां पर लिख देते हैं।

इस सूत्रके प्रारंभमे जो स्थविरावली प्रकरण है उसकी ३६ वीं गाथा की, जिसमें 'खंदिलायरिय' की प्रशंसा है, व्याख्या हरिभद्रने इस प्रकार लिखी है॥

(मूल गाथा—)

'जेसि इमो अणुओगो पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि।
बहुनयरनिग्गयजसे ते वंदे खंदिलायरिए॥'

व्याख्या—येषामनुयोगः प्रचरति, अद्यापि अर्धभरते वैताढ्यादारतः। बहुनगरेषु निर्गतं प्रसृतं प्रसिद्धं यशो येषां ते बहुनगरनिर्गतयशसः, तान् वन्दे। सिङ्घ (सिंह) वाचकशिष्यान् स्कन्दिलाचार्यान्। 'कहं पुण तेसिं अणुओगो ? उच्यते—बारससंवच्छरिए महंते दुब्भिक्खे काले भत्तट्ठा अण्णण्णतो हिंडियाणं गहणगुणणणुप्पेहाभावाओ विप्पणट्ठे सुत्ते, पुणो सुभिक्खे काले जाए महुराए महंते साधुसमुदए खंदिलायरियप्पमुहसंघेण जो जं संभरइ त्ति एवं संघडियं कालियसुयं। जम्हा एयं महुराए कयं तम्हा माहुरी वायणा भण्णइ। सा य खंदिलायरियसम्मत त्ति काउं तस्संतिओ अणुओगो भण्णइ। अन्ने भणंति जहा, सुयं ण णट्ठं। तम्मि दुब्भिक्खे काले जे अन्ने पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा। एगे खंदिलायरिए संधिरे (?), तेण महुराए पुणो अणुओगो पवत्तिओ त्ति माहुरी वायणा भण्णइ। तस्संतिओ अ अणुओगो भण्णइ।'

(नन्दी टीका, डेक्क० पु० पृ० १३)

इस अवतरणमें जितना प्राकृत पाठ है वह सारा हरिभद्रसूरिने चूर्णिमें ही से लिया है। क्यों कि चूर्णिमें अक्षरशः यही पाठ विद्यमान है। (देखो, डेक्कन कालेज संगृहीत, नन्दीचूर्णिकी हस्तलिखित पुस्तक, नं. ११९७, सन् १८८४-८७ पृष्ठ ४.)

नन्दीसूत्रकी बृहट्टीकामें, आचाराङ्गसूत्र विषयक व्याख्यानमें, मलयगिरि सूरिने 'तथा चाह चूर्णिकृत्-' लिखकर, निम्न लिखित पाठ, नन्दीचूर्णिमेंसे उद्धृत किया है—

'दो सुयक्खंधा पणवीसं अज्झयणाणि एयं आयारगसहियस्स आयारस्स पमाणं भणियं, अट्ठारसपयसहस्सा पुण पढमसुयक्खंधस्स नवबंभचेरमइयस्स पमाणं, विचित्तअत्थनिबद्धाणि य सुत्ताणि, गुरूवएसओ तेसिं अत्थो जाणियव्वो त्ति।'

नन्दीटीका, (मुद्रित पृ. २११)

यही पाठ, हरिभद्रसूरिने भी अपनी टीकामें अविकलरूपसे उद्धृत किया हुआ है। (देखो, डे. पु पृ. ७६) । ऐसे ही और भी कई जगह इस प्रकारके पाठ उद्धृत हैं। इससे यह बात निश्चित हुई कि हरिभद्रसूरि, शक संवत् ५९८ (वि. सं. ७३३=ई. स. ६७६) से बाद ही में किसी समयमें हुए हैं। गाथामें बतलाये मुताबिक विक्रम संवत् ५८५ में, अथवा, दूसरे उल्लेखोंमें लिखे मुजब, वी० सं० १०५५ में नहीं हुए। चूर्णिके बने बाद कमसे कम ५० वर्ष अनंतर ही हरिभद्रने अपनी टीका लिखी होनी चाहिए। और इस लिये, इस हिसाबसे भी उनका समय वही ईस्वीकी ८ वीं शताब्दी निश्चित होता है।

इस प्रकार, भिन्न भिन्न प्रमाणोंसे हमने यह तो सिद्ध कर दिखाया है, कि हरिभद्रसूरि प्राकृत गाथा आदिके लेखानुसार, विक्रमकी छठी शताब्दीमें नहीं हुए परंतु आठवीं शताब्दीमें हुए हैं। परंतु इससे यह निश्चित नहीं हुआ कि, इस शताब्दीके कौनसे भागमें—कबसे कब तक—वे विद्यमान थे ?। कुवलयमाला कथाके अन्तिम (प्रशस्ति-) लेखका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेसे इस प्रश्नका भी यथार्थ समाधान हो जाता है।

जैन इतिहासके रसिक अभ्यासियोंको यह सुन कर आनंदके साथ आश्चर्य होगा कि, कुवलयमालाके कर्ता उद्द्योतनसूरि ऊर्फ दाक्षिण्यचिन्ह खुद हरिभद्रके एक प्रकारसे साक्षात् शिष्य थे ! इस कथा

'बृहट्टिप्पणिका' नामकी संस्कृतमें एक जैनग्रन्थसूचि बनाई है जिसमें भी, इस चूर्णिका रचना-काल वि. सं. ७३३ (अर्थात् शक संवत् ५९८) लिखा हुआ है। यथा—'नन्दीसूत्रं ७०० [श्लोक प्रमाणं] चूर्णिः ७३३ वर्षे कृता। स्तंभ० विना नास्ति।'

की प्रशस्तिका वह महत्त्वका भाग, जिसमें कर्ताने स्वकीय गुरुपरंपरा आदिका परिचय दिया है, कुछ विस्तृत होने पर भी उसे यहां पर उद्धृत कर देनेके लोभका हम संवरण नहीं कर सकते। प्रशस्ति इस प्रकार है—

अत्थि पयडा पुरीणं पव्वइया नाम रयणसोहिल्ला।
तत्थट्ठिएण भुत्ता पुहई सिरितोरसाणेण ॥
तस्स गुरू हरियत्तो आयरिओ आसि गुत्तवंसीओ।
तीए नयरीए दिन्नो जिणनिवेसो तहिं काले ॥
[तस्स] बहुकलाकुसलो सिद्धन्तवियाणओ कई दक्खो।
आयरियदेवगुत्तो अज्जवि विज्जरए कित्ती (?) ॥
सिवचन्दगणी अह मयहरो त्ति सो एत्थ आगओ देसा।
सिरिभिल्लमालनयरम्मि संठिओ कप्परुक्खो व्व ॥
तस्स खमासमणगुणो नामेणं जक्खदत्तगणिनामो।
सिस्सो महइमहप्पा आसि तिलोए वि पयडजसो ॥५॥
तस्स य सीसा बहुया तववीरियलद्धचरणसंपण्णा।
रम्मो गुज्जरदेसो जेहिं कओ देवहरएहिं ॥
आगासवप्पनयरे वडेसरो आसि जो खमासमणो।
तस्स मुहदंसणे च्चिय अवि पसमइ जो अहव्वोवि ॥
तस्स य आयारधरो तत्तायरिओ त्ति नाम सारगुणो।
आसि तवतेयनिज्जियपावतमोहो दिणयरो व्व ॥
जो दूसमसलिलपवाहवेगहीरन्तगुणसहस्साण।
सीलंगविउलसालो लग्गणखंभो व्व निक्कंपो ॥
सीसेण तस्स एसा हिरिदेवीदिन्नदंसणमणेण।
रइया कुवलयमाला विलसिरदक्खिन्नइंधेण ॥ १० ॥
दिन्नजहिच्छियफलओ बहुकित्तीकुसुमरेहिराभोओ।
आयरियवीरभद्दो अवा (हा) वरो कप्परुक्खो व्व ॥
सो सिद्धन्त[म्मि] गुरू, पमाण नाएण (अ)जस्स हरिभद्दो
बहुगन्थसत्थवित्थरपयड [समत्तसुअ] सच्चत्थो ॥
राया [य] खत्तियाणं वंसे जाओ वडेसरो नाम।
तस्सुज्जोयणनामो तणओ अह विरइया तेण ॥

इन गाथाओंमेंसे, प्रथमकी १० गाथाओंमें कथाकर्ताने अपनी मूल गुरुपरंपराका वर्णन दिया है जिसका तात्पर्य यह है:—पहले हरिदत्त नामके एक गुप्त वंशीय आचार्य हुए। वे पव्वइया पुरी के तोरमाण नामक राजाके गुरु थे और उनके उपदेशसे उस नगरीमें, उस राजाने एक जिनमंदिर बनवाया था। उनके शिष्य देवगुप्त नामक हुए जो सिद्धान्तोंके ज्ञाता और कुशल कवि थे। उनकी कीर्ति आज भी जगत्में फैल रही है। उनके बाद सिवचन्द्र गणी महत्तर नामके आचार्य हुए। उन्होंने देशमेंसे (पव्वइया नगरीवाले प्रदेशमेंसे ?) आकर भिल्लमाल (जिसे श्रीमाल भी कहते हैं) नगरमें निवास किया। उनके यक्षदत्त गणी नामक क्षमा श्रमण गुणधारक प्रसिद्ध शिष्य हुए जिनके अनेक शिष्योंने गुजरात देशमें देवमंदिर (जिनमंदिर) बनवा कर उसकी शोभा बढाई। इनके शिष्य आगासवप्प नगरमें रहनेवाले वडेसर नामक क्षमा श्रमण हुए जिनके मुखका दर्शन करके अभव्य जीव भी प्रशान्त हो जाता था। वडेसरके तत्तायरिय नामके बडे तपस्वी और आचारधारक शिष्य हुए। इन्हीं तत्तायरियके शिष्य दाक्षिण्यचिन्ह हुए, जिन्होंने ह्रीदेवीके दर्शनसे प्रसन्न हो कर इस कुवलयमाला कथाकी रचना की।

इस प्रकार इन गाथाओंमें, अपनी मूल पूर्व गुरुपरंपराका जिकर करके कथाकारने फिर अनन्तरकी ३ (११-१३) गाथाओंमें अपने विशिष्ट उपकारी गुरुओं-पूज्योंका सविशेष उल्लेख कर, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। इस गाथा-कुलकका अर्थ इस प्रकार है—

'इच्छित फलके देनेवाले, और कीर्तिरूप कुसुमोंसे अलंकृत होनेके कारण नवीन कल्पवृक्षके समान दीखाई देनेवाले, आचार्य वीरभद्र तो जिसके सिद्धान्तोंके पढानेवाले गुरु हैं; और जिन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर समस्त श्रुत (आगमों) का सत्यार्थ प्रकट किया है वे आचार्य हरिभद्र जिसके प्रमाण और न्यायशास्त्रके सिखानेवाले गुरु हैं। तथा, क्षत्रियवंशोत्पन्न वडेसर नामक राजाका जो पुत्र है और उद्द्योतन जिसका मूल नाम है उसने यह कथा निर्मित की है।'

इस गाथाकुलकमें हरिभद्रसूरिके लिये 'बहुग्रन्थ प्रणेतृत्व' और 'प्रमाण न्यायशास्त्रविषयक गुरुत्व' के विशेषण जो साभिप्राय प्रयुक्त किये गये हैं उनसे विचारवान् विद्वान् स्पष्ट जान सकते हैं कि, कथाकर्ता यहां पर जिन हरिभद्रका स्मरण

करते हैं, वे, वे ही हरिभद्र सूरि हैं जिनको लक्ष्य कर प्रस्तुत प्रबन्धके लिखनेका परिश्रम किया गया है। क्यों कि इनके सिवा 'अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर समस्त श्रुतका सत्यार्थ प्रकट करनेवाले' दूसरे कोई हरिभद्र जैन साहित्य या जैन इतिहासमें उपलब्ध नहीं होते।

अतः इससे यह अंतिम निर्णय हो जाता है कि महान् तत्त्वज्ञ आचार्य हरिभद्र और कुवलयमाला कथाके कर्ता उद्द्योतनसूरि ऊर्फ दाक्षिण्यचिन्ह दोनों (कुछ समय तक तो अवश्यही) समकालीन थे। इतनी विशाल ग्रन्थराशि लिखनेवाले महापुरुषकी कमसे कम ६०-७० वर्ष जितनी आयु तो अवश्य होगी। इस कारणसे, लगभग ईस्वीकी ८ वीं शताब्दीके प्रथम दशकमें हरिभद्रका जन्म और अष्टम दशकमें मृत्यु मान लिया जाय तो वह कोई असंगत नहीं मालूम देता। इस लिये, हम ई. स. ७०० से ७७० (विक्रम संवत् ७५७ से ८२७) तक हरिभद्र सूरिका सत्ता-समय स्थिर करते हैं।

परिशिष्ट।

—:o:—

१
हरिभद्र और शांतिरक्षित।

शास्त्रवार्तासमुच्चयके चतुर्थ स्तबकके निम्न लिखित श्लोकमें हरिभद्रने बौद्ध पण्डित शान्तिरक्षितके एक विचारका प्रतिक्षेप किया है। यथा—

एतेनैतत्प्रतिक्षिप्तं यदुक्तं सूक्ष्मबुद्धिना।
'नासतो भावकर्तृत्वं तदवस्थान्तरं न सः'॥[1]

इस श्लोककी स्वोपज्ञ टीकामें 'सूक्ष्मबुद्धिना—शान्तिरक्षितेन' ऐसा निर्देश कर स्पष्टरूपसे शान्तिरक्षितका नामोल्लेख किया है। डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषणने अपनी 'मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास' नामक पुस्तकमें (पृ. १२४) आचार्य शान्ति(न्त) रक्षितका समय ई. स. ७४९ के आसपास स्थिर किया है। इन शान्तिरक्षितने, हरिभद्रके शास्त्रवार्तासमुच्चयके समान दार्शनिक विषयोंकी आलोचना करनेवाला 'तत्त्वसंग्रह' नामक एक प्रौढ ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ पर पञ्जिका नामकी एक टीका भी उन्हींके समकालीन नालन्दा—विद्यापीठके तंत्रशास्त्राध्यापक आचार्य कमलशीलने उसी समयमें लिखी है। इस सटीक ग्रंथका प्राचीन हस्तलेख हमने गुजरातकी पुरातन राजधानी पाटनके प्रसिद्ध जैन-पुस्तकभांडागारमें देखा है।[2] प्रस्तुत निबन्ध लिखनेके समय यह ग्रंथ हमारे सम्मुख न होनेसे यह तो हम नहीं कह सकते कि हरिभद्रने जो शान्तिरक्षितका उल्लिखित श्लोकार्द्ध उद्धृत किया है वह इसी तत्त्वसंग्रहका है या अन्य किसी दूसरे ग्रन्थका। परन्तु इतना तो हमें विश्वास होता है कि यह श्लोकार्द्ध होना चाहिए इन्हीं शान्तिरक्षितकी किसी कृतिमेंका। ऐसी स्थितिमें, डॉ. सतीशचन्द्र वि. का लिखा हुआ शान्तिरक्षितका समय यदि ठीक है तो हरिभद्र और शान्तिरक्षित दोनों समकालीन साबित होते हैं।

कुछ विद्वान् ऐसे समकालीन पुरुषोंको लक्ष्य कर ऐसी शंका किया करते हैं कि—उस पुरातन समयमें, आधुनिक कालकी तरह मुद्रायंत्र, समाचारपत्र और रेल्वे आदि अतिशीघ्रगामी वाहनों वगैरह जैसे साधन नहीं थे कि जिनके द्वारा कोई व्यक्ति तथा उसके लेख या विचार तत्काल सारे देशमें परिचित हो जाय। उस समय लिये किसी विद्वानका अथवा उसके बनाये हुए ग्रंथका अन्यान्य विद्वानोंको परिचय मिलनेमें कुछ न कुछ कालावधि अवश्य अपेक्षित होती थी। इस विचारसे, यदि शान्तिरक्षित उक्तरीत्या ठीक हरिभद्रके समकालीन ही थे तो फिर हरिभद्र द्वारा उनके ग्रंथोक्त विचारोंका प्रतिक्षेप किया जाना कैसे संभव माना जा सकता है? इस विषयमें हमारा अभिप्राय यह है कि—यह कोई नियम नहीं है, कि, उस समयमें समकालीन विद्वानोंका एक दूसरे संप्रदायवालोंमें तुरन्त परिचय हो ही नहीं सकता था। यह बात अवश्य है कि आजकल जैसे कोई

---

१ देखो, शास्त्रवार्तासमुच्चय, (दे. ला. पु. मुद्रित,) पृ १४०

२ यह ग्रंथ बडौदाराज्यकी ओरसे प्रकाशित होनेवाली संस्कृतग्रन्थमालामें छपनेके लिये तैयार हो रहा है।

व्यक्ति या विचार चार छह महिनेहीमें मुद्रालयों और समाचारपत्रोंके द्वारा सर्वविश्रुत हो जाता है, उतनी शीघ्रताके साथ उस समयमें नहीं हो पाता था। परंतु ५-१० वर्ष जितनी कालावधिमें तो उस समयमें भी उत्तम विद्वान् यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता था। इसका कारण यह है कि उस समय जब कोई ऐसा असाधारण पण्डित तैयार होता था तो फिर वह अपने पाण्डित्यका परिचय देनेके लिये और दिग्विजय करनेके निमित्त देश-देशान्तरोंमें परिभ्रमण करता था और इस तरह अनेक राजसभाओंमें और पण्डित-परिषदोंमें उपस्थित हो कर वहांके अन्यान्य विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ या वादविवाद किये करता था। इसी तरह जब कोई विद्वान किसी विषयका कोई खास नवीन और अपूर्व ग्रंथ लिखता था तो उसकी अनेक प्रतियां लिखवा कर प्रसिद्ध पुस्तकभांडागारों, राजमन्दिरों और धर्मस्थानोंमें तथा स्वतंत्र विद्वानोंके पास भेट रूपसे या अवलोकनार्थ भेजा करता था। इस लिये प्रख्यात विद्वानको अपने जीवन काल ही में यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर लेनेमें और उसके बनाये हुए ग्रंथोंका, दूसरोंके द्वारा आलोचन-प्रत्यालोचनके किये जानेमें कोई आपत्ति नहीं है।

२

हरिभद्र और धर्मोत्तर।

दिग्नागाचार्य रचित 'न्यायप्रवेश-प्रकरण' ऊपर हरिभद्रने शिष्यहिता नामकी एक संक्षिप्त और स्फुट व्याख्या लिखी है[1]। इस व्याख्याके प्रारंभके भागमें जहां 'अनुमान' शब्द की व्युत्पत्ति और उसका लक्षण लिखा है वहां एक उल्लेख खास ध्यान खींचने लायक है। वह उल्लेख इस प्रकार है:--

मीयतेऽनेनेति मानं परिच्छिद्यत इत्यर्थः।अनुशब्दः पश्चादर्थे, पश्चान्मानमनुमानम्। पक्षधर्मग्रहणसम्बन्धस्मरणपूर्वकमित्यर्थः। वक्ष्यति च "त्रिरूपाल्लिङ्गाल्लिङ्गिनि [ज्ञान] मनुमानम्।"

इस अवतरणके अन्तमें जो 'वक्ष्यति' क्रिया लिख कर "त्रिरूपाल्लिङ्गाल्लिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम्।" यह सूत्र लिखा है उस पर किसी एक पुरातन पण्डितने निम्न लिखित टिप्पणी लिखी है[2]:—

नन्वेतत्सूत्रं धर्मोत्तरीयं न तु प्रकृतशास्त्रसत्कम्। एतच्छास्त्रसत्कमेतत्सूत्रम्--'लिङ्गं पुनस्त्रिरूपमित्यादि।' तत्कथं 'वक्ष्यति च' इति प्रोच्यते? । सत्यमेतत्। यद्यप्यत्रैवं विधं सूत्रं नास्ति तथा [पि] धर्मोत्तरीयसूत्रमप्यत्र सूत्रोक्तानुमानलक्षणाभिधायिकमेवेत्यर्थतोऽत्रत्यधर्मोत्तरीयसूत्रयोः साम्यमेवेत्यर्थापेक्षया 'वक्ष्यति' इति व्याख्येयमिति न विरोधः।

इस टिप्पणीका आशय यह है कि व्याख्याकारने जो ऊपरके अवतरणमें "त्रिरूपाल्लिङ्गाल्लिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम्।" यह सूत्र लिखा है उसके स्थान में 'लिङ्गं पुनस्त्रिरूपम्' यह सूत्र लिखना चाहिए। क्यों कि वह सूत्र तो धर्मोत्तर आचार्यका बनाया हुआ है; दिग्नागका नहीं; दिग्नागका तो यही पिछला सूत्र है। ऐसी स्थिति होने पर, यहां पर जो धर्मोत्तरीय सूत्र लिखा गया है उसका समाधान यों कर लेना चाहिए, कि धर्मोत्तरका सूत्र भी प्रकृत सूत्रानुरूप ही अनुमानका लक्षण प्रदर्शित करता है, इस लिये इन दोनोंमें परस्पर अर्थसाम्य होनेसे हरिभद्रने जो (कदाचित् विस्मृतिके कारण?) धर्मोत्तरका सूत्र लिख दिया है तो उसमें कोई ऐसा विशेष विरोध नहीं दिखाई देता।

टिप्पणीकारके इस समाधानसे न्यायशास्त्रके अभ्यासियोंका तो समाधान हो जायगा परंतु इतिहासशास्त्रके अभ्यासियोंका नहीं। ऐतिहासिकोंके लिये तो इससे एक नया ही प्रश्न ऊठ खडा

---

१ यह व्याख्या सटपीटर्सवर्ग (अब, पेट्रोग्राड) से प्रकट होनेवाली Bibliotheca Buddhica में छप रही है। इसके बारेमें विशेष वृत्तान्त जाननेके लिये, 'जैनशासन' नामक पत्रके दीपावलीके खास अंकमें छपा हुवा डा. मिरोनोका Dignaga's Nyayapravesa and Haribhadra's Commentary on it नामक निबन्ध देखना चाहिए।

२ डेक्कनकालेज पुस्तकालयमें की हस्तलिखित प्रति, नं. ७३८, १८७५-७६, पृ. २.

होता है। टिप्पणीलेखकके कथनानुसार यदि "त्रिरूपालिङ्गाल्लिङ्गिनि ज्ञानमनुमानं" यह सूत्र धर्मोत्तरके बनाये हुए किसी ग्रंथमेंका है तो यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह धर्मोत्तर कौन और कब हुए। धर्मकीर्तिके बनाये हुए न्यायबिन्दु नामक ग्रंथ ऊपर टीका लिखनेवाले धर्मोत्तरका नाम विद्वानोंमें प्रसिद्ध है। प्रमाणपरीक्षा, अपोहप्रकरण, परलोकसिद्धि, क्षणभंगसिद्धि और प्रमाण ?] विनिश्चयव्याख्या आदि ग्रंथ भी उनके बनाये हुए कहे जाते हैं। म. म. सतीशचन्द्र वि०ने अपने पूर्वोक्त इतिहास में (पृ १३१) इन धर्मोत्तरका समय ई. स. ८४७ के आसपास स्थिर किया है। यदि यह समय ठीक है तो फिर हरिभद्र लिखित उक्त सूत्रके रचयिता धर्मोत्तर, इन प्रसिद्ध धर्मोत्तरसे भिन्न-कोई दूसरे ही प्राचीन धर्मोत्तर--होने चाहिए। क्यों कि हरिभद्रका स्वर्गवास ८ ई० की वीं शताब्दीके तीसरे पादमें हो चुका होगा यह हमने सप्रमाण सिद्ध करही दिया है।

बौद्ध मतमें धर्मोत्तर नामसे प्रसिद्ध दो आचार्य हो गये हैं ऐसा प्रमाण महान जैन तार्किक विद्वान् वादी देवसूरिके स्याद्वादरत्नाकर नामक प्रतिष्ठित तर्कग्रंथमेंसे मिलता है। इस ग्रंथके प्रथम परिच्छेदके "स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्।" इस दूसरे सूत्रकी व्याख्यामें 'लक्ष्यलक्षणभावाचक' शब्दोंके विधानाविधानकी मीमांसा करते हुए शुरू ही में धर्मोत्तरके तद्विषयक विचारोंकी आलोचना की है। ग्रंथकर्ताने स्वयं इन धर्मोत्तरको, धर्मकीर्तिके 'न्यायविनिश्चय' और 'न्यायबिन्दु' नामक प्रमाणग्रंथोंके व्याख्याता बतलाये हैं और उनकी की हुई उन व्याख्याओंमेंसे कुछ अवतरण भी उद्धृत किये हैं। फिर इन धर्मोत्तर को 'वृद्धधर्मोत्तरानुसारी' (वृद्ध धर्मोत्तरके विचारोंका अनुसरण करने वाले) तथा 'वृद्धसेवाप्रसिद्ध' (वृद्ध [धर्मोत्तर] की सेवा करनेसे प्रसिद्धि पाने वाले) ऐसे विशेषणों से सम्बोधित कर इन्हें किसी वृद्ध धर्मोत्तरके अनुयायी बतलाये हैं; और अन्तमें इनके विचार-विधानसे उन वृद्ध धर्मोत्तरके तद्विषयक विचारोंका खण्डित होना बतला कर, इनके कथनको स्वमत-विरोधी सिद्ध किया गया है। वादी देवसूरीके तद्विषयक सब लेखांश इस प्रकार हैः--

(१) अत्राह धर्मोत्तरः—लक्ष्यलक्षणभावविधानवाक्ये लक्ष्यमनूद्य लक्षणमेव विधीयते। लक्ष्यं हि प्रसिद्धं भवति ततस्तदनुवाद्यम्, लक्षणं पुनरप्रसिद्धमिति तद्विधेयम्। अज्ञातज्ञापनं विधिरित्यभिधानात्। सिद्धे तु लक्ष्यलक्षणभावे लक्षणमनूद्य लक्ष्यमेव विधीयते इति। (स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १०,)

(२) साधो! सौगत! भूभर्तुर्धर्मकीर्तेर्निकेतने।
व्यवस्थां कुरुषे नूनमस्थापितमहत्तमः॥

स हि महात्मा (धर्मकीर्तिः) विनिश्चये (न्यायविनिश्चये) प्रत्यक्षमेकं, न्यायबिन्दौ तु प्रत्यक्षानुमाने द्वे अप्यप्रमाध्येव तल्लक्षणानि प्रणयति स्म। किञ्च शब्दानित्यत्वसिद्धये कृतकत्वमसिद्धमपि सर्वमुपन्यस्य पश्चात् तत्सिद्धिमभिदधानोऽपि न लक्षणस्य तामनुमन्यसे इति स्वाभिमानमात्रम्। अपि च प्रत्यक्षलक्षणव्याख्यालक्षणं 'लक्ष्यलक्षणभावविधानवाक्ये' इत्यादिना लक्षणस्यैव विधिमभिधित्से विधेरेवापराधान्न बुद्धेः, यतो न्यायविनिश्चयटीकायां स्वार्थानुमानस्य लक्षणे 'तत्कथं त्रिरूपलिङ्गग्राहिण एव दर्शनस्य नानुमानत्वप्रसङ्गः' इति पर्यनुयुञ्जान 'एतदेव सामर्थ्यप्राप्तं दर्शयति यदनुमेयेऽर्थे ज्ञानं तत्स्वार्थमिति' इत्यनुमन्यमानश्चानुमापयसि स्वयमेव लक्ष्यस्यापि विधिम्। स्पष्टमेवाभिदधासि च न्यायबिन्दुवृत्तौ एतस्यैव लक्षणे. 'त्रिरूपाच्च लिङ्गाद्यदनुमेयालम्बनं ज्ञानं तत्स्वार्थमनुमानमिति।'(देखो. न्यायबिन्दुटीका,पिटर्सनसम्पादित, पृ. २१) विनिश्चयटीकायामेव च परार्थानुमानलक्षणे 'त्रिरूपस्य लिङ्गस्य यदाख्यानं तत्परार्थमनुमानमिति।' च व्याचक्षाण इत्यक्षुण्णं ते वैचक्षण्यमिति।

(स्याद्वादरत्नाकर. पृ. १०)

(३) अपि च भवद्भवनसूत्रणासूत्रधारो धर्मकीर्तिरपि 'न्यायविनिश्चयस्याद्य—द्वितीय—तृतीय—परिच्छेदेषु—' प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तमिति॥ १॥'

'तत्र स्वार्थं त्रिरूपालिङ्गतोऽर्थदृगिति ॥ २ ॥' 'परार्थमनुमानं तु स्वदृष्टार्थप्रकाशनमिति ॥ ३ ॥' त्रीणि लक्षणानि; 'तिमिराशुभ्रमणनौयानसङ्क्षोभाद्यनाहितविभ्रममविकल्पकं ज्ञानं प्रत्यक्षमिति ॥१॥' त्रिलक्षणालिङ्गाद्यदनुमेयेऽर्थे ज्ञानं तत्स्वार्थमनुमानमिति ॥ २ ॥' 'यथैव हि स्वयं त्रिरूपालिङ्गतो लिङ्गिनि ज्ञानमुत्पन्नं तथैव परत्र लिङ्गिज्ञानोत्पिपादयिषया त्रिरूपलिङ्गाख्यानं परार्थमनुमानमिति।३।' च व्याचक्षाणो लक्ष्यस्यैव विधिमकीर्तयत्, तथा 'लक्ष्यलक्षणभावविधानवाक्ये' इत्युपक्रम्य लक्षणमेव विधीयत इत्यभिदधानः कथं न स्ववचनविरोधमवबुध्यसे ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. ११.)

(४) बलदेवबलं स्वायं दर्शयन्ननिदर्शनम् ।
वृद्धधर्मोत्तरस्यैवं भावमत्र न्यरूपयत् ॥
(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. ११.)

(५) वृद्धसेवाप्रसिद्धोऽपि ...त्वं विशङ्कितः ।
बालवत्स्यादुपालभ्यस्त्रैविद्यविदुषामयम् ॥

तथाहि—सोऽयं वृद्धधर्मोत्तरानुसार्यप्यलीकवाचालतया तुल्यस्वरूपयोरपि व्युत्पत्तिव्यवहारकालयोरतुल्यतामुपकल्पयन् बाल इवकामप्यङ्गुलिं वेगवत्तया चचलयन् द्वयीकृत्य दर्शयन्नाल्येवमुपालभ्यते त्रैविद्यकोविदैः ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १२.)

(६) यच्चावाचि 'अत एवेत्यादि' तत्रायमाशयः, लक्ष्यं हि प्रसिद्धमनूद्यं भवतीत्यस्माद् भूतविभक्तेर्या द्वितीयायाः समुपादीयन्ते लक्षणं पुनरप्रसिद्धं विधेयमित्यतो भव्यविभक्तिः प्रथमैव प्रयुज्यत इति । सोऽयं साहित्यज्ञताभिमानात् तत्र वृद्धधर्मोत्तरमधरयति, स्वयं त्वेवं व्याचष्ट इति किमन्यदस्य देवानां प्रियस्य श्लाघनीयता प्रज्ञायाः ।

(स्याद्वादरत्नाकर, पृ. १३)

इन अवतरणोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि धर्मोत्तर नामके दो आचार्य हो गये हैं। अतः हरिभद्रने उक्त जिस धर्मोत्तरीयसूत्रको उद्धृत किया है उसके कर्ता, न्यायबिन्दु आदि धर्मकीर्तिकृत ग्रंथोंके टीकाकार धर्मोत्तर नहीं परंतु उनके पूर्वज वृद्धधर्मोत्तर होने चाहिए। नहीं तो फिर इन अर्वाचीन धर्मोत्तरका समय कमसे कम १०० वर्ष जितना पीछे हटाना चाहिए।

परंतु इन प्रसिद्ध धर्मोत्तरके, हरिभद्रके पूर्वज न होनेमें एक इतर प्रमाण भी प्राप्त होता है। धर्मोत्तर रचित न्यायबिन्दुटीकाके ऊपर मल्लवादी नामके एक जैन विद्वान् की टिप्पणी लिखी हुई उपलब्ध है। इस टिप्पणीके देखनेसे ज्ञात होता है कि धर्मोत्तरने अपनी टीकामें कई जगह न्यायबिन्दुके पूर्वटीकाकार विनीतदेवकी (और साथमें शांन्तिभद्रकी भी) की हुई टीकाको दूषित बतलाई है और उसका खण्डन किया है। टिप्पणी लेखकके इस बातके सूचक वाक्य कुछ ये हैं*—

१— सम्यग्ज्ञानेत्यादिना (१. ५) विनीतदेवव्याख्यां दूषयति । (पृ. ३)
२— हेयोऽर्थ इत्यादिना विनीतदेवस्य व्याख्या दूषिता । (पृ. १२).
३— उत्तरेण ग्रन्थेन सर्वशब्द (५. २) इत्यादिना टीकाकृतां व्याख्यां दूषयति । विनीतदेवशान्तभद्राभ्यामेवमाशङ्क्य व्याख्यातम् । (पृ. १३).
४— यथार्थाविनाभावेत्यादिना (६. १३) अनेन विनीतदेवशान्तभद्रयोर्व्याख्या च दूषिता । (पृ. १६).
५— अनेन लक्ष्यलक्षणभावं दर्शयता विनीतदेवव्याख्यानं संज्ञासंज्ञिसम्बन्धरूपं प्रत्युक्तम् । (पृ. १७).
६— तेन यद्विनीतदेवेन सामान्ययोर्वाच्यवाचकभावमङ्गीकृत्य निर्विकल्पकत्वमिन्द्रियविज्ञानस्य प्रतिपादितं तद्दूषितं भङ्ग्या । (पृ. २३–४).

ये विनीतदेव‡ राजा ललितचन्द्रके समकालीन

* बिब्लिओथिका बुद्धिका (सेंटपिटर्सबर्ग, रशिया) में प्रकाशित ।

‡ देखो सतीशचन्द्र वि. लिखित 'मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास। पृ. ११९ ।

थे। राजा ललितचन्द्रका समय अन्यान्य अनुमानोंके द्वारा ई. स. ७०८ के लगभग माना जाता है, अतएव विनीतदेवका भी वही समय मानना चाहिए। इस गणनासे, मल्लवादीके लेखानुसार विनीतदेवकी व्याख्या पर आक्षेप करनेवाले धर्मोत्तरका अस्तित्व या तो हरिभद्रके समयमें स्वीकारना चाहिए या उसके अनन्तर। ऐसी दशामें तिब्बतीय इतिहासलेखक तारानाथके इस कथनको कि, आचार्य धर्मोत्तर, काश्मीरके राजा वनपालके, जो ई. स. ८४७ के आसपास राज्य करता था, समकालीन थे, असत्य माननेमें कोई कारण नहीं है।

३

हरिभद्र और मल्लवादी.

हरिभद्र और मल्लवादी आचार्यके सम्बन्धमें भी परस्पर इसी तरहकी एक उलझन है। मल्लवादी नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बडे तार्किक विद्वान् जैनधर्मके श्वेतांबर संप्रदायमें हो गये हैं। उन्होंने, जैनधर्मका सबसे गूढ और गभीर सिद्धान्त जो नयवाद कहलाता है, उस पर द्वादशारनयचक्र नामक एक विशाल और प्रौढ ग्रंथकी रचना की है। हरिभद्रसूरिने अपने अनेकान्तजयपताका नामक ग्रंथ में दो-तीन स्थान पर उनका नामस्मरण किया है और उन्हें 'वादिमुख्य' बतला कर सिद्धसेन दिवाकर प्रणीत 'सम्मति महातर्क' के टीका लिखनेवाले लिखे हैं। यथा—

(१) उक्तं च वादिमुख्येन (टिका—मल्लवादिना सम्मतौ)— स्वपरसत्त्वव्युदासोपादानापाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्वम्, अतो यद्यपि सन्न भवतीत्यसत्, तथापि परद्रव्यादिरूपेण सतः प्रतिषधात् तस्य च तत्रासत्त्वात् तत्स्वरूपसत्त्वानुबन्धात् न निरुपाख्यमेव तत्। इति प्रसज्यप्रतिषेधपक्षोदितदोषाभावः (अनेकान्तजयपताका, काशी, पृ० ४७.)

(२) उक्तं च वादिमुख्येन (श्रीमल्लवादिना सम्मतौ)—' न विषयग्रहणपरिणामादृतेऽपरः संवेदने विषयप्रतिभासो युज्यते युक्त्ययोगात्। (अनेकान्तजयपताका, पृ० ९८)

जैन दन्तकथा मुजिब इन मल्लवादीका अस्तित्व ईस्वीकी चौथी शताब्दीमें माना जाता है। परंतु, इधर उपर्युक्त वर्णनानुसार धर्मोत्तररचित न्यायबिन्दु-टीकाके ऊपरकी टिप्पणीके कर्ता भी मल्लवादी नामक जैनाचार्य ही ज्ञात होते हैं। आज तक जैनसाहित्यमें केवल एक ही मल्लवादीके होनेका उल्लेख देख गया है, इस लिये धर्मोत्तरटीका-टिप्पणीके कर्ता मल्लवादी और 'द्वादशारनयचक्र'के कर्ता प्रसिद्ध मल्लवादी दोनों एक ही समझे जायँ तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। और इसी कारणसे डॉ. सतीशचन्द्र वि. ने अपने निबन्धमें मल्लवादीका सत्तासमय समुचितरूपसे वही लिखा है जो धर्मोत्तरके लिये स्थिर किया गया है।*

परंतु हरिभद्रके ग्रंथमें मल्लवादीका उक्त प्रकार स्पष्ट नामोल्लेख होनेसे, वे 'वादीमुख्य' और सुप्रसिद्ध मल्लवादी तो निःसन्देह रीतिसे हरिभद्रके अस्तित्व-समयसे-अर्थात् ईस्वीकी ८ वीं शताब्दीसे-पूर्व ही में हो चुके हैं। इस लिये धर्मोत्तरटीकाकी टिप्पणी लिखनेवाले मल्लवादीको दूसरे मल्लवादी समझने चाहिए और वे धर्मोत्तरके बाद किसी समयमें हुए होने चाहिए। एवं हरिभद्रके ग्रंथोंसे हमें एक नये धर्मोत्तर और नये मल्लवादीका पता लगता है।

४

हरिभद्र सूरि और शंकराचार्य।

वेदान्तमतप्रस्थापक आदि शंकराचार्यके सत्तासमयके विषयमें भी हरिभद्रके समयनिर्णयसे कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। शंकराचार्यके समयके बारेमें अनेक विद्वानोंके अनेक विचार हैं। कोई तो उन्हें ठेठ महात्मा गौतमबुद्धके समकालीन और कोई महाकवि कालिदास और नृपति विक्रमादित्यके समकालीन बतलाते हैं। कोई ईस्वीकी पहली

* देखो, पूर्वोक्त, मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास. पृ. ३४-३५।

शताब्दीमें, कोई चौथीमें, कोई पांचवींमें, कोई छठीमें, कोई ७ वीं में, कोई आठवींमें, कोई नववींमें और यहां तक कि कोई १४ वीं जैसे बिल्कुल अर्वाचीन काल तकमें भी उनका होना मानते हैं। परंतु इन सब विचारोंमेंसे हमें, हरिभद्रके साहित्यका अवलोकन करनेके बाद, प्रो. काशीनाथ बापू पाठकका विचार युक्तिसंगत मालूम देता है। उनके विचारानुसार शंकराचार्य ईस्वीकी ८ वीं शताब्दीके अंतमें और नववींके प्रारंभमें हुए होने चाहिए। उन्होंने एक पुरातन सांप्रदायिक श्लोकके आधार परसे शक ७१० (ई. स. ७८८) में शंकराचार्यका जन्म होना बतलाया है। इसी समयके सम्बन्धमें अन्यान्य विद्वानोंके अनेक अनुकूल-प्रतिकूल अभिप्राय जो आज तक प्रकट हुए हैं उनमें सबसे पिछला अभिप्राय प्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत बाल गंगाधर तिलकका, उनके 'गीतारहस्य' में प्रकट हुआ है। श्रीयुत तिलक महाशयके मतसे "इस कालको सौ वर्ष और भी पीछे हटाना चाहिए। क्यों कि महानुभाव पन्थके दर्शनप्रकाश नामक ग्रंथमें यह कहा है कि 'युग्मपयोधिरसान्वितशाके' अर्थात् शक संवत् ६४२ (विक्रमी संवत् ७७०) में श्रीशंकराचार्यने गुहामें प्रवेश किया; और उस समय उनकी आयु ३२ वर्षकी थी। अतएव यह सिद्ध होता है कि उनका जन्म शक ६१० (वि. सं. ७४५) में हुआ।" (गीतारहस्य, हिन्दी आवृत्ति, पृ. ५६४). हमारे विचारसे तिलक महाशयका यह कथन विशेष प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता। क्यों कि शंकराचार्य यदि ७ वीं शताब्दीमें, अर्थात् हरिभद्रके पहले हुए होते तो उनका उल्लेख हरिभद्रके ग्रंथोंमें कहीं न कहीं अवश्य मिलता। हरिभद्र उल्लिखित विद्वानोंकी दीर्घ नामावलि जो हमने इस लेखमें ऊपर लिखी है उसके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि, उन्होंने अपने पूर्वमें जितने प्रसिद्ध मत और संप्रदाय प्रचलित थे उन प्रत्येकमें हो जाने वाले सभी बडे बडे तत्त्वज्ञोंके विचारों पर कुछ न कुछ अपना अभिप्राय प्रदर्शित किया है। शंकराचार्य भी यदि उनके पूर्वमें हो गये होते तो उनके विचारोंकी आलोचना किये विना हरिभद्र कभी नहीं चुप रह सकते। शंकराचार्यके विचारोंकी मीमांसा करनेका तो हरिभद्रको खास असाधारण कारण भी हो सकता था। क्यों कि, शारीरिक भाष्यके दूसरे अध्यायके द्वितीय पादमें बादरायणके

'नैकस्मिन्नसम्भवात् ।३३। एवं चात्माऽकार्त्स्न्यम् ।३४।
न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।३५।
अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ।३६।'

इन ४ सूत्रों पर भाष्य लिखते हुए शंकराचार्यने, जैनधर्मका मूल और मुख्य सिद्धान्त जो 'स्याद्वाद (अनेकान्तवाद), है उसके ऊपर अनेक असदाक्षेप किये हैं। हरिभद्रने 'अनेकान्तजयपताका' में अनेकान्तवाद ऊपर किये जानेवाले सब ही आक्षेपोंका विस्तृत रीतिसे निरसन किया है। इस ग्रंथमें, तथा और और ग्रंथोंमें भी उन्होंने ब्रह्माद्वैत मतकी अनेक बार मीमांसा की है। ऐसी दशामें शंकराचार्य जैसे अद्वितीय अद्वैतवादीके विचारोंका यदि हरिभद्रके समयमें अस्तित्व होता (और तिलक महाशयके कथनानुसार होना ही चाहिए था) तो फिर उनमें सङ्कलित अनेकान्तवादपरक आक्षेपोंका उत्तर दिये विना हरिभद्र कभी नहीं मौन रहते। इस लिये हमारे विचारसे शंकराचार्यका जन्म हरिभद्रके देहाविलयके बाद, अर्थात प्रो. पाठकके विचारानुसार शक ७१० में होना विशेष युक्ति संगत मालूम देता है।

हरिषेणकृत कथाकोश।

[लेखक—श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, भूतपूर्वसंपादक, जैन हितैषी।]

दिगम्बर और श्वेताम्बरसम्प्रदायके विद्वानों द्वारा अनेक कथाकोश रचे गये हैं; परंतु अभी तक जितने कथाकोश उपलब्ध हुए हैं वे अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं—ग्यारहवीं शताब्दीके पहलेका अभी तक कोई कथाकोश प्राप्त नहीं हुआ है। इस लेखमें हम जिस कथाकोशका परिचय देना चाहते हैं वह शक संवत् ८५३, विक्रम संवत् ९८९ और खर नामक वर्तमान संवत् के २४ वें वर्षका बना हुआ है और इसलिए इस समय हम उसे सबसे प्राचीन जैन कथाकोश कह सकते हैं।

इस कथाकोशकी एक प्रति पूनेके " भाण्डारकर-प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिर " में मौजूद है जो वि० सं० १८६८ की लिखी हुई है। यह जयपुर के गोधाजीके मन्दिरमें लिखी गई थी और संभवतः वहींसे गवर्नमेण्टके लिए खरीदी गई है। इसकी श्लोकसंख्या १२५००, पत्रसंख्या ३५० और कथासंख्या १५७ है। प्रायः सारा ग्रन्थ अनुष्टुप छन्दोंमें रचा गया है। रचना बहुत प्रौढ और सुन्दर तो नहीं है; परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायके अन्य कथाकोशोंसे अच्छी है।

इसके कर्ता हरिषेण नामक आचार्य हैं जो अपनी गुरुपरम्परा इस भांति बतलाते हैं—१ मौनि भट्टारक, २ श्रीहरिषेण, ३ भरतसेन और ४ हरिषेण। हरिषेण पुन्नाट संघके आचार्य थे। यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदायके अनेक आचार्योंने इस संघको पांच जैनाभासोंमें[१] एक बतलाया है; परन्तु फिर भी यह दिगम्बर सम्प्रदायका ही भेद था। यह द्राविडसंघका नामान्तर जान पडता है। द्रविडदेशीय होनेके कारण इसका द्रविडसंघ[२] नाम हुआ है। पुन्नाट[३] भी संभवतः द्रविड देशका ही नामान्तर है। इस कथाकोशमें ही भद्रबाहु-कथानकमें लिखा है:—

> अनेन सह संघोऽपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
> दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ ॥४०॥

इससे सिद्ध है कि पुन्नाट दक्षिणापथका ही एक देश है और उसे द्रविड देश मानना कुछ असंगत नहीं हो सकता। उस समय शायद कर्नाटक देश भी द्रविड देशमें गिना जाता था। इस संघका एक और नाम द्रमिल संघ भी है। न्यायविनिश्चयालंकार और पार्श्वनाथचरित आदिके कर्ता सुप्रसिद्ध तार्किक वादिराजने अपनेको द्रमिलसंघीय लिखा है। द्रविड देशको द्रमिल देश भी कहते हैं।

सुप्रसिद्ध हरिवंशपुराणके कर्ता प्रथम जिनसेन भी इसी पुन्नाट संघके आचार्य थे:—

> " व्युत्सृष्टापरसंघसन्ततिबृहत्पुन्नाटसंघान्वये— "
>
> हरिवंश-प्रशस्ति।

यह कथाकोश भी उसी वर्द्धमाननगरमें बनाया गया है जहाँ कि जिनसेनसूरिने हरिवंशपुराणकी रचना की थी। और जब कि जिनसेन पुन्नाट संघके ही आचार्य हैं तब संभव है कि हरिषेण आचार्य जिनसेनकी ही शिष्यपरम्परामें हों। यदि मौनिभट्टारककी गुरुपरम्पराका पता लग जाय तो इस बातका निर्णय सहज ही हो जाय।

वर्द्धमानपुर कर्नाटक देशका ही कोई प्रसिद्ध नगर है। मालूम नहीं, इस समय वह किस नामसे प्रसिद्ध है। जिनसेनसूरि लिखते हैं:—

> " कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुलश्रीवर्द्धमाने पुरे,
> श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः × ×"

इसी प्रकार इस कथाकोशके कर्ता लिखते हैं:—

> " जैनालयव्रातविराजितान्ते
> चन्द्रावदातद्युतिसौधजाले।

१ मेरे द्वारा सम्पादित और जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, द्वारा प्रकाशित ' दर्शनसार ' में जैनाभासोंका विस्तृत विवेचन देखिए।

२ दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो। ॥ २८ ॥ देवसेन।

३ आपटेकी संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरीमें पुन्नाटका अर्थ ' कर्नाटक देश' लिखा है।

कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे
श्रीवर्द्धमानाख्यपुरे × × × ॥ ”

इससे जान पडता है कि उस समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली था और अनेक जैनमन्दिरोंसे सुशोभित था। वहाँके नन्नराजके बनाये हुए पार्श्वनाथालय नामक जैनमन्दिरका–जहाँ कि हरिवंशपुराण समाप्त हुआ था–और भी कई ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है।

यह ग्रन्थ विनयपाल नामक राजाके समयमें लिखा गया है। ग्रन्थप्रशस्तिसे यह मालूम नहीं होता है कि विनयपालकी राजधानी कहाँ थी। संभवतः वह वर्धमानपुरमें ही होगी। हम इस बातका पता नहीं लगा सके कि विनयपाल किसवंशका राजा था: परन्तु संभवतः वह राष्ट्रकूट राजाओंका माण्डलिक होगा और चतुर्थ गोविन्द या सुवर्णवर्षका समकालीन होगा जिसने शक संवत् ८५६ तक राज्य किया था।

यह कथाकोश किसी ‘ आराधना ’ नामक ग्रन्थसे उद्धृत करके, सारांश रूपमें या उसके सहारेसे लिखा गया है, यह बात प्रशस्तिके आठवें श्लोकके ‘ आराधनोद्धृतः ’ पदसे मालूम होती है। ऐसी दशामें कहना होगा कि इस ग्रन्थकी कथायें अधिक नहीं तो हरिषेणके समयसे सौ दो सौ वर्ष पहले की अवश्य होंगी।

दिगम्बर सम्प्रदायमें ‘ आराधना–कथाकोश ’ नामके दो संस्कृत कथाकोश और भी हैं। इनमेंसे एक प्रभाचन्द्र भट्टारकका बनाया हुआ गद्यमें है और दूसरा मल्लिभूषणके शिष्य नेमिदत्त ब्रह्मचारीका पद्यमें है। यह दूसरा प्रथमका पद्यानुवाद मात्र है। ये दोनों कथाकोश इस कथाकोशकी अपेक्षा छोटे हैं, इसीलिए जान पडता है कि इसकी प्रति लिखनेवालेने इसके नामके साथ बृहत् विशेषण लगा दिया है। ग्रंथकर्ताने स्वयं इसे ‘ कथाकोश ’ही लिखा है।

हमको इस कथाकोशकी सब कथायें पढनेका अवसर नहीं मिला। है भी वे बहुत मामूली और विशेषत्वहीन। कुछ कथायें ऐतिहासिक पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं, जैसे चाणक्य, शकटाल, और भद्रबाहु: परन्तु वे भी वास्तविक इतिहाससे कम सम्बन्ध रखती हैं—केवल जैनधर्मकी महिमा बढानेके उद्देश्यसे लिखी गई हैं।

इसमें भद्रबाहुकी जो कथा लिखी गई है उसमें दो बातें बडी विलक्षण हैं और पुरातत्त्वज्ञोंके ध्यानमें रहने योग्य हैं। एक तो यह कि, भद्रबाहुने १२ वर्षका घोर दुर्भिक्ष पडनेका निश्चय करके अपने शिष्योंको ही दक्षिणापथ तथा सिन्ध्वादि देशोंको भेज दिया था; पर वे स्वयं उज्जयिनीमें रहे और कुछ दिनोंमें उज्जयिनीके निकट भाद्रपद–(भेलसा ?) नामक स्थानमें स्वर्गवासी हो गये[1]। दूसरे, उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्तने भद्रबाहुके समीप दीक्षा ले ली थी और वे ही पीछे विशाखाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए थे[2]। वे भद्रबाहुके समीप न रह कर दक्षिणापथको चले गये थे। अन्य कई कथाओंके और शिलालेखोंके अनुसार भद्रबाहु आचार्य भी दक्षिणापथको गये थे और उनका स्व-

१–नेमिदत्त ब्रह्मचारी वि० सं० १५७५ के लगभग हुए हैं।

२–देवेन्द्रचन्द्रार्कसमर्चितेन तेन प्रभाचन्द्रमुनीश्वरेण।
अनुग्रहार्थं रचितं सुवाक्यैराराधनासारकथाप्रबन्धः॥ ६॥
तेन क्रमेणैव मया स्वशक्त्या श्लोकैः प्रसिद्धैश्च निगद्यते सः।
मार्गेण किं भानुकरप्रकाशे स्वलीलया गच्छति सर्वलोकः॥७॥
—नेमिदत्तकृत कथाकोश।

१ भद्रबाहुमुनिर्धीरो भयसप्तकवर्जितः।
पंपाक्षुधाश्रमं तीव्रं जिगाय सहसोत्थितम्॥ ४२
प्राप्य भाद्रपदं देशं श्रीमदुज्जयिनीभवम्।
चकारानसनं धीरः स दिनानि बहून्यलम्॥ ४३
आराधनां समाराध्य विधिना स चतुर्विधाम्।
समाधिमरणं प्राप्य भद्रबाहुर्दिवं ययौ॥ ४४

२ भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः।
अस्यैव योगिनं पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः॥ १८
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम्।
सर्वसंघाधिपो जातो विशाखाचार्यसंज्ञकः॥ १९
अनेन सह संघोपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ॥ ४०

गवास श्रवणबेल्गोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर हुआ था, तथा उनके साथ चन्द्रगुप्त भी गये थे और उनका दूसरा नाम विशाखाचार्य नहीं किन्तु प्रभाचंद्र था। विशाखाचार्य नामके आचार्य उस संघमें दूसरे ही थे। इन कथाओं और शिलालेखोंके आधारसे ही सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेकी सारी दीवाल खडी की गई है और स्वर्गीय विन्सेंट स्मिथ जैसे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ भी चन्द्रगुप्तका जैन होना 'संभवनीय' बतला गये हैं। जिन शिलालेखोंसे और कथाओंसे चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, इसमें सन्देह ही है कि उनमेंसे कोई भी इस कथाकोशसे प्राचीन हो। हम आशा करते हैं कि इतिहासज्ञ इस विषयपर विशेष विचार करनेकी कृपा करेंगे।

इस कथाकोशमें समन्तभद्र, अकलंकदेव और पात्रकेसरी (विद्यानंद) की कथायें नहीं हैं; जो अवश्य होनी चाहिए थीं। क्यों कि इसके कर्ता उक्त समन्तभद्रादि आचार्योंके देशके ही थे। अकलंकदेव पात्रकेसरीसे थोडे ही समय बाद हुए थे। प्रभाचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोशोंमें ही सबसे पहले उक्त कथायें दिखलाई देती हैं, जिससे संदेह होता है कि उनकी रचना किम्वदन्तियों या प्रचलित प्रवादोंके अनुसार स्वयं उक्त कथाकोशकारों द्वारा ही की गई है।

अन्तमें हरिषेणके कथाकोशके प्रारंभका मंगलाचरण और अन्तकी प्रशस्ति देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—

ओं नमो वीतरागाय।

श्रियं परां प्राप्तमनन्तबोधं मुनीन्द्रदेवेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यम्।
निरस्तकन्दर्प्पगजेन्द्रदर्प्पं नमाम्यहं वीरजिनं पवित्रम्॥ १
विघ्नो न जायते नूनं न क्षुद्रामरलंघनम्। न भयं भव्यसत्त्वानां जिनमंगलकारिणाम्॥ २
जि (ज) नस्य सर्वस्य कृतानुरागं विपश्चितां कर्णरसायनं च।
समासतः साधुमनोभिरामं परं कथाकोशमहं प्रवक्ष्ये॥ ३

अन्तमें ग्रंथकर्ता ग्रन्थके अमर होनेकी इच्छा करते हुए अपना परिचय इस प्रकार देते हैं —

यावच्चन्द्रो रविः स्वर्गो यावत्सलिलराशयः। यावद्व्योम नगाधीशो यावद्गंगादिनिम्नगाः॥ १
यावत्तारा धरा यावद्रामरावणयोः कथा। तावच्चारुकथाकोशः तिष्ठतु क्षितिमण्डले॥ २
युगलमिदम्।

यो बोधको भव्यकुमुद्वतीनां निःशेषराद्धान्तवचोमयूखैः।
पुन्नाटसंघांबरसन्निवासी श्रीमौनिभट्टारकपूर्णचन्द्रः॥ ३
जैनालयव्रातविराजितान्ते चन्द्रावदातद्युतिसौधजाले।
कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्धमानाख्यपुरे वसन्सः॥ ४
युगलमिदम्।

सारागमाहितमतिर्विदुषां प्रपूज्यो नानातपोविधिविधानकरो विनेयः।
तस्याभवद्गुणनिधिर्जनताभिवंद्यः श्रीशब्दपूर्वपदको हरिषेण संज्ञः॥ ५
छन्दोलंकृतिकाव्यनाटकचणः काव्यस्य कर्ता सतो,
वेत्ता व्याकरणस्य तर्कनिपुणस्तत्त्वार्थवेदी परं।
नानाशास्त्रविचक्षणो बुधगणैः सेव्यो विशुद्धाशयः,
सेनान्तो भरतादिरत्र परमः शिष्यः बभूव क्षितौ॥ ६

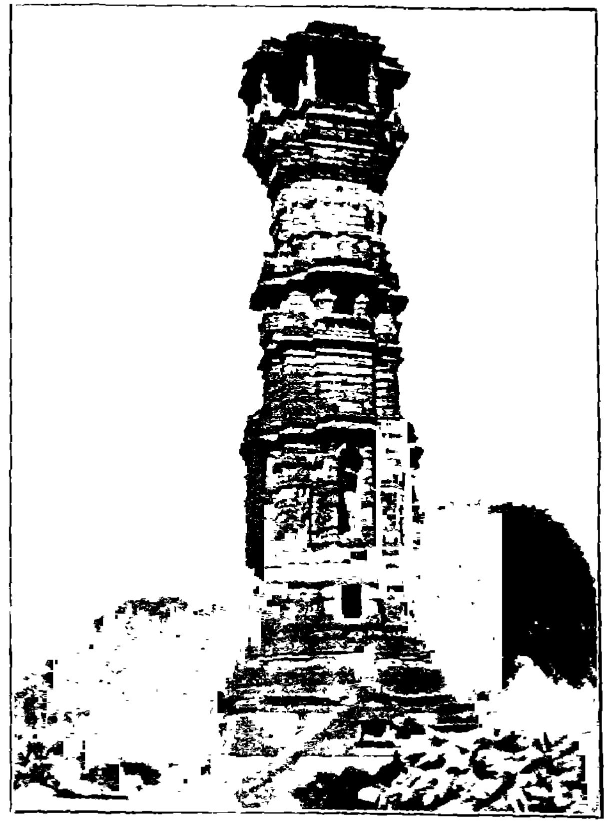
---

१ इसके लिये देखो जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १–२-३, वर्ष १। २ मूर्धस्य वा पाठः।

लक्षणलक्षविधानविहीनः छन्दसापि रहितः प्रमया च ।
तस्य शुभ्रयशसो हि विनेयः संबभूव विनयी हरिषेणः ॥ ७
आराधनोद्धृतः पथ्यो भव्यानां भावितात्मनां । हरिषेणकृतो भाति कथाकोशो महीतले ॥ ८
हीनाधिकं चारुकथाप्रबन्धाख्यातं यदस्माभिरतिप्रमुग्धैः ।
मात्सर्यहीनाः कवयो धरण्यां तच्छोधयन्तु स्फुटमादरेण ॥ ९
भद्रं भूयाज्जिनानां निरुपमयशसां शासनाय प्रकामं,
जैनो धर्मोपि जीयाज्जगति हिततमो देहभाजां समस्तं ।
राजानोऽवन्तु लोकं सकलमतितरां चारुवातोऽनुकूलः,
सर्वे शाम्यन्तु सत्त्वाः जिनवरवृषभाः सन्तु मोक्षप्रदा नः ॥ १०
नवाष्टनवकेष्वेषु स्थानेषु त्रिषु जायतः । विक्रमादित्यकालस्य परिमाणमिदं स्फुटम् ॥ ११
शतेष्वष्टसु विस्पष्टं पंचाशत्स्वधिकेषु च । शककालस्य सत्यस्य परिमाणमिदं भवेत् ॥ १२
संवत्सरे चतुर्विंशे वर्तमाने खराभिधे । विनयादिकपालस्य राज्ये शक्रोपमानके ॥ १३
एवं यथाक्रमोक्तेषु कालराज्येषु सत्सु कौ । कथाकोशः कृतोऽस्माभिर्भव्यानां हितकाम्यया ॥ १४
कथाकोशोऽयमीदृक्षो भव्यानां मलनाशनः । पठतां शृण्वतां नित्यं व्याख्यातॄणां च सर्वदा ॥ १६
सहस्रैर्द्वादशैर्बद्धो नूनं पंचशतान्वितैः । जिनधर्मश्रुतोद्युक्तैरस्माभिर्मतिवर्जितैः ॥ १७
इति श्रीहरिषेणाचार्यकृतं बृहत्कथाकोशं समाप्तं । ग्रन्थसंख्या १२५०० । श्रीरस्तु । कल्याणमस्तु ।

संवत् १८६८ का मासोत्तममासे जेठमास शुक्लपक्ष चतुर्थ्यां तिथौ सूर्यवारे श्रीमूलसंघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकजी श्रीमहेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीक्षेमेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीसुरेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकशिरोमणी भट्टारकजी श्रीसुखेन्द्रकीर्तिजी तदाम्नाये सवाई जयनगरे श्रीमन्नेमिनाथचैत्यालये गोधाख्यमन्दिरे पंडितोत्तमपंडितजी श्रीसंतोषरामजी तत्सिस्यपंडित वषतरामजी तच्छिष्य हरिवंशदासजी तस्सिष्य कृष्णचन्द्रः तेषां मध्ये वषतरामकृष्णचंद्राभ्यां ज्ञानावरणीकर्मक्षयार्थं बृहदाराधनाकथाकोशाख्यं ग्रन्थं स्वाशयेन लिपितं श्रोतृवक्तृजनानामिदं शास्त्रं मंगलं भवतु । ”





[illegible] [illegible] जैन कीर्तिस्तंभ, चित्तोडगढ, मेवाड

॥ अर्हम् ॥

जैन साहित्य संशोधक

भाग १] गुजराती लेख विभाग [अंक १

डॉ. हर्मन जेकोबीनी कल्पसूत्रनी प्रस्तावना.

[अनुवादक—श्रीयुत अंबालाल चतुरभाई शाहा, बी. ए.]

[नोटः—लीप्झीग (जर्मनी) मां प्रकट थती 'Abhandlungen für die Kunde des Morgenlandes' नामनी ग्रंथमालामां, ई० स० १८७९ मां डॉ. हर्मन जेकोबीए रोमन लिपिमां, विस्तृत प्रस्तावना, उपयोगी टिप्पण, विविध पाठांतरो, अने प्राकृत-संस्कृत शब्दकोष साथे भद्रबाहुस्वामी विरचित कल्पसूत्र प्रकट कराव्युं हतुं. ए पुस्तकनी, प्रस्तावनामां ए विद्वान् जैन स्कॉलरे कल्पसूत्र साथे संबंध धरावनारी बाबतो सिवाय बीजी पण घणीक बाबतो लंबाणथी चर्चेली छे, अने तेमां, तेमनी पहेलांना जे केटलाक प्रसिद्ध यूरोपीय स्कॉलरोए जैनधर्मनी ऐतिहासिकता अने स्वतंत्रताना संबंधमां जुदा जुदा भ्रांतिवाळा विचारो प्रकट करेला हता, तेमनुं संक्षेपमां निरसन कर्युं छे. डॉ. जेकोबीनुं ए अमूल्य अने प्रारंभिक पुस्तक अजे दुर्लभ थई गयुं छे, तेमज जैनसमाजना मोटा भागने—इंग्रेजी केलवणी लीधेला ग्रेज्युएटो सुद्धांने—ए वातनी खबर नथी के उक्त विद्वाने पोताना ए उपयोगी पुस्तकमां जैनधर्मना विषयमां केवा केवा विचारो प्रदर्शित कर्या छे. तेथी ए पुस्तकनी प्रस्तावनानो सरल अनुवाद अत्र आपवामां आवे छे.

आ ठेकाणे एटलुं सूचवी देवुं जरूरनुं छे के आ लेखमां जणावेला, तथा एवा बीजा लेखो, के जे हमेशां आ पत्रमां प्रकट थता रहेशे तेमां जणावेला बधा विचारो साथे संपादक संमत छे, एम समजी लेवानी कोईए भूल न करवी. संपादक हमेशां पोताना स्वतंत्र लेखोक्त विचारो माटेज जवाबदार होय छे. तेमज अन्य लेखकोना विचारो पण हमेशां एक सरखाज रहे छे, एम पण कोईए दृढ धारणा न करी लेवी. ज्ञान अने साधनोना अनुसारे मोटा मोटा लेखकोना विचारोमां पण परिवर्तन थतुं रहे छे, ए सर्वानुभवसिद्ध हकिकत छे. एज नियमानुसार डॉ. जेकोबीना विचारोमां पण आ प्रस्तुत प्रस्तावना लख्या बाद, पाछळथी, केटलीक बाबतोमां संशोधन—परिवर्तन थयुं छे, एम तेमना पाछळना लखाएला केटलाक लेखो उपरथी समजाय छे. हवे पछीना अंकोमां 'पूर्वना पवित्र पुस्तको' (Sacred Books of the East) नामनी सुप्रसिद्ध ग्रंथमाळामां डॉ. जेकोबी द्वारा अनुवादित जैन-सूत्रोना जे बे पुस्तको प्रसिद्ध थयां छे तेमनी प्रस्तावनानो अनुवाद पण क्रमथी आपवानी इच्छा छे. आशा छे के वाचको विचारपूर्वक तेमनो पूरेपूरो लाभ लेशे.—संपादक.]

महावीर निर्वाणना समयनुं निरूपण करतां पहेलां आपणे शरूआतमां ए तपास करीए के जैनधर्म अने बौद्धधर्म बन्ने परस्पर स्वतंत्र धर्मो छे के एक बीजामांथी नीकळेला छे. जे युरोपीय विद्वानोए आ विषय उपर आज सुधीमां लख्युं छे, ते सघळा सामान्य रीते उपर दर्शावेला बीजा मतने स्वीकारवानुं पोतानुं वलण बतावे छे. कोलब्रूक (Colebrooke) महावीरने गौतम बुद्धना गुरु तरीके माने छे अने ते प्रमाणे मानवानुं कारण ते ए बतावे छे के महावीरनो एक इन्द्रभूति नामनो शिष्य घणीवार गौतमस्वामी अथवा गौतम नामे ओळखाय छे. प्रिन्सेप (Prinsep) अने स्टीवन्सन (Stevenson) ए बे विद्वानो तेनाज अभिप्रायने स्वीकारे छे, अने थोडाज समय अगाउ, मि. एडवर्ड थोमसे (Mr. Ed. Thomas) पण तेज मतनुं पुनः प्रतिपादन कर्युं छे. प्रो. वेबर (Prof. Weber) पोताना शत्रुंजय माहात्म्य ('Ueber das Çatrunjaya mahatmya') उपरना निबंधमां कोलब्रुकनी कल्पनाने भ्रांतिपूर्ण सिद्ध करे छे अने लखे छे के, इन्द्रभूति ते गौतमबुद्धनी माफक क्षत्रिय नहीं पण ब्राह्मण जातिनो हतो. तेनुं गोत्र गौतम होवाथी ते ए नामे पण ओळखाय छे. परंतु आटला उपरथी तेनी गौतमबुद्धनी साथे एकता करवी ते प्रकट भूल छे. जो इन्द्रभूतिए विरोधी मत स्थापवाने वर्धमानना धर्ममार्गनो त्याग कर्यो होत, तो, महावीर निर्वाण बाद थोडा वखत पछी रचाएला जैनसूत्रोमां वारंवार तेना संबंधमां जे आदर भरेला उल्लेखो करवामां आव्या छे ते कदापि न करवामां आवत. बल्के तेथी उलटुं, महावीरनो प्रिय शिष्य होवा छतां बने तेटली रीते तेनी निंदाज करवामां आवी होत * कारण के सूत्रोमां स्पष्ट रीते कथन छे के महावीरना जमालि नामना भाणेजे धर्मभेद कर्यो हतो; तेमज भगवती सूत्र (सय १७) मां महावीरना बीजा शिष्य मक्खलिपुत्त गोसालना उपर पण स्फुट रीते आक्षेपो करेला जोवामां आवे छे. (साथे साथे कही जाउं छुं के आ मक्खलिपुत्त गोसाल ते पालिसूत्रोमां निर्दिष्ट मक्खलिगोसालज छे. तेने ते स्थळे छ तीर्थिकोमांनो—पाखंडमतावलंबिओमांनो—एक तथा बुद्धमतना विरोधी तरीके गणाव्यो छे.

प्रो. एच. विल्सन (Prof. H. Wilson) 'हिंदुओना धार्मिक संप्रदायो ' नामना पोताना निबंधमां कोलब्रूकथी तद्दन विरुद्ध मत उपस्थित करे छे. ते कहे छे के जैनधर्म ए बौद्ध धर्मनी शाखा छे अने ते ई० स० नी दसमी सताब्दिना अरसामां बुद्धधर्मनी पडतीमांथी उत्पन्न थयो छे. प्रो. ए. वेबर पोताना उपरोक्त पुस्तकमां जो के जैनधर्मनी आटला करतां वधारे प्राचीनता स्वीकारे छे परंतु साथे ते बौद्धधर्मनी पूर्वकालिकता पण, एच. विल्सनना कहेवा मुजब कबुल राखे छे. प्रो. लेसन (Prof. Lassen) एकंदर वचरना अभिप्रायनेज मळतो थाय छे (Ind-Alterth. IV 755 Sqq). उपर उपरथी जोतां केटलांक कारणो प्रो. विल्सनना मतने पुष्टि आपतां मालुम पडे छे, कारण जैनसूत्रोमां जणाव्या प्रमाणे महावीर विहारना—के जे बुद्धनी पण जन्म अने उपदेशनी भूमि हती, त्यांना—निवासी मात्र हता, एटलुंज नहीं पण ते बन्ने समकालीन अने एकज राजाओना राज्योमां विचरता हता, एवुं पण वर्णन मळी आवे छे. अलबत्त श्रेणिक अने कुणिक (अथवा

* इन्द्रभूतिना संबंधमां जे एक दंतकथा प्रचलित छे ते उपरथी इन्द्रभूति तेमना गुरु उपर केटला अनुरक्त हता ते स्पष्ट थाय छे. महावीरना देहत्याग वखते तेओ गेरहाजर हता; ज्यारे तेमणे स्थान तरफ पाछा फरतां पोताना पूज्य गुरुना अणधार्या अवसानना समाचार सांभळ्या त्यारे तेओ अत्यंत शोकग्रस्त बन्या हता. पछीथी तेमणे प्रबुद्ध थई जोयुं के, एक अंतिम अवशिष्ट बंधन, के जेनाथी तेओ संसारबद्ध हता, ते बीजुं कांई नहीं पण तेमना गुरु प्रत्येनो तेमनो प्रबल प्रेमभाव हतो. पश्चात् तेमणे ते बंधनने सर्वथा छेदी केवलज्ञान प्राप्त कर्युं हतुं.

कोणिक) आवां नामो बौद्धसूत्रोमां जोवामां आवतां नथी, तथापि श्रेण्य या श्रेणिक एवा शब्दो बिम्बिसारना बिरुद तरीके जोवामां आवे छे; अने तेनो पुत्र कुणिक, के जे औपपातिकसूत्रमां बिम्भिसार-पुत्ततरीके पण ओळखाय छे, ते स्पष्ट रीते बिम्बिसारनो पुत्र अजातशत्रुज होवो जोइए. कारण के जैन अने बौद्धसूत्रोमां अनुक्रमे ते बन्नेने पोताना पितानी हत्या करनार तरीके वर्णवेला जोवाय छे. कुणिकनो पुत्र उदायिन्, के जेणे जैनपरंपरागत कथानुसार पाटलिपुत्र वसाव्युं हतुं, ते अजातशत्रुनो पुत्र उदयिभद्दकज छे; एम सहेलाईथी साबित करी शकाय एवुं छे. कारण के, बौद्धोनुं पण तेना संबंधमां एवुंज कथन छे. आ उपरथी एटलुं तो निःसंदेह जणाय छे के बिम्बिसार अने अजातशत्रु, जेओ बुद्धना समकालीन हता, तेओ पुनः जैन आगमोमां श्रेणिक अने कुणिकना नाम महावीरना समकालीन दृष्टिगोचर थाय छे. तेमनाथी केटलेक अंशे अल्पप्रतिष्ठित एवी बीजी व्यक्तिओना संबंधमां पण आवी हकिकत मळी आवे छे जेमके मंखलिनो पुत्र गोसाल (अथवा जैनानुसार -मक्खलि: मंखलि=मक्खलि; बिम्भिसार=बिम्बिसार) अने लिच्छवि (जैन—लेच्छई) राजाओ. अन्य एक दलील प्रो. विल्सन पोताना पक्षमां रजु करे छे के, शाक्यसिंह अने वर्धमानना विशेषणो अथवा गुणनामो एक सरखां छे. उदाहरण तरीके—बुद्ध, जिन, अने महावीर (?) विगेरे. अने बीजुं पण एक प्रमाण ए छे के बन्नेनी पत्नीनुं नाम यशोदा हतुं. आ प्रमाणोथी, एचु. विल्सन बुद्ध अने महावीर बन्ने एकज व्यक्ति छे. एम जणावे छे. परंतु आ सिवाय ते बन्नेनी वच्चे बीजुं कोई प्रकारनुं साम्य नथी. कारण के आ सिवायनी जेटली हकिकतो बुद्धना संबंधमां लखवामां आवी छे, तेमांनी एके वर्धमाननी हकिकत साथे मळती आवती नथी. तेमज बन्ने महात्माओनां सगानां नाम, जन्मभूमी, शिष्यपरिवार, आयुर्मर्यादा, तथा तेमना जीवनना अद्भुत बनावो अने आचार विचारो के जे तेमना उपदेशो उपरथी तारवी शकाय छे—ते सघळां तद्दन भिन्न भिन्न छे. हुं आ स्थळे मात्र एक छेलीज बाबत उपर थोडीक चर्चा करीश. पहेली बाबतोने टीकानी जरूर नथी. हुं ज्यां सुधी निर्णय करी शक्यो छुं, ते उपरथी, महावीरनुं मानसिक वलण वीतराग (विरक्त) जीवन तरफ हतुं. तेमनो उपदेश पण मुख्यत्वे करीने आध्यात्मिक ज्ञान अने धार्मिक आचरणोने लगतोज छे. तेमनुं तत्त्वज्ञान अथवा परमार्थ (अध्यात्मक) स्वरूप विषयक ज्ञान न्यायशास्त्रनी पूर्वापर संगतिनी दृष्टिए उत्कृष्ट जणातुं नथी. कारण के ते गंभीर अने सर्वांगपूर्ण शोध (गवेषणा) करवाने बदले मात्र सूक्ष्म अने श्रमसाधित भेदो (विकल्पो) उभा करे छे. आ सिद्धान्तनुं नाम स्याद्वाद छे. अने ते शून्यवाद के जे बौद्धतत्त्वज्ञानने पोतानी जाळमां गूंचवी नाखे छे, तेना भयथी पोताने दूर राखे छे. ए सिद्धान्त हेरेक्लिटसना पर्यायवाद (Flux) साथे थोडेक अंशे मळतो आवे छे—जो के ए तेना जेटलो गहन नथी. महावीर सर्वसामान्य मान्यता प्रमाणे आत्मानुं नित्य अस्तित्व अने धार्मिक तपश्चरणना प्रभाव (सामर्थ्य) ने विशेष माने छे; त्यारे बौद्धो आ बन्ने सिद्धान्तोनी विरुद्ध कथन करे छे. महावीरनुं नीतितत्त्वशास्त्र पण, मात्र जेम हिंदुधर्मना बीजा घणा संप्रदायोमां जोवामां आवे छे तेम, साधुजीवनना नियमोनुंज वर्णन करी विराम पामे छे. टुंकामां महावीर हिंदुस्थानना धार्मिक पुरुषोमां साधारण प्रकारना लागे छे. धार्मिक विषयोना संबंधमां तेमनी बुद्धिशक्ति हती खरी; परंतु बुद्धमां जेवी प्रतिभाशक्ति निःसंशयरीते मानी शकाय छे, तेवी तो, तेमनामां न हती. बुद्ध पोताना तात्त्विक विचारो ठेठ शून्यवादना किनारा--अंतिम मर्यादा—सुधी लई जाय छे. अने तेम करवा छतां पण, तेओ पोताना तर्कने तद्दन स्पष्ट राखवा पूर्ण काळजी राखे छे. तेओ पांडित्यदर्शक भेदोपभेदो देखाडवानुं

चातुर्य बताववा कोशीश करता नथी; अने तेथी तेमनुं तत्त्वज्ञान थोडा तत्त्वभूत विचारो उपर रचाएली एक संस्थिति (System) रूप बने छे. महावीरनुं तत्त्वज्ञान तेम बनतुं नथी. ते मात्र भिन्न भिन्न विषयो उपर पत्तत्तिना रूपमांज रहे छे. तेनी अंदर आध्यात्मिक विषयना विचारसमुच्चयने धारण करवा योग्य थोडा मूळभूत तत्त्वो नथी. तत्त्वज्ञान विषयक विचारोमां तर्कनी पूर्वापर संगति जाळववा उपरांत बुद्ध उदार अने महान् सूत्रोमां, तथा नीतिनी कल्पितवार्ताओमां, मनुष्य जातिना त्रिविध तापना निवारण अर्थे जे दयानी तीव्र लागणी प्रकट करी छे, ते उपरथी तेमनी प्रतिभानुं श्रेष्ठत्व स्पष्ट जणाई आवे छे. जैनग्रंथो करतां बौद्धग्रंथोनी महत्ता तेमना नैतिक तत्त्वने लईनेज छे. में उपर कह्युं छे तेम, महावीरे नीतिशास्त्रने अध्यात्मविद्या करतां हलका दरज्जानुं तथा तेना एक आनुषंगी सिद्धांत तरीके मान्युं छे. कारण के तेमनुं खास लक्ष्य परमार्थविद्या उपर हतुं. महावीर अने बुद्धना उपदेशनी आ रूपरेखा आपणने, तेओ बन्ने भिन्न व्यक्तिओ हती एम मानवा दोरे छे. ते बन्नेना मतभेदो पण घणा विचारणीय छे. तेमना तात्त्विक विचारोना पारिभाषिक या सांकेतिक शब्दो पण परस्पर मळता आवता नथी. आवी रीते महावीर अने बुद्धने एक मानवामां विरुद्धता वधती जती होवाथी, ते बन्ने प्रतिष्ठित-पुरुषो भिन्न पण समकालीन व्यक्तिओ हती, एम बतावती जैनो अने बौद्धोनी परंपरागत कथाओने साची मानवा तरफ आपणुं वलण थाय छे. वस्तुस्थिति आवी होवाना लीधे, बन्ने मतोनी वच्चेनुं सामान्य सादृश्य स्वाभाविकज छे, एम सहज जणाई आवशे. बन्ने संप्रदायोना संस्थापको समकालीन अने समानदेशनिवासी होवाथी, प्राकृतिक नियम प्रमाणे, ते बन्ने एकज प्रकारना देशकालानुरूप सर्वसामान्य तत्त्वज्ञान अने नीति विषयक विचारसमूहनो आश्रय ले तेमां नवाई नथी. तेमना जमानानुं वलण स्पष्टरीते ब्राह्मणधर्म सामे थवानुं हतुं. जो आपणे बुद्धना समयना छ तैर्थिक मताचार्योना सिद्धान्तोनुं वर्णन वांचीशुं—जे वर्णन बौद्धोना सामञ्ञफलसुत्तमां आपेलं छे,—तो आपणने जणाशे के ते सर्व अल्प या बहु अंशे, ते वखतना सुधारको हता. ते बधाथी बुद्धनी जे विशेषता हती ते तेमनी प्रतिभाने लईनेज हती. बुद्धनी माफक महावीर पण एक बीजा सुधारक हता अने तेओ पोतानो स्वतंत्र मत स्थापवाने सफळ थया हता, एम जो आपणे मानीए तो तेमां युक्तिरहितता के असंभवितता जेवुं जणातुं नथी. आ विचारने हुं ऐतिहासिक सत्य तरीके स्थापित करवा दलीलो रजु करूं तेनी पहेलां मारे बौद्धधर्मनी पूर्वकालिकताना हिमायतिओए रजु करेली बे विरूद्ध युक्तिओनुं निराकरण करवुं जोईए. प्रथम, जो हुं भूलतो न होउं तो हेमिल्टन बुकनन (Hamilton Buchanan) ना कथनना आधारे एम मनाय छे के जैनो ज्ञाति व्यवस्था स्वीकारे छे; अने आ मान्यताना पाया उपर जैनधर्मनी उत्पत्तिना संबंधमां नीचेनी कल्पना उभी करवामां आवी छे, के ज्यारे ब्राह्मणोए बौद्धोने त्रास आपवा मांड्यो त्यारे तेओए पोताना धर्मांध प्रतिस्पर्धीओनी साथे समाधान करवा अर्थे ज्ञाति-व्यवस्थानो स्वीकार कर्यो. कारण के जो तेमणे एटलुं नमतुं मूक्युं न होत, तो ब्राह्मणोए ते पाखंडमतने सर्वथा दाबी दीधो होत. आ विचारमांथी एवी कल्पना जन्मी, के आ रीते क्षीण थतो बौद्धधर्मज जैनधर्मना रूपमां परिवर्तित थयो. आ कल्पनानो आ स्थळे हुं उहापोह करवा मांगतो नथी. मात्र एटलुंज जणावीश के ते कल्पनानो हुं अस्वीकार करूं छुं.

जैनधर्ममां यति अने श्रावक नामना बेज विभाग छे अने जो कदाचित् हिंदुस्थानना कोई कोई भागमां जैनो लोकव्यवहारमां ज्ञातिभेदो स्वीकारता होय तो, ते प्रमाणे तो, दक्षिण हिंदुस्थानना ख्रीस्ति अने मुसलमानो तथा सिलोनना बौद्धो पण स्वीकारे

छे. आ बाबतने धर्मनी साथे कोई संबंध नथी. आ ज्ञातिभेदो तो मात्र सामाजिक भेदो छे अने ते भारतवासीओनां मगजमां एटला तो ऊंडा जड घालीने बेठा छे के तेमने धार्मिक सुधारकना शब्दो बीलकुल खसेडी शके तेम नथी. बौद्धधर्मना लेखोमा अनेक ठेकाणे ब्राह्मणोनो उल्लेख थएलो छे, पण तेटला उपरथी कोई बौद्धधर्म उपर ज्ञातिरूपी धार्मिक योजनाने स्वीकारवानो आरोप न मूकी शके. बीजी दलील एवी करवामां आवे छे, के जैनोनी प्राकृत भाषा करतां बौद्धोनी पालिभाषा वधारे पुरातन छे; अने तेटला माटे ते बौद्धधर्मनी पूर्वकालिकता स्थापन करवाने एक प्रमाण छे. जो के आ दलील तद्दन साची छे, तो पण ते कोई बाबत सिद्ध करी शकती नथी. कारण के, हुं आगळ उपर बतावीश ते प्रमाणे जैनसूत्रो जे रूपमां हालमां विद्यमान छे ते रूप महावीर निर्वाण पछी एक हजार जेटलां वर्षो बाद नक्की करवामां आव्युं हतुं. आ उपरथी एटलुं तो तर्क-सिद्धज छे के ते पहेलांनां एक हजार वर्षोमां ए सूत्रोनी भाषामां घणा फेरफारो थया होवा जोईए. कारण के जे आचार्यो मुखथी अथवा लेखथी पोतानी शिष्यपरंपराने ए सूत्रो सोंपता गया होय, तेमनुं स्वाभाविक वलण, ते सूत्रोनी भाषाना जे जूनां रूपो प्रचलित भाषामांथी अदृश्य थया होय तेमना बदले वर्तमान वाक्पद्धतिप्रमाणेना रूपोनो व्यवहार करवानुं थाय, ए निःसंशय छे. दाखला तरीके, मध्ययुगना जर्मन लेखकोना ग्रंथोना उताराओ पण, उतारा करनाराओनी देश तथा कालनी भाषामांज थया हता. एम स्पष्ट जोवाय छे आवी वस्तुस्थिति होवा छतां पण एक उदाहरणमां मूळभाषानी निशानी रही गई छे ते स्पष्ट बतावी आपे छे के मूळ भाषा, सूत्रोनी हालनी भाषाथी, अन्य घणा आकारोनी माफक एक विशेष आकारमां जुदी पडे छे. दाखला तरीके, सूत्रोमां वपराएला 'अगनी' 'आचारिय' 'सुहुम' विगेरे शब्दो लईए. जे छंदोमां आ शब्दो वपराया छे तेओना माप उपरथी जणाय छे के मूलमां--सूत्रनी रचना करनाराओना समयमां --ए शब्दोनुं उच्चारण 'अग्नी' 'आचार्य' 'सुक्ष्म' विगेरेना रूपमां थतुं होवुं जोईए. जो ते वखते आ प्रमाणे उच्चारण न थतुं होत—अने सूत्रकारोनी भाषा पण सर्वथा हालना लिखित सूत्रोना जेवीज होत--तो तेओ पण--सघळी प्राकृत भाषाओने सरखी रीते लागु पडता स्वरशास्त्रना नियमो तेमनी भाषाने पण लागु पडेला होवाथी--ए शब्दोनो उच्चार तेम न करी शक्या होत. आ विषयना विस्तृत विवेचन माटे हुं वाचकने "Zeitschrift fur vergleichende Sprachforschung" v. XXIII: p. 594, sqq जोवानी भलामण करूं छुं. आ थोडीक हकिकतो उपरथी समजी शकाय छे. के भाषानुं अमुक रूप जैन साहित्यनी प्राचीनतानी विरुद्धमां दलील तरीके रजु करी शकाय तेम नथी, अने ज्यारे आम छे तो पछी तेवी दलीलने जैनधर्मने बौद्धधर्मथी अर्वाचीन स्थापित करवामां प्रमाण तरीके तो लेवायज केम ? अंतमां, आपणे वळी जाणीए छीए के जैन साहित्यनो चौदपूर्वना नामे ओळखातो एक भाग तो नष्ट थई गयो छे; अने ते कई भाषामां रचाएलो हतो ते आपणे बीलकुल जाणता नथी.*

आपणे उपर जोयुं ते प्रमाणे जैनोनां पवित्र सूत्रो बिम्बिसार अने अजातशत्रुना समयने महावीरना जीवनसमय तरीके बतावे छे. हवे जैनधर्म ते पुरातन कालमां हतो के नहीं तेनी ऐतिहासिक दृष्टिए शोध करवानी जरूरत छे. सूत्रोमा जैनयतिओ माटे बहु प्रचलित शब्द 'निग्गंथ' अने साध्वीओ माटे 'निग्गंथी' मळी आवे छे वराहमिहिर अने हेम-

*केटलाक अल्प प्राचीन जैन ग्रंथमां उल्लेख करेलो जोवामां आवे छे के चौदपूर्वोनी रचना संस्कृत भाषामां थएली हती. डॉ. जेकोबीनी जाणमां ते वखते ए उल्लेखो नहीं आव्या होय.—जै. सा. सं. संपादक.

चंद तेमने ' निर्ग्रंथ ' कहे छे. शंकर, आनंदगिरि इत्यादि लेखको तेने बदले ' विवसन ' ' मुक्तांबर ' एवा पर्यायार्थिक शब्दो वापरे छे. एटलुं ए पण ध्यानमां राखवुं जोइए के प्राचीन शब्द ' आर्हत ' अने त्यार पछीनो अर्वाचीन शब्द ' जैन ' ए बन्ने सरखी रीते जैनसाधु तथा श्रावक उभयने लागु पडे छे. बौद्ध श्रमणोथी भिन्न एवा धार्मिक पुरुषो माटे वपरातो 'निर्ग्रंथ' शब्द 'निगण्ठ' रूपमां अशोकनी आज्ञाओमां नजरे पडे छे, अने डॉ. बुहलेर (Dr. Buhler) ' अशोकनी नवी त्रण आज्ञाओ ' (Three new edicts of Acoka p. 6) वाळा लेखना छठ्ठा पृष्ठमां ते शब्दने जैनशब्द 'निर्ग्रंथ' तरीके अत्यार आगमचज साबीत करी दीधो छे. बौद्धोना पिटकोमां निगण्ठोने बुद्ध अने तेना अनुयायीओना प्रतिपक्षी तरीके जणाववानो उल्लेख मळी आवे छे. (See Childers Pali Dictionary, S. V. Nigantha.)

आ सघळी बाबतो उपरथी एटलुं साबीत करी शकाय छे के जैनो अने बौद्धो परस्पर प्रतिस्पर्धीओ हता. आ प्राचीन प्रतियोगितानां अस्तित्वनुं अनुमान तेमनी प्राचीन ऐतिहासिक कथाओ उपरथी पण थई शके एम छे. बौद्धो खुल्ला शब्दोमां कहे छे के अजातशत्रुए तेना पितानुं खून कर्युं हतुं. तेमज तेना माटे बीजुं एम पण तेओ जणावे छे के, तेणे पोताना जुना धर्मनो त्याग करी सद्धर्म—बौद्धधर्मनो आश्रय लीधो तेनी पहेलां ते घातकी अने दुष्ट मननो हतो. आनाथी विरुद्ध जैनो, कुणिक के जेने आपणे पहेलां अजातशत्रुथी अभिन्नरूप नक्की करी गया छीए, तेने बुद्धिपूर्वक पितृहत्याना दोषथी दूर राखवानो प्रयत्न करे छे. निरयावलिसूत्रमां आ संबंधी एक लांबी कथा लखाएली छे. तेमां कहेवामां आव्युं छे, के, कुणिके पोताना पिताने पोता तरफ अन्यायपणे वर्तता मानी लई तेने कारागृहमां नांख्यो हतो. परंतु ज्यारे तेनी माताए तेने समजाव्यो के ' तारो पिता तारा तरफ हमेशां मायाळु स्वभाव राखतो आव्यो छे अने तेना हाथे एक पण एवुं कार्य नथी थयुं के जेना लीधे तने आवी जातनी शिक्षा तारा तरफथी भोगववी पडे. ' माताना आ कथनथी कुणिकने पोताना पिताना सौजन्यनी खात्री थई अने तेथी ते पश्चात्ताप करतो, जाते कोदाळी लई पितानी बेडी तोडवा निकळ्यो. श्रेणिके कुणिकने हाथमां कोदाळी लईने आवतो जोई धार्युं के आजे कुणिकने हाथे पोतानुं मृत्यु थशे; तेथी तेणे पोताना संतानने आवा पापना दोषथी दूर राखवा माटे जातेज आत्मघात कर्यो. पोताना पिताने आ रीते मृत्युपामेलो जोईने कुणिकने स्वाभाविक रीतेज घणुं दुःख थयुं. विगेरे. विगेरे. आवी रीते भोळा भावथी—निष्कपटपणे कहेली कथा एम सूचवे छे के बौद्धोना करतां जैनोने पोताना आश्रयदाताना पापोना संबंधमां ओछा निष्पक्षपातपणे बोलवानुं एक कारण हतुं; अने ते ए के कुणिके बौद्धोनी उपर पोतानी प्रसन्नता बतावतां पहेलां घणा समय सुधी तेणे जैनो उपर पोतानी महेरबानी राखी हती.

त्रीजी रीते, एक संप्रदायना संस्थापक तरीके अथवा प्राचीन काळथी चालता आवता एक धर्मना सुधारक तरीके गणावा लायक—अने हुं ए बीजा मतनेज स्वीकार करूं छुं—महावीर नामनी बुद्धथी तद्दन भिन्न एवी एक व्यक्तिनो समय, प्राचीन काळमां स्थापन करी शकाय तेम छे. प्रथमतो, जनरल कनिङ्गहाम (General Cunningham) मथुराना कंकाली टिलामांथी शोधी काढेला एक शिलालेखनी शरुआतमां 'अर्हन् महावीर देवनास' ने नमस्कार करेलो छे (Archeol. Survey of India, Vol. III, P. 35. Ed. Thomas, Jainism or the early creed of Acoka p. 82.) अने आ शिलालेख एक ' उभी नग्न मूर्ति ' नी नीचे कोतरेलो छे. आ उपरथी, ए स्पष्ट प्रतीत थाय छे

के उक्त महावीर शब्द ते वर्धमान नामने माटे वपरायो छे, पण बुद्धने माटे नहीं. ए शिलालेख उपर संवत्सर ९८ लखेलो छे. मथुरामां मळेला शिलालेखोनी तारीखो कया संवत्ने उद्देशीने लखायली छे ते हजी नक्की थयुं नथी; छतां पण कनिष्क अने हुविष्कना नामनिर्देशथी एटलुं तो सिद्ध थाय छे के ते शिलालेखो ई० स० नी शरूआतना छे. बीजो पुरावो ए छे के बौद्धग्रंथोमां पण जैनधर्मना संस्थापकना संबंधमां केटलाक उलेखो मळी आवे छे; ते उलेखो तेना—जैनधर्मना प्रवर्त्तकना—कोई सामान्य नामना रूपमां नहीं पण 'निगण्ठनाथ' अथवा 'निगण्ठनातपुत्त'ना विशेषनामना रूपमां छे. आपणे पहेलां जोई गया छीए के 'निगण्ठ' ए जैनयतिवाचक शब्द छे; अने 'नातपुत्त' ने हुं कल्पसूत्र अने उत्तराध्ययनमां आवेला महावीरना 'नायपुत्त' बिरुद तरीके मानुं छुं. नेपालना बौद्धग्रंथो निगण्ठनाथने ज्ञातिनो पुत्र कहे छे (Burnouf. Lotus de la bonne loi p. 450), अने जैनो पण तेने 'ज्ञातपुत्र' कहे छे. (See Petersburgh Dictionary S. V. Jnataputra) वळी हेमचंद्रना परिशिष्ट पर्व १-३ वाळो नीचेनो श्लोक सरखाववा जेवो छेः—

कल्याणपादपारामं श्रुतगङ्गाहिमाचलम् ।
विश्वाम्भोजरविं देवं वन्दे श्रीज्ञातनन्दनम् ॥

महावीरने आ नाम आपवानुं कारण ए छे के तेना पिता ज्ञातक्षत्रिय-ज्ञात जातिना क्षत्रिय—हता. निगण्ठनातपुत्तने सामञ्ञफलसुत्तमां अग्निवैश्यायन गोत्रना लख्या छे. आ बौद्धलोकोनी भूल छे. कारण के, महावीर तो गौतम गोत्रना हता. बौद्धलेखकोए धर्मसंस्थापक अने तेमना मुख्य शिष्य सुधर्माने उलटपालट लखी दीधा छे. अर्थात् शिष्यनुं गोत्र गुरुने लगाड्युं छे. जैन सूत्रोमां सुधर्माने महावीरना सिद्धान्तोना प्रवर्तक तरीके लख्या छे, के जेमणे जंबुस्वामीने प्रथम सूत्रोपदेश आप्यो हतो. आ सुधर्मा 'अग्निवैश्यायन' गोत्रना हता. दुर्भाग्ये, निगण्ठनातपुत्तना सिद्धांतदर्शक सामञ्ञफलसुत्तना ते भागनो अर्थ स्पष्ट समजातो नथी. छतां पण तेना आनुमानिक भाषान्तर उपरथी, हुं कही शकुं छुं के 'निगण्ठनातपुत्त' ने महावीर तरीकेज गणवामां कोई पण प्रकारनो बाध आवे तेम नथी. डॉ० बुल्हरे पण एक कथाना आधारे महावीरने निगण्ठनातपुत्त रूपे जे स्वीकार्या छे ते हकिकत पण आ कथनने पुष्टि आपे छे. बौद्धधर्मना आत्मावतार (Hardy. Manual of Buddhism p. 271), वैश्यन्तर अने अन्य ग्रंथोमां एवो उल्लेख छे के निगण्ठनातपुत्त पोताना उपालिनामना एक शिष्य, के जेणे बौद्धधर्मनो अंगीकार कर्यो हतो तेनी साथे कलह कर्या पछी पावामां काल कर्यो हतो, कल्पसूत्रप्रमाणे पण महावीरनुं देहावसान पावामाज थएलुं होवाथी, तेमज जैन यतिओ निगण्ठो कहेवाता होवाथी, ए स्पष्टरीते सिद्ध थाय छे के 'निगण्ठनाथ' ए शब्द महावीर माटेज वपरायो छे. आ प्रमाणे बुद्ध अने महावीर ए बन्ने भिन्न परंतु समकालीन व्यक्तिओ हती. आ उपरथी ए पण स्पष्ट छे के आ बन्ने धर्मोपदेशकोना निर्वाण समयमां थोडाकज वर्षोनुं अंतर होवुं जोईए. हवे जनरल कनिङ्गहामे करेली अशोकनी त्रण नवी आज्ञाओनी शोध उपरथी, अने डॉ. बुल्हरे ऐतिहासिक अने भाषाशास्त्रनी दृष्टिए करेला तेमना अवलोकन उपरथी, बुद्धनो निर्वाण-समय ई. स. पूर्वे ४७७ ना अरसामां निर्णीत थयो छे. तेथी महावीर निर्वाणनो समय पण ई. स. पूर्वे ४९० अने ४६० नी वच्चे आववो जोईए.

श्वेताम्बरोनी परंपरानुसार महावीर-निर्वाणनो समय विक्रम संवत् पहेलां ४७० वर्षे आवे छे, अने दिगम्बरोना मते विक्रमसंवत् पूर्वे ६०५ वर्षे आवे छे. आ बन्ने संप्रादायोनी नोंधाएली निर्वाणनी तारीखोमां जे १३५ वर्षनो तफावत जोवामां आवे छे ते संवत् अने शक वच्चेना काळनी बराबर छे. अने

आ उपरथी एवी संभावना उभी थाय छे के दिगम्बरोनो विक्रम संवत् ते शालिवाहननो शक छे. कारण के शालिवाहननो हमेशां जुना विक्रम साथे सेळभेळ थई जाय छे. श्वेताम्बरो विक्रम संवत् ई. स. पूर्वे ५७ वर्षे शरु थयो, एम माने छे. महावीर निर्वाण अने विक्रम संवत् वच्चेना ४७० वर्षना अंतर संबंधी हकिकत श्वेताम्बरोना घणा ग्रंथोमां मळी आवे छे. एनुं प्राचीनतम प्रमाण—मेरुतुङ्गनी 'विचारश्रेणि' ना पायाभूत, नीचे आपेली स्मारक गाथाओ छे. ए गाथाओमां महावीर निर्वाण अने विक्रमादित्य राजानी वच्चेना अंतरमा जे जे राजवंशोए जेटलां जेटलां वर्षो सुधी राज्य कर्युं तेमनी नोंध आपेली छे. ते गाथाओ हुं अहीं टांकु छुं,—अने तेमनी साथे तेमना प्रथम प्रकाशक डॉ. बुल्हरे करेली टिप्पणी (Indian Antiquary II. 362.) उमेरूं छुं.

जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीर ।
तं रयणिं अवंतिवई अहिसित्तो पालगो राया ।१।
सट्ठी पालगरण्णो पणवण्णसयं तु होइ नंदाण।
अट्ठसयं मुरियाणं तीसं चिअ पूसमित्तस्स ।२।
बलमित्त भानुमित्ता सट्ठी वरिसाणि चत्त नहवहणे।
तह गद्दभिल्लरज्जं तेरसवरिसा सगस्स चउ ।३।

'१ जे रात्रे अर्हत तीर्थंकर महावीर निर्वाण पाम्या, तेज रात्रे अवन्तीपति पालकनो राज्याभिषेक थयो.

'२ पालक राजानुं राज्य ६० वर्ष सुधी रह्युं. पछी १५५ वर्षसुधी नन्दोए राज्य कर्युं. तेना बाद १०८ वर्ष मौर्य राज्य चाल्युं. पछी त्रीश वर्ष पुष्यमित्रनुं राज्य रह्युं.

'३ बादमां ६० वर्ष बलमित्र अने भानुमित्रे राज्य-कर्युं. अने तेमनी पछी ४० वर्ष नभोवाहन राजाए राज्य कर्युं. तेनी पछी तेर वर्ष गर्दभिल्लनुं राज्य रह्युं, अने पछी चार वर्ष शकराज नुं राज्य चाल्युं.'

आ गाथाओनो उल्लेख घणीक टीकाओमां तथा कालगणना-विषयक घणा ग्रंथोमां थएलो छे. पण तेमनुं मूळ चोकस जणातुं नथी. आ गाथाओ वीर अने विक्रम सवंत् वच्चेना निकाल, अने प्राचीन कालगणनाना आधार रूप बने छे. उपरोक्त गाथाओना अनुसारे मौर्यवंशना राज्यना प्रारंभथी ते विक्रम संवतूना प्रारंभ सुधी व्यतीत थएली वर्षसंख्या २५५ थाय छे. अर्थात् ४+१३+४०+६०+३०+१०८. आमां विक्रम संवत् अने ख्रिस्ति सननी शरुआतनी वच्चेना ५७ वर्ष उमेरवाथी चन्द्रगुप्तना अभिषेकनो काळ ई. स. पूर्वे ३१२ वर्षे आवे छे. आ रीते ग्रीक प्रमाणो द्वारा मळी आवती तारीख साथे, आ तारीखनी एकता थई जाय छे; अने तेथी ए पण सिद्ध थई जाय छे के त्रीजी गाथामां जणावेलो विक्रम (?) ते ई. स. पूर्वे ५७ वर्षमां शरु थएला संवत् युगना संस्थापकनो वाचक छे, नहीं के ई.स. ७८ मां शरु थता शकयुगना प्रवर्तकनो नामदर्शक. जो आम न मानीए तो चंद्रगुप्तना अभिषेकनो काळ ई. स. पूर्वे १७७ वर्ष आवे[१].

६० वर्षनुं पालकनुं राज्य अने १५५ वर्षोनुं नव-नन्दोनुं शासनबन्ने—मळीने कुल २१५ वर्ष प्रमाण चन्द्रगुप्त अने निर्वाण वचेनो काळ छे. हवे ई० स० पूर्वेना ३१२ वर्षोमां, आ २१५ उमेरवाथी, आपणे ई० स० पूर्वे ५२७ मा वर्षने महावीर निर्वाणना नामांकित काळ तरीके प्राप्त करी

---

१ हुं नीचेनी बाबत उपर ध्यान खेचुं छुं के चंद्रगुप्तना अभिषेकनो आ काळ ते सेल्युसीडनना सननी आरंभ साथे बंध बेसतो आवे छे. मि. एडवर्ड टॉमस माने छे के (Records of the Gupta Dynasty in India p. 17, 18.) सेल्युसिडनसने लांबा वखत सुधी उत्तर हिंदुस्थानमां पोतानुं स्थान टकावी राख्युं हतुं; अने पछीनी राजवंशावळीनी काळगणनात्मक नोंधो उपर घणी असर करी हती. मि. टॉमसना सिद्धांतनी सत्यता जो प्रत्यक्ष प्रमाणथी साबीत थाय तो चन्द्रगुप्तना अभिषेकनी जैन तारीख, जे लगभग साची छे, तेमां सहज गुंचवाडो उभी करतां आ हकिकतनो सहेलाईथी खुलासो आपी शकाय.

शकीए छीए.आ काळ, अने सीलोननी काळ-गणना अनुसारे बुद्धनुं निर्वाण, जे ई० स० पूर्वे ५४३ मा वर्षमां थयुं हतुं, तेनी वच्चे मात्र १६ वर्षनोज तफावत रहे छे.

महावीर-निर्वाण अने चन्द्रगुप्तना अभिषेक वच्चेना काळना संबन्धमां बीजी पण एक गणना छे, जे हेमचन्द्रना परिशिष्ट पर्वमां मळी आवे छे. ए ग्रन्थना, ८ मा सर्गना, ३४१ मां श्लोकमां लखेलुं छे के—

एवं च श्रीमहावीरे मुक्ते वर्षशते गते ।
पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥

' अने आ प्रमाणे महावीर निर्वाण पछी १५५ वर्षे चन्द्रगुप्त राजा थयो. '

ई० स० पूर्वेना ३१२ वर्षमां १५५ उमेरवाथी, आपणे जोईशुं के महावीर निर्वाण ई० स० पूर्वे ४६७ मां आवे छे.

हेमचन्द्र चन्द्रगुप्त अने निर्वाणनी वच्चे जेटलां वर्षोनुं अन्तर बतावे छे तेटलां वर्षो तो गाथाओ मात्र नन्दोना राज्यनाज जणावे छे. आ उपरथी एम जणाय छे के हेमचंद्र पालकना राज्यनां ६० वर्षो गणनामा लीधां नथी. हेमचंद्र आवी रीते ६० वर्षो छोडी देवा जेवी भूल करे ए मानवुं कठण लागे छे. तेथी हुं एम अनुमान करूं छुं के काळगणनात्मक गाथाओमां जे परंपरागत हकिकत लखवामां आवी छे तेथी भिन्नज कोई संप्रदायने हेमचन्द्र अनुसर्या होवा जोईए. कारण के मारा विचार प्रमाणे गाथोक्त हकिकत पूर्णरीते साची नथी. नन्दोनो राज्यकाळ, जे गाथाओमां १५५ वर्ष जेटलो आपवामां आव्यो छे ते असाधारणरीते अधिक छे, एटलुंज नहीं, परंतु मगधना राजवंशोनी गणनामां अवन्तीपति पालकनुं नाम आववुं ते मने तो घणुंज संशयजनक लागे छे. बौद्धो अथवा ब्राह्मणो आ नामना राजानो बिल्कुल निर्देश करता नथी. मगधनी राजावलीमां पालक नामना एक राजानो उल्लेख मळे छे खरो, पण ते प्रद्योत-वंशनो छे, के जे (प्रद्योतवंश) शैशुनाग वंशनी पहेलां थई गयो हतो. महावीरना समकालीन जे मगधना राजाओ हता ते शैशुनाग-वंशना हता. उज्जयिनी अथवा अवन्तीना राजा तरीके एक बीजा पालकनुं नाम मृच्छकटिकमां जोवामां आवे छे, अने तेना माटे त्यां एवुं वर्णन छे के आर्यके तेने राज्यभ्रष्ट कर्यो हतो. आ पालक ते कदाचित् कथासरित्सागरमां वत्स देशना काल्पित राजा उदयनना साळा तरीके जे पालकनुं नाम आपेलुं छे, ते संभवी शके. परंतु, आ उदयन जेम कुणिकना पुत्र उदायीना बदले भ्रांतिथी प्रसिद्धिमां आव्यो संभवे छे, तेम, ए पालक पण, तेज नामना प्रद्योत-वंशना राजा माटे भूलथी प्रसिद्ध थयो लागे छे. अने तेम थवाथी तेने महावीरनो समकालीन समजी लेवामां आव्यो होय एम जणाय छे. आ गमे तेम थयुं होय, पण सत्य वात तो ए छे के जैनोनी असल काळगणनामां पालकने स्थान नज मळवुं जोईए. हुं तो एम धारूं छुं के सीलोननी बौद्ध काळ-गणना साथे पोताना इतिहासने मळतो राखवानी खातर जैनोए तेने पोतानी काळ-गणनामां दाखल करी दीधो छे, अने तेथी ते मात्र कल्पना-प्रसूत छे. परंपरागत महावीरनिर्वाणनी तारीख अने हेमचन्द्रना उल्लेख उपरथी सूचवाती तारीख वच्चे जे साठ वर्षनो विरोध आवे छे, ते जोई, बौद्ध काळ-गणनामां मेळवी दीधेली ६६ वर्षनी असंगतिनुं स्मरण थाय छे; अने तेथी आपणने मानवुं पडे छे के ए बन्ने भूलेनी उत्पत्ति स्वतंत्र नथी पण एक—बीजानी असरथी—अनुकरणमांथी—थएली होवी जोईए. तामिल-देशमां जैनो केटलां मोटी संख्यावाळा अने शक्तिसंपन्न हता ते आपणे जाणीए छीए; अने तामिल-भाषाना प्राचीन साहित्य उपर जैन धर्मनी केटली बधी छाप पडी हती, ते ग्रौल (Graul) अने केल्डवेल (Caldwell) ना जणाव्या प्रमाणे जाणी शकाय

तेम छे. सीलोननी सामेना द्विपकल्पमां रहेता तत्कालीन जैनो उपर कदाचित् बौद्धोनी असर थई होय अने ते वखते तेमणे पोताना प्रतिस्पर्धी पन्थनी अनुसार पोतानी काळगणनामां फेरफार कर्यो होय. परंतु आ मात्र आनुमानिक विचार छे, अने तेथी वधारे लंबाण करी हुं आनी किंमत घटाडवा इच्छतो नथी.

हवे आपणे महावीर निर्वाण-समयना विवेचन उपर पाछा फरी जोईशुं के हेमचंद्रनी नोंध अनुसार ई. स. पूर्वे ४६७ वर्षे महावीर निर्वाण थयुं होय ते असंभवित नथी. कारण के, ते (समय) ई. स. पूर्वे ४७७ वर्षवाळा बुद्धना निर्वाण-समयनी साथे घणीज सुंदर रीते बंध बेसे छे. अने आ समकालीनता होवी आवश्यक छे, एम अमे उपरनी शोधमां जणावी गया छीए.

आ निर्णीत करेला निर्वाण-समयनी महत्ता परंपरागत निर्वाणसमय करतां केटली बधी वधारे छे ते जैन इतिहासमांथी मळी आवता बीजा प्रमाणो उपरथी नक्की थाय छे. आवश्यक सूत्र नामना एक पवित्र जैन आगमना ' उवग्घाय निज्जुत्ती ' नामना प्रकरणमां छ निन्हवोनुं वर्णन आवे छे, अने तेज वर्णन संवत् ११७९ (नवकरहर) मां रचाएली देवेन्द्रगणिनी उत्तराध्ययनसूत्रनी टीकामां[१] बहु विस्तार-पूर्वक पुनः आपवामां आव्युं छे. आ बन्ने ग्रंथोमां जणाव्या प्रमाणे अव्यक्त नामनो त्रीजो निन्हव वीर-निर्वाण पछी २१४ मे वर्षे आषाढ नामना आचार्यना शिष्योए चलाव्यो हतो. राजगृहना मौर्य राजा बलभद्र—जेने आवश्यकसूत्रमां ' मुरियबलभद्द ' अने उत्तराध्ययनमां ' मोरियवंसपसूओ ' तरीके लखेलो छे—तेणे आ निन्हव मत प्रवर्तकोने पाछा सन्मार्ग (जैनमतमां) वाळया हता. गाथाओ प्रमाणे जो मौर्यवंशनी उत्पत्ति वीर संवत् २१५ मां थई होय तो ते वंशनी एक शाखा वी. सं. २१४ मां राजगृहमां राज्य करती होय ते केम संभवी शके ?. पण जो आपणे हेमचंद्रना कथन अनुसार मौर्यवंश निर्वाण पछी १५५ वर्षे शरु थयो तेम स्वीकारीए तो तेमां कोई असंभवितता आवती नथी. अने आम मानवाथी निर्वाणनी निश्चित करेली तारीख पण साची ठरे छे. नीचेनी चर्चा उपरथी पण आपणे एज निर्णय उपर आवीए छीए. दरेक स्थविरावली-मां वर्णव्या प्रमाणे स्थूलभद्रना महागिरि अने सुहस्ती नामना बे शिष्यो हता. हवे स्थूलभद्र तो सघळा लेखकोना मते वीरनिर्वाण पछी २१५ वर्षे स्वर्गस्थ थया हता. मेरुतुंगना लख्या प्रमाणे महागिरि वी. नि. पछी २४५ मां मृत्यु पाम्या हता अने तेमना पछी सुहस्ती युगप्रधान बन्या हता. तेमणे अशोकना पौत्र अने उत्तराधिकारी संप्रतिने जैनधर्मनो उपासक बनाव्यो हतो. अशोक चन्द्रगुप्तना अभिषेक पछी ९४ वर्षे गुजरी गयो हतो. (बुद्ध निर्वाण पछी १६२ वर्षे चंद्रगुप्तनो अभिषेक. १६२+९४=२५६ अशोक मृत्यु.) गाथा प्रमाणे संप्रतिनुं राज्य महावीर निर्वाण पछी ३०९ वर्षे (२१५+९४) शरु थयुं अने हेमचंद्रना कथनानुसार २४९ वर्षे (१५५+९४). हवे आपणे गणत्री करीने जोईए छीए तो आमां हेमचंद्रनी हकिकतज खरी होय तेम जणाय छे. कारण के संप्रति अने सुहस्ती (के जे २४५ मां युगप्रधान बन्या) बन्ने समकालीन हता. एम उपरनी नोंधथी स्पष्ट जणाय छे. आ नोंध महावीर निर्वाणनी जे तारीख आपणे शोधी काढी छे तेनी सत्यता स्थापित करवामां पूर्ण सहायक थाय छे.*

१ आ टीका शान्त्याचार्यनी टीकामांथी उद्धृत करवामां आवी छे. मूळ सूत्रनुं अर्थबोधन ते कर्तानुं पोतानुं करेलुं छे, अने तेमां जोवामां आवती घणी कथाओ शब्दशब्द शान्त्याचार्यनी टीकामांथी उतारेली छे.

*उपरनी काळगणना संबंधी तपासने हवे समाप्त करी, जैनोना प्रादुर्भावनो समय नक्की करवामाटे मारी पहेलांना लेखकोए जे प्रयत्नो कर्या छे तेमना संबंधमां थोडा शब्दो लखवा योग्य धारू छुं. आ लेखकोने जैनधर्मनी उत्पत्ति निश्चित करवामां घणीज अपूर्ण माहीती मळी हती, अने

हवे हुं कल्पसूत्रना लोकविश्रुत लेखक भद्रबाहुना संबंधमां जैनो शुं कहे छे ते विषय उपर आवुं छुं, आ स्थविरना संबंधमां जे थोडी घणी सत्य हकिकतो छे ते पण अनैतिहासिक दंतकथाओ साथे एटली बधी भेळसेळ थई गई छे के जेथी तेमने तारवी काढवानुं काम अशक्य थई पड्युं छे. तेम छतां पण भद्रबाहु-संबंधी दंतकथाओनुं ऐतिहासिक मूळ शोधी काढवा माटे प्रयत्न करवानी आवश्यकता छे. आ कार्य माटे में जे पुरावाओनी मदद लीधी छे तेमने कालक्रमानुसार गोठववा जोईए. अने तेथी ते सर्वेना हुं नीचे प्रमाणे त्रण वर्गो पाडुं छुं. पहेला वर्गमां कल्पसूत्रमां आपेली बे स्थविरावलीओ, तथा आवश्यकसूत्र अने नन्दीसूत्रनी शरुआतमां आपेली स्थविरावली मूकुं छुं. बीजा वर्गमां, धर्मघोषना ऋषिमण्डलसूत्रने मूकुं छुं. आ बधा ग्रंथो वी नि. ९८० पछीना छे. आनाथी घणां सैकाओ पछी रचाएलुं हेमचंद्रनुं परिशिष्ट पर्व पण बीजा विभागमां अंतर्भूत थाय छे. त्रीजा वर्गमां कल्पसूत्रनी वधारे अर्वाचीन टीकाओमां आवती कथाओ, पद्ममंदिरगणि रचित ऋषिमण्डलसूत्र वृत्ति (आ वृत्ति संवत् १५१३मां जेसलमेरमां समाप्त थएली छे.) आदि बीजा ग्रंथो मूकवामां आव्या छे.

तेथी तेमना प्रयत्नो निष्फळ निवड्या छे; एटलुंज नहीं पण कालगणना संबंधी शोधमां ते मोटा विघ्नरूप थई पड्या छे. प्रो. वेबरे, वी. नि. ९८० मां ध्रुवसेन राजानी आगळ कल्पसूत्र वांचवामां आव्युं हतुं, ते हकिकत, अने शिलादित्य जे वी. नि. पछी ९८७ मां राज्य करतो हतो तेवी दंतकथावाळी हकिकत, ए बन्नेनो भेळसेळ करी, तेना उपरथी महावीर-निर्वाणनी तारीख ई. स. पूर्वे ३६९ नक्की करी छे. प्रो. वेबरनी गणनानी पायाभूत आ बन्ने तारीखो जो खरी होय–जो के ते विषयमां मने तो गंभीर शंकाओ छे–तो पण उपर जणावेली नोंधोमां त्रण ध्रुवसेनोमांनो कयो ध्रुवसेन अने छ शिलादित्योमांनो कयो शिलादित्य लेवाना छे, ते नक्की करवुं अशक्य छे. आ अनिश्चय उपरांत, वलभीवंशनी कालगणना उपर प्रो. वेबरे पोतानी गणत्री उभी करी छे तेनोज हजी तो निर्णय थयो नथी. प्रो वेबरना सिद्धान्तनी (Ind. Alt. IV.p.762 sqq.) टीका करती प्रो. लेसननी दलीलो पण तेना जेवाज अनिष्कंटक पाया उपर उभी थएली होवाथी तेना संबंधमां पण वधारे विवेचन करवानी जरूर नथी. शत्रुंजयमाहात्म्य जेने डॉ० बुहलर 'बारमा अगर चौदमा सैकाना कोई एक यतिनो कंगाल कृट लेख' कहे छे (Three new Edicts of Acoka, p. 21. note) तेमां पण विक्रम पहेलां ४७० मा वर्षमां महावीर निर्वाण पाम्या एवी चालती आवती हकिकत आपेली छे. पण वेबरे अगर लेसने आ अगत्यना कथन उपर कांई पण लक्ष्य आप्युं नथी तेनुं कारण कदाचित् तेमना वखतमां बीजा धर्मोना मुकाबलामां जैन धर्म ए एक अर्वाचीनज धर्म छे, एम जाणे के एक सिद्धान्त मनाई गयो होय तेम लागे छे. परंतु आ दुराग्रह छेल्लां वीस वर्षोमां, जे विशाल प्रमाणमां जैन साहित्य आपणने मळ्युं छे, तेनी आगळ, हवे टकी शके तेम नथी. डॉ० बुहलरनो आपणे उपकार मानवो जोईए के जेमणे समग्र जैन साहित्य युरोपीय विद्वानोनी आगळ लावी मूक्युं छे; अने तेम करी अपूर्ण अने शंकाशील मूळोमांथी जैनधर्मसंबंधी हकिकतो मेळववाना संकटमांथी आपणने मुक्त कर्या छे.

स्थविरावलीनी अनुसार महावीर पछी भद्रबाहु छठ्ठा स्थविर छे. तेमना गोत्रनुं नाम 'प्राचीन' छे. प्राचीन ए शब्द घणुं करीने 'जूनुं' एवा अर्थमां वपराएलो छे कारण के आ नामनुं गोत्र भारतवर्षना बीजा कोई ग्रंथमां जोवामां आवतुं नथी. भद्रबाहु यशोभद्रना शिष्य हता, अने कल्पसूत्रनी विस्तृत स्थविरावलीमां बताव्या प्रमाणे तेमने (भद्रबाहुने) गोदास, अग्निदत्त, जनदत्त, अने सोमदत्त नामना चार शिष्यो हता. आमांना पहेलाए गोदास नामे गण स्थाप्यो हतो.

ऋषिमण्डलसूत्रमां भद्रबाहुनी एकज गाथा वडे स्तुति करेली छे, पण तेमना उत्तराधिकारी स्थूलभद्रनी स्तुति वीस गाथाओमां करवामां आवी छे. भद्रबाहुनी स्तुति-गाथा नीचे प्रमाणे छे.

> दसकप्पव्ववहारा
> निज्जूढा जेण नवम-पुव्वाओ ।
> वंदामि भद्दबाहुं
> तमपच्छिम-सयलसुयनाणिं ॥

'जेमणे नवमा पूर्वमांथी दशकल्प अने व्यवहार (सूत्र) उद्धृत कर्या, एवा अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहुने हुं वंदन करुं छुं. 'अपच्छिम' नो अनुवाद 'छेल्लुं

नहीं' एम पण करवो होय तो थाय, परंतु तेनो सामान्य अर्थ 'तद्दन छेल्लुं' एम थतो होवाथी मे मारा भाषान्तरमां तेम कर्युं छे. छतां पण सामान्य परंपरानुसार स्थूलभद्र चौदपूर्वधारी मनाता होवाथी, भद्रबाहु उपान्त्य (छेल्लानी पहेला) श्रुतकेवली गणाय छे. स्थूलभद्रथी ते वज्रस्वामी सुधीना स्थविरो दश पूर्वोना धारक हता. अने तेटला माटे तेओ दशपूर्वी कहेवाय छे. वज्रस्वामी पछी पूर्वोनुं ज्ञान तद्दन लुप्त थयुं हतुं.—जुओ, हेमचंद्र विरचित, अभिधान चिन्तामणि, श्लोक. ३३—३४. हेमचंद्र परिशिष्ट पर्वना नवमा सर्गमां, केवी रीते स्थूलभद्र साथे छेल्लां चार पूर्वो विच्छिन्न थयां ते संबंधमां नीचे प्रमाणे वर्णन आपे छेः—पाटलीपुत्रना संघे ११ अंगो एकत्र करी, दृष्टिवाद नामना बारमा अंगने प्राप्त करवा माटे ४९९ साधुओ साथे स्थूलभद्रने भद्रबाहुनी पासे, जेओ ते वखते नेपालमां रहेता हता, त्यां मोकल्या. भद्रबाहुए ते समये 'महाप्राणव्रत' अंगीकार करेलुं होवाथी पोताना ए शिष्योने घणोज थोडो थोडो पाठ आपी शकता हता. तेथी करीने केटलाक वखत पछी, स्थूलभद्र सिवाय बीजा बधा शिष्यो कंटाळी जई तेमनी पासेथी जता रह्या हता. स्थूलभद्र भद्रबाहु पासेथी दश वर्षमां दश पूर्वो शीख्या हता, त्यार बाद भद्रबाहुने तेमनी वर्तणुकमां दोष जणायाथी बाकीनां पूर्वो शिखववानी तेमणे ना पाडी. परंतु ज्यारे स्थूलभद्रे बहु प्रार्थना करी, अने पोताना दोषनी क्षमा मांगी त्यारे तेमणे आगळ शिखववा मांड्युं; अने ते एवी शरते के छेल्लां चार पूर्वो तेमणे बीजा कोईने शिखववां नहीं. हवे आ कथानी साथे धर्मघोषना शब्दोनो विरोध आपणे एवी रीते मटाडी शकीए के, स्थूलभद्रे छेल्लां चार पूर्वोनुं ज्ञान बीजा कोईने आप्युं न होतुं ते उपरथी धर्मघोष तेमनुं ज्ञान अपूर्ण मानी लीधुं हशे अने आ अपेक्षाए भद्रबाहुनुं ज्ञान स्थूलभद्र करतां संपूर्ण होवाथी तेओ 'अपच्छिमसयलसुयनाणी' कही शकाय छे. परंतु आ रीतनो अर्थ केटलेक अंशे श्रमसाधित होवाथी मने एम मानवुं ठीक लागे छे के प्राचीनतर हकिकत अनुसार भद्रबाहुज छेल्ला श्रुतकेवली हता; पण पाछळथी, स्थूलभद्र—के जेमना विषयमां घणी दंतकथाओ लोकमां प्रसिद्ध छे —ते पण तेवी प्रकारना पदवीधर स्थविरोनी गणनामां गणावा लाग्या हता.

धर्मघोषनी गाथाना पूर्वार्ध उपरथी मालुम पडे छे के भद्रबाहुए नवमा पूर्वमांथी दशकल्पो अने व्यवहारसूत्र उद्धृत कर्यां हतां. कल्पसूत्रनी घणी टीकाओना उपोद्घातमां आ दशकल्पो संबंधी निर्देश थएलो जोवामां आवे छे. (Stevenson, Kalpasutra p. 8 sqq.) ते उपरथी दशकल्पनी मतलब मुख्यत्वे करीने कल्पसूत्रज हशे. व्यवहार सूत्र ते जैनआगमोमां गणाता छेदोमांनुं एक छेद छे. ऋषिमण्डलसूत्रनी वृत्तिमां भद्रबाहुस्वामीनी कृतिओनी नीचे प्रमाणे एक मोटी यादी आपी छेः—

दशवैकालिकस्याचाराङ्गसूत्रकृताङ्गयोः ।
उत्तराध्ययनसूर्यप्रज्ञप्त्योः कलकस्य च ॥
व्यवहारर्षिभाषितावश्यकानामिमाः (?) क्रमात् ।
दशाश्रुताख्यस्कन्धस्य निर्युक्तीर्दश सोऽतनोत् ॥
तथान्यां भगवांश्चक्रे संहितांभाद्रबाहवीम् ।

'तेमणे दशवैकालिक, आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, सूर्यप्रज्ञप्ति, कलक[1] (?) व्यवहार, ऋषिभाषित, आवश्यक, अने छेवटे दशाश्रुतस्कंधनी एम अनुक्रमे दश निर्युक्तिओ रची. भगवान् भद्रबाहुए आ उपरांत भाद्रबाहवी संहिता पण बनावी हती. डॉ. बुह्लरे अत्यार आगमच लख्युं छे के आगमोनी निर्युक्तिओ बधी भद्रबाहुनी छे (l. c. p. 6.) अने पोते पण आचारांग निर्युक्ति अने ओघनिर्युक्ति प्राप्त करी छे, एम जणावे छे. आगळ उपर जणा-

१ आ पाठ अशुद्ध छे. आ ठेकाणे 'कल्प' एवो पाठ जोईए. 'कल्प' एटले कल्पसूत्र जेने हालमां 'बृहत्कल्प' कहेवामां आवे छे ते अहिं निर्दिष्ट छे—**संपादक.**

वीश के भद्रबाहुए दशाश्रुतस्कंधनी निर्युक्ति नहीं पण दशाश्रुतस्कंध मूळज रच्युं छे. आ दशाश्रुतस्कंध केटलीक वखत भूलथी कल्पसूत्र मनाय छे. संहिताना संबंधमां आपणे आगळ उपर विचार करीशुं.

आ बधी कृतिओ उपरांत कल्पसूत्रनी कथाओ-मांनी एक गाथा अनुसार भद्रबाहुने उवसग्गहर-स्तोत्रना पण प्रणेता मानवामां आवे छे.—

उवसग्गहरं थुत्तं काऊण जेण संघकल्लाणं ।
करुणापरेण विहिअं स भद्दबाहू गुरू जयउ ॥

' जे भद्रबाहु स्वामीए करुणा लावीने उवसग्गहर नामनुं स्तोत्र रची संघनुं कल्याण कर्युं छे तेमनो जय थाओ. '

आ पृष्ठनी नीचे[1] नोटमां ते स्तोत्रनुं मूळ तेमज भाषान्तर आपुं छुं; अने जो ते खरेखर भद्रबाहुनुंज बनावेलुं होय तो ते अर्वाचीन विशाळ जैन स्तोत्र साहित्यनो प्राचीनतम नमुनो छे.

भद्रबाहुना देहावसाननो समय, हेमचंद्रथी मांडीने ठेठ अर्वाचीनमां अर्वाचीन टीकाकार सुधीना बधा लेखको निर्विशेषपणे वीर नीर्वाण संवत् १७० मां मूके छे. हेम० परि० पर्व ९., ११२:

वीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गते सति ।
भद्रबाहुरपि स्वामी ययौ स्वर्गं समाधिना ॥

' महावीर निर्वाण पछी १७० वर्ष ज्यारे वीती गयां त्यारे भद्रबाहु समाधिपूर्वक स्वर्ग पहोंच्या. '

मारे अहिं कहेवुं जोइए के बधा श्रुतकेवलिओनी मितिओ आपवामां आवी छे खरी पण ते आधार राखवा लायक छे के नहीं तेनो निर्णय हुं करी शकतो नथी.

भद्रबाहु अने वराहमिहिर वच्चे थएली स्पर्धाना संबंधमां, हेमचंद्र सिवाय घणा अर्वाचीन जैन ग्रंथकारोए एक दंतकथा आपेली छे. आ दंतकथा उत्पन्न थवानुं कारण मने नीचे मुजब लागे छे. एक तो भद्रबाहुए सूर्यप्रज्ञप्ति टीका आने भाद्रबाहवी नामनी संहिता एम बे खगोल-विद्या-विषयक ग्रंथो, तथा उवसग्गहर नामनुं स्तोत्र—रच्युं छे, एम जे मनाय छे तेथी, अने बीजुं, जैनज्योतिषशास्त्रने अन्यज्योतिर्विदो जे धिक्कारता हता (सिद्धान्तशिरोमणि ३-१) तेथी, भद्रबाहु अने जैन ज्योतिषशास्त्रनी महत्ता देखाडवानी लालसाना परिणामे ए दंतकथा जन्म पामी छे. आ दंतकथानो सार नीचे प्रमाणे छे:—प्रतिष्ठानपुरनिवासी भद्रबाहु अने वराहमिहिर ए बन्ने भाईओ जैन साधु थया हता. तेमना गुरु यशोभद्रे पोताना अवसान पहेलां संभूतिविजय अने भद्रबाहुने पोताना पछी आचार्यपदना अधिकारी निम्या.ए पदने माटे वराहमिहिरे आशा राखी हती, परंतु तेमां निराशा मळवाथी क्रोधायमान थई तेणे जैनधर्मनो त्याग कर्यो. पछीथी पोताना ज्योतिषशास्त्रना ज्ञानथी तेणे लोकोमां घणी प्रतिष्ठा मेळवी अने ते प्रतिष्ठाने एक कल्पितकथा फेलावी खूब—प्रबळ बनावी. ' मारी भक्तिथी सूर्यदेव मारा उपर प्रसन्न थई, मने पोताना विमानमां बेसाडी ज्योतिर्मण्डलमां लई गया हता अने त्यां सर्व नक्षत्रादिकनी गति विगेरे तेमणे मने प्रत्यक्ष बतावी छे.' आवी रीते भोळा लोकोनी आगळ ते पोतानी बडाई मारवा लाग्यो, अने तेनालीधे खुद्द राजानो पण ते सारो कृपापात्र बनी गयो. पोतानी आवी लागवगना जोरे, तेणे जैनोने राजाना सन्मानथी वंचित बनाव्या. अंते भद्रबाहु सधर्मी बंधुओनी सहाये आव्या अने ज्योतिर्विद्याना पोताना उत्कृष्ट ज्ञानथी पोताना भाईने पराजित कर्यो वराहमिहिरे क्रोध अने मानभंग न सही शकवाना कारणे प्राणत्याग कर्यो,अने मरीने ते एक दुष्ट व्यंतर बन्यो. पछीथी पोतानुं जूनुं वेर वाळवा तेणे जैनोना घरोमां रोगनो उपद्रव शरु कर्यो. भद्रबाहुए उवसग्गहर स्तोत्रनी रचना करी ते व्यंतरने नसाडी मूकी उपद्रवनो नाश कर्यो. त्यार पछी तेमणे पोताना नामनी संहिता रची.

[1] उवसग्गहर स्तोत्र जैनसमाजमां घणुंज प्रसिद्ध अने सर्वत्र सुलभ होवाथी ते अत्र आप्युं नथी —**अनुवादक.**

आ उपर आपेली कथा देखीती रीतेज कांइ पण ऐतिहासिक उपयोगिता वाळी जणाती नथी. तेमज हेमचंद्रे तेनो उल्लेख पण करेलो नहीं होवाथी ते अर्वाचीन होय तेम भासे छे. तेथी आ संबंधमां आपणने कोई पण जातनो विचार करवानी जरूर नथी. परंतु भद्रबाहुसंहिताना संबंधमां कांईक विवेचन करवानी जरूर छे. डॉ० बुहलर पोते ते नामनुं एक पुस्तक मेळव्यानुं जणावे छे. तेओ कहे छे के ए संहिता अन्य संहिताओना जेवीज छे. अने मुकाबलामां ते अर्वाचीन समयमां बनेली होय तेम जणाय छे. वराहमिहिर, बीजा अनेक ग्रंथकारोना उल्लेखो साथे सिद्धसेन[1] नामना एक जैन ज्योर्विदनो पण उल्लेख करे छे,(Kern, Brihat Samhita, Preface p. 29.) परंतु प्रस्तुत पुस्तकना संबंधमां ते कांई सूचन करतो नथी. आ उपरथी एटलो निर्णय करी शकाय छे के भाद्रबाहवी संहिता वराहमिहिरनी पछीथी रचाएली छे. अने तेथी कोई पण रीते तेना कर्ता भद्रबाहु, ते कल्पसूत्रना कर्ता भद्रबाहु तो नज होई शके. कारण के कल्पसूत्रनी अंतिम आवृत्तिज—तेमां जणाव्या प्रमाणे—वीर संवत् ९८० एटले ई. स. ४५४ अथवा ५१४ मां थएली छे. आ समय वराहमिहिरनी पहेलांनो छे—निदान तेनो समकालीन तो खरोज.

कालक्रमपूर्वक गोठवतां भद्रबाहुना संबंधमां उपर प्रमाणेनी हकिकत जैनग्रंथोमांथी मळी आवे छे. ऐतिहासिक दृष्टिए तेनी उपयोगिता गमे ते होय छतां एटलुं तो निर्विवाद छे के सघळा जैन लेखको एकमते तेमने पोताना एक प्राचीनतम अने सौथी वधारे समर्थ लेखक माने छे. तेमनी कृतिओ समग्र जैनसाहित्यनो एक विशिष्ट भाग होवाथी ए समग्र साहित्यनी समानज तेमनुं पण भवितव्य सर्जाएलुं छे. अने आ कारणथी हवे आपणे समग्र जैन साहित्यनुं सामान्य रीते विवेचन करवुं जरूरनुं छे. ए साहित्यनो सर्वोत्कृष्ट अने पवित्र भाग ते ४५ आगमो गणाय छे.[1] आमांना केटलाकना कर्ताओनां नामो पण बनाववामां आव्यां छे. उदाहरण तरीके दशवैकालिकसूत्रना कर्ता शय्यंभव. दशाश्रुतस्कंध अने व्यवहार सूत्रना कर्ता भद्रबाहु, अने प्रज्ञापनाना कर्ता श्यामार्यने बनाववामां आवे छे. परंतु घणा आगमो तो महावीरे पोतेज प्ररूप्या छे, एम कहेवाय छे. आ कहेवानो अर्थ एवो नथी के साक्षात् महावीरेज अंगो अने उपांगोनी रचना करी छे.पण तेनो भावार्थ एम छे के ते आगमोमां वर्णवेली बधी हकिकतो महावीरे पोतेज उपदेशी छे, अने तेथी ते तेमनाज करेला कहेवाय छे. हिंदुस्थानमां ग्रंथकर्तृत्व मात्र मूळ वस्तु—मूलभूत तत्त्वना अर्थना उपदेशने आश्रीने मनाय छे, नहीं के शब्दरचनाने आश्रीने. शब्दरचना गमे तेम थाय, तेने प्राधान्य आपवामां आवतुं नथी. फक्त अर्थमात्रनेज महत्त्व अपाय छे. ग्रंथकर्तृत्वनो जे अर्थ आपणे समजीए छीए ते अर्थमां महावीर सूत्रोना कर्ता नथीज, एम आपणे सहेलाईथी सिद्ध करी शकीए छीए. कारण के घणां खरां सूत्रोनी शरुआतमां आपेली नोंध उपरथी जणाय छे के ते सुधर्माए जम्बू-

१ सिद्धसेन एक प्रख्यात जैन लेखक छे अने एवुं कहेवाय छे के तेमणे विक्रमादित्यने नवीन संवत् प्रवर्तववा माटे केटलीक सहायता आपी हती.कल्याणमंदिरस्तोत्र नामनी तेमनी एक कृति मनाय छे.

१ नीचे आपेली आगमोनी टीप डॉ० बुहलरे कृपाकरी मने मेळवी आपी छे. १ अंगोः—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, अने विपाकसूत्र; २ उपांगोः—औपपातिक, राजप्रश्न, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, निरयावली, जेमां—कल्पावतंस, पुष्पिक, पुष्पचूलिक अने वह्निदशा; ए अंतर्गत थएलां छे; ३ प्रकीर्णकोः—चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, भक्त, संस्तार, तण्डुलवइयाली, चन्द्रावीज, देवेन्द्रस्तव, गणिवीज, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव; ४ छेदोः—निशीथ,महानिशीथ, व्यवहार,दशाश्रुतस्कन्ध,बृहत्कल्प, पञ्चकल्प, ५ नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार; ६ मूलसूत्रोः—उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक अने पिण्डनिर्युक्ति.

स्वामीने कहेला छे. घणुं करीने तो महावीरना सिद्धान्तो अने शब्दो मूळमां—प्रारंभमां जुदा जुदा ग्रंथो रूपे रचायाज न हता. परंतु भद्रबाहुना समयमां अगिआरे अंगो मोजुद हतां एम हकिकतो उपरथी जणाय छे, कारण के तेमणे ए अंगोनी व्याख्या रूपे केटलिक कृतिओ करी हती. उपर टांकेली भद्रबाहु अने स्थूलभद्रनी कथानो भावार्थ जोतां मालुम पडे छे के पाटलीपुत्रना संघे अगिआर अंगोनो संग्रह कर्यो हतो. त्यार बाद सूत्रोमां घणा फेरफारो थया होवा जोईए. अने आ वात स्थानांग सूत्रथी साबीत पण थई शके छे. ए सूत्रनां ७ मा स्थानमां, सात निन्हवोनुं वर्णन करेलुं छे. आ सातें निन्हवोना संबंधमां आवश्यकसूत्रमां विशेष विवेचन आपवामां आवेलुं छे. आमांनो आतमो निन्हव वीर निर्वाण पछी ५८४ वर्षे प्रादुर्भूत थयो हतो एम लखेलुं छे. आ उपरथी एवुं फलित थाय छे के महावीर पछी छट्ठी-सातमी सदी सुद्धामां पण सूत्रो महत्त्वना परिवर्तनोना पात्र थई शकतां हतां.

छेलामां छेलुं जैनसूत्रोनुं पुस्तकाधिरोहण सामान्य अने प्राचीनमान्यताना आधारे वी. सं. ९८० मां देवर्धिगणि क्षमाश्रमणे कर्युं.* वीरनिर्वाणनी तारीख, जो ते वखते विक्रम संवत् ४७० वर्ष पहेलां थएली मनाती हशे तो ते वी. नि. ९८० नी साल ई. स. ४५४ नी बराबर थाय छे, परंतु ते वखते जो वी. नि. नी तारीख आपणे उपर जे नवीन निर्णीत करी छे ते प्रमाणे मनाती हशे तो ते साल ई. स. ५१४ नी बराबर थाय छे. जिनप्रभमुनि अने पद्मनन्दिरगणी लखे छे के देवर्धिगणीए ज्यारे ४५ आगमो—सिद्धान्तोने नष्ट थवानी तैयारीमां जोया त्यारे तेमणे वलभीपुरना संघनी मददथी ते पुस्तकारूढ कराव्या. एम कहेवाय छे के प्राचीनकालमां आचार्यो पोताना शिष्योने पुस्तकनी अपेक्षा सिवाय ('पुस्तकानपेक्षया') ज सूत्र शिखवता हता. पण पाछळथी पुस्तकोनी सहायताथी शिखववानी शरूआत थई. अने जैन उपाश्रयोमां ए प्रथा हजीपण चाली आवे छे. आ वृद्ध संप्रदायनो अर्थ एम नथी के देवर्धिगणीए पहेलीज वखते जैनोना पवित्र ज्ञानने पुस्तकारूढ कराव्युं; पण तेनो एटलोज मतलब छे के, प्राचीनकाळमां आचार्यो लिखित पुस्तको करतां पोतानी स्मृति उपरज वधारे आधार राखता हता.†

जैनधर्मना बुद्धघोष देवर्धिगणीए खास करीने समग्र साम्प्रदायिक जैन साहित्य के जे तेमने ते वखतना पुस्तकोमांथी अने विद्यमान आचार्योना मुखेथी मळ्युं हतुं ते बधुं, आगमोना रूपमां तेमणे गोठव्युं. आ कार्य घणुं मोडुं थयुं हतुं, कारण के ते वखते घणाक आगमो तो त्रुटित थई गया हता अने तेना अमुक अमुक त्रुटक भागोज बाकी रह्या हता. आ

१ उत्तराध्ययननी टीका जेवा वधारे अर्वाचीन ग्रंथोमां अल्पतर विसंवादी निन्हवोनी संख्यामां बीजा एक नवीन बहुतर विसंवादी निन्हवनो उमेरो पण थएलो छे अने ए निन्हव ते वी. नि. संवत् ६०५ मां उत्पन्न थएलो दिगम्बर मत छे. दिगम्बरो श्वेताम्बरोनी उत्पत्ति गुप्तिगुप्त नामना स्थविरना वखतमां, जे संवत् ३६–४६ मां थई गया हता, ते वखते थएली बतावे छे.

*आ नोंध साथे, कल्पसूत्र अने ऋषिमंडलसूत्रनी स्थविरावलीओ छेल्ला स्थविर तरीके देवर्द्धिगणीनुं जे नाम आपे छे ते, अने आवश्यक अने नन्दीसूत्रनी स्थविरावलीओ देवर्धिगणी सुधीनां स्थविरोनां नाम आपतां छतां पण तेमनो (देवर्धिगणीनो) जे नामनिर्देश करती नथी ते,—आ बन्ने हकिकतो, बहु संगत थाय छे. ए उपरथी एवुं अनुमान थाय छे के तेमणे नन्दी अने आवश्यक सूत्रना प्रारंभमां आ स्थविरावली मूकी हशे.

† आ समयथी मात्र ३० वर्ष पहेलांज एटले सन् ४१० अने ४३२ नी वच्चे बुद्धघोषे बौद्ध पिटको अने अर्थकथाओने, धर्मनी चिरन्तन स्थिरताने माटे पुस्तकोमां लखावी. सीलोनमां बौद्धग्रंथो, अने गुजरातमां जैनग्रंथो लगभग समान कालमांज पुस्तकारूढ थया ते उपरथी एवुं अनुमान थई शके के जैनोए बौद्धोनी आ प्रवृत्तिनुं अनुकरण कर्युं हशे. अगर तो हिंदुस्थानमां पांचमी सदीथीज साहित्यना हेत्वर्थे लेखन (कळा) नो वधारे उपयोग थवा लाग्यो हशे.

त्रुटित भागोने देवर्धिगणीए पोताने जेम योग्य लाग्युं ते प्रमाणे अनुसंधित करी एकत्र कर्या. घणाक आगमोमां जे असंबद्ध अने अपूर्ण वर्णनो मळी आवे छे तेनुं कारण मात्र आज कल्पना द्वारा आपणे समजी शकीए छीए. विद्यमान जैन आगमोनी व्यवस्था–(रचना) मुख्यत्वे करीने एना संपादक देवर्द्धिगणीनेज आभारी छे. तेमणेज तेने अध्यायो-अध्ययनोमां विभक्त कर्या, अने ग्रंथगणना(एटले ३२ अक्षरनो एक श्लोक एम श्लोकप्रमाण)नी पद्धति दाखल करी. आ ग्रंथगणनाना हिसाबे, सो सो अगर हजार हजार श्लोकनी संख्यासूचक अंको, हस्तलिखित प्रतिओमां सर्वत्र एकज रूपमां लखवामां आवेला छे. रस्ताओना मापने माटे उभा करेला माइलना पथराओ जेवा आ संख्या-सूचक अंको मूकवानो उद्देश्य एज छे के मूळ सूत्रोमां पुनः वधारा–उमेरा न थवा पामे. परंतु वास्तविकमां आ उद्देश्य सफळ थयो होय एम लागतुं नथी.

देवर्द्धिगणीना पछीना समयमां पण जैन आगमोमां घणा फेरफार थया होवा जोईए. हालनी हस्तलिखित प्रतोमां विविध पाठान्तरो मळे छे खरां, परंतु, जुदी जुदी लेखनपद्धतिने लईने तेनी उत्पत्ति थएली छे. ते सिवाय ते वधारे उपयोगी के वधारे प्रमाणवाळां नथी. पण पुरातन समयमां कांईक जुदीज स्थिति होवी जोईए. कारण के टीकाकारोए पोतानी टीकाओमां अनेक पाठांतरोनो निर्देश करेलो छे, के जे हालना हस्तलेखोमां जोवामां आवतां नथी. आथी मारूं एम मानवुं छे के वर्तमानमां जे सूत्रपाठ मूळनी प्रतिओमां जोवामां आवे छे, तथा अर्वाचीन टीकाकारोए जेने पोतानी टीकाओमां लीधेलो छे ते मूल टीकाकारोए निर्णीत करेलो पाठ छे. कल्पसूत्रना संबंधमां तो आ वात निश्चित छे, एम हुं खात्रीपूर्वक कही शकुं छुं. सूत्रोनी जे जे टीकाओ अत्यारे विद्यमान छे ते सघळी सीधी अथवा आडकतरीरीते प्राकृतमां रचाएली प्राचीन चूर्णिओ अगर वृत्तिओना आधारे लखाएली छे. ए चूर्णिओ तथा वृत्तिओ हालमां या तो नष्ट थई गई छे, अथवा तो क्वचित् ज अस्तित्व धरावे छे. प्राचीन टीकाकारोए मूळसूत्रो ने घणाज अव्यवस्थित रूपमां जोयां हशे. कारण के तेमने तेना घणा पाठान्तरो नोंधवानी आवश्यकता लागी हती. आमांना घणांक पाठान्तरो पछीना टीकाकारोए पण पोतानी टीकाओमां टांक्यां छे. केटलाक टीकाकारो फक्त एकज पाठ स्वीकारी ते उपरज टीका करवानुं जणावे छे. उदाहरण तरीके उत्तराध्ययनसूत्रना टीकाकार देवेन्द्रगणी लई शकाय. बीजा केटलाक टीकाकारो पाठान्तरो जोवानी ईच्छावाळाने ते चूर्णी जोवानी भलामण करे छे प्रमाण तरीके कल्पसूत्रना सौथी प्राचीन टीकाकार, के जेमनी टीका मेळववा हुं शक्तिमान थयो छुं, ते जिनप्रभमुनि लई शकाय. आ कारणथी वर्तमान विवेचकोनो उद्देश तो मात्र प्राचीन टीकाकारोए जे सूत्रपाठ स्वीकार्यो हतो तेनोज पुनरुद्धार करवानो होवो जोईए. साक्षात् देवर्धिगणीए पुस्तकारूढ करेलो सूत्रपाठ तो आजे मळवो अशक्य ज छे.

देवर्धिगणीना समय पर्यंतनी जैन साहित्यनी अव्यवस्थित स्थिति उपरथी ए अनुमान पण करी शकाय एवुं छे के जे भाषामां ते पवित्र ज्ञान एक पेढीथी बीजी पेढिने आपवामां आवतुं हतुं तेमां क्रमथी फेरफारो थता गया हता. जे भाषा महावीर अने तेमना अनन्तर शिष्यो–अर्थात् गणधरो –बोलता हता ते तो खरेखर मगधदेशनीज भाषा हती. तेओ संस्कृतभाषा बोले ए तो असंभवितज छे.

१ उेठ देवर्धिगणीना समय पर्यंत जैनो खरेखर बेदरकारीथीज पोताना पवित्र धर्मशास्त्रनुं ज्ञान आपता रह्या हशे. कारणके, पूर्वोनो अमुक भाग तो महावीर पछीनी आठमी पेढिएज लुप्त थई गयो हतो. तेमज दशमी पेढिना पूर्वेज सर्व पूर्वो नष्ट थयां हतां. निदान जैन इतिहास तो आपणने एमज कहे छे

परंतु, जैन प्राकृत अशोकना शिलालेखोनी अथवा प्राकृत वैयाकरणोनी मागधी भाषा साथे घणुंज थोडुं मळता पणुं धरावे छे. तेम छतां जैनो पोते तेने 'मागधी' कहे छे. हेमचंद्रे पोताना प्राकृतव्याकरणना चोथा पादना २८७ मा सूत्रनी व्याख्यामां जे अर्धी गाथा उद्धृत करेली छे तेमा लख्यं छे के प्राचीन सूत्रो एकली अर्धमागधी भाषामांज लखाएलां हताः—

पोराणं अद्धमागहभासानिअयं हवइ सुत्तं ॥

हेमचंद्र आ स्थळे पोतानुं टिप्पण करे छे के, जो के आवो परंपरागत वृद्ध संप्रदाय छे, परंतु, मागधी भाषानुं जे लक्षण आगळ उपर आपवामा आवशे ते जैन प्राकृतने लागु पडतुं नथी; अर्थात् जैन प्राकृत मागधीथी भिन्न छे.

जैनोनी पवित्र भाषाना स्वरूपनुं निरूपण करवा आगळ वधीए तेनी पहेला आपणे एटलुं ध्यानमां राखवुं जोईए के तेमनी प्राकृत भाषामां बे भेदो देखाई आवे छे. १—प्राचीन गद्य ग्रंथोनी भाषा, अने, २—टीकाकारो अने कविओनी भाषा. जे भाषामा प्राचीन गद्य ग्रंथो लखाया छे ते भाषा घणे अंशे टीकाकारो अने कविओनी भाषाथी भिन्न छे. टीकाकारो अने कविओनी भाषा महाराष्ट्री छे, अने ते प्राकृत व्याकरणना पहेला पादमा जे नियमो आपेला छे तेने सर्वथा अनुसरनारी छे. परंतु साथे ए पण जाणवुं जरूरनुं छे के हेमचंद्रनी महाराष्ट्री ते 'हाल,' 'सेतुबन्ध,' अने नाटकोनी महाराष्ट्री भाषा साथे एकभाव धारण करती नथी. आ बन्ने वच्चे बे मोटा स्पष्ट भेदो छे. एक तो—आद्यरूपे अथवा द्वित्वरूपे दन्त्य 'न' नो उपयोग थाय छे ते, अने बीजो 'यश्रुति' नो व्यवहार छे. आ भाषा के जेने उचितरीते जैन महाराष्ट्री कही शकाय तेनुं हेमचंद्रे संपूर्ण लक्षण आप्युं छे, आ लक्षण कालिकाचार्य कथा जेवा एक अर्वाचीन निबंधमां पण पूर्णरीते प्रयुक्त थएलुं कोई पण वाचक स्पष्ट जोई शके छे. प्राचीन सूत्रोनी भाषा जेने हुं जैन प्राकृत कहुं छुं ते जैन महाराष्ट्रीथी केटलीक बाबतोमां जूदी पडे छे. जेम के, ज्यारे जैन महाराष्ट्री भाषाना पुंल्लिंगना प्रथमा तथा सप्तमीना एकवचनना रूपोने अंते 'ओ' अने 'म्मि' अनुक्रमे आवे छे, त्यारे जैन प्राकृतमा तेना स्थाने अनुक्रमे 'ए' अने 'ंसि' आवे छे. उदाहरण तरीके, जै० म०—'सक्को,' जै० प्रा०—'सक्के,' सं०—शक्रः, जै० म०—'वरंमि,' 'मोलिंमि,' 'साहुंमि' जै० प्रा०—'वरंसि,' 'कुच्छिंसि,' साहुंसि. अव्यय भूतकृदन्तने अंते जैन महाराष्ट्रीमां साधारण रीते 'ऊणं,' 'ऊण,' अथवा 'उं' आवे छे. परंतु तेनाथी प्राचीन एटले जैन प्राकृत भाषामां तेने अंते 'इत्ता' अगर 'इत्ता णं' आवे छे. दाखला तरीके जै० म०—'काऊणं,' 'नाऊणं,' 'गंतूणं,' 'काऊण,' 'काउं' इत्यादि; जै० प्रा०—'करित्ता,'—'जानित्ता,'—'गच्छित्ता,' अथवा, 'करित्ता णं' इत्यादि. जैन—प्राकृतमां अद्यतनभूत रह्यो छे, परंतु जैन महाराष्ट्रीमां तेने बदले सामान्यरीते भूत कृदंत आवे छे. आवा साधारण भेदो उपरांत, जैन प्राकृतमां घणा आर्ष शब्दो, रूपो तथा वाक्यांशो पण मळी आवे छे, जे जैन महाराष्ट्रीमांथी बहिष्कृत थया छे.

जैन महाराष्ट्रीना स्वरूपना संबंधमां तो कोई पण शंकाने स्थान ज नथी. कारण के हेमचंद्रे तेना संबंधमां स्पष्टरीते वर्णन आप्युं छे. ए भाषा एकंदररीते 'हाल' नीज महाराष्ट्री भाषा छे. एम छतां बन्ने वच्चे जे भेदो दृष्टिगोचर थाय छे ते तेनी उत्पत्तिस्थानना भेदने लईने छे. मारा मानवा प्रमाणे जैन महाराष्ट्री सुराष्ट्रनी भाषा साथे घणोज निकट संबंध धरावनारी छे. केम के परंपरागत हकिकतने

१ आ आश्चर्यकारक कथा मूळ रूपे हुं थोडाज समयमां प्रकट करवा इच्छुं छुं. कारण के, तेनी अंदर केटलीक साची अने ऐतिहासिक परंपराना मुद्दाओ रहेला छे.

आधारे जैन शास्त्रोनुं संस्करण, उपर जणाव्या प्रमाणे वलभीपुरमां थयुं हतुं. आ कारणने लईने तेने जैन सौराष्ट्री नाम आपवुं वधारे युक्त गणी शकाय खरूं; परंतु, साधारणरीते महाराष्ट्रीने नामे ओळखाती प्राकृतभाषाना सामान्य स्वरूपनी साथे ते घणे अंशे मळती होवाथी अने हेमचंद्रे तेने तेवुंज नाम आपी दीधेलुं होवाथी; * नवुं नाम आपवानी हुं हिंमत करी शकतो नथी.

वळी जैन प्राकृतनुं स्वरूप पण शोधी काढवुं कठण नथी. ते एकंदररीते जैन माहाराष्ट्रीनी सरखीज भाषा होवाथी अने भेद मात्र आर्षरूपोनी दृष्टिए ज उत्पन्न थएलो होवाथी, आपणे तेने योग्य रीते प्राचीन महाराष्ट्री अथवा आर्ष महाराष्ट्री कही शकीए छीए. हेमचंद्र तेने ' आर्षम् ' एटले ऋषिओनी भाषा कहे छे. अने जैन महाराष्ट्रीनी अंदरज तेनुं वर्णन करे छे. तेना विशिष्ट रूपोने तेओ सामान्य नियमोना अपवाद रूपे माने छे. अने जणावे छे के, प्रायः सामान्य प्राकृतना नियमो ऋषिओनी भाषाने विकल्पे लागू पडे छे. आ रीते, तेओ पोतानुं मन्तव्य प्रकट करी सूचवे छे के जैन प्राकृतनुं सादृश्य बीजी कोई पण प्राकृत भाषा करतां महाराष्ट्री साथे वधारे छे. तेमनुं आ कथन घणुं प्रमाणभूत छे, कारण के एक तो तेओ प्राकृत भाषाना पूर्ण ज्ञाता छे, अने बीजुं, संपूर्ण लोकमान्यताथी प्रतिकूल एवो पोतानो अभिप्राय तेमणे आपेलो छे. जैन प्राकृतमां हेमचंद्रे जे मागधीत्व जोयुं ते मात्र अकारान्त पुँल्लिंग शब्दना प्रथमाना एक वचनी रूपना अंते आवता ' ए ' प्रत्यय रूपज छे, अने हुं पण ते सिवाय बीजो कोई तफावत जोई शक्यो नथी. * जे जे बाबतोमां शौरसेनी अने मागधी सामान्य प्राकृतथी जुदी पडेछे ते बधी बाबतोमां जैन प्राकृत, उपर बतावेला बे अपवादो अने अन्य बे अपवादो बाद करतां साधारण प्राकृतने सर्वांशे मळती आवे छे. हेमचंद्र (४, २६४, २६५; अने ४, २७८) शौरसेनी (—अने मागधी) मां 'भगवान्' अने 'भगवन्' तेमज ' मघवान् ' अन ' मघवन् ' रूपी प्रथमा अने संबोधनना एकवचनना रूपोने बदले अनुक्रमे 'भयवं' अने ' मघवं ' तथा 'तस्मात्' ने बदले ' ता ' नुं विधान करे छे. आ रूपो जैन प्राकृतमा पण आवे छे. महाराष्ट्री सिवायनी अन्य प्राकृत भाषानी साथे जैन प्राकृतनी समानताना आ दाखलाओ, सामान्य भाषा साथेनी तेना सामानताना दाखलाओना मु-

* हेमचंद्रना व्याकरणमां फक्त प्राकृत एवुं सामान्य नामज मळे छे, महाराष्ट्री एवुं विशेष नाम मळतुं नथी. डॉ. जेकोबीनुं आ कथन के, हेमचंद्रे जैनग्रंथोनी प्राकृतने महाराष्ट्री एवुं नाम आप्युं छे, ते अमारा समजवामां बराबर आवतुं नथी.—संपादक.

* प्रो॰ वेबरनुं निश्चयपूर्वक एम कहेवुं छे के, र्थ, र्ज, अने ड्य ने बदले य्य, अने क्ष ने बदले क्क नो फेरफार सिद्ध करे छे के जैन-प्राकृत ते मागधी छे. वेबर '—' अने '—' रूपी स्वरूप दर्शक चिन्होने (वर्णोने) य्य अने क्क सूचक बतावे छे. परंतु ते (चिन्हो) वास्तवमां ज्ज अने क्ख बोधक छे. आ चिन्हो जैन महाराष्ट्री तेमज जैन प्राकृत ए बन्ने भाषामां वपराय छे. अने जैन महाराष्ट्रीमां तो तेने निर्णीतरूपेज ज्ज अने क्ख सूचक गणवामां आवे छे. तेथी जैन प्राकृतमां पण ते तेज अक्षर सूचक होवा जोईए. जो एम न गणाता होत अने हेमचंद्रे तेने जैन प्राकृतमां भिन्न अक्षर सूचक वांच्या होत तो जरूर तेमणे तेने २, ८९ अने ९० सूत्रोना अपवादरूपे जणाव्या होत. आ उपरांत ज्यारे हेमचंद्र शौरसेनीमां (४, २६६ सूत्रमां) र्थ ने बदले य, अने मागधीमां ज् द्य अने य् ने माटे य नो (४, २९२), तेमज स्वरनी मध्यमां आवेला क्ष ने माटे ' × क ' नो (४, २९६) आदेश करे छे, त्यारे जो तेमणे वेबरनी माफक उक्त अक्षरो वांच्या होत तो ते सूत्रोमां जरूर एम जणाव्युं होत के आर्ष भाषामां पण एमज थाय छे. लिपिशास्त्रनी दृष्टिए रक (के जेना प्राचीन रूपो '—' अने '—' छे) अने '—' ए संज्ञाओनी समजुती माटे डॉ. बुल्हर ना कहेवा प्रमाणे याद राखवुं जोईए के अक्षरो जोडवामां जैनो साधारण रीते बीजा अक्षरने पहेला अक्षरनी पछी नहीं पण तेनी नीचे मूके छे. पहेली त्रण संज्ञाओ ते क्ख नो उत्तरोत्तर थएलां सादां रूपो छे. अने बीजी संज्ञा '—' मां ज नुं पुरातन रूप अर्थात् ꣸ दृष्टि खेंचे छे. आ नियमानुसार कल्पसूत्रना मूळमां आवेला पूर्वोक्त जोडाक्षरोने में kkh अने jj थी दर्शाव्या छे.

काबले घणा थोडा अने अनुपयोगी लागे छे. तेटला माटे हुं जैन प्राकृतने महाराष्ट्री भाषा तरीके जाहेर करतां बिलकुल संकोच पामतो नथी. प्रो. लेसने पण पोताना Institutiones linguae Pracriticae नामना पुस्तकना पृ. ४२ मां पण तेमज जाहेर कर्युं छे. जे जे बाबतोमां जैन प्राकृत महाराष्ट्रीथी जुदी पडे छे, ते ते बाबतोमां तेणे साधारणतः प्राचीनरूपो कायम राख्यां छे. ए भाषाना आनाथी पण वधारे प्राचीन रूपनी निशानी पृ. ५ उपर सूचवेला शब्दोमां जोवामां आवे छे. आ निशानी ते, परस्पर न जोडाय तेवा बे व्यञ्जनोनी वच्चे लिखित भाषामां, जेम नित्यरूपे स्वरनो अंतर्भाव थाय छे, तेम न थतां विकल्परूपे थाय छे, ते छे. आवी जातनी—विकल्पे स्वर उमेरवानी—छूट जे प्राचीन सूत्रोमां आवता प्राकृत पद्योनी मात्रागणनामां लेवी जरूरनी छे, अने जे वैदिक कविओनी पद्धति साथे पण केटलीक साम्यता धरावती जोवाय छे, तेनो, पाछळना प्राकृत कविओ बिलकुल स्वीकार करता नथी. तेमनी कृतिओमां तो प्रत्येक स्वरनो उच्चार एक स्वतंत्र वर्णनी माफक नित्यरूपे थवोज जोइए. 'सेतुबन्ध' 'सप्तशती' अने त्यार पछीना प्राकृत स्तोत्रो आदि ग्रंथोनी पद्धतिमां, अने तेनाथी प्राचीन एवा पद्यबंध सूत्रोनी पद्धतिमां जे भेद जोवामां आवे छे, तेनुं कारण मात्र भाषामां थएलुं परिवर्तनज छे. अने आवुं परिवर्तन वैदिक अने साहित्यिक संस्कृत भाषामां पण प्रत्यक्ष थएलुं जोवाय छे[1]. अहिं सुधी आपणे जैनोना पवित्र ग्रंथोनी भाषानो क्रमिक विकास आलेख्यो छे. पण तेनी केटलीक अनियमितताओ वळी जुदाज प्रकारनी छे; अने ते स्पष्टरीते एम दर्शावती होय तेम लागे छे के लिखित सूत्रोनी भाषा करतां असल भाषा जुदीज हती.

उपर जेम में जणाव्युं छे तेम महावीर अने तेमना गणधरोनी मूळ भाषा मागधीज हती, अने तेनी पुँलिंगनी प्रथमानो 'ए' प्रत्यय जे कायम रह्यो छे ते आ कथननुं प्रमाण स्वरूप छे. संक्षेपमां एटलुंज कहेवानुं छे के जैनग्रंथोनी छेल्ली पुनर्रचना थई ते पहेलां तेनी भाषानुं स्वरूप नक्की थयुं न हतुं. मूळमां, जनसमुदायनी आ व्यवहारू भाषामां गुंथाएला धर्मशास्त्रोनुं ज्ञान जे पुरुषो मुखपाठथी बीजाओने आपता जता हता, तेओ ते भाषाने पोताना देश अने काळनी प्रचलित भाषा साथे बंध बेसती करता रहेता हता. आपणा ख्रीस्ती सननी आरंभनी सदिओमां हिंदुस्थानना देशी भाषाओमां महाराष्ट्रनी वाक्-पद्धतिए जे अग्रस्थान संप्राप्त करेलुं जणाय छे तेथी, अने वैयाकरणोए सर्वप्राकृत भाषाओनी आधारभूत तरीके तेनी जे गणना करेली देखाय छे तेथी, तथा तेनुं साहित्य—के जेना केटलाक प्रतिष्ठित नमुना आजे पण विद्यमान छे—विशाळ होवाथी, जैनो तेना प्रभावने वश थया होय अने पोताना ग्रंथोने पुस्तकारूढ करती वखते ते भाषानी अनुसार पोताना पुस्तकोनी भाषानी व्यवस्था करी होय, तो तेमां आश्चर्य पामवा जेवुं नथी. लिखित पुस्तकोनी भाषामां आवुं भाषा-परिवर्तन साहित्यना इतिहासमां बीजे कोई स्थळे जोवामां नथी आवतुं एम नथी. में पाछळना एक पाना उपर, उतारा करनाराओना हाथे मध्यकालीन जर्मन ग्रंथोनी भाषामां आवुं भाषा-परिवर्तन थयुं हतुं, एम सूचव्युंज छे. जैन ग्रंथोना संपादकने सर्वलक्षणोपेत महाराष्ट्री भाषानो सर्वथा स्वीकार करवो गम्यो नहीं हशे अने तेथी तेमणे चिरकालीन पूर्वपरंपराथी चालतां आवेलां अने तेथीज पवित्र मनाएलां एवां घणां आर्ष रूपोने कायम राख्यां हशे. कारण के

१ वेदोमां खास करीने 'य' अने 'व' नी पहेलां विकल्पे स्वर उमेरवानी जे पद्धति हती ते पाछळना संस्कृत साहित्यमां सर्वथा बहिष्कृत करवामां आवी छे. परंतु जैन प्राकृतमां आनाथी उलटुं, एटले, पूर्वे विकल्पे स्वरनो अंतर्भाव करवानी जे पद्धति हती, ते अर्वाचीन प्राकृतमां, ज्यां आगळ व्यञ्जन समुदाय संयुक्त भाव न पामतो होय त्यां, ते एक नियमरूपे थई गई छे.

आर्ष भाषा हमेशां गंभीर प्रकारनी लेखनशैली माटे खास रीते योग्य मनाती आवी छे.

जैन महाराष्ट्री ज्यारथी पवित्र भाषा तरीके नक्की थई, त्यारथी ते घणा वखत सुधी जैनोनी साहित्यिक भाषा तरीके चालू रही हती. परंतु पाछळथी तेनुं स्थान संस्कृते लीधुं हतुं. पूर्वेनी सघळी प्राचीन टीकाओ एटले चूर्णिओ अने वृत्तिओ, तथा बीजा पण घणा स्वतंत्र ग्रंथो प्राकृत भाषामां लखाया हता. ई० स० १००० अने ११०० नी मध्यमां जैनोए संस्कृतने पोतानी साहित्यिक भाषा तरीके अंगीकार करी हती. परंतु आ फेरफार कांई आकस्मिक के संपूर्ण रूपे न होतो थयो. कारण के, आ समय पहेलांनां पण भक्तामरस्तोत्र, कल्याणमंदिरस्तोत्र, शोभनस्तुतयः जेवां जैनग्रंथकारोनां संस्कृत काव्यो, मोजुद छे. अने तेमज जिनप्रभमुनिनुं (—संवत् १३६४) पर्युषणाकल्पनिर्युक्तिव्याख्यान, अने बीजां घणां प्राकृतस्तोत्रो आदि जेवा, बारमी सदीनी पछी पण रचाएला प्राकृत ग्रंथो विद्यमान छे.

आ चालु विषय छोडतां पहेलां हुं जैनग्रंथोनी शुद्धलेखन विद्या तरफ वाचकोनुं ध्यान खेंचुं छु. जो के, प्रायः सर्व हस्तलिखित प्रतिओ एकज ढंगनी जोवामां आवे छे, तथापि निचेनी बाबतोमां ते परस्पर विरुद्ध पडती देखाय छेः—

१) केटलीक प्रतिओमां 'य'–श्रुति 'अ' अने 'आ' नी पछीज वपराई छे; त्यारे केटलीक प्रतिओमां 'इ' अने 'ई' 'उ' अने 'ऊ' तथा 'ए' अने 'ओ' नी पछी पण जोवामां आवे छे. हेमचंद्र पोताना व्याकरणना १, १८० मां सूत्रमां विधान करे छे के 'य' श्रुति 'अ' अने 'आ' नी पछी आवे छे. पण टीकामां कहे छे के केटलेक प्रसंगे ते अन्य स्थळे पण जोवामां आवे छे. तेमनो ए नियम अंशतः अमारी हस्तलिखित प्रतिओथी सिद्ध थाय छे. कारण के 'य' अने 'या' दरेक स्थळे 'अ' ने 'आ' नी पछीज आवे छे. परंतु घणीक प्रतिओमां 'य' अने 'या' सघळा स्वरो पाछळ पण लखेला देखाय छे. आ बन्ने जातनी जोडणी (वर्णरचना) घणी जुनी तेमज घणी सारी प्रतिओमां नजरे पडे छे. तेथी आ बेमांथी कयी वधारे शुद्ध छे तेनो निर्णय करवो अशक्य छ. व्युत्पत्तिशास्त्रनी दृष्टिए 'य' श्रुति बधा स्वरो पाछळ आवे त वधारे स्वरूप–संगत छे. कारण के 'य' श्रुति ते मात्र लुप्त व्यञ्जननो अवशेष छे[1]. में कल्पसूत्रनी मारी आ आवृत्तिमां एज पद्धति स्वीकारी छे.

२) केटलीक प्रतिओमां संयुक्त-व्यञ्जनो पहेलांना ए अने ओ अनुक्रमे इ अने उ ना रूपमां परिवर्तित थएला जोवाय छे. आनुं कारण ए छे के देवनागरी लिपिमां ए अने ओ ना ह्रस्वस्वरूपनी सूचक संज्ञाओनो अभाव छे. अने तेने लईने नीचे प्रमाणेनो गुंचवाडो उभो थयोछे. जो ए तथा ओ लखवामां आवे तो वर्ण-परिमाणनी उपेक्षा थाय छे. कारण के संयुक्त व्यञ्जननी पूर्वेनो स्वर ह्रस्व थवो जोईए, अने ए अने ओ तो दीर्घसंज्ञक स्वरो छे. जो आथी उलटी रीते लखवामां आवे अर्थात् इ तथा उ मूकवामां आवे तो ए अने ओ वर्णना स्वरूपनुं वास्तविक दर्शन न थई शके. आ कारणथी ज्यां एवा वर्णोना संस्कृत प्रतिरूपो संधिस्वरात्मक होय त्यां में ए अने ओ ज लख्या छे.

३) केटलीक प्रतिओमां न्न अने केटलीक प्रतिओमां ण्ण आवे छे. (जुओ, हेम० १,२२८). में आवा दरेक प्रसंगे उत्तम प्रतिओना आधिक्य तरफ लक्ष्य राखी सामान्य रीति ते प्रमाणे वर्णप्रयोग स्वीकार्यो छे.

४) केटलीक वखते, केटलीक प्रतिओना प्रारं-

१ पश्चिम हिंदुस्थानना गुफाओमांना प्राकृत शिलालेखोमां इ ना पूर्वेना ज नो आदेश य थएलो छे उ. त. पवयितिका अने पवईतिका=प्रव्राजितिका.

भमां ण लखेलो जोवामां आवे छे. सरखावो, हेमचंद्र १,२२९.

५) बे स्वरोनी वच्चे आवता व्यञ्जनने कायम राखवो अथवा तेना बदले बीजानो आदेश करवो, अगर तो, तेनो लोप करवो, ते बाबत ग्रंथोनी नकल करनाराओनी—लहियाओनी पसंदगी उपर आधार राखती होय तेम लागे छे.

६) कल्पसूत्रनी एक प्रतिमां (इंडिआ ऑफिस लाईब्रेरी १५९९) व्व ने बदले ब्ब अने केवल अथवा संयुक्त शब्दोनी आदिना व ने माटे ब लखेलो छे. उदाहरण तरीके—विवद्धन ने बदले बिबद्धन, महाबीर, इत्यादि. आ विशेषतानुं कारण एम लागे छे के ते प्रति पूर्व हिन्दुस्थानमां लखाई हशे.

७) उ अने उ (ओ) नो घणी वार परस्पर विनिमय (अदलाबदलो) थाय छे. परंतु तेना ध्वनि साथे कोई संबंध नथी. कारण के ज्यारे उ अथवा उ नी पहेलां व्यञ्जन आवेलो होय छे त्यारे नं०२ मां कहेली बाबत बाद करता क्यारे पण परस्पर आ विनिमय थतो नथी. A अने B नामनी कल्पसूत्रनी प्रतिओमां आ संज्ञाओना संबंधमां भाग्येज भूल थएली जोवामां आवे छे.

उपर वर्णवेला वर्ण विन्यास-विषयक भेदो व्याकरणशास्त्रनी भिन्न भिन्न शाखाओने अंगे उभा थएला छे. मारी आवृत्तिना मूळनी नीचे, में तमाम विविध पाठान्तरो संभाळ-पूर्वक नोंध्यां छे. मात्र छठ्ठा अने सातमा नंबरमां जणावेली हकिकतने अंगे उपस्थित थएलां पाठान्तरो लख्यां नथी. छतां पण सौथी प्राचीन अने प्रामाणिक जोडणी कई हशे तेने निर्णीत करी शक्यो नथी. कागळनी घणीक हस्तलिखित प्रतिओ तपासतां मने एवी प्रतीति थई छे के तेना उपरथी जैन प्राकृत भाषाना विशुद्ध वर्ण-विन्यासनो पत्तो मेळवी शकाय तेम नथी. परंतु ताडपत्रनी प्राचीनतम प्रतिओने बारीकाईथी तपासतां वधारे संतोषकारक परिणाम मेळवी शकाय तेम छे. हुं एम धारुं छुं के प्रायः कोई पण वखते सघळा जैनलेखकोए एक चोक्कस वर्ण-विन्यास-पद्धतिनुं अवलंबन कर्युं होय तेम लागतुं नथी. कारण के गुफाओना शिलालेखोनी प्राकृतनी साथे बीजी प्राकृत भाषाओमां तेमज आधुनिक भारतवर्षनी प्रचलित देश भाषाओमां पण एकज शब्दनी वारंवार भिन्न भिन्न रीतिए जोडणी कराएली जोवामां आवे छे.

आ विषय पूर्ण करतां पहेलां मारे जणाववुं जोईए के, में जैन-प्राकृतना वर्णविन्यासना संबंधमां एक-संगति स्थापवानो उद्देश राख्यो नथी. पण एक जैनग्रंथना प्रथम आ प्रकाशनना समये वस्तुस्थितिनो केटलोक ख्याल आपवो मने योग्य लाग्यो छे. जो के मने आखा ग्रंथमां एकज प्रकारनी जोडणी स्वीकारवी सरळ पडत खरी—जेमके नित्य ण या न्न ज लखवो. परंतु भारतवासिओना हृदयमां जाणे मजबूत रीते जामी गई होय तेवी अनियमिततानी अंतःप्रेरणाने आघातन पहोंचाडवा माटे में अन्य प्रतिओथी समर्थित एवी A नामनी सौथी प्राचीन प्रतिनी जोडणी साधारण रीते कबुल राखी छे. अने तेथी एक शब्दनी सदा एकज रीते जोडणी करवामां आवी नथी.

जैन धर्म अने साहित्यने लगता सामान्य प्रश्नोना संबंधमां हुं जेटली हकिकत एकठी करी शक्यो छुं, ते आपी दईने, हवे खास कल्पसूत्रना संबंधमां केटलुंक विवेचन करीश. आ ग्रंथनी, जैनोना पवित्र पुस्तको तरीके गणाता आगमोमां तो खास गणना थती नथी. अने दिगम्बरो तो एने बनावटी ग्रंथ सुद्धां कहेतां अचकाता नथी. तेमने आम कहेवानुं कारण ए छे के, एनी अंदर दिगम्बर-मान्यता विरुद्ध, महावीर त्रिशलानी कुक्षिमां आव्या तेनी पहेलां देवानंदानी कुक्षिमां आव्या हता, आवुं वर्णन आवेलुं छे. परंतु आ वर्णन आचारांगसूत्र तथा आवश्यकसूत्रमां पण आवतुं होवाथी, ए पुरातन होय

एम लागे छे. अने तेथी दिगम्बरोनो उपरोक्त आक्षेप निरर्थक निवडे छे. श्वेतांबर संप्रदायमां कल्पसूत्र एक प्रतिष्ठित ग्रंथ मनाय छे. अने प्रतिवर्ष वर्षावास एटले पज्जुसणमां ते जाहेर रीते (सभामां) वंचाय छे.

आ कल्पसूत्र ते भद्रबाहु स्वामीनी कृति मनाय छे. आ ग्रंथनी वस्तु तेमणे प्रत्याख्यानप्रवाद नामना नवमा पूर्वमांथी लीधी छे, एवुं किरणावली नामनी टीकाना निम्नलिखित अवतरण उपरथी मालुम पडे छे.

'प्रणेता तावत् सर्वाक्षरसन्निपात विचक्षणश्रुतुर्दशपूर्वविद् युगप्रधानः श्रीभद्रबाहुस्वामी दशाश्रुतस्कन्धस्याष्टमाध्ययनरूपतया प्रत्याख्यानप्रवादाभिधाननवमपूर्वात् कल्पसूत्रमिदं सूत्रितवान्.'

अर्थात्—आना कर्ता ते, सर्वशास्त्रपरगामी, चतुर्दशपूर्वना वेत्ता अने युगप्रधान एवा भद्रबाहु स्वामी छे. तेमणे प्रत्याख्यान प्रवाद नामना नवमा पूर्वमांथी दशाश्रुतस्कंधना आठमा अध्ययन रूपे आ कल्पसूत्र रच्युं छे.

किरणावली टीकाकारनुं उपरोक्त कथन,—के जेनुं पुनरावर्तन बीजा टीकाकारोए पण पोतानी टीकाओमां कर्युं छे,—के कल्पसूत्र ते पर्युषणाकल्प छे, अने ते दशाश्रुतस्कन्धनुं आठमुं अध्ययन छे; ते भूलभरेलुं छे. आ भूल कल्पसूत्रना अंतिम शब्दोना आशयने बराबर न समजवाथी थई छे. ए शब्दोनो जो बराबर अर्थ करीए तो तेनाथी एटलुंज सिद्ध थाय छे के कल्पसूत्र ए नाम, ए ग्रंथना छेवटना प्रकरणने अर्थात् सामाचारी, के जेनी अंदर यतिओना आचारोना नियमो आपवामां आव्या छे, तेनेज लागु पडे छे. कारण के तेनी अंतमां एवुं कथन छे के 'महावीरे' आ प्रमाणे पर्युषणाकल्प नामना आठमा अध्ययननुं आख्यान कर्युं, भाषण कर्युं, प्रज्ञापन कर्युं, अने वारंवार उपदेश आप्यो.' आ शब्दो मात्र सामाचारीने ज लागु पडी शके; कारण के जिनचरित्र अने स्थविरावली महावीरे पोते कही होय एम मानी शकाय नहीं. जिनचरित्रमां महावीरना निर्वाण पछीनी बनेली बीनाओ लखेली छे अने स्थविरावलीमां तेमनी पछीनो जैनधर्मनो इतिहास आपेलो छे. आ भागोनो पर्युषणा या वर्षावास साथे कांई जातनो संबंध नथी. तेथी ते पर्युषणाकल्पनुं नाम धराववाना बिलकुल अधिकारी नथी. अने तदनुसार, वास्तविकरीते दशाश्रुतस्कंधना आठमा अध्ययनना भाग तरीके पण तेने मानी शकाय नहीं. आ अनुमान उपरथी स्वाभाविकरीतेज एवो अर्थ फलित थाय छे के पर्युषणाकल्प ए नाम वास्तविकरीते सामाचारीनुं ज छे, अने तेम होवाथी दशाश्रुतस्कन्धनुं आठमुं अध्ययन पण तेटलाज भागने कही शकाय. तेटला माटे, तेटला भागनेज भद्रबाहुस्वामीनी कृति तरीके मानवो जोईए. एटलुं तो स्वयंसिद्ध छे के भद्रबाहुस्वामीनी पछीनी पण घणी पेढिओनी नामावली आपती स्थविरावली भद्रबाहुनी रचेली न होई शके. तेमज ते एक कर्तानी पण कृति नथी. स्थविरावलीनी संक्षिप्त वाचना अने विस्तर वाचना अर्थात् स्थविरोनी टुंकी अने विस्तृत नामावली, असलमां, बन्ने एकमेकथी स्वतंत्र होवी जोईए. कारण के, ते बन्नेनी भाषाशैली अने वर्ण्यवस्तुमां परस्पर भिन्नताओ रहेली छे. आ स्थविरावलिओ, जेनी अंदर असलमां छेल्ला दशकेवली (दशपूर्वी ?) वज्र अने तेमना अन्तेवासिओनां ज नाम हशे, तेनी अंत केटलीक गाथाओ उमेरवामां आवी छे; अने तेनी अंदर फल्गुमित्रथी मांडीने देवर्धिगणी सुधीना स्थविरोनां नामो आवेलां छे. कल्पसूत्रनी केटलीक प्रतिओमां आ गाथाओनुं गद्यरूपान्तर, तेनी पहेलां दाखल करवामां आवेलुं छे. ए तो देखीती रीतेज अर्वाचीन उमेरो छे. कारण के घणी प्रतिओमां ए गद्यरूपान्तरने पडतुं मूकवामां आव्युं छे. तेमज सौथी प्राचीन टीकाकारे आ फेरफारनो उल्लेख पण करेलो छे. आ उपरांत, आ ग्रंथनी

अगिआरमी ग्रंथशती (ग्रंथ १०००—११००); प्रमाण करतां प्रत्यक्षरीते वधारे ग्रंथसंख्यावाळी थएली छे. तेथी जो ए प्रस्तुत प्रकरणने बातल करवामां आवे तो तेनी संख्या पण बराबर प्रमाणसर थई रहे छे. वळी स्थविरावलीना प्रथमना बे सूत्रो बीजां बधां सूत्रोथी रचनामां जुदां पडे छे; अने तेथी मारा धारवा प्रमाणे, शायद एक वखते तेनो अंतर्भाव जिनचरित्रमां थतो हशे. आ रीते आपण स्थविरावलीमां भिन्न भिन्न प्रकारना चार पांच प्रकरणो जोई शकीए छीए. डॉ. स्टीवन्सन जे एवुं अनुमान करे छे के असलनुं जिनचरित्र ते महावीर चरित्र जेटलुं ज हशे (कल्पसूत्र पृ० ९९), तेने हुं खोटुं मानतो नथी. परंतु साथे मारूं ए पण विशेष मानवुं छे के डॉ. स्टीवन्सने जे उमेरा दर्शाव्या छे ते उपरात बीजा पण केटलाक उमेरा तेमां थया छे; अने तेने लईने आ भाग आटलो विस्तृत थएलो छे. आ कथनना प्रमाण तरीके मात्र हुं चौद स्वप्नोना वर्णननो निर्देश करुं छुं. आ वर्णन समग्र पुस्तकनी आर्ष-भाषाशैलीथी तद्दन भिन्न पडे छे. कारण के, एमा जे घणा लांबा लांबा अने गुंचवाडा भरेला समासो दृष्टिगोचर थाय छे, ते खास, मुकाबलामां अर्वाचीन एवा भारतवर्षीय काव्य-साहित्यमां आवता समासोना आकारना छे. कहेवानी भाग्येज जरूर छे के, एमा वीरनिर्वाणना ९८० अने ९९३ वर्ष संबंधी जे अवतरणो आपेला छे, ते कर्त्ताना निर्देशक नथी परंतु कल्पसूत्रना संपादक देवर्धिगणीने उद्देशीने लखाएला छे. जे आर्ष-भाषा-शैलीमां आ जिनचरित्रनी रचना थएली छे तेज भाषा-शैली गद्यरचनावाळा प्राचीन सूत्रोमां पण जोवाय छे. तेथी आना कर्ता भद्रबाहु न होई शके एम कही शकाय तेम नथी. परंतु, आ प्रश्नने प्रत्यक्ष प्रमाणना अभावे अनिर्णयात्मक स्थितिमांज रहेवा देवो ठीक लागे छे.

जैन विद्वानो कल्पसूत्रमां चर्चाएला विषयोना वैषम्य (न्यूनाधिक्य) थी सर्वथा विज्ञात छे, एम तो स्पष्ट देखाई आवे छे. परंतु, तेओ आनुं कारण ए बतावे छे के पर्युषणा-सामाचारीनी पहेलां जे आ बे भागो मूकवामां आवेला छे ते 'मंगलार्थम्' एटले मंगलमाटेज मूकवामां आवेला छे. आ बाबत पर्युषणाकल्पनिर्युक्तिमां नीचे प्रमाणे जणावी छेः—

पुरिम-चरिमाण कप्पो
उ मंगलं वद्धमाण-तित्थंमि ।
तो परिकहिया जिनपरि-
कहा य थेरावली चेत्थ [मु] ॥

भावार्थ—पहेला अने छेल्ला जिनोनो कल्प वर्धमानना तीर्थमां मंगळभूत छे. अने तेटला माटे जिनचरित्रो, अने स्थविरावली अहिं कहेवामां आवी छे.

पछीना टीकाकारोए आ गाथाना उत्तरार्धने बदली तेने 'अधिकारत्रयम्' नी पद्यबद्ध विषयसूचिना आकारमां फेरवी नाखी छेः—

पुरिम-चरिमाण कप्पो
मंगलं वद्धमाण-तित्थंमि ।
तो परिकहिया जिनगण-
हराइ-थेरावलि-चरित्तं ॥

भावार्थ—वर्धमानना तीर्थमां पहेला अने छेला जिनोनो कल्प मंगल-स्वरूप छे, तेटला माटे जिन (चरित्र) गणधरादि स्थविरावली अने चरित्र अर्थात् पर्युषणा-सामाचारी कहेवामा आवी छे.

परंपरागत कथानुसार जैनागमोना नवीन संस्करण वखते देवर्धिगणीए जिनचरित्र, स्थविरावली अने सामाचारी ए त्रणे भागोने कल्पसूत्र एवा नाम नीचे एकज पुस्तकमा पुस्तकारूढ कर्या होय तेम जणाय छे,—जो के तेनो आगमोमां अंतर्भाव थतो नथी. आ परंपरागत कथानी सत्यताना पक्षमां बे दलीलो छे. पहेली ए के, आ बीनानी तारीख कल्पसूत्रमां आपेली छे. अने बीजी ए के, आखुं कल्पसूत्र सो सो ग्रंथोनी (३२ अक्षरनो एक ग्रंथ) प्रमाणवाळी ग्रंथ-शतिओमां वहेंची

नांख्युं छे. घणुं करीने मूळ ग्रंथने पछीना उमेराओथी बचाववा माटेज संपादकने आ व्यवस्था स्वीकारवानी आवश्यकता लागी हशे. आ ग्रंथशतिओनी निशानी मूळग्रंथमां ग्रं० १००, ग्रं० २०० इत्यादि रूपमां मूकेली छे. आ निशानिओ सघळी हस्तलिखित प्रतिओमां समान जग्याएज मूकेली जोवामां आवे छे. कल्पसूत्रमां आवा १२१६ ग्रंथो होवानुं कहेवाय छे. उदाहरण तरीके A प्रतिना पुष्पिकालेखमां आपेलो नीचेनो श्लोक लई शकाय:—

एकः सहस्रो (?) द्विशतीसमेतः
श्लिष्टस्ततः षोडशभिर्विदन्तु ।
कल्पस्य संख्या कथिता विशिष्टा
विशारदैः पर्युषणाभिधस्य ॥

आ संख्याने लीधे वर्तमानमा सामान्यरीते आ पुस्तक 'बारसें सूत्र' तरीके पण ओळखाय छे.

आ आवृत्तिमां मारी गणत्री मुजब व्यवस्थित संख्या उपरात एकसोथी वधारे ग्रंथो (श्लोको) अधिक छे, अने केटलीक ग्रंथशतीनुं प्रमाण १०० थी ११५ जेटला ग्रंथोनुं जोवामां आवे छे. आ रीते न्यूनाधिक ग्रंथप्रमाणवाळी अव्यवस्था जोईने, केटलाक संदेहजनक प्रकरणो काढी नांखी, आ सूत्रने मूळ स्वरूपमां—असलनी ग्रंथसंख्यामां—लावी मूकवानुं मारूं मन थई आवे छे. परंतु, आ सूत्रनी शिथिल रचना, अने एमां वारंवार आवती पुनरुक्तिओ, के जे सूत्रशैलीनुं एक खास लक्षण ज छे, तेने लईने आमांना कया भागो अमूलक छे, ते शोधी काढवानुं काम कठण होवाथी, हुं तेम करतां मारा मनने रोकी राखुं छुं.

एवुं कहेवाय छे के, पहेलाना वखतमां आखुं कल्पसूत्र पज्जुसणनी प्रथम रात्रिए* वाचवामां आवतुं हतुं, परंतु, ज्यारथी ते आनन्दपुरना राजा ध्रुवसेनने, पोताना सेनांगज नामना प्रियपुत्रना मरणजनित शोकथी मुक्त करवा अर्थे, तेने सभामां वांचवामा आव्युं† त्यारथी ते सूत्र नव वाचनाओ अथवा व्याख्यानो द्वारा सार्थ समजाववामां आवे छे. आ नव वाचनाओ केटलीक प्रतिओमां, तेमज केटलीक टीकाओमां चिन्ह अथवा उल्लेख करी जुदी जुदी बताववामां आवी छे. परंतु आ विषयमा बधानो एक मत नहीं होवाथी मारी आवृत्तिमां में आ वाचनात्मक विभागो दाखल कर्या नथी. साधारण रीते महावीरचरित छ वाचनामां विभक्त करवामां आवे छे. बाकीनां जिनचरितो सातमी वाचनामां गणाय छे. अथवा तो महावीरचरितनी पांच, अने बाकीनां जिनचरितोनी बे, आवी रीते पण सात वाचनाओ गणाय छे. थेरावली अने सामाचारी ए दरेकनी एकेक वाचना कहेवाय छे.* जिनचरित अने सामाचारी नामना भागमां, सूत्रो अथवा प्रकरणोना रूपमां मूळ ग्रंथनो एक बीजो पण पेटाविभाग घणीक प्रतिओमां आपेलो जोवामा आवे छे. आ विभाग ते घणुं करीने टीकाकारोने आभारी छे. कारण के तेमणेज आनो उपयोग करेलो छे. स्थविरावली उपर टीका रचाएली नहीं होवाथी तेनी सूत्रोमां वहेंचणी थवा पामी नथी. यद्यपि आ सूत्रात्मक विभाग सघळी प्रतिओ अने टीकाओमां एकज

* कल्पसूत्रनी टीकाओमां लख्या प्रमाणे तो 'प्रथम रात्रिए' नहीं पण अन्तिम रात्रिए कल्पसूत्रनुं अध्ययन-श्रवण करवामां आवतुं हतुं.—संपादक.

† आ बीनानी मितिना संबंधमां एक मत नथी. केटलाक तेने वी. नि. ९८० मा वर्षमां मूके छे, केटलाक ९९३ मां अने केटलाक वळी वी. सं० १०८० मां मूके छे.

* E नामनी हस्तलिखित प्रतिमां नीचे प्रमाणे व्याख्यानकोनी वहेंचणी करेली छे:—'पुरिमचरिमगाथा-शक्रस्तवं यावत्, शक्रस्तवगर्भावतारसंचारः, स्वप्नविचारगर्भस्थाभिग्रहः, जन्मोत्सवक्रीडा-श्रीवीरकुटुम्बविचाराः, दीक्षा-ज्ञान-परिवार-मोक्षाः, श्रीपार्श्वनाथ-श्रीनेमिचरितान्तराणि, श्रीआदिनाथचरित्र-स्थविरावलयः, सामाचारीमिच्छा (?) श्रीकालिकाचार्यकथा.—' कालिकाचार्यनी कथा स्वतंत्र होवाथी ते कल्पसूत्रनी पाछळ तद्दन अर्वाचीन समयमां दाखल थएली छे. उपर आपेली वाचनानी गणनामां आदिनाथ अथवा ऋषभचरित्र अने स्थविरावली ए बन्नेने एकज वाचनामां मूकी दीधा छे. आ

सरखो जोवामां आवतो नथी; तथापि, ते बहु भिन्न पण पडतो नथी. अने तेथी करीने आ आवृत्तिमांनुं कोई पण सूत्र, हस्तलिखित प्रतिओमां सरळतापूर्वक खोळी शकाय तेम छे. थेरावलीनी तेर सूत्रोमां करेली वहेंचणी मारी पोतानी छे. कारण के, कोई पण प्रतिमां आवी वहेंचणी करेली जोवामां आवती नथी.

कल्पसूत्र उपर सौथी प्राचीन टीका जो के में जोई नथी, पण ते चूर्णि होय तेम लागे छे. ते बीजी बधी चूर्णिओनी माफक प्राकृतमांज लखाएली हशे. कारण के टीकाओमां कोई कोई प्रसंगे तेनां अवतरणो लीधेलां जोवामां आवे छे. तेना कर्तानुं नाम मळतुं नथी, पण ते हमेशां चूर्णिकारना नामे ओळखाय छे. बाकीनी बधी अर्वाचीन टीकाओ सीधी अगर आडकतरी रीते तेना उपरज रचाएली छे. अने प्रायः ते तेना संस्कृत भाषांतर रूपे ज छे. आम मानवानुं कारण ए छे के ए टीकाओमां मूळना जे अर्थो आपेला छे ते सघळी टीकाओमां लगभग एकज सरखा, शब्दे शब्द, मळता आवे छे. आ बाबत सर्व टीकाओनुं मूळ एकज मानी लईए तोज समजावी शकाय तेम छे. बीजुं ए छे के सर्व टीकाओ चूर्णिने मुख्य प्रमाण माने छे. तेथी आपणे पण ते कृतिने स्वाभाविकरीते ते सर्वेनी पायाभूत—(मूळभूत) मानवी जोईए. घणाक आधुनिक टीकाकारोए पोतानी टीकाओमां उत्तराध्ययन अने आवश्यकसूत्रनी टीकामांथी केटलीक कथाओ लईने वचमां दाखल करी दीधी छे. अने कोई कोई स्थळे विस्तारयुक्त एवी अप्रस्तुत हकिकतो उमेरी दीधी छे.

सौथी जूनी टीका तरीके में संदेहविषौषधि नामनी पञ्जिकाने उपयोगमां लीधी छे. एना कर्ता जिनप्रभमुनि छे. तेमणे ए टीका अयोध्यामां संवत् १३६४ ना आश्विन सुदी ८ अर्थात् सने १३०७ मां पूरी करी हती. एनी ग्रंथ संख्या २०४० छे. ए टीकानी अंदर तेमणे पर्युषणाकल्पनिर्युक्तिनी पण टीका लखी छे. आ पर्युषणाकल्पनिर्युक्तिनी छासठ प्राकृत गाथाओ छे, अने ते पर्युषणा उपर एक निबंध रूपे छे. आ निर्युक्तिनी टीका तेना कर्ताना कहेवा मुजब निशीथचूर्णिमांथी संगृहीत करवामां आवी छे, अने थोडा टुंका संस्कृत वाक्यो सिवाय ते प्राकृतमां ज लखाएली छे. आ आश्चर्यकारक बाबत आपणने उदाहरण आपी समजावे छे के जैन-ग्रंथकारो पोताना पूर्वजोनी कृतिओमां केटलो बधो स्वरचित उमेरो करता हता. जो पर्युषणानिर्युक्ति उपर तेना पहेलानी संस्कृत टीका होत तो जिनप्रभमुनिए जरूर तेनी नकल करी होत. परंतु पोताने अन्य साधनोना अभावे आत्मनिर्भर थवानुं होवाथी तेमणे निशीथचूर्णिमांथी अवतरणो लीधां. परंतु ते अवतरणोनुं संस्कृत भाषान्तर सुद्धां करवानी तेमणे तस्दी लीधी नथी. आपणने मानवाने कारण मळे छे के जिनप्रभमुनिना समयमां कल्पसूत्र उपर कोई एक संस्कृत टीका विद्यमान हती. कारण के तेओ पोतानी टीका संस्कृतमां लखे छे; परंतु चूर्णिनो सारांश आपता नथी. आ टीकानी मारी प्रति के जेने माटे हुं डॉ. बुल्हरनी उदारतानो ऋणी छुं, ते संवत् १६७४ मां लखवामां आवी हती. एमांना उतारा तथा एमां निर्दिष्ट करेलां विविध पाठान्तरो में टिप्पणमां S ना चिन्हथी दर्शाव्यां छे.

मूळग्रंथना अर्थावबोधनना विषयमां उपरनी टीका सिवाय नीचे सूचवेली बीजी त्रण टीकाओ पण थोडेज अंशे भिन्न पडे छे. परंतु आ टीकाओमां एक उपोद्घात उपरांत अन्य ग्रंथोमांथी घणां अवतरणो अने कथाओ आपेली छे. तेमां पर्युषणाकल्पनिर्युक्तिनी टीका नथी. ते त्रणे टीकाओ नीचे प्रमाणे छेः—

बन्ने भागोने जो आपणे बे जुदी जुदी वाचनामां विभक्त करीए, अने कालिकाचार्यनी कथाने काढी नांखीए तो ते वाचनानी प्रसिद्ध व्यवस्थानी बराबर थई रहे छे.

१–विनयविजयजीकृत सुबोधिका. सं. १६९६. आ टीकानुं ग्रंथपरिमाण ५४०० छे. आनी जे प्रति में वापरी छे ते मुंबईना संग्रहनी छे.

२–धर्मसागरकृत किरणावली उर्फे व्याख्यानपद्धति. संवत् १६२८. ग्रंथसंख्या, ७०००. मुंबई.

३–समयसुंदरकृत कल्पलता. आमां साल आपेली नथी. पण लेखक कहे छे के तेना गुरु, सकलचंद्रना गुरु, जिनचंद्र अकबरना वखतमां विद्यमान हता. आ उपरथी तेमना समयनुं अनुमान करी शकाय तेम छे. आ कल्पलता ते, जेना उपोद्घातनु डॉ. स्टीवन्सन भाषान्तर कर्यानो ढोंग करे छे, ते कल्पलता नथी. आ कल्पलतानी एक प्रति डॉ. बुल्हरे कृपा करीने मने वापरवा आपी हती. तेनी ग्रंथसंख्या मूळ अने टीका बन्नेनी मळीने ७७०० छे. तेना उपर मिति संवत् १६९९ नी छे.

आ टीकाओथी वधारे अर्वाचीन अने एनाथी अल्प महत्त्वना ग्रंथो नीचे प्रमाणे छे.—

४–लक्ष्मीवल्लभकृत कल्पद्रुम. आमां दरेक सूत्रनी पाछळ तेनुं संस्कृत भाषांतर आपेलुं छे. आ ग्रंथनो मोटो भाग अन्य टीकाओमां उपलब्ध थती कथाओनो बनेलो छे. आ टीकाने अंते कालिकाचार्यनी कथा पण उमेरेली छे. मारी पासे कल्पद्रुमनी एक हस्तलिखित प्रति छे. पण ते खराब अने अर्वाचीन छे. सं० १९०३.

५–मूळनी बब्बे पंक्तिओ वच्चे आपेला भाषान्तर रूप एक ननामा लेखकनो टबो. कथासमूह अने स्वप्नोनुं गुजराती स्पष्टीकरण तेनां योग्यस्थळे दाखल करेलां छे. आ आवृत्तिमां में तेने C निशानीथी दाखव्यो छे. आना लेखक अभयसुंदर मुनि हता (कदाच ते कर्ता पण होई शके ?). संवत् १७६१.

६–कथादि रहित एक टबो. आ प्रति इन्डिआ ऑफिस लाइब्रेरीनी नं. १५९९ नी छे. कोलब्रूके पोताना सारांशो (Abstracts) तैयार करवामां आ प्रतिनो उपयोग कर्यो हतो.

में तपासेला अने केटलेक प्रसंगे उपयोगमां लीधेला एवा उपरोक्त ग्रंथो उपरांत नीचेना ग्रंथो पण अहिंयां उल्लिखित करवा योग्य धारूं छुं.

७–विजयतिलकनी कल्पदीपिका. सं. १६८१ ग्रंथसंख्या. ४५००. डॉ० बुल्हरनी आ टीकानी प्रति में जोई छे.

८–यशोविजयनो बालावबोध (?). डॉ० स्टीवन्सने पोताना कल्पसूत्रनी प्रस्तावनाना नवमा पृष्ठ उपर आनो निर्देश करेलो छे.

९–कल्पसूत्रटीका. जुओ, डॉ० बुल्हरनो संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकोनी शोधनो रीपोर्ट. १८७२–७३.

१०–बार्लिनना संग्रहनी एक ननामी टीकानी प्रति. (प्रति अथवा पत्र, ६३८.) आ प्रति तद्दन बेपरवाईथी लखेली छे अने ते मने कोई रीते उपयोगी निवडी नथी. संवत् १७५९.

टिप्पणमां में मात्र संदेहविषौषधिमांथी उतारा आप्या छे. पहेलां में सुबोधिका अने किरणावलीमांथी उतारा कर्या हता, परंतु मने संदेहविषौषधि मळवाथी, सौथी प्राचीन टीकाकारना शब्दोमांज समजुती आपवानुं में वधारे योग्य धार्युं छे.

कल्पसूत्रनुं एक अंग्रेजी भाषान्तर रे० डॉ० स्टीवन्सने प्रकट कर्युं छे[1]. जैनग्रंथोमां आज सुधीमां प्रमाण गणातुं मात्र आ एकज पुस्तक प्रकट थएलुं छे. परंतु मारे दिलगीरीसाथे लखवुं पडे छे के ते मात्र यथार्थ नथी एटलुंज नहीं पण ते अविश्वसनीय पण छे. जो के ए एक भाषान्तर गणाय छे

१ 'कल्पसूत्र अने नवतत्त्व.' आ बन्ने ग्रंथो जैन धर्म अने तत्त्वज्ञान विषयना छे, अने मागधी भाषामांथी भाषान्तरित करेला छे. आमां एक परिशिष्ट आपवामां आव्युं छे, अने तेनी अंदर मूळग्रंथनी भाषा उपर विवेचन करेलुं छे. भाषान्तरकर्ता रे. जे. स्टीवन्सन, डी. डी, पी. आर. ए. एस्. सन १८४८.

परंतु वास्तविकमां ते भाषान्तर नथी, एटलुंज नहीं पण घणे भागे तो बेकाळजीथी घसडी काढेलो एक सारांश मात्र छे. आनो प्रथमनो भाग भाषान्तरमां, सामाचारीना विशेष कठिन भाग करतां साधारणतया वधारे विश्वसनीय रीते उतारवामां आव्यो छे. कारण के ए प्रकरणमां डॉ. स्टीवन्सन कोई पण महत्त्वनो भाग मूकी देता नथी. मूळमां ज्यां ज्यां क्लिष्ट भागो आवे छे त्यां त्यां तेओ भाषान्तर करवाने बदले मात्र विवरण करे छे. परंतु सामाचारीमां तो निराळीज बाबत दृष्टिगोचर थाय छे. त्यां तो तेमणे या तो मोटा भागोने उडावीज दीधा छे, अथवा तो संक्षिप्त रूपमां मूकी दीधा छे. एमां अर्थनी स्पष्टता तरफ भाग्येज ध्यान आपवामां आव्युं छे.[1]

वास्तविकमां डॉ. स्टीवन्सनना पुस्तकने, आजकाल प्रकट थता प्राकृत—संस्कृत भाषाना ग्रंथो तथा तेना भाषान्तरोनी पद्धतिए तपासवुं ते तेमने खरेखर अन्याय करवा जेवुं छे. कारण के त्रीस वर्ष पहेलांनो ते समय पौर्वात्य साहित्यना अध्ययननी बाल्यावस्थानो प्रारंभिक काळ हतो. अने भाषाविज्ञाननी यथार्थताना संबंधमां जेटलो विचार अत्यारे करवामां आवे छे तेटलो ते वखते करवामां आवतो न हतो. डॉ. स्टीवन्सन पोताना संशोधन-क्षेत्रमां पहेल करनार हता अने तेमणे महान् उत्साह अने अविश्रान्त उमंगथी पोताना कार्यक्षेत्रमां उद्यम कर्यो हतो. परंतु दिलगीरी पामवा जेवुं एटलुंज छे के डॉ० स्टीवन्सन पोताना भाषाविज्ञानना अभ्यासना अभावथी* तेमज तेमनुं मानसिक वलण ईश्वरविषयक ज्ञान तरफ झुकेलुं होवाथी तेओ पोतानी मेहेनतना प्रमाणमां योग्य परिणामो उपजावी शक्या नथी. हुं मात्र यथार्थस्थितिने लक्ष्यमां लईने ज प्राच्यविद्याना अभ्यासिओने तेमना कल्पसूत्रने न वापरवानी सूचना करूं छुं.

कल्पसूत्रनी प्रस्तुत आवृत्ति नीचे जणावेली प्रतिओ उपरथी तैयार करवामां आवी छे.

A संज्ञावाळी प्रति मारा करेला संग्रहमां सर्वोत्तम छे. तेना ११३ पानां छे, अने ते चांदीनी शाहीथी लखेली छे. आनां घणां खरा पानां क्रमथी काळा अने राता रंगथी रंगेलां छे.एकेक पाना उपर छ छ लीटिओ छे. मूळ ग्रंथमां घणां चित्रो आपेलां छे. तेना हांसिआमां अरबस्थानना शिल्पशास्त्रना नियमप्रमाणे वेल-बुट्टिओ कोतरली छे. (आवी जातनी हस्तलिखित प्रतिओ जैनो पासे घणी जोवामां आवे छे.) तेना लांबा पुष्पिकालेखमां, तेनी लखायानी साल विक्रम संवत् १४८४ (सन१४२७) आपेली छे. ए प्रतिमां सूत्र अगर वाचनाना वि-

---

१ आ ठेकाणे टिप्पणमां डॉ. जेकोबीए सामाचारीमांना एक सूत्रनुं, डॉ. स्टीवन्सने करेला तेज सूत्रना भाषान्तर साथे, पोतानुं भाषान्तर तुलनार्थे मूकेलुं छे. परंतु ते आ पत्रनी दृष्टिए अनुपयोगी होवाथी, अहीं आप्युं नथी.

अनुवादक.

* डॉ. स्टीवन्सननुं प्राकृतभाषा संबंधी ज्ञान केटलुं बधुं मर्यादित हतुं, ते आपणे तेमने करेली मागधीभाषा उपरनी टीका उपरथी सहेलाईथी समजी शकीए छीए. पृ. १४१ उपर तेओ लखे छे के 'तिसलाए' अने 'माहणीए' आ बन्ने प्रथमाना रूपो छे; पृ. १४२ उपर तेओ 'कुच्छिसि' अने 'समणंसि' नी अनुक्रमे 'कुछाम्सि' अने'श्रमणाम्सि'ना रूपमां जोडणी करे छे अने ' पासित्ता णं ' ने ' पाशिताणं ' लखे छे. आटलुं कथन तेमना प्राकृतना ज्ञानना संबंधमां बस छे. संस्कृतभाषा संबंधी पण तेमनुं ज्ञान केटला ऊंचा दरज्जानुं हतुं ते कल्पलतामांना (पृ. १२) एक संस्कृत फकराना तेमणे करेला अंग्रेजी भाषान्तरने, आगळ पृ. २२ उपर आपेला तेज फकराना मारा भाषांतर साथे सरखाववाथी जणाई आवशे. डॉ. स्टीवन्सननुं भाषान्तर नीचे मुजब छे.—' हवे हुं कल्पसूत्रना कर्तानो उल्लेख करूं छुं. तेमनुं नाम श्रीभद्रबाहुस्वामी हतुं. ते एक विचक्षण गुरु हता. तेओ पोताना शिष्यनी (टिप्पण, मूळ शब्द–पूर्व) चौद शाखाना जाणनार हता, अने विचक्षण आचार्य हता. अहीं नाम सूचवाता ग्रंथो—दशाश्रुतस्कन्ध, अष्टमाध्ययन, अने प्रत्याख्यानप्रवाद के जेमां तेमणे नव शाखाओ जोई—तेने, मार्गदर्शक तरीके राखीने तेमणे आ कल्पसूत्र बनाव्युं हतुं.

भागो बतावेला नथी. तेमां आपेलुं स्वप्नवर्णन प्रसिद्ध वर्णनथी भिन्न जणाय छे. अने स्पष्टरीतेज ते असली होय तेम लागतुं नथी, कारण के आ स्वप्न-वर्णनना प्रारंभमां साधारणरीते मूकवामां आवतुं ग्रं.२०० नुं चिन्ह अहीं मूकेलुं नथी. ?

[A संज्ञावाळी प्रतिनुं वर्णन कर्या बाद, डॉ. जेकोबी, अन्य अल्प महत्त्वनी प्रतिओ—के जेमांनी केटलीकने तेमणे परस्पर मेळवी हती अने केटलीकने मात्र तपासीज हती तेनां नामो अने वर्णनो आपे छे. परंतु, ते आ पत्रनी दृष्टिए अनुपयोगी होवा थी, अहीं आप्यां नथी.
अनुवादक.]

अनुपूर्ति.

आ संपूर्ण उपोद्‌घातमां सर्वत्र में श्वेतांबर संप्रदायनोज आधार लीधो छे. दिगंबरोनी पण पोतानी सांप्रदायिक मान्यता छे, अने ते श्वेतांबर संप्रदायथी केटलीक परंतु अगत्यनी बाबतोमां भिन्नता राखे छे. आ संप्रदायनी मान्यतानी माहीती में, डॉ. बुल्हरे वांचवा आपेली एक आधुनिक गुर्वावली उपरथी मेळवी छे. ते जयपुरमां,—तेज शेहेरनी भाषामां लखाएली छे. ए गुर्वावलीमां घणी प्राकृत गाथाओ समजाववामां आवी छे. अने ते गाथाओनी प्राकृतभाषा शौरसेनी साथे आश्चर्यजनक मळतापणुं धरावे छे. आ गुर्वावलीमां बे भद्रबाहुनो उल्लेख छे. पहेला भद्रबाहु, जे अंतिम श्रुतकेवली हता, ते वीर निर्वाणना १६२ मा वर्षमां गुजरी गया हता. अने बीजा भद्रबाहु जे स्थविर कहेवाता हता, तेमनी मिति वी. सं. ४९२—५१५ आपेली छे.. तेओ यशोभद्रना अंतेवासी हता, आ यशोभद्रना गुरुनुं नाम सुभद्र हतुं अने तेओ (वी. सं. ४६८—४७४ मां) विद्यमान हता. सुभद्रना अस्तित्वना बीजा वर्षमां अर्थात् वी. सं. ४७० मां विक्रमनो जन्म थयो हतो. आ हकिकतने ए गुर्वावलीमां उध्धृत करेली अर्धी गाथा द्वारा पुष्टि मळे छे:—

सत्तरि चदुसदजुत्तो
तिण काला विक्कमो हवइ जम्मो ।

आ ठेकाणे ए ध्यानमां राखवुं जोईए के विक्रमना संवत्‌नी शरुआत तेना जन्मथी थती नथी परंतु तेना राज्यारोहणना समयथी अर्थात् तेना आयुष्यना १८ मा वर्षथी थाय छे.[1] आ हिसाब प्रमाणे ए गुर्वावलीमां, वीर निर्वाणनुं ४९२ मुं वर्ष, के जेमां भद्रबाहुनी कारकीर्दीनी शरुआत थाय छे, तने विक्रम संवत् ४ नी साथे सरखाववामां आवेलुं छे. वळी तेनी अंदर बीजा भद्रबाहुथी मांडीने संवत् १८४० सुधीना स्थविरोनी अनवरत नोंध आपवामां आवी छे. अने ते खरी परंपराना आधारे गोठवेली होय तेम देखाय छे.

आ गुर्वावलीनी अनुसार पुष्पदंत (समय—वी. सं. ६३३ थी ६८३) पछी सघळा अंगो नष्ट थई गयां हतां. तेमणे समग्र पवित्र प्रवचन पुस्तकोमां लखाव्युं हतुं. तेमना अवसाननुं वर्ष जे वी. सं. ६८३ छे, तने पण विक्रमना जन्म वर्ष तरीके बताववामां आव्युं छे.

भद्रबाहुना संबंधमां दिगंबर परंपरा माटे जुओ Lewis Rice. भद्रबाहु अने श्रवण बेल्गोल; इन्डि. एन्टि. ३. पृ० १५३. कर्णाटकनी दिगम्बर परंपरामां भद्रबाहुने उत्तरहिंदुस्थानमांथी स्वदेश छोडी परदेश जता संघना नेता तरीके जणाव्या छे; अने पाटलीपुत्रना राजा चन्द्रगुप्तने, तेमां, तेमना एक दीक्षित शिष्य तरीके जणाव्यो छे.

---

१ उपरोक्त कथनानुसार महावीर अने विक्रमना संवत्‌नी वच्चे ४८८ वर्षनुं अंतर पडे छे. अने तेथी महावीर निर्वाणनो समय इ. स. पूर्वे ५४५ मां आवे छे, आ हिसाबे आ साल अने सीलोननी कालगणनानुसार निर्णीत करेली बुद्ध-निर्वाणनी सालनी वच्चे मात्र बे ज वर्षनो फरक रहे छे.

जैनधर्मनुं अध्ययन.

[लेखक—श्रीयुत सी. वी. राजवाडे, एम्. ए. बी. एस. सी. प्रोफेसर ऑफ पाली, बरोडा कॉलेज.]

प्रो. वेबर, बुल्हर, जेकोबी, हॉर्नेल, भाण्डारकर, ल्युमन, राईस, गेरिनॉट विगेरे विद्वानोए जैनधर्मना संबंधमां अंतःकरणपूर्वक अथाग परिश्रम लई अनेक महत्त्वनी शोधो प्रकट करेली होवा छतां, भारतवर्षीय विद्वानोए हजी सुधी ए धर्मना अभ्यास तरफ पुरतुं ध्यान आप्युं नथी. प्राच्यविद्या-कळा-साहित्यना संशोधनना प्रारंभ काळमां, कदाचित् जैनसाधुओनी उदासीनताने लीधे, तथा, हस्तलिखित पुस्तकोमां छुपाएलुं पोताना धर्मनुं पवित्र ज्ञान जैनेतरोने आपवामां तेओनी नाखुशी होवाने लीधे, तद्विषयक अध्ययनमां विद्वानोने प्रेरणा थई नहीं होय. पछी तो, विद्वानोनो अनुराग बौद्धधर्मना अभ्यासमां वधतो गएलो होवाथी केटलेक अंशे, तेओनी धर्मविषयक अभ्यासमां आ एक महत्त्वनी शाखा तरफ उपेक्षा थई गई हती. वस्तुतः, प्रारंभमां विद्वानोना मगज उपर बौद्धधर्मनी एटली तो प्रबळ सत्ता जामी गई हती के तेओ जैमधर्मने बौद्धधर्मनी एक शाखा तरीकेज जणाववा लाग्या हता. परंतु, हवे तेओनी दृष्टिमर्यादाने आच्छादित करनारां पडळो नष्ट थवा मांड्यां छे अने तेथी जैनधर्म पूर्वना धर्मोमां पोतानुं स्वतंत्र स्थान प्राप्त करतो जाय छे. जैनसमाज पण सुस्तीमांथी जाग्रत थतो जाय छे. अनेक नियतकालिक अने सामयिक पत्रादि प्रकट थता दृष्टिगोचर थाय छे. साधुओने पण पोतानी जवाबदारीनुं भान थतुं होय तेम जणाय छे. कोमना धनिकवर्ग तरफथी मळती उदारताना आश्रित बनेलां परोपकारी मंडळो दिवसे दिवसे विशेष रूपमां जैन ग्रंथो प्रकट करतां जाय छे. जैनधर्म अने साहित्यविषयना अनेक लघु ग्रंथो, सार ग्रंथो, स्थूलवर्णनात्मक ग्रंथो, रहस्योद्घाटकग्रंथो(Keys=कुंचीओ) शब्दकोशो, इत्यादि भारतवर्षना विद्वानो द्वारा संपादित थई, प्रकाशित थता जाय छे. अने आ सर्व उपरांत, देशी भाषामां पण प्रतिवर्ष मोटा प्रमाणमां जैनसाहित्य बहार पडतुं जाय छे.

आम होवा छतां हजी घणुं करवानुं बाकी छे. जैनधर्म ते मात्र जैनोनेज नहीं, परंतु तेमना सिवाय प्राच्यसंशोधनना प्रत्येक विद्यार्थी अने खास करीने जेओ पौर्वात्य देशोना धर्मोना तुलनात्मक अभ्यासमां रस लेता होय तेमने तल्लीन करी नांखे एवो रसिक विषय छे.

जैन-साहित्यनी अर्वाचीन संशोधन पद्धति अनुसार अने गुणदोषनी विवेचक दृष्टिए अभ्यास थवानी बहु आवश्यकता छे. आ विषयना निष्णात विद्वानो स्पष्ट जणावे छे के आवी रीते तुलनात्मक पद्धतिए तेनो अभ्यास थवाथी हिंदुस्थानना प्राचीन इतिहासना संबंधमा अत्यार सुधीमां अज्ञात रहेली घणीक हकिकतो प्रकट थशे, अने ऐतिहासिक कालनी माहिती वगरनी घणीक खाली जग्याओ पूर्ण थशे. आवी रीते, इतिहास-प्रेमी, तेमज आर्यावर्तना प्राचीन धर्मोना अने तत्त्वज्ञानना अभ्यासीने जैनसाहित्य एक तद्दन नवुं अने अणखेडाएलुं विस्तृत क्षेत्र छे. परंतु वर्तमानमां जैनधर्मना अभ्यासीने—के जे निष्पक्षपाती अने समदर्शी मनथी ए विषयनो अभ्यास करवा मांगतो होय, तेने पोताना कार्यमां केटलीक मुस्केलिओ नडे छे. प्रथम अने प्रधान मुस्केली ए छे के योग्य रीते संपादन करेला मूळ

अने प्रामाणिक ग्रंथोनो अत्यारे अभाव छे. ए बाबत तो सुविज्ञात छे के जैनोना पवित्र ग्रंथोनी भाषा अर्धमागधीना नामे ओळखाती प्राकृत छे. आ भाषा अत्यारे घणा जैनसाधुओ पण बराबर समजता नथी. कारण के ज्यारे तेओने ते ग्रंथोना अर्थने समजाववानो प्रसंग आवे छे त्यारे तेओ पण मूळ साथे आपेली संस्कृत छाया अथवा टीका उपरथीज पोतानुं काम चलावे छे. आवी पद्धतिनुं विशेष अनुसरण थवाने लीधे मूळ भाषा–प्राकृतभाषाना अध्ययननी उपेक्षा थई छे, अने परिणामे घणीक भूलो अने असंगतिओ स्वाभाविकरीते ते भाषामां दाखल थई गई छे. घणी हस्तलिखित प्रतिओ शुद्ध पाठान्तरोनी दृष्टिए तो निराशाजनक स्थितिवाळीज जोवामां आवे छे. तेथी जैनसाहित्यना व्यासंगिओए प्रथम तो विविध पुस्तकालयोमां संगृहीत सघळी प्रतिओ एकत्र करी, सूक्ष्मनिरीक्षणपूर्वक तेने परस्पर मेळववानुं कार्य हाथ धरवुं जोईए. त्यार पछी पाली-टेक्स्ट सोसाएटीए छपावेली बौद्ध ग्रंथोनी आवृत्तिओनी पद्धति उपर जैनोना पवित्र ग्रंथोनी विश्वासपात्र आवृत्तिओ तैयार करवी जोईए. अलबत, आ कार्य घणुंज त्रासदायक अने श्रमसाध्य छे. परंतु ज्यां सुधी आ कार्य थाय नहीं त्यां सुधी एक पगलुं पण आगळ वधवानी आशा राखी शकीए नहीं.

आ कार्य एकाद व्यक्तिथी थाय तेवुं नथी. पण तेमां विविध मंडळो अने संस्थाओनी सहकारितानी जरूर छे. वर्तमानमां आ दिशामां जे केटलाक प्रयत्नो थई रह्या छे तेमां तो मात्र निराशाजनक बेदरकारपणुंज जोवामां आवे छे. लगभग सघळी संस्थाओ उत्तराध्ययनसूत्र अने कल्पसूत्र जेवा अतिशय लोकप्रिय थएला मूळग्रंथो छपावे छे. परंतु तेमना जेटलाज महत्त्वना अन्य ग्रंथो तद्दन उपेक्षापात्र बन्या छे. आ कार्य माटे उत्तम मार्ग तो ए छे के आ दिशामां प्रयत्न करनारी सघळी संस्थाओए संपथी एकत्र थई प्रामाणिक पद्धतिए मूळ ग्रंथो तैयार करवानुं काम उपाडवुं जोईए. मारूं मानवुं छे के आराना ' [illegible] जैन प[illegible]लिशिंग हाउस' जेवा मंडळने आ प्रकार[illegible] उपाडवुं कठण पडे तेम नथी. आ उपरांत, हाल[illegible] छपाता सघळा ग्रंथो पोथी साईझमां—(पत्राकारे)छपाय छे अने तेथी तेनां पानां छुटां रहेतां होवाथी तेनो उपयोग-करती वखते विद्यार्थिओने घणीज अडचण पडे छे. वळी केटलाक संपादको तो पोतानुं कर्तव्य एटले सुधी भूली जता (भूली नथी जता पण जाणता ज नथी एम कहेवुं वधारे उचित छे.—मुनि जिनविजय) होय तेम जणाय छे के ग्रंथमां आवतां अवतरणोने जुदा पाडवा माटे निशानी सरखी पण करता नथी.

उपर निर्देशेलुं कार्य ज्यारे अर्वाचीन पद्धति अनुसार योग्यरीते पूर्ण थशे—एटले के ज्यारे मूळग्रंथोमां, प्रकरणो अने सूत्रोना आकारमां जुदा जुदा स्पष्ट विभागो पाडवामां आवशे, तेमां आवतां अवतरणोने ओळखाववामां आवशे, अनुसन्धानोनुं अन्वेषण करवामां आवशे, अनुक्रमणिकाओ अने सूचिपत्रो तैयार करवामां आवशे, त्यारबाद अर्वाचीन विवेचनशास्त्रनी पद्धतिना नियमोनी सहायता पूर्वक आ साहित्यनी तपास माटे योग्य समय आव्यो गणाशे. नवा साहित्यमांथी जूनुं साहित्य संभाळपूर्वक तारववुं पडशे. विविध ग्रंथोनो बनी शके त्यां सुधी समयनिर्णय करवो पडशे, अने, तेनी शुद्धता या निर्दोषता तपासी तपासीने जोवी पडशे. आम करती वखते स्वाभाविकरीते चर्चापात्र मुद्दाओना संबंधमां ऊहापोह करवा माटे छूट रहेवी जोईए, अने ते उपर प्रामाणिक मतभेद प्रकट करवानी स्वतंत्रता होवी जोईए. अत्यारे प्राच्य–विद्याविषयक विवेचनशास्त्रना बे भिन्न संप्रदायो नजरे पडे छे. एक पक्ष मूळग्रंथोने जेटला बने तेटला पुरातनकालना बताववा प्रयत्न करे छे, अने बीजो पक्ष तेने येन केन प्रकारेण क्राईस्टना पछीना कोई एक कालमागमां—अर्थात् अर्वाचीन समयमां

खेंची लाववा प्रयत्नशील देखाय छे. केटलाक वळी एवा पण लोको छे, जेमनां मगज पुराणप्रियताना विचारोथी अतिशय संकुचित थएलां जोवाय छे. अने तेथी प्राचीन ग्रंथोमां एक पण भूल या दोष बतावावामां आवे छे तो तेओ खूब चीढाई जाय छे. तेमनुं एम मानवुं होय छे के मूळ ग्रंथना कोई पण लिखित अर्थ या विचारना संबंधमां स्वतंत्र चर्चा बिलकुल करी शकायज नहीं. परंतु आ मत अत्यारे टकी शके तेम नथी. छतां पण एटलुं तो जरूर याद राखवुं जोईए के पुराणप्रियताना पण घणाक उपयोगो छे. ते द्वारा आपणने पुरातन परंपराओनो परिचय मळे छे अने घणीक वखते अन्य साधनोना अभावे तेज मात्र आपणने मार्गदर्शक होय छे. जो के परंपराओनी पण गंभीरपणे परीक्षा तो करवीज जोईए; परंतु तेनो सर्वथा त्याग करवो पण कोई रीते न्याय्य नथीज. अने आ बाबतमां साधुवर्गेज खास मदद करवानी छे. तेणे पोतानी हंमेशनी चुपकीनो त्याग करी, पोतानी पासे जे परंपरागत मोटो माहीतिओनो भंडोळ होय ते उपासको समक्ष रजु करवो जोईए. हवे तेओने एवो भय राखवानी जरूर नथी के आम करवाथी कदाचित् तेओ पोताना धर्मने जोखममां नाखी देशे. कारण के संताडी राखवाथी कदापि सत्यनी वृद्धि थई शकती नथी.

पण आ बधी व्यवस्था करवा अने जैनधर्मना अभ्यासने संगीन पाया ऊपर लावी मूकवा माटे एक उत्साही अने शक्तिशाळी विद्वन्मंडळे आगळ आववुं जोईए; अने पोताना दृढताभरेला काम द्वारा जगतने बताववुं जोईए के आज सुधीमां शोधाएली अन्य ज्ञानशाखाओ जेवी आ पण एक शाखा छे, अने ते बीजी बधी शाखाओथी लेश मात्र पण महत्त्वमां उतरे तेवी नथी. सुभाग्ये पवित्र आगमोनी भाषामां निपुण थवानी एक मुश्केली तो हवे मुंबईना विश्वविद्यालये पोताना अभ्यासक्रममां अर्धमागधीने स्थान आपी दूर करी छे. हवे तो जैन विद्यार्थिओनी ए फरज छे के तेमणे अंतःकरणपूर्वक आ भाषानो अभ्यास स्वीकारी लेवो जोईए, अने जैनकोमना धनिकवर्गे आ कार्यमां विशेष उत्तेजन आपवा, दरेक प्रकारनी, तेमने मदद करवी जोईए. मे सांभळ्युं छे के एक जैन संस्था जैन-धर्मना विद्यार्थिओने जे मदद जोईए ते सघळी आपवा तैयार छे; तेथी आ विषयना उत्साही विद्यार्थिओ आगळ आवी आ महान् कार्यना प्रथम फळो टूंक समयमां बतावशे एम आपणे आशा राखीए छीए.❀

जैन आगम साहित्यनी मूळ भाषा कई ?

अथवा

अर्धमागधी एटले शुं ?

[लेखक—श्रीयुत पं. बेचरदास जीवराज, न्याय-व्याकरणतीर्थ.]

जैन धर्मनुं प्राचीन साहित्य, जे अंग, उपांग, निर्युक्ति, भाष्य अने चूर्णि विगेरेना रूपमां अत्यारे उपलब्ध थाय छे, ते बधामां विशेषतः प्राचीन गणातुं अंगसाहित्य कई भाषामां लखायुं छे? ए प्रश्न अद्यावधि विवादास्पद रह्यो छे. जो धारे तो भारतवर्षना भाषाशास्त्रिओ ए प्रश्नने एक पळमां पण समाहित करी शके, परंतु ते महाशयो पासे एवा अनेक प्रश्नो उपस्थित रहेला होवाथी अत्यार सुधी आ प्रश्नने वगर सत्कारे ज उभा रहेवुं पड्युं छे.

❀ The study of Jainism ना शिरोलेख नीचे आ लेख, लेखके मळ अंग्रेजीमां, बरोडा कॉलेजना गया फेब्रुआरी मासना मेगेजीनमां, प्रगट कराव्यो हतो. परंतु मुख्य करीने जैन समाजमां वंचाववा माटे ज आ लेख लखाएलो होवाथी लेखकनी खास इच्छानुसार, अहीं एनो गुजराती अनुवाद प्रकट करवामां आवे छे.—संपादक.

आ युगे प्रत्येक प्राचीन साहित्यनी भाषानो इतिहास निर्णीत थई ते ते साहित्यना आरंभ-समयो पण लगभग अवधारवामां आव्या छे, तेवा प्रसंगे जैन धर्मना प्राचीन साहित्यनी शरुआतने लगतो वा तेमां योजाएल मूळ भाषा संबंधी इतिहास पण निर्णीत थवो अत्यंत आवश्यक छे.

संसारनी प्रत्येक प्रजाने वारसामां मळेल तत्त्वज्ञान वा आचारपद्धतिनी सत्यतानो मूळ पायो ते ते प्रजाना मूळ साहित्यना इतिहास उपर ज बंधाएल छे; तेम जैन प्रजाना वारसा उतार तत्त्वज्ञान वा आचारशैलीनी तथ्यता, ते प्रजाना मूळ साहित्यना इतिहास उपर अवलंबे, ए कार्यकारणना अस्खलित नियमने अनुसरतुं ज छे. आटली प्रस्तावना करी हुं मारा प्रश्ननी चर्चानी शरुआत करीश. कहेवाय छे के,

' अद्धमागहाए भासाए भासति अरिहा' [1]

एटले ' अर्हन् (वर्तमान शासनाधीश श्रीज्ञातपुत्र—महावीर पण) अर्धमागधी भाषा द्वारा बोले छे ' ए उक्ति उपरांत, आ पण एक बीजी उक्ति छे के,

' अत्थं भासइ अरिहा
सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं' [2]

अर्थात् ' अर्हन् अर्थोने—भावोने—तत्त्वज्ञानना मूळ मुद्दाओने—भाखे छे अने गणधरो ते मुद्दाओने (लोकग्राह्य करवा माटे) निपुणता पूर्वक गंठे छे के गुंथे छे.' आ बन्ने उक्तिओथी एम जाणी शकाय छे के, शासनाधीश दीर्घतपस्वी महावीरनी सार्वजनिक भाषा अर्धमागधी होवी जोईए, अने ए उपरथी ज एवी परंपरा चाली आवे छे के, जैन धर्मना अंगसाहित्यनी (जे अत्यारे विद्यमान छे तेनी पण) मूळ भाषा मागधी वा अर्धमागधी छे. पण आ परंपराने, अत्यारे उपलब्ध थता अंग-साहित्य तरफ दृष्टिपात करतां तो, हुं इतिवृत्तनी कोटिमां मूकतां नीचेनां कारणोथी अचकाउं छुं.

प्रस्तुत चर्चानुं लंबाण करतां पहेलां मारे जणाववुं जरूरनुं छे के, जेम संस्कृत, प्राकृत अने पाली विगेरेनां व्याकरणो छे तेम जो अर्धमागधीनुं पण एकाद सांगोपांग व्याकरण होत तो, मारे आ प्रश्न साथे अर्धमागधीना स्वरूपने लगतो बीजो प्रश्न न ज करवो पडत.

व्याकरणकार आचार्यो जेवा के—वररुचि, चंड, हेमचंद्र, कात्यायन, त्रिविक्रम, सिंहराज, वाल्मिकि, लक्ष्मीधर अने मार्कंडेय विगेरे पंडितोए पोत पोताना प्राकृत व्याकरणमां प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची अने अपभ्रंश भाषाओनां स्वरूप दर्शावती वेळा जो क्यांय अर्धमागधी भाषानुं पण पूरेपूरुं स्वरूप बताववा कृपा करी होत तो आपणे तेओना अत्यंत ऋणी थात. पण ते महाशयो तरफथी तेवो प्रयत्न न थएल होवाथी अत्यारे हुं ' जैन साहित्यनी मूळ भाषा कई ? ' ए प्रश्नने चर्चवाना प्रसंग पहेलां ते संबंधे चाल्यो आवतो ' अर्धमागधीमयता ' के ' मागधीमयता ' नो प्रवाद त्यारे ज चर्ची शकुं, ज्यारे प्रथम अहीं अर्धमागधी अने मागधी भाषानुं पूरेपूरुं स्वरूप उपस्थित करी शकुं. ए हेतुथी ज प्रारंभमां प्रकृत चर्चाना मूळरूप ते बन्ने भाषाओना स्वरूपनी चर्चा करतो क्रमशः मारा अंतिम ध्येय सुधी पहोंचवा यथामति प्रयत्न करीश.

आ स्थळे मारे वाचकोनुं लक्ष्य ' अर्धमागधी ' शब्दनी व्युत्पत्ति तरफ विशेष खेंचवानुं छे. कारण के ते व्युत्पत्तिमां ज तेनुं खरूं रहस्य छुपाएलुं छे. ' अर्धमागधी ' शब्द ' अर्ध ' अने ' मागधी ' शब्दना एकीकरणथी बनेलो छे, ते वात सौ कोई समजी शके तेम छे. तद्गत ' अर्ध ' शब्द एक विशिष्ट अर्थने सूचवतो होय एम तेना पूर्व निपात उपरथी अवबोधी शकाय छे. साधारण रीते ' अर्ध ' शब्द ' लगभग अडधुं ' अने ' बराबर अडधुं ' ए

---

१ जुओ औपपातिक सूत्र (पृ० ७७)

२ जुओ आवश्यक सूत्र (पृष्ट० ६८)

बन्ने अर्थनो सूचक छे. जे समासमां ते ' अर्ध ' शब्द अवयविथी पूर्वना स्थानने शोभावतो होय, त्यां ते, ' बराबर अडधा ' अर्थने सूचववा साथे नान्यतर जातिमां रहे छे, अने जे समासमां ते (' अर्ध ' शब्द) अवयविथी पूर्वना के पछीना स्थानने अलंकृत करतो होय त्या, ते साधारण अर्थने जणावे छे, अने ते साथे तेने नरजातिमां रहेवुं पडे छे. आ हकिकत आदिम वैयाकरण पाणिनिजीए पोतानी अष्टाध्यायीमा " अर्धं नपुंसकम् । २।२।२। " ए सूत्रमां अने हेमचंद्रजीए " समेंऽशेऽर्धं नवा । ३।१।५४ । " ए सूत्रमां स्पष्टपणे जणावेली छे. अर्थात् ' मागध्या अर्धम्—अर्धमागधी ' ए व्युत्पत्तिथी बनतो अर्धमागधी शब्द एम स्पष्टपणे सूचवे छे के, जे भाषामां बराबर अडधी मागधी भाषा अने बराबर अडधी बीजी बीजी भाषाओ मिश्रित थएली होय, ते ज भाषा अर्धमागधी शब्दथी संबोधी शकाय. जो आपणे शब्दोना हिसाब लगावीए तो एम कल्पी शकाय के, जे भाषामां सो शब्दोमां पचास शब्दो तो मागधी भाषाना, अने पचास शब्दो बीजी बीजी भाषाना—प्राकृत, पाली, शौरसेनी अने पैशाची विगेरेना—मिश्रित थएला होय ते ज भाषा ' अर्धमागधी ' शब्दनो अर्थ धारण करी शके छे. परंतु एम तो न ज होई शके के, जे (साहित्यनी) भाषामां एकाद रूप मागधी भाषानुं होय अने बीजा बधां रूपो प्राकृत[1] के इतर भाषानां होय तेने अर्धमागधीनुं नाम घटी शके.

आ रीते हुं प्रसिद्ध वैयाकरणोनी साख आपवा उपरांत व्युत्पत्ति उपरथी पण अर्धमागधी शब्दना उपर जणावेला अर्थने ज स्थिर करूं छुं. अने ए ज अर्थने लक्ष्यमां राखी मारे अहीं सघळी चर्चा करवानी छे.

१ अहीं हुं ' प्राकृत ' तथा आगळ आवता ' सौराष्ट्री ' शब्दथी श्रीहेमचंद्र संकलित अष्टम अध्यायगत ते भाषाने विवक्षुं छुं के जे भाषानुं व्याकरण शौरसेनीना प्रकरण पहेला आवेलुं छे.

५

तीर्थंकर भाषित अर्थने गणधरो जे सूत्र रूपमां गुंथे छे ते सूत्रो कई भाषाए निबद्ध होय छे, तेना माटे जैन साहित्यमां नीचे प्रमाणेनो जूनो उल्लेख मळी आवे छे:

" पोराणमद्धमागह—
भासानिययं हवइ सुत्तं । "

अर्थात् " गणधरग्रथित पुरातन सूत्र, अर्धमागधी भाषामां होय छे." आमां आवेल अर्धमागध शब्दना अर्थने स्फुट करतां निशीथ-चूर्णिकार श्रीजिनदास महत्तरजी जणावे छे के—

" मगहद्धविसयभासानिबद्धं अद्धमागहं; अहवा अट्ठारसदेसीभासाणियतं अद्धमागधं "

—निशीथचूर्णि, लि. पृ. ३५२.

अर्थात् " मगधदेशनी अडधी भाषामां निबंधाएल ते अर्धमागध; अथवा अढार प्रकारनी देशी भाषामां नियत थएल ते अर्धमागध. "

मारा विचार प्रमाणे आर्य श्रीजिनदास महत्तरजीए जणावेल उपरनो अर्थ, में स्थिर करेल अर्थथी जुदो होय एम जणातुं नथी.

तेओ जे अढार प्रकारनी देशी भाषामां नियत सूत्रने अर्धमागधनुं नाम आपे छे, ते संबंधे कांइ सविशेष जणावता नथी, एटले माराथी ए जाणी शकातुं नथी के, अहीं तेओए अढार प्रकारमां कई कई देशी भाषाओनी विवक्षा करी छे. तो पण हुं एटलुं तो कल्पी शकुं छुं के, अंग साहित्यनो मुख्य संबंध श्री महावीरनी जन्मभूमि (मगधदेश) नी भाषा साथे होवाथी ते अढार प्रकारनी देशी भाषामां पण मागधी भाषानी प्रधानता होवी ज जोईए. वळी एथी ए पण संभवे छे के, मगधना निकटवर्ती बीजा बीजा प्रांतोनी भाषाओनो पण मागधीने संपर्क थएल होवाने लीधे बीजी बीजी प्रांतिक (देशी) भाषाओथी मिश्रित एवी मागधीने पण ते महत्तरजीए अर्धमागध कही होय.

आ रीते महत्तरजीए करेल अर्धमागधनी बन्ने

व्याख्याथी पण अहीं जणावेल 'अर्धमागधी' नो अर्थ संवादित थतो जणाय छे.

ए ज प्रकारे महर्षि मार्कंडेय पण पोताना 'प्राकृतसर्वस्व' नामना व्याकरणमां जणावे छे के—

"शौरसेन्या अदूरत्वाद् इयमेवार्धमागधी ।"

—प्राकृत सर्वस्व, पृ. १०३

अर्थात् "मगध देश अने शूरसेन देश पासे पासे होवाने लीधे मगधनी (मागधी) भाषाने शूरसेन देशनी भाषानो (शौरसेनीनो) संपर्क थएल होवाथी मागधी भाषाने ज अर्धमागधी समजवानी छे." शौरसेनी भाषामां प्राकृतनुं अने पालीनुं केटलुंक मिश्रण रहेतुं होवाथी तेना संपर्कवाळी मागधी भाषामां पण ते मिश्रण संभवे छे. एटले मार्कंडेयजीना आ लक्षणथी पण 'मागध्या अर्धम्' वाळी व्युत्पत्तिने जरा पण आंच आवती होय तेम जणातुं नथी.

आटला उपरथी एटलुं ज समजी शकाय छे के, गणधरो द्वारा गुंथाएल अंग-साहित्य तो मूळ अर्धमागधी भाषामां ज हतुं अने ते अर्धमागधी भाषा, बराबर अडधी मागधी अने अर्ध अंशमां बीजी बीजी पाळी विगेरे भाषाओथी मिश्रित थएली हती. आ हकिकत उपरनां प्रमाणोथी मारा विचार प्रमाणे निर्विवाद जेवी छे.

हवे हुं हालमां जे जैन आगम-साहित्य विद्यमान छे तेनी मुख्य भाषा कई छे, ते संबंधमां ऊहापोह करवा इच्छुं छुं.

आ प्रश्नने मारे बे दृष्टिए, विचारवानो छे—एक तो विद्यमान अंगसाहित्यनी उत्तरोत्तर थएल स्थितिनी दृष्टिए, अने बीजुं तेमां जणाती भाषानी दृष्टिए.

जे अंग साहित्य अत्यारे विद्यमान छे ते अनेक परिवर्तनो पामतुं पामतुं कई कई स्थितिओमांथी पसार थई आपणी पासे आवेलुं छे, ते बाबत नीचेनी हकिकत उपरथी जाणी शकाशे.

परम श्रमण श्रीमहावीरनुं वर्तन ज एक महोपदेशकनी गरज सारे तेवुं होवाथी अने तेमना तथा तेमना श्रमणोना आचार एटला बधा निवृत्तिपरायण हता के जेथी आत्म-निष्ठ एवा तेमनामांना कोईने, गुरु तरफथी प्राप्त थएल आत्मज्ञानना संक्षिप्त परंतु गंभीर उपदेशात्मक वाक्य-समूहोने लिपिबद्ध करवानी जरा पण जरूर हती नहीं. एटले तेओ ते उपदेशात्मक वाक्य-समूहोने पोतानी आत्मजागृति माटे जेवाने तेवा कंठस्थ राखता हता. अने ए उपदेशो बहुज टुंका वाक्योमां समाएला होवाथी ते सूत्र एवा नामे प्रसिद्ध थया हता. अने ए ज कारणथी अत्यारे उपलब्ध थता ते सूत्रोना विशाल विस्तारनुं पण सूत्र एवुं ज नाम प्रसिद्ध थई रह्युं छे. अर्थात् जे सूत्र शब्द, ते गणधर महाशयोना समये पोतानी ('सूचनात् सूत्रम्' वाळी) खरी व्युत्पत्तिने चरितार्थ करतो हतो, ते ज सूत्र शब्द, अत्यारे पोतानी ते व्युत्पत्तिने कोरे मूकी, जैन संप्रदायनी रूढिने वश थई, प्रमाणमां लाखो श्लोको जेटला गणाता (?) ग्रंथोने पण पोताना भावमां समाववा लाग्यो छे।

कहेवानी जरूर नथी के, ज्यां सुधी गणधरोना अनन्तर शिष्य एवा स्थविर महाशयोए ते संक्षिप्त सूत्रोने कण्ठस्थ राख्यां हतां त्यां सुधी तो तेनी अर्धमागधी जरा पण परिवर्तन नहीं पामी होय. पण ज्यारे ते सूत्रो शिष्य परंपरामां प्रचार पाम्यां हशे अने ते शिष्यपरंपरा भिन्न भिन्न देशोमां विहार करती हशे, त्यारे संभव छे के जरूर ते सूत्रोनी मूळ भाषा—अर्धमागधी भाषा—भिन्न भिन्न देशना संसर्गने लीधे, स्मृतिभ्रंशने लीधे अने उच्चारभेदने लीधे परिवर्तने पामवा लागी होय.

वधारे आगळ न जतां परम श्रमण महावीरना बीजा सैकानी ज वात तरफ लक्ष्य करतां जणाय छे के—"ज्यारे आर्य श्रीस्थूलभद्र विद्यमान हता त्यारे देशमां (मगधमां ?) एक साथे उपराउपर

---

१ जुओ रूपकपरिभाषा.

२. जुओ– परिशिष्टपर्व– (अष्टम सर्ग, श्लो. १९३ तथा नवम सर्ग, श्लो. ५५–५८)

महाभीषण बार दुकाळी पडी हती. ते समये साधुओनो संघ पोताना निर्वाह माटे समुद्र कांठाना प्रदेशमां रहेवा गयो हतो. त्यां साधुओ निर्वाहनी पीडाने लीधे कंठस्थ रहेल श्रुतने गणी सकना न हता, अने तेथी ते श्रुत विसरावा लाग्युं. आ रीते अन्नना दुकाळनी असर पवित्र श्रुत उपर पण एक सरखी पडवाथी एक दुकाळ्यानी जेवा ज ते श्रुतना पण हालहवाल थया. ज्यारे ते भीषण दुकाळ मटी सुकाळ थयो त्यारे पाटलीपुत्रमां (पटणामां) श्रीसंघ भेगो मळ्यो अने जे जेने याद हतुं ते बधुं एकठुं करायुं. आ रीते मांड मांड अगिआर अंगो संघायां. पण दृष्टिवाद नामनुं बारमुं अंग तो समूळगुं नाश पाम्या जेवुं ज थई गयुं हतुं. कारण के, ते समये आर्य भद्रबाहु एकला ज दृष्टिवादना अभ्यासी हता." आ उपरथी जाणी शकाय छे के, श्रीवीरना बीजा सैकाथी ज श्रुतनी छिन्नभिन्नता–श्रुतनी भाषामां अने भावोमां परिवर्तन,–न्यूनाधिकता–नी शरुआत थवा लागी. आपणा कमभाग्ये आ शरुआत एटलेथी ज अटकी नहीं, पण उत्तरोत्तर विशेष विशेष वधती गई. एटले के ते दुकाळी उतर्या पछी आगळ आवतां लगभग त्रणसें चारसें वर्षे–वीर निर्वाणथी पाचमां छठ्ठा सैकामां–आर्य श्रीस्कंदिल अने वज्रस्वामिनी निकटना समयमां तेवी ज एक बीजी भीषण बार दुकाळी आ देश पार करी हती. ते हकिकतनुं वर्णन आपतां जणाववामां आवे छे के–"बार वर्षनो भयंकर दुकाळ पड्ये साधुओ अन्नने माटे जुदे जुदे स्थले हिंडता होवाथी श्रुतनुं ग्रहण, गुणन अने चिंतन न करी शक्या. एथी ते श्रुत विप्रनष्ट थयुं, अने ज्यारे फरी वार सुकाळ थयो त्यारे मथुरामां श्रीस्कंदिलाचार्य प्रमुख संघे मोटो साधुसमुदाय भेगो करी जे जेने सांभर्युं ते बधुं कालिकश्रुत संघटित कर्युं." आ दुकाळे तो मांड मांड बची रहेल ते श्रुतनी घणी विशेष हानी करी. आ उद्धार शूरसेन देशना पाटनगर मथुरामां थएल होवाथी ते श्रुतमां शौरसेनी भाषानुं घणुं मिश्रण थवा साथे तेमां जुदां जुदां अनेक पाठांतरो पण वधवां लाग्यां.

हवे तो खेद साथे जणाववुं पडे छे के, ते विषम दुःखनो प्रसंग वीत्या पछी पण प्रकृति देवीनी अकृपाथी पाछी तेवी ज बार दुकाळीए श्रीवीरात् १० मा सैकामां देश उपर पोतानो पंजो चलाव्यो अने ते वखते तो घणा बहुश्रुतोनुं अवसान थवा साथे जे जीर्ण शीर्ण श्रुत रहेलुं हतुं ते पण बहु ज छिन्न भिन्न थई गयुं. आ थी ते समयना अंग साहित्यनी स्थिति साथे श्रीवीरना समयना अंग साहित्यनी तुलना करनारने, बे ओरमान भाई वच्चे जेटलुं अंतर होय तेटलुं अंतर, ते बे वच्चे लागे ए सर्वथा संघटितकल्प छे. ए विषम समयनी स्थिति दर्शावतां जणाववामां आवे छे के—

"श्रीदेवर्धिगणिक्षमाश्रमणेन श्रीवीराद् अशीत्यधिकनवशत (९८०) वर्षे जातेन द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षवशाद् बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ च जातायां + + + भविष्यद्भव्यलोकोपकाराय, श्रुतभक्तये च श्रीसंघाग्रहाद् मृतावशिष्टतदाकालीनसर्वसाधून् वलभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छिन्नावशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिता–ऽत्रुटितान् आगमालापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या संकलय्य पुस्तकारूढाः कृताः । ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्संकलनानन्तरं सर्वेषामपि आगमानां कर्ता श्रीदेवर्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः," समयसुन्दरगणीरचितसामाचारीशतके.

१–२. जुओ, श्रीमेरुतुंगसूरिनी विचारश्रेणी.

३. जुओ, नंदिचूर्णि, लि. पृ. ४.

४. कालिकश्रुत माटे जुओ नंदिसूत्र.

१. जुओ–प्रज्ञापना, आर्यदेशविचार.

२. बहु पाठभेदोथी मुंझाता श्रीअभयदेवसूरिजी जणावे छे के-

" अज्ञा वयं शास्त्रमिदं गभीरं
प्रायोऽस्य कूटानि च पुस्तकानि ।"
प्रश्नव्याकरणवृत्तिप्रारम्भे.

" किमपि स्फुटीकृतमिह स्फुटेऽ प्यर्थतः
सकष्टमतिदेशतो विविधवाचनातोऽपि यत् "
ज्ञाताधर्मकथावृत्तिप्रान्ते.

अर्थात् "श्रीदेवार्धिगणि क्षमश्रमणे, बार दुकाळीने लीधे घणा साधुओनो नाश थये अने अनेक बहुश्रुतोनो विच्छेद थये, श्रुत भक्तिथी प्रेराई भावी प्रजाना (आपणा) उपकार माटे श्रीवीरात् ९८० वर्षे श्रीसंघना आग्रहथी ते काळे बचेल साधुओने वलभीपुरमां बोलावी तेओना मुखथी अवशेष रहेल ओछा—वधता, त्रुटित अने अत्रुटित आगमना पाठोने अनुक्रमे पोतानी बुद्धिथी सांकळी पुस्तकारूढ कर्या. आवी रीते मूळमां सूत्रो गणधरोनां गुंथेला होवा छतां देवर्धिगणिए तेनुं पुनः संकलन करेलुं होवाथी ते बधा आगमोना कर्ता श्रीदेवार्धिगणि क्षमाश्रमण ज कहेवाय छे."

उपरनी हकिकतथी समजी शकाशे के गणधरोए गुंथेल सूत्रो (अंगो) उपर केवा केवा युगो पसर्या छे. जे साहित्य उपर कुदरत तरफथी ज आवो भीषण प्रकोप थाय ते साहित्य, परंपरामां एक सरखुं ज उतरी आवे, ए वात मारी कल्पनामां तो बंध बेसती नथी आवती. किंतु जे अंगसाहित्य अत्यारे विद्यमान छे ते दुकाळोना भीषण प्रहारोने लीधे काळ, रूढि, स्पर्धा अने स्वाच्छंद्यनां असह्य जखमोथी जखमाएल स्थितिमां आपणी पासे हयाती धरावे छे.

आ रीते अंग साहित्यनी उत्तरोत्तर थएल स्थितिना निरीक्षणथी आपणे समजी शकीए छीए के विद्यमान अंग साहित्य ते गणधरकृत अंगसाहित्यनी परिवर्तित प्रतिच्छाया छे. अने ए अनुमान करवाने उपरनां प्रमाणो पूरतां जणाय छे. ज्यारे अंगसाहित्यना मूळ भावोमां पण न्यूनाधिकता थवा लागी, त्यारे तेमां योजाएल बिचारी भाषा शी रीते स्थिर रही शके? एटले आ विद्यमान अंग साहित्यमां "मागध्या अर्ध"नी दृष्टिए अर्धमागधी भाषा पण टकी शकी नथी, तो पछी तेमां मागधी भाषानो प्रयोग तो शी रीते रही शके?

जो के वृद्धप्रवाद अने सांप्रदायिक परंपरा तो आ अंगोमां पण मागधी वा अर्धमागधी भाषा प्रयोजायानुं सूचवे छे, परंतु आपणे भाषादृष्टिए अंगोमां योजाएल भाषानुं परीक्षण करी ते प्रवादनी समूलता वा निर्मूलता जाणी लेवी जरूरनी छे. आ विषयने चर्चता पहेलां मारे ज्ञान सौकर्यने खातर मागधी भाषानुं पूरेपूरुं शब्दशरीर प्रथम अहीं देखाडवुं जोईए, जे द्वारा मागधी भाषाना शब्द शरीर साथे अंगसाहित्यना शब्दपिंडने सरखाववाथी उपरना प्रवादनी तथ्यता आपोआप जणाई आवे.

मागधी भाषानी प्रक्रियानो घणो भाग प्राकृत भाषानी प्रक्रियाने मळतो छे, एटले हुं ते मळता *भागनो उल्लेख नहीं करतां अहीं* तेना केटलाक अपवादोनो ज एक कोठो आपीश; अने साथे ते कोठामां प्राकृत भाषानां अने अंग साहित्यनां रूपो पण आपीश के जेथी ते अंग साहित्यनां रूपोनुं मागधीनां कयां कयां रूपो साथे विशेष साम्य छे ते शीघ्र तारवी शकाशे अने ते तारवणी उपरथी ज अंग साहित्यनी भाषानो निर्णय थवा साथे उपरना पारंपरिक प्रवादनुं प्रामाण्य पण प्रत्यक्ष थई जशे.

तुलनानी दृष्टिए रूपोनुं कोष्टक आ प्रमाणे छे.

संस्कृत.	प्राकृत.	मागधी.	अंगसाहित्य.
भीमः	भीमो	भीमे	भीमे, भीमो
भीमात्	भीमाओ	भीमादो भीमादु	भीमाओ
भीमस्य	भीमस्स	भीमस्स भीमाह	भीमस्स
भीमानाम्	भीमाणं	भीमाणं भीमाह	भीमाणं
अहम्	अहं	हगे	अहं
वयम्	अम्हे	हगे	अम्हे
कञ्चुकिन्!	कंचुइ!	कंचुइआ! कंचुइ!	०
राजन्!	राया!	लायं!	०

भगवन् !	भगवन्तो ! भयवं ! / भगवन्त !		०
भवान्	भवंतो	भवं	०
भगवान्	भगवंतो	भगवं	भगवं / भयवं
ति, ते	इ, ए	दि, दे	ति, ते. इ. ए.
२ पुरुष	पुरिस	पुलिश	पुरिस
समशरीर	समसरीर	शमशलील	समसरीर
काष्ट	कट्ठ	कस्ट	कट्ठ
हस्त	हत्थ	हस्त	हत्थ
पट्टन	पट्टण	पस्टण	पट्टण
सुष्ठु	सुट्ठु	शुस्टु	सुट्ठु
उपस्थित	उवट्ठिअ	उवस्तिद	उवट्ठिअ-त
अर्थ	अत्थ	अस्त	अत्थ—ट्ठ
जनपद	जणवय	यणवद	जणवय
अद्य	अज्ज	अय्य	अज्ज
यथा	जहा	यधा	जहा
अन्य	अन्न	अञ्ञ	अन्न-ण्ण
पुण्य	पुण्ण	पुञ्ञ	पुण्ण—न्न
प्रज्ञा	पण्णा	पञ्ञा	पण्णा
सर्वज्ञ	सव्वण्णु	सव्वञ्ञु	सव्वण्णु
अञ्जलि	अंजलि / अञ्जलि	अञ्जलि	अंजलि
व्रजति	वच्चइ	वञ्जदि	वच्चइ
गच्छामि	गच्छामि	गश्चामि	गच्छामि
मोक्ष	मोक्ख	मोᳵक	मोक्ख
यक्ष	जक्ख	यᳵक	जक्ख
संप्रेक्षते	संपेच्छइ	शंपस्कोदि	संपेहइ
तिष्ठति	चिट्ठइ	चिष्ठदि	चिट्ठइ
श्रुत	सुअ	सुद	सुअ
अन्तःपुर	अन्तेउर	उन्देउर	अन्तउर
तावत्	ताव	दाव	ताव
पर्यव	पज्जव	पय्यव / पज्जव	पज्जव

नाथ	नाह	नाध / नाह	नाह
इह	इह	इध	इह
गच्छत	गच्छह	गश्चध / गश्चह	गच्छह
भवइ	भवइ	भोदि / होदि	भवइ—ति
पूर्व	पुव्व	पूरव	पुव्व
कृत्वा	काऊण / करिऊण / करिअ	करिय / करिदूण / कडुअ	करित्ता
गत्वा	गमिऊण / गमिअ	गमिय / गमिदूण / गडुअ	गमित्ता / गच्छित्ता
गमिष्यति	गच्छिहिइ	गच्छिस्सिदि	गच्छिहिइ
इदानीम्	एण्हिं / एत्ताहे / इआणिं / दाणिं	दाणि	इआणिं / इयाणिं
तस्मात्	तम्हा	ता	तम्हा

उपरना कोष्टकमां ज्यां में १ नो अंक मूक्यो छे ते कोष्टक विभक्तिना विकारने लगतुं छे, अने ज्यां में २ नो अंक मूक्यो छे ते कोष्टक व्यंजनना विकारने सूचवे छे. उपरना कोष्टकमां बताव्या सिवायनी मागधीनी बीजी बधी प्रक्रिया प्राकृतनी जेवी ज छे जो के, उपरना कोष्टकथी अंग साहित्यनां रूपो. मागधी भाषानां रूपो साथे केटलुं साम्य छे, ते स्पष्ट जाणी शकाय तेम छे; तो पण मारे जणाववुं जोईए के, आटलां बधां मागधी भाषानां रूपो साथे अंग साहित्यनां मात्र एकाद बे ज रूपो साम्य धरावे छे—विभक्तिना विकारमां आवेल 'भीमे' अने 'भगवं' (बन्ने, प्रथमानां एकवचन

१ आ कोष्ठकनी वधु समजुती माटे जुओ हेमचं. अष्टम अध्याय.

छे) ए बे रूपनुं ज मागधी रूपो साथे साम्य ज-णाय छे. परंतु व्यंजन विकारमां तो एक पण रूप एवुं नथी जणातुं के जेनुं मागधीनां ते रूपो साथे साम्य होय.

आवी वस्तु स्थितिना लीधे सहज प्रश्न थाय छे के, जे अंग साहित्यमां रूपोमां मात्र बे ज रूपो मागधी जेवां होय अने बीजां बधां रूपो प्राकृत जेवां होय तो, शुं ते साहित्यनी भाषा मागधी ग-णाशे के प्राकृत ? आ प्रश्ननो जे उत्तर आवे छे ते ज उत्तर 'अत्यारना अंगसाहित्यनी भाषा कई ?' ए प्रश्नने लागु पडे छे.

समस्त अंगसाहित्यनी भाषामां मळी आवता मात्र मागधी भाषाना रूप द्वितयने ज आश्रीने ते भाषाने मागधी के अर्ध–मागधी कहेवानुं साहस कोई पण साक्षर करे ए संभवतुं नथी. आम होवा छतां प्राचीन प्रवादने मान आपवा खातर आचार्य हेमचंद्रजीए अने वृत्तिकार अभयदेवसूरिजीए मात्र दोढ पंक्ति द्वारा पुलिंगी प्रथमाना एकारान्त प्रत्ययवाळा रूपने आश्रीने विद्यमान अंगसाहित्यनी भाषानी अर्धमागधीमयता होवानुं जे जणाव्युं छे ते इतिहासमूलक छे, के श्रद्धामूलक छे ? ते वाचको पोते ज विचारी शकशे.

उपरना हेतुओथी हुं तो आ अनुमान उपर आव्यो छुं के, गणधर महाशयोना समयनुं अंग साहित्य, ज्यां सुधी कोई जातना परिवर्तनने पाम्युं न हतुं त्यां सुधी तेनुं अर्धमागधीत्व स्वीकारी शकाय, पण ज्यारे तेने पूर्वोक्त अनेक विषम कार-णोथी परिवर्तननी स्थितिमां वारंवार आववुं पड्युं त्यारे तेनां भाव अने भाषा ए बन्नेने लोकानुसारी थवानी जाणे फरज न पडी होय तेम बदलवा लाग्यां, अने आस्ते आस्ते तेनी समूळगी अर्धमागधी भाषा खसी जई तेनुं स्थान केटलाक समय सुधी मागधी मिश्रित शौरसेनीए लीधुं. अने पछी छेवटे वलभीपु-रमां थएल उद्धारने वखते तो ते शौरसेनी पण अन्तर्हित थई अने तेने स्थाने सौराष्ट्रना प्रभावे श्रीहे-माचार्यजीना आठमा अध्यायमां प्रयोजाएल प्राकृत भाषानो प्रयोग थयो. आम छतां तेनी प्राकृत भाषानी प्राचीनता कांई समूळगी विणसी नथी. एटले विद्य-मान अंगोमां पण केटलांक प्राचीन रूपो (आर्ष रूपो) रहेलां छे, पण ते मागधीनां तो नहीं ज. एथी विद्यमान अंग साहित्यने अर्धमागधीमय अंग साहि-त्यथी जुदुं मानवा साथे तेनी भाषाने पण आर्ष प्राकृत मिश्रित सौराष्ट्री प्राकृत कहेतां जरा पण अप्रामाण्यनो भय रहे तो होय, एवुं उपरना हेतु-ओथी जणातुं नथी.

छेवटे आ संबंधे विशेष विचार करी विद्वानो पोत पोतानो विशिष्ट अभिप्राय प्रकट करशे तो हुं मारा विचारोनी पुनः सत्यासत्यतानी कसोटी करी शकीश.*

"हरिभद्रसूरिनो समयनिर्णय."

[ले०—श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह, बी. ए.]

(१) मुनिश्री जिनविजयजी महाराजे हरिभद्रसूरि-ना समयनिर्णयना संबंधमां बहुपरिश्रमपूर्वक घणा प्रमाणो एकत्र करी जे ऊहापोह कर्यो छे अने तेना परिणाम रूपे जे समय तेमणे नक्की कर्यो छे ते संबं-धमां स्फुरी आवता मारा केटलाक विचारो हुं अहीं रजु करूं छुं.

आ विषयमां विशेष आधारभूत सबळ प्रमाण महाराजश्रीने दाक्षिण्यचिन्ह उर्फे उद्योतनसूरिनी कुवलयमाळा कथामांथी मळी आव्युं छे. ए कथामां, प्रस्तावनामां समरादित्य चरित्रनी प्रशंसा करतां " भवविरह " शब्दना प्रयोगथी हरिभद्रसूरिनो नि-र्देश करवामां आव्यो छे. तेमज प्रशस्तिमां हरिभद्र-सूरिने पोताना अध्यापकगुरु तरीके जणाव्या छे.

---

* आ निबंध में पूनामां मळेल प्रथम प्राच्यविद्यासंशोधक परिषद् माटे तैयार कर्यो हतो.—लेखक.

कुवलयमाळानी रचना शक संवत् ७०० मां थई. एटले ते उपरथी शक संवत् ७००—विक्रम संवत् ८३५—ई. स. ७७८ नो समय हरिभद्रसूरिनो निर्णीत थाय छे.

२) ए कथाकर्ता दाक्षिण्यचिन्ह संबंधी हकिकत प्रभावकचरित्रमां (जुओ, निर्णयसागर प्रेसनी आवृत्ति, पृ० २०१—२, श्लोको ८८—९७) मळी आवे छे. त्या तेमनो अने सिद्धर्षिनो परस्पर संवाद मुकेलो छे अने साथे सिद्धर्षिना गुरुभाई तरीके तेमने जणाव्या छे. आ वात जो सत्य होय तो सिद्धर्षिनो समय पण शक संवत् ७००—ई० स० ७७८ विक्रम संवत् ८३५ लगभग आवे. एक बीजी हकिकत (तेमां केटलुं वजुद छे ते तो कहेवाय नहीं) पण ध्यान देवा जेवी छे. जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्स हेरल्ड नामना मासिकना सने १९१५ ना जुलाई—अक्टोबरना अंकमां, पृ०, ३५१ उपर एक तपागच्छनी पट्टावली आपेली छे. ए पट्टावलीमां सिद्धर्षिने हरिभद्रसूरिना भाणेज तरीके लखेला छे. आ हकिकत अन्यत्र जोवामां आवती नथी. आना उपरथी हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि अने सिद्धर्षि त्रणे समकालीन ठरे तेवी सूचना मळी आवे छे.

३) सिद्धर्षिए हरिभद्रसूरिनो अनेक प्रकारे निर्देश कर्यो छे. एटले तेमनो समय हरिभद्रसूरिना समयनी साथे ज तपासवो पडे छे, उपर जणावेल हेरल्ड मासिकना अंकमां डॉ. जेकोबी तथा श्रीयुत मोतीचंद गिरधर कापडिआ वच्चे, सिद्धर्षिना समयना संबंधमां चालेलो पत्रव्यवहार छपाएलो छे. तेमां सिद्धर्षिनी तारीख बाबत घणीक चर्चा चर्चाणी छे. सुप्रसिद्ध संस्कृत कवि माघने प्रभाचन्द्रसूरि (प्रभावकचरित्रमां) सिद्धर्षिना काकाना दीकरा तरीके लखे छे. डॉ. जेकोबीना जणाव्या प्रमाणे (हेरल्ड, पत्रव्यवहार, पृ०२४४) माघकविना श्लोकोनो उपयोग लगभग ई. स. ८०० मां थएला वामनाचार्ये, तथा ई. स. ८५० मां थएला आनंदवर्धने करेलो छे, माटे माघकवि अने साथेसाथे सिद्धर्षि पण ई. स. ८०० पहेलां विद्यमान होवा जोईए. [अत्रे जणाववानी जरूर छे के माघ कविनो समय तपासवामां प्रो. मेक्डोनले ए मोटी भूल करेली छे के तेमणे वामनाचार्य तथा आनन्दवर्धन संबंधी हकिकत बिल्कुल ध्यानमां लीधीज नथी.]

उपमिति०नी प्रस्तावनामां डॉ. जेकोबीए बीजी हकिकतो साथे प्रभावकचरित्रमां जणाव्या मुजब माघ अने सिद्धर्षिना कौटुम्बिक संबंधनुं टेबल आपेलुं छे जे नीचे मुजब छे:—

सुप्रभदेव (वर्मलाट राजानो अमात्य)

दत्त — शुभंकर

माघ — सिद्ध

माघ कवि दत्तकना पुत्र अने सुप्रभदेवना पौत्र हता, एम तेमणे जाते शिशुपालवधमां लखेलुं छे. राजा वर्मलाट वसन्तगढना लेखमां जणाव्या मुजब सं० ६८२ मां राज्य करतो हतो. आटली हकिकत जाण्या पछी एटलुं तो चोकस मानवुं जोईए के सुप्रभदेव अने माघ वच्चे ओछामां ओछुं पचास वर्षनुं अन्तर होवुं जोईए. अर्थात् माघ कविनुं बाळपण संवत् ७३२ लगभग आवे छे, अने तेज समय सिद्धर्षिनो पण गणी शकाय. आ संवत् ७३२ ते ई स०६७५ नी बराबर थाय छे. [वसन्तगढ वाळो लेख जे संवत् आपे छे ते विक्रम संवत् छे के अन्य कोई संवत् छे, ते चोकस थवानी जरूर छे.]

४) उपरना बीजा अने त्रीजा फकरामां आपेली हकिकत चरित्र उपरथी लीधी छे. तेमां दंतकथा होय ते ना कबुल करी शकाय नहीं. परंतु तेनी तारवणी करतां जो तेमां सत्यांश मळी आवे तो, ते निर्मूल तो नहीं ज गणी शकाय. हरिभद्रसूरिनुं स्वर्गगमन सूचवनारी प्रसिद्ध गाथामां जे ५८५ मुं वर्ष आप्युं छे ते विक्रम संवत्नुं तो लई शकाय ज नहीं. कारण के हरिभद्र-

सूरि उद्योतनसूरि (शक वर्ष ७००) ना समकालीन हता, तेमज सिद्धर्षि पण प्रभावकचरित्रमां जणाव्या प्रमाणे माघ कवि (ई. स. ८०० पहेलां) अने उद्योतनसूरि (शक. सं. ७००) ना समकालीन हता, तेथी तेमणे आपेलुं ९६२ नुं वर्ष पण विक्रम संवत्नुं वर्ष न मानी शकाय. भर्तृहरि अने कुमारिल भट्टनां अवतरणो हरिभद्रसूरिना ग्रंथोमां मळे छे, तेथी पण महाराजश्री जिनविजयजी कहे छे तेम, ई. स. ७०० पूर्वे तो तेमनो समय मूकाय ज नहीं; अर्थात् आ रीते पण ५८५ मुं वर्ष ते विक्रमनुं तो न ज संभवी शके.

५) हरिभद्रसूरिना संबंधना अन्य उल्लेखो तपासीए. हेरल्डमानां उक्त पत्रव्यवहारना पृष्ट २५० मां मुनिसुन्दरसूरिए मानतुङ्गने बाणभट्टना समकालीन तरीके जणाव्यानी हकिकत छे. त्यां ज मानदेवसूरिने हरिभद्रना मित्रतरीके लख्यानो पण उल्लेख छे. मानतुङ्गसूरि, महावीरनी पट्टपरंपरामां वीसमा नंबरे छे अने मानदेवसूरि अट्ठावीसमा नंबरे छे. (जुओ, तेज हेरल्डमांनी पट्टावली, पृ. ३४७–३५०) बाणभट्ट राजा हर्षनो समकालीन होवाथी तेमो समय ई. स. ६२९–६४५ लेखाय छे. हवे वीसथी अट्ठावीसमां सूरि सुधीना वर्षोनो जो पत्तो लागे तो हरिभद्रसूरिना समयनो निर्णय, आ रीते पण, करी शकाय. आ उपरथी एटलुं तो स्पष्ट थाय छे के हरिभद्रसूरि ई. स. ६२९–६४५ पहेलां एटले विक्रम संवत् ६८६–७०२ पहेलां न ज होई शके. कारणके ए समय तो मानतुङ्ग सूरिनी विद्यमानतानो छे, जे हरिभद्रना मित्र मानदेवथी आठ पेढी पहेलां थई गया हता, [डॉ. जेकोबीथी आ स्थाने भूल थई गई छे (हेरल्ड, पत्रव्यवहार, पाने, २५०.). बाणभट्टनो समय गणवामां ई. स. ६२९–६४५ ना गाळामां ५७ वर्ष उमेरीने विक्रम संवत् तारववो जोईए तेने बदले भूलथी तेमणे उलटां ५७ वर्ष बाद कर्यां छे !] आ हकिकतथी पण हरिभद्रसूरिनुं ५८५ मुं वर्ष ते विक्रम संवत्नुं तो न ज होई शके, ते बाबत वाचक वर्ग सहज समजी शकशे.

आ स्थाने पट्टावलिओनी वधु मदद आपणे लई शकीए तेम नथी. कारण के तेनो परस्पर क्रम घणो ज गुंचवणीभरेलो होई, संवत्सरनी गणतरी नियमविनानी अने भूल उपर भूलोथी मिश्रित थएली छे. अने तेथी ते निरुपयोगी ठरे छे. हरिभद्रसूरिना स्वर्गवासना ५८५ मा वर्षने विक्रम संवत् तरीके मानी लई तेमां ४७० वर्ष उमेरीने तेने वीर संवत् १०५५ मुं नकी कर्युं ए प्रथम भूल थई ! बीजे ठेकाणे—पट्टावलिमां मूळ भूल एक भूल तरीके न रहेतां बन्ने—५८५ विक्रम संवत् अने १०५५ ने वीर संवत्—मूळ वस्तु तरीके मूकायां ! ! भूलनुं मूळ भुंसाई गयुं.

६) आप्रमाणे एक अगर बीजा ग्रंथकारनी साक्षी जोई, जे हकिकत मळी ते भेगी तपासीने अनुमानो कर्यां. हवे संवत्सरनी गणतरी शी साक्षी पूरे छे ते तपासीए. मूळ गाथामां ५८५ मुं वर्ष कया संवत्नुं छे ते जणावेलुं नथी. जिनविजयजी महाराजे बाधक प्रमाणो रजु करी स्पष्ट जणाव्युं छे के ५८५ ने विक्रम संवत् तरीके तो न ज लई शकाय. गुप्त संवत् लेतां तेमने उद्योतनसूरीनां वर्ष (७०० शक) नो मेळ नथी मळ्यो. कारण के तेमणे गुप्त संवत्नी शरुआत, अत्यारे भूलथी जे रीते गणाय छे तेम, शक वर्ष २४१ मां गणी छे. अने तेने लीधे ५८५ गुप्त वर्ष; तेमने शक ८२६ (५८५+२४१=८२६) नी बराबर लाग्युं, तेथी तेमणे गाथाने निर्मूळ ठरावी छे.

वस्तुतः तेम करी शकाय नहीं. ५८५ वर्ष कोई पण संवत्सरनां तो खरां ज. अने मारा नम्र मत मुजब ते गुप्त वर्ष ज छे. परंतु गुप्तवर्षनी जे गणना सामान्यतः अत्यारे गणाय छे, अने महाराजश्रीए पण तेज प्रकारे गणी छे, ते गणना यथार्थ नथी. गुप्त संवत्, जिनसेन आचार्ये पोताना हरिवंशपुराणमां,

गाथाओ उपरथी आपेला सरवाळा मुजब वीरात् ७२७ मां शरु थएलो समजाय छे. वीरात् ६०५ वर्षे अने ई. स.७८ वर्षे शक वर्षनी शरूआत थाय छे. आ हिसाबे वीरनिर्वाणनो समय ई. स. पूर्वे ५२७ मां नक्की थाय छे. अने ते मुजब गुप्त संवत् वीरात् ७२७ = ई. स. २०० = शक १२२ = विक्रम संवत् २५७ मां शरु थवो जोईए. आ गणतरी अनुसार हरिभद्रना स्वर्गवासना गाथोक्त ५८५ मा संवत्सरने गुप्त संवत् तरीके लेतां, ५८५ मां १२२वर्ष उमेरीए तो शक वर्ष ७०७ (५८५+१२२=७०७) थाय छे. एटले आ रीते उद्योतनसूरिए जणावेली हकिकत अने गाथा ऊपरथी मळती हकिकतनो विरोध निर्मूळ थई जाय छे. शक वर्ष २४१ मां (अल्बेरुनीना लेखानुसार) जे संवत्सरनी शरुआत मनाय छे ते गुप्त संवत् नथी परंतु गुप्त—वलभी संवत्, अर्थात् वलभी संवत् छे. आ बाबतनुं विशेष स्पष्टीकरण में मारा गुप्त संवत् परना लेखमा करेलुं छे. गुप्त संवत् माटे वाचकवर्ग आगळ एक उदाहरण रजु करीश. डॉ. जेकोबीए (हेरल्ड, पत्रव्यवहार पृ. २५० मां) मुनिसुंदरसूरिनी गुर्वावली परथी उल्लेख कर्यो छे के महावीरनी पट्टपरंपरामा एकत्रीशमा आचार्य रविप्रभसूरि विक्रम संवत् ७०० मां थया. हेरल्डना तेज अंकमां जे पट्टावली मुद्रित छे तेमां (पृ. ३५४ उपर) तेज सूरिने त्रीशमा गण्या छे. (आटली भूल तो माफ करी शकाय.) अने कह्युं छे के तेमणे नाड्डुल नगरमां सं० ९५२ मां श्री नेमिबिम्बनी प्रतिष्ठा करी हती. " विक्रम संवत् " ७०० अने " सं. " ९५२ मा परस्पर विरोध छे ते सहज जणाई आवे छे. परंतु ते ज संवत्ने आ नवी गणतरी प्रमाणेनो गुप्त संवत् मानीए अने तेमां २५७ वर्ष उमेरीए तो विक्रम संवत् ९५७ मळी आवे छे. अने आ रीते आ बन्ने लेखोनो परस्पर विरोध टळी जाय छे.

७) गुप्त संवत् ने बदले मूळथी ५८५ ने वलभी संवत् गणीए तो तेनी बराबर (५८५ मां ३७६ वर्ष उमेरतां) विक्रम संवत् ९६१ आवे. आ साल सिद्धर्षि महाराजे पोतानी कथानी प्रशस्तिमां जे ९६२ नी साल आपेली छे तेने मळती आवे छे. परंतु प्रश्न ए थाय छे के आवी भूल तेमना समयमां थवानो संभव खरो? अने सिद्धर्षि महाराजे पोते तेवी भूल करी होय तेम मनाय खरूं? आ बाबतमां कांई कही शकाय तेम नथी. परंतु अत्रे उपमिति० पर डॉ. जेकोबीए लखेली प्रस्तावना तथा तेना परिशिष्टोना अंते डॉ. एन. मीरोनोए आपेला श्लोकनुं स्मरण अस्थाने नहीं गणाय. श्रीचंद्रकेवलिचरित्रमा, सं. ५९८ मां सिद्धर्षिए आ ग्रंथ रच्यो हतो, एम लखेलुं छे. आ ५९८ ने वर्तमान गणतरीए गणाता गुप्त संवत् तरीके लेतां ए पूर्वोक्त ५८५ गुप्त संवत्नी नजीक आवी जाय छे. जो आथी सिद्धर्षिनी तारीख निर्णीत थती होय तो काळक्रम आ रीते आवे छे—

गुप्त संवत् ५७८ दाक्षिण्यचिन्हे ' कुवलयमाला ' रची.
" " ५८५ हरिभद्रसूरिनुं स्वर्गगमन.
" " ५८६ (मूळथी वलभी संवत् गणाईने ते परथी लखाएल विक्रम संवत् ९६२ मां) सिद्धर्षिए उपमिति भवप्रपंचा कथा रची.
" " ५९८ सिद्धर्षिए श्रीचन्द्रकेवलिचरित्र रच्युं.

अत्रे फरी याद देवानी जरूर छे के अहीं आपेलो गुप्त संवत् ५८५ ते ई. स. ७८५=विक्रम संवत् ९६१=शक संवत् ७०७ बराबर समजवो. हुं आ प्रमाणे कालगणना नोंधुं छुं. ते उपरथी जे निर्णय परिणामे सर्वमान्य थाय ते खरो. बाकी ज्योतिषनी गणतरीए गुप्त संवत् ५८५—५८७ मां, एटले ई. स. ७८५—७८७ मां नक्षत्र विगेरेनी हकिकत जे सिद्धर्षि महाराजे मूकी छे ते जो बराबर मळी रहे, तो भूल थएली छे तेम निश्चित मानी शकाय.

ज्योतिषनी गणतरी करी डॉ. जेकोबी ते बाबतनो निर्णय घणी सहेलाईथी करी शके तेम छे. साथे साथे एनी पण तपास थवी जोईए के नक्षत्रनो जे योग सिद्धर्षिजीए लख्यो छे ते फरी फरीने क्यारे आवे छे.

८)हवे सिद्धर्षिना हरिभद्रसूरि परत्वेना उल्लेखो तपासीए. 'अनागतं परिज्ञाय' पदनो अर्थ डॉ. जेकोबीए साक्षात् गुरु तरीके लीधो छे. अन्य सर्व ते पदनो अर्थ परोक्ष गुरु तरीके ले छे. परोक्ष गुरु तरीके लेतां एवी कल्पना थाय छे के हरिभद्रसूरिए विशिष्टज्ञानथी भावी जन्मनारा सिद्धर्षिने जाणीने "ललितविस्तरा" लखी. आ अर्थ डॉ. जेकोबीने अत्यंत असंगत लागे छे- मारा नम्र मत मुजब "अनगतं परिज्ञाय" पद सिद्धर्षिना अस्तित्व परत्वे न लेतां तेमना मानसिक परिवर्तनो परत्वे (Knowing his psychological development) समजीए तो क्लिष्टता दूर थाय छे. सिद्धर्षि महाराजनुं वलण शुं छे, ते समजी रहेल गुरुने तेमनुं भावी वलण अने देशकाल समजवां मुश्केल नथी; अने तेथी जाणे आगमचेतीपूर्वक तेमणे ते "ललित विस्तरा"नी रचना करी के जे सिद्धर्षीने परम उपकारक थई पडी.

उपमिति० ना आद्य प्रस्तावमां धर्मबोधकर गुरुनुं वर्णन आपेलुं छे. त्यां सदुपदेश आपवावाळा पूर्वसूरिओने विशिष्ट ज्ञानवाळा तथा भविष्य पारखनारा कह्या छे. कारण के तेमना उपदेशो (अगर उपदेशक ग्रंथो) भविष्यमां सर्व प्राणीने उपकारक रहे छे. एटले साक्षात् गुरु न होवा छतां साक्षात् गुरु अने परोक्ष गुरु वच्चे रहेतुं कालव्यवधान निकळी जाय छे. हरिभद्रसूरि विद्यमान न होय त्यारे आवा परोक्ष गुरुनी कक्षामां ते आवे तेमां नवाई नथी. प्रशस्तिमां "धर्मबोधकर गुरु"नो साक्षात्पणानो अर्थ लेवामां पण तेथी हानी नथी आवती. प्रशस्तिनो हेतु ग्रंथकारनो यत्किंचित् परिचय देवानो होईने तेमां वर्णवेल धर्मबोधकर गुरु साक्षात् गुरु तरीके ज लेवा जोईए. पोताना गुरुनी विशिष्टता माटे अगर विशेष ओळखाण माटे गुरुपरंपरानो निर्देश भले आवे पण तेनुं मूळ तो साक्षात्प्रसंगमां ज रहे. साक्षात्प्रसंग विनानो निर्देश प्रशस्तिमां तो, मारा नम्र मत मुजब, अस्थाने ज गणाय. दाक्षिण्य चिन्हनी प्रशस्ति जोईशुं तो आ हकिकत सारी रीते स्पष्ट थशे. उपमिति० नी रचना वखते हरिभद्रसूरि विद्यमान न होय तेथी "भावतः" शब्दना प्रयोग पूर्वक ("प्रस्तावे भावतो हन्त") अन्यत्र निर्देश पण साक्षात् प्रसंगने बाधक न रहे.

वळी पूर्वसूरिओ अने तेमनी कृतिओ सामान्यरीते सर्वने सदुपदेशकारक थई पडे, तो पछी सामान्य वर्गनो व्यवच्छेद करी पोताने माटे ज "ललित विस्तरा"नो बधो प्रयास कल्पवानुं लाबे काळे तो प्रयोजन ज नथी रहेतुं, कारण के लेखक पोते सर्वनी साथे उपकृतवर्गमां तो आवी ज जाय छे.

९) संवत्सर तथा जुदी जुदी कथाओपरथी हरिभद्रसूरि अने सिद्धर्षि माटेनी हकिकतो वाचकवर्ग आगळ विशेष चर्चा माटे रजू करी छे. कुवलयमाला तथा उपमिति० नी अन्य प्रतिओमा ते मुजब ज उल्लेखो छे के फेरफार छे ते तपासवानी जरूर छे. तेम छतां अने ज्योतिषनी गणतरी मेळवतां सर्व हकिकतनो निर्णय थशे ते निःसंदेह छे.

जैन साहित्यथी अज्ञातजन महाराजश्रीना लेख पर दृष्टिपात करतो लेख लखे, तेमां जो दोष दृष्टिगोचर थाय तो ते क्षन्तव्य गणवा याचना करे छे.

संपादकीय विचार.

भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिर अने जैन साहित्य संशोधन कार्य.

डॉ. सर रामकृष्ण गोपाल भांडारकरनुं नाम संस्कृत वाङ्मयना पारदर्शी विद्वान् तरीके अने पुरातत्त्वना परम-पण्डित तरीके जगत्प्रसिद्ध छे. तेमणे पोतानुं समग्र जीवन अने सर्वस्व साहित्यसेवाना चरणे समर्पण करी, भारतभूमिना भूतकालीन गौरवनो, अन्धकारना अखातमांथी उद्धार करवामां उत्तम भाग भजव्यो छे. अने तरुण भारतीओने भविष्यमां कई दिशामां प्रयत्न करवानी जरूरत छे, ते विषयमां आदर्शनो मार्ग आंकी आप्यो छे. गिर्वाणगिराना ए परम उपासक अने भरतभूमिना महान् भक्तनुं उज्ज्वल नाम अने आदर्श कार्य भविष्यनी प्रजानी दृष्टि आगळ हमेशां झळकतुं रहे अने तेना योगे ए प्रजा पोताना कर्तव्यनी पूर्तिमा प्रयत्नशील बनी रहे तेवा शुभ उद्देश्यथी, सर रामकृष्णना समानशील देशबन्धुओ, तेमना खास प्रशंसको अने मित्रो, तेमज उत्साही शिष्योए मळीने, तेमना जन्मनी ८० मी वर्षगांठना दिवसे, एटले ता. ६ जुलाई, १९१७ ना रोज, पूना शहरमां, 'भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिर (Bhandarkar Oriental Research Institute)' नामनी एक अत्यावश्यक संस्थानी स्थापना करी छे.

प्राच्यविद्यासंशोधननो अर्थ—पृथ्वीना पूर्वीय गोलार्द्धमां आवेला देशोमां (जेमां हिन्दुस्थान प्रधानपणुं भोगवे छे) वसती प्रजाओना विद्या, कला, साहित्य, इतिहास, आदिनी शोध–खोळ करवी, एवो थाय छे. यूरोप अने अमेरिका जेवा विदेशोमां आ विषयनां शोधखोळ करनारी अनेक संस्थाओ स्थापित थएली छे. ए संस्थाओमां अनेक मोटा मोटा अभ्यासीओ अने अध्यापको सतत कार्य कर्या करे छे,—प्रतिवर्ष नवी नवी शोधो करी जगत् आगळ रजु करता रहे छे. परंतु जे प्रजानी संस्कृतिनी शोधखोळ माटे ए विदेशी लोको एटला उमंगथी कार्य कर्या करे छे ते प्रजाना खुद पोताना देशमां तो एवी एक पण संस्था आज सुधीमां अस्तित्वमां आवी न हती, ए खरेखर देशना अने देश उपर राजकर्त्री सत्ताना माटे पूर्ण लज्जाजनक बाबत छे. अस्तु सर रामकृष्णपंतना पुण्य निमित्ते भारतने हवे आवी जातनी एक व्यापक संस्थानी प्राप्ति थई छे, अने तेथी ए विषयना रसिकोने आनंद थाय ते स्वाभाविक ज छे.

ए संस्थानी स्थापनानो मुख्य उद्देश्य ए छे के—प्राच्यविद्यानी शोधखोळमां रस लेनारा विद्वानो अने विद्यार्थिओने अपेक्षित एवुं सघळुं साहित्य पूरूं पाडी शके तेवुं एक अद्यतन (up to date) पुस्तकालय स्थापन करवुं. ए पुस्तकालयमां सघळी जातना हस्तलिखित अने मुद्रित पुस्तको, जुदा जुदा देशो अने जुदी जुदी भाषाओमां प्रकट थता आ विषयना सघळां सामयिक अने नियतकालिक पत्रो अने रिपोर्टो, तथा आवी ज जातनुं प्रकट थतुं बीजुं विविध प्रकारनुं समग्र साहित्य, एकत्र संगृहीत करवामां आवशे.

बीजो मुख्य उद्देश्य आ संस्थानो ए पण छे के—आवी शोधखोळनी प्रवृत्तिमां रस लेवानी इच्छा राखनारा ग्रेज्युएटो अने पण्डितो—शास्त्रिओने, संशोधन विद्यानुं अर्वाचीन पद्धतिए उत्तम शिक्षण आपी नवा संशोधको तैयार करवा.

आ संस्थाना एवा उच्च उद्देश्यो तथा एमां कार्य करवा माटे जोडाएला निःस्वार्थ स्कॉलरोना सतत

प्रयत्नथी संतुष्ट थई, मुंबईनी सरकारे पोताना कबजामां जे, डेक्कन कॉलेजमां संरक्षित जुनां हस्तलिखित पुस्तकोनो सुप्रसिद्ध अमूल्य संग्रह हतो, ते आ संस्थाने स्वाधीन करी, आ कार्यमां प्रशंसनीय उदारता अने मायाळु सहानुभूति देखाडी छे. तेवी ज रीते डॉ. सर रामकृष्णपंते पण पोताना लांबा अने मानभरेला जीवनमां संगृहीत करेलां विविध भाषा अने विविध जातनां पुस्तकोनो मोटो भंडार, ए संस्थाने अर्पण करी, ए बाबतनी संस्थानी प्रधान आवश्यकताने केटलेक अंशे पूर्ण करी छे.

दानवीर पारसी गृहस्थ तातावन्धुओए, आ संस्थाने सौथी प्रथम एक सारा प्रमाणमां आर्थिक मदत करी आ कार्यने प्रारंभिक गती आपी, धीमी चाले, पण मक्कम पणे चालतुं कर्युं छे. तातावन्धुओना दानथी संस्थानुं प्रथम मकान बांधवामां आव्युं छे, अने तेनुं नाम 'ताता रीसर्च हॉल' एवुं राखवामां आव्युं छे. उपर जणावेला बधां पुस्तको हाल तुरतमां ए हॉलमां ज स्थापन करेलां छे. ता. ६, जुलाई, १९१७ ना दिवसे मुंबईना माजी गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डनना हाथे ए संस्थानो उद्घाटन—समारंभ करवामां आव्यो हतो.

* *
*

डेकन कॉलेजमांथी आ संस्थानी स्वाधीनतामां आवेला हस्तलिखित पुस्तकोना महान् अने अमूल्य संग्रहमां जैन पुस्तकोनी संख्या घणी मोटी अने घणी किंमती छे. एमां ६०० जेटला ग्रंथो ताडपत्र उपर लखेला छे अने लगभग ६००० जेटला कागळ उपर लखेला छे. ए ग्रंथोमां केटलाक तो एवा अपूर्व छे के जेनी बीजी नकल अन्यत्र क्यांए जोवामां आवती नथी. पाटण, खंभात, जेसलमेर, बीकानेर, आदि स्थळोमां जे जैनोना जुना पुस्तक भंडारो हता तेमांथी आ बधां पुस्तको सरकारे म्होंमांग्या पैसा आपीने खरीद कर्यां छे; अने आवी रीते लाखो रुपिआना पुस्तको ए संग्रहमां संगृहीत थएलां छे. आटली मोटी संख्यामां जैन ग्रंथो दुनियानी बीजी कोई लाईब्रेरीमां नथी. आ कारणथी, ए पुस्तकोना उत्तम निमित्ते जैन समाज तरफथी हार्दिक सहानुभूति अने आर्थिक सहायता मळे एवी इच्छाथी, आ संस्थाना निःस्वार्थ कार्यवाहको मुंबईना केटलाक आपणा जैन भाईओने मळ्या अने तेमनी साथे आ संबन्धमां केटलीक वातचीत करी, जैन समाजना विशेष परिचयमां आववा तेमणे प्रयत्न कर्यो. ए प्रयत्ननो परिणाम केम अने केवो आव्यो तेनो टूंक अहेवाल, आ संस्था तरफथी छेल्ला जुलाई महिनामां बहार पडेला ' एनाल्स ऑफ धी भाण्डारकर ओ. री. इन्स्टीट्यूट' ना प्रथम अंकमां आपेला वर्किंग कमीटीना रीपोर्टना ५३ मां पान उपर नीचे प्रमाणे आपेलो छे.

'The opening of the Institute by His Excellency had already made the Institute's name well-known in Bombay and elsewhere, and the Secretaries lost no time in availing themselves of this opportunity. They approached some of the big merchants of Bombay and especially the leaders of the Jain community. After repeated visits to Bombay and interviews with various persons, it was possible to arrange for a meeting of the Jain community in Godiji Maharaja's Upas'raya on 17th February 1918 under the presidentship of Pravartaka Kantivijayaji Maharaja. Dr. Belvalkar and Dr. Sirdesai spoke there on behalf of the Institute, explaining its objects and calling upon the Jain community to do their own share for the cause, which by reason of the fact that the Deccan College MSS. Library was specially rich in Jain works, had a special claim upon them. Shet Gulabchand Devchand and others also made appropriate speeches. And a committee was appointed to collect subscriptions from the leaders of the

Jain community. Pravartaka Shri Kantivijayaji in conclusion urged upon the audience to do their utmost to help the noble cause, which was of more spiritual significance than the mere accumulation of commercial gains.

It is unnecessary to recount here the various ups and downs which our negotiations with the Jain community had to pass through, raising at times high hopes of our being immediately able to secure Rs. 25 or even 50 thousand that the community thought they would contribute, and at another time making us dispair of being able to collect for all this ado even Rs. 5,000. Suffice it to say, that, thanks to the energy and untiring efforts of Muniraj Jinavijayji, the Jain community empowered him on the occasion of our first Anniversary (6th July 1918) to make the following announcement:—

मान्यवर प्रमुख महोदय, और अन्य सभ्यवृन्द,

आप जानते ही हैं कि इस संस्थाके स्थापन करनेका मुख्य उद्देश्य, भारतीय साहित्यका संशोधन और प्रकाशन करनेका है। भारतीय साहित्यमें वैदिकधर्म, जैनधर्म और बौद्धधर्म तीनों धर्मों के साहित्यका समावेश होता है। इस संस्थाका आदर्श जातीय और धार्मिक भेदभावकी दृष्टिसे विमुक्त हो कर कार्य करनेका है। अतः इसके सम्मान्य संचालक महाशयोने कुछ समय पहले जैन समाजके कतिपय गृहस्थोंके साथ इस संस्थाके बारेमें कुछ ज्ञातव्य बातें कही थीं और जैनसमाजको भी इस इन्स्टीटयुटमें कुछ सहायता और सहानुभूति दिखलानेके लिये निवेदन किया था। मुझे कहनेके लिए हर्ष होता है कि जैन समाज इस संस्थामें अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है और मुझे निश्चित सूचना मिली है, कि हमारे उत्साही सज्जन इस इन्स्टीटयुट को सहायतार्थ २५ हजार रुपयेका दान करनेका संकल्प कर थोडे ही समयमें वह द्रव्य समर्पण किया चाहते हैं। यह बात इस इन्स्टीटयुटके लिये आरंभ ही में मंगल समान है। और इससे संस्थाकी लोकप्रियता, उपयोगिता और भाविमहत्ताका सूचन होता है। अतएव आशा है कि यह खबर यहां पर उपस्थित सब सज्जनोंको खुशी दिलानेवाली होगी।

The following are the terms of the agreement that passed between the Working Committee, and the Secretary Jain Conference:—

1. Should the Jain Committee agree to contribute a sum of Rs. 25,000 (twenty-five thousand) as free donation to the Institute, the Institute would in return—

(a) give the individual donors the usual privileges of Life-members, Benefactors, Vice-Patrons or Patrons according to the amount of their contribution;

(b) inscribe on a tablet the names of individual donors of Rs. 10,000 (ten thousand) or more, should the donors so wish it;

(c) agree to devote a due proportion (about ¼th) of such sums as might be available for publication to the publication of Jain works; and

(d) set apart ¾ths of the net sale proceeds of the Jain works so published for Jain purposes exclusively.

2. Should the Jain Community agree to further contribute an additional sum of Rs. 25,000 (twenty-five thousand) the Institute undertakes to

(a) erect, with the money thus made available, one of the side-halls (estimated to cost about Rs. 30,000) and name it suitably in consultation with the donor (should there be only one such) or the Jain Association; *or*

(*b*) set apart this amount as a permanent fund the interest of which (less five per cent, deducted as contribution for the general funds of the Institute) would be exclusively devoted to such Jain purposes as the Association might mention.

तात्पर्य—नामदार गवर्नरना हाथे आ संस्थानी उद्घाटन क्रिया थई गया पछी मुंबई विगेरे स्थळोमां आ संस्था प्रसिद्धि पामी चुकी हती. अने तेथी सेक्रेटरीओ आ अवसरनो लाभ लेवामां बिलकुल ढील न करतां तुरतज मुंबईना केटलाक मोटा व्यापारिओ पासे गया हता. त्यां खास करीने तेमणे जैनकोमना केटलाक आगेवानोनी मुलाकात लीधी. आ प्रमाणे अनेकवार मुंबई जई आव्या पछी अने अनेक गृहस्थोनी साथे आ विषयमां वातचीत थया पछी जैन समाजनी एक मीटिंग भरवानी गोठवण थई शकी हती. आ मीटिंग ता. १७ फेब्रुआरी, १९१८ ना दिवसे गोडीजीना जैन उपाश्रयमां प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजी महाराजना प्रमुखपणा नीचे मळी हती. संस्था तरफथी डॉ. बेल्वलकर अने डॉ. सरदेसाईनां भाषणो थयां हतां अने तेमां संस्थाना उद्देश्यो समजाववा साथे जैनकोमने आ कार्यमां पोतानो भाग भजववा माटे निवेदन करवामां आव्युं हतुं. आ शुभ कार्यमां जैनकोमने खास सहानुभूति बतावावानुं कारण ए हतुं के डेक्कन कॉलेजना हस्त लिखित पुस्तकोमां मोटी संख्या जैनधर्मना ग्रन्थोनी छे अने तेटला माटे तेमनी सहानुभूति उपर ए संस्थानो हक छे. शेठ गुलाबचंद देवचंद आदि गृहस्थोए पण ए मीटिंगमां प्रसंगोचित भाषणो कर्यां हतां. ते पछी, फंड भेगो करवा माटे जैनकोमना केटलाक आगेवानोनी एक कमिटी नीमवामां आवी हती. छेवटे, प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी महाराजे श्रोताजनोने आ उमदा कार्यमां मदत करवा माटे पोताथी बनतुं करवा प्रेरणा करी हती. तेमणे जणाव्युं हतुं के आ कार्यनी उपयोगिता छे, ते आध्यात्मिक दृष्टिए छे, व्यावहारिक के आर्थिक दृष्टिए आ बाबत जोवानी नथी. इत्यादि.

जैनकोमनी साथेना अमारा कोलकरार करवाना अंगे केवा केवा प्रकारनी मुस्केलिओ उभी थवा पामी छे तेनुं आ स्थळे सविस्तर वर्णन करवुं अनावश्यक छे. आ कोलकरारनी भांजगड थवा दरम्यान जैनगृहस्थोना सूचववा उपरथी केटलीक वखते अमने आशा थती के, ए कोम पासेथी २५–५० हजार रुपिआ प्राप्त करवा अमे शक्तिमान् थईशुं, त्यारे केटलीक वखते एवी निराशा थती के आटली बधी भांजगड के वाटाघाटना परिणाममां मात्र पांच हजार रुपिआनो ज लाभ थवानो छे. छेवटमां अमे मात्र मुनि जिनविजयजीने धन्यवाद आपीए छीए के जेमना उत्साह अने अश्रान्त प्रयत्नने लईने संस्थानी पहेली संवत्सरी (ता. ६, जुलाई, १९१८) ना प्रसंगे जैन समाज तरफथी निम्न लिखित उद्गार प्रकट करवा तेओ अधिकारी थया हता.

× × × ×

जैन कोन्फरन्सना सेक्रेटरी अने आ संस्थाना कार्यकारी मंडळ वच्चेना करारनी शरतो नीचे प्रमाणे थएली छे:—

१—जैन कोम तरफथी आ संस्थाने रु.२१००० नी रकम, खास कोई पण प्रकारना विशिष्ट प्रतिबन्ध सिवाय जो दान करवामां आवशे तो संस्था तेना बदलामां नीचे आपेली शरतो कबूल करशे.

(अ) व्यक्तिगत दाताओने, तेमनी बक्षीसना प्रमाणमां, संस्था तेमने पेट्रन, वाईस पेट्रन, बेनीफेक्टर अने लाईफ मेम्बरना साधारण हको बक्षशे.

(ब) १० हजार अथवा तेथी अधिक रकम आपनार दानी गृहस्थनुं, तेमनी इच्छा हशे तो, तकती उपर नाम कोतरवामां आवशे.

(क) पुस्तक प्रकाशन कार्यमां जे रकम संस्थाने मळशे तेनो योग्य हिस्सो—लगभग ३ जैनग्रन्थ प्रकाशनना कार्यमां खर्च करवा कबुलात आपशे. अने

(ख) छपाएला जैनग्रन्थोना वेचाणना खरच खुटण बाद करतां रहेला नफानी ३ रकम सर्वथा जैन साहित्यना अर्थे जूदी राखी मूकवामां आवशे.

२—आ उपरांत, जैन समाज वधारानी रु० २५००० नी रकम आपवा कबुलात आपशे तो संस्था तरफथी तेना बदलामां

(अ) संस्थानो जे विद्यमान हॉल छे तेनी बाजूमां एक हॉल (जेना खर्चनो अडसट्टो रु. ३०००० नो करेलो छे) बांधवामां आवशे, अने ते दाता (जो ते एक व्यक्ति हशे तो) नी अथवा जैन समाजनी सम्मति अनुसार तेनुं योग्य नाम आपवामां आवशे. अथवा

(ब) आ रकम एक स्थायी फंडना रूपमां अलग राखवामां आवशे अने तेना व्याजनी रकमनो, (संस्थाना साधारण फंड माटे तेमांथी पांच टका काढी लई) जे जे कार्यमां उपयोग करवानुं जैन समाज सूचवशे ते ते कार्यमां तेनो उपयोग करवामां आवशे.

आ रीपोर्टमां, उपर मारूं नाम लेवामां आव्युं छे तेथी ए सम्बन्धमां मारे अहीं केटलोक खुलासो करवानी आवश्यकता छे. आ रीपोर्टमा प्रारंभमां जणाव्या प्रमाणे ज्यारे मुंबईना गोडीजीना जैन उपाश्रयमां प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी म०ना प्रमुखपणा नीचे, आ संस्थाने जैनसमाज तरफथी सहायता करवा माटे जे मीटिंग मळी हती ते वखते हुं पण त्यां हाजर हतो. संस्था तरफथी डॉ. बेल्वलकर विगेरेए जे भाषणो आप्यां हतां तेमां, संस्थानी स्वाधीनतामां आवेला विशाल जैन साहित्यनी केटलीक स्थूल रूपरेखानुं पण वर्णन करवामां आव्युं हतुं. ए वर्णन सांभळी मारा मनमां ते बधुं साहित्य जोवानी प्रबल उत्कंठा थई आवी, अने तेथी, हुं मुंबईथी विहार करी अहीं (पूनामां) आव्यो. अहीं आव्या पछी, ए संस्थाना कार्यवाहको साथे विशेष परिचय थयो. मुंबईमां जे मीटिंग भराणी हती अने तेमां जे आ कार्यमां मदद करवा माटे केटलाएक भाईओनी कमीटी नीमवामां आवी हती, तेनुं परिणाम अंते शून्य जेवुं जणातुं लागतुं होवाथी, ए लोकोना मनमा बहु ज निराशा थई आवी हती. मारो समागम थया पछी, ए कार्यमां प्रयत्न करवा मने ज ए भाईओ खास प्रेरणा करवा लाग्या. त्यारे मने बहु मुंझवण थवा लागी. मारी परिस्थितिनो विचार जणावतां में, प्रथम तो ए भाईओने एम अ चोख्खो जवाप आप्यो के, आ कार्यमां, मारा जेवा एक अज्ञातमार्गी, एकांतवासी अने एकाकी रमता (अथवा रखडता) भिक्षुए भाग लेवाथी कांई सफळता मळे तेम नथी, कारण के पैसा आपनारा हमेशां कार्यनी उपयोगिता—अनुपयोगितानो विचार करवा के समजवा जेटली फुरसदवाळा होता नथी अने तेथी सीधा—सादा माणसना कहेवा उपरथी तेओ खीसामांथी चेक काढी आपे, एवी आशा राखवी मूर्खता गणाय. लोको हमेशां म्होंढुं जोई चांदलो करवानी टेवथी टेवाई रहेला छे, तेथी तेवा मोटा म्होंढावाळा माणसना कपाळे ज तेओ चंदन—चोखा चोंटाडवा तैयार थाय छे; माटे, आ कार्यमां तो, कोई। बहुश्रुतपदविभूषित, बहुजनसम्मत अने बहुशिष्यपरिवृत गणाता नामवर आचार्यनी सेवा-स्तवना करवाथी तमारी आशा सफल थाय तेम छे. परंतु, मने ए संस्थाहस्तक रहेलां समग्र जैनपुस्तकोने ध्यानपूर्वक जोवानी अने तेमां छुपाएलां विविध ऐतिहासिक साधनो—प्रमाणोनुं विस्तृत टांचण करी लेवानो प्रबल लोभ हतो, तेथी विचार थयो के जो हुं आ लोकोने उपर प्रमाणेनो सूको जवाप आपीने ज

बेसी रहीश तो, जे कार्य माटे हुं अहीं आव्यो छुं ते यथेष्ट रीते पूर्ण थाय तेम नथी. कारण के ए भाई-ओनी प्रसन्नता भरेली सहानुभूति सिवाय माराथी ए विशाल जैन साहित्यनुं स्वेच्छापूर्वक निरीक्षण करी शकाय तेम संभवतुं नथी. बीजुं, संस्थानुं कार्य पण मने बहु ज उपयोगी अने अत्युत्तम जणायुं. ए संस्थाने जो प्रारंभमां जैन समाज तरफथी सारी सहायता मळे तो, ते, समाज अने देश—बन्नेनी दृष्टिए एक मानप्रद कार्य गणाशे. जैन समाज पोताना निर्जीव खाताओमां ज्यारे दर वर्ष हजारो—लाखो-रूपिआ (फळनी आकांक्षा वगर ज ?) खर्चे छे त्यारे आवा एक सजीवन अने सार्वजनिक खातामां २५—५०हजार रूपिआ आपवा तेने कांई हिसाबमां नथी. तेम ज आज सुधीमां, आवी जातना कोई पण जैनेतर सज्जनो जैनसमाज पासे विशिष्ट रीते सहायता मांगवा आव्या नथी अने जो आ प्रसंगे आव्या छे तो तेमने निराश मने पाछा वाळवामां जैन कोमने एक प्रकारनुं कलंक जेवुं छे. तथा ताता बन्धुओ जेवा पारसी सज्जनोए, के जेमना साहित्य के धर्मनो ए संस्था साथे कोई पण प्रकारनो सम्बन्ध नथी, तेमणे सौथी प्रथम एक उदार रकम आपी पारसीकोमनी किर्ति वधारी छे, त्यारे जैनसमाजनो तो, ए संस्थामां एक दृष्टिए स्वार्थ पण छे; तेथी जो कांईक सहायता आपवामां आवे तो परमार्थ साथे स्वार्थ साधन पण थाय तेम छे. आ बधा विचारोना लीधे, मने एमां यथाशक्ति प्रयत्न करी जोवानुं साहस थई आव्युं. अने तदनुसार, में केटलाएक परिचित अने साहित्यप्रिय गृहस्थोने, आ कार्यमां कांईक सहायता आपवा—अपाववा माटे, प्रत्यक्षमां तेम ज पत्रो द्वारा सूचनाओ करवा माडी. तेना परिणामे, केटलाक भाईओनी आशा आपनारी अने विश्वास भरेली सम्मतिथी, में, ए संस्थाना प्रथम वार्षिकोत्सवना मोटा मेळावडा प्रसंगे, उपर जणाव्या प्रमाणे, २५ हजार रूपिआ, जैनसमाज तरफथी ए संस्थाने भेट आपवानी कबूलात आपवानुं साहस कर्युं हतुं. अने तेना बदलामां, संस्था पासेथी, केटलीक वाटाघाट कर्या पछी, उपर कलम १ मां जणाव्या प्रमाणे शरतो कबूल कराववामां आवी हती.

जैन समाजना सद्भाग्ये, में आपेली उपरोक्त कबूलातना समाचार वर्तमानपत्रोमांथी कलकत्ता निवासी जैनजातिशिरोभूषण धर्मप्रिय बाबु श्रीबद्रीदासजी मुकीमना सुपुत्र बाबू श्रीराजकुमार सिंघजीनी जाणमां आव्या अने तेथी तेमणे मने एक पत्र द्वारा ए संबन्धमां विशेष हकीकत जणाववानी सूचना करी. ते ज प्रसंगे वडोदरा निवासी अने गायकवाड सरकारना मानवंता झवेरी सेठ लालभाई कल्याणभाई कार्य प्रसंगे अहीं (पूनामां) आवतां मने मळवा आव्या. तेमने प्रत्यक्षमां ए संबंधी बधी हकीकत समजावतां, तेम ज उक्त बाबुजीने सविस्तर पत्र लखी मोकलतां, ए बन्ने उत्साही, उदार अने उमंगी सद्गृहस्थोए आ कार्यमां यथेष्ट मदत आपवा—अपाववानो भार आनंदपूर्वक पोताना माथे उपाडी लेवानो स्वीकार कर्यो. थोडा ज दिवस पछी मने बाबू श्रीराजकुमारसिंघजीनो एक बीजो पत्र आव्यो. तेमां तेमणे २५ हजार ज नहीं परंतु ५० हजारनी मोटी रकम भेगी करी आपवानी इच्छा प्रदर्शित करी, अने ए बीजी २५ हजारनी वधारानी रकमना बदलामां जैनकोमना अथवा कोई जैन गृहस्थना नामे एक हॉल बांधवा संबंधी व्यवस्था करवानुं जणाव्युं. बाबू साहेब पोतानी पूरी लागणी अने वजनदार प्रयत्नना लीधे थोडा ज दिवसोमां जुदा जुदा सद्गृहस्थो पासेथी आपवा कबूलेली रकमनां मोटा भागनां वचनो मेळवी लीधां हतां. तथा २५ हजारनी सामटी एक नादर रकम, दानवीर सेठ हीरजी खेतसी पासेथी तेमना नामे लाईब्रेरी हॉल बंधाववानी शरते, लखावी लीधी हती.

आवी रीते आ कार्यने पार उतारवानुं अने ते द्वारा जैन समाजनुं गौरव वधारवा साथे जैनसाहित्यना

संशोधन माटे एक नवुं द्वार उघाडी आपवानुं खरेखरुं मान बाबू श्रीराजकुमारसिंघजी अने सेठ श्रीलालभाई ए बन्ने सज्जनोने घटे छे. तेओ ज वास्तविक धन्य-वादने पात्र छे. तेमना ज सुप्रयत्न अने प्रारंभिक उदारताने लीधे आ कार्य मूर्तिमंत स्वरूप प्राप्त करी शक्युं छे.

परंतु, आपणे जैनो आरंभे शूरा गणाईए छीए. कोई पण कार्यनो प्रारंभ करतां जेटलो उत्साह आपणे धरावीए अने बतावीए छीए तेटलो उत्साह अंत सुधी आपणामां रहेतो नथी. अने तेथी आपणुं कोई पण कार्य वीसेविश्वा सफळ थई शकतुं नथी. आपणा समाजनुं ए जन्मसिद्ध लक्षण आ कार्यमां पण आवीने ऊभुं ज रह्युं छे. शरुआत करती वखते बे ज दिवसमां जेटली रकम आ कार्य माटे उक्त बन्ने भाईओ अन्य गृहस्थो पासेथी भरावी शक्या हता तेटली रकम, ते गृहस्थो पासेथी उघरावीने हजी सुधी अहीं पहोंचाडी पण शक्या नथी. तेम ज ८–१० हजारनां वचनो ज लेवानां बाकी हतां ते हजी सुधी लेवायां नथी. संस्थानी मूळ शरत एवी हती के, १९१८ ना डीसेंबरना अंत सुधीमां जो कबूलेली बधी रकम संस्थाने स्वाधीन करवामां आवशे तो ज संस्था, उपर आपेली पोतानी शरतो कबूल राखशे. तेना बदले, आज १९२० नो एप्रिल महिनो पूर्ण थाय छे, तो पण हजी सुधी बधी रकम पहोंचती करवामा आवी नथी, अने तेथी संस्थाए अद्यापि कोई पण प्रकारनुं जैन साहित्य संबंधी कार्य हाथमां लीधुं नथी. कबूलेली रकम व्हेलीमोडी आपवानी तो छे ज, अने ते आपवा माटे उक्त बन्ने सज्जनोनी काळजी पण छे ज; परंतु फक्त नजीवा आळसने लईने ए बाबत हजी अधवचे रखडया करे छे, अने तेना लीधे आटली मुदत दरम्यान, ३–४ हजार जेटला रुपिआ जैनसाहित्यमाटे खर्चाता अटक्या छे. अने परिणामे आपणा लाभमां नुकसान थतुं जाय छे. तेथी हवे जेम बने तेम तुरतमां ज कबूलेली बधी रकम संस्थाने पहोंचती करवा माटे उक्त बन्ने भाईओने साग्रह निवेदन छे. तेमना कहेवा प्रमाणे फक्त बे कलाकनुं ज काम छे, अने ए बे कलाक काढवाथी एक तो आपणा माथेथी प्रतिज्ञा-पालननो मोटो भार ओछो थई जशे अने बीजुं ए लोकोने दबाण पूर्वक, आपणे आपणा साहित्यना संबन्धमां हीलचाल करवा माटे कही शकीशुं. नहीं तो आटली मोटी रकम ऐन अडचणना प्रसंगे आपणे आपवा छतां पण ए संस्थाना कार्यव्यवहारमां आपणो अवाज योग्य रीते सांभळवामां आवे, तेवी आशा राखवी फोकट छे; अने आपणा साहित्यना संशोधननी जे तीव्र इच्छाथी आपणे आटलो परिश्रम उठाव्यो छे, ते इच्छा ठीक ठीक सफळ थाय तेम मानवुं भूल भरेलुं छे. मनुष्यने ज्यारे अमुक प्रकारनी खास गरज होय छे त्यारे तेने जे कहो ते करवा कबूल थाय छे, परंतु गरजसरे तेमानुं केटलुं पळाय छे, ते सौ कोईने अनुभवसिद्ध छे. ए ज मनुष्यस्वभाव आ बाबतमां पण लागू पडतो ते बनवा जोग छे, अने तेमां वळी आपणी ढील आपणने ज खुले म्होंढे स्पष्ट बोलतां अटकावी शके छे.

मुंबई सरकारना पब्लीकवर्क्स डीपार्टमेंट तरफथी आज घणां वर्षो थयां संस्कृतसीरीझ नामे एक ग्रंथ-माला प्रकट थाय छे. ए काममां सरकार दरवर्षे १२ हजार रुपिआनो खर्च करे छे. ए सीरीझमां आपणा जैन ग्रन्थो पण प्रकट थया करे छे. देशीनाममाला, कुमारपालचरित, अने प्राकृतव्याकरण तथा द्व्याश्रयकाव्य, विगेरे आपणा ग्रंथो ए ज सीरीझमां छपाया छे. छेला बे वर्षोथी सरकारे आ सीरीझनुं सघळुं काम भांडारकर इन्स्टीटयुटने स्वाधीन कर्युं छे अने ते कार्यनी व्यवस्था, ए संस्था पोतानी इच्छा प्रमाणे करे छे. जैन समाज तरफथी अपाती २५ह० नी रकमना बदलामां, आ संस्थाए कलम १ नी पेटा कलम 'डी' मां जणावेली शरत जे कबूल करेली छे. ते शरत प्रमाणे, सरकार तरफथी मळती उपरनी

१२ हजारनी ग्रांटमांथी ¼ एटले ३ हजार रुपिआ सीधा जैनसाहित्यना संशोधन–प्रकाशन अर्थे ज खर्चावा जोईए. परंतु हजी सुधी कांई पण रकम ते काममाटे ए संस्थाए खर्चवा काढी होय तेम जणातुं नथी. ए संबंधमां कांई पूछपरछ करवामां आवे छे तो सीधो एटलो ज जवाब मळे छे के, तमे तमारी कबूलात हजी पूरी पाळी शक्या नथी, तेथी अमे ए संबंधमां कांई स्पष्ट जवाप आपी शकता नथी (–जो के आपणे अत्यारसुधीमां लगभग ३०००० रुपिआ तो एमने पहोंचाडी पण चुक्या छीए) मारी अहीं प्रत्यक्ष हयाती होवा छतां, अने ए बधा कार्यवाहको साथे मारी अंगत मैत्री होवा छतां, आपणा आळसने लीधे, आवी परिस्थिति नजरे पडे छे, तो पछी पाछळथी, लांबा समये आपणी आशा केटले अंशे सफळ थई शकशे, ते सहज समजी शकाय तेवी बाबत छे.

हुं आ कार्यमां केटलेक अंशे निमित्तभूत थयेलो होवाथी अने अंतरंग बधी व्यवस्था करवानो विश्वास मारा उपर ज बधा भाईओए राखेलो होवाथी, आ सम्बन्धी मारा स्पष्ट विचारो समाज आगळ रजु करवानी मारी खास फरज छे, अने तेथी आटलो अंगत खुलासो करवो में अहीं उचित धार्यो छे.

छेवटे, हवे हुं एटलुं ज निवेदन करूं छुं के जे जे सद्गृहस्थोए आ कार्यमां रकम भरी होय, ते तुरत आपी दई अने बाकी जे थोडी घणी रकम खूटती होय ते मंडावी लईने, जेम बने तेम जल्दीथी आ संस्थाने पहोंचती करवी जोईए, के जेथी आपणा लाभमां विना कारणे नुकसान न थाय. बीजुं ए पण एक निवेदन छे के संस्था साथे जे कांई व्यवहार राखवामां आवे ते बधो व्यवस्थापूर्वक अने नियमसर रहेवो जोईए. ए कार्य, कोई एक व्यक्ति साथे सम्बद्ध नथी परंतु समाज साथे सम्बद्ध छे, अने तेथी ज में शरुआतथी लईने आज सुधीनो बधो व्यवहार मारा नामे न राखतां, जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्सना जनरल सेक्रेटरीना नामे राखाव्यो छे. परंतु खेद तो ए छे के, अहींथी जे पत्रो विगेरे ते सेक्रेटरीना नामे मोकलवामां आवे छे तेनो सविस्तर जवाब मळवो तो बाजुए रह्यो परंतु पत्रनी पोंच सुधां पण मळती नथी. वाणिआभाईना हाथमां अनेक वखते साम्राज्य स्थापवाना साधनो आवेलां छतां एक गामडुं पण तेमना कबजामां रही शक्युं नथी तेनुं कारण आवी अव्यवस्था ज छे. माटे, हवे दरेक कार्य चोकस लखाण अने नियमपुरस्सर करतां सीखवानी आवश्यकता छे. तेम थशे तो ज आपणे आपेली उदारतानो आपणने कोई पण प्रकारनो जवाब मळी शकशे. नहीं तो सवाल करवानो अधिकार पण नहीं मळे. बाकी, अहींना ए सज्जनो कार्य करवामां बहु ज उत्साही अने निःस्वार्थ वृत्तिवाळा छे. आपणी जन्मभूमिनुं गौरव केम वधे एवी भावनाने आदर्श राखी प्रवृत्ति करनारा छे. सर्वस्वनो भोग आपीने पण अंगीकृत करेला कार्यने पार उतारनारा छे. विद्वत्ता साथे जिज्ञासु भाव धरावनारा छे अने जाति अभिमान जाळवी राखवानी इच्छा राखतां छतां बधानी साथे बन्धुभाव देखाडवानी वृत्ति बतावनारा छे. तेथी, व्यवस्थापूर्वक अने निरीक्षणपुरस्सर जो आपणे आपणुं वचन शीघ्र पाळीशुं तो आपणा साहित्य माटे, आ संस्था द्वारा केटलुंक उपयोगी कार्य, कालांतरे पण थई शकशे एवी आशा छे. तथास्तु.

जैन साहित्य प्रकाशन कार्य.

ए बहु खुशी थवा जेवुं छे के, छेल्लां केटलांक वर्षोथी आपणा समाजमां प्राचीन पुस्तकोना प्रकाशननुं कार्य ठीक झडपथी चाली रह्युं छे. आज सुधीमां सेंकडो ग्रंथो छपाई बहार पडी गया छे अने पडता ज जाय छे. जे ग्रंथोना दर्शन पण दुर्लभ मनातां हतां तेवा ग्रन्थो आजे दरेक साधु-श्रावक

ना हाथमां फरता जोवामां आवे छे. जे ग्रंथनी एक नकल उतरावतां सेंकडों रूपिआ खर्च करवा पडता हता ते ग्रंथ आजे मफत सुधां मळी शके छे. ए बधो प्रताप उत्साही पुस्तक-प्रकाशको अने तेमने सहायता आपता-अपावता मुनिजनोनो छे.

परंतु, हालमां जे पद्धतिए आपणामां आ साहित्य प्रकाशन कार्य चाले छे ते पद्धति—जो के ए पद्धति पण मूळ ग्रंथोने सर्वथा नष्ट थवामांथी बचावी राखवा जेटली उपकारक तो छे ज, परंतु—समयनी आवश्यकतानी अपेक्षाए बहु ज अल्प फल-प्रदायक छे. वर्तमानमां एक तो ग्रन्थनिरीक्षणनी अनेक पद्धतिओ बहार आवती जाय छे; बीजुं लोकोनुं साधारण ज्ञान विस्तृत थतुं जाय छे, अने तेथी तेमनामां आगळ करतां वधारे विचारपूर्वक ग्रंथ जोवानी जिज्ञासा वधती जाय छे; अने त्रीजुं जन-समाजनो मोटो भाग, जिज्ञासा धरावता छतां, जुना ग्रन्थोने परिश्रमपूर्वक साद्यंत वांची-समजी, अव्यवहार्य भाषामां लखाएला अस्पष्ट विचारोने पोताना मगजमां ठसाववा जेटलुं कष्ट उठाववा राजी नथी. तेथी हालनी पद्धतिए प्रकट थतुं आपणुं साहित्य लोकदृष्टिए तो अप्रकट जेवुं ज छे. आजनी पद्धतिनो उपयोग ५० वर्ष पहेला हतो. ते समये ज आवी पद्धतिए छपाएला ग्रंथो लोकोना मनमां आनंद उत्पन्न करी शकता हता. हवे तेम करी शके तेवी परिस्थिति नथी. आजे हुं, अहीं ग्रंथ प्रकाशननी पद्धति उपर विशेष विवेचन न करतां, जे पद्धतिए ग्रंथो वर्तमानमां छपाय छे तेनो पण लोकोने पूरो लाभ मळतो नथी, ते संबन्धमां बे शब्दो जणाववा इच्छुं छुं.

जे व्यक्तिओना प्रयत्ने आ पुस्तक-प्रकाशन कार्य चाली रह्युं छे, तेमना उत्साह, परिश्रम अने आशय उत्तम होवा छतां विचारसंकुचिततानो एक मोटो दोष तेमनामां प्रधान पणुं भोगवी रह्युं छे; अने तेथी खरा जिज्ञासुओने, ए निर्जीव पद्धतिए छपाता पुस्तको पण जोवा-वांचवा माटे मळी शकतां नथी. आज सुधीमां सेंकडों ग्रंथो छपाई प्रकट थई चुक्या छे, छतां, साधुओनी पेटीओ सिवाय बीजे ठेकाणे तेनां दर्शन थवां दुर्लभ छे. आ कारणथी जैनेतर सेंकडों विद्वानोने तो पूरी ए पण खबर नथी के कोई जैन संस्था पण हिन्दुस्थानमां जैन पुस्तको छपाववानुं काम करे छे के केम! जे साधुओने पुस्तकनुं नाम सुधां पण बराबर वांचतां न आवडतुं होय तेमनी पासे पण, सीसमना कबाटोमां अने रेशमना रुमालोमां बांधी मुकेली दरेक पुस्तकनी एक-बे नकलो अवश्य मळी आवशे, परंतु जैनोनी राजधानी जेवा गणता शहर अमदावादमां वसता प्रो. श्री आनंदशंकर के साक्षर श्री केशवलाल ध्रुव जेवाने, तेम ज, जैन पुस्तकप्रकाशनना कार्य माटे पाटनगर मनाता भावनगर शहरमां रहेता प्रो. भीडे जेवा विद्वानोने जोवा पुरतुं पण पुस्तक मळवुं दुर्लभ थई रहे छे. आवी स्थितिमां जैन साहित्यनो शी रीते लोकोमां प्रसार थाय अने शी रीते विद्वानो तेमां रस लेता थई शके? ते सहज समजी शकाय तेम छे.

यूरोपनी लिपिमां छपाएला अने सोनाना मूल्ये वेचाता बौद्ध धर्मना पिटक ग्रंथो हिंदुस्ताननी लगभग दरेक कालेजनी लाईब्रेरीमां विद्यमान छे, त्यारे फक्त कागळनी किंमते वेचाता के मफत वहेंचता जैन आगमो मुंबईनी युनिवर्सिटीनी लाईब्रेरी सुधामां पण उपलब्ध नथी!

मुंबई युनिवर्सिटीए चालू वर्षथी, जैनसाहित्यनी मूळ अने पूज्यभाषा अर्धमागधीने पोताना पठन-क्रममां दाखल करी छे. ए पठन-क्रममां जे पुस्तको नियत करवामां आव्यां छे (ए ग्रंथो खास करीने मारी सूचनानुसार ज नोंधवामां आव्यां छे अने तेनां नामो नीचेनी नोटमां आप्या छे) तेनी नकलो पण विद्यार्थीओने मळी शकती नथी. डॉ. गुणे के, जेमणे ज अर्धमागधीना साहित्यने पोताना पठनक्रममां दाखल करवा माटे, युनिवर्सिटीनी सेनेटमां मूळ

ठराव मुक्यो हतो, मने थोडा दिवस उपर, एक संदेशो कहेवडावतां जणावे छे के—

Please say to Muniji that students of Ardha-magadhi are complaining that the Jain Publishers do not sell them the books although in stock. People who were keen upon introducing Ardhamagadhi into the University should, I think, behave better.

P. D. Gune.

अर्थात्—'महेरबानी करी मुनिजीने कहेशो के अर्ध-मागधीना विद्यार्थिओ फर्याद करे छे के जैन पुस्तक प्रकाशको पुस्तको शिलीकमां होवा छतां तेमने वेचातां आपतां नथी. हुं धारूं छुं के जे लोको अर्धमागधी भाषाने युनिवर्सिटीमां दाखल कराववा माटे उत्सुक हता तेमणे अधिक सुंदर वर्तन राखवुं जोईए.

पी. डी. गुणे,

आवी ज रीते केटलाए विद्यार्थिओनी पण सूचना आव्या करे छे. अने केटलाक तो युनिवर्सिटीना रजीष्ट्रारने फर्याद पण करी चुक्या छे के, जे पुस्तको विद्यार्थिओने अभ्यास अर्थे मळी शकतां नथी तेवां पुस्तको युनिवर्सिटी शुं समजीने कोर्समां दाखल करे छे ? इत्यादि.

मारा एक विद्वान् मित्र, प्रो. राजवाडे (बरोडा कॉलेजना पाली भाषाना अध्यापक) जैन आगमोनो अभ्यास करवा प्रबल उत्कंठा धरावे छे. तेओ आज बे वर्षथी मने वारंवार ते पुस्तको मेळवी आपवानी सूचना कर्या करे छे, परंतु साधुओना कबाटोमां बन्ध थएला ए पुस्तको शी रीते बहार आवी शके ? ए पुस्तको लेवा माटे तेओ जाते, *आगमोदय समितिनी ऑफिसमां—मुंबई अने सुरत* फेरो खाई आव्या हता, परंतु जैनेतर होवाथी समितिना नोकरे तेमने ते पुस्तको आपवानी ना पाडी हती !

चालु वर्षमां, अहीं (पूना) ना एक बुद्धिशाली ब्राह्मण विद्यार्थिए, बी. ए. मां आनर्स सबजेक्ट तरीके जैन साहित्य लीधुं हतुं, परंतु तेने छेल्ला अक्टोबर मास सुधी पाठ्य पुस्तक न मळवाथी ते निराश थयो हतो; अने आखरे, में मारी पासेथी पुस्तक आप्युं त्यारे मात्र पंदर दिवसमां तेणे मारी पासे ते बधुं पुस्तक वांची जई पोतानी परीक्षानी तैयारी करी हती. आखी युनिवर्सिटीमां जैन साहित्यनो ते एक ज विद्यार्थी हतो. तेनुं परीक्षापत्र तैयार करवानी ज्यारे जरूरत पडी त्यारे परीक्षकने पण ते पुस्तक क्यांथी मेळववुं तेनी चिंता थई पडतां मारी पासे तेनी मांगणी करवामां आवी हती. आवी रीते अध्यापकोने पेपरो काढवा माटे पण ज्यारे पुस्तको मळतां नथी तो पछी वांचवा के सीखववा माटे तो क्यांथी ज मळे ?

आ तो उदाहरणरूपे एक बे दाखला नोंध्या छे. आवी जातना तो अनेक उदाहरणो मारा अनुभववामां आव्या छे अने आवे छे. जे लोको बिचारा धर्मप्रेमथी भोळाभावे हजारो-लाखो रुपिआ पुस्तकोद्धारना नामे आपता रहे छे, तेमनो आत्मा, जो आ सत्य हकीकत समजवा जेटलो ज्ञानवान् होय तो तेमना मनने केवुं लागी आवे ! आवां ज कारणोथी मारुं ए कहेवुं थाय छे के वर्तमानमां जे पद्धतिए पुस्तक प्रकाशन प्रवृत्ति चाले छे ते समयनी आवश्यकतानी दृष्टिए अनुपयोगी ज छे.

जैन साहित्य माटे कई दिशामां अने कई पद्धतिए कार्य करवानी हवे आवश्यकता छे, तेनुं दिग्दर्शन आ अंकमा अन्यत्र प्रकट थएला प्रो. राजवाडेना गुजराती लेखमां, अने लाहोरनी ओरिएन्टल कालेजना प्रो. श्रीबनारसी दास जैनना इंग्रेजी लेखमां, उत्तम रीते कराववामां आव्युं छे. प्रो. राजवाडे पाळीभाषाना अने बौद्ध धर्मना ऊंडा अभ्यासी छे. तेओ जैन आगमोनो मार्मिक अभ्यास करी बौद्ध अने जैन साहित्य (पाली अने प्राकृत वाङ्मय) नी तुलनात्मक दृष्टिए विभिन्नता अने विशि-

इच्छाओ तारवी काढवानी उत्कट इच्छा राखे छे. जैन साहित्य उपर तेमनुं घणुं प्रेम छे. ज्यारे अमारा आ त्रैमासिकनी छपाववानी शुरुआतना तेमने समाचार मळ्या त्यारे एक पत्र द्वारा तेओ पोतानी सहानुभूति बतावतां मने लखे छे के—

I am glad your quarterly is starting its life so early. I shall certainly do all, I can to help it by contribution for I love the Jainagama and am anxious that its Knowledge should spread in our country.

अर्थात्—'आपना त्रैमासिकने आटलुं वहेलुं पोतानुं जीवन प्रारंभ करतुं जाणी मने घणो आनंद थाय छे. हुं तेने लेखो द्वारा जेटली मदद थई शकशे तेटली अवश्य करीश. कारण के हुं जैन आगमोने चाहुं छुं, अने तेना ज्ञाननो आपणा देशमां प्रसार थाय तेम जोवा उत्सुक छुं.' आ उपरथी जणाशे के जैन साहित्य माटे तेमनी भावना केटली सुंदर छे. आवा रसिक अने जिज्ञासु विद्वानो माटे तो आपणने मान होवुं जोईए अने पुस्तकादिनी जे जे सहायताओ तेमने जोईती होय ते उदारमने आपवी जोईए. आवी जातना योग्य विद्वानोना हाथमां जो पुस्तको जाय तो ज पुस्तक प्रकाशको अने संशोधकोनो परिश्रम सफळ छे. बाकी तो साधुओ भले रेशमीरुमालोमां बांधी मुकी तेमने धूप आप्या करे. उधेई अने कंसारीओ शिवाय तेमनो रसास्वाद बीजा लई शके तेवी स्थिति आजे तो जणाती नथी.

आ कहेवानुं तात्पर्य एटलुं ज छे के, एक तो पुस्तकप्रकाशकोए जरा पोतानी विचार संकुचितता दूर करी, योग्य विद्वानोना हाथमां आपणुं साहित्य जवा पामे तेवो खास प्रयत्न करवो जोईए. बीजुं, हवे ए जुनी (निर्माल्य) पद्धतिने छोडी, नवीन पद्धतिए नवुं साहित्य तैयार करावबुं जोईए. अने ए साहित्य योग्य विद्वानोना हाथे संशोधित थई प्रकाशित थवुं जोईए. हालमां जे ग्रन्थो छपाय छे ते शुद्धतानी दृष्टिए बहु ज असंतोष आपे तेवा छे. मूळ ग्रन्थने बनती रीते शुद्ध करवा तरफ बहु ज ओछी काळजी रखाय छे. शोधनारा के प्रकट करनाराओने खरी वस्तुस्थितिनुं मान होतुं नथी अने तेथी केटलीक वखते तो तेमना हाथे एवी भूलो थती जोवाय छे, के जे विद्वानोनी दृष्टिमां बिल्कुल अक्षम्य गणाय छे. आ सम्बन्धमां अमे आगळ उपर सविस्तर लखवा इच्छिए छीए. तेथी आजे तो एटलुं ज जणावीने विरमीए छीए के आपणा उत्साही पुस्तक संशोधक—प्रकाशकोए हवे ए विषयनुं जरा सारुं ज्ञान मेळवी चालु पद्धतिमां परिवर्तन करी समयानुसार सफळ प्रयत्न करवानी आवश्यकता छे. तेम करवाथी ज द्रव्य आपनार अने परिश्रम करनार बन्नेनां प्रयत्नो सफळ थशे.

—※—

मुंबई युनिवर्सिटीमां मागधी (प्राकृत) भाषा.

आजे केटलांए वर्षो थयां, जैन कॉन्फरन्स अने श्री मनसुखलाल रवजीभाई मेहता जेवा जैनसाहित्य रसिक गृहस्थोए मुंबई युनिवर्सिटीने, पोताना पठनक्रममां जैन साहित्यनी मूळ अने पवित्र भाषा जे साधारण रीते मागधी अथवा अर्धमागधी कहेवाय छे, तेने स्थान आपवा माटे अनेक वार विज्ञप्तिओ करी हती. परंतु, एक तो ते भाषानुं साहित्य योग्यरीते तैयार थएलुं न होवाथी, अने बीजुं तेना अभ्यासीओ निकळशे के नहीं तेनी खात्री न होवाथी, युनिवर्सिटीए ते बाबतमां कांई खास ध्यान आप्युं न हतुं. परंतु ज्यारे ५—७ वर्ष उपर बौद्ध साहित्यनी पवित्र भाषा पालीने युनिवर्सिटीए पोताना अभ्यासक्रममां दाखल करी अने छेक हाइस्कूलो सुधांमा तेनो अभ्यास चालवा मांड्यो; त्यारे, प्राकृत भाषाना प्रेमिओए पोतानी प्रिय भाषाने पण तेवी रीते अभ्यासक्रममां दाखल करवा माटे युनिवर्सिटीने

विशेष आग्रह करवा मांड्यो. तेना परिणामे आ वर्षे, युनिवर्सिटीए मागधी (प्राकृत) भाषाने बीजी भाषा तरीके पोताना कोर्समां दाखल करी छे, ए वात जाणी ते भाषाना उपासकोने आनंद थया विना नहीं रहे. पाली भाषा जो के हाइस्कूलमांथी ज सीखवाय छे परंतु मागधी (प्राकृत) भाषानुं शिक्षण कॉलेजमां ज आपवामा आवशे अने ते पण मेट्रीकमां बीजी भाषा तरीके जेणे संस्कृत लीधी हशे तेने ज. (—पाली भाषाने पण हवेथी हाइस्कूलमांथी काढी नांखवानो ठराव थयो छे.) अमारा विचार प्रमाणे आ नियम आवश्यक छे, कारण के प्राकृतनी मूळ प्रकृति संस्कृत छे, तेथी जो संस्कृत भाषा अवगत न होय तो प्राकृत भाषानो एक तो अभ्यास पण बहु कठिन थई पडे तेम छे; अने बीजुं, तेना अभ्यासीने पोतानुं ज्ञान वधारवानुं अन्य साधन न मळवाथी ते भाषा तेने अनुपयोगी अने कंटाळो भरेली थई पडे तेम छे. सीलोन विगेरे देशोमां संस्कृत सिवाय ज पाली सीखववामां आवे छे खरी; परंतु, ते भाषानां साधनो प्राकृतनी अपेक्षाए बहु ज विस्तृत छे. संस्कृत भाषानां पाणिनि अने हेमचन्द्रनां व्याकरणो जेवां पालीभाषानां स्वतंत्र अने सर्वांगपूर्ण केटलांए व्याकरणो बनेलां छे. कोषो पण अनेक छे. सिवाय, नवीन पद्धतिए अनेक पाठमालाओ अने वाचनमालाओ पण थएली छे. तेथी ते भाषा सीखनारने कोई पण प्रकारनी अडचण पडे तेम नथी. तेम ज पाली भाषानुं साहित्य पण बहु ज विशाळ अने सुंदर होवाथी तेना अभ्यासीने पोताना ज्ञान माटे जोईए तेवा विचारो तेमांथी मळी आवे तेम छे.

मागधी (प्राकृत) भाषाना अभ्यासीने माटे तेवी कोई पण जातनी सगवड नथी. तेम ज तेनुं साहित्य पण बहु ज अल्प अने साधारण प्रतिनुं छे. तेथी, संस्कृत सिवाय, केवल प्राकृत भणनारने ते भाररूप ज थई पडे तेम छे. अस्तु.

आवता बे वर्ष माटे, युनिवर्सिटीए नीचे प्रमाणेना ग्रंथो अभ्यासक्रममाटे नियत कर्या छेः—

प्रथमवर्ष (प्रीवियसक्लास).

१९२१

१ हरिभद्रकृत—समराइच्चकहा, प्रथम बे भव.
२ पउमचरियं, विमलसूरिकृत, उद्देश १—१८.
३ प्राकृतमार्गोपदेशिका, पं. बेचरदासकृत.

१९२२

१ हरिभद्रकृत—समराइच्चकहा, भव ३—४.
२ पउमचरियं, विमलसूरिकृत, उद्देश १९-३७.
३ प्राकृतमार्गोपदेशिका, पं. बेचरदासकृत.

द्वितीयवर्ष (इन्टर मीजिएट क्लास).

१९२१

१ कर्पूरमंजरी, राजशेखरकृत.
२ हेमचंद्रकृत प्राकृतव्याकरण (अष्टमाध्याय), पाद १ थी ३.

१९२२

१ वाक्पतिराजकृत, गउडवहो, गाथा ५१२.
२ रायपसेनीय सुत्त.
३ हेमचंद्रकृत प्राकृत व्याकरण (उपर प्रमाणे).

बी. ए. क्लास.

१९२२

१ आचारांग सूत्र.
२ हेमचंद्रकृत संपूर्ण प्राकृत व्याकरण.
३ कुमारपालचरित (प्राकृतद्व्याश्रय).

१९२३

१ सूत्रकृताङ्ग सूत्र.
२ हेमचन्द्रकृत संपूर्ण प्राकृत व्याकरण.
३ कुमारपालचरित (प्राकृतद्व्याश्रय).

स्थळाभावने लीधे एम्. ए. क्लासनां पाठ्य पुस्तकोनां नामो अहीं आपी शकतां नथी.

JAINA SAHITYA SANSHODHAKA

OR

JAIN LITERARY RESEARCH

VOL. 1.] *April 1920.* [PART 1.

THE UNDERCURRENTS OF JAINISM
A REPLY TO CRITICISMS

By Dr. S. K. BELVALKAR, M. A. PH. D.,
Professor of Sanskrit, Deccan College, Poona.

My paper on the Undercurrents of Jainism contributed to the July 1917 issue of the Indian Philosophical Review has given rise to a good deal of stir and opposition which has expressed itself in critical notices published in several Magazines as also in private and friendly letters. It has therefore become necessary for me to re-state my position, which seems to have been somewhat misunderstood. Another paper on the Post-Upanishadic Thought-ferment which I read some time ago before the Poona Literary Club forms the needed preliminary to the paper on Jainism; and a critic of mine who was inclined to condemn my paper on Jainism had the goodness to confess that the other paper has been to him an "eye-opener." In what follows I am attempting to re-state my position in regard to Jainism, which aspires to be strictly impartial and consistent with the requirments of a genetic or historical study of philosophy.

Lord Mahavira is regarded as the last of the Tirthankaras, which means that tho Jain religion was not founded by him in the sense in which Lord Gautama founded Buddhism. And yet Mahavira must have played an important part in the history of Jainism: else we could not account for the great reverence in which his name is universally held. A religion like Jainism with a history spreading over centuries cannot be supposed to have remained absolutely impervious to its changing and chequered environment. No religion-neither Christianity nor Brahmanism—has remained ever the same, whatever the strictly orthodox view might choose to maintain. The first question then is to determine the precise service and contribution of Mahavira to Jainism. This contribution of course must be important and sufficiently distinctive.

Lord Mahavira was an elder contemporary of the Buddha and their

sphere of activity was also largely identical. Both probably spoke the same language, had to deal with the same men and same problems, and though their conclusions might be conceivably different their starting point was also the same. The statements and references in their extant Scriptures tell the same story. While a passage from the Digha Nikaya speaks of 62 current philosophical systems another Jain Sutta speaks of 363 such systems; and persons like Makkhali Gosala, or Sanjaya Belatthiputta cut a somewhat similar figure in the estimation of both these religious teachers. The Nikaya has thus preserved to us the view of the latter:—

"If you ask me whether there is another world—well, if I thought there were, I would say so. But I don't say so. And I don't think it is thus or thus. And I don't deny it. And I don't say that there neither is, nor is not, another world. And if you ask me about the beings produced by chance; or whether there is any fruit, any result, of good or bad actions; or whether a man who has won the truth continues or not after death–to each or any of these questions do I give the same reply".

The Jain Sutta regards this view as a variety of the as many as 67 kinds of Agnosticism current at the time, and it is formulated as—'अत्थि' ति पि मे नो, 'नत्थि' ति पि मे नो, 'अत्थि च नत्थि च' ति पि मे नो, 'नेवात्थि न नत्थि' ति पि मे नो.

When an extremely subtle and almost unimpeachable dialectic of which the above may serve as a specimen seemed to throw all established theories and traditions into the melting pot, it became imperative upon all who claimed to teach an old and positive doctrine to defend their position. The Buddha who had no metaphysical creed to plead could afford to maintain a judicious silence when pressed to answer questions 'that it were vain and bootless to inquire after.' But how about a system like Jainism which had to accept the Jiva–Ajiva doctrine as a part of the inherited tradition? And it is just here that we must imagine Mahavira to have played his great role. Jacobi has said in one place:— "The similarity between some of these heretical doctrines on the one hand and Jain and Buddhistic ideas on the other is very suggestive and favours the assumption that the Buddha as well as Mahavira owed some of his conceptions to these very heretics and formulated others under the influence of the controversies which were continually going on with them. Thus, I think, that in opposition to the agnosticism of Sanjaya, Mahavira has established the Syadvada; and we can also trace the influence of agnosticim in the Buddhistic doctrine about Nirvana."

What Lord Mahavira probably actually accomplished was a judicious tempering of the pronounced agnosticism of Sanjaya by lending to it an apparent positive aspect. while Sanjaya says "I *cannot* say if it is and I *cannot* say if it is not." Mahavira says "I *can* say that the thing in a sense is and in a sense is not" The difference between these positions is rather formal, but it was perhaps deemed enough to satisfy the subtle and high-strung logical acumen of the day: in any case Mahavira was able to harmonise with this tempered agnosticism his traditional Jiva-Ajiva metaphysics and so present a bold front to the attack which gave a death-blow to many an established dogma. Mahavira had in his own days to contend against many heretical

philosophers, and it is perhaps open to question whether in addition to the combative part he was able also to carry out a large constructive programme especially in the realm of metaphysics. It was already enough achievement for the Syadvada to have turned the tables against the free-thinkers and to have restored to pious men the peace of mind that was so violently disturbed by the thought-ferment of the period: the bringing out of the implicit positive assumptions of the Syadvada by the Utpada-Vyaya-Dhrauvya doctrine (which so closely resembles the Samkhya view of reality) is perhaps the work of the disciples and commentators. [It was under this assumption that my original paper was written ; and although possibly the paper may be admitted to contain some over-statements, the general position can be overthrown only if traces of the Utpada-Vyaya-Dhrauvya doctrine can be found in the teachings of Mahavira himself, or if the Syadvada can be proved to be earlier than Mahavira.]

Sankaracharya was a Bhashyakara and the account he has to give of Jainism represents merely an expanded form of the view of Jainism which is as old as Badarayana the author of the Vedanta-sutras. The sutra-नैकस्मिन्नसंभवात् (II. ii. 33) has been interpreted by all the Bhashyakaras in the same manner, and its very wording suggests that the view here taken of Jainism is an ancient view which cannot have been entirely a deliberate misrepresentation. Badarayana may have perhaps failed to distinguish between the position of Sanjaya Bellatthiputta and that assumed by Mahavira, though it must be admitted that as far as Buddhism is concerned his account is surprisingly accurate and can only have sprung from an actual first-hand acquaintance with that Canon. In any case that the oldest account of Jainism in non-Jain texts that is to us available; and (the theory of a wilful and malicious misrepresentation apart) there is no reason why we should not regard it as not untruly representing a tendency in Jainism which was its weakest and the most vulnerable spot. In its later presentation of course Syadvada becomes all that my critics claim for it; nay more: it becomes almost a platitude which no body would care to seriously call into question; although just exactly why it should have been wedded to the rather simple Jiva-Ajiva doctrine and not with one subtler and more worthy of it needs explanation.

If all this is acceptable, there is no reason why the historical development of Jainism which I have presented and which sets forth the great reforming and reconstructing activity of the last Jain Tirthankara in its truest light, not dissociating it from its surroundings, should not also be regarded as an earnest effort to understand and not a purely ignorant and top-lofty essay to vilify this great religion of India.

*** In this reply I have not thought it necessary to notice all the points dealt with in the several criticisms. I am at present trying to study Jainism in the original in a more systematic fashion, and if I discover that I have been instrumental in spreading incorrect notions about a religion which I respect, I shall certainly take the first opportunity to admit my mistakes. There is nothing wrong in being wrong. In return I wish my critics would give me credit for honest intentions.

THE IMMEDIATE TASK BEFORE US.

BY BENARSI DASS JAIN, M. A. PROFESSOR ORIENTAL COLLEGE, LAHORE.

It is a matter of great joy to learn that we, the Jains, who had practically ignored the morden method of Historical Research, have after all realised its value and are now prepared to apply it to the problems connected with the history of our religion. Fortunately, the European Scholars have already made a start in this direction, the results of which are scattered in various books and articles devoted to Oriental Research, not an inconsiderable number of which are written in languages other than English, viz, German, Italian and French. Still there is much left for us to do.

I think it will not be out of place here to point out what work the world urgently demands of us. This work divides itself into two classes--archæological and Scriptural. The nature and scope of the former class of work have been very ably and clearly set forth by the Late Prof. V. A. Smith in his appeal read at " the Literary Conference of the Jains " held at Ajmer in 1914. In support of the late professor's appeal I may state that, according to our Doctrine, the restoration of an old temple, image or manuscript brings a greater reward than the production of a new one. This belief inculcates Archæological Research as a religious duty upon us.

The second class of work which mainly deals with Literature has many lines. Before proceeding to them, I shall show how important our literature is for a proper understanding of the ancient History of India.

Prof. H. Jacobi writes, " The records of the Buddhists and Jains about the philosophical ideas current at the time of the Buddha and Mahavira, meagre though they be, are of the greatest importance to the historian of that epoch. " [1]

Prof. Rhys Davids remarks, " But they (i. e. Jain records) are none the less historically important, because they give evidence of a stage less cultured, more animistic, that is to say, earlier. And incidentally they undoubtedly will be found as the portions accessible already show, to contain a large number of inportant references to the ancient geography, the political divisions, the social and economic conditions of India at a period hitherto very imperfectly understood. " [2]

Prof. V. A. Smith says, "The sacred books of the Jain sect, which are still very imperfectly known, also contain numerous historical statements and allusions of considerable value. " [3]

The authenticity of our scripture has been established by Prof. G. Buhler. [4] Some thirty years ago, a large number of inscriptions on the pedestals of Jain statues were discovered at Mathura. Most of them are dated from the

1 *Sacred Books of the East, Vol. XLV p. XXVII.*

2. *Buddhist India 1903 p. 163.*

3. *Early History of India 1914 p. 10.*

4. *Vienna Oriental Journal Vols I-IV Epigraphia Indica Vols I-II.*

year 5 to 98 of the era of the Indo-Scythian kings Kaniska, Huviska and Vasudeva, and are hence generally assigned to the first and second centuries A. D. In a number of them, the dedicators of the statues give not only their own names, but also those of the religious teachers to whose communities they belonged. Further they give these teachers their official titles, still used, among the Jains: *Vacaka* 'teacher' and *Ganin* head of a school. Lastly they specify the names of the schools(*Gana*), the subdivisions (*Kula*) and branches (*Sakha*) to which the teachers belonged. Exactly the same division into *Gana*, *Kula* and *Sakha* is found in the Kalpa Sutra. It is of the highest importance, that in spite of the mutilation and faulty reproduction of the inscriptions, nine of the names which appear in the *Kalpasutra* are recognisable in them. [5]

This agreement of the inscriptions with the Kalpasutra proves " that the tradition of the Svetambaras really contains ancient historic elements, and by no means deserves to be looked upon with distrust. " [6]

Now that we are convinced of the importance and authenticity of our literature we should get some idea of its extent. An idea of the bulk of the extant literature can well be formed from the various catalogues of Sanskrit and Prakrit Mss. published by the Government. The most important ones are—

Buhler's reports in the search of Sanskrit Mss
Peterson's „ „ „
Bhandarkar's „ „ „
especially the one for the years 1883-84
Weber's Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss in the Royal Library at Berlin (three parts, 1886, 1888, 1892).

From a perusal of these catalogues it will be clear that our extant Literature fully represents all branches of learning.

About our literary culture, Prof. Buhler remarks, " They (the Jains) did not rest content with explaining their own teaching: they turned also to secular sciences of the Brahmans. They have accomplished so much of importance, in grammer, in astronomy, as well as in some branches of letters, that they have won respect even from their enemies, and some of their works are still of importance to European Science. In Southern India, where they worked among the Dravidian tribes, they also advanced the development of these languages The Kanarese literary language and the Tamil and Telugu rest on the foundations laid by the Jaina monks. This activity led them, indeed, far from their proper goal, but it created for them an important position in the history of literature and culture. " [7]

Now I come to the subject under consideration. The Bhandars or Jain libraries of the Panjab have not as yet been catalogued or examined by any one. I think I am not wrong in estimating the number of Mss. in these Bhandars to be about ten thousand. The following is a list of the chief Bhandars:—

Delhi, Ambala city, Rohtak, Hissar, Patiala, Samana, Malerkotla, Ludhiana, Zira, Jallandhar, Hushiarpur, Jandiala,

---

5. Buhler's Indian Sect of the Jainas pp. 42, 43.

6. Buhler's Indian Sect of the Jainas p. 44.

7. Buhler's Indian Sect of the Jainas p. 22.

Patti, Amritsar, Vairowal, Gujranwala [8] and Narowal.

I am sure that several rare works will come to light if these Bhandars are carefully examined. Hence, the earliest opportunity should be availed to prepare a catalogue of their contents. Most of the Bhandars are the property of the Samgha or the Jain community at large, and the Jain Conference, therefore, can lay a claim to examine them. Moreover, individual *Sadhus* and *Pujas* have their own Mss. which also should be catalogued as far as practicable.

The want for critically edited Jain texts has been repeatedly brought to notice. Prof. Rhys Davids wrote, "The Jain records are unfortunately as yet known only in fragments. It is the greatest desideratum for the history of this period [9] that they should be made accessible in full." [10]

Later on he wrote, "The Jains themselves have now printed in Bombay a complete edition of their sacred books. But the critical value of this edition, and of other editions of separate texts printed elsewhere in India, leaves much to be desired." [11]

Dr. F. W. Thomas writes, "Most if not all, of the *Angas* have, indeed, been published in India, and some in Europe. But it is not yet possible for any scholar to point to a shelf or shelves in his library and say, "There is the Jaina Canon" and so many books and essays have a tentative character through the impossibility of examining the whole collection. Would it not be possible and a great help to future studies, if the whole (I do not mean, of course, with all the commentaries) could be made available in such a preliminery but complete condition." [12]. Prof. A. C. Woolner remarks, "Jain literature is neither so famous, nor so widely studied as the Pali Buddhist literature. Much of it is still in manuscript or in uncritical editions. Much of it again is difficult without (and even with) a commentary." [13]

No doubt considerable progress has been made in India in the publication of the sacred texts, but a good deal yet remains. A complete set of the Svetambara Canon was published about forty years ago by Rai Dhanpat Singh Bahadur of Baluchar (Murshidabad). This set provided, as it is, with the usual Sanskrit commentary and the Gujrati paraphrase (Tabba) "is worthless as an edition, being made with no regard whatsoever to textual or grammatical correctness both in its Sanskrit and Prakrit portions. Still it has its uses for the purposes of collation." [14] Most of the volumes of this set are out of stock and cannot be had at any price.

Another attempt to bring out an edition of the Svetambara Canon is being made by the trustees of the Devchand Lalbhai Pustakoddhar Fund, Bombay. This edition, though decidedly superior

8. The Panjab University Library has a Ms. copy of a catalogue of Mss. in the Bhandar attached to the Jain temple at Gujranwala. I have not been able to find out who prepared it. Presumably it was prepared by PT. Kashi Nath Kunte who examined some of the Sanskrit libraries of the Panjab in the eighties.

9. Several centuries preceeding the Christian era.

10. Buddhist India p. 163.

11. Encyclopaedia Britannica, Eleventh Edition, Sub voce 'Jain.'

12. Proceeding of a literary Conference of the Jains held at Ajmer 1914, last page.

13. Introduction to Prakrit p. 72.

14. Hoernle's Uvasagadasao, Introduction p. XI.

to the Baluchar edition, yet falls short of many conveniences which a good edition should provide to its readers e.g. Introduction, Index, Notes, *Variae Lectiones* etc. Copies of this edition also are very difficult to have as only a limited number of copies is printed.

Similar activities have been at work in the publication of Digambar texts.

Stray texts have appeared in Europe most of which are printed in Roman characters and not therefore, suitable for Indians.

Under these circumstances, it is evident that we should lose no time in removing this long-felt want that has only partially been fulfilled.

In the course of a speech delivered at the S. S. Jain Conference in 1917, Principal A. C. Woolner of the Oriental College Lahor remarked that the fact why European Scholars had done comparatively less work in Jainism was due to the absence of graded readers, grammars and dictionaries of Jain Prakrits. The want of such books has also been felt in India. One or two readers were published in Germany and Italy, but they were of no use to us.

So far as I know, there is not a single grammar that deals exclusively with our sacred languages. Hema Candra's Prakrit grammar was not written with any express object to help in the study of Jain literature. Dr. R. Pischel's *Grammatik der Prakrit-Sprachen* in German is an encyclopaedia of Prakrits and is not meant for beginners.

It is, therefore, the proper time that a graded series of Jain Readers and Grammars be brought out.

In 1912 Dr. Suali of Italy announced that he had collected materials for the compilation of a Prakrit Dictionary, and proved that the circumstances then fully justified the undertaking of such a work.[15] So far as I can say on the authority of price-lists of oriental books printed in Europe, Dr. Suali's dictionary never appeared.

Various attempts have been and are being made in India for a Prakrit Dictionary. I have seen the first four volumes of the *Abhidhana Rajendra* prepared at Ratlam. It does not seem to have proved useful in proportion to the amount of money and labour spent on it.

Under the management of Mr. Kesari Chand Bhandari of Indore, the S. S. Jain Conference is contemplating to bring out a Jain Prakrit Dictionary. The work of indexing words from Sutras has fairly advanced. How far this dictionary proves useful will be seen when it is out. Sometime ago I read an advertisement from Pt. Hargovind Das of Calcutta about his proposed Prakrit Dictionary. But I do not know how far his work has progressed. These individual attempts on the part of the various sects show that the present circumstances are quite favourable for undertaking a Prakrit Dictionary.

Now the compilation of a dictionary is a huge task that cannot be successfully done by a single man. It requires a large staff of workers with a sufficient financial support. It is, therefore, extremely desirable that all those who have an inclination to undertake a Prakrit Dictionary should unite to make a combined effort.

A good and up-to-date Bibliography forms an indispensable book in a well-equipped library and a very valuable companion to a scholar. In 1906 Dr. Guerinot of France published his "Essai

15 *Journal of the German Oriental Society* (Z. D. M. G.) 1912, p. 544.

de Bibliographie Jaina" in French to which a supplement entitled "Notes de Bibliographie Jaina" appeared in the *Journal Asiatique* for July-August 1909. Now that full eleven years have passed since the supplement was added, Dr. Guerinot's work can hardly be called up-to-date. This short-coming together with the fact that the work is written in French makes it quite necessary that a complete Bibliography should be undertaken in India.

The last work that seems to me important and urgent is the collection of materials for a history of Jainism in the Panjab. That Jainism existed in this province as early as the seventh century A. D. is proved by Hiuen Tsiang's description of a Jain temple near *Simhapura*[16] (in the Salt Range between the rivers Indus and Jehlum). The ruins of this temple were discovered by Sir A. Stein in 1890.[17]

Sir Alexander Cunningham found at Kangra two Jain statues with inscriptions on their pedestals which show that Jainism was prevalent in the Kangra valley a thousand years ago.[18] The latter statement is fully corroborated by mention of Kangra Jain temples in a *Vijnapti* edited by Muni Jina Vijaya in his विज्ञप्ति-त्रिवेणि.

It goes without saying that a book on the history of Jainism in the Panjab will be extremely valuable and interesting as well. For the writing of such a book local tradition will be of great value. Hence it is advisable that an early step[19] should be taken to collect local tradition which, if now neglected will soon die out for ever.

The above is only a brief resume of what should receive an early attention of our Research Society. There are however numerous minor lines which individual workers will find for themselves.

16 Cunningham's *Archaeological Survey Report*, Vol, V p. 192.

17 *Vienna Oriental Journal*, Vol. IV p. 80.

18 *Epigraphia Indica* Vol. I p. 119.

19 I think much matter will be forthcoming if the Research Society, or still better, if the Sectarian Conferences issue a circular letter to their various *Sabhas* in the Panjab mentioning in details the points about which information is sought.

Publisher—Ambalal Chaturbhai Shah, B. A.,-Jain Sahitya Sanshodhaka Samaja, Ferguson College Road, Poona City.

Printer—Laxman Bhaurao Kokate "Hanuman Press" Sadashiv, 925 Poona City.

संरक्षक—श्रीयुत हरगोविंददास रामजी शाह—मुंबई

॥ अर्हम् ॥

॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

भाग १] **जैन** [अंक २

साहित्य संशोधक

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि विषयक विविध निबन्ध-संग्रह।

संपादक

मुनिराज श्रीजिनविजयजी।

प्रकाशक—

जैन साहित्य संशोधक समाज।

ठि० भारत जैन विद्यालय, फर्ग्युसन कालेज रोड: पूना सिटी।

वार्षिक मूल्य ६ रु०] [प्रतिअंक मूल्य १॥ रु०

विषय-सूचि।

(हिन्दी लेख विभाग)

(गुजराती लेख विभाग)

चतुर्विंशतिजिनका नाम प्राचीन जैनग्रन्थसूची।

अवश्य पढिए

आभार-प्रदर्शन.

आ निबन्धसंग्रहात्मक पत्रनो प्रथम अंक गया ज्येष्ठ मासमां प्रकट थयो हतो. ४ महिना पछी आजे आ बीजो अंक वाचकोना हाथमां समर्पवामां आवे छे.

आ प्रयास फक्त आ संस्थाना स्थापक अने पत्रना संपादक मुनिश्रीना एक मात्र साहित्यप्रेम सतत अध्यवसायना फळ स्वरूप ज छे. जैन समाजमां आवा प्रकारना उच्च कोटिना साहित्यने समजनार के तेमां रस लेनार गण्या गांठ्या पुरुषो ज होवाथी, आ कार्यमां समाज तरफथी सहेजे पण मोटुं उत्तेजन मळी जशे एवी आशा थी तो. आ (कार्यनो) प्रारंभ करवामां आव्यो ज न हतो. परंतु, जे बे चार स्नेही सज्जनोए, आ कार्यमाटे प्रारंभिक मदद आपवानुं विश्वस्त वचन पूज्य मुनिराज श्रीजिनविजयजीने आप्युं हतुं तेमनाज विश्वास उपर आधार राखीने आनी शरुआत करवामां आवी हती. परंतु प्रथम अंकना मुद्रणकाल दरम्यान ज ते स्नेही सज्जनो तरफथी सविशेष उदासीन वृत्तिनो अनुभव थयो अने तेथी मुनिश्रीए आदिम तेज अन्तिम एवा रूपमां गत अंकने प्रकट कराववानी व्यवस्था करी. पण, जैन साहित्यना सद्भाग्ये, तेज अवसरमां, मुंबई निवासी उदारचित्त साहित्यप्रिय श्रीयुत भाई श्रीहरगोविंददास रामजीए, अमुक वर्षो पर्यंत, निरपेक्षभावे आ कार्यमां सोल्लास संपूर्ण आर्थिक सहायता आपवानी असाधारण इच्छा प्रकट करी आ कार्यने व्यवस्थित रूपे चालु राखवा एम मुनिश्रीने सादर आग्रह कर्यो. ए भाईश्रीनी आवी अचिन्त्य सहायता-निरपेक्ष उदारताने योगे ज आजे आ बीजो अंक अमे वाचकोने अर्पण करीए छीए अने भविष्यमां पण हवे यथासमय करता रहीशुं.

श्रीयुत भाई श्रीहरगोविंददासजी पोतानी आवी मोटी प्रशंसनीय उदारताना कारणे आ समाज अने पत्रना एक मोटा "संरक्षक" बन्या छे. एटलुंज नहीं, परंतु तेमनी आ उदारताए जैन साहित्यना अभ्यासी अने रसिक जनो उपर अनुपम उपकार कर्यो छे. अ[illegible] अमारी आ संस्था तरफथी तेमज जैन साहित्य संशोधकना सकल सुज्ञ वाचको तरफथी भाई श्री[illegible]दास रामजीने ए बाबतमाटे अंतःकरण पूर्वक अनेकानेक धन्यवाद आपीए छीए अने [illegible]मनां अनेकानेक सत्कृत्यो थाओ एम सदा इच्छीए छीए. तथास्तु.

सद्गृहस्थोए आ संस्थाना पेट्रन, वाईस पेट्रन, सहायक के लाईफ मेंबर [illegible]मां जे उदार आर्थिक सहायता आपी छे अथवा आप्या करे छे, तेमने [illegible]आपवामां आवे छे अने आ नीचे तेमनां शुभ नामो आदरपूर्वक प्रकट

पेट्रन.

श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह. बी. ए. मुंबई.

वाईस पेट्रन.

श्रीयुत केशवलाल प्रेमचंद मोदी. बी. ए. एल. एल. बी. वकील-अमदाबाद.

सहायक.

श्रीयुत मनसुखलाल रवजीभाई महेता, मुंबई.
शेठ कांतिलाल मगलभाई हाथीभाई, पूना.
शेठ केशवलाल मणीलाल शाह, पूना.
शेठ बाबुलाल नानचंद भगवानदास झवेरी, पूना.

लाईफमेंबर

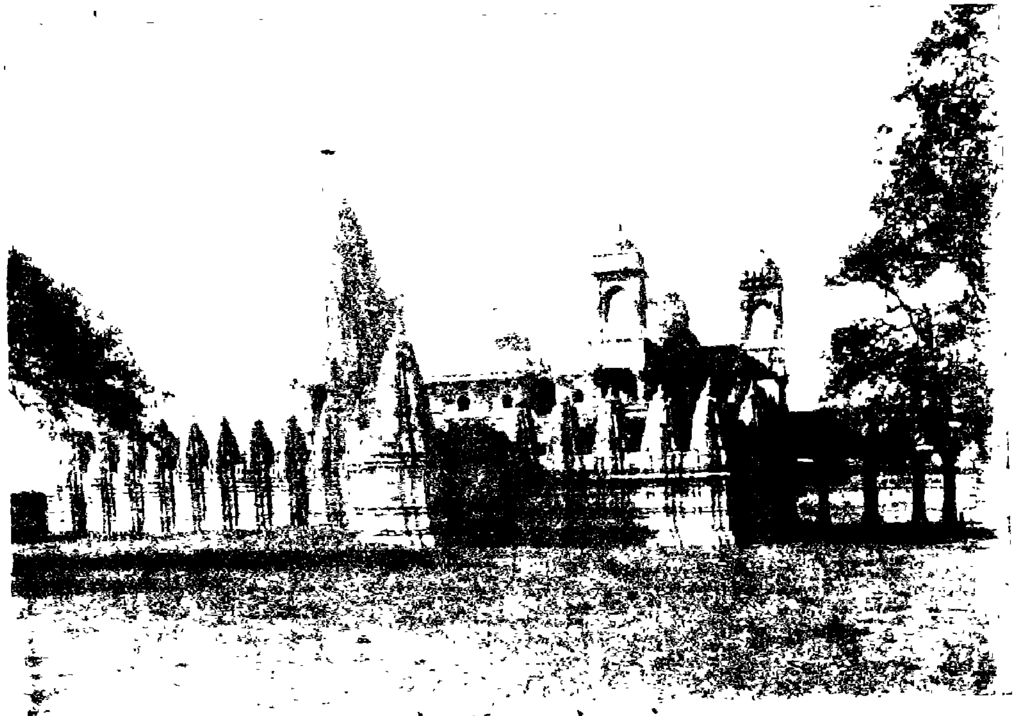
श्रीयुत बाबु राजकुमार सिंहजी बद्रीदासजी, कलकत्ता.
श्रीयुत बाबु पूरण चंदजी नाहार, एम्. ए. एल एल बी. कलकत्ता.
शेठ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, वडोदरा (मुंबई).
शेठ नरोत्तमदास भाणजी, मुंबई.
शेठ दामोदरदास, त्रिभुवनदास भाणजी, मुंबई.
शेठ त्रिभुवनदास भाणजी जैन कन्याशाला, भावनगर.
शेठ केशवजीभाई माणेकचंद, मुंबई.
शेठ देवकरणभाई मूळजीभाई, मुंबई.
शेठ गुलाबचंद देवचंद, मुंबई.
श्रीयुत मोतीचंद गिरधरलाल कापडिया बी. ए. एल एल. बी. सोलीसीटर मुंबई
श्रीयुत केशरी चंदजी भंडारी, इंदोर
शाह अमृतलाल एण्ड भगवानदास के. मुंबई.
शाह चंदुलाल वीरचंद कृष्णाजी, पूना.
शाह धनजीभाई वखतचंद साणंदवाळा, हाल पूना.
शाह बालुभाई शामचंद, तळेगाम (ढमढेरे).
शाह चुनिलाल झवेरचंद, मुंबई.
शाह मोतीलाल चुनिलाल, मोलापूरबजार, पूना केंप.

तथा दानवीर उदारात्मा शेठ परमानंददास रतनजी (निवासस्थान घाटकोपर मुंबई) तरफथी मुनिराज श्रीजिनविजयजी म. नी साहित्यसेवास्वरूप सत्प्रवृत्तिमां आरंभथीज जे उदार सहायता मळ्या करे छे, ते माटे, तेओ शेठश्रीनुं पण आ स्थळे अन्तर्गतेक अभिनन्दन करवामां आवे छे.

आशा छे के आवीज रीते बीजा पण सद्गृहस्थो यथाशक्ति पोतानां जैन धर्मना आ गौरव प्रकाशक पुण्य कार्यमां सहायक थशे एज विनंती

लि॰,
जैन सा. सं. समाज-कार्यालय

व्यवस्थापकनुं निवेदन:--प्रेस विगेरेनी हाडमारीओने लीधे वाचकोने जो नियमित समय उपर जैन साहित्य संशोधक न मळे तो ते विषयमां धैर्य राखवानी जरूर छे. आजकाल छपामणीनुं काम करवुं बहु त्रासदायक थई पड्युं छे, ते, जेने एवा वखतनो थोडो घणो अनुभव थयो होय तेज समजी शके तेम छे. नियत समय उपर प्रकट करवानी बनती कोशीस अमारा तरफथी करवामां आवे छेज. किंबहुना ?



पार्श्वनाथ जैन मंदिर, करहेडा, मेवाड ।

॥ अर्हम् ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ।

जैन साहित्य संशोधक

' पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ । '
' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ । '
' दिट्ठं, सुयं, मयं विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ । '

—निर्ग्रन्थप्रवचन–आचारांगसूत्र ।

भाग १] हिन्दी लेख विभाग [अंक २

जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ।

[लेखक– श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी, सम्पादक जैनहितैषी ।]

जैनेन्द्र ।

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशलीशाकटायनाः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ॥

—धातुपाठ ।

मुग्धबोधकर्ता पं० बोपदेवने उक्त श्लोकमें जिन आठ वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है, उनमें एक 'जैनेन्द्र' भी है। ये जैनेन्द्र अथवा जैनेंद्र व्याकरणके कर्त्ता कौन थे इस विषयमें इतिहासज्ञोंमें कुछ समय तक बड़ा विवाद चला था। डॉ० किलहार्नने इसे जिनदेव अथवा भगवान् महावीरद्वारा इन्द्रके लिए कहा गया सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था और इसके सुबूतमें उन्होंने कल्पसूत्रकी समयसुन्दरकृत टीका, और लक्ष्मीवल्लभकृत उपदेशमालाकर्णिकाका यह उल्लेख पेश किया था कि जिनदेव महावीर जिस समय ८ वर्ष के थे उस समय इन्द्रने उनसे शब्दलक्षणसंबंधी कुछ प्रश्न किये और उनके उत्तररूप यह व्याकरण बतलाया गया, इसलिये इसका नाम जैनेन्द्र पड़ा।—

यदिन्द्राय जिनेन्द्रेण कौमारेऽपि निरूपितम् ।
ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनम् ॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके और भी कई ग्रन्थोंमें इस

1 इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द १०, पृ० २५ ।

प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। कल्पसूत्रकी विनयविजय कृत सुबोधिकाटीकामें लिखा है:—

"[शक्रः] यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेहे समाजगाम। आगत्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेश्य पण्डितमनोगतान् सन्देहान् पप्रच्छ, श्रीवीरोऽपि बालोऽयं किं वक्ष्यतीत्युत्कर्णेषु सकललोकेषु सर्वाणि उत्तराणि ददौ, ततो 'जैनेन्द्रव्याकरणं' जज्ञे! यतः—

सक्को य तस्समक्खं भगवंतं आसणे निवेसित्ता।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इदं ॥"

अर्थात् भगवानको मातापिताने पाठशालामें गुरुके पास पढनेके लिए भेजा है, यह जानकर इन्द्र स्वर्गसे आया और पण्डितके घर, जहां भगवान थे वहां, गया। उसने भगवानको पण्डितके आसनपर बिठा दिया और पण्डितके मनमें जो जो सन्देह थे, उन सबको पूछा। जब सब लोक यह सुननेके लिए उत्कर्ण हो रहे थे कि देखें यह बालक क्या उत्तर देता है; भगवान वीरने सब प्रश्नोंके उत्तर दे दिये, तब 'जैनेन्द्र व्याकरण' बना।

परंतु इस प्रसंगके ये सब उल्लेख अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही हैं जिनमे भगवानके उत्तररूप इस व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' बतलाया है। प्राचीन उल्लेखोंमें इसका नाम जैनेन्द्रकी जगह 'ऐन्द्र' प्रकट किया गया है। जैसा कि आवश्यकसूत्रकी हारिभद्रीयवृत्तिके पृष्ठ १८२ में—

"शक्रश्च तत्समक्षं लेखाचार्यसमक्ष भगवन्त तीर्थकर आसने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति। भगवता च व्याकरणं अभ्यधायि। व्याक्रियन्ते लौकिकसामयिकाः शब्दाः अनेन इति व्याकरणं शब्दशास्त्रम्। तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातम्।"

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें लिखते हैं:—

"मातापितृभ्यामन्येद्युः प्रारब्धेऽध्यापनोत्सवे।
आः सर्वज्ञस्य शिष्यत्वमितीन्द्रस्तमुपास्थित ॥५६॥
उपाध्यायासने तस्मिन्वासवेनोपवेशितः।
प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी शब्दपारायणं जगौ ॥५७॥
इदं भगवतेन्द्राय प्रोक्तं शब्दानुशासनम्।
उपाध्यायेन तच्छ्रुत्वा लोकेष्वैन्द्रमितीरितम् ॥ ५८ ॥

इसके अनुसार भगवानने इन्द्रके लिये जो शब्दानुशासन कहा, उपाध्यायने असे सुनकर लोकमें 'ऐन्द्र' नामसे प्रकट किया। अर्थात् इन्द्रके लिये जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम 'ऐन्द्र' हुआ।

प्राचीन कालमें इन्द्रनामक आचार्यका बनाया हुआ एक संस्कृत व्याकरण था[1]। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थोमें मिलता है। ऊपर दियेहुए बोपदेव के श्लोकमें भी उसका नाम दर्ज है। हरिवंशपुराणके कर्त्ताने देवनन्दिको 'इन्द्रचंद्रार्कजैनेंद्रव्यापिव्याकरणेक्षिणः' विशेषण दिया है। शब्दार्णवचंद्रिकाकी ताडपत्रवाली प्रतिमें, जो १३ वीं शताब्दिके लगभगकी लिखी हुई मालूम होती है, "इन्द्रश्चन्द्रः शकटतनयः" आदि श्लोकमें इन्द्रके व्याकरणका उल्लेख है। बहुत समय हुआ यह नष्ट होगया है[2]। जब यह उपलब्ध ही नहीं है तब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यद्यपि आजकलके समयमें इस बातपर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता है कि भगवान् महावीरने भी कोई व्याकरण बनाया होगा और वह भी मागधी या प्राकृतका नहीं, किन्तु ब्राह्मणोंकी खास भाषा संस्कृतका—तो भी यह निस्सन्देह है कि वह व्याकरण 'जैनेन्द्र' तो नहीं था। यदि बनाया भी होगा तो वह 'ऐन्द्र' ही होगा। क्यों कि हरिभद्रसूरि और हेमचंद्रसूरि उसीका उल्लेख करते हैं जैनेन्द्रका नहीं। जान पड़ता है, विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभने पीछेसे 'ऐन्द्र' को ही 'जैनेन्द्र' बना डाला है। उनके समयमें भी 'ऐन्द्र' अप्राप्य था, इसलिए उन्होंने प्राप्य 'जैनेंद्र' को ही भगवान महावीरकी कृति बतलाना विशेष सुखकर और लाभप्रद सोचा होगा।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हरिभद्रसूरि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके और हेमचन्द्रसूरि तेरवीं शताब्दिके विद्वान् हैं जिन्होंने 'ऐन्द्र' को भगवानका व्याकरण बतलाया है; परंतु 'जैनेन्द्र'

---

१ डॉ० ए० सी० बर्नेलने इन्द्रव्याकरणके विषयमें चीनी, तिब्बतीय और भारतीय साहित्यमें जो जो उल्लेख मिलते हैं उनको संग्रह करके 'ओन दि ऐन्द्रस्कूल ऑफ संस्कृत ग्रामेरियन्स' नामकी एक बडी पुस्तक लिखी है।

२ "तेन प्रणष्टमैन्द्रं तदस्मद्व्याकरणं भुवि"
—कथासरित्सागर, तरंग ४।

को भगवत्प्रणीत बतलानेवाले विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभ विक्रमकी अठारहवीं शताब्दिमें हुए हैं।

विनयविजयजीके इस उल्लेखने बड़ा काम किया कि भगवत्प्रणीत व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' है। यह निश्चय है कि भगवत्प्रणीत व्याकरणको 'जैनेन्द्र' लिखते समय उनका लक्ष्य इस देवनन्दि या पूज्यपादकृत 'जैनेन्द्र' पर ही रहा होगा; परन्तु जान पड़ता है कि वे इस विषयमें उक्त उल्लेखके सिवाय और कुछ प्रयत्न नहीं कर सके। यह काम बाकी ही पड़ा रहा कि वह जैनेन्द्र व्याकरण लोगोंके समक्ष उपस्थित कर दिया जाय और भक्तजन अपने भगवानकी व्याकरणज्ञता देखकर गद्गद हो जायँ। खुशीकी बात है कि उनके कुछ ही समय बाद वि० सं० १७९७ में एक श्वेताम्बर विद्वानने इस कार्यको पूरा कर डाला—साक्षात् महावीर देवका बनाया हुआ व्याकरण तैयार कर दिया और उसका दूसरा नाम 'भगवद्वाग्वादिनी' रक्खा!

इस भगवद्वाग्वादिनी की सबसे पहली प्रतिके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें प्राप्त हुआ। यह तक्षक नगरमें रत्नर्षि नामक लेखकद्वारा वि० सं० १७९७ में लिखी गई थी। इसकी पत्रसंख्या ३०, और श्लोकसंख्या ८०० है। प्रत्येक पत्रमें ११ पंक्तियां, और प्रत्येक पंक्तिमें ४० अक्षर हैं। प्रति बहुत शुद्ध है। जैनेन्द्रका सूत्रपाठ मात्र है—और वह सूत्रपाठ है जिसपर शब्दार्णवचन्द्रिका टीका लिखी गई है। इस वाग्वादिनीके आविष्कारक अच्छे वैय्याकरण दिखते हैं उन्होंने शक्तिभर इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि इसके कर्त्ता साक्षात् महावीर भगवान हैं। दिगम्बरी देवनन्दीका बनाया हुआ यह कभी नहीं हो सकता। उनकी सब युक्तियाँ हमने इस ग्रन्थके परिचयमें-जो परिशिष्टमें दिया गया है-उद्धृत करदी हैं। उन सब पर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस लेखको पूरा पढलेने पर पाठकोंको वे सब युक्तियाँ स्वयं ही सारहीन प्रतीत होने लगेंगी।

हमारा अनुमान है कि डॉ० कीलहार्नके हाथमें यह 'भगवद्वाग्वादिनी' की प्रति अवश्य पड़ी होगी और इसीकी कृपासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना पूर्वोक्त लेख लिखा होगा। उनके लेखमें जो श्लोकादि प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं वे सब इसीपरसे लिये गये जान पड़ते हैं। अस्तु।

डॉ० कीलहार्नके इस भ्रमको सबसे पहले प्रो० पाठकने दूर किया था और अब तो जैनेन्द्र व्याकरणकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी है। उसकी या उसके परिशोधित-परिवर्तित संस्करणकी कई टीकायें भी छप चुकी हैं। इस लिए अब सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हो गये हैं कि जैनेन्द्र व्याकरण किसी तीर्थंकर या भगवानका नहीं किन्तु अन्य वैयाकरणोंके समान ही एक विद्वानका बनाया हुआ है और उनका नाम देवनन्दि या पूज्यपाद था।

देवनन्दि अथवा पूज्यपाद।

श्रीगृद्धपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्तिकीर्तिः।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ १ ॥
एवं महाचार्यपरम्परायां
स्यात्कारमुद्राङ्किततत्त्वदीपः।
भद्रः समन्ताद्गुणतो गणीशः
समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंहः ॥ २ ॥

ततः—

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो
बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-
र्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥ ३ ॥

जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं **सर्वार्थसिद्धिः** परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां **जैनाभिषेकः** स्वकः।
छन्दः सूक्ष्मधियं **समाधिशतकं** स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥४॥*

इस अवतरणके तीसरे श्लोकका अभिप्राय यह है कि उनका पहला नाम देवनन्दि था, बुद्धिकी

* ये श्लोक श्रीयुक्त पं० कलाप्पा भरमाप्पा निटवेने सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें उद्धृत किये हैं; पर यह नहीं सूचित किया है कि ये कहाँके हैं।

महत्ताके कारण वे जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवोंने उनके चरणोंकी पूजा की इस कराण उनका नाम पूज्यपाद हुआ।

श्रवणबेल्गोल के नं० १०८ के मंगराज कविकृत शिलालेखमें जो शकसंवत् १३५५ [वि० सं० १५००] का लिखा हुआ है, नीचे लिखे श्लोक उपलब्ध होते हैं:—

श्रीपूज्यपादोद्धृतधर्मराज्य-
स्ततः सुराधीश्वरपूज्यपादः।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं
वदन्ति शास्त्राणि तदुध्दृतानि ॥ १५ ॥
धृतविश्वबुद्धिरयमत्रयोगिभिः
कृतकृत्यभावमनुबिभ्रदुच्चकैः।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्स
जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥ १६ ॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धि-
र्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शनप्रभावात्
कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥ १७ ॥

इन श्लोकोंसे भी उनके पूज्यपाद और जिनेंद्रबुद्धि नाम प्रकट होते हैं।

नान्दिसंघकी पट्टावलीके नीचे लिखे हुए श्लोकसे भी देवनन्दिका दूसरा नाम पूज्यपाद था, यह स्पष्ट होता है।

यशःकीर्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः॥

इनका संक्षिप्त नाम 'देव' भी था। आचार्य जिनसेन, वादिराजसूरि, और पुन्नाटसंघीय जिनसेनने इन्हें इसी संक्षिप्त नामसे स्मरण किया है—

कवीनां तीर्थकृद्देवः किंतरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम ॥ ५२ ॥
—आदिपुराण प्रथम पर्व।

अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवंद्यो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्धयन्ति साधुत्वं प्रतिलंभिताः ॥ १८
—पार्श्वनाथचरित प्रथम सर्ग।

इन्द्र-चन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि(डि)व्याकरणेक्षिणः।
देवस्य देववन्द्यस्य न वंदते गिरः कथम् ॥३१
—हरिवंशपुराण।

अनेक लेखकोंने उन्हें केवल देवनान्दि नामसे और केवल पूज्यपाद् नामसे स्मरण किया है और दोनों नामोंसे उन्हें वैयाकरण माना हैं। आचार्य शुभचन्द्र पाण्डवपुराणमें लिखते हैं—

पूज्यपादः सदापूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम्।
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः॥

महाकवि धनंजय अपनी नाममालामें पूज्यपादको लक्षणग्रन्थ (व्याकरण) का कर्ता मानते हैं:—

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
धनंजयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥२०॥

श्रवणबेल्गोल के ४७ नंबरके शिलालेखमें श्रीमेघचन्द्र त्रैविद्यदेवकी स्तुतिमें नीचे लिखा हुआ श्लोक दिया है:—

सिद्धान्ते जिनवीरसेनसदृशः शास्त्राब्जिनीभास्करः,
षट्तर्केष्वकलंकदेवविबुधः साक्षादयं भूतले।
सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादः स्वयं,
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादीभपञ्चाननः॥

इसमें मेघचन्द्रको पूज्यपादके समान व्याकरणका ज्ञाता बतलाया है। इससे पूज्यपादका वैयाकरण होना सिद्ध है। ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीके गुरु थे और इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में हुआ था।

अनगारधर्मामृतटीकाकी प्रशस्तिमें—जो वि० सं० १३०० में लिखी गई है—पण्डित आशाधरजीने लिखा है कि मैंने जैन न्याय और जैनेन्द्र व्याकरण शास्त्र पण्डित महावीरसे धारा नगरीमें पढे—" धारायामपठज्जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे महावीरतः।" और 'जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे' की टीका में लिखा है—" जैनेन्द्रं प्रमाणशास्त्रं जैनेन्द्रव्याकरणं च।" इससे यह निश्चय होता है कि आशाधरके समयमें जैनेन्द्र व्याकरणका पठन-पाठन होता था। सागार और अनगार धर्मामृतटीकामें कई जगह प्रमाणरूपमें व्याकरणके सूत्र दिये हैं और वे इसी देवनन्दिकृत जैनेन्द्रव्याकरणके हैं।

कर्णाटक देशमें वृत्तविलास नामके एक जैन

कवि हो गये हैं। उन्होंने अमितगतिकृत धर्मपरीक्षाके आधारसे वि० सं० १२१७ के लगभग 'धर्मपरीक्षा' नामका ग्रन्थ कनडी भाषामें लिखा है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें पूज्यपाद आचार्यकी बड़ी प्रशंसा लिखी है और वे जैनेन्द्रव्याकरणके रचयिता थे, इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ ही उनकी अन्यान्य रचनाओंका भी परिचय दिया है:--

भरदिं जैनेन्द्रं भासुरं=एनलू ओरेदं पाणिनीयक्के टीकुं बरेदं तत्त्वार्थमं टिप्पणदिन् आरिपिदं यंत्र-मंत्रादिशास्त्रोत्करमं।
भूरक्षणार्थं विरचिसि जसमुं ताळिदर्द विश्वविद्याभरणं भव्यालियाराधितपदकमलं पूज्यपादं व्रतीन्द्रम् ॥

इसका अभिप्राय यह है कि व्रतीन्द्र पूज्यपादने-जिनके चरणकमलोंकी अनेक भव्य आराधना करते थे और जो विश्वभरकी विद्याओंके शृंगार थे- प्रकाशमान जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की, पाणिनि व्याकरणकी टीका लिखी, टिप्पणद्वारा (सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थसूत्रटीका) तत्त्वार्थका अर्थावबोधन किया और पृथ्वीकी रक्षाके लिए यंत्रमंत्रादि शास्त्रकी रचना की।

आचार्य शुभचन्द्रने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ज्ञानार्णवके प्रारंभमें देवनन्दिकी प्रशंसा करते हुए लिखा है:

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसंभवम्।
कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते ॥

अर्थात् जिनकी वाणी देह धारियोंके शरीर, वचन और मन सम्बन्धी मैलको मिटा देती है, उन देवनन्दीको मैं नमस्कार करता हूं। इस श्लोकमें देवनन्दिकी वाणीकी जो विशेषता बतलाई है, वह विचार योग्य है। हमारी समझमें देवनन्दिके तीन ग्रन्थोंको लक्ष्य करके यह प्रशंसा की गई है। शरीरके मैलको नाश करनेके लिए उनका वैद्यकशास्त्र, वचनका मैल (दोष) मिटानेके लिए जैनेन्द्र व्याकरण और मनका मैल दूर करनेके लिए समाधितंत्र है। अतएव इससे भी मालूम होता है कि वचनदोषको दूर करनेवाली उनकी कोई रचना अवश्य है और वह जैनेन्द्र व्याकरण ही हो सकती है।

इनके सिवाय विक्रमकी आठवीं शताब्दिके बाद कनडी भाषामें जितने काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं, प्रायः उन सभीके प्रारंभिक श्लोकोंमें पूज्यपादकी प्रशंसा की गई है[1]।

इन सब उल्लेखोंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि पूज्यपाद एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथकार हो गये हैं और देवनन्दि उनका ही दूसरा नाम था। साथ ही वे सुप्रसिद्ध जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता थे। इस बातको इतना विस्तारसे लिखनेकी आवश्यकता इसी कारण हुई कि बहुत लोग पूज्यपाद और देवनन्दि को जुदा जुदा मानते थे और कोई कोई पूज्यपादको देवनन्दिका विशेषण ही समझ बैठे थे।

जैनेन्द्रकी प्रत्येक हस्तलिखित प्रतिके प्रारंभमें नीचे लिखा श्लोक मिलता है:--

लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य निरवद्याऽवभासते।
देवनन्दितपूजेशे नमस्तस्मै स्वयंभुवे ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने 'देवनन्दितपूजेशे' पदमें जो कि भगवानका विशेषण है, अपना नाम भी प्रगट कर दिया है। संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके मंगलाचरणोंमें यह पद्धति अनेक विद्वानोंने स्वीकार की है*। इससे स्वयं ग्रन्थकर्ताके वचनोंसे भी जैनेन्द्रके कर्ता 'देवनन्दि' ठहरते हैं।

* गणरत्न महोदधिके कर्ता वर्धमान (श्वेताम्ब-

---

१ देखो हिस्ट्री आफ दि कनडी लिटरेचर।

*१ देखिए नीतिवाक्यामृतके मंगलाचरणमें सोमदेव कहते हैं:—

"सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवम्।
सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे ॥"

२ आचार्य अनन्तवीर्य लघीयस्त्रयकी वृत्तिके प्रारंभमें कहते हैं—

"जिनाधीशं मुनिं चन्द्रमकलंकं पुनः पुनः।
अनन्तवीर्यमानौमि स्याद्वादन्यायनायकम् ॥"

३ भावसंग्रहमें देवसेनसूरि मंगलाचरण करते हैं:—

पणमिय सुरसेणणुयं मुणिगणहरवंदियं महावीरं।
वोच्छामि भावसंगहमिणमो भव्वपबोहट्ठं ॥

शालातुरीयशकटाङ्गजचन्द्रगोमि-
दिग्वस्त्रभर्तृहरिवामनभोजमुख्याः।

र) और हैम शब्दानुशासनके लघुन्यास बनाने वाले कनकप्रभ भी जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ताका नाम देवनन्दि ही बतलाते हैं। अतः हम समझते हैं कि अब इस विषयमें किसी प्रकारका कोई सन्देह बाकी नहीं रह जाता है कि यह व्याकरण देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ है।

प्रथम जैन व्याकरण।

जहाँ तक हम जानते हैं, जैनोंका सबसे पहला संस्कृत व्याकरण यही है। अभी तक इसके पहलेका कोई भी व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। शाकटायन, सिद्धहेमशब्दानुशासन आदि सब व्याकरण इससे पीछेके बने हुए हैं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सूत्र बहुत ही संक्षिप्त हैं। 'अर्धमात्रालाघवं पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैय्याकरणाः।' इस प्रवादकी सचाई इसके सूत्रोंपर दृष्टि डालनेसे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट होती है। संज्ञाकृत लाघवको भी इसमें स्वीकार किया है। जब कि पाणिनीयमें संज्ञाकृत लाघव ग्रहण नहीं किया है। इसकी प्रशंसामें जैनेंद्रप्रक्रियामें लिखा हैः--

नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रम्।
यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत् क्वचित्॥

संस्करण भेद।

जैनेंद्र व्याकरणका मूल सूत्रपाठ दो प्रकारका उपलब्ध है-- एक तो वह जिसपर आचार्य अभयनन्दिकी 'महावृत्ति' तथा श्रुतकीर्तिकृत 'पंचवस्तु' नामकी प्रक्रिया है; और दूसरा वह जिसपर सोमदेव सूरिकृत 'शब्दार्णवचन्द्रिका' और गुणनंदिकृत 'जैनेन्द्रप्रक्रिया'[१] है। पहले प्रकारके पाठमें लगभग ३००० और दूसरेमें लगभग ३७०० सूत्र हैं, अर्थात् एकसे दूसरेमें कोई ७०० सूत्र अधिक हैं! और जो ३०-० सूत्र हैं वे भी दोनोंमें एकसे नहीं हैं। अर्थात् दूसरे सूत्रपाठमें पहले सूत्रपाठके सेकड़ों सूत्र परिवर्तित और परिवर्धित भी किये गये हैं। पहले प्रकारका सूत्रपाठ पाणिनीय सूत्रपाठके ढंग का है, वर्तमानदृष्टिसे वह कुछ अपूर्णसा जान पड़ता है और इसी लिए महावृत्तिमें बहुतसे वार्तिक तथा उपसंख्यान आदि बना कर उसकी पूर्णता की गई दिखलाई देती है, जब कि दूसरा पाठ प्रायः पूर्णसा जान पड़ता है और इसी कारण उसकी टीकाओंमें वार्तिक आदि नहीं दिखलाई देते। दोनों पाठोंमें बहुतसी संज्ञायें भी भिन्न प्रकार की हैं।

इन भिन्नताओंके होते हुए भी दोनों पाठोंमें समानता भी कम नहीं है। दोनोंके अधिकांश सूत्र समान हैं, दोनोंके प्रारंभका मंगलाचरण बिलकुल एक ही है और दोनोंके कर्ताओंका नाम भी देवनन्दि या पूज्यपाद लिखा हुआ मिलता है।

असली सूत्रपाठ।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनोंमेंसे स्वयं देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ असली सूत्रपाठ कौनसा है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका कथन है कि दूसरा पाठ जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका लिखी गई है-वास्तविक पाठ है। हमारे दिगम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंमें श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी बाकलीवाल और उनके अनुयायी पं० श्रीलालजी व्याकरणशास्त्री भी इसी मतको माननेवाले हैं। इसके विरुद्ध न्यायतीर्थ और न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजी दूसरे पाठको वास्तविक मानते हैं, जिसपर कि अभयनन्दिकी वृत्ति लिखी गई है। यद्यपि इन दोनोंही पक्षके विद्वानोंकी ओरसे अभीतक कोई ऐसे पुष्ट प्रमाण उपस्थित नहीं किये गये हैं जिनसे इस प्रश्नका अच्छी तरह निर्णय हो जाय; परन्तु हमको पं० वंशीधरजीका मत ठीक मालूम होता है और पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि हमें इस मतको करीब करीब निर्भ्रान्त मान लेनेके अनेक पुष्ट प्रमाण मिल गये हैं।

इन प्रमाणोंके आधारसे हम इस सिद्धान्तपर पहुंचे हैं कि आचार्य देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिने अपनी महावृत्ति लिखी है। यह सूत्रपाठ उस समयतक तो ठीक समझा जाता रहा जब तक पाल्यकीर्तिका शाकटायन व्याकरण नहीं बना था। शाय-

---

१ यह जैनेन्द्रप्रक्रिया गुणनन्दिकृत है या नहीं, इसमें हमें बहुत कुछ सन्देह है। आगे चलकर इस विषयका खुलासा किया गया है।

द शाकटायनको भी जैनेन्द्रके होते हुए एक जुदा व्याकरण बनानेकी आवश्यकता इसी लिए मालूम पड़ी होगी कि जैनेन्द्र अपूर्ण था, और बिना वार्तिकों और उपसंख्यानों आदिके काम नहीं चल सकता था। परन्तु जब शाकटायन जैसा सर्वांगपूर्ण व्याकरण बन चुका, तब जैनेन्द्रव्याकरणके भक्तोंको उसकी त्रुटियां विशेष खटकने लगीं और उनमेंसे आचार्य गुणनन्दिने उसे सर्वांगपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नका फल ही यह दूसरा सूत्रपाठ है जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका रची गयी है। इस सूत्रपाठको बारीकीके साथ देखनेसे मालूम पड़ता है कि गुणनन्दिके समय तक व्याकरणसिद्ध जितने प्रयोग होने लगे थे उन सबके सूत्र उसमें मौजूद हैं और इसलिए उसके टीकाकारोंको वार्तिक आदि बनानेके झंझटोंमें नहीं पड़ना पड़ा है। अभयनन्दिकी महावृत्तिके ऐसे बीसों वार्तिक हैं जिनके इस पाठमें सूत्रही बना दिये गये हैं। नीचे लिखे प्रमाणोंसे हमारे इन सब विचारोंकी पुष्टि होती है:—

१—शब्दार्णवचन्द्रिकाके अन्तमें नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

> श्रीसोमदेवयतिनिर्मितिमादधाति
> या नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवार्धौ।
> सोऽयं सताममलचेतसि विस्फुरन्ती
> वृत्तिः सदानतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥

इसमें सुप्रसिद्ध गुणनन्दि आचार्यके शब्दवार्धि या शब्दार्णवमें प्रवेश करनेके लिए सोमदेवकृत वृत्तिको नौका के समान बतलाया है। इससे यह जान पडता है कि आचार्य गुणनन्दिके बनाये हुए व्याकरण ग्रन्थकी यह टीका है और उसका नाम शब्दार्णव है। इस टीकाका 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम भी तभी अन्वर्थक होता है, जब मूल सूत्र ग्रन्थका नाम शब्दार्णव हो। हमारे इस अनुमानकी पुष्टि जैनेन्द्रप्रक्रियाके नीचे लिखे अन्तिम श्लोकसे और भी अच्छी तरहसे होती है:--

> सत्संधिं दधते समासमभितः ख्यातार्थनामोन्नतं,
> निर्णीतं बहुतद्धितं क्रम [कृत]मिहाख्यातं यशःशालिना(न)म्।
> सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं,
> नावस्याश्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥

इसका आशय यह है कि गुणनन्दिने जिसके शरीरको विस्तृत किया है, उस शब्दार्णवको जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए तथा आश्रय लेनेवालोंके लिए यह प्रक्रिया साक्षात् नावके समान काम देगी। इसमें 'शब्दार्णव' को 'गुणनन्दितानितवपुः' विशेषण दिया है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है। इससे साफ समझमें आता है कि गुणनन्दिके जिस व्याकरणपर ये दोनों टीकायें—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया—लिखी गई हैं उसका नाम 'शब्दार्णव' है और वह मूल (असली) जैनेन्द्र व्याकरणके संक्षिप्त शरीरको तानित या विस्तृत करके बनाया गया है।

शब्दार्णवचन्द्रिकाके प्रारंभका मंगलाचरण भी इस विषयमें ध्यान देने योग्य है:--

> श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
> सोमामरव्रतिपपूजितपादयुग्मम्।
> सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्रं
> तच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने भगवान् महावीरके विशेषणरूपमें क्रमसे पूज्यपादका, गुणनन्दिका और आपका (सोमामर या सोमदेवका) उल्लेख किया है और इसमें वे निस्सन्देह यही ध्वनित करते हैं कि मुख्य व्याकरणके कर्ता पूज्यपाद हैं, उसको विस्तृत करनेवाले गुणनन्दि हैं और फिर उसकी टीका करनेवाले सोमदेव (स्वयं) हैं। यदि यह चन्द्रिका टीका पूज्यपादकृत ग्रन्थकी ही होती, तो मंगलाचरणमें गुणनन्दिका नाम लानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। गुणनन्दि उनकी गुरुपरम्परामें भी नहीं हैं, जो उनका उल्लेख करना आवश्यक ही होता। अतः यह सिद्ध है कि चन्द्रिका और प्रक्रिया दोनोंके ही कर्ता यह समझते थे कि हमारी टीकायें असली जैनेन्द्रपर नहीं किन्तु उसके 'गुणनन्दितानितवपु' शब्दार्णवपर बनी हैं।

२—शब्दार्णव चन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया[1] इन दोनों ही टीकाओंमें 'एकशेष' प्रकरण है; परन्तु अभयनन्दिकृत 'महावृत्ति' वाले सूत्रपाठमें एक

---

१ हमारा अनुमान है कि इस प्रक्रियाका भी नाम 'शब्दार्णव प्रक्रिया' होगा, जैनेन्द्र-प्रक्रिया नहीं।

शेषको अनावश्यक बतलाया है—" स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः । " (१-१-९९) और इसी लिए देवनन्दि या पूज्यपादका व्याकरण 'अनेकशेष' कहलाता है। चन्द्रिका टीकाके कर्ता स्वयं ही " आदावुपज्ञोपक्रमम् " (१-४-११४) सूत्रकी टीकामें उदाहरण देते हैं कि " देवोपज्ञमनेकशेषव्याकरणम् " यह उदाहरण अभयनन्दिकृत महावृत्तिमें भी दिया गया है। इससे सिद्ध है कि शब्दार्णवचन्द्रिकाके कर्ता भी उस व्याकरणको देवोपज्ञ या देवनन्दिकृत मानते हैं, जो अनेकशेष है, अर्थात् जिसमें 'एकशेष' प्रकरण नहीं है। और ऐसा व्याकरण वही है जिसकी टीका अभयनन्दिने की है।

आचार्य विद्यानन्दि अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृष्ठ २६५) में ' नैगमसंग्रह-' आदि सूत्रकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—"नयश्च नयौ च नयाश्च नया इत्येकशेषस्य स्वाभाविकस्याभिधाने दर्शनात् केषांचित्तथा वचनोपलम्भाच्च न विरुद्ध्यते।" इसमें स्वाभाविकताके कारण एकशेष की अनावश्यकता प्रतिपादित है और यह अनावश्यकता जैनेन्द्रके वास्तविक सूत्रपाठमें ही उपलब्ध होती है। " स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः " (१-१-९९) यह सूत्र शब्दार्णववाले पाठमें नहीं है, अतः विद्यानन्द भी इसी सूत्रवाले जैनेन्द्रपाठको माननेवाले थे। पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिए कि उपलब्ध व्याकरणोंमें अनेकशेष व्याकरण केवल देवनन्दिकृत ही है, दूसरा नहीं।

३—' सर्वार्थसिद्धि ' तत्त्वार्थ सूत्रकी सुप्रसिद्ध टीका है। इसके कर्ता स्वयं पूज्यपाद या देवनन्दि हैं जिनका कि बनाया हुआ प्रस्तुत जैनेन्द्र व्याकरण है। इस टीकामें अध्याय ५ सूत्र २४ की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं —" 'अन्यतोऽपि' इति तसि कृते सर्वतः। " इसी सूत्रकी व्याख्या करते हुए राजवार्तिककार लिखते हैं—" ' दृश्यतेऽन्यतोपीति' तसि कृते सर्वेषु भवेषु सर्वत इति भवति।" जान पडता है या तो सर्वार्थसिद्धिकारने इस सूत्रको संक्षेप करके लिखा होगा, या लेखकों तथा छपानेवालोंने प्रारंभका ' दृश्यते ' शब्द छोड दिया होगा; कुछ भी हो, पर यह पूरा सूत्र ' दृश्यतेऽन्यतोपि ' ही है और यह अभयनन्दिवाले सूत्रपाठके अ० ४ पा० ७ का ७१ वाँ सूत्र है। परन्तु शब्दार्णववाले पाठमें न तो यह सूत्र ही है और न इसके प्रतिपाद्यका विधानकर्ता कोई और ही सूत्र है। अतः यह सिद्ध है कि पूज्यपादका असली सूत्रपाठ वही है जिसमें उक्त सूत्र मौजूद है।

४—भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'आद्ये परोक्षं (अ० १ सू० ११)' की व्याख्यामें " सर्वादि सर्वनाम। " (१--१--३५) सूत्रका उल्लेख किया है, इसी तरह पण्डित आशाधरने अनगारधर्मामृतटीका (अ० ७ श्लो० २४) में " स्तोके प्रतिना " (१--३-३७) और " भार्थे " (१--४--१४) इन दो सूत्रोंको उद्धृत किया है और ये तीनों ही सूत्र जैनेन्द्रके अभयनन्दिवृत्तिवाले सूत्रपाठमें ही मिलते हैं। शब्दार्णववाले पाठमें इनका अस्तित्व ही नहीं है। अतः अकलंकदेव और पं० आशाधर इसी अभयनन्दिवाले पाठको ही माननेवाले थे। अकलंकदेव वि० की नौवीं शताब्दिके और आशाधर १३ वीं शताब्दिके विद्वान् हैं।

५—पं० श्रीलालजी शास्त्रीने शब्दार्णवचन्द्रिकाकी भूमिकामें लिखा है कि आचार्य पूज्यपादने स्वनिर्मित 'सर्वार्थसिद्धि' में 'प्रमाणनयैरधिगमः' (अ० १ सू० ६) की टीकामें यह वाक्य दिया है— " नयशब्दस्यालपाच्तरत्वात्पूर्वनिपातः प्राप्नोति नैष दोषः। अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः। " और अभयनन्दिवाले पाठमें इस विषयका प्रतिपादन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है। केवल अभयनन्दिका 'अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति' वार्तिक है। यदि अभयनन्दिवाला सूत्रपाठ ठीक होता तो उसमें इस विषयका प्रतिपादक सूत्र अवश्य होता जो कि नहीं है। पर शब्दार्णववाले पाठमें "अर्च्यं" (१--३--११५) ऐसा सूत्र है जो इसी विषयको प्रतिपादित करता है। इसलिए यही सूत्रपाठ देवनन्दिकृत है। बस, पं० श्रीलालजीकी सबसे बडी दलील यही है जिससे वे शब्दार्णववाले पाठको असली सिद्ध करना चाहते हैं। इसके सिवाय वे और कोई उल्लेख योग्य प्रमाण अपने

पक्षमें नहीं दे सके हैं। अब इसपर हमारा निवेदन सुन लीजिए—

"अल्पाच्तरम्" [२-२-३४] यह सूत्र पाणिनिका है और इसके ऊपर कात्यायनका "अभ्यर्हितं च" वार्तिक तथा पतंजलिका "अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति" भाष्य है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धिटीकाके इस स्थलमें पाणिनि और पतंजलिके ही सूत्र तथा भाष्यको लक्ष्यकर उक्त विधान किया है। अब इस पर यह प्रश्न होगा कि जब सर्वार्थसिद्धिकार स्वयं एक व्याकरणके कर्ता हैं, तब उन्होंने पाणिनिके[1] और उसके भाष्यका आश्रय क्यों लिया? हमारी समझमें इसका उत्तर यह है कि पूज्यपाद स्वामी यद्यपि सर्वार्थसिद्धिकी रचनाके समय अपना व्याकरण तो बना चुके होंगे परन्तु उस समय उनके व्याकरणने विशेष प्रसिद्धि लाभ नहीं की होगी और इस कारण स्वयं उनके ही हृदयमें उसकी इतनी प्रमाणता नहीं होगी कि वे अन्य प्रसिद्ध व्याकरणों तथा उनके वार्तिकों और भाष्योंको सर्वथा भुला देवें—या उनका आश्रय नहीं लेवें। कुछ भी हो परंतु यह तो निश्चय है कि इन्होंने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें अन्य वैयाकरणोंके भी मत दिये हैं। इस विषयमें हम एक और प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बहुत ही पुष्ट और स्पष्ट है—

सर्वार्थसिद्धि अ० ४ सूत्र २२ की व्याख्यामें लिखा है—"यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानामिति।" इसकी अन्य पुरुषकी 'आहुः' क्रिया ही कह रही है कि ग्रन्थकर्ता यहां किसी अन्य पुरुषका वचन दे रहे हैं। अब पतंजलिका महाभाष्य देखिए। उसमें १-२-१ के ५ वें वार्तिकके भाष्यमें बिलकुल यही वाक्य दिया हुआ है—एक अक्षरका भी हेरफेर नहीं है। इससे स्पष्ट है कि सर्वार्थसिद्धिके कर्त्ता अन्य व्याकरण ग्रन्थोंके भी प्रमाण देते हैं। और भी एक प्रमाण लीजिए—

सर्वार्थसिद्धि अ० ७ सूत्र १६ की व्याख्यामें लिखा है—"शास्त्रेऽपि 'अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामि' त्येवमादिषु तदेव गृह्यते।" यह पाणिनिके ७-१-५१ सूत्रपर कात्यायनका पहला वार्तिक है। वहां "अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम्" इतने शब्द हैं और इन्हींको सर्वार्थसिद्धिकारने लिया है। यहां कात्यायनके वार्तिकको उन्होंने 'शास्त्र' शब्दसे व्यक्त किया है।[1]

सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सूत्र ४ की व्याख्यामें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेके लिए पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं:—"नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात्।" परन्तु जैनेन्द्रमें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेवाला कोई मूल सूत्र नहीं है, इस लिए अभयनन्दिने अपनी वृत्तिमें "ह्येस्तुट्" (३-२-८१) सूत्रकी व्याख्यामें "नेर्ध्रुवः इति वक्तव्यम्"। यह वार्तिक बनाया है और 'नियतं सर्वकालं भवं नित्यं' इस तरह स्पष्ट किया है। जैनेन्द्रमें 'त्य' प्रत्यय ही नहीं है, इसके बदले 'य' प्रत्यय है। इससे मालूम होता है कि सर्वार्थसिद्धिकारने स्वनिर्मित व्याकरणको लक्ष्यमें रखकर पूर्वोक्त बात नहीं कही है। अन्य व्याकरणोंके प्रमाण भी वे देते थे और यह प्रमाण भी उसी तरहका है।

परन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें ग्रन्थकर्ताने अपने जैनेन्द्रसूत्रोंका कहीं उपयोग ही नहीं किया है। नहीं, कुछ स्थानोंमें उन्होंने अपने निजके सूत्र भी दिये हैं। जैसे पांचवे अध्यायके पहले सूत्रके व्याख्यानमें लिखा है "'विशेषणं विशेष्येण' इति वृत्तिः।" यह जैनेन्द्रका १-३-५२ वां सूत्र है। यह सूत्र शब्दार्णवचन्द्रिका (१-३-४८) वाले पाठमें भी है।

इन सब प्रमाणोंसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकृत वृत्ति है; शब्दार्णवचन्द्रि-

१ तत्वार्थराजवार्तिकमें इसी 'प्रमाणनयैरधिगमः' सूत्रकी व्याख्यामें पतंजलिका यह भाष्य ज्योंका त्यों अक्षरशः दिया है। अभयनन्दिका भी यही वार्तिक है।

२ राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमें भी यह वाक्य उद्धृत किया गया है।

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें भी है-"शास्त्रेऽपि अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामित्येवमादौ तदेव कर्माख्यायते।"

कावाला पाठ असली सूत्रपाठको संशोधित और परिवर्धित करके बनाया गया है और उसका यह संस्करण संभवतः गुणनन्दि आचार्यकृत है।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि जब गुणनन्दि ने मूल ग्रंथमें इतना परिवर्तन और संशोधन किया था, तब उस परिवर्तित ग्रन्थका नाम जैनेन्द्र ही क्यों रक्खा ? इसके उत्तरमें निवेदन है कि एक तो शब्दार्णवचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रियाके पूर्वोल्लिखित श्लोकोंसे गुणनन्दिके व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' नहीं किन्तु 'शब्दार्णव' मालूम होता है। संभव है कि लेखकोंके भ्रमसे इन टीकाग्रंथोंमें 'जैनन्द्र' नाम शामिल हो गया हो। दूसरा यदि 'जैनेन्द्र' नाम भी हो, तो ऐसा कुछ अनुचित भी नहीं है। क्यों कि गुणनन्दिने जो प्रयत्न किया है, वह अपना एक स्वतंत्र ग्रंथ बनानेकी इच्छासे नहीं किन्तु पूर्वनिर्मित 'जैनेन्द्र' को सर्वांगपूर्ण बनानेकी सदिच्छासे किया है और इसी लिए उन्होंने जैनेन्द्रके आधेसे अधिक सूत्र ज्योंके त्यों रहने दिये हैं तथा मंगलाचरण आदि भी उसका ज्यों का त्यों रक्खा है। हमारा विश्वास है कि गुणनन्दि इस संशोधित और परिवर्तित सूत्रपाठको ही तैयार करके न रह गये होंगे, उन्होंने इसपर कोई वृत्ति या टीका ग्रंथ भी अवश्य लिखा होगा, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। सनातन जैन ग्रंथमालामें जो जैनेन्द्र-प्रक्रिया छपी है, वह जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे गुणनन्दिकी बनाई हुई नहीं है।

जैनेन्द्रकी टीकायें।

पूज्यपादस्वामीकृत असली जैनेन्द्रकी इस समय तक केवल तीन ही टीकायें उपलब्ध हैं--१ अभयनन्दिकृत 'महावृत्ति,' २ आर्यश्रुतकीर्तिकी 'पंचवस्तु-प्रक्रिया,' और ३ बुधमहाचन्द्रकृत 'लघु जैनेन्द्र'। परन्तु इनके सिवाय इसकी और भी कई टीकायें होनी चाहिए। पंचवस्तुके अन्तमें नीचे लिखा हुआ एक श्लोक है:—

> सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसन्न्यासोरुरत्नक्षिति,
> श्रीमद्वृत्तिकपाटसंपुटयुतं भाष्यौघशय्यातलम्।
> टीकामालमिहारुरुक्षु रचितं जैनेन्द्रशब्दागमं,
> प्रासादं पृथुपंचवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात् ॥

इसमें जैनेन्द्र शब्दागम या जैनेन्द्र व्याकरणको महलकी उपमा दी गई है। वह मूलसूत्ररूप स्तम्भोंपर खड़ा किया गया है, न्यासरूप उसकी रत्नमय भूमि है, वृत्तिरूप उसके किवाड़ हैं, भाष्यरूप शय्यातल है, और टीकारूप उसके माल या मंजिल हैं। यह पंचवस्तु टीका उसकी सोपान श्रेणी है। इसके द्वारा उक्त महल पर आरोहण किया जासकता है। इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके कर्ताके समयमें इस व्याकरणपर १ न्यास, २ वृत्ति, ३ भाष्य और ४ टीका, इतने व्याख्या ग्रन्थ मौजूद थे। इनमेंसे श्रीमद्वृत्ति या वृत्ति तो यह अभयनन्दिकी महावृत्ति ही होगी, ऐसा जान पड़ता है। शेष तीन टीकायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। हमारा अनुमान है कि इनमेंसे एक टीकाग्रन्थ चाहे वह न्यास हो या भाष्य हो, स्वयं पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ होगा। क्यों कि वे केवल सूत्रग्रन्थ ही बनाकर रह गये होंगे, यह बात समझमें नहीं आती। अपनी मानी हुई अतिशय सूक्ष्म संज्ञाओं और परिभाषाओंका स्पष्टीकरण करनेके लिए उन्हें कोई टीका, वृत्ति या न्यास अवश्य बनाना पड़ा होगा, जिस तरह शाकटायनने अपने व्याकरणपर अमोघवृत्ति नामकी स्वोपज्ञ टीका बनाई है।

आचार्य विद्यानन्दने अष्टसहस्री (पृष्ठ १३२) में 'व्यखे कर्मण्युपसंख्यानात् का' यह वचन उद्धृत किया है। यह किसी व्याकरण ग्रन्थका वार्तिक है; परन्तु पाणिनिके किसी भी वार्तिकमें यह नहीं मिलता। अभयनन्दिकी महावृत्तिमें अवश्य ही "व्यखे कर्मणि का वक्तव्या" [४-१-३८] इस प्रकारका वार्तिक है. परन्तु हमारा खयाल है कि अभयनन्दिकी वृत्ति विद्यानन्दसे पीछेकी बनी हुई है, इस लिए विद्यानन्दने यह वार्तिक अभयनन्दिकी वृत्तिसे नहीं किन्तु अन्य ही किसी ग्रन्थसे लिया होगा और आश्चर्य नहीं जो वह स्वयं पूज्यपादकृत टीकाग्रन्थ हो। सुनते हैं, जैनेन्द्रका न्यास कर्नाटक प्रान्तके जैन पुस्तक भण्डारोंमें है। उसके प्राप्त करनेकी बहुत आवश्यकता है। उससे इस व्याकरणसम्बन्धी अनेक संशयोंका निराकरण हो जायगा।

आगे हम उपलब्ध टीका ग्रन्थोंका परिचय देते हैं:—

१-महावृत्ति। इसकी एक प्रति पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। इसकी श्लोकसंख्या १२००० के लगभग है। इसके प्रारंभके ३१४ पत्र एक लेखकके लिखे हुए और शेष ७४ पत्र, चैत्र सुदी २ सं० १९३३ को किसी दूसरे लेखकके लिखे हुए हैं। प्रतिके दोनों ही भाग जयपुरके लिखे हुए मालूम होते हैं। कई स्थानों में कुछ पंक्तियाँ छूटी हुई हैं। इसका प्रारंभ इसतरह हुआ है:—

ओं नमः। श्रीमत्सर्वज्ञवीतरागतद्वचनतदनुसारिगुरुभ्यो नमः।

देवदेवं जिनं नत्वा सर्वसत्त्वाभयप्रदम्।
शब्दशास्त्रस्य सूत्राणां महावृत्तिर्विरच्यते ॥ १ ॥
यच्छब्दलक्षणमसुव्रजपारमन्यै-
रव्यक्तमुक्तमभिधानविधौ दरिद्रैः।
तत्सर्वलोकहृदयप्रियचारुवाक्यै-
र्व्यक्तीकरोत्यभयनन्दिमुनिः समस्तम् ॥ २ ॥

शिष्टाचारपरिपालनार्थमादावभिष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मंगलमिदमाहाचार्यः।

और अन्तमें कोई प्रशस्ति आदि न देकर सिर्फ इतना ही लिखा है—

"इत्यभयनन्दिविरचितायां जैनेन्द्रव्याकरणमहावृत्तौ पंचमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः। समाप्तश्चायं पंचमोऽध्यायः।"

इससे मालूम होता है कि इस महावृत्तिके कर्ता अभयनन्दि मुनि हैं। उन्होंने न तो अपनी गुरुपरम्पराका ही परिचय दिया है और न ग्रन्थरचनाका समय ही दिया है, इससे निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वे कब हुए हैं। परन्तु उन्होंने सूत्र ३-२-५५ की टीकामें एक जगह उदाहरण दिया है—"तत्त्वार्थवार्तिकमधीयते।" इससे मालूम होता है कि भट्टाकलंकदेवसे बाद अर्थात् वि० की नौवीं शताब्दिके बाद—और पंचवस्तुके पूर्वोल्लिखित श्लोकमें इसी वृत्तिका उल्लेख जान पड़ता है, इस लिए आर्य श्रुतकीर्तिके अर्थात् विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके पहले—किसी समयमें वे हुए हैं। हमारा अनुमान है कि चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता महाकवि वीरनन्दिने जिन अभयनन्दिको अपना गुरु बतलाया है, ये वे ही अभयनन्दि होंगे*। आचार्य नेमिचन्द्रने भी गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी ४३६ वीं गाथामें इनका उल्लेख किया है। अतएव इनका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके लगभग निश्चित होता है। जैनेन्द्रकी उपलब्ध टीकाओंमें यही टीका सबसे प्राचीन मालूम होती है। प्रो० एस० के० बेलवलकरने अभयनन्दिका समय ई० सन १३००—१३५० के लगभग मालूम नहीं किन प्रमाणोंसे निश्चित किया है।

२-पंचवस्तु। भांडारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें इसकी दो प्रतियाँ मौजूद हैं, जिनमें एक ३००-४०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई है और बहुत शुद्ध है। पत्रसंख्या ९१ है। इस पर लेखकका नाम और प्रति लिखनेका समय आदि नहीं है। इसके अन्तमें केवल इतना लिखा हुआ है—

"कृतिरियं देवनंद्याचार्यस्य परवादिमथनस्य ॥ छ ॥ शुभं भवतु लेखकपाठकयोः ॥ श्रीसंघस्य ॥"

दूसरी[2] प्रति रत्नकरण्डश्रावकाचारवचनिका आदि अनेक भाषाग्रन्थोंके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित सदासुखजीके हाथकी लिखी हुई है और संवत् १९१० की लिखी हुई है। इसके अन्तमें प्रतिलेखकने आपना परिचय इसतरह दिया है:—

अब्दे नभश्चन्द्रनिधिस्थितांके शुद्धे सहस्यम(?) युक्चतुर्थ्याम्।
सत्प्रक्रियाबन्धनिबन्धनेयं सद्वस्तुवृत्तीरदनात्समाप्ता (?) ॥
श्रीमन्नराणामधिपेशराज्ञि श्रीरामसिंहे विलसत्यलेखि।
श्रीमद्बुधेनेह सदासुखेन श्रीयुक्कृतेलाकनिजात्मबुद्ध्यै ॥
शाब्दीयशास्त्रं पठितं न यैस्तैः स्वदेहसंपालनभारवद्भिः।
किं दर्शनीयं कथनीयमेतद् वृथांगसंधावपलापवद्भिः ॥

यह प्रति भी प्रायः शुद्ध है।

यह टीका प्रक्रियाबद्ध टीका है और बड़े अच्छे

---

[1] नं. ५९० A और B सन १८७५-७६ की रिपोर्ट।

* वीरनन्दि और अभयनन्दिका समय जाननेके लिए देखो त्रिलोकसार ग्रन्थकी मेरी लिखी भूमिका।

[1] नं० १०५९ सन १८८७-९१ की रिपोर्ट। [2] नं० ५९० सन १८७५-७६ की रिपोर्ट। [3] इस ग्रन्थकी एक प्रति परतावगढ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरके भंडारमें भी है। देखो जैनमित्र ता०२६ अगस्त १९१५।

ढंगसे लिखी गई है। इसकी श्लोकसंख्या ३३०० के लगभग है। प्रारंभके विद्यार्थियोंके लिए बडी उपयोगी है। इसका प्रारंभ इसप्रकार किया है-

ओं नमः श्रीशान्तिनाथाय।

जगतांत्रतयनाथाय नमो जन्मप्रमाथिने।
नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये॥ १॥

प्रत्याहारस्यादाविष्टदेवतास्तुतिवचनं मंगलार्थमुपात्तम्।

आगे चलकर पांचवें पत्रमें इस प्रकार लिखा है-

ग्राम-वैर-वर्ण-कर-चरणादीनां संधीनां बहूनां संभवत्वात् संशयानः शिष्यः संपृच्छति स्म-कस्सन्धिरिति।

संज्ञास्वरप्रकृतिहल्जविसर्गजन्मा
संधिस्तु पंचक इतीत्थमिहाहुरन्ये।
तत्र स्वरप्रकृतिहल्जविकल्पतोऽस्मि-
न्संधिं त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्यः॥

इस ग्रन्थके आदि-अन्तमें कहीं भी इसके कर्त्ताका नाम नहीं है। केवल इसी जगह यह नाम आया है और इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके रचयिता आर्य श्रुतकीर्ति हैं।

कनडी भाषाके चन्द्रप्रभचरित नामक ग्रन्थके कर्ता अग्गल कविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बतलाया है-" इति परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथ-श्रुतकीर्तित्रैविद्यचक्रवर्तिपदपद्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गलदेवविरचिते चन्द्रप्रभचरिते--" इत्यादि। और यह चरित शक संवत् १०११ (वि० सं० ११४६) में बनकर समाप्त हुआ है। अतएव पंचवस्तुको भी अभयनन्दि महावृत्तिके कुछ ही पीछे की-विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके प्रारंभ की-रचना समझना चाहिए। नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें श्रुतकीर्तिको वैयाकरण भास्कर लिखा है:--

" त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्करः। "

ये नन्दिसंघ, देशीयगण और पुस्तकगच्छके आचार्य थे। श्रुतकीर्ति नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं।

३--लघुजैनेन्द्र। इसकी एक प्रति अंकलेश्वर (भरोंच) के दिगम्बर जैनमन्दिरमें है और दूसरी अधूरी प्रति परतावगढ़ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरमें है। उसमें इस तरह प्रारंभ किया गया है--

महावृत्तिं शुम्भत्सकलबुधपूज्यां सुखकरीं,
विलोक्योद्यद्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रविहिताम्।
अनेकैः सच्छब्दैः श्रमविगतकैः संयुतां (?)
प्रकुर्वेऽहं तनुमतिमहाचन्द्रविबुधः (?)॥

इससे मालूम होता है कि यह अभयनन्दी वृत्तिके आधारसे लिखी गई है। पण्डित महाचन्द्रजी विक्रमकी इसी बीसवीं शताब्दिके ग्रन्थकर्ता हैं। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और भाषामें कई ग्रन्थ लिखे हैं।

४--जैनेन्द्रप्रक्रिया। इसे न्यायतीर्थ न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजीने अभी हाल ही लिखी है। इसका अभी केवल पूर्वार्ध ही छपकर प्रकाशित हुआ है।

शब्दार्णवकी टीकायें।

जैनेन्द्र सूत्रपाठके संशोधित परिवर्धित संस्करणका नाम-जैसा कि पहले लिखा जा चुका है--शब्दार्णव है। इसके कर्ता आचार्य गुणनन्दि हैं। यह बहुत संभव है कि सूत्रपाठके सिवाय उन्होंने उसकी कोई टीका या वृत्ति भी बनाई होगी जो कि अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है।

गुणनन्दि नामके कई आचार्य हो गये हैं। उनमेंसे एक शक संवत् ३८८ (वि० सं० ५२३) में पूज्यपादसे भी पहलेके हैं[2]। दूसरे गुणनन्दि का उल्लेख श्रवणबेल्गोलके ४२, ४३ और ४७ वें नम्बरके शिलालेखोंमें मिलता है। ये बलाकपिच्छके शिष्य और गृध्रपिच्छके प्रशिष्य थे। तर्क, व्याकरण और साहित्य शास्त्रके बहुत बड़े विद्वान् थे। इनके ३०० शास्त्रपारंगत शिष्य थे और उनमें ७२ शिष्य सिद्धान्तशास्त्री थे। आदि पंपके गुरु देवेन्द्र भी इन्हीं के शिष्य थे। अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका कर्त्ता बतलाया है; परन्तु अभी-

१ देखो प्रो० पिटर्सनकी दूसरी रिपोर्ट सन १८८४, पृष्ठ १६४।

१ देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५।

२ मर्कराका ताम्रपत्र, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ ३६३-६५। तथा एपिग्राफिका कर्नाटिका--जिल्द १, का पहला लेख।

तक इनका कोई काव्य नहीं मिला है। कर्नाटक कविचरितके कर्ताने इनका समय वि० संवत् ९५७ निश्चय किया है। क्यों कि इनके शिष्य देवेन्द्रके शिष्य आदि पंपका जन्म वि० सं० ९५९ में हुआ था और उसने ३९ वर्षकी अवस्थामें अपने सुप्रसिद्ध कनडी काव्य भारतचम्पू और आदिपुराण निर्माण किये हैं। हमारा अनुमान है कि येही गुणनन्दि शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे। श्रवण बेलगोलके ४७ वें शिलालेखमें इनके सम्बन्धमें नीचे लिखे श्लोक मिलते हैं:—

श्रीगृद्ध्रपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट रत्नत्रयवर्तिकीर्तिः।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ ६ ॥
तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिः चारित्रचक्रेश्वरः।
तर्कव्याकरणादिशास्त्रनिपुणः साहित्यविद्यापतिः ॥ ७
मिथ्यात्वादिमदान्धसिन्धुरघटासंघातकण्ठीरवो।
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्पदर्पापहः ॥ ८
तच्छिष्यास्त्रिशतं विवेकनिधयः शास्त्राब्धिपारंगताः
तेषूत्कृष्टतमा द्विसप्ततिमिताः सिद्धान्तशास्त्रार्थकाः ॥ ९
व्याख्याने पटवो विचित्रचरिताः तेषु प्रसिद्धो मुनिः।
नानानूननयप्रमाणनिपुणो देवेन्द्रसैद्धान्तिकः ॥ १०

चन्द्रप्रभचरित महाकाव्यके कर्त्ता वीरनन्दिका समय शक संवत ९०० के लगभग निश्चित होता है। क्यों कि वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथकाव्यमें उनका स्मरण किया है। और वीरनन्दीकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है--१ श्रीगुणनन्दि, २ विबुधगुणनन्दि, ३ अभयनन्दि और वीरनन्दि। यदि पहले गुणनन्दि और वीरनन्दिके बीचमें हम ७८ वर्षका अन्तर मान लें, तो पहले गुणनन्दिका समय वही शक संवत् ८२२ या वि० सं० ९५७ के लगभग आ जायगा। इससे यह निश्चय होता है कि वीरनन्दिकी गुरुपरम्पराके प्रथम गुणनन्दि और आदिपंपके गुरु देवेन्द्रके गुरु गुणनन्दि एक ही होंगे और जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं येही शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे।

गुणनन्दि नामके एक और आचार्य शक संवत् १०३७ [वि० सं० ११७२] में हुए हैं जो मेघचन्द्र त्रैविद्यके गुरु थे। संभव है कि शब्दार्णवके कर्त्ता ये ही हों।

शब्दार्णवकी इस समय दो टीकायें उपलब्ध हैं और दोनों ही सनातन जैन ग्रन्थमालामें छप चुकी हैं—१ शब्दार्णवचन्द्रिका, और २ शब्दार्णवप्रक्रिया।

१—शब्दार्णवचन्द्रिका। इसकी एक बहुत ही प्राचीन और अतिशय जीर्ण प्रति भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। यह ताडपत्रपर नागरी लिपिमें है। इसके आदि-अन्तके पत्र प्रायः नष्ट हो गये हैं। इसमें छपी हुई प्रतिमें जो गद्य प्रशस्ति है, वह नहीं है। और अन्तमें एक श्लोक है जो आधा पढ़ा जाता है—"मंगलमस्तु।... ...इन्द्रश्चंद्रशकटतनयः पाणिनिः पूज्यपादो यत्प्रोवाचापिशलिरमरः काशकृत्स्नि......शब्दपारायणस्येति।"

इसके कर्त्ता श्रीसोमदेव मुनि हैं। ये शिलाहार वंशके राजा भोजदेव [द्वितीय] के समयमें हुए हैं और अर्जुरिका नामक ग्रामके त्रिभुवनतिलक नामक जैनमन्दिरमें—जो कि महामण्डलेश्वर गंडरादित्यदेवका बनवाया हुआ था—उन्होंने इसे शक संवत् ११२७ [वि० सं० १२६२] में बनाया है। यह ग्राम इस समय आजरे नामसे प्रसिद्ध है और कोल्हापुर राज्यमें है। वादीभवज्रांकुश श्रीविशालकीर्ति पण्डितदेवके वैयावृत्यसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है:—

"श्रीसोमदेवयतिनिर्मितिमादधाति
या नौः प्रतीतगुणनंदितशब्दवार्धौ।

---

१ नं० २५ सन १८८०-८८ की रिपोर्ट।

२ ये विशालकीर्ति वे ही मालूम होते हैं जिनका उल्लेख पं० आशाधरने अपने अनगारधर्मामृतकी प्रशस्तिकी टीकामें 'वादीन्द्रविशालकीर्ति' के नामसे किया है और जिनको उन्होंने न्यायशास्त्रमें पारंगत किया था। पं० आशाधर वि० सं० १२४९ के लगभग धारामें आये थे और वि० सं० १३०० तक उनके अस्तित्वका पता लगता है। (देखो माणिकचंद विद्वद्रत्नमालामें 'पण्डित प्रवर आशाधर शीर्षक लेख) अतः सोमदेवका वैयावृत्य करनेवाले विशालकीर्ति दूसरे नहीं हो सकते। पं० आशाधरके पाससे पढ़कर ही वे दक्षिणके और चले आये होंगे।

सेयं सताममलचेतसि विस्फुरंती
वृत्तिः सदा नुतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥

स्वस्ति श्रीकोल्हापुरदेशांतर्वर्त्यार्जुरिकामहास्थानयुधिष्ठिरावतारमहामण्डलेश्वरगंडरादित्यदेवनिर्मापितत्रिभुवनतिलक-- जिनालये श्रीमत्परमपरमेष्ठिश्रीनेमिनाथश्रीपादपद्माराधनबलेन वादीभवज्रांकुशश्रीविशालकीर्तिपंडितदेववैयावृत्यतःश्रीमच्छि-- लाहारकुलकमलमार्तंडतेजःपुंजराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकपश्चिमचक्रवर्तिश्रीवीरभोजदेवविजयराज्ये शकवर्षैकसह-- स्रैकशतसप्तविंशति ११२७ तमक्रोधनसंवत्सरे स्वस्ति समस्तानवद्यविद्याचक्रचक्रवर्तिश्रीपूज्यपादानुरक्तचेतसा श्रीमत्सोमदेवमुनीश्वरेण विरचितेयं शब्दार्णवचन्द्रिका नाम वृत्तिरिति । इति श्रीपूज्यपादकृतजैनेन्द्रमहाव्याकरणं सम्पूर्णम् । ”

यशस्तिलकचम्पूके कर्ता सुप्रसिद्ध सोमदेवसूरि इनसे पहले हुए हैं। क्यों कि उनका उक्त चम्पू शक संवत् ८८१ [वि० १०१६] में समाप्त हुआ था। अतएव उनसे और इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह स्पष्ट है।

इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें नीचे लिखे दो श्लोक दिये हैं:—

श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
सोमामरव्रतिपपूजितपादयुग्मम् ।
सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्रं
सच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥ १ ॥
श्रीमूलसंघजलजप्रतिबोधभानो-
र्मेघेन्दुदीक्षितभुजंगसुधाकरस्य ।
राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकरस्य वृत्तिं
रेभे हरीन्दुयतये वरदीक्षिताय ॥ २ ॥

इनमेंसे पहले श्लोकमें पूज्यपाद, गुणनन्दि और सोमदेव ये विशेषण वीर भगवानको दिये हैं। दूसरे श्लोकमें कहा है कि यह टीका मूलसंघीय मेघचन्द्रके शिष्य नागचन्द्र (भुजंगसुधाकर)और उनके शिष्य हरिचन्द्र यतिके लिए बनाई जाती है।

गुणनन्दिकी प्रशंसा चुरादि धातुपाठके अन्तमें भी एक पद्यमें की गई है जिसका अन्तिम चरण यह है:—

शब्दब्रह्मा स जीयाद् गुणनिधिगुणनंदिव्रतीशस्सुसौख्यः ।

अर्थात् इसमें शब्दब्रह्मा विशेषण देकर गुणनन्दिको शब्दार्णव व्याकरणका कर्ता ही प्रकट किया गया है।

अब देखना चाहिए कि ये मेघचन्द्र और नागचन्द्र आदि कौन थे और कब हुए हैं:—

ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके गुरु ही मालूम होते हैं। ये बड़े भारी विद्वान् थे। इन्हें सिद्धान्तज्ञतामें जिनसेन और वीरसेनके सदृश, न्यायमें अकलंकके समान और व्याकरणमें साक्षात् पूज्यपाद सदृश बतलाया है। श्रवणबेलगोलके नं० ४७, ५० और ५१ नम्बरके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में और उनके शुभचन्द्रदेव नामक शिष्यका स्वर्गवास शक संवत् १०६८ (वि० सं० १२०३)में हुआ था। तथा उनके दूसरे शिष्य प्रभाचन्द्रदेवने शक सं० १०४१ (वि० सं० ११७६) में एक महापूजाप्रतिष्ठा कराई थी। जब सोमदेवने शब्दार्णवचन्द्रिका मेघचन्द्रके प्रशिष्य हरिचन्द्रके लिए शक सं० ११२७ (वि० सं० १२६२) में बनाई थी, तब मेघचन्द्रका समय वि० सं० ११७२ के लगभग माना जा सकता है।

नागचन्द्र नामके दो विद्वान् हो गये हैं, एक पंपरामायणके कर्ता नागचन्द्र जिनका दूसरा नाम अभिनव पंप था, और दूसरे लब्धिसारटीकाके कर्ता नागचन्द्र। पहले गृहस्थ थे और दूसरे मुनि। अभिनव पंपके गुरुका नाम बालचन्द्र था जो मेघचन्द्रके सहाध्यायी थे, और दूसरे स्वयं बालचन्द्रके शिष्य थे। इन दूसरे नागचन्द्रके शिष्य हरिचन्द्रके लिए यह वृत्ति बनाई गई है। इन्हें जो 'राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकर' विशेषण दिया है उससे मालूम होता है, कि ये सिद्धान्तचक्रवर्ती या सिद्धान्त शास्त्रोंके ज्ञाता या टीकाकार होंगे।

२—शब्दार्णवप्रक्रिया। यह जैनेन्द्र प्रक्रियाके नामसे छपी है; परन्तु हमारा अनुमान है कि इस-

---

१ मेघचन्द्रके विषयमें विशेष जाननेके लिए देखो माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके ' आचारसार ' की भूमिका।

२ देखो, ' इन्स्क्रिप्शन्स एट श्रवणबेलगोल ' का ४७ वाँ शिलालेख।

का नाम शब्दार्णव-प्रक्रिया ही होगा। हमें इसकी कोई हस्तलिखित प्रति नहीं मिल सकी। जिस तरह अभयनन्दिकी वृत्तिके बाद उसीके आधारसे प्रक्रियारूप पंचवस्तु टीका बनी है, उसी प्रकार सोमदेवकी शब्दार्णव-चन्द्रिकाके बाद उसीके आधारसे यह प्रक्रिया बनी है। प्रकाशकोंने इसके कर्ताका नाम गुणनन्दि प्रकट किया है; परन्तु जान पड़ता है इसके अन्तिम श्लोकोंमें गुणनन्दिका नाम देखकर ही भ्रमवश इसके कर्त्ताका नाम गुणनन्दि समझ लिया गया है। वे श्लोक नीचे दिये जाते हैं:—

सत्संधिं दधते समासमभितः ख्यातार्थनामोन्नत
निर्ज्ञातं बहुतद्धितं कृतमिहाख्यात यशःशालिनम्।
सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं
नावत्याश्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥ १ ॥
दुरितमदेभनिशुंभकुम्भस्थलभेदनक्षमोग्रनखैः।
राजन्मृगाधिराजो गुणनन्दि भुवि चिरं जीयात् ॥ २
सन्मार्गे सकलसुखप्रियकरे संज्ञापिते सद्गुण
प्रा(दि)ग्वासरसुचरित्रवानमलकः कान्तो विवेकी प्रियः।
सोयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिपो भट्टारकोत्तंसको
रंरम्यान्मम मानसे कविपतिः सद्राजहंसश्चिरम् ॥ ३

इनमेंसे पहले पद्यका आशय पहले लिखा जा चुका है। उससे यह स्पष्ट होता है कि गुणनन्दिके शब्दार्णवके लिए यह प्रक्रिया नावके समान है। और दूसरे पद्यमें कहा है कि सिंहके समान गुणनन्दि पृथ्वीपर सदा जयवन्त रहें। मालूम नहीं, इन पद्योंसे इस प्रक्रियाका कर्तृत्व गुणनन्दिको कैसे प्राप्त होता है। यदि इसके कर्ता स्वयं गुणनन्दी होते तो वे स्वयं ही अपने लिए यह कैसे कहते कि वे गुणनन्दि सदा जयवन्त रहें। इनसे तो साफ प्रकट होता है कि गुणनन्दि ग्रन्थकर्तासे कोई पृथक् ही व्यक्ति है जिसे वह श्रद्धास्पद समझता है। अर्थात् यह निस्सन्देह है कि इसके कर्ता गुणनन्दिके अतिरिक्त कोई दूसरे ही हैं।

तीसरे पद्यमें भट्टारकशिरोमणि श्रुतकीर्ति देवकी प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि वे मेरे मनरूप मानससरोवरमें राजहंसके समान चिरकाल तक विराजमान रहें। इसमें भी ग्रन्थकर्ता अपना नाम प्रकट नहीं करते हैं; परन्तु अनुमानसे ऐसा जान पड़ता है कि वे श्रुतकीर्तिदेवके कोई शिष्य होंगे और संभवतः उन श्रुतकीर्तिके नहीं जो पंचवस्तुके कर्ता हैं। ये श्रुतकीर्ति पंचवस्तुके कर्तासे पृथक् जान पड़ते हैं। क्योंकि इन्हें प्रक्रियाके कर्ताने 'कविपति' बतलाया है, व्याकरणज्ञ नहीं। ये वे ही श्रुतकीर्ति मालूम होते हैं जिनका समय प्रो० पाठकने शक संवत् १०४५ या वि० सं० ११८० बतलाया है। श्रवणबेलगोलके जैनगुरुओंमें 'चारुकीर्ति पंडिताचार्य' का पद शक संवत् १०३९ के बाद धारण किया है और पहले 'चारुकीर्ति इन्हीं श्रुतकीर्तिके पुत्र थे। श्रवणबेलगोलके १०८ वें शिलालेखमें इनका जिकर है और इनकी बहुत ही प्रशंसा की गई है। लिखा है–

तत्र सवशरीररक्षाकृतमतिर्विजितेन्द्रियः।
सिद्धशासनवर्द्धनप्रतिलब्धकीर्तिकलापकः ॥ २२ ॥
विश्रुतश्रुतकीर्तिभट्टारकयतिस्समजायत।
प्रस्फुरद्वचनामृतांशुविनाशिताखिलहृत्तमाः ॥२३॥

प्रक्रियाके कर्ताने इन्हें भट्टारकोत्तंस और श्रुतकीर्तिदेवयतिप लिखा है और इस लेखमें भी भट्टारकयति लिखा है। अतः ये दोनों एक मालूम होते हैं। आश्चर्य नहीं जो इनके पुत्र और शिष्य चारुकीर्ति पण्डिताचार्य ही इस प्रक्रियाके कर्ता हों।

समय-निर्णय।

१. शाकटायन व्याकरण और उसकी अमोघवृत्ति नामकी टीका दोनों ही के कर्ता शाकटायन नामके आचार्य हैं, इस बातको प्रो० के० बी० पाठकने अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है और उन्होंने यह भी बतलाया है कि अमोघवृत्ति राष्ट्रकूट राजा

१ छपी हुई प्रतिके अन्तमें "इति प्रक्रियावतारे कृद्विधिः षष्ठः समाप्तः। समाप्तेयं प्रक्रिया।" इस तरह छपा है। इससे भी इसका नाम जैनेन्द्र प्रक्रिया नहीं जान पड़ता।

१ देखो 'सिस्टम्स आफ संस्कृत ग्रामर' पृष्ठ ६७। २ देखो, मेरा लिखा 'कर्नाटक जैन कवि' पृष्ठ २०। ३ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण २-३, पृष्ठ ११८।

४ देखो, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द ४३, पृष्ठ २०५–१२ में प्रो० पाठकका लेख।

अमोघ वर्षके समयमें उसीके नामसे बनाई गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि शाकटायन व्याकरण (सूत्र) अमोघ वर्षके समयमें अथवा उससे कुछ पहले बनाया गया होगा। अमोघवर्षने शक संवत् ७३७ से ८०० तक (वि० सं० ८७२ से ९३५ तक) राज्य किया है। अतः यदि हम शाकटायन सूत्रोंके बननेका समय वि० सं० ८५० के लगभग मान लें, तो यह वास्तविकता के निकट ही रहेगा।

शाकटायन व्याकरणको बारीकीके साथ देखनेसे मालूम होता है कि वह जैनेन्द्रसे पीछे बना हुआ है। क्यों कि उसके अनेक सूत्र जैनेन्द्रका अनुकरण करके रचे गये हैं। उदाहरणके लिए जैनेन्द्रके " वस्तेर्ढञ् " (४-१-१५४), " शिलायाढः, (४-१-१५५) " ढश्च " (४ १-२०९) आदि सूत्रोंको शाकटायनने थोडा बहुत फेरफार करके अथवा ज्योंका त्यों ले लिया है। जैनेन्द्रका एक सूत्र है-" टिदादिः " (१-१-५२) शाकटायनने इसे ज्यों का त्यों रख कर अपना पहले अध्याय, पहले पादका ५२ वां सूत्र बना लिया है। इस सूत्रको लक्ष्य करके भट्टाकलंकदेव अपने राजवार्तिक (१-५-१, पृष्ठ ३७) में लिखते हैं— " क्वचिदवयवे टिदादिरिति। " और भट्टाकलंकदेव शाकटायन तथा अमोघवर्षसे पहले राष्ट्रकूट राजा साहसतुंगके समयमें हुए हैं, अत एव यह निश्चय है कि अकलंकदेवने जो ' टिदादि ' सूत्रका प्रमाण दिया है, वह जैनेन्द्रके सूत्रको ही लक्ष्य करके दिया है, शाकटायनके सूत्रको लक्ष्य करके नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि शाकटायन जैनेन्द्रसे पीछेका बना हुआ है। अर्थात् जैनेन्द्र वि० सं० ८५० से भी पहले बन चुका था।

२) वामनप्रणीत लिङ्गानुशासन नामका एक ग्रन्थ अभी हाल ही गायकवाड ओरियंटल सीरीजमें प्रकाशित हुआ है। इसका कर्ता पं० वामन राष्ट्रकूट राजा जगत्तुंग या गोविन्द तृतीयके समयमें हुआ है और इस राजाने शक ७१६ से ७३६ (वि० ८५१—८७१) तक राज्य किया है। यह ग्रन्थ कर्ता नीचे लिखे पद्यमें जैनेन्द्रका उल्लेख करता है-

> व्याडिप्रणीतमथ वाररुचं सचान्द्रं
> जैनेन्द्रलक्षणगतं विविधं तथान्यत्।
> लिङ्गस्य लक्ष्म हि समस्य विशेषयुक्त-
> मुक्तं मया परिमितं त्रिदशा इहार्थाः ॥ ३१ ॥

इससे भी सिद्ध होता है कि वि० सं० ८५० के लगभग जैनेन्द्र प्रख्यात व्याकरणोंमें गिना जाता था। अतएव यह इस समयसे भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

३) हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४०)-का बना हुआ है। इस समय यह समाप्त हुआ है। उस समय दक्षिणमें राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (शुभतुंग या साहसतुंग) का पुत्र श्रीवल्लभ (गोविन्दराज द्वितीय) राज्य करता था। इस राजाने शक ६९७ से ७०५ तक [वि० ८३२ से ८४०] तक राज्य किया है। इस हरिवंशपुराणमें पूज्यपाद या देवनन्दिकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है:

> इ(इं)द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि (डि)व्याकरणेक्षिणः।
> देवस्य देववन्द्यस्य न वदते गिरः कथम् ॥ ३१ ॥

यह बात निस्सन्देह होकर कही जा सकती है कि जैनेन्द्रव्याकरणके कर्ता देवनन्दि वि० सं० ८०० से भी पहलेके हैं।

४) ऊपर बतलाया चुका है कि तत्त्वार्थराजवार्तिकमें जैनेन्द्र व्याकरणके एक सूत्रका हवाला दिया गया है। इसी तरह " सर्वादिः सर्वनाम " [१-१-३५] सूत्र भी जैनेन्द्रका है, और उसका उल्लेख राजवार्तिक अध्याय १ सूत्र ११ की व्याख्यामें किया गया है। इससे सिद्ध है कि जैनेन्द्र व्याकरण राजवार्तिकसे पहलेका बना हुआ है। राजवार्तिकके कर्ता अकलंकदेव राष्ट्रकूट राजा साहसतुंग—जिसका दूसरा नाम शुभतुंग और कृष्ण भी है—की सभामें गये थे, इसका उल्लेख श्रवणबेलगोलकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें किया गया है; और साहसतुंगने शक संवत् ६७५ से ६९७ [वि० सं० ८१० से ८३२] तक राज्य किया है। यदि राजवार्तिकको हम इस राजाके ही समयका बना हुआ मानें, तो भी जैनेन्द्र वि० सं० ८०० से पहलेका बना हुआ सिद्ध होता है।

१ देव देवनन्दिका ही संक्षिप्त नाम है। शब्दार्णवचन्द्रिकामें १-४-११४ सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है—" देवोपज्ञमनेकशेषव्याकरणम्। "

उक्त प्रमाणोंसे यह तो निश्चय हो गया कि जैनेन्द्रके कर्ता विक्रम सं० ८०० से पहले हुए हैं। परंतु यह निश्चय नहीं हुआ कि कितने पहले हुए हैं। इसके लिए आगेके प्रमाण देखिए।

५—मर्करा (कुर्ग) में एक बहुत ही प्राचीन ताम्रपत्र[1] मिला है। यह शक संवत् ३८८ (वि०सं०५२३) का लिखा हुआ है। उस समय गंगवंशीय राजा अविनीत राज्य करता था। अविनीत राजाका नाम भी इस लेखमें है। इसमें कुन्दकुन्दान्वय और देशीयगणके मुनियोंकी परम्परा इस प्रकार दी हुई है:—गुणचन्द्र—अभयनन्दि—शीलभद्र—ज्ञाननन्दि—गुणनन्दि और वन्दनन्दि। पूर्वोक्त अविनीत राजाके बाद उसका पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ है। हिस्ट्री आफ कनड़ी लिटरेचर नामक अंगरेजी ग्रन्थ और 'कर्नाटककविचरित्र'[2] नामक कनड़ी ग्रन्थके अनुसार इस राजाका राज्यकाल ई० सन ४८२ से ५१२ (वि० ५३९—६९) तक है। यह कनड़ी भाषाका कवि था। भारविके किरातार्जुनीय काव्यके १५ वें सर्गकी कनड़ी टीका इसने लिखी है। कर्नाटककविचरित्रके कर्ता लिखते हैं कि यह राजा पूज्यपाद यतीन्द्रका शिष्य था। अत: पूज्यपादको हमें विक्रमकी छठी शताब्दिके प्रारंभका ग्रन्थकर्ता मानना चाहिए। मर्कराके उक्त ताम्रपत्रसे भी यह बात पुष्ट होती है। वि० संवत ५२३ में अविनीत राजा था। इसके १६ वर्ष बाद वि० सं० ५३९ में उसका पुत्र दुर्विनीत राजा हुआ होगा, अतएव उसका जो राज्यकाल बतलाया गया है, वह अवश्य ठीक होगा। और जिन वन्दनन्दिके समय उक्त ताम्रपत्र लिखा गया है, संभवत: उन्हींकी शिष्य परम्परामें बल्कि उन्हींके शिष्य या प्रशिष्य जैनेन्द्रके कर्ता देवनन्दि या पूज्यपाद होंगे। क्यों कि ताम्रपत्रकी मुनिपरम्परामें नन्द्यन्त नाम ही अधिक हैं, और इनका भी नाम नन्द्यन्त है। इतना ही नहीं बल्कि इनके शिष्य वज्रनन्दिका नाम भी नन्द्यन्त है। अत: जबतक कोई प्रमाण इसका विरोधी न मिले, तबतक हमें देवनन्दिको कुन्दकुन्दाम्नाय और देशीयगणके आचार्य वन्दनन्दिका शिष्य या प्रशिष्य माननेमें कोई दोष नहीं दिखता। उनका समय विक्रमकी छठी शताब्दिका प्रारंभ भी प्राय: निश्चित समझना चाहिए।

६- इस समयकी पुष्टिमें एक और भी अच्छा प्रमाण मिलता है। वि० सं० ९९० में बने हुए 'दर्शनसार'[1] नामक प्राकृत ग्रन्थमें लिखा है कि पूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दिने वि० सं० ५२६ में दक्षिण मथुरा या मदुरामें द्राविडसंघकी स्थापना की:—

> सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो।
> णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्थो ॥
> पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
> दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥

इससे भी पूज्यपादका समय वही छठी शताब्दिका प्रारंभ निश्चित होता है।

प्रो० पाठकके प्रमाण।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० काशीनाथ बापूजी पाठकने अपने शाकटायन व्याकरणसम्बन्धी लेखमें कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे ऐसा भास होता है कि जैनेन्द्रके समयका मानो अन्तिम निर्णय हो गया। इन प्रमाणोंको भी हम अपने पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करदेना चाहते हैं; परन्तु साथ ही यह भी कह देना चाहते हैं कि ये प्रमाण जिस नींवपर खड़े किये गये हैं, उसमें कुछ भी दम नहीं है। जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकी महावृत्ति रची गई है; परन्तु पाठक महोदयने जितने प्रमाण दिये हैं, वे सब शब्दार्णवचन्द्रिकाके सूत्रपाठको असली जैनेन्द्रसूत्र मानकर दिये हैं; इस कारण वे तबतक ग्राह्य नहीं हो सकते जबतक कि पुष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध नहीं कर दिया जाय कि शब्दार्णवचन्द्रिकाका पाठ ही ठीक है और इसके विरुद्धमें दिये हुए हमारे प्रमाणोंका पूरा पूरा खण्डन न कर दिया जाय।

---

१ इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ ३६३-६५ और एपिग्राफिका कर्नाटिका, जिल्द १ का पहला लेख। २ आर. नरसिंहाचार्य, एम० ए० कृत।

१ देखो इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द ४३, पृष्ठ २०५-१२।

१—जैनेन्द्रका एक सूत्र है—"हस्तादेयेनुद्यस्तेये चेः" [२-३-३६]। इस सूत्रके अनुसार 'चि' का 'चाय' हो जाता है, उस अवस्थामें जब कि हाथसे ग्रहण करने योग्य हो, उत् उपसर्गके बाद न हो और चोरी करके न लिया गया हो। जैसे 'पुष्पप्रचायः'। हस्तादेय न होनेसे पुष्पप्रचय, उत् उपसर्ग होनेसे 'पुष्पोच्चय' और चोरी होनेसे 'पुष्पप्रचय' होता है*। इस सूत्रमें उत उपसर्गके बात जो 'चाय' होनेका निषेध किया गया है, वह पाणिनिमें,+ उसके वार्तिकमें और भाष्यमें भी नहीं है। परन्तु पाणिनिकी काशिकावृत्तिमें ३-३-४० सूत्रके व्याख्यानमें है—"उच्चयस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः।" इससे सिद्ध होता है कि काशिकाके कर्त्ता वामन और जयादित्यने इसे जैनेन्द्रपरसे ही लिया है और जयादित्यकी मृत्यु वि० सं० ७१७ में हो चुकी थी ऐसा चिनी यात्री इत्सिगने अपने यात्राविवरणमें लिखा है। अतः जैनेन्द्रव्याकरण वि० सं० ७१७ से भी पहलेका बना हुआ होना चाहिए।

२—पाणिनि व्याकरणमें नीचे लिखा हुआ एक सूत्र हैः—

"शरद्वच्छुनकदर्भाद् भृगुवत्साग्रायणेषु।"

४-१-१०२।

इसके स्थानमें जैनेन्द्रका सूत्र इस प्रकार है—

"शरद्वच्छुनकदर्भाग्निशर्मकृष्णरणात् भृगुवत्साग्रायणवृषगणब्राह्मणवासिष्ठे।" ३-१-१३४।

इसीका अनुकरणकारी सूत्र शाकटायनमें इस तरह का हैः—

"शरद्वच्छुनकरणाग्निशर्मकृष्णदर्भाद् भृगुवत्सवसिष्ठवृषगणब्राह्मणाग्रायणे" २-४-३६।

इस सूत्रकी अमोघवृत्तीमें

"आग्निशर्मायणो वार्षगण्यः। आग्निशर्मिरन्यः।"

इस तरह व्याख्या की है।

इन सूत्रोंसे यह बात मालूम होती है कि पाणिनिमें 'वार्षगण्य' शब्द सिद्ध नहीं किया गया है जब कि जैनेन्द्रमें किया गया है। 'वार्षगण्य' सांख्य कारिकाके कर्त्ता ईश्वरकृष्णका दूसरा नाम है और सुप्रसिद्ध चीनी विद्वान डा० टक्कुसुके मतानुसार ईश्वरकृष्ण वि० सं० ५०७ के लगभग विद्यमान थे। इससे निश्चय हुआ कि जैनेन्द्रव्याकरण ईश्वरकृष्णके बाद—वि० सं० ५०७ के बाद और काशिकासे पहले—वि० सं० ७१७ से पहले—किसी समय बना है।

३—जैनेन्द्रका और एक सूत्र है—"गुरूदयाद् भाद्युक्तेऽब्दे" (३-२-२१)। शाकटायनने भी इसे अपना २-४ २२४ वां सूत्र बना लिया है। हेमचन्द्रने थोडासा परिवर्तन करके 'उदितगुरोर्भाद्युक्तेऽब्दे' (६ २-२५) बनाया है। इस सूत्रमें द्वादशवर्षात्मक बार्हस्पत्य संवत्सरपद्धतिका उल्लेख किया

---

१ इन प्रमाणोंमें जहाँ जहाँ जैनेन्द्रका उल्लेख हो, वहाँ वहाँ शब्दार्णव-चन्द्रिकाका सूत्रपाठ समझना चाहिए। सूत्रोंके नम्बर भी उसीके अनुसार दिये गये हैं।

* 'हस्तादेये' हस्तेनादानेऽनुदि वाचि चिञो घञ भवत्यस्तेये। पुष्पप्रचायः। हस्तादेय इति किं? पुष्पप्रचयं करोति तरुशिखरे। अनुदीति किं? फलोच्चयः। अस्तेय इति किं? फलप्रचयं करोति चौर्येण (शब्दार्णव-चन्द्रिका पृष्ठ ५१)

+ पाणिनिका सूत्र इस प्रकार है—"हस्तादाने चेरस्तेये" (३-३-४०)

१ इस संवत्सरकी उत्पत्ति बृहस्पतिकी गति परसे हुई है, इस कारण इसे बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। जिस समय यह मालूम हुआ कि नक्षत्रमण्डलमेंसे बृहस्पतिकी एक प्रदक्षिणा लगभग १२ वर्षमें होती है, उसी समय इस संवत्सरकी उत्पत्ति हुई होगी, ऐसा जान पडता है। जिस तरह सूर्यकी एक प्रदक्षिणाके कालको एक सौर वर्ष और उसके १२ वें भागको मास कहते हैं, उसी तरह इस पद्धतिमें गुरुके प्रदक्षिणा कालको एक गुरुवर्ष और उसके लगभग १२ वें भागको गुरुमास कहते थे। सूर्यसान्निध्यके कारण गुरु वर्षमें कुछ दिन अस्त रहकर जिस नक्षत्रमें उदय होता है, उसी नक्षत्रके नाम गुरुवर्षके मासोंके नाम रक्खे जाते थे। ये गुरुके मास वस्तुतः सौर वर्षोंके नाम हैं, इस कारण इन्हें चैत्र संवत्सर, वैशाख संवत्सर आदि कहते थे। इस पद्धतिको अच्छी तरह समझनेके लिए स्वर्गीय पं० शंकर बालकृष्ण दीक्षितका "भारतीय ज्योतिःशास्त्राचा इतिहास" और डॉ० फ्लीटके 'गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स' में इन्हीं दीक्षित महाशयका अँगरेजी निबन्ध पढना चाहिए।

गया है। यह पद्धति प्राचीन गुप्त और कदम्बवंशी राजाओंके समय तक प्रचलित थी, इसके कई प्रमाण पाये गये हैं। प्राचीन गुप्तोंके शक संवत् ३९७ से ४५० [वि० सं० ५५४ से ५८०] तक तक के पाँच ताम्रपत्र पाये गये हैं। उनमें चैत्रादि संवत्सरोंका उपयोग किया गया है और इन्हीं गुप्तोंके समकालीन कदम्बवंशी राजा मृगेशवर्माके ताम्रपत्रमें भी पौष संवत्सरका उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि इस बृहस्पति संवत्सरका सबसे पहले उल्लेख करनेवाले जैनेन्द्रव्याकरणके कर्त्ता हैं और इसलिए जैनेन्द्रकी रचना का समय ईस्वी सनकी पाँचवीं शताब्दिके उत्तरार्ध (विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध) के लगभग होना चाहिए। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि जैनेन्द्रकी रचना ईश्वरकृष्णके पहले अर्थात् वि० सं० ५०७ के पहले नहीं हो सकती, क्यों कि उसमें वार्षगण्यका उल्लेख है।

पाठक महाशयने इन प्रमाणोंमें 'हस्तादेयेनुयस्तेये चे', 'शरद्वच्छुनकदर्भाग्निशर्मकृष्णरणात् भृगुवत्साग्रायणवृषगणब्राह्मणवसिष्ठे' और 'गुरुदयाद् भायुकेब्दे' सूत्र दिये हैं, परन्तु ये तीनों ही जैनेन्द्रके असली सूत्रपाठमें इन रूपोंमें नहीं हैं, अतएव इनसे जैनेन्द्रका समय किसी तरह भी निश्चित नहीं हो सकता है।

हाँ, यदि जैनेन्द्रकी कोई स्वयं देवनन्दिकृत वृत्ति उपलब्ध हो जाय, जिसके कि होनेका हमने अनुमान किया है, और उसमें इन सूत्रोंके विषयका प्रतिपादन करनेवाले वार्तिक आदि मिल जायँ—मिल जानेकी संभावना भी बहुत है—तो अवश्य ही पाठक महाशयके ये प्रमाण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।

पाठक महाशयके इन प्रमाणोंके ठीक न होने पर भी दर्शनसारके और मर्करके ताम्रपत्रके प्रमाणसे यह बात लगभग निश्चित ही है कि जैनेन्द्र विक्रमकी छठी शताब्दीके प्रारंभ की रचना है।

जैनेन्द्रोक्त अन्य आचार्य।

पाणिनि आदि वैयाकरणोंने जिस तरह अपनेसे पहलेके वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है उसी तरह जैनेन्द्रसूत्रोंमें भी नीचे लिखे आचार्योंका उल्लेख मिलता है:—

१—राद् **भूतबलेः** । ३-४-८३ ।

२—गुणे **श्रीदत्तस्या**स्त्रियाम । १-४-३४ ।

३—कृवृषिमृजां **यशोभद्रस्य** । २-१-९९ ।

४—रात्रेः कृति**प्रभाचन्द्रस्य** । ४-३-१८० ।

५—वेत्तेः **सिद्धसेनस्य** । ५-१-७ ।

६—चतुष्टयं **समन्तभद्रस्य** । ५-४-१४० ।

जहां तक हम जानते हैं, उक्त छहों आचार्य ग्रन्थकर्त्ता तो हो गये हैं, परन्तु उन्होंने कोई व्याकरण ग्रन्थ भी बनाये होंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। जान पड़ता है, पूर्वोक्त आचार्योंके ग्रन्थोंमें जो जुदा जुदा प्रकारके शब्दप्रयोग पाये जाते होंगे उन्हीं को व्याकरणसिद्ध करनेके लिए ये सब सूत्र रचे गये हैं। इन आचार्योंमेंसे जिन जिनके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनके शब्दप्रयोगोंकी बारीकीके साथ जांच करनेसे इस बातका निर्णय हो सकता है। आशा है कि जैन समाजके पण्डितगण इस विषयमें परिश्रम करनेकी कृपा करेंगे।

१ भूतबलि। इनका परिचय इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार कथामें दिया गया है। भगवान् महावीरके निर्वाणके ६८३ वर्ष बाद तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। इसके बाद विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, और अर्हद्दत्त नामके चार आरातीय मुनि हुए जिन्हें अंग और पूर्वके अंशोंका ज्ञान था। इनके बाद अर्हद्बलि और माघनन्दि आचार्य हुए। इन्हें उन अंशोंके भी कुछ अंश ज्ञान रहा। इनके बाद धरसेन आचार्य हुए। इन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनियोंको विधिपूर्वक अध्ययन कराया और इन दोनोंने महाकर्मप्रकृतिप्राभृत या षट्खण्ड नामक शास्त्रकी रचना की। यह ग्रन्थ ३६ हजार श्लोक प्रमाण है। इसके प्रारंभका कुछ भाग पुष्प-

१ संभवतः यह ग्रन्थ मूडबिद्री (मेंगलोर) के जैनभण्डारमें मौजूद है।

दन्त आचार्यका और शेष भूतबलिका बनाया हुआ है। वीरनिर्वाणसंवत् ६८३ के बाद पूर्वोक्त सब आचार्य क्रमसे हुए, या अक्रमसे; और उनके बीचमें कितना कितना समय लगा, यह जाननेका कोई भी साधन नहीं है। यदि हम इनके बीचका समय २५० वर्ष मान लें तो भूतबलिका समय वीरनिर्वाण संवत् ९३३ (शाके संवत् ३२८ वि० सं० ४६३) के लगभग निश्चित होता है। और इस हिसाबसे वे पूज्यपाद स्वामीसे कुछ ही पहले हुए हैं, ऐसा अनुमान होता है।

२ श्रीदत्त। विक्रमकी ९ वीं शताब्दिके सुप्रसिद्ध लेखक विद्यानन्दने अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें श्रीदत्तके 'जल्पनिर्णय' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है:—

द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्व-प्रातिभगोचरम्।
त्रिषष्टेर्वादिनां जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये ॥

इससे मालूम होता है कि ये ६३ वादियोंके जीतनेवाले बड़े भारी तार्किक थे। आदिपुराणके कर्ता जिनसेनसूरिने भी इनका स्मरण किया है और इन्हें वादिगजोंका प्रभेदन करनेके लिए सिंह बतलाया है:—

श्रीदत्ताय नमस्तस्मै तपः श्रीदीप्तमूर्तये।
कण्ठीरवायितं येन प्रवादीभप्रभेदने ॥ ४५

वीरनिर्वाण संवत ६८३ के बाद जो ४ आरातीय मुनि हुए हैं, उनमें भी एक का नाम श्रीदत्त है। उनका समय वीरनिर्वाण सं० ७०० (शक सं० ९५-वि० सं० २३०) के लगभग होता है। यह भी संभव है कि आरातीय श्रीदत्त दूसरे हों और जल्पनिर्णयके कर्ता दूसरे। तथा इन्हीं दूसरेका उल्लेख जैनेन्द्रमें किया गया हो।

३ यशोभद्र। आदिपुराणमें संभवतः इन्हीं यशोभद्रका स्मरण करते हुए कहा है—

विदुष्विणीषु संसत्सु यस्य नामापि कीर्तितम्।
निखर्वयति तद्गर्वं यशोभद्रः स पातु नः ॥ ४६

इनके विषयमें और कोई उल्लेख नहीं मिला और न यही मालूम हुआ कि इनके बनाये हुए कौन कौन ग्रन्थ हैं। आदिपुराणके उक्त श्लोकसे तो वे तार्किक ही जान पड़ते हैं।

४ प्रभाचन्द्र। आदिपुराणमें न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्ता जिन प्रभाचन्द्रका स्मरण किया है, उनसे ये पृथक् और पहलेके मालूम होते हैं। क्यों कि चन्द्रोदयके कर्ता अकलङ्कभट्टके समयमें हुए हैं, इस लिए उनका जिक्र जैनेन्द्रमें नहीं हो सकता। मालूम नहीं, ये प्रभाचन्द्र किस ग्रन्थके कर्ता हैं और कब हुए हैं।

५ सिद्धसेन। ये सिद्धसेन दिवाकरके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये बड़े भारी तार्किक हुए हैं। स्वर्गीय डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषणका खयाल था कि विक्रमकी सभाके क्षपणक नामक रत्न यही थे। आदिपुराणमें इनका कवि, और प्रवादिगजकेसरी कहकर और हरिवंशपुराणमें सूक्तियोंका कर्ता कहकर स्मरण किया है। न्यायावतार, सम्मतितर्क, कल्याणमन्दिरस्तोत्र और २० द्वात्रिंशिकायें (स्तुतियां) इनकी उपलब्ध हैं। यदि विक्रमका समय ईस्वीकी छठी शताब्दी माना जाय—जैसा कि प्रो० मोक्षमूलर आदिका मत है—तो सिद्धसेन इसी समयमें हुए हैं और लगभग यही समय जैनेन्द्रके बननेका है। *

६ समन्तभद्र। दिगम्बर सम्प्रदायके ये बहुत ही प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। बीसों दिगम्बर ग्रन्थकारोंने इनका उल्लेख किया है। ये बड़े भारी तार्किक और कवि थे। इनका गृहस्थावस्थाका नाम वर्म था। ये फणिमण्डल (?) के उरगपुर-नरेशके

१ त्रैलोक्यसारके कर्ता 'नेमिचन्द्र' ने और हरिवंशपुराणके कर्ताने वीर निर्वाणसे ६०५ वर्ष बाद शककाल माना है। उन्हींकी गणनाके अनुसार हमने यहाँ शक संवत् दिया है।

* सिद्धसेन ईस्वीकी ६ ठी शताब्दीसे बहुत पहले हो गये हैं। क्यों कि विक्रमकी ५ वीं शताब्दीमें हो जाने वाले आचार्य मल्लवादीने सिद्धसेनके सम्मतितर्क ऊपर टीका लिखी थी। हमारे विचारसे सिद्धसेन विक्रमकी प्रथम शताब्दिमें हुए हैं।

संपादक—जै. सा. सं.

पुत्र थे। इनके बनाये हुए देवागम (आप्तमीमांसा), युक्त्यनुशासन, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, जिन-शतक और रत्नकरण्ड श्रावकाचार; ये ग्रन्थ छप चुके हैं। हरिवंशपुराणमें इनके एक 'जीवसिद्धि' नामक ग्रन्थका उल्लेख मिलता है। षट्खण्डसूत्रोंके पहले पांच खण्डोंपर भी इनकी बनाई हुई ४८ हजार श्लोक प्रमाण संस्कृत टीकाका उल्लेख मिला है। आवश्यकसूत्रकी मलयगिरिकृत टीकामें 'आद्य स्तुतिकारोऽप्याह' कहकर इनके स्वयंभू स्तोत्रका एक पद्य उद्धृत किया है। इससे मालूम होता है कि ये सिद्धसेनसे भी पहलेके ग्रन्थकर्ता हैं[1]। क्यों कि सिद्धसेन भी स्तुतिकारके नामसे प्रसिद्ध हैं। अभी तक इन दोनों ही आचार्योंका समय निर्णीत नहीं हुआ है।

पूज्यपादके अन्य ग्रन्थ।

जैनेन्द्रके सिवाय पूज्यपादस्वामीके बनाये हुए अबतक केवल तीन ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं और ये तीनों ही छप चुके हैं:-

१—सर्वार्थसिद्धि। दिगम्बर सम्प्रदायमें आचार्य उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्रकी यह सबसे पहली टीका है। अन्य सब टीकायें इसके बादकी हैं और वे सब इसको आगे रख कर लिखी गई हैं।

२—समाधितंत्र। इसमें लगभग १०० श्लोक हैं, इस लिए इसे समाधिशतक भी कहते हैं। अध्यात्मका बहुत ही गंभीर और तात्त्विक ग्रन्थ है। इस पर कई संस्कृत टीकायें लिखी गई हैं।

३—इष्टोपदेश। यह केवल ५१ श्लोकप्रमाण छोटा-सा ग्रन्थ है और सुन्दर उपदेशपूर्ण है। पं० आशाधरने इसपर एक संस्कृत निबन्ध लिखा है।

इनके सिवाय कहा जाता है कि इनके बनाये हुए और भी कई ग्रन्थ हैं। सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें श्रीयुत पं० कलापा निटवेने लिखा है कि चिकित्साशास्त्रपर भी पूज्यपादस्वामीके दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनमेंसे एकमें चिकित्साका और दूसरेमें औषधों तथा धान्योंका गुणनिरूपण है। परन्तु पण्डितश्री महाशयने न तो उक्त ग्रन्थोंका नाम ही लिखा है और न यही लिखनेकी कृपा की है कि वे कहाँ उपलब्ध हैं। शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णवके नीचे लिखे श्लोकके 'काय' शब्दसे भी यह बात ध्वनित होती है कि पूज्यपादस्वामीका कोई चिकित्सा ग्रन्थ है:—

> अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसंभवम्।
> कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें 'पूज्यपादकृत वैद्यक' नामका एक ग्रन्थ है[1]। यह आधुनिक कनडीमें लिखा हुआ कनडी भाषाका ग्रन्थ है। पर इसमें न तो कहीं पूज्यपादका उल्लेख है और न यही मालूम होता है कि यह उनका बनाया हुआ होगा।

विजयनगरके हरिहरराजाके समयमें एक मंगराज नामका कनडी कवि हुआ है। वि० सं० १४१६ के लगभग उसका अस्तित्व काल है। स्थावर विषोंकी प्रक्रिया और चिकित्सापर उसने खगेन्द्रमणिदर्पण नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें वह आपको पूज्यपादका शिष्य बतलाता है और यह भी लिखता है कि यह ग्रन्थ पूज्यपादके वैद्यक ग्रन्थसे संगृहीत है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपाद नामके एक विद्वान् विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिमें भी हो गये हैं और लोग भ्रमवश उन्हींके वैद्यक ग्रन्थको जैनेन्द्रके कर्ताका ही बनाया हुआ समझकर उल्लेख कर दिया करते हैं।

वृत्तविलास कविकी कनडी धर्मपरीक्षाका जो पद्य पहले उद्धृत किया जा चुका है उसमें दो ग्रन्थोंका और भी उल्लेख है, एक पाणिनिव्याक-

१ लेखक महाशयके इस कथनमें कि, समन्तभद्र सिद्धसेनसे भी पहले हुए हैं, कोई प्रमाण नहीं है। हमारे विचारसे सिद्धसेन समन्तभद्रके पुरोगामी हैं। इस विषयके विशेष विचार जाननेके लिये, इस पत्रके प्रथम अंकमें प्रकाशित 'सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र' शीर्षक हमारा लेख देखना चाहिए।

संपादक—जै. सा. सं.

१ नं. १०६६, सन् १८८७-९१ की रिपोर्ट।

रणकी टीकाका और दूसरा यंत्रमंत्रविषयक शास्त्रका। पूज्यपादद्वारा पाणिनिकी टीकाका लिखा जाना असंभव नहीं है, परन्तु साथ ही वृत्तविलास को पूज्यपादके 'जिनेन्द्रबुद्धि' नामसे भी यह भ्रम हो गया हो तो आश्चर्य नहीं। क्यों कि पाणिनिकी काशिका वृत्तिपर जो न्यास है उसके कर्त्ताका भी नाम 'जिनेन्द्रबुद्धि' है। इस नामसाम्यसे यह समझ लिया जा सकता है कि पूज्यपादने भी पाणिनिकी टीका लिखी है। न्यासकार 'जिनेन्द्रबुद्धि' वास्तवमें बौद्धभिक्षु थे और वे अपने नामके साथ 'श्री बोधिसत्त्वदेशीयाचार्य' इस बौद्ध पदवीको लगाते हैं। पूज्यपादके कनडी चरित लेखकने लिखा है कि पाणिनि पूज्यपादके मामा थे और पाणिनिके अधूरे ग्रन्थको उन्होंने ही पूर्ण किया था; परन्तु इस समय ऐसी बातोंपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

'जैनाभिषक' नामक एक और ग्रन्थका जिकर "जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं" आदि श्लोकमें किया गया है। यह श्लोक उपर पृष्ठ ८५ में दिया जा चुका है। जहां तक हमारा खयाल है जैनाभिषेक और यंत्रमंत्रविषयक ग्रन्थ भी अन्य किसी पूज्यपादके बनाये हुए होंगे और भ्रमसे इनके समझ लिये गये होंगे।

कनडी पूज्यपादचरितमें पूज्यपादके बनाये हुए अर्हत्प्रतिष्ठालक्षण और शान्त्यष्टक नाम स्तोत्रका भी जिकर है।

पूज्यपाद-चरित।

अन्य बडे बडे आचार्योंके समान पूज्यपादके जीवनसम्बन्धी घटनाओंसे भी हम अपरिचित हैं। उनके जाननेका कोई साधन भी नहीं है। सिवाय इसके कि वे एक समर्थ आचार्य थे और हमारे उपकारके लिए अनेक ग्रन्थ बनाकर रख गये हैं, उनका कोई इतिहास नहीं है। आगे हम एक कनड़ी भाषाके पूज्यपाद-चरितका सारांश देते हैं, जिससे उन लोगोंका मनोरंजन अवश्य होगा, जो अपने प्रत्येक महापुरुषका जीवनचरित-चाहे वह कैसा ही हो-पढनेके लिए उत्कंठित रहते हैं। विद्वान् पाठक इससे यह समझ सकेंगे कि सत्यताकी जरा भी परवा न करनेवाले और साम्प्रदायिकताके मोहमें बहनेवाले लेखक किसतरह तिलका ताड बनाते हैं।

इस चरितको चन्द्रय्य नामक कविने दुःषम कालके परिधावी संवत्सरकी आश्विन शुक्ल ५, शुक्रवार, तुलालग्नमें समाप्त किया है। यह कवि कर्नाटक देशके मलयनगरकी 'ब्राह्मणगली' का रहनेवाला था। वत्सगोत्री और सूर्यवंशी ब्राह्मण बम्मणाके दो पुत्र हुए सातप्पा हुव्व ब्रह्मरस और विजयप्पा। विजयप्पाके ब्रह्मरस्स और ब्रह्मरस के देवप्पा हुआ। इसी देवप्पाकी कुसुमम्मा नामक पुत्रीसे कवि चन्द्रय्य का जन्म हुआ था।

चरितका सारांश यह है:—

"कर्नाटक देशके 'कोले' नामक ग्रामके माधवभट्ट नामक ब्राह्मण और श्रीदेवी ब्राह्मणीसे पूज्यपादका जन्म हुआ। ज्योतिषियोंने बालकको त्रिलोकपूज्य बतलाया, इस कारण उसका नाम पूज्यपाद रक्खा गया। माधवभट्टने अपनी स्त्रीके कहनेसे जैनधर्म स्वीकार करलिया। भट्टजीके सालेका नाम पाणिनि था, उसे भी उन्होंने जैनी बननेको कहा, परन्तु प्रतिष्ठाके खयालसे वह जैनी न होकर मुडीगुंडग्राममें वैष्णव संन्यासी हो गया। पूज्यपादकी कमलिनी नामक छोटी बहिन हुई, वह गुणभट्टको व्याही गई। गुण भट्टको उससे नागार्जुन नामक पुत्र हुआ।

पूज्यपादने एक बगीचेमें एक सांपके मुंहमें फंसे हुए मेंडकको देखा। इससे उन्हें वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गये।

पाणिनि अपना व्याकरण रच रहे थे। वह पूरा न होने पाया था कि उन्होंने अपना मरणकाल निकट आया जान लिया। इससे उन्होंने पूज्यपाद से जाकर कहा कि इसे आप पूरा कर दीजिए। उन्होंने पूरा करना स्वीकार कर लिया।

पाणिनि दुर्ध्यानवश मरकर सर्प हुए। एक बार उसने पूज्यपादको देखकर फूत्कार किया, इसपर पूज्यपादने कहा, विश्वास रक्खो, मैं तुम्हारे व्याकरणको पूरा कर दूंगा। इसके बाद उन्होंने पाणिनि व्याकरणको पूरा कर दिया।

' इसके पहले वे जैनेन्द्र व्याकरण, अर्हत्प्रतिष्ठालक्षण. और वैद्यक ज्योतिष आदिके कई ग्रन्थ रच चुके थे।

गुणभट्टके मर जानेसे नागार्जुन अतिशय दरिद्री हो गया। पूज्यपादने उसे पद्मावतीका एक मंत्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि बतला दी। पद्मावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्ध रसकी वनस्पति बतला दी।

इस सिद्धरससे नागार्जुन सोना बनाने लगा। उसके गर्वका परिहार करनेके लिए पूज्यपादने एक मामूली वनस्पतिसे कई घड़े सिद्धरस बना दिया। नागार्जुन जब पर्वतोंको सवर्णमय बनाने लगा, तब धरणेन्द्र-पद्मावतीने उसे रोका और जिनालय बनानेको कहा। तदनुसार उसने एक जिनालय बनवाया और पार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापित की।

पूज्यपाद पैरोंमें गगनगामी लेप लगाकर विदेहक्षेत्रको जाया करते थे। उस समय उनके शिष्य वज्रनन्दिने अपने साथियोंसे झगडा करके द्राविड संघकी स्थापना की।

नागार्जुन अनेक मंत्र तंत्र तथा रसादि सिद्ध करके बहुत ही प्रसिद्ध हो गया। एकबार दो सुन्दरी स्त्रियां आईं जो गाने नाचनेमें कुशल थीं। नागार्जुन उनपर मोहित हो गया। वे वहीं रहने लगीं और एक दिन अवसर पाकर उसे मारकर और उसकी रसगुटिका लेकर चलती बनीं।

पूज्यपाद मुनि बहुत समयतक योगाभ्यास करते रहे। फिर एक देवके विमानमें बैठकर उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की। मार्गमें एक जगह उनकी दृष्टि नष्ट हो गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यष्टक बनाकर ज्योंकी त्यों कर ली। इसके बाद उन्होंने अपने ग्राममें आकर समाधिपूर्वक मरण किया।"

इस लेखके लिखनेमें हमें श्रद्धेय मुनि जिनविजयजी और पं० बेहचरदास जीवराजजीसे बहुत अधिक सहायता मिली है। इस लिए हम उक्त दोनों सज्जनोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। मुनिमहोदयकी कृपासे हमको जो इस लेख सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हुई है, वह यदि न मिलती तो यह लेख शायद ही इस रूपमें पाठकोंके सम्मुख उपस्थित हो सकता।

पूना—भाद्रकृष्ण ६ सं० १९७७ विक्रमीय

परिशिष्ट ।

[भगवद्वाग्वादिनीका विशेष परिचय]

इसके प्रारंभमें पहले 'लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य' आदि प्रसिद्ध मंगलाचरणका श्लोक लिखा गया था। परन्तु पीछेसे उसपर हरताल फेर दी गई है और उसकी जगह यह श्लोक और उत्थानिका लिख दी गई है—

ओं नमः पार्श्वाय।

त्वांतिमह्निमदृतामंत्रितनाद्भुतात्मा,
विषममपि मघोना पृच्छता शब्दशास्त्रम्।
श्रुतमदरिपरासीद् वादिवृन्दामर्णानां
परमपदपटुर्यः स श्रियं वीरदेवः॥

अप्रवाधिकोऽपि तथाविधभक्ताभ्यर्थनाप्रगुणः स भगवानिदं प्राह—सिद्धिरनेकान्तात्। १-१-१।

इसके बाद सूत्रपाठ शुरू हो गया है। पहले पत्रके ऊपर मार्जिनमें एक टिप्पणी इस प्रकार दी है जिसमें पाणिनि आदि व्याकरणोंको अप्रामाणिक ठहराया है।

"प्रमाणपदव्यामुपेक्षणीयानि पाणिन्यादिप्रणीतसूत्राणि स्यात्कारवादित्वदूरत्वात्परिव्राजकादिभाषितवत्। अप्रमाणानि च कपोलकल्पनामीलितानि हीनमानृकत्वात्तद्वदेव।"

इसके बाद प्रत्येक पादके अन्तमें और आदिमें इस प्रकार लिखा है जिससे इस सूत्रपाठके भगवत्प्रणीत होनेमें कोई सन्देह बाकी न रह जाय—

"इति भगवद्वाग्वादिन्यां प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः। ओंनमः पार्श्वाय। स भगवानिदं प्राह।"

सर्वत्र 'नमः पार्श्वाय' लिखना भी हेतुपूर्वक है। जब ग्रन्थकर्ता स्वयं महावीर भगवान् हैं तब उनके ग्रन्थमें उनसे पहलेके तीर्थंकर पार्श्वनाथको ही नमस्कार किया जा सकता है। देखिए, कितनी दूरतकका विचार किया गया है।

आगे अध्याय २ पाद २ के 'सहृवहृचरयापतेरिः' (६४) सूत्रपर निम्न प्रकार टिप्पणी दी है और इसके

सिद्ध किया है कि यदि यह व्याकरण भगवत्कृत न हो तो फिर सिद्धहैमके अमुक सूत्रकी उपपत्ति नहीं बैठ सकती !—

" इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । 'सहवह्-चल्यापतेरिधांजकृसृजनमे: किंकिट् चवत्-द्वौ सासहिवावाहिचाचालपापति, सस्चिचक्रिदधिजज्ञिनेमीति सिद्धहैमसूत्रस्याऽन्यथानुपपत्तेः । सर्ववर्मपाणिन्योस्तु 'आदवर्णोपधाद्रोपिनो किद्वैच १, आदगमहनजन: किकिनौ लिट् चेति २ ।"

इसके बाद ३-२-२२ सूत्रपर इस प्रकार टिप्पणी दी है-

"कथं न श्वच: प्रागभ्यतेष्ठादि । क्षत्रादिनियापि शिक्षाविशेषा: ।

कुमारशब्द: प्राच्यानामाश्विनं मासमूचिवान ।

मैथुनं तु भिषक्तंत्रे वाचकं मधुसर्पिष: ॥

इत्याद्यन्यथानुपपत्तेरिति बौटिकतिमिरोपलक्षणम् ।

इसके बाद ३-४-४२ सूत्र (स्तेयार्हस्यं) पर फिर एक टिप्पणी है । देखिए—

" इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । अर्हतः स्तोन्त च १, महायाद्वा २, साखभाणगृदताश्च: ३, स्तेनाम्रलुक् चे ४, ति सिद्धहैमसूत्रान्यथानुपपत्ते: । पाणिन्यादौ त्वार्हन्त्यशब्दं प्रति सूत्राभावात । कथ सरस्वतीकंठाभरणे तदासि: ? ऐन्द्रानुसारादर्हतशब्दस्तथोनि पश्य ।"

फिर ३-४-४० सूत्र (रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य) पर एक टिप्पणी है । इसमें बौटिकों या दिगम्बरियों का सत्कार किया गया है—

"इदं शब्दानुशासनं भगवत्कर्तृकमेव भवति । रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य सूत्रस्य प्रक्षेपता स्फुटत्वात् । अतो बौटिकतिमिरोपलक्षणे—

देवनन्दिमतो मोह: प्रक्षेपरजसोऽि चेत् ।

चिराय भवता रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य जीव्यतां ॥

पंचोत्तर: क: स्ववानासी: प्रभेदो नम यस्य य:(?) ।

विस्मयो स्मय: शिष्या स त चेद्देवनन्दिनामित ॥

विक्रमादृतुखयुगाब्दे ४०६ देवनन्दी, ततो गुणनंदि-कुमारनंदि-लोकचंद्रानंतरं मुनिरैयुगाब्दे प्रथम: प्रभाचंद्र इति बौटिके ।"

इसी तरह ४-३ ७ (वेत्तेः सिद्धसेनस्य) सूत्र पर लिखा है—

"वेत्तेः सिद्धसेनस्य, चतुष्टयं समंतभद्रस्य प्रक्षेपेऽर्वाच्यता स्फुटत्वात्, रात्रेः प्रभाचन्द्रस्य वादिति बौटिकतिमिरोपलक्षणे ।"

अन्तमें ५-४-६५ (शश्छोमि) सूत्रपर एक टिप्पणी दी है जिसमें पाणिनि आदि वैयाकरणोंकी असर्वज्ञता सिद्ध की गई है—

" प्रयोगाशातना माभूदनादिसिद्धा हि प्रयोगा: । ज्ञानिना तु केवलं ते प्रकाश्यंते न तु क्रियंत इति । अतएव शश्छोटीति पाणिनीयसूत्रं वर्गप्रथमेभ्य: शकार: स्वरयवरपर: शकारं छकारं नवेति सर्ववर्मकर्तृककालापकसूत्रानुसारि । अतएव पाणिन्यादयोऽसर्वज्ञा इति सिद्धं । अतएव तेषां तत्त्वत आसत्वाभाव इति सिद्धि: । नव्य: प्रभतिनिसवे निर्जरसैमुख्या यदि युक्तिस्ते मस्कारणैव भवत्कृतमास्ते न तु सारस्वतवाग्देव्या । शश्छोटिप्रमुखै: सूत्रैस्तच्छ्रुप्रभति रादर्शा कालापाद्युपजीवी पाणिनिराजिनत्वं प्रति नाव्यक्त: ।"

जहां सूत्रपाठ समाप्त होता है, वहां लिखा है:—

दन्याभ्यद्भगवानर्हन्भूतवन्द्रस्तु मद वहन् ।

वाग्देवस्त्रात्जचन्द्र: स्वमंदिराभिमुखोऽभवत् ॥

आगे ग्रन्थ प्रशस्ति देखिए—

" ओं नम: सकलकलाकौशलपेशलशालशालिने पार्श्वाय पार्श्वपार्श्वाय । स्वस्ति तत्प्रवचनसुधासमुद्रलहरीस्नायिभ्यो महामुनिभ्य: । परिसमाप्तं च जैनेन्द्रं नाम महाव्याकरणं । तदिदं यत्स्वयं श्रीवीरप्रभुर्मघोने पृच्छते प्रकाशयांचकार । सपादलक्षव्याख्यानकपरमतमदांधकारापहारपरमामिति । नम. श्रीमच्चरम परमेश्वर पादप्रसादविशदस्याद्वादनयसमुपासनगुणकोटिमत्कोटिरगणाविर्भूताविर्भूत विमलमद्रचांद्रकुलविपुलबृहत्तपोनिगमनिर्गतनागपुरीयस्वच्छगच्छसमुत्थमुत्पाविपार्श्वचंद्रशाखासुखाकृतसुकृतिवरगणिंदूपाध्यायचारुचरणारविंदरजोराजीमधुकरानुकरवाचकपदवीपवित्रिताक्षयचंद्रचरणेभ्य: ससुधीरक्तचंद्रम । श्रीवीरात् २२६७ विक्रमनृपात्तु सं. १७९७ फाल्गुनसितत्रयोदशीभौमे तक्षकाख्यपुरस्थेन रत्नर्षिणा दर्शनपावित्र्याय लिखित चिरं नंद्यात् ।"

ग्रन्थके पहले पत्रकी खाली पीठपर भी कुछ टिप्पणियां हैं और उनमें अधिकांश वे ही हैं जो उपर दी जा चुकी हैं । शेष इस प्रकार हैं:—

---

१ यह 'बौटिकमततिमिरोपलक्षण' नामका कोई ग्रन्थ है और संभवत: इसी वाग्वादिनीके कर्ताका बनाया हुआ होगा । इसका पता लगानेकी बड़ी जरूरत है । इससे दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायसम्बन्धी अनेक बातों पर प्रकाश पड़ेगा ।

ओं नमः पार्श्वाय।
जैनेन्द्रमैन्द्रतः सिद्धहैमतो जयहैमवत्।
प्रकृत्यैतद्दूरत्वान्नान्यतामेतुमर्हति।

कथं

इन्द्रश्चंद्रः काशिकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजिनेंद्रा जयंत्यष्टा हि शाब्दिकाः॥

इति ? चतुर्थी तद्धितानुपलक्षणात्।
यदिंद्राय जिनेंद्रेण कौमारेपि निरूपितं।
ऐंद्रं जैनेंद्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनं।

यदावश्यकनिर्युक्तः–
अह तं अम्मापिअरो जाणित्ता अहियअट्ठवासं तु।
कयकोउअलंकारं लेहायरिअस्स उवणिंति॥
सक्को अ तस्समक्खं भयवंतं आसणे निवेसित्ता।
सद्दस्सलक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इदं॥ इति॥
तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः। ततश्चैन्द्रं व्याकरणं संजातमिति **हरिभद्रः**।

यत्तु **देवनंदि**बोटिकपूज्यपाद इतीच्छंतस्तद्गुरुकाः
पूज्यपादस्य **लक्षणं**।
द्विसंधानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्।

इति धनंजयके प्रोक्तद्युक्त। नेति चेत्कथं जैनेंद्रमिति। द्वादशस्वरमध्यामिति चेत्। इतरोपपदस्याभावात्। जिनकुमारसंभववद्भ्रांतिरिति चेन्न। कुमारवदिंद्रं प्रति शिष्याभावात् धारीति हलतद्धितभावाच्च। तर्हि

लक्ष्मीरात्यंतिकी यस्य निरवद्यावभासते।
देवनंदितपूजेशो नमस्तस्मै स्वयंभुवे।

का गतिरिति चेत्।
लक्ष्मीरात्यंतिकीपद्यमुपज्ञेशस्य कितरां।
ऐंद्रत्वयकि तत्त्वार्थे मोक्षमार्गस्य पद्यवत्॥[1]
मिबादयश्चेत्प्रथमं यदि हैमेत्वपेक्ष्यते।
कालापकादि न तथा पट्वैन्द्रं महते कृतिः॥

पूर्वत्र। मिप् वस् मस् १ सिप् थस् थ २ तिप तस् झि ३ इट् वहि महि १ थास् आथां ध्वं २ त आताम् झङ् ३ इति।

आख्यातरीतिं प्रति देवराज
मिथ्वस्मसो यः पितः शादितोदाः।
जीवं प्रपन्नाहममात्थ विश्वं
तत्त्वादिमं त्वां मतिमात्मनाथं॥[2]

तर्हि सिद्धसेनादिविशेषोपि दुर्निवार इति चेन्न।
जातमात्रोपि चिर्ह्वायै मत्यात्मशरणोसि यः।
जनता का वराकीयं परात्मन् वीर तन्मुर॥

इति बोटिकमततिमिरोपलक्षणस्य तुर्येऽवकाशे। इंद्राजिनेंद्रौ मन्युत्तरिणौ यत्ना हे- टातदितत्सत्वमासेमिबिद्धौरेयमन्द्रेंद्रं जैनेंद्रं व्याकरणानां। सिद्धिमनेकांतादित्युक्तौ अः×क×पौ इत्यतथारीते हेमागीकृतवर्त्मनपक्षेपार्योविजेयचिरंजीया इति प्रसन्न चंद्रोत्पले (?)।

१ इसके आगे ४-३-७ सूत्रका टिप्पण जैसा ही लिखा है और फिर ३-४-४० सूत्रकी टिप्पणीके 'देवनन्दिमतां' आदि दो श्लोक दिये हैं।

२ इसके आगे ५-४-६५ सूत्रकी टिप्पणी दी है॥

गंधहस्तिमहाभाष्यकी खोज

और

आप्तमीमांसा (देवागम) की स्वतंत्रता।

[लेखक— श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी, मुख्तार ।]

कहा जाता है कि भगवान् श्रीसमन्तभद्राचार्यने तत्त्वार्थसूत्र पर 'गंधहस्ति महाभाष्य' नामके एक महान् ग्रंथकी रचना की थी, जिसकी श्लोक-संख्याका परिमाण ८४ हजार है। यह ग्रंथ भारतके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें नहीं पाया जाता। विद्वानोंकी इच्छा इस ग्रंथराजको देखनेके लिये बड़ी ही प्रबल है। बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् माणिकचंद हीराचंदजी जे० पी० ने इस ग्रंथरत्नका दर्शन मात्र करानेवालेके वास्ते ५०० रुपयेका नकद पारितोषिक भी निकाला था। परंतु खेद है कि कोई भी उनकी इस इच्छाको पूरा नहीं कर सका और वे अपनी इस महती इच्छाको हृदयमें रक्खे हुए ही इस संसारसे कूच कर गये। निःसन्देह जैनाचार्योंमें स्वामी समन्तभद्रका आसन बहुत ही ऊँचा है। वे एक बडे ही अपूर्व और अद्वितीय प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। उनका शासन महावीर भगवानके शासनके तुल्य समझा जाता है और उनकी आप्तमीमांसादिक कृतियोंको देखकर बडे बडे वादी विद्वान् चकित होते हैं। ऐसी हालतमें आचार्य महाराजकी इस महती कृतिके लिये जिसका मंगलाचरण ही आप्तमीमांसा (देवागम) कहा जाता है, यदि विद्वान् लोग उत्कंठित और लालायित हों तो इसमें कुछ भी, आश्चर्य और अस्वाभाविकता नहीं है। और यही कारण है कि अभी तक इस ग्रंथरत्नकी खोजका प्रयत्न जारी है और अब विदेशोंमें भी उसकी तलाश की जा रही है। हालमें कुछ समाचारपत्रों द्वारा यह प्रकट हुआ था कि पूना लायब्रेरीकी किसी सूची परसे आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथके अस्तित्वका पता चलता है। साथ ही, उसकी कापी करनेके लिये दो एक विद्वानोंको वहाँ भेजने और खर्चके लिये कुछ चंदा एकत्र करनेका प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया था। हम नहीं कह सकते कि ग्रंथके अस्तित्वका यह समाचार कहाँ तक सत्य है और इस बातका यथोचित निर्णय करनेके लिये अभी तक क्या क्या प्रयत्न किया गया है। परंतु इतना जरूर कहेंगे कि बहुतसे भंडारोंकी सूचियाँ अनेक स्थानों पर भ्रमपूर्ण पाई जाती हैं। पूना लायब्रेरीकी ही सूचीमें सिद्धसेन दिवाकरके नामसे 'वादिराजगंधहस्तिन्' नामके एक महान् ग्रंथका उल्लेख मिलता है जो यथार्थ नहीं है। वहाँ इस नामका कोई ग्रंथ नहीं। यह नाम किसी दूसरे ही ग्रंथके स्थान पर गलतीसे दर्ज हो गया है। ऐसी हालतमें केवल सूचीके आधार पर आस्ट्रिया जैसे सुदूरदेशकी यात्राके लिये कुछ विद्वानोंका निकलना और भारी खर्च उठाना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। बेहत्तर तरीका, इसके लिये, यह हो सकता है कि वहाँके किसी प्रसिद्ध फोटोग्राफरके द्वारा उक्त ग्रंथके आद्यंतके १०-२० पत्रोंका फोटो पहले मँगाया जाय और उन परसे यदि यह निर्णय हो जाय कि वास्तवमें यह ग्रंथ वही महाभाष्य ग्रंथ है तो फिर उसके शेष पत्रोंका भी फोटो आदि मँगा लिया जाय। अस्तु। ग्रंथके वहाँ अस्तित्व विषयमें अभी तक हमारा कोई विश्वास नहीं है।

आस्ट्रियाके एक प्रसिद्ध नगरकी प्रसिद्ध लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथ मौजूद हो और हर्मन जैकोबी जैसे खोजी विद्वानोंको उसका पता तक न लगे, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। हमें इस ग्रंथके विषयमें यह बात भी बहुत खटकती है कि 'आप्तमीमांसा' अर्थात् 'देवागम' शास्त्रको, जो कुल ११४ श्लोकपरिमाण है, इसका मंगलाचरण बतलाया जाता है। देवागम भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध भंडारोंमें पाया जाता है। उस पर अनेक टीका, टिप्पण और भाष्य भी उपलब्ध हैं। अकलंकदेवकी 'अष्टशती' और विद्यानंद स्वामीकी 'अष्टसहस्री' उसीके भाष्य और महाभाष्य हैं। जिस ग्रंथका मंगलाचरण ही इतने महत्त्वको लिये हुए हो वह शेष संपूर्ण ग्रंथ कितना महत्त्वशाली होगा और विद्वानोंने उसका कितना अधिक संग्रह किया होगा, इसके बतलानेकी जरूरत नहीं है। विज्ञ पाठक सहजहीमें इसका अनुमान कर सकते हैं। परंतु तो भी ऐसे महान ग्रंथका भारतके किसी भंडारमें अस्तित्व न होना, उसके शेष अंशोंपर टीका-टिप्पणका मिलना तो दूर रहा उनके नामोंकी कहीं चर्चातक न होना, यह सब कुछ कम आश्चर्यमें डालनेवाली बातें नहीं हैं। और इनपरसे तरह तरहके विकल्प उत्पन्न होते हैं। यह खयाल पैदा होता है कि क्या समन्तभद्रने 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया ही नहीं और उनकी आप्तमीमांसा (देवागम) एक स्वतंत्र ग्रंथ है? यदि बनाया तो क्या वह पूरा न हो सका और आप्तमीमांसा तक ही बनकर रह गया? यदि पूरा हो गया था तो क्या फिर बन कर समाप्त होते ही किसी कारण विशेषसे वह नष्ट हो गया? यदि नष्ट नहीं हुआ तो क्या फिर प्रचलित सिद्धांतोंके विरुद्ध उसमें कुछ ऐसी बात थी जिनके कारण बादके आचार्यों खासकर भट्टारकोंको उसे लुप्त करनेकी जरूरत पड़ी अथवा बादको उसके नष्ट हो जानेका कोई दूसरा ही कारण है? इन सब विकल्पोंको छोड़कर अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं हुआ कि, १ समन्तभद्रने 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया है, २ वह उमास्वातिके तत्त्वार्थ सूत्रका भाष्य है, ३ उसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार है और 'देवागम' स्तोत्र उसका आदिम मंगलाचरण है: इन सब बातोंकी उपलब्धि कहाँसे होती है-कौनसे प्राचीन आचार्यके किस ग्रंथसे इन सब बातोंका पता चलता है? यह दूसरी बात है कि आजकलके अच्छे अच्छे विद्वान—न सिर्फ जैन विद्वान बल्कि सतीशचंद्र विद्याभूषण, भारती जैसे अजैन विद्वान भी—अपने अपने ग्रंथों तथा लेखोंमें इन सब बातोंका उल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। परंतु ये सब उल्लेख एक दूसरेकी देखादेखी हैं परीक्षासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं और न वे जाँच तोल कर लिखे गये हैं। इसी प्रकारके कुछ उल्लेख पिछले भाषापंडितोंके भी पाये जाते हैं। इन सब आधुनिक उल्लेखोंसे इस विषयका कोई ठीक निर्णय नहीं हो सकता। और न हम उन्हें ऐसी हालतमें बिना किसी हेतुके प्रमाणकोटिमें रख सकते हैं। हमारी रायमें इन सब बातोंके निर्णयार्थ विकल्पोंके समाधानार्थ अंतरंग खोजकी बहुत बड़ी जरूरत है। हमें सबसे पहले-विदेशोंमें जानेसे भी पहले-अपने घरके साहित्यको गहरा टटोलना होगा; तब कहीं हम यथार्थ निर्णय पर पहुँच सकेंगे। अस्तु।

इस विषयमें हमने आजतक जो कुछ खोज की है और उसके द्वारा हमें जो कुछ मालूम हो सका है उसे हम अपने पाठकोंके विचारार्थ और यथार्थ निर्णयकी सहायतार्थ नीचे प्रकट करते हैं:—

१—उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रपर सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और श्रुतसागरी नामकी जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें, जहाँ तक हमारे देखनेमें आया कहीं भी 'गंधहस्ति महाभाष्य' का नामोल्लेख नहीं है और न इसी बातका कोई उल्लेख पाया जाता है कि समन्तभद्रने उक्त तत्त्वार्थसूत्रपर भाष्य लिखा है। समन्तभद्रका अस्तित्वकाल इन सब टीकाओंके बननेसे पहले माना जाता है। यदि इन टीकाओंके रचयिता पूज्यपाद, अकलंक देव, विद्यानन्द और श्रुतसागरके समयोंमें समन्तभद्रका उसी सूत्रपर ऐसा कोई महत्त्वशाली भाष्य विद्यमान होता तो उक्त टीकाकार किसी न किसी रूपमें इस बातको सूचित जरूर करते, ऐसा हृदय कहता है। परंतु उनके टीकाग्रन्थोंसे ऐसी कोई सूचना नहीं

पाई जाती। प्रत्युत, श्रुतसागरसूरिने अपने अध्ययन विषयक अथवा टीकाके आधार-विषयक जिन प्रधान ग्रन्थोंका उल्लेख अपनी टीकाकी संधियोंमें किया है उनमें साफ तौरसे श्लोकवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिका ही नाम पाया जाता है, गन्धहस्ति-महाभाष्यका नहीं। यदि ऐसा महान् ग्रन्थ उन्हें उपलब्ध होता तो कोई वजह नहीं थी कि वे उसका भी साथमें नामोल्लेख न करते।

२—आप्तमीमांसा (देवागम) पर, जिसे गन्धहस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण कहा जाता है, इस समय तीन संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। एक 'वसुनन्दिवृत्ति,' दूसरी 'अष्टशती' और तीसरी 'अष्टसहस्री' इनमेंसे किसी भी टीकामें गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है, और न यही कहीं सूचित किया है कि यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण अथवा उसका प्राथमिक अंश है। किसी दूसरे ग्रन्थका एक अंश होनेकी हालतमें ऐसी सूचनाका किया जाना बहुत कुछ स्वाभाविक था।

३—श्रीइन्द्रनन्दि आचार्यके बनाये हुए 'श्रुतावतार' ग्रन्थमें भी समन्तभद्रके साथ, जहाँ कर्मप्राभृतपर उनकी ४८ हजार श्लोकपरिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीकाका उल्लेख किया गया है वहाँ गन्धहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है। बल्कि इतना प्रकट किया गया है कि वे दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थ (कषाय प्राभृत) पर टीका लिखना चाहते थे परंतु उनके एक सधर्मी साधुने द्रव्यादिशुद्धिकर प्रयत्नोंके अभावसे उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया। बहुत संभव है कि इसके बाद उनके द्वारा कोई बड़ा ग्रन्थ न लिखा गया हो।

४—श्रवणबेल्गुलके जितने शिलालेखोंमें समन्तभद्रका नाम आया है उनमेंसे किसीमें भी आचार्य महोदयके नामके साथ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' का उल्लेख नहीं है। और न यही लिखा मिलता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर कोई टीका लिखी है। हाँ, उनके शिष्य शिवकोटि आचार्यके सम्बन्धमें इतना कथन जरूर पाया जाता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्रको अलंकृत किया, अर्थात् उसपर टीका लिखी (देखो शिला लेख नं० १०५)

५—ब्रह्मनेमिदत्तने आराधना कथाकोशमें समन्तभद्रकी एक कथा दी है परंतु उसमें उनके किसी भी गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामकी कोई उपलब्धि नहीं होती।

६—संस्कृत प्राकृतके और भी बहुतसे उपलब्ध ग्रन्थ जो देखनेमें आये और जिनमें किसी न किसी रूपसे समन्तभद्रका स्मरण किया गया है उनमें भी हमें स्पष्टरूपसे कहीं गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम नहीं मिला। और दूसरे अनेक विद्वानोंसे जो इस विषयमें दर्याफ्त किया गया तो यही उत्तर मिला कि गन्धहस्ति महाभाष्यका नाम किसी प्राचीन ग्रन्थमें हमारे देखनेमें नहीं आया, अथवा हमें कुछ याद नहीं है।

७—ग्रन्थके नाममें 'महाभाष्य' शब्दसे यह सूचित होता है कि इस ग्रन्थसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्रपर कोई भाष्य विद्यमान था जिसकी अपेक्षा इसे 'महाभाष्य' संज्ञा दी गई है। परंतु दिगम्बर साहित्यसे इस बातका कहीं कोई पता नहीं चलता कि समन्तभद्रसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्र पर कोई भाष्य विद्यमान था। रही श्वेताम्बर साहित्यकी बात, सो श्वेताम्बर भाई इस बातको मानते ही हैं कि उनका मौजूदा 'तत्त्वार्थाधिगम भाष्य' स्वयं उमास्वातिका बनाया हुआ है। परन्तु उनकी इस मान्यताको स्वीकार करनेके लिये अभी हम तैय्यार नहीं हैं। उनका वह ग्रन्थ अभी विवादग्रस्त है। उसके विषयमें हमें बहुत कुछ कहने सुननेकी जरूरत है। इस पर यदि यह कहा जाय कि बादको बने हुए भाष्योंकी अपेक्षा बहुत बड़ा होनेके कारण उसे पीछेसे महाभाष्य संज्ञा दी गई है तो यह मानना पडेगा कि उसका असली नाम 'गन्धहस्ति भाष्य' अथवा 'गन्धहस्ति' ऐसा कुछ था।

८—ऊपर जिन ग्रन्थादिकोंका उल्लेख किया गया है उनमें कहीं यह भी जिकर नहीं है कि समन्तभद्रने ८४ हजार श्लोकपरिमाणका कोई ग्रन्थ रचा है और इस लिये गन्धहस्ति महाभाष्यका जो परिमाण ८४ हजार कहा जाता है उसकी इस संख्याकी भी किसी प्राचीन साहित्यसे उपलब्धि नहीं होती।

९—जब उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रपर ८४ हजार

श्लोकपरिमाण एक महत्वशाली भाष्य पहलेसे मौजूद था तब यह बात समझमें नहीं आती कि सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकके बननेकी जरूरत ही क्यों पैदा हुई। यदि यह कहा जाय कि ये ग्रन्थ गन्धहस्ति महाभाष्यका सार लेकर संक्षेपरुचिवाले शिष्योंके वास्ते बनाये गये हैं तो यह बात भी कुछ बनती हुई मालूम नहीं होती; क्यों कि ऐसी हालतमें श्रीपूज्यपाद, अकलंकदेव और विद्यानन्द स्वामी अपने अपने ग्रन्थोंमें इस प्रकारका कोई उल्लेख जरूर करते जैसा कि आम तौर पर दूसरे आचार्योंने किया है, जिन्होंने अपने ग्रन्थोंको दूसरे ग्रन्थोंके आधारपर अथवा उनका सार लेकर बनाया है। परंतु चूं कि इनमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, इस लिये ये सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ गन्धहस्तिमहाभाष्यके आधारपर अथवा उसका सार लेकर बनाये गये हैं ऐसा माननेको जी नहीं चाहता। इसके सिवाय अकलंकदेव और विद्यानन्दके भाष्य वार्तिकके ढंगसे लिखे गये हैं। वे 'वार्तिक' कहलाते भी हैं। और वार्तिकोंमें उक्त, अनुक्त, दुरुक्त, तीनों प्रकारके अर्थोंकी विचारणा और अभिव्यक्ति हुआ करती है, जिससे उनका परिमाण पहले भाष्योंसे प्रायः कुछ बढ जाता है। जैसे कि सर्वार्थसिद्धिसे राजवार्तिकका और राजवार्तिकसे श्लोकवार्तिकका परिमाण बढा हुआ है। ऐसी हालतमें यदि समन्तभद्रका ८४ हजार श्लोक संख्यावाला भाष्य पहलेसे मौजूद था तो अकलंकदेव और विद्यानन्दके वार्तिकोंका परिमाण उससे जरूर कुछ बढ जाना चाहिये था। परन्तु बढना तो दूर रहा, वह उलटा उससे कई गुणा घट रहा है। दोनों वार्तिकोंकी श्लोकसंख्याका परिमाण क्रमशः १६ और २० हजारसे अधिक नहीं। ऐसी हालतमें कमसेकम अकलंक देव और विद्यानन्दके समयमें गन्धहस्ति महाभाष्यका अस्तित्व स्वीकार करनेके लिये तो और भी हृदय तय्यार नहीं होता।

१०—जिस आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) को गन्धहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण बतलाया जाता है उसकी अन्तिम कारिका इस प्रकार है-

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥

यह कारिका जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखी गई है, और इसमें जो कुछ कथन किया गया है उससे आप्तमीमांसाके एक बिलकुल स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेकी बहुत ज्यादह सम्भावना पाई जाती है। इस कारिकाको देते हुए वसुनन्दी आचार्य अपनी टीकामें इसे 'शास्त्रार्थोपसंहारकारिका' लिखते हैं, साथ ही इस कारिकाकी टीकाके अन्तमें ग्रंथकर्ता भी समंतभद्रका नाम 'कृतकृत्यः निर्व्यूढतत्त्वप्रतिज्ञः' इत्यादि विशेषणोंके साथ देते हैं, जिससे मालूम होता है कि इस कारिकाके साथ ग्रंथकी समाप्ति हो गई, ग्रंथके अन्तर्गत किसी खास विषयकी नहीं। विद्यानंदस्वामी अष्टसहस्रीमें, इस कारिकाके द्वारा 'प्रारब्धनिर्वहण'-(प्रारंभ किये हुए कार्यकी परिसमाप्ति) आदिको सूचित करते हुए टीकामें लिखते हैं-

"इति देवागमाख्ये स्वोक्तपरिच्छेदे शास्त्रे...।
अत्र शास्त्रपरिसमाप्तौ"......

इन शब्दोंसे भी प्रायः यही ध्वनित होता है कि देवागमशास्त्र जो कि आप्तमीमांसाके शुरूमें 'देवागम' शब्द होनेसे उसीका दूसरा नाम है, एक स्वतंत्र ग्रंथ है और उसकी समाप्ति इस कारिकाके साथ ही हो जाती है। अतः वह किसी दूसरे ग्रंथका आदिम अंश अथवा मंगलाचरण मालूम नहीं होता।

११—अकलंकदेव अपनी अष्टशतीके आरंभमें लिखते हैं—

"येनाचार्यसमन्तभद्रयतिना तस्मै नमः संततम्।
कृत्वा विवियते स्तवो भगवतां देवागमस्तत्कृतिः" ॥२॥

वसुनन्दी आचार्य अपनी देवागमवृत्तिके अन्तमें सूचित करते हैं "श्रीसमंतभद्राचार्यस्य... देवागमाख्यायाः कृते संक्षेपभूतं विवरणं कृतम्...।"

कर्नाटकदेशस्थ हुमचा जि० शिमोगाके एक शिलालेखमें निम्न आशयका उल्लेख * मिलता है:—

* देखो जैनहितैषी भाग ९, अंक ९, पृष्ठ ४४५।

" अकलंकने समंतभद्रके देवागमपर भाष्य लिखा। आप्तमीमांसा ग्रंथको समझाकर बतलानेवाले विद्यानंदिको नमोस्तु।"

इन सब अवतरणोंसे भी प्रायः यही पाया जाता है कि समन्तभद्रका ' देवागम ' उनकी एक पृथक् कृति अथवा स्वतंत्र ग्रंथ है।

१२—श्रीशुभचंद्राचार्यविरचित पांडवपुराणका एक पद्य इस प्रकार है:--

" समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः।
देवागमेन येनात्र व्यक्तो देवागमः कृतः " ॥ १५ ॥

इस पद्यके द्वारा ग्रंथकर्ता महाशय, स्वामी समन्तभद्रका ' भारतभूषण ' आदि विशेषणोंके साथ स्मरण करते हुए, प्रकट करते हैं कि उन्होंने अपने देवागम शास्त्रके द्वारा- (गंधहस्तिमहाभाष्य अथवा तत्त्वार्थसूत्रकी टीकाके द्वारा नहीं) जिनेंद्रदेवके आगम (जैनागम) को संसारमें व्यक्त कर दिया है। इससे देवागमकी स्वतंत्रता और भी स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोषित होती है और यह पाया जाता है कि संसारमें समन्तभद्रकी विशेष प्रसिद्धिका कारण भी उनका ' देवागम ' ग्रंथ ही हुआ है। यदि यह देवागम कोई पृथक् ग्रंथ न होकर गंधहस्ति महाभाष्यका ही एक अंश- उसका केवल मंगलाचरण-होता तो कोई वजह नहीं थी कि उस महान् ग्रंथका कहीं नामोल्लेख न करके उसके केवल एक छोटेसे अंशका ही उल्लेख किया जाता। उस संपूर्ण ग्रंथके द्वारा तो और भी अधिकताके साथ जैनागम व्यक्त हुआ होगा फिर उसका नाम क्यों नहीं ? और क्यों आम तौरपर देवागम अथवा आप्तमीमांसाका ही नामोल्लेख पाया जाता है? जरूर इसमें कुछ रहस्य है और वह कमसे कम देवागमकी स्वतंत्रताका समर्थक जान पडता है।

१३—श्रीविद्यानंदस्वामीने ' युक्त्यनुशासन ' ग्रंथकी टीका लिखते हुए सबसे पहले उसकी उत्थानिकारूपसे यह वाक्य दिया है—

" श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिराप्तमीमांसायामन्ययोगव्यवच्छेदाद् व्यवस्थापितेन भगवता श्रीमतार्हतान्त्यतीर्थंकरपरमदेवेन मां परीक्ष्य किं चिकीर्षवो भवन्त इति ते पृष्टा इवाहुः।"

इसके बाद मूल ग्रंथका प्रथम पद्य उद्धृत किया है जो इस प्रकार है:—

" कीर्त्या महत्या भुवि वर्द्धमानं
त्वां वर्द्धमानं स्तुतिगोचरत्वम्।
निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं
विशीर्णदोषाशयपाशबन्धम् ॥ १ ॥
अथास्मिन् काले परीक्षावसानसमये।"

विद्यानंदाचार्यके इस संपूर्णकथनसे मालूम होता है कि स्वामि समन्तभद्रने आप्तमीमांसा(देवागम) के अनन्तर ही-उक्त ग्रंथद्वारा अर्हन्तदेवकी परीक्षाके बाद ही-' युक्त्यनुशासन ' ग्रंथकी रचना की है। यदि ' देवागम ' को गंधहस्तिमहाभाष्यका एक अंग और उसका आदिम भाग माना जाय तो युक्त्यनुशासनको भी उक्त महाभाष्यका तदनन्तर अंग कहना होगा। परन्तु ऐसा नहीं कहा जाता। युक्त्यनुशासन समन्तभद्रका, महावीर भगवानकी स्तुतिको लिये हुए हितान्वेषणका उपाय प्रतिपादक एक स्वतंत्र ग्रंथ माना जाता है। नीचेके कुछ पद्यों और उनकी कथनशैलीसे भी प्रायः ऐसा ही आशय ध्वनित होता है:—

" नरागान्नः स्तोत्रं भवति भवपाशच्छिदि मुनौ,
न चान्येषु द्वेषादपगुणकथाभ्यासखलता।
किमु न्यायान्यायप्रकृतगुणदोषज्ञमनसां,
हितान्वेषोपायस्तव गुणकथासंगगदितः " ॥ ६४ ॥
—युक्त्यनुशासन।

" श्रीमद्वीरजिनेश्वरामलगुणस्तोत्रं परीक्षेक्षणैः
साक्षात्स्वामिसमंतभद्रगुरुभिस्तत्त्वं समीक्ष्याखिलम्।
प्रोक्तं युक्त्यनुशासनं विजयिभिः स्याद्वादमार्गानुगै-
र्विद्यानंदबुधैरलंकृतमिदं श्रीसत्यवाक्याधिपैः ॥ "
—टी॰ विद्यानन्दस्वामी।

" जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृंभते ॥ "
—हरिवंशे जिनसेनः।

ऐसी हालतमें ' देवागम ' को भी युक्त्यनुशासनके सदृश गंधहस्तिमहाभाष्यका कोई अंग न मान कर एक स्वतंत्र ग्रंथ कहना चाहिये।

१४—श्रीधर्मभूषणयतिविरचित ' न्यायदीपिका ' में, सर्वज्ञकी सिद्धि करते हुए, आप्तमी-

मांसाका एक पद्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया हुआ मिलता है:-

" तदुक्तं स्वामिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमांसाप्रस्तावे सूक्ष्मान्तरितदूरार्था......... ।"

इससे मालूम होता है कि स्वामी समन्तभद्र-प्रणीत 'महाभाष्य' की आदिमें आप्तमीमांसा नामका एक प्रस्ताव है। और सिर्फ यही एक उल्लेख है जो अभी तक हमें इस विषयमें प्राप्त हो सका है और जिससे प्रचलित प्रवादको कुछ आश्वासन मिलता है। यद्यपि इस उल्लेखमें 'गंधहस्ति महाभाष्य' ऐसा स्पष्ट नाम नहीं है, न इस 'महाभाष्य' को उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य प्रकट किया है, न यह ही सूचित किया है कि उसकी ग्रं-संख्या ८४ हजार श्लोक परिमाण है और इसलिये संभव है कि यह महाभाष्य समन्तभद्रका उपर्युल्लिखित, ४८ हजार श्लोक संख्याको लिये हुए, 'कर्मप्राभृत' सिद्धान्तवाला भाष्य हो अथवा कोई दूसरा ही भाष्य हो। और उसमें आचार्य महोदयने आवश्यकतानुसार, अपने आप्तमीमांसा ग्रंथको भी बतौर एक प्रस्तावके शामिल कर दिया हो, तो भी धर्मभूषणके इस उल्लेखसे प्रकृत गंधहस्ति महाभाष्यका आशय जरूर निकाला जा सकता है। परंतु जब हम इस उल्लेखको ऊपर दिये हुए संपूर्ण अनुसंधानोंकी रोशनीमें पढते हैं और साथ ही, इस बातको ध्यानमें रखते हैं कि धर्मभूषणजी विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि यह उल्लेख उस वक्तके प्रचलित प्रवाद, लोकोक्ति अथवा दंतकथाओंके आधार पर ही किया गया है। वास्तविक तथ्यसे इसका प्रायः कोई सम्बन्ध नहीं। और न यह मानने अथवा कहनेका कोई कारण है कि धर्मभूषणजीने गंधहस्तिमहाभाष्यको स्वयं देखकर ही ऐसा उल्लेख किया है। यदि ऐसा होता तो खास गंधहस्तिमहाभाष्यका भी कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख राजवार्तिकादि ग्रंथोंके स्थानोंमें अथवा उनके साथ जरूर पाया जाता। परंतु ऐसा नहीं है, न्यायदीपिकामें दूसरी जगह भी आप्तमीमांसाका ही उल्लेख किया गया है। वहाँ ऊपरके सदृश महाभाष्यादि शब्दों का प्रयोग भी नहीं है, बल्कि बहुत सीधे सादे शब्दोंमें 'तदुक्तमाप्तमीमांसायां स्वामिसमंतभद्राचार्यैः' ऐसा कहा गया है। धर्मभूषणजीके समयसे अबतक ऐसा कोई महान् विप्लव भी उपस्थित नहीं हुआ कि जिससे गंधहस्ति महाभाष्य जैसे ग्रंथका एकदम लोप होना मान लिया जाय। और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उनसे पहले प्राचीन साहित्यमें उसके उल्लेख न होनेका कारण क्या है, इसका संतोषजनक उत्तर कुछ भी मालूम नहीं होता। और इस लिये हमारी रायमें धर्मभूषणजीका उपर्युक्त उल्लेख प्रचलित प्रवादपर ही अवलम्बित है। प्रचलित प्रवादपर अक्सर उल्लेख हुआ करते हैं और वे बहुतसे ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आजकल भी, जब कि गंधहस्तिमहाभाष्यका कहीं पता नहीं और यह भी निश्चय नहीं कि किसी समय उसका अस्तित्व था भी या कि नहीं, बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान अपने लेखों तथा ग्रंथोंमें गंधहस्ति महाभाष्यका उल्लेख परिचित अथवा निश्चित ग्रंथके तौर पर करते हैं, उसे तत्त्वार्थसूत्रकी टीका बतलाते हैं और उसके श्लोकोंकी संख्याका परिमाण तक देते हैं। यह सब प्रचलित प्रवादका ही नतीजा है। कभी कभी इस प्रचलित प्रवादकी धुनमें अर्थका अनर्थ भी हो जाता है, जिसका एक उदाहरण हम अपने पाठकोंके सामने नीचे रखते हैं—

उक्त न्यायदीपिकामें एक स्थानपर ये वाक्य दिये हैं:—

तद्विपरीतलक्षणो हि संशयः। यद्राजवार्तिकम् " अनेकार्थानिश्चितापर्युदासात्मकः संशयः, तद्विपरीतोऽवग्रहः " इति। भाष्यं च " संशयो हि निर्णयविरोधी नत्ववग्रहः " इति।

पं० खूबचन्दजीने न्यायदीपिकापर लिखी हुई अपनी भाषाटीकामें, इन वाक्योंका अनुवाद देते हुए, 'भाष्य' शब्दसे 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' का अर्थ सूचित किया है अर्थात्, सर्वसाधारण पर यह प्रकट किया है कि 'संशयो हि निर्णयविरोधी नत्ववग्रहः' यह वाक्य गन्धहस्तिमहाभाष्यका एक वाक्य है। टीकाके 'संशोधनकर्ता' पं० वंशी

शास्त्रीने भी उनकी इस बातको पास कर दिया है-अर्थात्, पुस्तकपर अपने द्वारा संशोधन किये जानेकी मुहर लगाकर इस बातकी रजिस्टरी कर दी है कि उक्त वाक्य गंधहस्तिमहाभाष्यका ही वाक्य है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह वाक्य राजवार्तिक भाष्यका वाक्य है। राजवार्तिकमें 'अवग्रहेहावायधारणा' इस सूत्रपर जो १० वाँ वार्तिक दिया है उसीके भाष्यका यह एक वाक्य है *। इस वाक्यसे पहले जो वाक्य, 'यद्राजवार्तिकं' शब्दोंके साथ, न्यायदीपिकाकी ऊपरकी पंक्तियोंमें उद्धृत पाया जाता है वह उक्त सूत्रका ९ वाँ वार्तिक है। दूसरे शब्दोंमें यों समझना चाहिये कि ग्रन्थकर्ताने पहले राजवार्तिक भाष्यका एक वार्तिक और फिर एक वार्तिकका भाष्यांश उद्धृत किया है, जिसको हमारे दोनों पंडित महाशयोंने नहीं समझा और न समझनेकी कोशिश की। उनके सामने मूल ग्रन्थमें 'गन्धहस्ति महाभाष्य' ऐसा कोई नाम नहीं था और यह हम बखूबी जानते है कि उन्होंने गन्धहस्ति महाभाष्यका कभी दर्शन तक नहीं किया, जो उस परसे जाँच करके ही ऐसे अर्थका किया जाना किसी प्रकारसे संभव समझ लिया जाता, तो भी उन्होंने 'भाष्य' का अर्थ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' करके एक विद्वानके वाक्यको दूसरे विद्वानका बतला दिया। यह प्रचलित प्रवादकी धुन नहीं तो और क्या है? इसी तरह एक दूसरी जगह भी 'तद्भाष्यं' पदका अर्थ—"ऐसा ही गन्धहस्ति महाभाष्यमें भी कहा है-' किया गया है। इस उदाहरणसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि प्रचलित प्रवादकी धुनमें कितना अर्थका अनर्थ हो जाया करता है और उसके द्वारा उत्तरोत्तर संसारमें कितना भ्रम तथा मिथ्याभाव फैल जाना संभव है। शास्त्रोंमें प्रचलित प्रवादोंसे अभिभूत ऐसे ही कुछ महाशयोंकी कृपासे अथवा अनेक दन्तकथाओंके किसी न किसी रूपमें लिपिबद्ध हो जानेके कारण ही बहुतसे ऐतिहासिक तत्त्व आजकल चक्करमें पड़े हुए है। और इस लिये प्रायः उन सबकी जाँच अनेक मार्गों और अनेक पहलुओंसे होनी चाहिये। हरएक बातकी असलियतको खोज निकालनेके लिये गहरे अनुसंधानकी जरूरत है। तभी कुछ यथार्थ निर्णय हो सकता है।

१५—ऊपर श्रुतावतारके आधारपर यह प्रकट किया गया है कि समन्तभद्रने 'कर्मप्राभृत' सिद्धान्तपर ४८ हजार श्लोक परिमाण एक सुन्दर संस्कृत टीका लिखी थी। यह टीका 'चूडामणि' नामकी एक कनडी टीकाके बाद, प्रायः उसे देखकर लिखी गई है। चूडामणिकी श्लोकसंख्याका परिमाण ८४ हजार दिया है और वह उस कर्मप्राभृत तथा साथ ही, कषायप्राभृत नामके दोनों सिद्धान्तों पर लिखी गई थी। भट्टाकलंकदेवने, अपने कर्नाटक शब्दानुशासनमें इस चूडामणिटीकाको 'तत्त्वार्थ महाशास्त्रकी व्याख्या' (तत्त्वार्थमहाशास्त्रव्याख्यानस्य* ' चूडामण्यभिधानस्य महाशास्त्रस्य...उपलभ्यमानत्वात ')) लिखा है, जिसका आशय यह होता है कि कर्मप्राभृतादि ग्रन्थ भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' कहलाते हैं और इस लिये कर्मप्राभृतपर लिखी हुई समन्तभद्रकी उक्त टीका भी तत्त्वार्थमहाशास्त्रकी टीका कहलाती होगी। चूँकि उमास्वातिका तत्त्वार्थसूत्र भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' अथवा 'तत्त्वार्थमहाशास्त्र' कहलाता है, इसलिये सम्भव है कि इस नामसाम्यकी वजहसे 'कर्मप्राभृत' के टीकाकार श्रीसमन्तभद्रस्वामी किसी समय उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार समझ लिये गये हों और इसी गलतीके कारण पीछेसे अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ उत्पन्न होकर उनका वर्तमानरूप बनगया हो। यह भी सम्भव है, कि प्रबल और प्रखर तार्किक विद्वान होनेके कारण 'गन्धहस्ति' यह समन्तभद्रका उपनाम अथवा बिरुद रहा हो और उसके कारण ही उनकी उक्त सिद्धांतटीकाका नाम गन्धहस्तिमहाभाष्य प्रसिद्ध

* देखो राजवार्तिक, सनातनग्रन्थमाला कलकत्तका ...७० हुआ।

* यहां ग्रन्थका परिमाण ९६ हजार श्लोक दिया है जिसकी बाबत राइस साहबने, अपनी 'इंस्क्रिपन्स एट् श्रवणबेल्गोल' नामक पुस्तकमें, लिखा है कि इसमें १२ हजार श्लोक ग्रन्थके संक्षिप्तसार अथवा सूचीके शामिल हैं।

हो गया हो अथवा उनके शिष्य शिवकोटिने जो तत्त्वार्थसूत्रकी टीका लिखी है उसी परसे इस विषयमें उनके नामकी प्रसिद्धि हो गई हो। कुछ भी हो, यथार्थ वस्तुस्थितिकी खोज निकालनेकी बहुत बड़ी जरूरत है जिसके लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये। अस्तु।

गन्धहस्तिमहाभाष्य और आप्तमीमांसाके सम्बन्धमें हम अपने इन अनुसंधानों और विचारोंको विद्वानोंके सामने रखते हुए उनसे अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करते हैं कि वे इन पर बड़ी शांतिके साथ गहरा विचार करनेकी कृपा करें और उसके बाद हमें अपने विचारोंसे सूचित करके कृतार्थ बनाएँ। यदि हमारा कोई अनुसंधान अथवा विचार उन्हें ठीक प्रतीत न हो तो हमें युक्तिपूर्वक उससे सूचित किया जाय। साथ ही, जिन विद्वानोंको किसी प्राचीन साहित्यसे गन्धहस्तिमहाभाष्यके नामादिक चारों बातोंमेंसे किसी भी बातकी कुछ उपलब्धि हुई हो, वे हम पर उसके प्रकट करनेकी उदारता दिखलाएँ, जिससे हम अपने विचारोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ हो सकें, अथवा उसकी सहायतासे किसी दूसरे नवीन अनुसंधानको प्रस्तुत कर सकें। आशा है, विज्ञ पाठक हमारे इस समुचित निवेदनपर ध्यान देनेकी अवश्य कृपा करेंगे, और इस तरह एक ऐतिहासिक तत्त्वके निर्णय करनेमें सहायोगिताका परिचय देंगे।

अन्तमें हम अपने पाठकों पर इतना और प्रकट किये देते हैं कि इस लेखका कुछ भाग लिखे जानेके बाद हमें अपने मित्र श्रीयुत मुनि जिनविजयजी आदिके द्वारा यह मालूम करके बहुत अफसोस हुआ कि डेकन कालिज पूना लायब्रेरीकी किसी सूचीके आधार पर एक पंडित महाशयने, समाजके पत्रोंमें, जो इस प्रकारका समाचार प्रकाशित कराया था कि, गंधहस्तिमहाभाष्य आस्ट्रिया देशके अमुक नगरकी लायब्रेरीमें मौजूद है और इसलिये वहाँ जाकर उसकी कापी लानेके लिये कुछ विद्वानोंकी योजना होनी चाहिये, वह बिलकुल उनका भ्रम और बेसमझीका परिणाम था। उन्हें सूची देखना ही नहीं आया। सूचीमें, जो किसी रिपोर्टके अन्तर्गत है, आस्ट्रियाके विद्वान् डाक्टर बुल्हरने कुछ ऐसे प्रसिद्ध जैनग्रंथोंके नाम, उनके कर्ताओंके नाम सहित प्रकट किये थे जो उपलब्ध हैं, तथा जो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके नाम सुने जाते हैं। समंतभद्रका 'गंधहस्तिमहाभाष्य' भी अनुपलब्ध ग्रंथोंमें था जिसका नाम सुनकर ही उन्होंने उसे अपनी सूचीमें दाखिल किया था। उसके सम्बन्धमें यह कहीं प्रकट नहीं किया गया कि वह अमुक लायब्रेरीमें मौजूद है। पंडितजीने इस सूचीमें गंधहस्तिमहाभाष्यका नाम देख कर ही, बिना कुछ सोचे समझे, आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उसके अस्तित्वका निश्चय कर दिया और उसे सर्व साधारण पर प्रकट कर दिया! यह कितनी भूलकी बात है! हमें अपने पंडितजीकी इस कार्रवाई पर बहुत खेद होता है जिसके कारण समाजको व्यर्थ ही एक प्रकारके चक्करमें पड़ने और चंदा एकत्र करने-कराने आदिका कष्ट उठाना पड़ा। आशा है पंडितजी, जिनका नाम यहाँ देनेकी हम कोई जरूरत नहीं समझते, आगामीसे ऐसी मोटी भूल न करनेका ध्यान रक्खेंगे।

(जैन हितैषी, भाग १४, अंक ४ से उद्धृत।)

तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन ।

वपुः पवित्रीकुरु तीर्थयात्रया चित्तं पवित्रीकुरु धर्मवाञ्छया ।
वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः कुलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रैः ॥

-- उपदेशतरंगिणी ।

जैन धर्मके औपदेशिक ग्रन्थसमूहमें, जैनगृहस्थों (श्रावकों) के लिये जिन जिन धर्मकृत्योंका विधान किया गया है उनमें तीर्थयात्रा करनेका भी एक विधान है। मुख्य कर जिन स्थानोंमें तीर्थंकर आदि पूज्य माने जाने वाले जैनधर्मके महापुरुषोंका जन्म, दीक्षा, केवल या निर्वाण आदि पवित्र कार्य जिसे जैन संप्रदायमें 'कल्याणक' कहते हैं - हुआ हो उन्हें तीर्थस्थान कहते हैं। परन्तु किसी अन्य विशिष्ट घटनाके कारण या स्थलविशेषकी पवित्रताके कारण और स्थान भी ऐसे तीर्थस्थान माने जाते हैं। समेतशिखर, राजगृह, पावापुरी, खण्डगिरि आदि स्थल पूर्वमें: तक्षशिला, कांगडा, अहिच्छत्र, हस्तिनापुर आदि उत्तरमें: शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा आदि पश्चिममें: और श्रीपर्वत, श्रवणबेलगोला, मुडबद्री, कुलपाक आदि दक्षिणमें जैनियोंके प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं। तीर्थस्थानोंके मानने पूजनेकी यह प्रथा केवल जैनधर्म ही में प्रचलित है यह बात नहीं है। संसारके प्रायः सभी प्राचीन और प्रसिद्ध धर्मोंमें ऐसे तीर्थस्थान माने और पूजे जाते हैं। ब्राह्मणोंमें हरिद्वार, सोमनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ इत्यादि; बौद्धोंमें कपिलवस्तु, मृगदाव, बोधिगया, कुशीनार इत्यादि; क्रिश्चियनोंमें जेरुसलेम; और मुसलमानोंमें मक्का मदीना आदि स्थान सैकडों ही वर्षोंसे तीर्थस्थानके रूपमें जगद्विख्यात हैं। क्या मूर्तिपूजा माननेवाले और क्या नहीं माननेवाले-क्या ईश्वरवादी और क्या अनीश्वरवादी इस विषयमें सभी एकमत रखते हुए दिखाई देते हैं।

पुरुषोंके चरणस्पर्शसे पवित्रित भूमिका दर्शन और स्पर्शन करनेसे भावुक मनुष्यके भद्र हृदयमें भव्यता प्रकट होती है और मनकी मलिनता अन्तरित होती है यह मानवस्वभाव सिद्ध बात है। केवल, प्रकृतिकी सुन्दरताको, स्थलकी विशुद्धताको और वातावरणकी निःशब्दताको देख कर ही संस्कारी हृदयवाले मनुष्यके मनमें सात्त्विकभाव प्रकट होने लगते हैं; तो फिर यदि उस स्थानकेसाथ किसी स्वाभिमत लोकोत्तर महापुरुषकी जीवनघटनाका कोई स्मृतिसंबन्ध जुडा हुआ हो तब तो कहना ही क्या। जो शांति और जो सात्त्विकता मनुष्योंको अन्य उपाधिग्रस्त स्थानोंमें सैकडों लेखोंके वाचनेसे और सैकडों ही व्याख्यानोंके सुननेसे प्राप्त नहीं हो सकती, वह ऐसे शुद्ध, पवित्र और पूज्य स्थानमें एक दिन जाकर रहनेसे प्राप्त हो सकती है; ऐसा अनेक महापुरुषोंका अनुभव है। श्रमण भगवान् श्रीमहावीर और गौतम बुद्ध जो वर्षोंतक निर्जन वनोंमें घूमते रहे उसका कारण केवल यही शांतिलाभ करना था, और इसी प्रवृत्तिद्वारा उन्होंने अपनी मुक्ति प्राप्त की थी। संसारके महापुरुषोंके अनुभूत इस सिद्धान्तको लक्ष्यमें लेकर धर्मप्रवर्तकोंने तीर्थयात्राकी प्रथा प्रचलित की है और उसके अनुसार अति प्राचीन कालसे संसारके उपर्युक्त सभी धर्मोंके आस्तिक अनुयायी अपने अपने तीर्थस्थानोंमें अनेक प्रकारके कष्ट उठाकर भी, अधिक नहीं तो केवल एकवार, दर्शन मात्र करनेके लिये ही जाते रहे हैं, अथवा जानेकी अभिलाषा रखते रहे हैं। जैनधर्मोपदेशकोंने भी अपने तीर्थोंके दर्शन स्पर्शन करनेका उपदेश

किया है और तदनुसार जैन समाजमें प्रवृत्ति भी चली आ रही है।

पुराणे जमानेमें, आज कलके समान, मुसाफरी करनेके लिये रेलवे वगैरह जैसे साधनों की सुविधा न होनेसे, तथा मार्गमें अनेक प्रकारके कष्टोंके आनेकी बहुत कुछ संभावना रहनेसे, उस समयके बडे बडे श्रीमान लोक भी अकेले-दुकले घरसे बहार निकल कर दूरके देशोंमें जानेकी हिम्मत कम रखते थे। तो फिर साधारण और गरीबवर्गके लोगोंके लिये तो कहना ही क्या। इस लिये उस समय प्रायः लोग बहुतसी संख्यामें एकत्र हो कर तीर्थयात्राके लिये निकला करते थे। यात्रियोंके इस समूहको संघ कहा करते हैं। पिछले जमानेमें, जैनसमाजमेंसे जुदा जुदा तीर्थोंकी यात्राके लिये जुदा जुदा देशोंमेंसे प्रतिवर्ष प्रायः सैंकडों ही ऐसे छोटे बडे संघ निकला करते थे, और अब तक भी सालमें दो चार निकलते रहते हैं। बहुत करके इन संघोंके निकालनेमें कोई एक श्रीमान् भावुक अग्रणी होता है और वह अपनी ओरसे हजारों लाखों रुपये खर्च कर सैंकडों हजारों यात्रियोंके तीर्थदर्शनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेमें सहायक बनता है। ऐसे संघ निकालनेवालेको समाजकी ओर से 'संघपति'[1] की पदवी मिलती है और वह फिर सदा समाजमें अग्रणी माना जाता है।

संघके निकालनेकी क्या विधि है-वह किस तरहसे निकाला जाता है और उसके निकालनेवालेको क्या क्या करना चाहिए-इसके विषयमें श्राद्धविधिनामक ग्रन्थमें[2] निम्न प्रकारका वर्णन दिया है।

संघ निकालनेवाले पुरुषको सबसे प्रथम, अभीष्ट तीर्थकी यात्रा पूर्ण न हो तब तक, निम्न प्रकारके नियम करने चाहिए[1]--दिनमें एक ही दफह भोजन करना चाहिए, रास्तेमें पैदल चलना चाहिए, खाली जमीन पर सोना चाहिए, सचित्त वस्तु खानी न चाहिए, ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए, इत्यादि। इस प्रकार यात्राके लिये नियमादि स्वीकार कर फिर राजाके पास जावे और उसे यथायोग्य भेंट दे कर संघ निकालनेकी इजाजत लेवे[2]। फिर यात्रामें साथ ले चलनेके लिये युक्तिपूर्वक मंदिर बनवावे[3]। अनन्तर, अपने स्वजनाको और साधर्मिभाईयोंको संघमें आनेके लिये

1 जैन जातियोंमें बहुतसे कुटुम्बोंको जो संघवी-संघइ--सिंघी-सिंगई आदि अटक है वह इसी 'संघपति' पद्वी का अपभ्रष्ट रूप है।

2 यह ग्रंथ तपागच्छके आचार्य रत्नशेखर सूरिका बनाया हुआ है। इसकी रचना विक्रम संवत् १५०६ में हुई है। भावनगरकी आत्मानंद जैन सभाने इसे छपाकर प्रकट किया है।

1 जिस संघमें इस प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए संघपति और अन्यान्य यात्री चलते हैं उस संघको 'षट् री पालक' (गुजरातीमें-छ री पालतो) संघ कहते हैं। 'षट्री' से मतलब उन छ नियमोंका है जिनमें अन्तमें 'री' अक्षर आता है। यथा -

'एकाहारी, दर्शनधारी, यात्रासु भूशयनकारी,
सच्चित्तपरिहारी, पादचारी, ब्रह्मचारी, च।
श्राद्धविधि पृ. १६४.

एकाहारी भूमिसंस्तारकारी
पद्भ्यां चारी शुद्धसम्यक्त्वधारी।
यात्राकाले सर्वसचित्तहारी
पुण्यात्मा स्याद् ब्रह्मचारी विवेकी॥
-उपदेशतरंगिणी, पृ २४३.

2 प्राचीन समयमें राजाज्ञाके सिवा ऐसे संघ वगैरह निकल नहीं सकते थे तथा उनको एक राज्यमेंसे दूसरे राज्यमें जाने आने नहीं दिये जाते थे। इस लिये संघ निकालनेवालेको प्रथम राजाके पास जाकर उसके आगे रूपयोंकी खूब भेंट कर उसे खुश करना पडता था और उसके पाससे संघ निकालनेका परवाना (मुसलमानी शब्द फरमान) लेना पडता था। प्रमाणके लिये देखो मेरा लिखा हुआ **शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध**, पृ० ५६-७; तथा सोमसौभाग्यकाव्य, पृ, १४०-४१।

3 ये मन्दिर सोना, चांदि, आदि धातुओंके तथा हस्तिदन्त, चन्दन अथवा अन्य प्रकारके उत्तम काष्ठके बनाये जाते थे। ये एक प्रकारके सिंहासन समान अथवा रथके जैसे होते थे। इनको मनुष्य उठाते अथवा रथकी तरह घोडे या बैल खींचते थे। संघके प्रमाणमें ऐसे एक या अनेक मंदिर संघके साथ रहते थे।

आदरपूर्वक आमंत्रण भेजे। भक्तिपूर्वक गुरुमहाराजको भी निमंत्रण करे। गांवमें जीवहिंसा बन्ध करानेके लिये अमारिपटह बजवावे। मंदिरोंमें महापूजादि महोत्सव मनावे। फिर, जो जो मनुष्य संघमें साथ आनेकी इच्छा प्रदर्शित करें उनमेंसे जिनके पास भत्ता न हो उन्हें भत्ता देवे, वाहन न हो उन्हें वाहन देवे, तथा जो बिल्कुल निराधार हो उन्हें मीठे बचनोंसे आश्वासन दे कर जिस वस्तुकी जरूरत हो उसकी पूर्ति करे। और इस प्रकार गांवमें ढंढोरा पिटाकर सहायतादान पूर्वक निरुत्साह मनवालोंको भी यात्राके लिये उत्साहित करे। रास्तेमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये, पडावोंमें काम आने लायक छोटे बडे ऐसे अनेक डेरे, तंबू, रावटी, चांदनी आदि तैयार करवावे। भोजनकी सामग्रीके लिए कडाह, परांत, हंडे आदि भाजन और पानीके संग्रहके लिये बडी बडी कोठियां, टांकियां आदि वर्तन बनवावे। मनुष्योंके बैठनेके लिये तथा सामान भरनेके लिये गाडी, सहेजवाल, रथ, म्याना, पालखी, बैल (पोठ) उंट, घोडा आदि सब प्रकारके वाहनोंका संग्रह करे। संघकी रक्षाके लिये अच्छे अच्छे बहादुर और शूर सुभटोंको (सिपाहियोंको) बुलावे और उन्हें अस्त्र शस्त्रादि देकर उनका सन्मान करे। तथा गान, नृत्य और वाद्यविषयक सामग्रीको भी साथमें रक्खे—अर्थात् गान और नृत्य करनेवाले भोजकों-गंधर्वोंको और बाजे बजानेवाले बजवइयोंको भी संघके साथ रक्खे। इस प्रकार सब तरहकी तैयारी कर अच्छे मुहूर्तमें शुभ शकुनोंके साथ प्रस्थान-मंगल करे। प्रस्थान करनेके अवसर पर, सकल समुदायको—संघके साथ चलनेवाले तथा गांवमें बसनेवाले सभी साधर्मिभाइयोंको—एकत्र उत्तम प्रकारके भोजन कराकर, ताम्बूल आदि मुखवास देकर, तथा पंचांग वस्त्रादि पहरा कर सत्कृत करे। तदनन्तर, सुप्रतिष्ठ, धर्मिष्ठ, पूज्य और भाग्यवान् मनुष्योंके हाथसे 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे। स्वयं संघकी महापूजा करे और इस प्रकार दूसरोंके पाससे भी 'संघाधिपत्य' का तिलक करावे। यह सब काम हो चुकने पर फिर संघके साथ आनेवालोंमेंसे यथायोग्य किसीको महाधर, किसीको अग्रेसर, किसीको पृष्ठरक्षक और किसीको संघाध्यक्षक आदि पद देकर तदनुकूल कार्यविभाग नियत करे। संघके चलने-ठहरने आदिके सब संकेत यात्रियोंको जाहिर करे—अर्थात् अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर यात्रियोंको ठहर जाना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर चलना चाहिए, अमुक प्रकारकी सूचना मिलने पर एकत्र होना चाहिए; इत्यादि सब बातें संघजनोंको स्पष्ट समझा देनी चाहिएं। रास्तेमें संघपतिको सबकी संभाल रखनी चाहिए। कहीं किसीकी गाडी वगैरह टूट जाय या और किसी प्रकारकी कठिनाई आ जाय तो उसे हर प्रकारसे सहायता देनी चाहिए।

इस प्रकार प्रयाण करते हुए मार्गमें जितने गांव और शहर आवें उनके मंदिरोंमें स्नात्र-महोत्सव करावे तथा उन पर महाध्वज चढावे। सब मंदिरोंके बाजे-गाजेके साथ जाकर दर्शन करे। जहां कहींपर कोई मंदिर वगैरह जीर्ण-शीर्ण हालतमें दिखाई दे तो उसके उद्धार आदिका खयाल रक्खे। जब दूरसे अभीष्ट तीर्थ-स्थलके (पर्वतादिके) दर्शन हो तब सुवर्ण, रत्न या मोतियोंसे उसे बधावे और यात्रियोंको लड्डू आदि बांटकर तथा भोजन करा कर साधर्मिवात्सल्य करे। यथोचित दान देवे। फिर जब तीर्थस्थल पर पहुंचे तो बडे आडंबरके साथ स्वयं प्रवेशोत्सव करे और दूसरोंसे करावे। इस तरह तीर्थस्थानमें प्रवेश करके, प्रथम हर्षपूजा, फिर अष्टोपचार पूजा, और तदनंतर विधिपूर्वक स्नात्र करे। इसके बाद, माला पहरना, घृतधारा देना, पहरामनी रखना, नवांग जिनपूजा करना, पुष्पगृह और कदलीगृह बनवा कर महापूजा रचना, बहुमूल्य वस्त्रादिकी बनाई हुई महाध्वजा चढाना, रात्रिजागरण करना, नानाप्रकारके गीत और नृत्यादिसे उत्सव मनाना, तीर्थनिमित्त उपवासादिक तपस्या करना, लक्ष या कोटि परिमित चावल आदि—आदि शब्दसे सुपारी, लविंग, एलायची, नालियर इत्यादि समझने चाहिए—चढाना, २४, ५२, ७२ या १०८ संख्यामें फल आदि भेट धरना, भक्ष्य ऐसे सब प्रकारके भोज्य पदार्थों

से भरे हुए थालोंका रखना, रेशम आदि मूल्यवान् वस्त्रके बने हुए चंदुए, अंगलुंछन, दीप, तैल, धोती, चन्दन, केसर, पुष्पचंगेरी, कलश, धूपदान, आरती, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, थाल, कच्चोल, घंटा, झलरी, पटह आदि विविध वाद्य; इत्यादि प्रकारकी मंदिरमें काम आनेवालीं सब चीजोंका दान करना; इत्यादि प्रकारके जो तीर्थ कृत्य हैं उन्हें विधिपूर्वक पूर्ण करे। इसके बाद तीर्थस्थान पर कोई छोटी बडी देवकुलिका करावे। सूत्रधारादिक कारीगरोंका सत्कार करे। तीर्थका कोई हिस्सा नष्ट-भ्रष्ट होनेकी अवस्थामें हो तो उसे ठीक करवा देवे। तीर्थकी रक्षा करनेवालोंका बहुमान करे। तीर्थके निर्वाहके लिये कोई जमीन आदिका स्थायी दान करे। साधर्मिवात्सल्य करे। गुरुओं और संघजनोंको पहरामणी दे कर भक्तिभाव प्रकट करे और भोजक, सेवक, गंधर्व, आदि जैन याचक जन हों उन्हें उचित दान वितरण करे। इत्यादि।

इस प्रकार संघ ले जानेवालेके लिये मुख्य मुख्य कृत्य बतलाये गये हैं।

प्राचीन समयमें, जैन इतिहासमें प्रसिद्ध ऐसे प्रायः सभी जैन राजा-महाराजाओंने और सेठ-साहुकारोंने इस प्रकारके बडे बडे संघ निकाले थे और उनमें लाखों करोडों रूपये खर्च किये थे। उदाहरणके लिये ऐसे दो चार प्रसिद्ध संघोंका यहां पर उल्लेख करना उचित मालूम देता है।

गुजरातके परमार्हत राजा कुमारपाल चौलुक्यने सौराष्ट्रके गिरनार और शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्राके लिये बडा भारी संघ निकाला था। उसके बारेमें जिनमण्डन गणीने (संवत् १४९२) अपने 'कुमारपाल प्रबन्ध' नामक ग्रंथमें जो उल्लेख किया है, उसका सार यहां पर दिया जाता है—

हेमचन्द्राचार्यके मुखसे तीर्थ यात्रासे होनेवाला पुण्यलाभ सुन कर कुमारपालने भी तीर्थयात्रा करनेका मनोरथ किया और तत्काल सब सामग्री एकत्र कर शुद्ध मुहूर्तमें यात्राके लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय उसने प्रथम, शहरके सभी चैत्यों (मंदिरों) में अष्टाह्निक उत्सव मनाया। गांवमें अमारिपटह बजवाया। कैदखानोंमें जो कैदी थे उन्हें बन्धन मुक्त किये और सकल संघकी पूजाका महामहोत्सव किया। संघके प्रयाणसमयमें सबसे आगे राजाका देवालय चलता था। यह देवालय सुवर्ण और रत्नोंसे जडा हुआ था और राज्यके पट्टहस्तिकी पीठ पर स्थापित किया हुआ था। इसमें सुवर्णकी बनी हुई जिनमूर्ति स्थापित थी। राजाके इस मुख्य देवालयके पीछे पीछे क्रमसे ७२ सामंतोंके, २४ मंदिर बनवानेवाले बाहड मंत्री और उसके साथ अन्य मंत्रियोंके, तथा १८०० बडे बडे व्यापारियोंके देवालय चलते थे। इन सब देवालयों पर श्वेतातपत्र रक्खे हुए थे और अंदर सुवर्ण और मोतियोंसे जडे हुए छत्र-चामरादि शोभ रहे थे।......इस संघमें कुमारपाल राजा मुख्य संघपति था और उसके साथ ७२ सामंत, बाहड (वाग्भट) आदि मंत्री, राजमान्य नागसेठका पुत्र सेठ आभड, षड्भाषाकविचक्रवर्ती श्रीपाल और उसका पुत्र दानवीर कविश्रेष्ठ सिद्धपाल, कपर्दी भंडारी, प्रह्लादनपुर (पालनपुर) का संस्थापक राणा प्रहलाद, ९९ लाख सुवर्णाधिपति सेठ छाडाक, राजदौहित्रिक प्रतापमल्ल, अठारह सौ व्यवहारी, हेमचंद्रसूरि आदि अनेक आचार्य, अनेक गांवों और नगरोंसे आए हुए करोडों मनुष्य, छहों दर्शनोंके अनुयायी, ११ लाख घोडे, ११ सौ हाथी, १८ लाख पैदल सिपाही और अनेक याचक जन थे। राजा हमेशा पैदल चलता था और सो भी नंगे पैरोंसे। हेमचन्द्रसूरिने उसे वाहन पर बैठजानेका अथवा तो पैरोंमें जूते वगैरह पहर लेनेके लिये आग्रह भी किया तो भी उसने वैसा नहीं किया। राजाके इस व्रतको देख कर और भी सैकडों संघजन उसी तरह चलने लगे। संघके साथ समुदाय बहुत बडा होनेसे कहीं लोकोंको रास्तेमें कष्ट न हो इस लिये वह हमेशा पांच कोसकी मंजल करता था। जगह जगह लड्डू, नालियर आदिकी प्रभावना किये जाता था। जितने जितने जिनमंदिर आते थे उन सब पर सुवर्ण और मोतियोंसे जडी हुई ध्वजायें चढाता जाता था और मंदिरोंकी प्रत्येक मूर्तिके लिये सोनेका छत्र और चामरादि दान किये जाता था। गांवों और शहरोंके

सभी मनुष्योंको भोजन करवाता था। सामने आने वाले राजाओं तथा सेठ-साहुकारोंको यथायोग्य पहरामणी देता था। प्रतिदिन संघमें, सामंत, मंत्री, सेठ आदि सभी संघजनोंको एकत्र कर स्नात्र महोत्सव मनाता था। प्रत्येक गांव और नगरमें साधर्मिक भाइयोंको अन्न, वस्त्र और प्रच्छन्न धन देकर साधर्मिकवात्सल्य करता था। प्रतिदिन भोजन करनेके समय असमर्थ श्रावकोंको तथा दूसरे भूखे प्यासे गरीब गुरबोंको अपने हाथसे भोजन कराकर फिर स्वयंभोजन करता था। हमेशा त्रिकाल जिनपूजा, उभयकाल प्रतिक्रमण तथा पर्वके (अष्टमी और चतुर्दशी आदि के) दिन पौषध व्रतादि करता था। जितने याचकजन आते थे उनको इच्छित दान देकर संतुष्ट करता था। इस प्रकार प्रयाण करता हुआ वह धंधूका नगरमें पहुंचा जो हेमचन्द्राचार्यका जन्मस्थान था। इस नगरमें उसने पहले ही १७ हाथ ऊंचा झोलिकाविहार नामक मंदिर बनवाया था जिस पर ध्वजा चढाई तथा स्नात्र महोत्सव कराया। वहांसे वह क्रमशः प्रयाण करता हुआ, प्राचीन वलभी शहरके मैदानमें पहुंचा। इस जगह दो सुंदर पहाडियां हैं जिनकी चोटी पर दो मन्दिर बनवाये और उनमेंसे एकमें ऋषभदेवकी और दूसरेमें पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित की। वहांसे चल कर वह संघ उस जगह पहुंचा जहांसे शत्रुंजय पर्वतका स्पष्ट दर्शन हो सकता था। उस दिन संघने वहीं पडाव किया और राजाने सकल संघके साथ शत्रुंजयको दण्डवत् नमस्कार करके पञ्चाङ्ग प्रणाम किया। उस दिन तीर्थदर्शन निमित्त उपवास किया गया और सोने चांदिके फुलोंसे और मोतियोंसे शत्रुंजयको बधाया गया। कुङ्कुम और चंदनादिसे अष्टमंगलका आलेखन किया गया और उनपर अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भरे हुए थाल रक्खे गये। वहां पर फिर पूजा पढाई गई, आचार्यका व्याख्यान सुना गया और रात्रिजागरणका उत्सव मनाया गया। राजराणी भूपल देवी, राजपुत्री लीलू कुमारी और अन्य सब सामंत वगैरहकी स्त्रिओंने भी सोनेके थालोंमें मोती और अक्षत भरकर पर्वतको बधाया। इस प्रकार उस दिन प्रथम तीर्थदर्शनके सब कृत्य करके दूसरे दिन संघने उपवासका पारणा किया और तदर्थ उत्सव मनाया गया। तीसरे दिन संघ प्रयाण करके शत्रुंजयकी तलहट्टीमें पहुंचा। वहां पर पादलिप्तपुर (पालीताना) में राजाने पहले ही पार्श्वनाथका मन्दिर बनवा रक्खा था, जिस पर उस समय सुवर्णनिर्मित कलश, दण्ड और ध्वज आदिका आरोपण कर विधिपूर्वक स्नात्र महोत्सव कराया। उसके बाद अपनी दाहिनी बाजूमें हेमचन्द्रसूरिको साथ लेकर, सामंत, मंत्री, सेठ, साहुकार इत्यादि सबके साथ शत्रुंजय पर चढने लगा। मार्गमें जितने वृक्ष आते थे उन सब पर वस्त्रखण्ड चढवाता हुआ और प्रत्येक स्थान पर सुवर्ण, पुष्प, चंदन इत्यादिसे पूजन करता हुआ, मरुदेवा नामक शिखर उपर पहुंचा। वहांपर जगन्माता स्वरूप मरुदेवाकी, तथा शान्तिनाथ और कपर्दि यक्षादिककी पूजा-अर्चा कर प्रथम प्रतोली (पोल) पर पहुंचा। वहां पर अनेक याचक जन खडे थे जिनको यथायोग्य दान देकर आगे बढा और युगादिदेव आदिनाथके मुख्य मन्दिरका द्वार दिखाई देते ही सवासेर प्रमाण मोतियोंसे उसे बधाया। तदनन्तर मन्दिरको तीन प्रदक्षिणा कर गर्भागारमें गया और वहां पर युगादि देवकी प्रशमरसपरिपूर्ण भव्य मूर्तिके दर्शन कर परम उल्लसित हुआ और नौ लाख सुवर्णके मूल्यवाले नौ हार चढा कर उस मूर्तिकी नवांग पूजा की। तदनन्तर संघपतिके लिये जो जो तीर्थ कृत्य बतलाये गये हैं उन सबका उसने यथाविधि पालन किया। इत्यादि।

पाठक कुमारपालकी यात्राके इस वर्णनका ऊपर पहले दिये गये श्राद्धविधिके संघवर्णनके साथ मिलान करेंगे तो मालूम हो जायगा कि संघके निकालनेका जो वर्णन ग्रन्थकारोंने दिया है वह केवल वर्णनमात्र ही नहीं है परंतु उसके अनुसार यथार्थ आचरण भी होता रहा है। और यह आचरण उस पुराणे जमाने ही में होता था सो भी बात नहीं है। वर्तमानमें भी ऐसे संघ निकालनेवाले यथाशक्ति और यथासाधन उक्त विधिका

पालन करते रहते हैं। इस प्रकारके छोटे बडे दो चार संघोंके देखनेका तथा उनके साथ जा कर यात्रा करनेका इस लेखकको भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिनमें इस वर्णनका बहुत कुछ प्रत्यक्ष अनुभव भी मिला है। अस्तु।

कहते हैं, इसी तरह पहले गोपगिरि (ग्वालियर) के आम नामक राजाने बप्पभट्टिसूरिके[1] उपदेशसे शत्रुंजयकी यात्राके लिये एक संघ निकाला था जिसमें १ लाख पौठिक,[2] १ लाख घोडे, ७०० हाथी, २० हजार ऊंट, ३ लाख प्यादे और २०हजार श्रावक-कुटुंब थे। (देखो रत्नमन्दिर गणिरचित उपदेशतरंगिणी, पृ० २४८)

विक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें धारापद्र नगरमें आभू नामक एक श्रीमालज्ञातीय बहुत बडा श्रावक हो गया है। इसको 'पश्चिममण्डलिक' की पदवी मिली थी। इसने शत्रुंजयकी यात्राके लिये जो संघ निकाला उसमें ७०० तो मंदिर और १०५० जिन मूर्तियां थीं ! अन्य समुदाय इस प्रकार था:— ४ हजार गाडियां, ५ हजार घोडे, २२ सौ ऊंट, ९० सुखासन ९०, श्रीकरी, ७ प्रपा, पानीसे भरी हुई मशकें उठा कर चलनेवाले ३२ बैल और ३० भैंसे, १०० भोजन बनानेके बडे बडे कडाह, १०० हलवाई, १०० रसोंय, २०० माली, १०० तंबोली, १३६ हाट, १४ लुहार, और १६ सुतार थे। ३६ आचार्य थे। सब मिलकर १२ करोडका उसके संघमें खर्च हुआ था।

महामंत्री वस्तुपालने १२ बार संघ निकाल कर शत्रुंजयकी यात्रायें की थीं। जिनमें सं १२८५ में जो यात्रा की उसके साथमें २४ तो हाथीदांतके बने हुए और १२० चंदन आदि लकडीके बने हुए मंदिर थे। ४५ सौ गाडियां, १८ सौ वाहिनियां, ७०० सुखासन, ५०० पालखियां, ७० आचार्य, २ हजार श्वेताम्बर यति, ११ सौ दिगम्बर भट्टारकादि, १०,०० श्रीकरी, ४ हजार घोडे, २ हजार ऊंट, और सात लाख मनुष्य थे[1]।

वस्तुपालकी इस अनुपम तीर्थयात्राका वर्णन, उसके समकालीन और सुहृद् ऐसे बडे बडे कवियोंने बहुत विस्तृत और भव्य रीतिसे किया है[2]। उदाहरणके लिये गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर महाकवि रचित कीर्तिकौमुदी नामक काव्यके कुछ पद्य यहां पर उद्धृत कर दिये जाते हैं:—

> चिरोर्पिता श्रीसचिवेन तीर्थ-
> यात्राऽथ सोऽयं शरदाऽऽसमेनः।
> महात्मनामीहितकार्यसिद्धौ
> विधिर्विधत्ते हि सदानुकूल्यम् ॥ १
> पाथेयवन्तः पथि योग्ययुग्याः
> सोपानहः मोदकभाजनाश्च।
> श्रीवस्तुपालेन समं जनौघाः
> प्रयाणकाय प्रवणा बभूवुः ॥ ४
> आकारितस्तेन कृतादरेण
> दूरादपि श्राद्धजनः समेतः।
> ययुस्तदीयानि पुनर्यशांसि
> दिगन्तरेभ्योऽपि दिगन्तराणि ॥ ५
> समं समन्तैरपि बन्धुवर्ग-
> निसर्गबन्धुर्विबुधव्रजस्य।
> शुभे मुहूर्तेऽथ शुभैर्निमित्तै-
> र्मन्त्री स्वनाथानुमतः प्रतस्थे ॥ ६
> रथैस्तुरंगैः करभैर्महोक्षै

---

१ बप्पभट्टीसूरिका स्वर्गवास संवत ८९५ में हुआ था। आमराजके लिये देखो मेरा शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध, पृ ४२ की टिप्पणी।

२ पुराने जमानेमें बनजार लोग जिन बैलों पर माल लद कर आते जातेथे उनको पौठिक कहते थे। गुजरातीमें इसे पोठ कहते हैं। मनुष्य भी इन बैलों पर स्वारी करते थे।

३ यह प्राचीन प्रसिद्ध नगर पालनपुर एजन्सीमें आया हुआ है। आजकल इसे थराद कहते हैं।

४ देखो, उपदेशतरंगिणी, पृ० २४५. तथा सुकृतसागर काव्य, पृष्ठ ४६।

१ उपदेशतरंगिणी, पृ० २४७.

२ देखो, सोमेश्वररचित कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९; ठक्कुर अरिसिंह रचित सुकृतसंकीर्तनकाव्य, सर्ग ५; बालचंद्रसूरि रचित वसंतविलास महाकाव्य, सर्ग १०-११-१२-१३; और उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदयमहाकाव्य, सर्ग १५, इत्यादि।

जग्मुस्तदा केऽपि कथंचनापि ।
मन्त्रीश्वरे धर्मधराधुरीणे
तस्मिन् विशश्राम भरस्तु तेषाम् ॥ १०
न वाहनं यस्य स तस्य वाहनं
नासीद्धनं यस्य स तस्य वित्तम् ।
न चीवरं यस्य स तस्य वस्त्रं
कल्पद्रुकल्पः प्रददौ पृथिव्याम् ॥ ११
भुङ्क्ते स्म सर्वेष्वपि भुक्तवत्सु
शेते स्म सुप्तेषु स यात्रिकेषु ।
प्रबुध्यते स्म प्रथमं तदित्थं
संघप्रभुत्वव्रतमाचचार ॥ १२
प्रभूतभोज्यानि बहूदकानि
सुगोरसान्युन्मदमानवानि ।
तस्यातिदुर्गेऽपि पथि प्रयाणा-
न्युद्यानलीलासदृशान्यभूवन् ॥ १३
यान्प्रसंगेषु जगाम येषु
पुरेषु पौरोच्छ्रितितोरणेषु ।
तेषामधीशैः सविशेषमेष
संमान्यमानः सममानयत्तान् ॥ १४
अभ्यर्थ्यमानः पथिकैरनेकै-
र्वस्तून्यनेकान्यपि वस्तुपालः ।
तेभ्यः प्रभूतानि पथि प्रयच्छ-
न्नाहं करोति स्म न कुप्यति स्म ॥ १५
पुरश्च पृष्ठेऽपि च पार्श्वयोश्च
परिस्फुरन्तः खरहेतिहस्ताः ।
यात्राजनं वर्त्मनि तस्य शश्व
दश्वादिरूढाः सुभटा ररक्षुः ॥ १८
समुद्धृतैर्जीर्णजिनेन्द्रहर्म्यै-
र्नवैः सरोभिश्च सरोजरम्यैः ।
प्रस्थानमार्गः सचिवस्य सोऽभू
दजानतामप्युपलक्षणीयः ॥ १९
यावन्ति बिम्बानि जिनेश्वराणां
श्वेताम्बराणां च कदम्बकानि ।
मार्गेषु तेषां मुषितार्थितार्तिः
पूजां स निर्वर्त्य ततः प्रतस्थे ॥ २०
स पंचषैर्निर्विषयप्रपञ्च-
प्रयाणकैः प्रीणितभव्यलोकः ।
परार्ध्यं धर्मधुरंधरश्री-
शत्रुंजयं शत्रुजयी जगाम ॥ २१

-कीर्तिकौमुदी, सर्ग ९ ।

इन श्लोकोंका भावार्थ यह है कि-शरत्कालके आने पर मंत्री वस्तुपालने तीर्थयात्राके लिये तैयारी की। उसके साथ गांवके अन्यान्य लोक भी भत्ता, वाहन, जलादिके वर्तन इत्यादि मार्गमें आवश्यक ऐसी सब चीजें ले ले कर तैयार हुए। मंत्रीने दूर दूर देशोंके श्रावकोंको भी संघमें आनेके लिये आदर पूर्वक आमंत्रण किया था इससे वे भी सब लोक आ पहुंचे। इस प्रकार सब लोगोंके तैयार हो जाने पर, अपने कुटुंबी, सगे, सम्बन्धी, स्नेही इत्यादि सब जनोंके साथ, राजाकी आज्ञापूर्वक, मंत्रीने शुभ मुहूर्तमें प्रयाण किया। यात्रियोंमेंसे कोई रथोंपर, कोई घोडोंपर, कोई ऊंटोंपर, कोई बैलोंपर, इस तरह जुदा जुदा वाहनों पर सवार होकर चलते थे, पर उन सबका भार मंत्रीके शिरपर था। साथ चलनेवाले यात्रियोंमेंसे जिसके पास वाहन नहीं था उसको वाहन देकर, जिसके पास धन नहीं था उसको धन देकर और जिसके पास वस्त्र नहीं था उसे वस्त्र देकर मंत्रीने उस समय साक्षात् कल्पवृक्षके समान आचरण किया था। संघमें सब मनुष्योंके भोजन कर लेनेपर मंत्री भोजन करता था, सबके सोजाने बाद सोता था और सबके ऊठनेके पहले ऊठता था—इस प्रकार संघकी संपूर्ण प्रतिपालना करता था। यात्रियोंको हमेशा उत्तम प्रकारका भोजन कराया जाता था, मीठा पानी पिलाया जाता था और दूध-दहीं आदि गोरस खिलाया जाता था। इस कारण वह विषम मार्गकी मुसाफरी भी लोगोंको उद्यानलीलाके जैसी आनंददायक हो गई थी। जिन जिन गांवो-नगरोंमें वह संघ पहुंचता था वे सब गांव-नगर वहांके निवासियोंकी ओरसे ध्वजा-तोरणादिसे खूब सजाये जाते थे और वहांके अधिकारी वगैरह सब जन आदरपूर्वक उस संघकी पेशवाईमें आते थे। स्थान स्थानमें अनेक याचक जन आकर मंत्रीके पास अनेक प्रकारकी याचना करते थे और वह सबको यथायोग्य दान देकर संतुष्ट करता था-परंतु इस विषयमें न कभी वह अहंकार ही प्रद-

र्शित करता था और न तिरस्कार ही। रास्तेमें चलता हुआ वह संघ आगे, पीछे और अगल-बगलमें, अर्थात् चारों ओर, हाथोंमें शस्त्र लिये हुए घोडे सवारोंसे संरक्षित रहता था। मार्गमें जितने भी जीर्ण-शीर्ण मन्दिर और तालाव आदि जलाशय मिलते थे उन सबको ठीक-ठाक या नवीन बनवाता हुआ वह संघ चला जाता था। इस कारण उस रास्तेसे निकलकर जानेवाले अज्ञात जनोंको भी चिरकाल तक उस संघके प्रयाणका परिचय मिलता रहता था। इसी तरह रास्तेमें जितने मन्दिर आते और उनमें जितनी जिनमूर्तियां होती थीं उन सबकी पूजा-अर्चा करवाई जाती थी। एवं रीत्या प्रयाण करता हुआ आंतर और बाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओं ऊपर जय प्राप्त करनेवाला वह महामंत्री ५-६ ही दिनमें शत्रुंजय पर्वतपर पहुंच गया था। इत्यादि।

विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें, सं० गुणराज नामका एक प्रसिद्ध धनिक श्रावक हो गया है जो कर्णावतीका निवासी था। उसने शत्रुंजय, गिरनार, आबू, राणकपुर, मांडव, ईडरगढ आदि गुजरात, काठियावाड, मेवाड, मारवाड, मालवा, बागड इत्यादि देशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थोंकी यात्रा निमित्त बहुत बडा संघ निकाला था। इस संघमें मुख्य आचार्य तपागच्छके सोमसुंदर सूरि थे। उन्हींके उपदेशसे यह संघ निकला था। इस संघका विस्तृत वर्णन सोमसौभाग्य नामक काव्यके ८ वें सर्गमें किया हुआ है। काव्यका बनानेवाला कवि प्रतिष्ठासोम स्वयं सोमसुंदर सूरिका हस्तदीक्षित शिष्य था। इस लिए उसका यह वर्णन प्रायः आंखों देखा कहा जा सकता है।

जिज्ञासु पाठकोंको तो इस बारेमें खुद उक्त काव्य ही को पढना चाहिए। परंतु कुछ नमूना दिखानेके लिये उसके थोडेसे पद्य यहांपर भी दे दिये जाते हैं:—

दीपालिकापर्व समाययौ मुदां
साम्राज्यदानप्रतिभूनिभं भुवि।
श्रीतीर्थयात्राकृतये कृती तदा
महोद्यमं निर्मितवान् महेभ्यराट्॥

सज्जीक्रियन्ते स्म मनोरथैः समं
रथा महेभ्यैः स्वगृहाङ्गणे मया:।
सुखासनप्रोद्धुरसिंहविष्टरा-
दीष्टं गरिष्टं भुवि तावित्रापितम्॥

परःसहस्राश्वतुरास्तुरंगमा
आत्ता उदात्ता हृदयंगमाः पुनः।
द्रव्यैर्गृह्यन्ते स्म मया महोमदा
अग्रेसरा वेगभृतां च वेसराः॥

अहिम्मदस्यायुनपातसाहिराट्
सत्य कृतप्रीतमना मनीषिणम्।
दिव्याधिराज्यं किल पर्यधापयत्
कवाहिमुख्यैः सह भूरिभिर्जनैः॥

समार्पयद् द्वारगति निजां च तं
वर्यं नफेरीप्रमुखं नृपोचितम्।
परःसहस्रान् सुभटान् महोद्भटान्
प्रोन्मादिनस्तानमितांश्च सादिनः॥

श्रीतीर्थयात्राप्रकुर्माणमीक्षितं
दर्दौ सदैवाभयकार च यस्य तत्।
स मार्गणप्राणिगणस्य कामितं
संपूरयन् श्रीगुणराजसंघराट्॥

सन्ये मुहूर्ते वृषभावभासितः
संघान्वितः सौवपुराच्चचाल सः।
कुंभः शुभाम्भोभरितोऽस्य संमुखो
बभूव मार्गे सधवाशिरस्थितः॥

इति प्रकृष्टैः शकुनैः प्रमानितैः
संसूचितस्वोज्ज्वलमंगलोदयः।
श्रीवीरमग्राम इति प्रसिद्धिभृत्-
पुरे ययौ श्रीगुणराजसाधुराट्॥

तस्मिन्मिलन्ति स्म पुरे नरेश्वरो-
द्धुरा नराः पुण्यपराश्चतुर्दिशाम्।
प्रवर्द्धते स्मानघसंघ उच्चकै-
र्दिनेदिने वार्द्धिरिवेन्दुदर्शने॥

देवालयाः श्रीजिनराज्या दशाऽकृशाः
सौवर्णदण्डध्वजकुम्भशोभिताः।
चमत्कृताशेषजगत्त्रया स्फुर-
च्चित्रैर्विचित्रैर्वरशिल्पिकल्पितैः॥

जैनेन्द्रबिम्बैः सहिता महोच्छ्रिता-
स्तुङ्गाश्च शृंगैः सुभगंभविष्णवः।

रथाधिरूढा दृढबन्धबन्धुराः
पथि प्रचेलुः त्रिदशाचलाचलाः॥
तत्पृष्ठतः श्रिष्टगरिष्ठशेखरः
खरांशुभास्वद् द्युतिसन्ततिस्ततः।
पुराच्चचालाचलकन्दरावली-
र्वाद्यैः प्रकुर्वन् प्रतिशब्दमण्डिताः॥
श्रीधर्मकर्माशोभितपृष्ठयो लसत्-
सुखासनक्ष्मापतिवाहनस्थिताः।
साम्यं दधाना निबिडं बिडौजसो
महेभ्यराजस्तदनु प्रतस्थिरे॥
तरंगरंगत्तुरगाद्रिमस्तकैः
संरंखलत्स्यन्दनचक्रमण्डलैः।
भृशं समुत्खातमिलारजोऽभितः
प्राच्छादयत्तावनबिम्बमम्बरं॥
तदाभुजप्रोत्कटसद्भटावली-
हक्कानिनादैर्हयराजिहेषितैः।
भेरीनफेरीस्वरनादिकास्वरैः
शृगालवत्कालकलिर्ननाश सः॥
श्रीसंघसत्कैः शकटैर्भरोत्कटै-
र्निपीडितो मूर्ध्नि स शेषपन्नगः।
कष्टेन पातालतले स्थितस्तदा
कुलाचलाश्चेलुरलं च भारिताः॥
सुखासन-स्यन्दन-राजवाहन-
श्रीवाहिनीनां वरवाजिनां नृणाम्।
कश्चिद्विपश्चिद् गुणराजसंघराट्
संघेन संख्यामकरोन्नरोत्तमः॥
श्रीमन्महीराजमजो गजोद्भुरः
कालश्च बालाह्वय ईश्वरः कनी।
श्रीवाचसूनोस्तनया नयान्विताः
पंचप्रसृपाधिकरूपसम्पदः॥
पंचाप्यमी पंचमुखाभविक्रमाः
क्रमाब्जनम्रक्षितिपा भटान्विताः।
पश्चात्पुरस्ताच्च सृजन्ति यत्नतः
श्रीसंघरक्षां पथि सत्पथस्थिताः॥
पुरे पुरे श्रीमलिकाश्च राणकाः
सोपायनाः सम्मुखमागताः समे।
चक्रुः प्रणामं गुणराजनामभृत्-
संघेशितुर्भूतलः ममौलयः॥

किं संप्रतिर्भूपतिरेष शासनं
विभासयन् जैनमखण्डशासनः।
कुमारपालः किमु निर्मितामित-
प्रभावनः पावनपुण्यभावनः॥
किं वस्तुपालोऽत्र मनोरथान् पृथून्
कृतार्थयन्नर्थिजनस्य शस्यधीः।
इत्थं सृजन्नूहसमूहभंगिनां
धंधुकके संघपतिः समागमत्॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि--जब हर्षके साम्राज्यका दान करनेवाला ऐसा दीपालिका पर्व आया तब-अर्थात् चातुर्मासकी समाप्तिके समय पर--गुणराज सेठने तीर्थयात्राके लिये खूब जबरदस्त तैयारी करनी शुरू की। उसके साथ और भी बडे बडे धनिक लोक मनोरथोंके साथ ही अपने अपने घरोंमें रथों वगैरहको सजाने लगे। तथा सुखासन, सिंहासन आदि जुदा जुदा तरहके वाहन बनाने लगे। हजारों ही ऊंची जातिके घोडे तैयार किये जाने लगे तथा खच्चर और ऊंट सामानसे लदे जाने लगे।

यों तैयारी कर वह चतुर सेठ अनेक प्रकारकी बहुमूल्य भैंटें लेकर अपना राजकर्ता जो अहम्मद बादशाह था उसके पास गया और वे भैंटें उसके सामने रख कर उसको खूब खुश किया।

बादशाहने भी बदलेमें, अपने कबाहि (?) आदि सहचारियोंके साथ, गुणराज सेठको आदरपूर्वक किंमती सरपाव देकर उसका उचित सन्मान किया। इसके उपरांत बादशाहने सेठको संघमें ले जानेके लिये अपना निजका जो बादशाही खेमा था वह समर्पण किया और नफेरी आदि शाही बाजे भी --कि जो खास राजाओंहीके आगे बजाये जा सकते हैं--बजानेके लिये देकर सेठका बहुमान किया। संघकी रक्षाके लिये हजारों ही प्यादे और घोडेसवार सिपाही भी बादशाहने उसके साथ भेजे।

इस प्रकार यात्राके लिये शाही फरमान लेकर, सकल समुदायके साथ, भव्य मुहूर्तमें, याचकगणको इच्छित दान देते हुए, शुभ शकुनपूर्वक गुणराज सेठने अपने नगरसे प्रस्थान किया।

कर्णावतीसे रवाना होकर संघ वीरमगांव प

हुंचा जहां चारों दिशाओंमेंसे असंख्य मनुष्य आ आकर उस संघमें शामिल हुए। फिर शुक्लपक्षके चंद्रकी तरह दिन प्रतिदिन वह समुदाय इस प्रकार अन्यान्य स्थानोंसे आनेवाले जनसमूहसे खूब बढता गया।

संघमें सबसे आगे रथारूढ देवालय (मन्दिर) चलते थे, जो खूब ऊंचे होकर सोनेके कलश और ध्वजा दंडादिसे अलंकृत थे, कुशल कारीगरोंकी की हुई अनेक प्रकारकी चित्र विचित्र रचनाओंके कारण देखनेवालेको चमत्कृत बनाते थे और जिनके अंदर भव्य आकृतिवाली जिन प्रतिमायें सुशोभित थीं।

देवालयोंके पीछे पीछे, सूर्यके समान तेजस्वी ऐसा गुणराज सेठ चलता था जिसके आगे बजनेवाले बाजोंके प्रतिध्वनिसे रास्तेमें आनेवाले बडे बडे पहाड शब्दायमान हो जाते थे। संघपतिके पीछे पीछे, संघमेंके अन्यान्य बडे बडे धनाढ्य लोक चलते थे जो राजाओंके उचित ऐसे सुखासनोंमें बैठे हुए थे और जिनकी अगल-बगलमें नोकर लोक अबदागिरीयां लेकर चलते थे। अन्य बाकीके सैकडों ही लोक घोडे जुडे हुए रथोंमें बैठे हुए चलते थे कि, जिन रथोंके घोडोंकी खुरियोंसे तथा पहियोंसे उडती हुई धूलके कारण सारा आकाश ढंकसा जाता था।

सुभटोंके हुंकारोंसे, घोडोंकी हिनहिनाटोंसे और भेरी नफेरी आदि बाजोंके घोर शब्दोंसे, देखनेवालेको मानों यह प्रतीत होता था कि कलिकाल अब इस जगत्‌मेंसे नष्ट हो गया है और फिर सत्‌युगका संचार हो रहा है। उस संघके साथ इतनी गाडियां थीं कि जिनके भारसे दबकर ही मानों शेषनाग पातालमें चला गया है और कुलाचल कम्पित हो रहे हैं। संघके साथ इतने रथ, सुखासन, पालखियां, घोडे और मनुष्य आदि थे कि जिनकी संख्या कोई बडा विद्वान् भी नहीं कर सकता था।

संघपति गुणराज सेठके महीराज, गजराज, कालू, बाला और ईश्वर नामके पांच पुत्र थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कामके समान रूपवान् थे। ये पांचों पुत्र संघकी रक्षासंबंधी सारी व्यवस्था रखते थे और सुभटोंके साथ इनमेंसे कोई संघके आगे, कोई पीछे और कोई अगलबगलमें चलता था। इनका पराक्रम और तेज इतना था कि राजा और राणा भी आकर इनके पैरोंमें पडते थे।

जिस जिस गांव और नगरमें सं० गुणराजका वह संघ पहुंचता था वहां के मालिक और राणक आदि सब अधिकारी लोक भेंटें ले लेकर संघके सामने आते थे और जमीनपर सिर टेककर उसको प्रणाम करते थे।

गुणराज सेठके इस महान् संघको देखकर लोकोंके मनमें, पुराणे ग्रन्थोंमें वर्णन किये हुए संप्रतिराजा, कुमारपालराजा और महामंत्री वस्तुपाल आदिके संघोंका स्मरण हो आता था और क्षणभर उनको यही भास हो जाता था कि क्या यह राजा संप्रति, या कुमारपाल, अथवा मंत्री वस्तुपाल ही तो संघ लेकर नहीं आ रहा है? इस प्रकार महान् ठाठके साथ चलता हुआ गुणराजका वह संघ क्रमसे धुंधुका शहरमें पहुंचा। इत्यादि।

खरतर गच्छके महोपाध्याय जयसोमके उपदेशसे सिंधके फरीदपुर नगरसे, वि. सं. १४८४ में, पंजाबके प्रसिद्ध प्राचीन स्थान कांगडेके जैन मंदिरोंकी यात्राके लिये जो संघ निकला था उसका बहुत ही मनोरंजक वर्णन, हमारी संपादन की हुई विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक पुस्तकमें किया हुआ है, जिसमेंका कुछ भाग प्रकृतोपयोगी होनेसे यहां पर दिया जाता है।

"संघको चलते समय बहुत अच्छे और अनुकूल शकुन हुए। फरीदपुरसे थोडी ही दूरी पर विपासा (व्यासा) नदी थी। उसके किनारोंपर, जहां जाम्बु, कदम्ब, नीम्ब, खजूर आदि वृक्षोंकी गहरी घटा जमी हुई थी और नदीके कल्लोलोंसे ऊठी हुई ठंडी वायु मन्द मन्द रीतिसे चली आती थी, ऐसे चांदिके जैसे चमकिले रेतीके मैदानमें संघने अपने प्रयाणका पहला पडाव किया। दूसरे दिन नदीको पार करके जालंधरकी ओर संघने प्रस्थान किया। संघमें सबसे आगे सिपाही चलते थे जो मार्गमें रक्षणके निमित्त लिये गये थे। उनमेंसे किसीके

हाथमें तलवार थी तो किसीके हाथमें खड्ग था। कोई धनुष्य लेकर चलता था तो कोई जबरदस्त लट्ठ उठाये हुआ था। इस प्रकार सबसे आगे उछलते, कूदते और गर्जते हुए सिपाही चले जाते थे। उनके पीछे बडी तेजीके साथ चलनेवाले ऐसे बडे बडे बैल चलते थे जिन पर सब प्रकारका मार्गोपयोगी सामान भरा हुआ था। उनके बाद संघके लोक चलते थे जो कितने एक गाडी घोडों आदि वाहनों पर बैठे हुए थे और कई एक देव-गुरु-भक्ति निमित्त पैदल ही चलते थे। कितने ही धर्मी जन तो साधुओंकी समान नंगे ही पैर मुसाफरी करते थे। इस प्रकार अविच्छिन्न प्रयाण करता हुआ और रास्तेमें आनेवाले गाँवोंको लांघता हुआ संघ निश्चिन्दीपुर के पास के मेदानमें, सरोवर के किनारे आ कर ठहरा। संघके आनेकी खबर सारे गाँवमें फैली और मनुष्योंके झुंडके झुंड उसे देखनेके लिये आने लगे। गाँव का मालिक जो सुरत्राण (सुलतान) करके था वह भी अपने दिवान के साथ एक ऊंचे घोडे पर चढ कर आया, और जन्मभरमें कभी नहीं देखे हुए ऐसे साधुओंको देखकर उसे बडा विस्मय हुआ। उपाध्यायजीने उसे रोचक धर्मोपदेश सुनाया, जिसे सुन कर नगरके लोकोंके साथ वह बडा खुश हुआ और साधुओंकी स्तुति कर उसने सादर प्रणाम किया। बादमें संघपति सोमाका सम्मान कर अपने स्थान पर गया। संघ वहांसे प्रयाण कर क्रमसे तलपाटक पहुंचा। वहां पर गुरुओंको वन्दन करने के लिये देवपालपुरका श्रावकसमुदाय आया और अपने गाँवमें आनेके लिये संघको अत्याग्रह करने लगा। उन लोकों को किसी तरह समझा-बुझाकर संघने वहां से आगे प्रयाण किया और विपाशा (व्यासा) नदीके किनारे किनारे होता हुआ क्रमसे मध्य देशमें पहुंचा। जगह जगह ठहरता हुआ संघ इस देश को पार कर रहा था, कि इतनेमें एक दिन, एक तरफसे पोपरेश यशोरथके सैन्यका और दूसरी ओरसे शकन्दर के सैन्यका, " भगो, दोडो, यह फौज आई, वह फोज आई," इस प्रकारका चारों तरफसे कोलाहल सुनाई दिया। इसे सुनकर संघके हौंस ऊड गये। सब विमूढ हो गये। य.त्रीलोक दिलमें बडे घबराये और अब क्या किया जाय इसकी फिक्रमें निश्चेष्टसे होरहे। किसी प्रकार हौंस संभालकर और परमात्माका ध्यान धर संघ पीछा लौटा और विपाशा के तटका आश्रय लिया। नावों में बैठ कर जल्दी से उस को पार किया और कुंगुद नाम के घाट में हो कर मध्य, जांगल, जालन्धर और काश्मीर इन चार देशोंकी सीमाके मध्य में रहे हुए हरियाणा नामके स्थान में पहुंचा। इस स्थलको निरुपद्रव जान कर वहां पर पडाव डाला। वहीं पर, कानुक यक्षके मंदिर के नजदीक, शुचि और धान्यप्रधान स्थान में, चैत्र सुदि एकादशी के रोज सर्वोत्तम समय में, नाना प्रकार के वाद्योंके बजने पर और भाट-चारणों के, बिरुदावली बोलने पर, सब संघने इकट्ठा हो कर, साधुश्रेष्ठ सोमा को, उसके निषेध करनेपर भी, संघाधिपतिका पद दिया। मल्लिकवाहनके सं० मागटके पौत्र और सा० देवा के पुत्र उद्धर को महाधर पद दिया गया। सा० नौधा, सा० रूपा और सा० भोजा को भी महाधर पद से अलंकृत किया गया। सैलहस्त्य का विरुद बुच्चासगोत्रीय सा० जिनदत्त को समर्पण किया गया। इस प्रकार वहां पर पट्टीदान करनेके साथ उन उन मनुष्योंने संघ की, भोजन-वस्त्र-आभूषणादि विविध वस्तुओं द्वारा भक्ति और पूजा कर याचक लोकों को भी खूब दान दिया। संघके इस कार्यको देख कर मानों खुश हुआ हुआ और उस के गुणों का गान करनेके लिये ही मानों गर्जना करता हुआ दूसरे दिन खूब जोर से मेघ वर्षने लगा। बेर बेर जितने बडे बडे ओले बादल में से गिरने लगे और झाडों तथा झंपडीओं को उखाड कर फेंक देनेवाला प्रचण्ड पवन चलने लगा। इस जलवृष्टिके कारण संघ को वहां पर पाँच दिन तक पडाव रखना पडा। ६ वें दिन सवेरे ही वहां से कूच की। सपादलक्षपर्वत की तंग घाटियों को लांघता हुआ, सघन झाडियों को पार करता हुआ, नाना प्रकारके पावित्र्य प्रदेशों को आश्चर्य की दृष्टि से देखता हुआ और पहाडी मनुष्योंके आचार—विचारोंका

अनुभव करता हुआ संघ फिर विपाशाके तट पर पहुंचा। उसे सुखपूर्वक ऊतर कर, अनेक बडे बडे गाँवोंके बीच होता हुआ, और तत्तद् गाँवों के लोकों और स्वामियों को मिलता हुआ, क्रम से पाताल-गंगा के तट ऊपर पहुंचा। उसे भी निरायास पार कर क्रम से आगे बढते हुए और पहाडों की चोटियों को पैरों नीचे कुचलते हुए संघ ने दूरसे सोनेके कलशवाले प्रासादोंको पंक्तिवाला नगरकोट्ट, कि जिसका दूसरा नाम सुशर्मपुर है, देखा। उसे देख कर संघ-जनोंने तीर्थके प्रथम-दर्शनसे उत्पन्न होने वाले आनंदानुसार, दान धर्मादि सुकृत्यों द्वारा अपनी तीर्थभक्ति प्रकट की। नगर-कोट्टके नीचे बाणगंगा नदी बहती है जिसे ऊतर कर संघ गाँवमें जानेकी तैयारी कर रहा था कि इतने में उसका आगमन सुन कर गाँवका जैनसमुदाय, सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर, स्वागत करनेके लिये सामने आया। अनेक प्रकारके वादित्रों और जयजयारवोंके प्रचंड घोषपूर्वक महान् उत्सव के साथ, नगर में प्रवेश किया। सहर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुहल्लों और बाजारोंमें घूमता हुआ संघ, साधु क्षीमसिंहके बनाये हुए शान्तिनाथ-देव के मंदिर के सिंहद्वार पर पहुंचा। 'निसीही निसीही नमो जिणाणं' इस वाक्य को तीन वार बोलता हुआ जिनालयमें जा कर, खरतरगच्छके आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरिकी प्रतिष्ठित की हुई शान्तिजिनकी प्रतिमा का दर्शन किया। तीन वार प्रदक्षिणा दे कर, नाना प्रकारके स्तुति—स्तोत्रों द्वारा अत्यंत आनन्दपूर्वक प्रभुकी पर्युपासना की। इस प्रकार संवत् १४८४ वर्षके ज्येष्ठ सुदि पंचमीके दिन, अपनी चिरकाल की दर्शनोत्कण्ठाको पूर्ण कर फरीदपुरका संघ कृतकृत्य हुआ। शान्तिजिन के दर्शन कर संघ फिर नरेन्द्र रूपचन्द्र के बनाये हुए मंदिर में गया और उस में विराजित सुवर्णमय श्रीमहावीरजिन बिंबको पूर्ववत् वन्दन-नमन कर, देवल के दिखाये हुए मार्गसे युगादिजिनके तीसरे मंदिर में गया। इस मंदिरमें भी उसी तरह परमात्माकी उपासना—स्तवना कर निज जन्म को सफल किया।

(विज्ञप्तित्रिवेणि, प्रस्तावना, पृ० ३७—३९)

इस प्रकार और भी अनेक ग्रन्थोंमें अनेक संघोंका वर्णन मिलता है। इस लेखमें हमारा उद्देश सारे संघोंका इतिहास लिखनेका नहीं है, परंतु संघ किस तरहसे निकाले जाते हैं उसका स्वरूप बतलानेका है। इस लिये नमूनेके तौर इतने वर्णन दे कर इस विषयको समाप्त किया जाता है। संघोंका क्रमवार इतिहास हम कभी भविष्यमें लिखना चाहते हैं।

जेसलमेरके पटवोंके संघका वर्णन।

ऊपर हमने 'तीर्थयात्राके लिये निकलनेवाले संघोंका वर्णन' दिया है। इस प्रकारका एक बडा भारी संघ गत शताब्दीके अंतमें, मारवाडके जेसलमेर नगरमें रहनेवाले पटवा नामसे प्रसिद्ध कुटुंबवाले ओसवालोंने निकाला था। इस संघका वर्णन, उसी कुटुंबका बनाया हुआ, जेसलमेरके पास अमरसागर नामक स्थानमें जो जैन मंदिर है उसमें एक शिला पर, उसी समयका लिखा हुआ है। यह शिलालेख मारवाडी भाषामें और देवनागरी लिपिमें लिखा गया है। नीचे इस लेखकी ज्यों कि त्यों नकल दी जाती है। इस लेख की एक कापी प्रवर्तक श्रीकान्तिविजयजी महाराजके शास्त्र-संग्रहमेंसे मिली है; जो उन्होंने किसी मारवाडी लहियेके पास लिखवाई है और दूसरी नकल, बडौदाके राजकीय पुस्तकालयके संस्कृत विभागके सद्गत अध्यक्ष श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल एम्. ए. के पाससे मिली है जो उन्होंने मेरे लिये जेसलमेरके किसी यतिके पाससे लिख मंगवाई थी।

॥ ओं नमः ॥

। दूहा ।

रिषभादिक चउवीस जिन पुण्डरीक गणधार ।
मन वच काया एक कर प्रणमु बारंबार ॥ १
विघन हरण संपतिकरण श्रीजिनदत्तसुरिंद ।
कुशल करण कुशलेश गुरु वन्दु खरतर इंद ॥ २
जाके नाम प्रभावतै प्रगटे जय २ कार ।
सानिधकारी परम गुरु सदा रहो निरधार ॥ ३

संवत् १८९१ रा मिति आषाढ सुदि ५ दिने श्रीजेसलमेरु नगरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री १०८ श्रीगजसिंघजी राणावत श्रीरूपजी बापजी विजयराज्ये बृहत्खरतर भट्टारकगच्छे जंगमयुगप्रधान भट्टारक श्रीजिनहर्षसूरिभिः पट्टप्रभाकर जं । यु । भ । श्री १०८ श्री जिनमहेन्द्रसूरि उपदेशात् श्रीबाफणागोत्रे देवराजजी तत्पुत्र गुमानचंदजी—भार्या जेतां । तत्पुत्र ५–(१) बहादरमलजी--भार्या चतुरां । (२) सवाईरामजी--भार्या जीवां । (३) मगनीरामजी--भार्या परतापां । (४) जोरावरमलजी--भार्या चोथां । (५) प्रतापचंदजी--भार्या मानां । एवं बहादरमलजी तत्पुत्र (१) दांनमलजी (२) सवाईरामजी तत्पुत्र सामसिंघ, माणकचंद । सामसिंहपुत्र रतनलाल । (३) मगनीरामजी तत्पुत्र अमृतसिंघजी । तत्पुत्र २ पूनमचंद दीपचंद । (४) जोरावरमलजी तत्पुत्र २ सुरतांनमल चंनणमल । सुरतानमल पुत्र २ गंभीरचंद्र इंद्रचंद्र । (५) प्रताप चंदजी पुत्र ३ हिमतराम-जेठमल-नथमल । हिमतरामपुत्र जीवण । जेठमल पुत्र मूलो । गुमानचंदजी पुत्र्यां २ झबू-बीजू । सवाई रामजी पुत्र्यां ३ सिरदारी-सिणगारी-नांनुडी । मगनीरामजी तत्पुत्र्यां २ हरकवर-हस्तू । सपरिवार सहितेन सिद्धाचलजीरो संघ काढ्यो । जिणरी विगत—

जेशलमेर उदैपुर कोटैसुं कुंकुमपत्र्यां सर्व देसावरांमे दीनी । च्यार २ जमण कीया नालेर दीया पछै संघ पाली भेलो हूवो । उठे जीमण ४ कीया । संघतिलक करायो । मिति महासुदि १३ दिने भ । श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी श्रीचतुर्विधसंघसमक्षे दीयो । पछे संघ प्रयाण कीयो । मार्गमें देशना सुणतां पूजा पडिक्कमणादि करतां साते क्षेत्रांमें द्रव्य लगावतां जायगा २ सामेला होतां रथजात्रा प्रमुख महोच्छव करतां । श्रीपंचतीर्थीजी बांभणवाडजी आबूजी जीरावलेजी तारंगेजी संखेश्वरजी पंचासरजी गिरनारजी तथा मारगमांहे सहरांरा गामांरा सर्व देहरा जुहारचा । इणभांत सर्व ठीकाणें मंदिर २ दीठ चढापो कीयो । मुगट कुंडल हार कंठी भुजबंध कडा श्रीफल नगदी चंद्रवा पुठीया इत्यादिक मोटा तीर्थमाथे चढापो घणो हुवो । गहणो सर्व जडाउ हो सर्व ठिकाणें लांहण जामण कीया सहसावनरा पगथीया कराया । उठेसु सात कोष ठेरे--गामसुं श्रीसिद्धगिरीजी मोत्यांसुं बधायनें पाली-ताणें बड़ा हगामसुं गाजावाजतां तलेटीरो मंदिर जुहार डेरां दाखल हुवा । दुजे दिन मिती

वेशाख सुदी १४ दिने शांतिक पुष्टिक हुतां श्रीसिद्धगिरीजी पर्वतपर चढया, श्रीमुलनायक चोमुखोजी खरतरवशीरा तथा दुजी वश्यां सर्व जुहारी मास सवा रया। उठे चढापो घणो हुवो। अढाइ लाख जात्री मेला हुवा। पुरब, मारवाड, मेवाड़, गुजरात, ढुंढाड़, हाडोती, कछभुज, मालवो, दक्षण, सिंध, पंजाब प्रमुख देशांरा। उठे लांण रू० १ सेर १ मिश्री घर दीठ दीवी जीमण ५ संघव्यां मोटा कीया जीमण १ बाई बीजु कीयो ओर जीमण पण घणा हुवा। श्रीचोमुखाजीरे बारणें आलामे गोमुख यक्ष चक्रेश्वरीरी प्रतिष्ठा करायनें पधराइ चोमुखाजीरो सिखर सुधरायो एक नवो मंदिर करावण वास्ते नींव भराई। जुना मंदिरांरा जीर्णोद्धार कराया जन्म सफल कीयो। गुरुभक्ति इंण मुजब कीवी। इग्यारे श्रीपूज्यजी था २१०० साधु साध्वी प्रमुख चौरासी गछांरा। तिहां, प्रथम स्वगछरा श्रीपूज्यजीरी भक्ति साचवी। हजार ५ रो नगद माल दीयो दूजो खरच भर दीयो पछे अनुक्रमें सारा दुजा श्रीपुजांरी साधु साध्वीयांरी भक्ति साचवी। आहार पांणी गाडीयांरो भाडो तंबु चीवरो ठांणें दीठ रू ४१ दीया नगद। दुशाला वालांनें दुशाला दीया। सेवग ५०० हा। जिणांनें जणें दीठ रू० २१ दीया। रोटी खरच अलग। पेहेरणारा मोजा ओषध खरची सारूं रुपीया चाहीज्या जिणांनें दीया। पछे। भ। श्रीजिनमहेंद्रसुरिजी पासे सिंघव्यां २१ संघमाला पहरी जिणमें माला २ गुमास्ते सालगराम महेश्वरीनें पहराइ। पछे बडा आडंबरसुं तलेटीरो मंदिर जुहार डेरां दाखिल हुवा। जाचकांनें दान दीनो। पछे जीमण १ कीयो। साधर्म्यानें सिरपाव दीया। राजा डेरे आयो। जिणनें हाथी सिरपावमें दीयो। दुजा मार्गमें राजवी नबाब प्रमुख आया डेरे, जिणांनें, राजमुजब सिरपाव दीया। श्रीमुलनायकजीरे भंडाररे ताला ३ गुजरातीयांरा था सु चोथो तालो संघव्यां आपरो दियो। सदावर्त सरू हेईज। ईसा २ मोटा काम करया पछे संघ कुशलक्षेमसुं अनुक्रमें राधणपुर आयो। जठे अंगरज श्रीगोडीजीरा दर्शण करणनें आयो। उठे पांणी नही थो सुं गेबाउ नदी नीसरी। श्रीगोडीजीनें हाथीरे होदे विराजमान कर संघनें दरशण दिन ७ इकलग करायो चढापेरा साढा तीन लाख रूपीया आया सवा महीनो रया, जीमण घणा हुवा। श्रीगोडीजीरे विराजणने बडो चोतडो पक्को करायो ऊपर छतरी बणाई। घणो द्रव्य खर्च्यो बडो जश आयो अक्षत नाम कीयो। साथे गुमास्तो महेश्वरी शालगरांम हो जिणनें जैनरा शिवरा सर्व तीर्थ कराया। पछे अनुक्रमें संघ पाली आयो। जीमण १ करनें दानमलजी कोटे गया पछे भाइ ४ जेसलमेर आया। डेरा दरवाजे बाहर कीया पछे सामेलो बडा ठाठसुं हुवो। श्रीरावलजी सांमा पधार्‍या। हाथीरे होदे, संघव्यानें श्रीरावलजी आपरे पुठे बेषाणनें सारा शहिरमें हुय देहरा जुहार ऊपाश्रये आय हवेल्यां दाखल हुवा। पछे सर्व महेश्वरी वगैरे छत्तीस पांनने लुगायां समेत पांच पकवानसुं जीमाया। ब्राह्मणांने जणे दीठ रू० १ दक्षणारो दीयो पछे श्रीराउलजी जनांनें सहित संघव्यांरे हवेली पधार्‍या। रूपीयांसु चोतरो कीयो। सिरपेच कंठी मोत्यांकी कडा जडाउ दुशालां नगदी हाथी घोडा पालखी निजर कीया। पाछा श्रीरावलजी इण मुजब हीज शिरपाव दीयो। एक लोद्रवोजी गाम तांबापत्रां पट्टे दीयो इतो इजारो कीयो।

आगे पिण इणांरी हवेली–उदेपुर राणाजी, कोटेरा महारावजी, बीकानेररा किषनगढरा बुंदीरा राजाजी इन्दोररा हुलकरजी प्रमुख सर्व देशांरा राजवी जनानें समेत इणारे घरे पधार्‍या देणो लेणो हजारांरो कीयो। दिल्लिरे पातसाहरी अंगरेजारे पातसाहरी दीयोडी सेठ पदवी हे सो विख्यातही ज हे। पछे संघरी ब्राह्मण न्यातमें दीवी पुतली १ सोनेकी बाली १ मीश्री सेर १ घर दीठ दीवी। जीमण कीधा पछे सेरमें ठावाठावांनें सीरपाव दीया। गढमांहिला मंदिरां लोद्रवे ऊपाश्रये बडो चढापो कीयो इण मुजबही ज उदयपुर कोटे देणो लेणो कीधो। संघमें देहरासररो रथ हो जणरा इकावन सो लागा। त्रगडा सोनें रूपेरा २ जिणरा दश हजार लागा मंदिररा सोने रूपेरी बासणांरा १५ हजार लागा। दुजा फुटकर सराजांमरा लाख १ रू० लागा।

हवे संघमें जावतो हो जिणरी वीगत—तोफां ४, पलटनरा लोग ४०००, अशवार १५००, नगारे नींशाण समेत। उदेपुर राणाजीरा असवार ५०० नगारे निसाणे समेत। कोटेरा महारावजीरा अशवार १०० नगारे नीसाण समेत। जोधपुरे राजाजीरा असवार ५० नगारे नींसाण समेत। पायदल १०० जेसलमेररा रावलजीरा, असवार २०० टुंकरे नबाबरा, असवार ४०० फुटकर असवार २०० घरु ओर अंगरेजी जावतो, चपडासी तिलंगा सोनेरी रूपेरी घोटेवाला जायगा २ परवानां बोलावा एवं पालख्या ७ हाथी ४ म्याना ५१ रथ १००, गाड्यां ४००, उंठ १५००,इतरातो संवळ्यांरा घरु। संघरी, गाड्यां उंठ प्रमुख न्यारा, सर्व खरचरा, २३०००००, तेवीसलाख रू० लागा॥

इति संघरी संक्षेप प्रशस्ती लिखी।

ओर—पण ठिकाणे २ धर्मरा काम करचा सो संक्षेपे लिखीये छै—श्री धुलेवेजीरे बारणें नोबत खांनो करायो गहणो चढायो, लाख १ लागा।. मक्षीजीरे मंदिररो जीर्णोद्धार करायो। उदेपुरमें मंदिर, दादासाहिबरी छतरी, धर्मशाला कराइ। कोटेमें मंदिर धर्मशाला दादासाहिबरी छतरी कराइ। जेसलमेरमें अमरसागरमें बाग करायो जिणमें मंदिर करायो। जयवंतोरो उपाश्रय करायो लोद्रवेमें धर्मशाला कराइ, गढमांथे जमी मंदिरके लिये लीवी बीकानेरमें दादासाहिबरी छतरी कराई इत्यादिक ठीकाणें २ धर्मरा आहीठाण कराया श्रीपुज्यजीरा चोमासा जायगा २ कराया पुस्तकांरा भंडार कराया भगवतिजी प्रमुख सुण्या प्रश्न दीठ २ मोती धर्‍या। कोटामें दोय लाख रूप्यादेकर बंदीखानो छोडायो बीज पांचम आठम इग्यारस चउदशरा उजमणा कीना इत्यादिक काम धरमरा कीया ओर कर रयाहे। इत्यलम्॥

सवइयो ३१ सो—

शोभनीक जे साणमें बाफणा गुमानचंद ताके सुत पांच पांडव समान हे।
संपदामें अचल बुद्धिमें प्रबल राबराणाही मानें जाकी कान हे।
देवगुरु धर्मरागी पुन्यवंत बडभागी जगत सहु वात मानें प्रमान हे।
देशहु विदेशमांह कीरत प्रकाश कीबो सेठ सउ हेठ कवि कर्त बखानहे॥ १॥

दुहा—

अठारसे छनुवे जेठमास सुदि दोय ।
लेख लिख्यो अति चुंपसुं भवियण वांचो जोय ॥ १ ॥
सकल सुरि शिर मुगटमणि श्रीजिनमहेंद्रसुरिंद ।
चरणकमल तिनके सदा सेवे भिवियण वृंद ॥ २ ॥
कीनो आग्रहथकी जेसलमेरु चोमास ।
संघ सहु भक्ति करे चढते चित्त उलास ॥ ३ ॥
ताकी आज्ञा पाय करि धरि दिलमें आणंद ।
ज्युं थी त्युं रचना रची मुनि केसरीचंद ॥ ५ ॥
भुलो जो परमादमें अक्षर घटही बाध ।
लिखत खोट आइ हुवे, सो खमीयो अपराध ॥ ५ ॥

॥ इति प्रशस्ति सम्पूर्णम् ॥

इस संघके निकालनेवालेके वंशज आज भी मौजूद हैं और मालवाके रतलाम वगेरह शहरोंमें उनकी बडी बडी दुकानें चलती हैं । इस संघके जैसा बडा संघ, इसके बाद जैन समाजमेंसे फिर कोई नहीं निकला और शायद अब कोई निकाले वैसी आशा भी नहीं है ।

इस कुटुंबने संवत १९२८ में, जेसलमेरमें जो एक बडा भारी प्रतिष्ठामहोत्सव किया था उसका लेख भी उपर्युक्त लेखवाले मंदिरमें लगा हुआ है । यह लेख कुछ संस्कृत और कुछ मारवाडी भाषामें है । संग्रहकी दृष्टिसे इस लेखको भी यहांपर प्रकट कर दिया जाता है ।

" स्वस्ति श्रीविक्रमादित्यराज्यात् सम्वत् १९२८ शालीवाहनकृत शाके १७९३ प्रवर्तमाने मासोत्तममासे माघमासे धवलपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ गुरुवासरे महाराजाधिराज महारावलजी श्री श्री १००८ श्री वैरीशालजी विजयराज्ये श्रीमज्जेसलमेरुवास्तव्य ओसवंशे वाफना गोत्रीय संघवी सेठ गुमानचंदजी तत्पुत्र प्रतापचन्द्रजी तत्पुत्र हिमतरामजी जेठमलजी नथमलजी सागरमलजी उमेदमलजी तत्परिवार मूलचंद सगतमल केसरीमल रिषभदास मांगीदास भगवानदास भीखचंद चिंतामणदास लुणकिरण मनालाल कन्हैयालाल सपरिवारयुतेन आत्मपरकल्याणार्थं श्रीसम्यक्त्वोद्दीपनार्थं च श्री जेसलमेरुनगरसत्क अमरसागरसमीपवर्तिनि समीचीनाऽऽरामस्थाने श्रीरिषभदेवजिनमंदिरं नवीनं कारापितं तत्र श्री आदिनाथ बिंबं प्राचीन बृहत्खरतरगणनाथेन प्रतिष्ठितं तत् श्रीजिनमहेन्द्रसूरि पदपंकजसेविना बृहत्खरतरगणाधीश्वरेण चतुर्विधसंघसहितेन श्रीजिनमुक्तसूरीणां विधिपूर्वमहता महोत्सवेन शोभनलग्ने श्रीमूलनायकचैत्ये स्थापितं । पुनः अनेक बिंबानामंजनशिलाका कारिता । पुनर्द्वितीयभुमिप्रासादे स्वप्रतिष्ठित श्री पार्श्वनाथबिंब मुलनायकस्थापितं पुनर्वीश विहरमान प्रतिष्ठा कृतं मंदिरस्य दक्षिणपार्श्वे दादासाहिब कुशलसूरि गुरुमूर्ति स्थापनकृता । तथाच जिनदत्तसूरि कुशलसूरि चरणपादुका पुनरपि श्रीजिनहर्षसूरि महेन्द्रसूरि चरणपादुका स्थापिता ।

भाई सवाईरामजीके घरका आया । रतलामसुं चि० सोभागमल चांदमल सौभाग्यमलकी माजी वगेरे आया । उदेपुरसुं चि० सिरदारमल तथा इणांरी माजी वगेरे आया । ओर

पण घणे देशावरांसु संघ आयो । स्वामीवच्छल प्रमुखकरी ३ श्रीसंघकी भक्ति करी । तथा पांच शिष्याने श्रीपूज्यजी म्हाराजके हांथसें दीक्षा देराइ । दिन १५ तक बडो ठाठ उछव नित्य नवीन पूजा प्रभावना हुइ । श्रीदरबार साहिब पधार्‍या । तोफांका फेर हुआ । सेठांके पगमें सोनो बगसीयो । फेर श्रीसंघसमेत जेसलमेर आया उजमणा प्रमुख कीना । श्रीपूज्यजी महाराजकी पधरावणी २ कीनी जिणमें हजारा रुपीयांको माल असबाब भेट कीनो । उपाध्याय वगेरे ठावा ठावा ठाणानें रोकड शालजोडी इत्यादि यथायोग्य दीना । उपाध्याय साहिबचंदजी गणि । पं. । प्र. । भेरजी गणि पं. प्र. अमरचंदजी गणि प्रमुख ठाणा ४१ था । ठाणें दीठ रू. १० दश रोकडा थांन प्रत्येके दीना । परगच्छीय यतियांको सतकार अछीतरे कीनो । श्रीसरकारकी पधरामणी कीनी । घोडा लवाजमो नजर कीनो । मुसद्दी वगेरे सर्वनें यथायोग्य शिरोपाव दीना ॥

श्रीजिनभद्रसूरि शाखायां पं. प्र. श्रीमयाचंदजी गणि तत्शिष्य पं. सरूपचंदजी मुनि जेसलमेरु आदेशिना इयं प्रशस्ति रचिता ।

शिलावट बिरामके हाथसुं श्रीमंदिरजी वणिया जिणके परिवारने सोनेकी कंठियां तथा कडीकी जोडियां मंदील दुपट्टा थांन वगेरे शिरपाव दीना ॥

श्रीमंदिरके मूल गुंभारेमें आसेपासे दक्षणकी तर्फ परतापचंदजीकी खडी मूर्ति छे । उत्तरकी परतापचंदजीकी भार्याकी खडी मूरती छे । निजमंदिरके सामने पूर्वकी तर्फ पश्चिममुखी चोतरो कराय जिण ऊपर परतापचन्दजीकी तथा भार्यासहित सपरिवार सहीतकी मुरतीयां स्थापित किनीं ।

सम्वत् १९४५ मिति मार्गसिर सुदी २ वार बुध । दशकत सगतमल जेठमलांणीं बाफनाका । शुभं ।

दुहा—अष्टकर्म वन दाहके भये सिद्धजिनचंद ।
ता सम जो अप्पा गिणे ताकुं वंदे चंद ॥
कर्मरोग ओपधसमी ग्यानसुधारस वृष्टि ।
शिवसुख अमृत वेलडी जय जय सम्यकृदृष्टि ॥
एहीज सद्गुरु सीख छे एहीज शिवपुर माग ।
लेजो निज ग्यानादि गुण करजो परगुण भाग ॥
भेद ग्यान श्रवण भयो समरस निरमलनीर ।
अन्तर धोबी आतमा धोवे निजगुण चीर ॥
कर दुःख अंगुरी नेनदुःख तन दुःख सहज समान ।
लिख्यो जात है कठणसुं शठ मानत आशान ॥

॥ इत्यलम् ॥

शोक समाचार।

[१]

जैन साहित्य संशोधकके पाठकोंको यह समाचार देते हुए हमें वडा दुःख होता है कि, कलकत्ता नगरके प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ.सतीशचन्द्र विद्याभूषणजीका गत तारीख २५ अप्रैलको असमयहीमें स्वर्गवास हो गया। विद्याभूषणजी भारतवर्षके नामी विद्वानोंमेंसे एक थे। आप अंग्रेजी भाषाके तो आचार्य (एम्. ए.) थे ही, साथमें संस्कृत, प्राकृत, पाली, तिब्बती आदि भाषाओंके भी उत्तम ज्ञाता थे। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्मके दर्शन शास्त्रोंमें आपकी उल्लेख योग्य गति थी और पुरातत्त्व शास्त्रके आप अच्छे पण्डित थे। आप स्वभावके बडे सरल और हृदयसे पूरे निष्पक्षपात थे। ज्ञानार्जन करना ही आपका परम ध्येय था। आपका विद्याव्यासंग आश्चर्यजनक था। अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षाके पास करनेके पहले ही संस्कृत भाषामें आपने इतनी व्युत्पत्ति कर ली थी कि जिससे नवद्वीप-विबुध-जन-सभाने प्रसन्न होकर आपको 'विद्याभूषण' की पद्वी प्रदान की थी। एम्. ए. पास करनेके बाद कुछ काल तक आप कृष्णनगर कालेजमें संस्कृतके प्रोफेसर रहे। इसी समयके मध्यमें आपने काव्य और न्यायशास्त्रका अभ्यास भी आगे बढाया; और साथमें तिब्बती भाषाका ज्ञान भी संपादन किया। आपकी इस योग्यताको देखकर बंगालकी सरकारने आपको तिब्बती भाषाका अनुवादक नियत किया और साथमें उसका एक शब्दकोष बनानेका काम दिया। यह काम आपने बडी योग्यताके साथ समाप्त किया। इससे सरकारने आपको फिर कलकत्ता-संस्कृतकालेजके अध्यापकके पदपर नियुक्त किया। वहां आपने अध्यापकी करते हुए पाली भाषाके अध्ययनका प्रारंभ किया और सन् १९०१ में उसकी एम्. ए. की परीक्षा देकर उसमें प्रथम श्रेणिमें प्रथम नम्बर प्राप्त किया। आपके इन परीक्षापत्रोंकी जांच करनेवाला उस समयमें भारतमें वैसा कोई विद्वान् नहीं था इस लिये वे पत्र लन्दनविश्वविद्यालयके पालीभाषा और बौद्ध साहित्यके प्रधानाध्यापक महाशय रीज डेवीडके पास भेजे गये थे। इन परीक्षक महाशयने सतीश चन्द्रजीके वे परीक्षापत्र पढकर कलकत्ता युनिवर्सिटीके रजीस्ट्रारको लिखाता कि—इनका पाली भाषाका ज्ञान सर्वोत्तम दर्जेका है। इसके बाद आपकी वहांसे बदली हुई और फिर आप प्रेसीडेन्सी कालेजके सिनियर प्रोफेसर बनाये गये।

सन् १९०५ में जब बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा करनेके लिये थी-सी-लामा हिन्दुस्थानमें आये तब भारतसरकारने आपको लामा महोदयके साथ घूम कर उन्हें भारतके बौद्ध तीर्थोंका ऐतिहासिक महत्त्व समझानेका काम दिया। आपने यह काम इतनी उत्तमताके साथ किया कि जिससे लामा महाशयने खुश होकर, प्रेमोपहारके रूपमें आपको एक रेशमी चादर—जिसे वे लोग 'खाताग' कहते हैं—समर्पित की। आपकी इस प्रकारकी सब विषयोंमें निपुणता देखकर भारत सरकारने आपको महामहोपाध्यायकी उत्तम पाण्डित्य और सम्मानसूचक पद्वी प्रदान की।

इसी अरसेमें आपने 'मिडिवल स्कूल आफ दि इण्डियन लॉजिक' नामक जैन न्याय और बौद्ध न्यायके इतिहास विषयकी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसके कारण कलकत्ता युनिवर्सिटीने आपको 'डाक्टर आफ फिलासफी' की प्रधान उपाधिसे सम्मानित किया।

सन् १९०९ में, बंगाल सरकारने आपको बौद्ध धर्मका सविशेष प्रत्यक्ष ज्ञान संपादन करनेके लिये लंका भेजा। वहां पर, सुमंगल स्थविर—जो लंकाके प्रधान बौद्ध स्थविर और कोलंबोके विद्योदय कालेजके अध्यक्ष थे—के पास उस विषयका तलस्पर्शी ज्ञान संपादन किया। वहांसे फिर आप बनारस पहुंचे और वहां पर न्याय आदि दर्शन शास्त्रोंमें उत्तीर्णता प्राप्त की।

फिर १९१० में आप कलकत्ता संस्कृत कालेजके प्रधानाध्यापक बनाये गये और तबसे आखिर तक आप इसी पद पर प्रतिष्ठित रहे। इसके सिवाय, साहित्य और शिक्षा विषयक अने सभा--सोसाटि-

योंके आप अध्यक्ष और सदस्य आदि समय समय पर नियुक्त किये गये थे।

कलकत्तेमें, शास्त्रविशारद जैनाचार्य विजयधर्मसूरिजीसे आपकी मुलाकात हो गई थी जिससे आपको जैनसाहित्यसे भी बहुत कुछ परिचय मिल गया था। आप उक्त जैनाचार्यजीके बडे प्रशंसक थे और उनकी प्रेरणासे आपने कलकत्ता-विश्वविद्यालयके पठनक्रममें जैनसाहित्यको भी कुछ स्थान दिलाया था। जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तकके सिवाय जैनसाहित्यके प्रथम तर्क ग्रन्थ न्यायावतारका आपने अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया है। भारतके दर्शन शास्त्रोंके इतिहासमें आपको बडा रस था और इस लिये इस विषयमें आपने अंग्रेजी और आपनी मातृभाषा बंगलामें अनेक छोटे बडे निबन्ध लिखे हैं।

जैन साहित्यविषयक आपका प्रेम देख जैन समाजने भी आपका यथोचित गौरव किया था। सन् १९१३ में बनारसमें जो अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासभाका अधिवेशन हुआ था उसके आप अध्यक्ष बनाये गये थे और सभाने आपको 'जैनसिद्धान्त महोदधि' की उपाधि समर्पित कर सत्कृत किया था। इसके अगले वर्ष जब जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलन हुआ तब भी आप उसके सभापति नियत किये गये थे।

गतवर्ष जब यहां पर (पूनेमें) ' प्रथम प्राच्यविद्यापरिषद् ' हुई थी तब आप यहां पर भी आये थे और परिषद्के पालीभाषा और बौद्धसाहित्य विषयक विभागके अध्यक्ष बनाये गये थे। उस समय हमारी भी आपसे भेंट हुई थी और परिषद्में जब हरिभद्रसूरिका समय निर्णय विषयक हमारा लेख पढा गया तब खास तौरसे उसे सुननेके लिये आप वहां पर उपस्थित हुए थे। हरिभद्रसूरिके समयके विषयमें आपका और हमारा मतभेद था। इस लिये इस विषयमें खास चर्चा करनेके लिये, उक्त परिषद्की समाप्तिके दिन आप उत्कंठापूर्वक हमारे स्थानपर भी आये थे; और बहुतसी बातचीत कर बडे प्रसन्न हुए थे। चलते समय आप हमसे आग्रह कर गये थे कि, जब हमारा उक्त निबन्ध छपकर प्रकाशित हो जाय तो तुरन्त उसकी एक प्रति आपके पास भेज दी जाय, कि, जिससे आप आपनी जैन न्यायके इतिहास विषयक उपर्युक्त पुस्तककी दूसरी आवृत्तिमें, जो वर्तमानमें छप रही है, हरिभद्र सूरिके समयवाला लेख ठीक संशोधित कर दिया जा सके। परन्तु खेद है कि, हमारे उस निबन्धके प्रकाशित होनेके पहले ही, गत २५ अप्रैलको आप इस क्षणभंगुर संसारको छोडकर स्वर्गमें जा बसे।

आपकी इस अकालमृत्युसे भारतवर्षके विद्याव्यसनी विद्वानोंमेंसे एक बडी भारी व्यक्ति अदृश्य हो गई और जैन साहित्यका एक प्रतिष्ठित और प्रामाणिक पण्डित लुप्त हो गया।

[२]

हमें इन पंक्तियोंके लिखते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि, इस पत्रके प्रथम अंकमें, जिन प्रो० सी. वी. राजवाडेका 'जैनधर्मका अध्ययन' शीर्षक लेख प्रकट हुआ है और जिनका संक्षिप्त परिचय हमने उसी अंकके ' सम्पादकीय विचार' वाले एक नोटमें दिया है, वे आज इस संसारमें नहीं है। गत ८ मईको नाशिकमें जहां, पर आरोग्यप्राप्तिके लिये पिछले कुछ महिनोंसे आप विश्रान्ति ले रहे थे, आपका शरीरपात हो गया। जैन साहित्य संशोधकके गतांकमें प्रकाशित उक्त लेख और हमारे नोटको आप देख भी नहीं पाये। यह किसको कल्पना थी कि इस प्रस्तुत अंकमें हमें अपने पाठकोंको आपका कोई विशिष्ट लेख भेंट करनेके बदले आपकी मृत्युके लिये दुःखोद्गार भेंट करने पडेंगे। कालस्य कुटिला गतिः।

राजवाडेजी बडे बुद्धिशाली और एक होनहार विद्वान थे। आपको ग्रेज्युएट हुए अभी पूरे १० वर्ष भी नहीं हुए थे। सन् १९१२ में यहां (पूना) के फर्ग्युसन कालेजमें अध्ययन समाप्त कर आपने बी. एस्. सी. की डिग्री प्राप्त की और १९१४ में पाली और अंग्रेजीकी एम्. ए. परीक्षा पास की। इसके बाद तुरन्त ही आप बरोडा कालेजमें पाली और अंग्रेजीके प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहां आपने अपने अध्यापन कार्यके सिवाय पालीसाहित्यके

प्रकाशनका कार्य भी शुरू किया। आपकी यह बड़ी उत्कट इच्छा थी कि समग्र पाली साहित्य देवनागरी लिपिमें छपाकर प्रकट किया जाय, ताकि जिससे भारतवासी,—जो आज पिछले डेढ हजार वर्षसे इस अनन्यतुल्य साहित्यका परिचय भूले हुए हैं—पुनः परिचय प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् गौतम बुद्धके अमूल्य उपदेशोंका आस्वादन कर सकें। इससे आपने सबसे पहले 'हत्थवनगल्लविहारवंस' नामकी एक छोटीसी पाली पुस्तिका छपाई और उसके बाद 'मज्झिमनिकाय'का एक भाग प्रकट किया। इसी बीचमें आपने विविध परिशिष्ट और उपयुक्त टिप्पणियोंके साथ 'दीघनिकाय' का समग्र अनुवाद भी अपनी मातृभाषा मराठीमें किया। इसका एक भाग बड़ौदा राज्यकी ओरसे प्रकाशित होनेवाली ग्रन्थमालामें प्रकट भी हो चुका है। आप शीघ्र ही, अपने सहाध्यायी और सहकारी प्रो० बापट (फर्ग्युसनकालेज, पूना) और प्रो० भागवत (सेंट झेवियर कालेज बम्बई)के संयुक्त परिश्रमसे प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ विसुद्धिमग्गकी एक सर्वोत्तम देवनागरी आवृत्ति प्रकट करनेकी तैयारी कर रहे थे।

आपका विद्याव्यासंग बड़ा उत्कट था। अंग्रेजीके आप आचार्य थे ही; साथमें आप जर्मन और फ्रेंच भाषाओंका भी अपेक्षित ज्ञान रखते थे। भारतीय भाषाओंमें संस्कृत, पाली, प्राकृत जैसी प्राचीन और शास्त्रीय भाषाओंका यथेष्ट अध्ययन कर आपने बंगाली, गुजराती, हिन्दी जैसी वर्तमान देशभाषाओंमें भी आवश्यकीय प्रवेश कर लिया था।

जबसे आपका हमारे साथ परिचय हुआ तबसे जैनसाहित्यका विशिष्ट अध्ययन करनेकी भी आपकी तीव्र लालसा हो गई थी। जैनसाहित्यसंशोधकके लिये आपने जैन और बौद्ध साहित्य विषयक तुलनात्मक लेखमालाके लिखनेका सोत्साह स्वीकार किया था। जैन ग्रन्थोंके प्राप्त करनेकी आप कितनी उत्कट आकांक्षा रखते थे इसका परिचय तो पाठकोंको हमने गतांकमें जो नोट दिया है उसीसे मिल सकेगा। भावनगरसे हमारे एक सज्जन (श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह) ने कुछ जैन ग्रन्थ जब आपके पास नाशिक भेजे, तब आप अधिक अस्वस्थ होनेके कारण आपके सम्बन्धियोंने उन ग्रन्थोंका आपसे जिकर न करके ज्यों के त्यों एक किनारे रख दिये। पीछेसे जब आपको उसकी खबर लगी तब आप बहुत अधीर हो उठे और बिना उन ग्रन्थोंके दर्शन किये और पन्ने उलट-पुलट किये आपको चैन नहीं पड़ा। उन ग्रन्थोंको देखते ही आपने हमको, वैसी अस्वस्थतामें भी एक पत्र लिखा और पुस्तकोंकी प्राप्तिके लिये प्रसन्नता प्रकट की। इसीका नाम सच्चा विद्याव्यासंग है।

क्रूर कालने इस प्रकार असमयहीमें आपको उठा ले जा कर भारतवर्षके एक तेजस्वी विद्वत्नक्षत्रको उदित होनेके पहले ही अस्तंगत कर दिया। आपकी अमर आत्माको अक्षय शांति मिले यही हमारी आपके लिये अन्तिम प्रार्थना है।

[३]

गत जुलाई मासकी अंतिमरात्रि भारतवर्षके इतिहासमें बड़ी दुःख और खेदजनक रात्रि मानी जायगी। क्यों कि उस कालरात्रिके दुःखोत्पादक अधम वातावरणने भारतके अद्वितीय प्रतापवान् और प्रकाशपूर्ण प्रदीपको सदाके लिये निर्वाणावस्थामें पहुंचा दिया। हम ये शब्द अपने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महोदयकी मृत्युको लक्ष्य कर कह रहे हैं। लोकमान्यका अधिक परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं क्यों कि भारतमें ऐसा कोई अभागा प्राणि नहीं है जो लोकमान्यको थोडा बहुत नहीं जानता हो। और बाकी यों आपका पूर्ण परिचय देनेकी शक्ति भी किसमें है। चाहे जितना भी लंबा परिचय लिखा जाय तो भी वह हमेशा अपूर्ण ही रहेगा।

आपमें जिन अनेकानेक उत्तमोत्तम शक्तियोंने आकर निवास किया था, उनमेंसे एक एक शक्ति ही मनुष्यको संसारमें पूज्य और मान्य बना सकती है, तो फिर ऐसी अनेक शक्तियोंके केन्द्रभूत बने हुए आपके महान् व्यक्तित्वकी पूज्यता और मान्यताका तो माप ही कैसे किया जाय। आप क्या नहीं थे? आप प्रकाण्ड प्रतिभाशाली थे, उत्कृष्ट सदाचारी थे, परम परोपकारी थे, अगाध

धैर्यवान् थे, आदर्श कर्तव्यवान् थे, असाधारण ज्ञानवान् थे, महान् देशभक्त थे, अनुपम लोकप्रिय थे, सर्वोत्तम राष्ट्रसूत्रधार थे, गंभीर राजनीतिज्ञ थे, संपूर्ण स्वार्थत्यागी थे, निष्काम कर्मयोगी थे, धुरंधर साहित्य सेवी थे, उत्तम लेखक और निपुण वक्ता थे; सब कुछ थे और संपूर्ण रीतिसे थे।

जैन साहित्य संशोधकके कार्य क्षेत्रकी विशिष्टताको लक्ष्य कर, हम यहां पर आपकी अनेकानेक शक्तियोंमेंसे केवळ उस एक ही शक्तिका संक्षिप्त उल्लेख करते हैं जिसके कारण आप संसारमें एक श्रेष्ठ विद्वान् माने गये। वह शक्ति आपकी अत्यंत सूक्ष्म संशोधक बुद्धि–गहन गवेषणा शक्ति थी। आपकी इस संशोधक बुद्धिका जर्मनी, इंग्लेंड और अमेरिकाके विद्वानों तकने गौरव किया है। विद्वानोंको आपकी इस शक्तिका प्रथम परिचय सन् १८९२ में मिला था। उस वर्ष लण्डन नगरमें होनेवाली 'प्राच्य विदोंकी आंतरराष्ट्रीय परिषद् (The International Congress of Orientalist) में वेदोंकी प्राचीनताके विषयमें आपने एक गहन गवेषणा और अत्यन्त अनुसन्धानपूर्ण मौलिक निबन्ध भेजा था जो फिर अगले वर्ष (सन १८९३) 'ओरायन (ORION)' के नामसे पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया था। इसपुस्तकमें आपने ज्योतिष शास्त्रके नियमानुसार नक्षत्रोंकी गति ऊपरसे यह बतलाया है कि, ऋग्वेदमें जो 'ओरायन = आग्राहायण नक्षत्र संबंधी ऋचायें मिलतीं हैं उनसे उनका रचना समय कमसे कम ई. स. से ४००० वर्ष पूर्व होना सिद्ध होता है। आपकी इस गवेषणाको पढ कर प्रो मेक्षमुलर, विटनी, वेबर, बुल्हर और ब्लुमफील्ड जैसे प्रख्यात संशोधक विद्वानोंने आपकी शोधक बुद्धिकी उत्तम प्रशंसा की थी। डॉ. ब्लुमफील्डने तो आपकी इस गवेषणाको "विज्ञान और संस्कृतके जगत्में एक हलचल मचादेनेवाली घटना" बतलाई थी और कहा था कि "निस्सन्देह, इस पुस्तकसे साहित्य संसारके आगामी वर्षमें खूब सनसनी फैल जायगी। इस वर्ष, इतिहासको तिलककी खोजके फलको अपनाने ही में सारा समय लगा देना होगा।" तिलक महाशयके इस सिद्धान्तकी, जर्मनीके विद्वान् डॉ. जेकोबीके सिद्धान्तसे अचिन्त्य समानता हो गई थी। क्यों कि डॉ. जेकोबी भी अपनी स्वतंत्र गवेषणाद्वारा वेदोंका रचना समय लगभग वही स्थिर कर सके जो तिलक महाशयने किया। इससे पुरा तत्त्वज्ञोंमें आज यह सिद्धान्त तिलक-जेकोबी (Tilak-Jacobi theory) के संयुक्त नामसे व्यवहृत होने लगा है।

ऐसा ही अनुसन्धानात्मक दूसरा ग्रन्थ आपका 'वेदोंमें आर्योंका उत्तर ध्रुवनिवास (The Arctic Home in the Vedas)' है। यह ग्रन्थ सन् १८९७ में जब आपको दूसरी वार कारागृहवास मिला था तब लिखा गया था। वेद, ब्राह्मण आदि संस्कृत ग्रंथ, पारसियोंके जिन्द–अवेस्ता ग्रन्थ और पश्चिमीय विद्वानोंके लिखे हुए भूगर्भविद्या सम्बन्धी नवीन ग्रन्थोंका सूक्ष्म अध्ययन और मनन कर आपने इस ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमें आपने वेद, ब्राह्मण, पुराण, अवेस्ता इत्यादि शास्त्रोंके अनेकानेक प्रमाण देकर, यह प्रतिपादित किया है कि वेदकालीन आर्यलोग उत्तर ध्रुवके प्रदेशमें निवास करते थे। कारागृहमें बैठे बैठे, इस ग्रन्थके लिखनेके लिये अपेक्षित साधनोंके अध्ययन-मननकी अनुमति सरकारने आपको प्रो. मेक्षमुलरके अनुरोधसे दी थी। पीछेसे उन्हीं प्रोफेसर महोदयके विशेष परिश्रम और प्रयत्नसे सरकारने आपको असमय ही में बन्धनमुक्त भी कर दिया था। कारागृहमेंसे निकले बाद आपने उक्त प्रो. को एक कृतज्ञतापूर्ण पत्र लिखा जिसमें अपने किये हुए इस नवीन अनुसन्धानका कितनाएक उपयुक्त सार भी लिख भेजा। इस सारको पढ कर प्रोफेसर महाशयने तिलक महोदयको लिखा था कि "कितनीएक वैदिक ऋचाओंका अर्थ आपके बतलाए मुताबिक ठीक हो सकता है; परंतु कदाचित् उनके आधारपरसे निकाला हुआ सिद्धान्त भूस्तर शास्त्रके सिद्धान्तके साथ मेल नहीं खायगा, ऐसी मुझे शंका है।" खेद है कि तिलक महाशयके इस ग्रन्थके प्रकाशित होनेके पहले ही–यह ग्रंथ सन् १९०३ में प्रकाशित हुआ–प्रो. मेक्षमुलरका देहान्त

होगया, जिससे उनके अधिकारयुक्त अभिप्रायसे आपका यह ग्रन्थ वञ्चित रहा। परंतु, दूसरे विद्वानोंने आपकी इस कृतिका भी खूब सत्कार किया। बोस्टन विश्वविद्यालयके अध्यक्ष डॉ. वारिनने इस पुस्तकके विषयमें कहा था कि "इन्डो-इरानी विद्वानोंने जितनी पुस्तकें इस विषयपर आजतक लिखी हैं उन सबमें यह पुस्तक अधिक निश्चयात्मक है। जो कोई स्वर्गीय मि. नील की 'देव रात्रि (The night of Gods)' का और इस पुस्तकका पारायण कर लेगा वह संभवतः फिर कभी यह न पूछेगा कि आर्योंका आदिम निवासस्थान कहां है।"

आपको जब सन् १९०८ में तीसरी बार जेलयात्राका हुक्म हुआ तब मंडालेके एकान्तवासमें बैठ कर आपने वह गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र लिखा, जो आज भारतके प्रत्येक धर्मजिज्ञासु जनके घरमें विराजमान हो रहा है तथा प्रत्येक विद्वान् और विद्यार्थीके लिये एक अत्यावश्यक पाठ्य ग्रंथ बन रहा है। इस ग्रन्थमें आपने अपने जीवनके समग्र विचार स्रोतोंको एकत्र कर शास्त्र रूप महासरोवरके रूपमें बद्ध कर दिया है। पूर्वीय और पाश्चात्य तत्त्वज्ञानकी सभी मुख्य मुख्य विचार-श्रेणियोंका गंभीर मन्थन कर आपने इस अमूल्य ग्रन्थरत्नको प्रकट किया है। आपके नामको अजरामर बनानेवाला केवल यही एक ग्रन्थरत्न पर्याप्त है।

आपके देह विलयसे संसारका एक श्रेष्ठ और प्रखर ज्योतिःपूर्ण ज्ञानस्वरूप महानक्षत्र अस्त हो गया।

चित्र-परिचय।

१—गत अंकमें जो दर्शनीय चित्र दिये गये हैं उनमें पहला रंगीन चित्र पावापुरीके जलमंदिरका है। पावापुरी पटना जिलेकी सुबे विहार तहसीलका एक छोटासा गांव है। जैन समाजकी मान्यता अनुसार श्रमण भगवान श्रीमहावीरदेवकी निर्वाण-भूमि यही पावापुरी है। इस लिये जैनियोंका यह एक परम पवित्र तीर्थस्थल है। इस गांवके पास एक कमलसरोवर नामका अच्छा तालाव है। इस तालावमें हमेशा असंख्य कमलपत्र खिले रहते हैं इसलिये इसका नाम भी कमलसरोवर पड गया है। इस सरोवरके मध्यमें एक भव्य मंदिर बना हुआ है, जिसमें संगमर्मरके बने हुए भगवान महावीर स्वामीके पूजनीय चरणोंकी स्थापना की हुई है। मंदिर बडा खुबसूरत और दर्शनीय है। भावुक मनुष्योंके हृदयमें वहां पर जानेसे बडी भक्ति उत्पन्न होती है और कुछ काल तक वहां पर बैठ कर ध्यान धरनेसे अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है।

इसी मंदिरका वह सुन्दर चित्र है। चित्रमें मंदिर, सरोवर, आसपासके किनारों पर लगे हुए वृक्ष, इत्यादि सभीका मनोहर दृश्य दिखाई दे रहा है। आरा निवासी उत्साही जैन युवक श्रीयुत कुमार देवेंद्र प्रसादजीने अपनी ओरसेही वह चित्र जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंको भेंट किया है। तदर्थ आप साधुवादके पात्र हैं।

२—गतांकका दूसरा हाफटोन चित्र, भारत प्रसिद्ध वीरभूमि चितोड नगरीके समीपमें रहा हुआ इतिहास प्रसिद्ध चितोडगढ (किल्ला) मेंके एक अति प्राचीन जैन कीर्तिस्तंभ (Jain Tower.) का है। चितोडके किलेमें दो कीर्तिस्तंभ हैं जिनमें एक जो अधिक ऊंचा और विशेष प्रसिद्ध है वह १५ वीं शताब्दीमें सुप्रसिद्ध राणा कुंभा द्वारा बनाया गया है और इससे उसका असली नाम 'कुंभमेरु' है। दूसरा स्तंभ यह जैन कीर्तिस्तंभ है। 'कुंभमेरु' की अपेक्षा यह जैन कीर्तिस्तंभ बहुत प्राचीन है और पुरातत्त्वज्ञोंने ११ वीं या १२ वीं शताब्दीमें इसके बननेका अनुमान किया है। यह किसी दिगम्बर जैनका बनाया हुआ है। क्योंकि इसमें जो जिनमूर्तिमां लगी हुई हैं वे दिगम्बर हैं।

यह स्तंभ ८० फीट ऊंचा है। समुद्रकी सतहसे इसकी ऊंचाई १९०० फीट और नीचेकी जमीनसे ६०० फीट है। यह किलेकी सबसे ऊंची भूमिपर बना हुआ होनेसे इसका शिखर किलेमेंके सभी मकानोंसे ऊंचा दिखाई देता है। इसके शिखरका जीर्णोद्धार हाल हीमें-दस बारह वर्ष पहले-सरकारने बडा खर्च करके करवाया है। सारे हिंदुस्थानमें जैनियोंका यही एक मात्र महत्त्वका पुरातन कीर्तिस्तंभ मौजूद है। इसका समग्र ऐतिहासिक वर्णन आगेके किसी अंकमें, एक स्वतंत्र लेख द्वारा पाठकोंको सुनायेंगे।

चित्रमें जो दो जुदा जुदा ब्लाक हैं उनमें दाहिनी तरफवाला ब्लाक स्तंभकी उस अवस्थाका दर्शन करा रहा है जब उसके शिखरका जीर्णोद्धार नहीं किया गया था। बाई तरफका दृश्य जीर्णोद्धारके अनन्तरका है।

३—इस अंकमें करहेडाके पार्श्वनाथ जैन मंदिरका चित्र दिया जाता है। यह गांव उदयपुर [मेवाड] राज्यमें आया हुआ है और चितोड-उदयपुर रेल्वे लाईनके बीचमें पडता है। गांव बिलकुल छोटासा मामुली है। गांवसे बहार, कुछ फासले पर यह मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर ५२ जिनालय है और बडा भव्य है। मन्दिरमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित है। पुराने लेखोंमें इस गांवका नाम 'करहेटक' ऐसा लिखा हुआ मिलता है। यह मन्दिर १४ वीं शताब्दीके लगभगका बना हुआ अनुमान किया जाता है। ऐतिहासिक वर्णन फिर कभी दिया जायगा।



महामहोपाध्याय डॉ. सतीशचंद्र विद्याभूषण, एम्. ए. पी. एच्. डी.।



स्वर्गीय श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक।

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ।

जैन साहित्य संशोधक

भाग १] गुजराती लेख विभाग [अंक २

सोमप्रभाचार्य विरचित कुमारपाल प्रतिबोध ।

(ग्रन्थ परिचय)

[वडोदराना विद्याविलासी नृपति श्रीसयाजीराव गायकवाड सरकार तरफथी, ' गायकवाडझ् ओरिएन्टल सीरीझ ' नामे ५-६ वर्षथी एक ग्रन्थमाला प्रकट थवा लागी छे जेनी अंदर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओमां लखाएला प्राचीन अने दुर्लभ्य ग्रन्थो प्रकाशित थाय छे. ए ग्रन्थमालाना मुल उत्पादक अने मुख्य संपादक स्वर्गस्थ विद्वान् श्रावक श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाले पाटण अने जेसलमेर (राजपूताना) ना जूना जैन पुस्तक भंडारोनुं सूक्ष्म निरीक्षण करी तेमांथी केटलाक उत्तम अने अलभ्य-दुर्लभ्य जैन ग्रंथो, उक्त सीरीझमां प्रकट करवा माटे खास चुंटी काढ्या हता. ए ग्रंथोमां सोमप्रभाचार्यरचित कुमारपाल प्रतिबोध नामनो पण एक प्राकृत भाषामय मोटो ग्रंथ छे जेनुं संपादन कार्य स्वर्गस्थ भाई दलाले घणा आग्रहपूर्वक मने सोंप्युं हतुं. ए ग्रंथ हवे छपाईने तैयार थयो छे. एनी प्रस्तावना जे मारा तरफथी लखवामां आवी छे, ते जैन साहित्य संशोधकना वाचकोने खास वांचवा लायक होवाथी, अत्र प्रकट करवामां आवे छे. मूल पुस्तकमां आ प्रस्तावनानो इंग्रेजी अनुवाद तथा संस्कृतसार आपवामां आव्यो छे.—मुनि जिनविजय ।]

स्तुमस्त्रिसन्ध्यं प्रभुहेमसूरेरनन्यतुल्यामुपदेशशक्तिम् ।
अतीन्द्रियज्ञानविवर्जितोऽपि यः क्षोणिभर्तुर्व्यधित प्रबोधम् ॥
सत्त्वानुकम्पा न महीभुजां स्यादित्येष क्लृप्तो वितथः प्रवादः ।
जिनेन्द्रधर्मं प्रतिपद्य येन, श्लाघ्यः स केषां न कुमारपालः ॥

—सोमप्रभाचार्य ।

गुजरातना चौलुक्यवंशना प्रसिद्ध नृपति कुमारपालने जैनाचार्य हेमचंद्रसूरिए समय समय उपर जे रीते जैनधर्मना सिद्धान्तोनो, विविधकथा—आख्यानो द्वारा बोध आप्यो हतो; अने ते बोधनुं श्रवण

करी जे रीते कुमारपाले जैनधर्मनो संपूर्ण स्वीकार कर्यो हतो तेनुं सामान्य वर्णन आ ग्रंथमां आपवामां आव्युं छे. ग्रंथकारे आ ग्रंथनुं नाम 'जिनधर्म-प्रतिबोध' एवुं राख्युं छे[1]; परंतु, ग्रन्थना अंते, पुष्पिकालेखमां 'कुमारपाल-प्रतिबोध' एवुं नाम लखेलुं मळवाथी, तेम ज ग्रंथगत विषयनो नाममात्रना निर्देशथी पण वाचकोने ख्याल आवी शके तेवा हेतुथीः में आ पुस्तक उपर ए ज नाम अंकित करवुं वधारे उचित धार्युं छे.

आ ग्रंथनी प्रस्तुत आवृत्ति, गुजरातनी प्राचीन राजधानी पाटण शहेर (जे वर्तमानमां वडोदरा—राज्यना कडीप्रांतमां एक साधारण तालुकानुं स्थान भोगवे छे) मांना जैन पुस्तक भांडागारमांथी मळी आवेला ताडपत्रात्मक पुस्तक उपरथी तैयार करवामां आवी छे. ए ताडपत्रना एकंदर २५५ पानां छे. प्रत्येक पानुं २ फीट ७ इंच लांबुं अने मात्र २ इंच पहोळुं छे. ए पानाना प्रत्येक पृष्ठ (एक बाजु) उपर त्रणथी पांच पंक्तिओ, काळी शाहीथी देवनागरी लिपिमां लखेली छे. दरेक पंक्तिमां लगभग १४० थी १५० जेटला अक्षरो आवेला छे. प्रत्येक पंक्ति त्रण विभागोमां व्हेंचाएली छे. अने दरेक विभागनी वच्चे एक एक ईंच जेटली खाली जग्या राखवामां आवी छे. ए खाली राखेली जग्यामां, आखा पुस्तकनां बधां पानांओ भेगां बांधी लेवा माटे एक छिद्र पाडी तेमां संलग्न दोरी परोवेली छे. आ पुस्तक संवत् १४५८ मां खंभातमां लखाएलुं छे. आ समय पछी लखाएलुं बीजुं कोई ताडपत्र जैन भंडारोमां मारा जोवामां आव्युं नथी. आ उपरथी हुं एम अनुमान करुं छुं के, गुजरातमां—अने साधारण रीते पश्चिम अने उत्तर हिंदुस्थानमां पण—ताडपत्र उपर पुस्तक लखवाना इतिहासमां आ पुस्तक सौथी अंतिम स्थान भोगवे छे. जैनोनां ऐतिहासिक साधनो उपरथी जणाय छे के ईसवीनी १४ मी शताब्दिना प्रारंभमां ज ताडपत्रो उपर ग्रंथो लखवानो वहीवट क्रमी थवा मांड्यो हतो अने ताडपत्रोनुं स्थान कागळोए लेवा मांड्युं हतुं. ते वखत दरम्यान पाटण, खंभात, जेसलमेर (राजपूताना) आदि—जैन पुस्तक भांडागारो माटे प्रसिद्ध थएला—जूना शहेरोमां ताडपत्र उपर लखेला जे विशाल पुस्तकसंग्रहो हता ते बधाना एकी साथे अने घाणी झडपथी कागळो उपर उताराओ थवा लाग्या हता. वर्तमानमां कागळ उपर लखेलां जूनामां जूनां ज पुस्तको उपलब्ध थाय छे, ते बधां ते ज वखतनां लखेलां छे. तेम ज ताडपत्र उपर अर्वाचीनमां अर्वाचीन जे पुस्तको छे ते पण तेज वखतनां छे. ते पछी लखेलां ताडपत्रो मळतां नथी. आ उपरथी एम मानी शकाय के ए प्रदेशोमां कागळनो प्रवेश ते ज वखते थएलो होवो जोईए. प्रकृत ताडपत्रना लेखन काळमां ताडपत्र उपर लखवानो प्रचार बहु ज विरल थई गएलो होवो जोईए. अने लहिआओ ताडपत्र उपर लखवाना अभ्यास अने शाहीनी बनावट विगेरेनी कळाने भली जवानी तैयारीमां होवा जोईए. कारण के प्रकृत ताडपत्र उपरनुं लखाण जूनां ताडपत्रो करतां घणा ज हलका प्रकारनुं दृष्टिगोचर थाय छे. १२ मा १३ मा सैकानां ताडपत्रोनी लिपि जेटली सुंदर अने शाही जेटली उत्तम होय छे तेटली आमां देखाती नथी. आ ताडपत्रनी शाही घणी ज फीकी अने अनेक स्थळेथी तो ते अत्यार आगमच खरी पडी—भुंसाई गई छे. कोई कोई पृष्ठमां तो पंकितओनी पंक्तिओ तेवी रीते अदृश्य थई गई छे अने तेना लीधे लखाण वांचवुं पण बहु कठण थई पडे छे. त्यारे आना करतां २००–३०० वर्ष जूनां ताडपत्रोनी शाही जोईए छीए तो आजे पण नवीनी तेवी चळकती अने काळी देखाई आवे छे. जूनां ताडपत्रोनी जेटली लेखन-शुद्धि पण आ पुस्तकमां जळवाएली जणाती नथी. आनुं कारण ए छे के प्राचीनकाळमां लहिआओ साधारण रीते संस्कृत—प्राकृत भाषानुं सामान्य ज्ञान धरावनारा थता हता. तेम ज घणाक विद्वानो ते वखते जाते ज पुस्तको लखता हता. तेथी ते वखतनां पुस्तकोमां साधारण रीते अशुद्धिओ बहु अल्प प्रमाणमां मळी आवे छे. परंतु प्रकृत ताडपत्रना लेखनसमयमां, ताडपत्रो उपरथी कागळो उपर ग्रंथो उतारावनानुं काम घणा विशाळ प्रमाणमां शरू थएलुं होवाथी, तेटला कामने पहोंची वळे एटला, भाषाज्ञानसंपन्न लहिआओना अभावने लीधे, मात्र अक्षराकृति सम-

१ जिणधम्मपडिबोहे समत्थिओ पढमपत्थावो । पृष्ठ ११५. —जिनधर्मप्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गुर्जरेन्द्र पुरे । पृ. ४१८

जया पुरतुं ज्ञान धरावनारा अने मक्षिकास्थाने मक्षिका चितरनारा लहिआओ पासेथी ए कार्य करावबामां आवतुं हतुं. तेथी जूना ग्रंथोनी नकलो करतां ए वखते लहिआओना हाथे घणी अशुद्धिओ ते ग्रंथोमां दाखल थई गई हती. आ ज कारणने लईने कुमारपाल प्रतिबोधना प्रकृत आदर्शमां पण लेखन-अशुद्धिओ घणा मोटा प्रमाणमां प्रविष्ट थई गएली जोवाय छे. आ पुस्तकनी नकल करनार कायस्थ पेतानुं भाषाज्ञान केवुं हशे तेनुं अनुमान, पुस्तकना अंतमां तेणे जे संवत् विगेरेना उल्लेख वाळो पुष्पिकालेख लख्यो छे, ते उपरथी थई शके तेम छे.

उल्लिखित ताडपत्र सिवाय एक बीजुं पण ताडपत्र प्रस्तुत ग्रंथनुं मने मळ्युं छे, जे पाटणना संघवीना पाडाना नामे ओळखाता पुस्तकभंडारनी मालिकीनुं छे. ए ताडपत्र, उक्त ताडपत्र करतां खास जूनुं अने विशेष शुद्धरीते लखाएलुं छे. परंतु ए घणु ज अपूर्ण--खंडित छे. एमां ५१ थी ते ३०५ नंबर सुधीनां पानां छे. आ ग्रंथना चतुर्थ प्रस्तावमां देशावकाशिक व्रतोपरि जे पवनंजयनी कथा आपेली छे तेना मध्यभागथी ज ए ताडपत्र खंडित थई गयुं छे. एनी साईझ २'७"+२" लांबी-पहोळी छे. प्रत्येक पृष्ठमां ३ थी ५ लाइनो आवेली छे, अने दरेक लाइनमां १०५ थी १२० सुधी अक्षरो लखेला छे.

आवी रीते प्रस्तुत पुस्तकनो अखंड एवो एक ज उपर्युक्त आदर्श मने मळवाथी (अने ज्यां सुधी हुं जाणी शक्यो छुं, बीजो संपूर्ण प्राचीन आदर्श अन्यत्र क्यांय छे पण नहि) अने ते पण विशेष अशुद्ध होवाथी, आ ग्रंथना संशोधननुं काम मारा माटे घणुं ज कठण थई पडयुं हतुं.

सोमप्रभाचार्य

ग्रंथकार सोमप्रभाचार्य एक सुप्रसिद्ध अने सुज्ञात जैन विद्वान् छे. तेमणे प्रस्तुत ग्रंथ विक्रम संवत् १२४१ मां, एटले कुमारपाल राजाना मृत्यु पछी मात्र ११ वर्षे बनाव्यो हतो. आ उपरथी तेओ राजा कुमारपाल अने आचार्य हेमचंद्रना समकालीन हता ए स्वतः सिद्ध छे. तेमणे आ ग्रंथ, नेमिनागना पुत्र श्रेष्ठी अभयकुमारना हरिश्चंद्रादि पुत्र अने श्रीदेवी आदि पुत्रिओनी प्रीत्यर्थे, प्राग्वाटजातीय कविचक्रवर्ती श्री-श्रीपालना पुत्र कवि सिद्धपालनी वसति (जैन मंदिर या जैन उपाश्रय) मां रहीने रच्यो छे; तथा खुद हेमचंद्राचार्यना महेन्द्रमुनि[1], वर्धमान[2] अने गुणचंद्र[3] नामे विद्वान् शिष्योए तेने अथथी ते इति सुधी सांभळ्यो छे. अभयकुमार श्रेष्ठी, आ ज ग्रंथमां जणाव्या प्रमाणे, कुमारपाल राजाए अनाथ अने असमर्थ जनोना भरण पोषण माटे खोलेला सत्रागार आदि धर्मादाय खाताओनो उपरी हतो. (जुओ पृष्ठ २१९-२०). कविचक्रवर्ती श्री-श्रीपाल गुजरातनो एक सर्वश्रेष्ठ कवि अने सिद्धराज जयसिंहनो घणो मानीतो तेम ज स्वीकृत भ्राता हतो. तेनो पुत्र सिद्धपाल पण उत्तम कोटिनो कवि होई कुमारपाल राजानो प्रीतिपात्र अने अग्रेय सुहृद् हतो. आ कविकुलना संबंधमां में अन्यत्र सविस्तर लख्युं छे, (—जुओ द्रौपदी स्वयंवर नामे सिद्धपाल पुत्र कवि विजयपाल रचित नाटकनी मारी प्रस्तावना.) तेथी अहीं पुनरावृत्ति करतो नथी. श्रीपाल कवि, सोमप्रभाचार्यना पूर्वाचार्य देवसूरिनो चरणोपासक हतो तेथी ए कवि-कुटुंबनो, तेमना शिष्यसमुदाय उपर सविशेष अनुराग होय तथा ते साधु-समूहनो पण ए कुटुम्ब उपर विशेष आदरभाव होय ते स्वाभाविक छे. सोमप्रभाचार्यना गुरुओ तथा अन्य साधुओ अणहिलपुरमां घणुं करीने ए कविकुटुंबना मकानोमां ज निवास करता हता. सोमप्रभाचार्ये पोतानो बीजो बृहद्ग्रंथ नामे सुमतिनाथचरित्र पण ए कुटुंबनी वसतिमां ज वसीने बनाव्यो हतो.

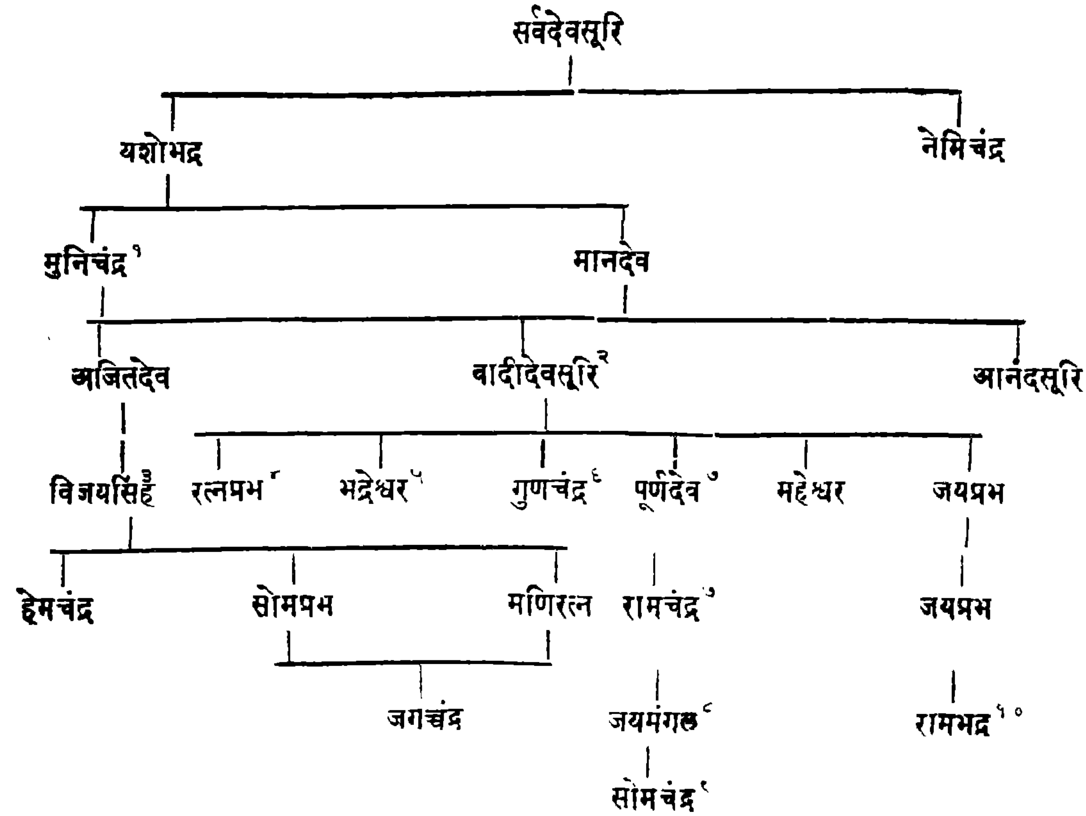
---

१ आ महेन्द्रमुनिए हेमचंद्राचार्यरचित अनेकार्थनामसंग्रह नामक कोष उपर अनेकार्थकैरवाकरकौमुदी नामे टीका लखी छे.-जुओ, पीटर्सन रिपोर्ट १, पृ. ५१.

२ वर्धमानगणिए कुमारविहारप्रशस्ति बनावी छे.-जुओ, पीटर्सन रिपोर्ट ३, पृ. ३१६.

३ गुणचन्द्रगणिए, प्रबन्धशतकर्तृ महाकवि रामचन्द्रने नाट्यदर्पण नामक ग्रन्थ लखवामां सहायता करी हती.

कुमारपाल प्रतिबोधनी प्रशस्ति तथा बीजा ग्रंथोक्त उल्लेखो उपरथी सोमप्रभाचार्यनी गुरुपरंपरादिनो वंशवृक्ष नीचे प्रमाणे थाय छेः--



---

१ उपदेशपद, अनेकान्तजयपताका, ललितविस्तरा, योगबिंदु आदि हरिभद्राचार्यरचित ग्रंथो उपर टीका-टिप्पणादिना प्रसिद्ध लेखक। २ स्याद्वादरत्नाकर नामक महान् जैनतर्कग्रन्थना प्रणेता.

३. धर्मसागरगणिए पोतानी पट्टावलीमां आ विजयसिंहने, बालचंद्ररचित विवेकमञ्जरीवृत्तिना संशोधक (' श्रीविजयसिंहसूरिः—विवेकमञ्जरीशुद्धिकृत् । ') लख्या छे परंतु ते भूल छे. ते वृत्तिना संशोधक आ विजयसिंह नथी, परंतु नागेंद्र गच्छना विजयसेनसूरि छे. जुओ पीटर्सननो ३ जो रीपोर्ट पृ. १०३. आ विजयसिंहनो एक शिलालेख आरासणना जैनमंदिरमांथी मळी आव्यो छे, जे संवत् १२०६ नी सालनो छे. जुओ मारुं प्राचीन जैनलेखसंग्रह नामनुं पुस्तक, लेख नंबर २८९.

४. रत्नप्रभे रत्नाकरावतारिका नामे सुज्ञात तर्कग्रन्थ बनाव्यो छे. उपदेशमालावृत्ति आदि बीजा पण एमना केटलाक प्रसिद्ध ग्रंथो उपलब्ध छे.

५. भद्रेश्वरे वादी देवसूरिने स्याद्वादरत्नाकर ग्रंथ रचवामां मुख्य सहायता करी हती. तथा पोताना गुरुना अवसान पछी तेमनी गादीना मुख्य आचार्य ए पोतेज नीमाया हता.

६. गुणचंद्रे हैमविभ्रमनामे व्याकरणविषयक एक लघु ग्रंथ बनाव्यो छे.

७. जालोरना एक शिलालेखमां आ बन्ने गुरु-शिष्यनो उल्लेख करेलो छे.

८. सुंधाटेकरी (मारवाड) उपर आवेला चाचिगदेवनी प्रशस्तिना कर्ता.

९ वृत्तरत्नाकरनी वृत्तिकरनार. १० प्रबुद्धरौहिणेय नाटकना रचनार,

आ वंशवृक्षमां आपेली व्यक्तिओ जैनसाहित्य अने जैनइतिहासमां सुप्रसिद्ध छे. ए साधुओमांना केटलाक तो घणा मोटा ग्रंथकारो छे अने तेमनी बनावेली अनेक कृतिओ आजे पण जैनसाहित्यनी शोभा वधारी रही छे. आ उपरथी प्रस्तुत ग्रंथकारनो समुदाय केटलो बधो विद्वान्, प्रतिष्ठित, अने साहित्योपासक हतो तेनो ख्याल आवी शके छे. सोमप्रभाचार्यना एक गुरुभ्राता नामे हेमचंद्रे नाभेयनेमि नामनुं द्विसंधान काव्य बनाव्युं छे जेनुं संशोधन खुद कविचक्रवर्ती श्रीपाले कर्युं हतुं.[1] सोमप्रभाचार्यनी गादी उपर सुप्रसिद्ध जगच्चंद्रसूरि आव्या हता जेओ तपागच्छना नामे ओळखाता सुविस्तृत साधुसमुदायना मूळ पुरुष मनाय छे. पट्टावलिओ प्रमाणे, सोमप्रभाचार्यनो महावीरनी पट्टपरंपरामां ४३ मो नंबर छे.

सोमप्रभाचार्यना विद्यमान ग्रंथो

कुमारपाल प्रतिबोध सिवाय सोमप्रभाचार्यना बीजा त्रण ग्रंथो उपलब्ध थाय छे. जेमां एक तो सुमतिनाथचरित्र छे. ए ग्रंथमां जैनधर्मना पांचमा तिर्थंकर सुमतिनाथनुं चरित्र वर्णवामां आव्युं छे. ते चरित्र पण कुमारपाल प्रतिबोधनी माफक मुख्य करीने प्राकृत भाषामां ज रचेलुं छे; अने तेमां पण जैनधर्मना सिद्धान्तोनो बोध आपती पुराणकथाओ कल्पित छे. तेनी श्लोकसंख्या लगभग साडा नव हजार उपर छे. पाटणना जैन भंडारोमां ए चरित्रना हस्तलेखो मारा जोवामां आव्या छे. बीजो ग्रंथ सूक्तिमुक्तावली नामे प्रसिद्ध १०० पद्यवाळो एक प्रकीर्ण प्रबंध छे. ए प्रबंधनुं प्रथम पद्य 'सिन्दुरप्रकर' एवा वाक्यथी शरु थतुं

---

१ आ काव्यनी अंतनी प्रशस्तिना केटलाक श्लोको नीचे प्रमाणे छे:--

भक्तः श्रीमुनिचंद्रसूरिसुगुरोः श्रीमानदेवस्य च श्रीमान् सोऽजितदेवसूरिरभवत् षट्तर्कदुग्धाम्बुधिः ।
सद्यः संस्कृतगद्यपद्यलहरीपूरेण यस्य प्रभाऽऽक्षिप्ता वादिपरंपरा तृणतुलां धत्ते स्म दूरीकृता ॥
श्रीमानभूद् विजयसूरिरमुष्य शिष्यो येन × × × स्मरस्य शरान् गृहीत्वा ।
क्लृप्तं चतुर्भिरनघं शरयन्त्रमग्रे विश्वं तदर्कविशिखेन वशं च निन्ये ॥
श्रीहेमचन्द्रसूरिर्बभूव शिष्यस्तथापरस्तस्य । भवहृतये तेन कृतो द्विसंधानप्रबन्धोऽयम् ॥
एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः । श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रबन्धम् ॥

२ ए चरित्रनी अंतनी प्रशस्ति पण घणा अंशे कुमारपाल-प्रतिबोधना जेवी ज छे, अने ते नीचे प्रमाणे छे:—

चन्द्रार्कौ गुरुवृद्धनभसः कर्णावतंसौ क्षितेर्धैर्यौ धर्मरथस्य सर्वजगतस्तत्त्वावलोके दृशौ ।
निर्वाणावसथस्य तोरणमहास्तम्भावभूतामुभावेकः श्रीमुनिचन्द्रसूरिरपरः श्रीमानदेवप्रभुः ॥
शिष्यस्तयोरजितदेव इति प्रसिद्धः सूरिः समग्रगुणरत्ननिधिर्बभूव ।
प्रीतिं यदङ्घ्रिकमले मुनिभृङ्गराजिरास्वादितश्रुतरसा तरसा बबन्ध ॥
श्रीदेवसूरिप्रमुखा बभूवुरन्येऽपि तत्पादपयोजहंसाः । येषामबाधाग्चितस्थितीनां नालीकमैत्रीमुदमातनान ॥
विशारदशिरोमणे रजितदेवसूरिप्रभोर्विनयतिलकोऽभवद् विजयसिंहसूरिर्गुरुः ।
जगत्त्रयविजेतृभिर्विमलशीलवर्मावृतं व्यभेदि न कदाचन स्मरशरैर्यदीयं मनः ॥
गुरोस्तस्य पदाम्भोजप्रसादान्मन्दधीरपि श्रीमान् सोमप्रभाचार्यश्चरित्रं सुमतेर्व्यधात् ॥
प्राग्वाटान्वयसागरेन्दुरसमप्रज्ञः कृतज्ञः क्षमी वाग्मी सूक्तिसुधानिधानमजनि श्रीपालनामा पुमान् ।
यं लोकोत्तरकाव्यरञ्जितमतिः साहित्यविद्यारतिः श्रीसिद्धाधिपतिः कवीन्द्र इति च भ्रातेति च व्याहरत् ॥
सूनुस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमतामुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत् ।
यं व्यालोक्य परोपकारकरुणासौजन्यसत्यक्षमादाक्षिण्यैः कलितं कलौ कृतयुगारम्भो जनो मन्यते ॥
तस्य पौषधशालायां पुरेऽणहिलपाटके । निष्प्रत्यूहमिदं प्रोक्तं परार्थान्तं (?) ...... ॥
अनाभोगात् किञ्चित् किमपि मतिवैकल्यवशतः किमप्यौत्सुक्येन स्मृतिविरहदोषेण किमपि ।
मयोत्सूत्रं शास्त्रे यदिह किमपि प्रोक्तमखिलं क्षमन्तां धीमन्तस्तदसमदयापूर्णहृदयाः ॥

होवाथी ते ' सिंदुरप्रकर ' ना नामे; तथा सोमप्रभाचार्य रचित होई तेमां एकंदर १०० पद्योनो संग्रह होवाथी ' सोमशतक ' ना नामे पण घणीक वखते लखाय—ओळखाय छे. ए प्रबंध जैनसमाजमां घणोज प्रसिद्ध छे अने अनेक स्त्रीपुरुषोना मुखे कंठस्थ होय छे. ए प्रबंध भर्तृहरिना नीतिशतकनी शैलिमां लखाएलो छे; अने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील, सौजन्य आदि विषयो उपर संक्षिप्त परंतु हृदयंगमरीते तेमां विवेचन करेलुं छे. एनी रचना बहुज सरल, सरस अने सुबोध छे. एमांनां केटलाक पद्यो आ प्रस्तुत ग्रंथमां-कुमारपाल प्रतिबोधमां पण ग्रथित थएलां नजरे पडे छे.[1]

त्रीजो ग्रंथ ' शतार्थ काव्य ' नामे छे. ए ग्रंथ सोमप्रभाचार्यना संस्कृत भाषाज्ञानविषयक अनुत्तर पांडित्यने प्रकट करे. छे. ए ग्रंथ मात्र एक वसंततिलका छंद रूपे छे[2], जेना जुदा जुदा सो अर्थो करवामां आव्या छे. आ कृतिना लीधे विद्वानो तरफथी तेमने शतार्थिकनु खास पांडित्यसूचक उपनाम प्राप्त थयुं हतुं अने तेथी पाछळना घणाक ग्रंथकारो तेमने ए उपनाम साथे ज उल्लेखे छे.[3] ए एक वृत्तात्मक ग्रंथना भिन्न भिन्न सो अर्थो तेमणे जाते ज टीका करीने बताव्या छे. टीकाना प्रारंभमां पांच श्लोको लखी स्वाविवक्षित सोए अर्थोनी अनुक्रमणिका आपी छे. प्रारंभमां जैनधर्मना २४ तीर्थंकरोना अर्थो लखी; वच्चे ब्रह्मा, नारद, विष्णु आदि वैदिक देवो विगेरेना अर्थो पण आलेख्या छे. अने छेवटे पोताना समकालीन एवा, वादी देवसूरि अने हेमचंद्राचार्य जेवा जैनधर्मना महान् धर्मगुरुओना; जयसिंह देव, कुमारपाल, अजयदेव अने मूलराज जेवा गुजरातना क्रमिक ४ चौलुक्य राजाओना; कवि सिद्धपाल जेवा सर्वश्रेष्ठ नागरिकना; अने अजितदेव तथा विजयसिंह नामे पोताना बंने गुरुओना अर्थो पण अवतार्या छे. सर्वांते स्वकीय अर्थ पण बेसार्यो छे अने समाप्तिमां कोई शिष्यना मुखेथी आत्मप्रशंसापर एवी पांच पद्योवाळी संक्षिप्त प्रशस्ति पण कहेवरावी छे.

आ प्रशस्तिमां जणाव्या प्रमाणे सोमप्रभ गृहस्थावस्थामां प्राग्वाट (पोरवाड) जातिना वैश्य हता. तेमना पितानुं नाम सर्वदेव, अने पितामहनुं नाम जिनदेव हतुं. जिनदेव कोईक राजानो मंत्री हतो अने ते पोताना समयमां बहु प्रतिष्ठित पुरुष हतो. सोमप्रभे कुमारावस्थामां ज जैनदीक्षा लई लीधी हती, अने तीव्रबुद्धिना प्रभावे समस्त शास्त्रोनो तलस्पर्शी अभ्यास करी आचार्यपदवी प्राप्त करी हती. तेमनी तर्कशास्त्रमां अद्भुत पटुता हती, काव्यविषयमां घणी त्वरितता हती अने व्याख्यान आपवामां बहु कुशलता हती.

कुमारपालप्रतिबोध साथे उक्तानुसार सोमप्रभाचार्यनी वर्तमानमां ४ कृतिओ उपलब्ध थाय छे. आ कृतिओमां कालानुक्रमथी प्रथम कृति तेमनी सुमतिनाथ चरित्र अने बीजी सूक्तिमुक्तावली होय तेम जणाय छे. बृहट्टिप्पनिका नामे एक प्राचीन जैनग्रंथसूचिमां सुमतिनाथचरित्रनी रचना कुमारपालना राज्यमां थई हती एवो उल्लेख करेलो छे. शतार्थवृत्तनी वृत्तिना अंते पण ते चरित्रनुं नाम आवेलुं होवाथी, ते वृत्तिनी पहेलां एनी रचना थई हती एम तो स्वतःसिद्ध थाय छे. शतार्थवृत्तनी रचना ई० स० ११७७ थी ११७९ नी वच्चे थई होय, एम मानी शकाय. कारणके एनी अंदर अजयदेवनी पछी गुजरातनी गादिए आवेला मूळराजनो उल्लेख छे. आ मूळराज इतिहासमां बाळ मूळराजना नामे प्रसिद्ध छे. अने तेणे मात्र बेज वर्ष—ई. स. ११७७ थी ११७९ सुधी—राज्य कर्युं हतुं. कुमारपाल प्रतिबोध तेमनी छेल्ली कृति होय तेम लागे छे.

१ जुओ—पृष्ठ १४५, १९१. ४२२ इत्यादि उपर आपेला संस्कृत पद्यो.

२ मूळ वृत्त आ प्रमाणे छे:—

कल्याणसार सवितानहरेक्षमोह । कान्तारवारणसमानजयाद्यदेव ।
धर्मार्थकामदमहोदयवीरधीर । सोमप्रभावपरमागमसिद्धसूरे ॥

३ ' सोमप्रभो मुनिपतिर्विदितः शतार्थी ।' मुनिसुंदरसूरिकृत गुर्वावली ।
' ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट् ।' —गुणरत्नसूरिकृत क्रियारत्नसमुच्चय ।

आ कृतिओ सिवाय बीजी पण तेमनी कोई कृति होय तेम अनुमान थाय छे. कारण के शतार्थ वृत्तनी कृत्तिमां कुमारपाल राजा संबंधी अर्थ करतां "यदवोचाम" करीने बे पद्यो टांक्यां छे जे उपलब्ध कृतिओमां मळी आवतां नथी.*

कुमारपाल प्रतिबोधनी रचना ग्रंथकारे मुख्यकरीने प्राकृतभाषामां करी छे. छेवटना प्रस्तावमां केटलीक कथाओ संस्कृतमां आपी छे. तथा थोडोक भाग अपभ्रंश भाषामां पण गुंथेलो छे. आ उपरथी लेखक प्राकृत, संस्कृत अने अपभ्रंश एम त्रणे भाषाओना पंडित हता ते स्पष्ट जणाई आवे छे. ग्रंथनी रचना बहु ज सरल अने भाषा तद्दन सादी—आडंबर विनानी छे. कर्ता जोके, जेम उपर बतावबामां आव्युं छे, एक उत्तम कोटिना विद्वान अने ग्रंथकार छे. परंतु तेमनी विद्वत्तानी कोई विशिष्टता आपणने आ ग्रंथमां मळी आवती नथी.

कुमारपाल प्रबंधना कर्ता जिनमंडनगणिए पोताना प्रबंधमां अनेक स्थळे, आ ग्रंथमांना ऐतिहासिक भागनां अवतरणो टांक्यां छे.[1] अने जयसिंह सूरिए पोताना संस्कृत कुमारपालचरित्रमां आ ग्रंथनी रचना शैलीनुं आबाद अनुकरण कर्युं छे. ते उपरथी जणाई आवे छे के पाछळना ग्रंथकारो प्रस्तुत ग्रंथथी सारी पेठे अवगत होवा जाईए.

कुमारपालप्रतिबोधिनी ऐतिहासिक उपयोगिता

आ ग्रंथनुं महत् परिमाण अने रचना-समय तरफ दृष्टि करतां,इतिहास रसिक जिज्ञासुओने, आ ग्रंथमांथी कुमारपाल अने हेमचंद्राचार्यना जीवनवृत्तान्त संबंधी अज्ञात अने अन्यत्र अनुपलब्ध एवी नवी नवी बाबतो जाणवानी विशेष जिज्ञासा रहे, ए स्वाभाविक छे. अने हुं पण प्रथम एवी ज लालसाथी आ ग्रंथना संपादन-भारने वहन करवा सानंद तत्पर थयो हतो. परंतु ग्रंथनुं साद्यंत अवलोकन कर्या पछी मारे उदास मने जणाववुं पडे छे के तेवी कोई नवीन बाबत, आ आटला मोटा ग्रंथमांथी मळी आवी नथी, एटलुं ज नहीं परंतु प्रभावकचरित्रांतर्गत हेमचंद्रप्रबंध, प्रबंधचिन्तामणिगत कुमारपालप्रबंधादि जेवा, प्रस्तुत ग्रंथ करतां संक्षिप्त अने कालकृत अर्वाचीन ग्रंथोमां जेटली हकीकत, उक्त बंने व्यक्तिओना संबंधमां मळी आवे छे; ते करतां पण घणी ज अल्प हकीकत आ ग्रंथमां आलेखेली छे. आथी ऐतिहासिक दृष्टिए तो आपणने आ ग्रंथनी कोई पण प्रकारनी विशेष उपयोगिता जणाती नथी. एम जो कहीए तो ते अयुक्त नथी. अलबत प्राकृत भाषाना साहित्य-प्रकाशननी अपेक्षाए आनी उपयोगिता अवश्य स्वीकारवा लायक छे. कारण के एक तो प्राकृतसाहित्य अत्यारसुधीमां घणा ज अल्प प्रमाणमां प्रकाशित थयुं छे, अने बीजुं हवे मुंबई युनिवर्सिटीए पोताना पठनक्रममां पालीभाषानी माफक प्राकृतभाषाने पण खास स्थान आपेलुं होवाथी ए भाषाना साहित्यना प्रकटीकरणनी घणी ज आवश्यकता प्रतीत थई रही छे. तेवा प्रसंगे प्राकृत भाषाना आ एक महान् ग्रंथनुं प्रकाशन ए भाषाना अभ्यासिओने अवश्य आवकार दायक थई पडशे एमां संशय नथी.

*** ए बे पद्यो नीचे प्रमाणे छेः—**

चैलुक्येन्द्रेण चैत्ये कुचकलशनिकैर्बन्धुराः सिन्धुरश्रीस्कन्धारूढा विधातुं जिनजननमहे सूतिकर्मप्रपञ्चम् ।
षट्पञ्चाशत्समीरप्रमुखनिजानिजाचारचातुर्यवर्यास्फुर्जन्माणिक्यहेमाभरणकवचिताश्चक्रिरे दिक्कुमार्यः ॥
द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपा नृपगृहात् चैत्ये द्विपाध्यासिताः कल्याणाभरणाभिरामवपुषः कल्याणकोत्सवे ।
स्नात्रं कर्तुममर्त्यशैलशिरसि स्वर्गादिवाभ्याययुस्तन्मध्ये च कुमारपालनृपतिर्भेजेऽच्युतेन्द्रश्रियम् ॥

१ जुओ मुनि श्रीचतुरविजयजी संपादित कुमारपालप्रबंध—पृ. १०, १७, ५८, ८०, ९०, ९४, ९५, ९७, १०६, १०७, १११ इत्यादि.

उक्तरीते आ ग्रंथमां ऐतिहासिक वृत्तान्त विशेष न मळवाथी अलबत आपणने असंतोष थाय ए स्वाभाविक छे, परंतु ते विषयमां ग्रंथकार कोई पण प्रकारना उपालंभने पात्र नथी. कारण के ग्रंथना प्रारंभमां ज ते पोते हेमचंद्र अने कुमारपालनी समग्र जीवन-वार्ता लखवाना उद्देश्यनो स्पष्ट अस्वीकार करे छे. आ ग्रंथ लखवामां लेखकनो उद्देश्य, कुमारपालादिनो इतिहास लखवानो नथी. परंतु ते व्यक्तिओने लक्षीने धर्मोपदेश आपतो एक कथा-ग्रंथ गुंथवानो छे. तेओ लखे छे के—"यद्यपि कुमारपाल अने हेमचंद्राचार्यनुं जीवन चरित्र बीजी रीतिए पण घणुंए मनोहर छे. तो पण हुं आ ग्रंथमां जैन धर्मना प्रतिबोध संबंधे ज कांईक कहेवा ईच्छुं छुं. शुं अनेक प्रकारनी खाद्य वस्तुओथी भरपूर रसवतीमांथी पोतानी इच्छानुसार मात्र कोई एक वस्तुनुं ज भक्षण करनार पुरुष कोईनी निन्दाने पात्र थई शके छे ?"‡ अस्तु.

कुमारपाल प्रतिबोधनो ऐतिहासिक सार

आ संपूर्ण ग्रंथमां जेटलो भाग इतिहास साथे संबंध धरावे छे ते वाचकोना सौकर्यार्थ "कुमारपाल प्रतिबोध-संक्षेप" एवा शिरोलेख नीचे परिशिष्ट रूपे जुदो आप्यो छे. ए परिशिष्टात्मक ग्रंथभाग वांची जवाथी आखा ग्रंथनो संकलित सार स्पष्टरीते समजाई जशे.

संक्षिप्त ऐतिहासिकसार आ प्रमाणे छेः--

अणहिलपुर पाटणमां, प्रथम चौलुक्यकुलमृगांक एवो मूल नामे राजा थयो. तेना पछी चामुंडराज अने तेना पछी 'जगज्झंपण' एवुं उपनाम प्राप्त करनार वल्लभराज थयो. तेना पछी अनुक्रमे दुर्लभराज, भीमराज, कर्णदेव अने जयसिंहदेव राजा थयो. पूर्वे थई गएला भीमदेवनो क्षेमराज करीने एक पुत्र हतो, तेनो पुत्र देवप्रसाद, तेनो पुत्र त्रिभुवनपाल अने तेनो पुत्र कुमारपाल थयो. ए कुमारपाल बहु शूर, वीर, धीर, त्यागी, दक्ष अने परोपकारादि गुणवाळो हतो. तेथी जयसिंहदेवनुं मृत्यु थया पछी प्रधानपुरुषोए परस्पर विचार करीने तेनी गादी उपर कुमारपालने बेसार्यो. तेणे चारे दिशाओमां चतुरंग सैन्य साथे दिग्विजय करी प्रजाने संतोषकारक थाय तेवी रीते राज्यनुं पालन करवा मांडयुं.

एक दिवसे तेणे केटलाक विद्वान् अने वृद्ध ब्राह्मणोने पोतानी पासे बोलावीने कह्युं के-'जेना आचरणथी मनुष्य जन्मनुं सार्थक थाय तेवो सत्य धर्म मार्ग बतावो.' ब्राह्मणोए वेदादिशास्त्र विहित यज्ञयाग स्वरूप धर्म बताव्यो. परंतु ते धर्ममां पशु-प्राणी आदिनो वध विहित होवाथी तेवो हिंसामय धर्म राजाने रुच्यो नहीं. ते मनमां विचार करवा लाग्यो के-'जो प्राणिओनो वध करवाथी पण मनुष्यने धर्म प्राप्ति थती होय तो पछी अधर्म कयुं कर्तव्य करवाथी थाय छे ? शुं ब्राह्मणो धर्मनुं सत्य स्वरूपज जाणता नथी ? अथवा तो जाणता छता पण मारी विप्रतारणा करे छे !' आवी रीते आ संबंधमां ते विशेष चिंतन करवा लाग्यो अने तेना योगे रात्रिना समये ते निद्रा पण पूरी प्राप्त करी शकतो नहीं. एक समये बाहड नामना अमात्ये आवीने राजाने नमन कर्युं अने कह्युं के-'राजन् ! तमने जो धर्माधर्मना स्वरूपने जाणवानी जिज्ञासा होय तो हुं कहुं ते सांभळो.' एम कही बाहड मंत्रीए जैनाचार्य हेमचंद्र सूरिनो संक्षिप्त परिचय आप्यो.

मंत्रिए जणाव्युं के-पूर्वे, पूर्णतल्लनामना गच्छमां श्रीदत्तसूरि नामे एक आचार्य थई गया. तेओ परिभ्रमण करता एक वखते वागडदेशना 'रयणपुर' नामना गाममां गया. त्यां ते वखते यशोभद्र करीने एक राजा राज्य करतो हतो. ते श्रीदत्तसूरिपासे आवी हमेशां धर्मबोध सांभळवा लाग्यो. दत्तसूरि त्यां केटलोक समय रही अन्यत्र चाल्या गया. पाछळथी ते राजाने संसार उपर विरक्ति थई आवी अने तेथी ते बधो राज्यभार छोडी दत्तसूरिपासे दीक्षा लेवा निकळी पडयो. सूरि ते समये

‡ जइ वि चरियं इमाणं मणोहरं अत्थि बहुयमन्नं पि । तहवि जिणधम्म-पडिबोह-बंधुरं किं पि जंपेमि ॥
बहु भक्ख-जुयाइ वि रसवईए मज्झाओ किंचि भुंजंतो । निय-इच्छा-अणुरूवं पुरिसो किं होइ वयणिज्जो ॥

'छिड्डुआणापुर' मां रहेता हता तेथी राजा त्यां गयो. तेनी पासे एक बहुमूल्य मुक्ताहार हतो. तेने वेची तेना द्रव्यथी त्यां एक 'चउवीसजिणालय' नामे मोटुं जैनमंदिर बंधाव्युं[1] अने पछी साधुपणुं लई दत्तसूरिनो शिष्य थयो. साधुव्रत लईने तेणे अनेक प्रकारनां तपश्चरणो कर्यां अने ऊंडो शास्त्राभ्यास करी यशोभद्रसूरि नामे आचार्यपद प्राप्त कर्युं. आचार्य थया पछी तेमणे लोकोने धर्मोपदेश आपवा जुदा जुदा स्थळोमां परिभ्रमण कर्युं. ज्यारे वृद्धावस्थाना योगे शरीर बहु शिथिल अने क्षीणप्राय थयुं त्यारे उज्जयंत (गिरनार) तीर्थ उपर जई तेमणे अनशनव्रत अंगीकार कर्युं अने समाधिपूर्वक स्वर्गस्थ थया. तेमना शिष्य प्रद्युम्नसूरि करीने थया जेमणे 'ठाणयपगरण (स्थानकप्रकरण)' नामे ग्रंथ बनाव्यो. तेमना शिष्य गुणसेनसूरि अने तेमना शिष्य देवचंद्रसूरि थया. देवचंद्रसूरिए प्रद्युम्नसूरिरचित 'ठाणयपगरण' उपर टीका बनावी छे तथा 'शान्तिजिनचरित्र' लख्युं छे.

ए देवचंद्रसूरि फरता फरता एक वखते धंधुका नामे गाममां गया. त्यां चच्च अने चाहिणी नामे मोढ जातीय वणिग्दंपतीनो चंगदेव नामे एक प्रतिभावान् बालक तेमनी पासे आववा लाग्यो अने निरन्तर तेमनो धर्मबोध सांभळवा लाग्यो. तेमना उपदेशथी प्रबुद्ध थई बालक चंगदेव तेमनो शिष्य थवा तैयार थयो, अने तेमनी साथेज ते रहेवा-फरवा लाग्यो. फरता फरता देवचंद्रसूरि खंभातमां आव्या, अने त्यां, ते बालकना मामा नामे नेमि द्वारा चच्च अने चाहिणीने समजावी-बुझावी, तेने दीक्षा आपी अने चंगदेवना बदले सोमचंद्र नाम स्थाप्युं. अलौकिक बुद्धिशाळी बालक साधु सोमचंद्र थोडाज समयमां सकळ शास्त्रोनो अभ्यास करी समर्थ विद्वान् थयो अने गुरुए तेनी पूर्ण योग्यता जोई हेमचंद्र एवा नवीन नामनी साथे तेने आचार्यपद प्रदान कर्युं. हेमचंद्राचार्यनी विद्वत्ताथी मुग्ध थई सिद्धराज जयसिंह देव तेमना उपर बहु भक्तिभाव धरावतो हतो. अने दरेक शास्त्रीय बाबतना तेमनी पासे खुलासा मेळवी संतुष्ट थतो हतो. तेमना उपदेशथी सिद्धराजनी जैनधर्म उपर प्रीति थई हती, अने तेना उपलक्ष्यमां तेणे 'रायविहार' नामे एक जैनमंदिर पाटणमां, अने 'सिद्धविहार' नामे एक मंदिर सिद्धपुरमां बंधाव्युं हतुं. सिद्धराजना कथनथी हेमचंद्राचार्ये 'सिद्धहैमव्याकरण' नामे सर्वांगपूर्ण शब्दशास्त्र बनाव्युं हतुं. हेमचंद्रचार्यनो अमृतोपम उपदेश सांभळ्या विना सिद्धराजने जरा पण चेन पडतुं न हतुं.

आवी रीते हेमचंद्रसूरिनो परिचय आपी अमात्य बाहडे कुमारपाल राजाने कह्युं के-'महाराज! तमने पण जो धर्मना यथार्थ स्वरूपने जाणवानी इच्छा होय तो भक्तिपूर्वक ए आचार्यनी पासे जई, ए संबंधमां पृच्छा करो.' मंत्रीनुं आ कथन सांभळी राजा हमेशां हेमचंद्राचार्य पासे जई धर्मबोध सांभळवा लाग्यो.

आचार्यजीए प्रथम तो विविध दृष्टांतो अने आख्यानो द्वारा राजाने यथावसर प्राणिहिंसा, द्यूतरमण, मांसभक्षण, मद्यपान, वेश्यागमन अने धनापहरण इत्यादि दुराचरणोथी मनुष्य अने मनुष्यसमाजनी केवी अधोगति थाय छे, ते वारंवार समजावी. तेनी पासेथी, आखा राज्यमां तेवां दुराचरणोनो, राजाज्ञाना रूपमां सर्वथा निषेध कराव्यो. तदनंतर, तेमणे कुमारपालने जैनधर्मप्रतिपादित देव, गुरु अने धर्म तत्त्वनो विशिष्ट बोध आपवा मांड्यो. सद्देव, सद्गुरु अने सद्धर्मनी उपासनाथी आत्मानी केवी प्रगति थाय छे अने असद्देव, गुरु, अने धर्मनी उपासनाथी केवी अवगति थाय छे, तेनी, विविध कथानको द्वारा स्पष्ट समजण आपवा मांडी. सूरिना ए बोधथी कुमारपालनी जैनधर्म तरफ प्रीति वधती गई अने क्रमे क्रमे ते ए धर्म उपर अधिकाधिक अनुरक्त थतो गयो. जैनधर्म उपरना पोताना अनुरागना

---

1 ग्रंथकार सोमप्रभाचार्य आ ठेकाणे जणावे छे के-ते 'चउवीसजिणालय' मंदिर आजे पण त्यां (छिड्डुआणा पुरमां) विद्यमान छे.

उपलक्ष्यमां प्रथम तो तेणे ठेकाणे ठेकाणे जैन मंदिरो बंधाववा मांड्यां. सौथी प्रथम तेणे पाटणमां, श्रीमालवंशीय मंत्री उदयनना पुत्र मंत्री बाहड अने वायडवंशीय गर्गसेठना पुत्रो नामे सर्वदेव अने सांबसेठनी देखरेख नीचे 'कुमारविहार' नामे चतुर्विंशति जिनालय युक्त महान् अने भव्य जैनमंदिर बंधाव्युं. ए विहारना मुख्य मंदिरमां स्फटिकनिर्मित पार्श्वनाथ तीर्थंकरनी मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित करी; तेनी आजुबाजुना बीजा २४ जिनालयोमां सुवर्ण, रजत अने पित्तल आदि धातुओनी बनेली जुदा जुदा तीर्थंकरोनी प्रतिमाओ स्थापन करवामां आवी. तेना पछी कुमारपाले 'त्रिभुवनविहार' नामे अत्युच्च अने अतिभव्य मंदिर बंधाव्युं. ए मंदिर ७२ जिनालयोथी परिवेष्टित हतुं. एनो विशाल आमलसार अने ते उपरना कलशो सुवर्णमय बनाववामां आव्या हता. मूळ मंदिरमां नीलरत्ननिर्मित महत्प्रमाण एवी नेमिनाथ तीर्थंकरनी प्रतिमा, अने आसपासना ७२ जिनालयोमां, भूत, भविष्य अने वर्तमानकालना एम ७२ तीर्थंकरोनी पित्तलमय प्रतिमाओ प्रतिष्ठित करवामां आवी. ए सिवाय, २४ तीर्थंकरना, २४ जुदां जुदां मंदिरो, तेमज 'त्रिविहार' प्रमुख बीजा पण घणा विहारो तेणे एकला पाटण शहेरमांज कराव्या हता. पाटण सिवाय बीजां नगरो अने गामोमां तेणे जे मंदिरो बंधाव्यां छे तेनी तो संख्या पण कोई जाणतो नथी. ए मंदिरोमां, जसदेवना पुत्र दंडाधिप अभयनी देखरेख नीचे तारंगापर्वत उपर बंधावेलुं अजितनाथनुं महान् मंदिर खास उल्लेख करवा योग्य छे.

आवी रीते मात्र जिनमंदिरो बंधावीने ज कुमारपाल पोतानी जैनधर्म प्रत्येनी श्रद्धा बतावी अटकी गयो न होतो; परंतु एक परम श्रद्धालु श्रावकनी माफक ते हमेशां जिनमंदिरमां जई जिनमूर्तिनी भावपूर्वक पूजा पण करतो हतो अने जैनधर्मनो महिमा प्रकट करवा माटे अष्टाह्निका महोत्सव विगेरे जैन उत्सवो पण घणा ठाठथी उजवतो हतो. ए महोत्सवो प्रतिवर्ष, चैत्र अने आश्विन मासना शुक्ल पक्षना छेल्ला आठ दिवसोमां, पाटणना मुख्य अने प्रसिद्ध मंदिर नामे 'कुमारविहार' मां करवामां आवता हता. महोत्सवनी समाप्तिना दिवसे-एटले चैत्र अने आश्विन मासनी पूर्णिमाना दिवसे-सांजना वखते, रथयात्रानो वरघोडो निकळतो. हाथिए जोडेला रथनी अंदर पार्श्वनाथनी मूर्ति स्थापवामां आवती. रथ प्रथम 'कुमारविहार' मांथी निकळतो अने अनेक सामंत, मंत्री, व्यापारी आदिना समूहथी विंटळायलो ते राजमंदिरमां जतो. त्यां राजा जाते वस्त्र अने आभूषणोथी रथस्थ प्रतिमानी पूजा करतो. अन्य जनो ते वखते विविधभावव्यंजक अने स्तवनासूचक नृत्य अने गानादि करता. ते रात्रिए रथने त्यां (राजमंदिरमां) ज राखवामां आवतो अने बीजे दिवसे, सवारना वखते. सिंहद्वार बहार, तेना माटे खास उभा करेला मंडपमां लई जवामां आवतो. राजा पण त्यां साथे जतो, अने सकळ जनसमूहनी समक्ष, रथस्थ जिनप्रतिमानी सौथी प्रथम स्वयमेव आरती उतारतो. पूजा विगेरे सघळी क्रिया थई रह्या बाद रथ पाछो नगरमां आववा निकळतो. नगरना बधा राजमार्गोमां परिभ्रमण करतो करतो अने ठेकाणे ठेकाणे बांधेला मंडपो नीचे उभो रहेतो रहेतो, घणा आडंबरपूर्वक रथ पाछो पोताना स्थानके पहोंचतो. आवी रीते कुमारपाल जाते जैनधर्मनो महिमा करतो अने पोताना ताबामांना बीजा मांडलिक राजाओ पासे पण तेवी रीते करावतो. तेना हुकमथी बधा मांडलिक राजाओए पोतपोताना नगरोमां कुमारविहारो बंधाव्या हता, अने तेमनी अंदर आवा महोत्सवो पण हमेशां करता-करावता हता.

एक दिवसे कुमारविहारमां बेसीने कुमारपाल हेमचंद्राचार्य पासे धर्मोपदेश सांभळतो हतो ते वखते केटलाक विदेशी धनाढ्य जैन यात्रिओए आवीने आचार्यने अने राजाने प्रणाम कर्या. ते यात्रिओ सौराष्ट्र (काठियावाड) देशमां आवेलां जैन तीर्थोनी यात्रा करवा निकळ्या हता; अने रस्तामां पाटण शहेर आववाथी, त्यांना मंदिरोनी यात्रा करवा तथा आचार्य हेमचंद्र अने राजा कुमारपाल जेवा

जैनधर्मना महान् पुरुषोनां दर्शन करवा तेओ त्यां रोकाया हता. ते यात्रिओने जोईने कुमारपालना मनमां पण तीर्थयात्रा करवानी इच्छा थई, अने हेमचंद्राचार्यने पूछी यात्रानी तैयारी करवा मांडी. ज्योतिषिए बतावेला शुभ मुहूर्तमां, हेमचंद्रसूरिना प्रमुखपणानीचे तेणे पोताना चतुरंग सैन्य अने चतुर्विध संघ-साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप जैन जनसमूह-साथे सौराष्ट्र देश तरफ प्रयाण कर्युं. मार्गमां आवतां ग्राम अने नगरोनां जिनमंदिरोनी पूजा-उपासना करता कुमारपालना ए महान् संघे रैवत (गिरनार) पर्वतनी नीचे आवेला गिरिनगर (जुनागढ) नी पासे जई पडाव नांख्यो.

गिरनार पर्वतनो चढाव बहु विषम होवाथी (ते वखते उपर चढवा माटे पगथिआं बांधेलां न होतां) राजा उपर चढी नहीं शक्यो, तेथी प्रधान पुरुषोना हाथे पूजा आदिनी सामग्री मोकली दई पोतानी अशक्तता माटे खेद करतो ते त्यां नीचेज बेसी रह्यो. बाकी बीजा बधा यात्रिओ पर्वत उपर गया अने जिनपूजा आदि तीर्थकृत्य करी यथावसरे पाछा नीचे आव्या. त्यांथी ए संघ शत्रुंजय तीर्थनी यात्रा करवा गयो. त्यां बधा यात्रिओनी साथे राजा पण पर्वत उपर चढयो अने तीर्थनायक ऋषभदेवनी भक्तिपूर्वक पूजा-सेवा करी आनंदित थयो. शत्रुंजयना ए पवित्र जिनमंदिरनो जीर्णोद्धार कुमारपालनी आज्ञाथी बाहड मंत्रिए थोडा ज समय पहेलां कराव्यो हतो, तेथी ते मंदिर जोई राजा बहु खुशी थयो. आवी रीते गिरनार अने शत्रुंजय नामना सौराष्ट्रना बंने प्रसिद्ध जैनतीर्थोनी ठाठ साथे यात्रा करी राजा पाछो पोतानी राजधानीमां आव्यो.

गिरनार पर्वतना चढावनी विषमताना कारणे राजा ते उपर जे चढी नहीं शक्यो हतो अने तेना लीधे तीर्थपति नेमिनाथनी जे पूजा अर्चा करी नहीं शक्यो हतो. तेथी तेने बहु खेद थयां करतो हतो. एक दिवसे पोतानी राजसभामां प्रसंगोपात वात निकळतां राजाए पूछ्युं के गिरनार उपर लोकोने चढवा माटे सुगम एवो रस्तो बंधावी आपे एवो कोई पुरुष छे? ते वखते कविचक्रवर्ती श्री श्रीपालना पुत्र कवि सिद्धपाले ते कार्य माटे राणिगना पुत्र आम्रनुं नाम सूचव्युं. राजाए कविनी सूचनानुसार आम्रने सौराष्ट्रनो दंडनायक (सूबेदार) नीमी गिरनार मोकल्यो अने त्यां पर्वत उपर पगथिआं बांधवानो हुकम कर्यो

तदनंतर, कुमारपाले अनाथ अने असमर्थ श्रावक आदि जनोना भरण पोषण अर्थे एक सत्रागार बंधाव्यो जेनी अंदर विविध जातनां भोजनो अने वस्त्रादि तेना अर्थिओने आपवामां आवतां हतां. तेमज ते सत्रागारनी पासेज एक पौषधशाला बंधावी के जेनी अंदर रहीने धर्मार्थी जनो धर्मध्यान करता पोतानुं जीवन शांतरीते व्यतीत करी शके. सत्रागार अने पौषधशालानो कारभार चलाववा माटे श्रीमालवंशीय नेमिनागना पुत्र श्रेष्ठी अभय कुमारनी योजना करी हती. ते श्रेष्ठी बहुज सत्यव्रत, दयाशील, सरलस्वभाव अने परोपकारपरायण हतो. तेनी आवा पुण्यदायक कार्य उपर थएली योग्य नियुक्तिने जोई कवि सिद्धपाल राजानी योग्य प्रशंसा करी हती.

त्यार बाद आचार्य हेमचंद्र कुमारपालने श्रावक धर्ममां पालवा योग्य १२ व्रतोनो विस्तार साथे बोध कर्यो. प्राचीन कालमां आनंद अने कामदेवादि परम जैन गृहस्थोए जे रीते श्रावकधर्मनुं पालन कर्युं हतुं, तथा प्रत्यक्षमां पण, खुद पाटण निवासी छड्डुअ नामना महान धनाढ्य श्रावके जे रीते पोतानी पासे श्रावकना १२ व्रतोनो स्वीकार कर्यो हतो, तेनां उदाहरणो आपी हेमचंद्रसूरिए कुमारपालनी श्रावक-धर्म-अंगीकरण तरफ सुरुचि उत्पन्न करी. राजाए तेमना बोधानुसार एक राजर्षिने शोभे तेवी रीते श्रावकव्रतनो श्रद्धा पूर्वक स्वीकार कर्यो. अने आवी रीते अंते कुमारपाले जैनधर्मनो पूर्ण स्वीकार करी ते एक परमार्हत जैन राजा थयो.

जैन थया पछी कुमारपालनी नित्यनी दिनचर्या आ प्रमाणे बतावरामां आवी छेः—ते प्रति दिवस

प्रातःकालमां व्हेलो उठतो अने सौथी प्रथम, जैनधर्ममां सुप्रसिद्ध एवा पंचनमस्कारमंत्रनुं स्मरण करतो. त्यार बाद पोताना इष्ट देव-गुरुनुं ध्यान करतो. पछी कायशुद्धि विगेरे करी, राजमंदिरमांज आवेला जिनमंदिरमां जई जिनप्रतिमानी पुष्प, नैवेद्य विगेरेथी पूजा करी पंचांग प्रणिपात करतो; तथा यथाशक्ति नमोकारसी विगेरे तपनुं प्रत्याख्यान करतो हतो. त्यार बाद, अवसर थए, हाथीना होदे बेसी, अनेक सामंत, मंत्री आदि साथे 'कुमार विहार' मां जतो, अने त्यां अष्टप्रकारी पूजा करी भावपूर्वक प्रभुप्रार्थना करतो. त्यांथी पछी ते हेमचंद्राचार्य पासे जतो अने चंदन, कर्पूर तथा सुवर्णकमलादिथी तेमनी चरणपूजा करतो हतो. तदनंतर तेमनी आगळ बेसीने धर्मोपदेश सांभळतो अने उपदेशनी समाप्ति थए यथाशक्ति कांईक तपस्यानुं प्रत्याख्यान करी लगभग मध्याह्न समये पाछो राजभुवनमां आवतो हतो. राजमंदिरमां आवी याचक विगेरे लोकोने उचित वृत्तिनुं वितरण करी, पुनः नैवेद्य विगेरेना थाळो भरी गृहचैत्यनी पूजा करतो अने पछी पोते पवित्र भोजननुं सेवन करतो हतो.

भोजन कर्या बाद ते सभामां जईने बेसतो अने त्यां जुदा जुदा विद्वानो साथे धर्मशास्त्र अने तत्त्वविचारनी वातो करतो तथा तेमनी पासेथी सांभळतो. आ विद्वानोमां कवि सिद्धपाल मुख्य हतो. ते हमेशां राजानी आगळ विविध प्रकारनी कथावार्ताओ करी तेना मनने शांत अने संतुष्ट राखतो हतो.

दिवसना चतुर्थ प्रहरमां (एटले लगभग त्रण वाग्या पछी) कुमारपाल राजसभामां सिंहासन उपर जईने बेसतो, अने त्यां आगळ सामंत, मंत्री, मांडलिक अने सेठ साहुकार आदि राजकीय अने प्रजावर्गीय पुरुषो साथे राज्यकारभार संबंधी विचार-विनिमय चलावतो. तथा लोकोनी विज्ञप्तिओ (फर्यादो) सांभळतो अने तेनो उचित निकाल करतो. राजानो धर्म छे एम जाणी क्यारे क्यारे, मल्लविगेरेनी कुस्तीओ के हाथी विगेरेनी साटमारी जेवी रमतो पण अलिप्तमने ते जोतो हतो.

आवी रीते राज्यकार्य कर्या पछी, जो अष्टमी या चतुर्दशीनो दिवस न होय तो, बे घडी दिवस रहेते सायंकालनुं भोजन करतो-- अष्टमी अने चतुर्दशीना दिवसे ते एकज वार भोजन लेतो हतो. भोजन-कर्या बाद पुष्प आदिथी गृहचैत्यनी सायंकालिकी पूजा करतो अने वारवधूओ पासे आरती-मंगलादि करावतो. त्यार बाद रात्रिना केटलाक समय सुधी, चारण अने गायक आदि जनो तेनी आगळ बेसीने जे गुणगान तथा गायन-वादन आदि करता ते सांभळतो अने ज्यारे निद्रानो समय थतो त्यारे मनमां वैराग्य अने ब्रह्मचर्यना विचारोनुं चिंतन करतो शय्याधीन थतो हतो.

ते जैनधर्मप्रसिद्ध नमस्कारमंत्रनुं सतत स्मरण करतो रहेतो हतो. ए मंत्र उपर तेनी बहुज श्रद्धा हती. ते कह्यां करतो हतो के, जे कार्यो, विपुल सैन्य साथे दिग्यात्रा करती वखते पण माराथी सिद्ध न होतां थयां, तथा जे शत्रुओ मारी जातनी चढाईथी पण वश न होता थया, ते कार्यो आ नमस्कार मंत्रना प्रभावथी विना यत्ने सिद्ध थाय छे तथा ते शत्रुओ अंबड जेवा वणिग् दंडेशोथी पण वश थई रह्या छे. अत्यारे, आ नमस्कार मंत्रना प्रभावथी मारा राज्यमां कोई पण स्वचक्र के परचक्रनो भय नथी तेमज दुर्भिक्षादिनुं पण क्यांए नाम सुधां संभळातुं नथी. इत्यादि.

आवी रीते आ ग्रंथमां, संक्षेपमां कुमारपालना जैन धार्मिक जीवननो सार आपवामां आव्यो छे. कुमारपाल अने तत्कालीन अन्यान्य प्रसिद्ध पुरुषो, के जेमनो उल्लेख प्रसंगोपात्त आ ग्रंथमां करवामां आव्यो छे, तेमना संबंधमां विशेष हकीकतो प्रभावकचरित्र, प्रबंधचिन्तामणि, जयसिंहसूरिकृत-कुमारपालचरित्र, चारित्रसुंदर रचित-कुमारपालचरित्र, जिनमंडन कृत-कुमारपालप्रबंध; इत्यादि प्राचीन ग्रंथोमां तेमज फार्बसकृत रासमाला अने बॉम्बेगेझेटीअर आदि अर्वाचीन ऐतिहासिक ग्रंथोमां यथाज्ञात प्रकट थएलीज छे, तेथी ते संबंधमां अहीं कांई लांबुं लखवुं अनुपयुक्त छे.

यद्यपि उक्तरीते आ ग्रंथमां ऐतिहासिक वृत्तांत बहुज अल्पप्रमाणमां आपवामां आव्यो छे; तो पण

जे आप्युं छे ते संपूर्ण विश्वस्त अने प्रामाणिक छे; एम आपणे स्पष्ट कबुल करवुं जोईए. कारण के ग्रंथकार खुद कुमारपालना समकालीनज नहीं परंतु तेना अंतरंग जीवनथी सविशेष परिचित पण हता, एम आपणे उपर आपेला तेमना परिचयथी निश्चित रूपे समजी शकीए छीए.

कुमारपालना धार्मिक जीवनना संबंधमां तेना समकालीन एवा त्रण लेखकोना लखेलां वर्णनो मळी आवे छे. ए लेखकोमां एक तो खुद तेना धर्मगुरु आचार्य हेमचंद्र पोतेज छे. तेमणे कुमारपाल चरित्र (प्राकृतद्व्याश्रय) मां अने महावीरचरित्रमां तेना संबंधमां केटलुंक संक्षिप्त वर्णन आप्युं छे. कुमारपालचरित्रमां आपेलुं वर्णन अने प्रस्तुत ग्रंथमां आपेलुं वर्णन-तेमांए खास करीने तेनी दिनचर्या संबंधी वर्णन तो-तारवणी करतां लगभग अर्थशः संपूर्ण मळतुं आवे छे. बीजो लेखक कवि यशःपाल छे जेणे कुमारपालना आध्यात्मिक जीवनने अनुलक्षीने मोहराजपराजय नामनुं नाटक रच्युं छे. आ कवि पोताने अजयदेव चक्रवर्ती (के जे कुमारपालनो उत्तराधिकारी हतो) नो चरणसेवी बतावे छे. तेथी ए पण कुमारपालनो समकालीन ज हतो, ए अर्थात् सिद्ध छे. 'मोहराजपराजय' मां, कुमारपाले पोताना राज्यमांथी प्राणिहिंसा, मांसभक्षण, द्यूतरमण, वेश्यागमन आदि पाप व्यसनोनो जे सर्वथा बहिष्कार कराव्यो हतो तेनुं घणुं मनोहर अने हृदयंगम वर्णन करेलुं छे. त्रीजा लेखक आ प्रस्तुतग्रंथ प्रणेता सोमप्रभाचार्य छे. आ त्रणे लेखको जबाबदार अने प्रमाणभूत होवाथी तेमना कथनमां कोई पण प्रकारना संदेहने अवकाश नथी. आ लेखकोना चोक्कस कथन उपरथी जणाय छे के कुमारपाल एक परमधार्मिक जैन राजा हतो. जैन धर्म उपर तेनी पूर्ण श्रद्धा हती अने ए धर्मप्रतिपादित आचार-विचारोनुं पालन करवा तेणे संपूर्ण कोशीश करी हती; जैन धर्मनो प्रसार करवा तेणे बनता प्रयत्नो कर्या हता; अने तेनो प्रभाव स्थापवा तेणे पोताने तन्मय बनाव्यो हतो. ते स्वभावथी सरल अने विचारथी उदार हतो. जैन धर्म उपर तेनो पूर्ण अनुराग होवा छतां पण अन्यधर्मो उपर तेणे क्यारे पण पोतानो अभाव प्रकट कर्यो न हतो. एक प्रजापालक राजा तरीके ते दरेक धर्म उपर समान भावेज आदर राखतो हतो. ते जाते सदाचारी अने सद्गुणानुरागी हतो. तेना राज्यथी लोको पूर्ण सुखी अने संतुष्ट हता. इत्यलम्.

कुमारपाल प्रतिबोधनी अंतनी प्रशस्ति नीचे प्रमाणे छे.—

सूर्याचन्द्रमसौ कुतर्कतमसः कर्णावतंसौ क्षितेर्धुर्यौ धर्म्मरथस्य सर्वजगतस्तत्त्वावलोके दृशौ ।
निर्वाणावसथस्य तोरणमहास्तम्भावभूतामुभावेकः श्रीमुनिचन्द्रसूरिरपरः श्रीमानदेवप्रभुः ॥
तयोर्बभूवाजितदेवसूरिः शिष्यो बृहद्गच्छनभःशशाङ्कः । जिनेन्द्रधर्माम्बुनिधिः प्रपेदे घनोदकः स्फूर्तिमतीव यस्मात् ॥
श्रीदेवसूरिप्रमुखा बभूवुरन्येऽपि तत्पादपयोजहंसाः । येषामबाधाविनास्थितीनां नालीकमैत्री मुदमाततान ॥
विशारदशिरोमणेरजितदेवसूरेरमुत्क्रमाम्बुजमधुव्रतो विजयसिंहसूरिःप्रभुः ।
मितोपकरणक्रियारुचिरनित्यवासी च यश्चिरन्तनमुनिव्रतः व्यधित दुःषमायामपि ॥
तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मिः सोमप्रभाचार्य इति प्रसिद्धः । श्रीहेमसूरेश्च कुमारपालदेवस्य चेदं न्यगदच्चरित्रम् ॥
सुकविरिति न कीर्तिं नार्थलाभं न पूजामहमभिलषमाणः प्रावृतं वक्तुमेतत् ।
किमुत कृतमुभाभ्यां दुष्करं दुःषमायां जिनमतमतुलं तत्कीर्त्तनापुण्यमिच्छु : ॥
धर्म्मे निर्मलतामवाप्तुमतुलां श्रीहेमचन्द्रप्रभौ भक्तिं व्यञ्जितुमद्भुतां भणितिषु द्रष्टुं परामौचितीम् ।
श्रोतुं चित्रकथाश्चमत्कृतिकृतः काव्यं च लोकोत्तरं कर्तुं कामयसे यदि स्फुटगुणं तद्ग्रन्थमेतं शृणु ॥
प्राग्वाटान्वयसागरेन्दुरसमप्रज्ञः कृतज्ञः क्षमी वाग्मी सूक्तिसुधानिधानमजनि श्रीपालनामा पुमान् ।
यं लोकोत्तरकाव्यरञ्जितमतिः साहित्यविद्यारतिः श्रीसिद्धाधिपतिः कवीन्द्र इति च भ्रातेति च व्याहरत् ॥
पुत्रस्तस्य कुमारपालनृपतिप्रीतेः पदं धीमतामुत्तंसः कविचक्रमस्तकमणिः श्रीसिद्धपालोऽभवत् ।
क्लृप्तं तद्वसताविदं किमपि यच्चायुक्तमुक्तं मया तद्युष्माभिरिहोच्यतामिति बुधा वः प्राञ्जलिः प्रार्थये ॥

हेमसूरिपदपङ्कजहंसैः श्रीमहेन्द्रमुनिपैः श्रुतमेतत् । वर्द्धमान गुणचन्द्र-गणिभ्यां साकमाकलितशास्त्ररहस्यैः ॥
यावन्निहताखिलसन्तमसौ नभसि चकास्तो रविचन्द्रमसौ । तावत्-हेमकुमारचरित्रं साधुजनो वाचयतु पवित्रम् ॥

विमलमतिसुधार्चिर्नेमिनागाङ्गजन्माऽभवदभयकुमारः श्रावकः श्रेष्ठिमुख्यः ।
अथ निजकरपद्मप्रामधर्मार्थपद्मा विजितपदकपद्मा तस्य पद्मेति पत्नी ॥

तत्पुत्रा गुणिनोऽभवन भुवि हरिश्चन्द्रादयो विश्रुताः श्रीदेवीप्रमुखाश्च धर्मधिषणापात्राणि तत्पुत्रिकाः ।
तत्प्रीत्यर्थमिदं व्यधायि तदुपहरागच्छष्टात्मभि (?)-र्भूयिष्ठानि च पुस्तकानि ·················सोऽलेखयत् ॥
शशिजलधिसूर्यवर्षे शुचिमासे रविदिने सिताष्टम्याम् । जिनधर्मप्रतिबोधः क्लृप्तोऽयं गुर्जरेन्द्रपुरे ॥
प्रस्तावपञ्चकेऽप्यत्राष्टौ सहस्राण्यनुष्टुभाम् । एकैकाक्षरसंख्यातान्यधिकान्यष्टभिः शतैः ॥

संवत १४५८ वर्षे द्वितीयभाद्रपदशुदि ४ तिथौ शुक्रदिने श्रीस्तंभतीर्थे बृहद्ध (वृद्ध) पौषधशालायां भट्ट० श्रीजयतिलकसूरीणां उपदेशेन श्रीकुमारपालप्रतिबोधपुस्तकं लिखितमिदं ॥ कायस्थ ज्ञातीयमहं मंडलिकपुत पेतालिखितं ॥ चिरं नंदतु ॥ छ ॥ उ० श्रीजयप्रभगणिसष्य (शिष्य) उ० श्रीजयमंदिरगणि सष्य (शिष्य) भट्टा० श्रीकल्याणरत्नसूरिगुरुभ्यो नमः पं० व (वि) द्यारत्नगणि ।

सोमप्रभाचार्य रचित शतार्थवृत्तकाव्यनी टीकाना प्रारंभमां नीचे प्रमाणे ५ श्लोको आपवामां आव्या छे जेमां १०० अर्थोनी अनुक्रमणिका आपवामां आवी छे.

अत्र स्तुताश्चतुर्विंशतीर्जिनाः सिद्ध-सूर्य उपाध्यायाः । मुनि-पुण्डरीक-गौतम-सुधर्म-पञ्चव्रती-समयाः ॥
श्रुतदेवी-पुरुषार्थाः विधि-नारद-देव-विष्णु-बलभद्राः । श्रीः पद्मप्रश्चक्र शङ्ख-शिव-गिरिसुता-स्कन्दाः ॥
हेरम्बः कैलाशो ग्रह-दिक्पाला जयन्त-घन-मदिराः । कनका-ऽब्धि-सिंह-हय-कार-सरोज-भुजगाः शुकोऽश्वम् ॥
मानसरो--ऽभ्र-वैद्या-ऽनिलसुत-पत्नी--महा-गुरुचतुष्कम् । जयसिंह-कुमारनृपाः जयदेवो मूलराजश्च ॥
श्रीसिद्धपालकवि रजितदेवसूरि-गुर्हार्वजयसिंहः । तच्छिष्यः सोमप्रभसूरिश्च शतार्थवृत्तकविः ॥

शतार्थवृत्तनी वृत्तिना अंतमां सोमप्रभाचार्यना पिताविगेरेना उल्लेखवाला जे श्लोको आप्या छे ते नीचे प्रमाणे छे.—

स एव शिष्यः स्वकृतैः कवित्वैर्गुरोर्गरिम्ना जितकाञ्चनाद्रेः । गृहस्थभावा-ऽन्वयकीर्तनेन व्यनक्ति भक्ति पुनरुक्तमेताम् ॥
प्राग्वाटान्वयनीरराशिरजनीजानिर्जिनार्चापरः संजातो जिनदेव इत्यभिधया चूडामणिर्मन्त्रिणाम ।
यस्यौदार्य-विवेक-विक्रम-दया-दाक्षिण्य-पुण्यैर्गुणैः । साम्यं लब्धुमहर्निशं जगदपि क्लिश्यन्न विधास्यति ॥

तस्याऽऽत्मजः सुजनमण्डलमौलिरत्नमुज्जृम्भितेन्द्रियजयोऽजनि सर्वदेवः ।
एकस्थसर्वगुणनिर्मितकौतुकेन धात्रा कृतोऽयमिति यः प्रथितः पृथिव्याम् ॥
सूनुस्तस्य प्रथमकमलादर्पणः पुण्यकामः कौमारेऽपि स्मरमदजयी जैनदीक्षां प्रपन्नः ।
विश्वेस्याऽपि श्रुतजलनिधेः पारमासाद्य जज्ञे श्रीमान् सोमप्रभ इति लसत्कीर्तिराचार्यवर्यः ॥
यो गृह्णाति समश्रुतं वहति यस्तत्कौतुकं पाटवं काव्यं यस्त्वरितं करोति तनुते यः पावनी देशनाम् ।
योऽबध्नात् सुमतेश्चरित्र + + भद्राः सूक्तिपङ्क्तिपरा श्रीसोमप्रभसूरिरेष वृत्ते शतार्थे व्यधात् ॥

डॉ. हर्मन जेकोबीनी जैन सूत्रोनी प्रस्तावना

(प्रथम भाग.)

[अनुवादक—शाह अंबालाल चतुरभाई, बी. ए.]

[प्रथम अंकमां डॉ. हर्मन जेकोबीनी कल्पसूत्रनी प्रस्तावनानो अनुवाद आपवामां आव्यो छे. आज आ नीचे, ' पूर्वना पवित्र पुस्तको (Sacred Books of the East) ' नामनी सुप्रसिद्ध ग्रंथमालामां ' जैन सूत्रो ' नामे तेमनां जे बे पुस्तको प्रसिद्ध थयां छे, तेमाना पहेलां पुस्तकनी (नं. २२) प्रस्तावनानो अनुवाद उपस्थित करवामां आवे छे. ए पुस्तकमां आचारांग अने कल्पसूत्र, एम बे जैन सूत्रोना भाषांतरो प्रकट करवामां आव्यां छे.—संपादक.]

जैन धर्मनी उत्पत्ति तथा उत्क्रांतिना संबंधमां विवेचन करतां वखते, केटलाएक विद्वानो हजी पण, जे शंकाशील कथन करवुं रीतसर समजी रह्या छे, ते आ विषयना समग्र प्रश्ननी वर्तमान परिस्थिति जोतां बिलकुल योग्य होय तेम जणातुं नथी. कारण के हवे जैन धर्मनुं साहित्य मोटा प्रमाणमां उपलब्ध थएलुं छे अने तेथी जे कोई विद्वानने ए धर्मना प्राचीन इतिहासनां साधनोने संगृहीत करवानी इच्छा होय तेने तेमांथी तेवां पुष्कळ साधनो मळी शके तेम छे. अने वळी आ साधनो पण एवां नथी के जेथी तेमां आपणने अश्रद्धा राखवानुं कारण मळे. आपणे जाणीए छीए के जैनोना पवित्र पुस्तको—अर्थात् आगमो—प्राचीन छे.—जेने आपणे संस्कृत काळनुं साहित्य (Classical literature) कहीए छीए ते करतां स्पष्ट रीते वधारे प्राचीन छे. ए आगमोनी प्राचीनताना संबंधमां कहेवुं जोईए के तेमांना घणाक ग्रंथो, उत्तरीय बौद्धोना सौथी प्राचीन ग्रंथोनी साथे तुलनामां आवी शके तेवा छे. हवे बौद्धोना ए ग्रंथो जो बुद्ध अने बौद्धधर्मनो इतिहास तैयार करवामां साचां साधनरूपे स्वीकारायां छे तो तेज कोटिनां जैनोनां पवित्र पुस्तको तेमना इतिहासनां प्रामाणिक साधन तरीके शा माटे न स्वीकारी शकाय, ते समजी शकातुं नथी. जो आ ग्रंथो (जैन आगमो) परस्पर विरुद्ध कथनोथी भरेला होत अथवा तो तेमां आवेली तारीखोथी परस्पर विरोधी अनुमानो उभां थतां होत तो आवां साधनोना आधारे उत्पन्न थएला बधा सिद्धान्तोने शंकाशीलमने जोवानुं आपणा माटे न्याय्य गणात. परंतु जैनसाहित्यनुं स्वरूप आ बाबतमां बौद्ध साहित्यथी पण बहुज अल्पअंशे जूदुं पडे छे,—खास करीने उत्तरीय बौद्ध साहित्यथी. तो पछी शा माटे, आटला बधा लेखको, जैनसाहित्यमांथी मळी आवतां ते धर्मनी उत्पत्ति अने स्थितिथी, भिन्न प्रकारनां अनुमानो करता हशे ?. आनुं कारण स्पष्ट छे, अने ते युरोपीय विद्वानोए जैनधर्म अने बौद्धधर्ममां परस्पर वास्तविक अगर आभासात्मक जे साम्य खोळी काढयुं छे, तेज छे. ए विद्वानोनुं एवुं मानवुं छे के आ बन्ने धर्मोमां जे आटलुं बधुं साम्य दृष्टिगोचर थाय छे तेथी, ते परस्पर स्वतंत्र नहीं होवा जोईए, परंतु एक बीजामांथी उत्पन्न थएला अथवा तो एक बीजानी शाखा रूपे प्रवर्तेला होवा जोईए. आ प्रकारना, कारण उपरथी करातकार्यना अनुमानात्मक अभिप्रायथी, घणा विवेचको—समालोचकोनी दृष्टि कलुषित थएली छे, अने अत्यारे पण तेम थती जोवामां आवे छे. आ पछीनां पृष्ठोमां हुं ए मिथ्याभ्रांतिने दूर करवानो प्रयत्न करीश अने जैनागमो जे खरेखरी प्रामाणि

कता अने प्रतिष्ठाने पात्र छे ते पुरवार करी आपीशं. आपणे आपणी चर्चानो प्रारंभ महावीर विषयक ऊहापोहथी करीशुं के जेओ जैनधर्मना संस्थापक, निदान तेना अंतिम तीर्थंकर हता. अहीं मारे जणावी देवुं जोईए के, महावीर एक अर्वाचीन संप्रदाय द्वारा उभो करेलो अथवा कल्पी लीधेलो मात्र सांकेतिक पुरुष छे, के जे संप्रदाय पोताना कल्पित संस्थापकना मिथ्याकाल पछी घणी शताब्दिओ बाद उत्पन्न थयो हतो, ए जातना भ्रमने दूर करवा माटे पुरतुं साहित्य मळी चूक्युं छे.

श्वेतांबर तेमज दिगंबर—ए बन्ने जैन संप्रदायो जणावे छे के महावीर कुण्डपुर अथवा कुण्डग्रामना राजा सिद्धार्थना पुत्र हता. जैनोनी एवी मान्यता छे के आ कुण्डग्राम ते एक मोटुं नगर हतुं तथा सिद्धार्थ ते एक त्यांनो प्रतापी राजा हतो. परंतु कपिलवस्तु अने शुद्धोदनना संबंधमां बौद्धोना कथननी माफक, जैनोनुं पण आ खरी वस्तुस्थितिनुं अतिशयोक्ति द्वारा करायलुं एक मिथ्या कथन छे. कुण्डग्रामने आचारांगसूत्रमां एक संनिवेश तरीके जणावेलुं छे के जेनो अर्थ टीकाकारे 'यात्रिओ अथवा सार्थवाहोनुं विश्रामस्थान' एम करेलो छे. आ उपरथी जणाय छे के ते (कुण्डग्राम) एक नजीवुं स्थान हशे. तेना संबंधमां मात्र एटलोज संप्रदाय मळी आवे छे के ते विदेहमां आवेलुं हतुं (आचारांग सूत्र २, १५६. १७.) बौद्ध तेमज जैन ग्रंथोमां प्रसंगे प्रसंगे मळी आवता उल्लेखो उपरथी महावीरनी जन्मभूमिना स्थाननो आपणे योग्य निर्णय करी शकीए तेम छीए. बौद्धोना महावग्गसूत्रमां आपणे वांचिए छीए के बुद्ध ज्यारे कोटिग्गाममां वसता हता त्यारे तेमने, ते स्थाननी पासे आवेली वैशालीनामे राजधानीमांथी लिच्छविओ तथा अम्बापाली नामनी वेश्या मळवा आवी हती. कोटिग्गामथी बुद्ध ज्यां आतिको रहेता हता त्यां गया हता, अने त्यां तेओ आतिकोना इष्टिकागृहमां उतर्या हतां. आ स्थाननी नजीकमांज अम्बापाली वेश्यानुं अम्बपालिवन नामनुं उद्यान हतुं. जे तेणे बुद्ध अने तेमना संघने समर्पित कर्युं हतुं. त्यांथी तेओ वेसाली गया, अने त्यां लिच्छविओना सेनापतिने, जे निर्ग्रंथोनो एक श्रावक हतो, पोताना धर्मनो अनुयायी बनाव्यो. आ उपरथी बौद्धोनुं कोटिग्गाम अने जैनोनुं कुण्डग्गाम ए बन्ने एकज होय तेम घणुंज संभवित लागे छे. नामना साम्य उपरांत आतिकोनो उल्लेख—के जे ज्ञातिको स्पष्टरूपे महावीरनी जन्मजातिवाळा ज्ञात क्षत्रियो ज छे—तथा स्नाहि नामना जैननो उल्लेख पण एकज बाबत तरफ अंगुली निर्देश करे छे.

आ उपरथी घणुं करीने कुण्डग्गाम ए विदेहनी राजधानी वेसालीनुं एक मात्र परुं ज हतुं आ अनुमानने, सूत्रकृताङ्ग १, ३ मां महावीरने जे 'वेसा-

१ जुओ ओल्डनबर्गनी आवृत्ति पृ. २३१, २३२; भाषांतर(बीजो भाग) पृ. १०४. Sacred Books of the East, Vol. XVII.

२ जे सूत्रमां ' आतिका ' शब्द आवेलो छे ते सूत्रना अर्थना विषयमां टीकाकारो तथा अर्वाचीन भाषांतरकारोनी गेरसमजुती थई होय तेम लागे छे. महापरिनिब्बान सुत्तना भाषान्तरमां (S. B. E. Vol. XI) राइस डेविड्स, पृ. २४ नी नोटमां, आ प्रमाणे लखे छे:—प्रथम 'नादिक' शब्द बे वार बहुवचनमां वपरायो छे—'परंतु त्यार पछी त्रीजी वार—एटले छेल्ला अवान्तर वाक्यमां ते एक वचनमां वपरायो छे. आनो खुलासो बुद्धघोष आम करे छे-'ए नामना जलाशयना कांठा उपर एज नामनां बे गामडां हतां.' परंतु मारा धारवा प्रमाणे बहुवचनमां प्रयुक्त थएले आतिका शब्द तो क्षत्रियोनो वाचक छे, अने एकवचनी शब्द 'गिञ्जकावसथ' नुं विशेषण छे, जे महापरिनिब्बान सुत्तमां प्रथम स्थान निर्देश वखते, तथा महावग्ग ६, ३०, ५ मां, आवे छे. आथी महापरिनिब्बानमां जे जे स्थळे नादिक शब्द एकवचनान्त होय त्यां त्यां तेना ' गिञ्जकावसथ' विशेष्यने अध्याहृत मानवुं जोईए. मारा मत प्रमाणे 'नादिक' ए रूप खोटुं छे अने महापरिनिब्बाननुं 'आतिक' रूप खरुं छे. मि. राइस डेविड्से पण भाषान्तरनी अनुक्रमणिकामां ' नादिक ए पटना पासे छे ' एम जे जणाव्युं छे ते भूलभरेलुं छे. कारण के महावग्गनी कथा उपरथी स्पष्ट जणाय छे के आ स्थान तथा कोटिग्गाम ए बन्ने स्थळो वेसालिनी नजीकमां हतां.

१ जुओ - वेबर, Indische Studien, XVI, p. 262.

लिए 'एटले वैशालिक एवुं नाम आपेलुं छे. तेथी पण पुष्टि मळे छे. ते स्थळे, टीकाकारे आ शब्दनो अर्थ बे भिन्न भिन्न रीतिए समजाव्यो छे; अने बीजे एक स्थळे त्रीजो अर्थ पण आपेलो छे. आ प्रमाणे मळी आवतो अर्थविरोध, एम साबीत करे छे के वैशालिकनो खरो अर्थ शो करवो ते संबंधी स्पष्ट संप्रदाय नहीं मळी आव्यो हशे; अने तेथी अर्वाचीन जैन विद्वानोनां कृत्रिम अर्थबोधनी तरफ आपणे दुर्लक्ष आपवुं उचित छे. वैशालिक शब्दनो स्पष्टार्थ 'वैशाली निवासी' एवो थाय छे अने कुण्डग्राम वैशालीनुं परुं होवाथी महावीरनुं ते नाम वास्तविक गणी शकाय छे:—जेम इस्लिंग्टननो रहेवाशी लण्डनर (Londoner) तरीके ओळखाय छे तेम. ज्यारे आ प्रमाणे कुण्डग्राम वैशालीनुं एक परुं मात्र हतुं, त्यारे ए पण स्पष्टज छे के ते गामनो राजा पण वधारेमां वधारे एक नानो सरदारज होवो जोईए. जो के जैनो पोताना अनुरागाधिक्यने लईने, सिद्धार्थ एक खरेखर प्रबळ राजा हतो एम कल्पी तेनी राजलक्ष्मीनो घणांज देदीप्यमान अने आदर्शभूत वर्णोमां चितार आपे छे खरा; परंतु तेमनां वर्णनोमांथी अलंकारोनां आभरणो उतारी लीधां पछी ए सत्य सहेलाईथी प्रकट थई जाय छे के सिद्धार्थ एक मोटो राजा नहीं पण मात्र अमीर हतो. अने ते आ प्रमाणे:—सिद्धार्थने अनेक स्थळे मात्र क्षत्रियज कहेलो छे, तथा तेनी पत्नी जेनुं नाम त्रिशला हतुं, तेने पण हमेशां क्षत्रियाणी तरीकेज वर्णवेली छे. ज्यां सुधी मने स्मरण छे. तेने देवी तरीके क्यांए लखी नथी. तेमज ज्ञात्रिक क्षत्रियो पण दरेक स्थळे तेओ सिद्धार्थना समान पदवाळा होय तेवी रीते वर्णवामां आव्या छे नहीं के तेना (सिद्धार्थना) सामंतो अगर तावेदारो तरीके. आ हकीकतो उपरथी एम मालुम पडे छे. के सिद्धार्थ राजा न हतो, तेम ते पोतानी जातिनो नेता पण न हतो; परंतु, पूर्वीय देशोमांना जमीनदारो अने तेमां पण खास करीने देशना प्रतिष्ठित उमरावो जेटली सत्ता भोगवे छे तेटली सत्ता धरावनारो ते एक क्षत्रिय हतो. छतां पण ते तेनी साथेना अन्य सरदारो करतां वधारे लागवगवाळो हतो, एम कही शकाय छे आम कहेवानुं कारण ए छे के, ते पोताना लग्न संबंधना लीधे मोटा मोटा माणसो साथे संबंध धरावतो हतो, तेवा उल्लेखो मळी आवे छे तेनी स्त्री त्रिशला ते वैशालीना राजा चेटकनी बहेन हती. अने आ विदेहना राजवंशमां उत्पन्न थवाथीज ते वैदेही अगर विदेहदत्ता कहेवाती हती.

मारा यत्किंचित् जाणवा प्रमाणे बौद्ध ग्रंथोमां वैशालीना राजा चेटकनो उल्लेख थएलो नथी. परंतु ते ग्रंथोमां एवा हकीकत तो वांचवामां आवे छे के वैशालीनुं राज्यशासन एक अमीर मंडळने सोंपवामां आव्युं हतुं अने ते मंडळनो अध्यक्ष एक राजा हतो. राज्यमां अन्य सत्ताधारी तरीके मात्र एक राजप्रतिनिधि (Viceroy) अने बीजो सेनापति हतो. लिच्छविओना आ अजायबी भरेला राज्यतंत्रनी झांखी जैन ग्रंथोमां पण आपणने थई शके छे. निरयावली सूत्रमां एक वर्णन छे के—ज्यारे चम्पाना राजा कूणिक उर्फे अजातशत्रुए चेटक राजा उपर मोटी सेना लई हुमलो करवानी तयारी करी, त्यारे चेटक राजाए काशी, कोशल, लिच्छविओ अने मल्लकिओना १८ संयुक्त राजाओने एकत्र करी, तेमने पूछयुं के तमारो अभिप्राय कूणिकनी मागणीओने पूरी करवानो छे के तेनी साथे युद्ध करवानो छे? आ सिवाय एक एवो पण उल्लेख मळी आवे छे के, महावीरना निर्वाण वखते, आ १८ राजाओए ते प्रसंगनी यादगीरी माटे एक उत्सव उजववानो ठराव कर्यो हतो. परंतु, आ ठेकाणे चेटकनो, के जेने ए सर्व राजाओनो महाराजा तरीके बनाववामां आवे छे तेनो, पृथक् नामनिर्देश थएलो नथी. आथी संभवित छे के चेटक

१ जुओ कल्पसूत्रनी मारी आवृत्ति, पृ. ११३. अहीं चेटकने महावीरना मामा तरीके जणावेलो छे.

२ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्र, § ११०; आचारांग २, १५, § १५.

३ Turnour in the Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, VII, p. 992.

४ Ed. Warren, p. 27.

५ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्र.

पण अन्य अढार संयुक्त राजाओ जेवो मात्र एक भागीदार राजा हतो अने तेमना जेटलीज ते सत्ता धरावतो हतो. तथा, ते उपरांत तेनी सत्ता वैशालीना राज्यशासनथी नियन्त्रित हती. आथी आपणे समजी शकीए छीए के प्रथम तो चेटकनो प्रभाव कांई विशेष नहीं हतो, अने बीजुं तेनो पण उपयोग मात्र बौद्धोना प्रतिस्पर्धी एवा जैनोना पक्षमांज थयो हतो; तेथी बौद्धोए तेनो उल्लेख कर्यो नहीं होवो जोईए. जैनोए तेनी स्मृति कायम राखी, तेनुं कारण ए छे के, ते एक तो पोताना तीर्थंकर महावीरनो मामो थतो हतो अने बीजुं ए धर्मनो ते आश्रयदाता पण हतो. आ चेटक राजानी लागवगने लईनेज वैशाली जैन धर्मनुं एक संरक्षण स्थान बन्युं हतुं अने तेथीज बौद्धोए तेने पाखंडीओना एक मठ तरीके जणाव्युं छे.

महावीरना कौटुम्बिक संबंधनुं आ निरूपण करवामां मारो हेतु कांई कुतूहलरूप नथी; जो तेम होत तो तो हुं आ स्थळे ते संबंधी सघळी ऐतिहासिक हकीकत—पछी ते गमे तेटली नजीवी होत, भेगी करत. परंतु कौटुम्बिक संबंध विषयक आ माहीती आपवानुं खास कारण ए छे के ते द्वारा आपणे महावीरनी सफळतानी प्राप्तिनुं रहस्य शोधी शकीए छीए.

महावीर तथा बुद्ध ए बन्ने कृष्णसंबंधी दंतकथाओमां वर्णवेला यादवो जेवा तथा वर्तमानकालीन रजपूतो जेवा एक जातना जागीरदार सामंत मंडळमां जन्म्या हता. आवी जातना जागीरदार सामन्त मंडळोमां कौटुम्बिक संबंधो घणा मजबुत अने चिरस्मरणीय होय छे[1].

आपणे स्पष्ट जाणीए छीए के बुद्ध मुख्यत्वे करीने अमीर वर्गनेज पोतानो उपदेश आपता हता तेम जैनो पण प्रारंभमां ब्राह्मणो करतां क्षत्रियोने ऊंचा मानता हता.[2] पोताना मार्गनो प्रसार करवामां, महावीर तथा बुद्ध-बन्नेए प्रकटरीते पोतपोताना कुटुम्बनी सहायता अने लागवगनो उपयोग कर्यो हतो. तेमना बीजा प्रतिस्पर्धिओनी अपेक्षाए तेमनो अधिक उत्कर्ष थवामां केटलेक अंशे देशना प्रतिष्ठित कुटुम्बो साथे तेमनो जे विशिष्ट संबंध हतो, ते पण एक मुख्य कारण छे.

पोताना मातृपक्षद्वारा महावीर, मगधना राजवंशसाथे पण सगपण धरावता हता; कारण के चेटकनी चेल्लना नामनी पुत्रीनुं लग्न, राजगृहमां वसता, मगधना राजा सेणिय-बिम्भिसार अथवा बिम्बिसारनी साथे थएलुं हतुं. जैनो अने बौद्धो बन्नेए आ राजानी, महावीर अने बुद्धना मित्र तथा आश्रयदाता तरीके स्तुति करी छे. परंतु सेणियनो पुत्र कूणिक अथवा तो बौद्धोना कहेवा प्रमाणे अजातशत्रु-जे वैदेही राणी चेल्लनाना पेटे अवतर्यो हतो, तेणे पोताना राज्यना प्रारंभकाळमां बौद्धो तरफ कांई पण सहानुभूति बतावी न हती; परंतु ज्यारे बुद्धना निर्वाणना आठ वर्ष बाकी रह्यां हतां त्यारे ते बुद्धनो आश्रयदाता बन्यो हतो. ते वखते पण ते सद्भावपूर्वक बुद्धधर्मानुयायी थयो हतो तेम तो आपणे मानी शकता नथी. कारण ए छे के जे माणस खुल्लीरीते पोताना पितानुं खून

---

१ जैनो महावीरना मामाओना नामो तथा गोत्रो जणावे छे, पण ते क्रमश: जणाय छे. तेओ तेमना संबंधी बीजुं कांई विशेष लखता नथी. कल्पसूत्र, जिनचरित्रो § १०९.

२ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्रो §§ १७ अने १८.

१ जुओ, वॉरननी निरयावली सूत्रनी आवृत्ति पृ. २२. बौद्धो चेल्लनाने वैदेहीना नामे ओळखे छे. तिबेटना बुद्ध चरित्रमां तेनुं नाम श्रीभद्रा आपेलुं छे के जे आपणने चेटकनी स्त्री सुभद्राना नामनुं स्मरण करावे छे. See Schiefner in Memoires de l Academie Imperiale de St. Petersburg, tome IV, p. 253.

२ घणुं करीने ते मात्र सेणिय अथवा श्रेणिकना नामेज ओळखाय छे; तेनुं पूरुं नाम दशाश्रुतस्कन्धमां आपेलुं छे जुओ वेबर, Ind. Stud. XVI, p. 469.

३ आ बन्ने नामो एकज व्यक्तिवाचक होय तेम लागे छे. कारण के बौद्ध अने जैन ग्रंथकारोना कथनानुसार ते उदायिन् अथवा उदयिभद्दक-जे जैन अने ब्राह्मण ग्रंथोमां जणाव्या प्रमाणे पाटलिपुत्रनो वसावनार हतो तेनो-पिता हता.

४ बौद्धो पण ए हकीकतवाळी विस्तारयुक्त कथा आपे

करनारो होय तथा मातामह साथे लडाई लडनारो होय तेवो माणस अध्यात्मज्ञानने माटे बहु उत्सुक बने ते असंभवित लागे छे. धर्मपरिवर्तन करवामां तेनो वास्तविक शो उद्देश हशे तेनुं आपणे सहेलाईथी अनुमान करी शकीए छीए. तेनो उद्देश्य बीजो कोई नहीं पण जेम तेना पिताए पोताना राज्यमां (मगधमां) अंगदेशनो उमेरो कर्यो हतो तेम तेने पोताना ताबाना मुलकोमां विदेहने उमेरवानो हतो. आ कारणथी तेणे प्रथम विदेहनी वृजि जातिने ताबे करवामाटे-काढी मुकवा माटे नहीं-पाटलिग्राममां एक किल्लो बंधाव्यो हतो अने आखरे पोताना मातामह वैशालीना राजा साथे युद्ध कर्युं हतुं आ राजा महावीरनो मामो होवाथी अने तेथी जैनोना संरक्षक होवाथी, एना उपर करेली चढाईना परिणामे जैनोनी सहानुभूतिने ते खोई बेठो हतो. आथी पछी तेणे जैनोना प्रतिस्पर्धी बौद्धोना पक्षमां भळवानो निश्चय कर्यो हतो; के जे बौद्धोने पोताना पिताना मित्रो होवाना सबबे प्रथम तेणे त्रास पण आप्यो हतो.

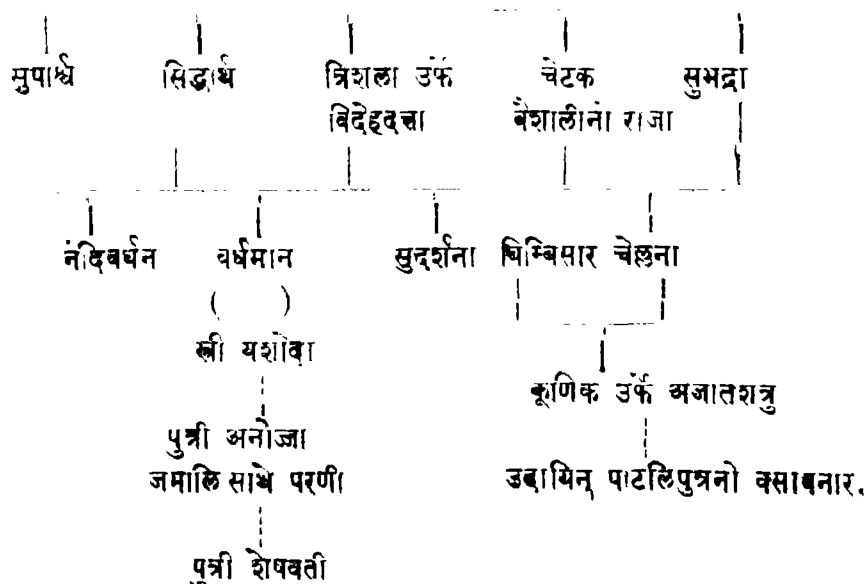
आपणे जाणीए छीए के अजातशत्रु एक तो वैशालीने जीतवामां सफळ थयो हतो; तथा बीजुं तेणे नन्दो अने मौर्योना साम्राज्यनो पायो नांख्यो हतो. आवी रीते मगधसाम्राज्यनी सरहद वधवाथी जैन अने बौद्ध ए बन्ने धर्मो माटे एक नवुं क्षेत्र खुल्लुं थयुं हतुं अने तेथी तरतज तेओ ते क्षेत्र उपर प्रसरी गया हता. ज्यारे बीजा केटलाक संप्रदायो मात्र स्थानिक अने अचिरस्थायी महत्त्वज प्राप्त करी अटकी गया हता; त्यारे ए बन्ने धर्मो आटली मोटी सफळता मेळववा समर्थ थई शक्या हता तेनुं मुख्य कारण बीजुं कांई नहीं पण आ मंगलकर राजनैतिक संयोगज हतो.

छे; जुओ, Kern, Der Buddhismus und sein Geschichte in Indien, I. p. 249 (p. 195 of the original), अने तेज प्रमाणे जैनोए पण निरयावलीमां ए हकीकत आपली छे.

१ जुओ उपर.

२ महापरिनिब्बान सुत्त १, २६, अने महावग्ग ६, २८,

नीचे कोष्टकमां महावीर-अथवा तो अत्यारे आपणे तेमने जैनोना तीर्थंकर तरीके नहीं संबोधता होवाथी, कहेवुं जोईए के वर्धमान या ज्ञातृपुत्र-ना सगाओनो पारस्परिक संबन्ध बतावबामां आवे छे.



अहीं मारो इरादो महावीरनुं संपूर्ण जीवन-चारित्र आपवानो नथी परंतु मात्र केटलीक पची विगतो

१ पालि तथा प्राकृतमां नातपुत्त. बौद्धो तेमने निगण्ठनातपुत्त अर्थात् निर्ग्रन्थज्ञातृपुत्र कहे छे.

एकत्रित करवानो छे. के जे द्वारा ते एक स्वतंत्र ऐतिहासिक पुरुष तरीके तथा घणीक महत्त्वनी बाबतोमां बुद्धथी ते एक भिन्न व्यक्तिरूप सिद्ध करी शकाय.

वर्धमान पोताना पितानी माफक एक काश्यप (कश्यप गोत्रना) हता. वळी तेओ, पोताना मातापिताना मरणसुधी तथा तेनी पछी पण पोताना मोटा भाई नंदिवर्धनने पैतृकसंस्थाननो उत्तराधिकारी बनतां सुधी, गृहस्थावस्थामां रह्या हता. त्यार बाद अठ्ठावीस वर्षनी उमरे, सर्व सत्ताधारीओनी अनुमति लई तेमणे दीक्षा ग्रहण करी हती. रोमन कॅथोलिक देशोमां जेवी रीते नाना पुत्रोनी महत्त्वाकांक्षानुं क्षेत्र देवालय बन्युं हतुं तेवीज रीते हिंदुस्थानना नाना पुत्रोनुं ध्यान आध्यात्मिक प्रवृत्तिए खेंच्युं हतुं.

संसार छोड्या पछी महावीरे बार वर्ष सुधी तपस्वी जीवन गाळ्युं हतुं अने ते दरम्यान तेमणे राढा नामना देशनां जंगली जातोमां पण परिभ्रमण कर्युं हतुं. तेमना आ जीवननुं प्रथम वर्ष पूर्ण थया बाद तेओ अचेलक थया हता. आवी रीते सिद्धिसाधन अर्थे बारवर्ष पर्यंत करेला आत्मदमनने अंते वर्धमानने केवळज्ञान उत्पन्न थयुं हतुं. त्यार बाद तेओ सर्वज्ञ तीर्थंकर तरीके ओळखावा लाग्या अने ते उपरांत जिन, महावीर विगेरेना बिरुदोथी पण संबोधावा लाग्या के जे नाम मुनिने पण लगाडवामां आवे छे. जींदगीनां छेल्लां त्रीश वर्षो तेमणे पोताना धर्मनो उपदेश आपवामां तथा यतिमार्गनी व्यवस्था करवामां गाळ्यां हतां. आ कार्यमां आपणे उपर जोई गया तेम तेमने विदेह मगध अने अंगदेशना चेटक, [illegible] अने कूणिक नामना राजाओ के जेमना साथे तेओ पोताना मातृपक्षद्वारा सगपणनो संबंध धरावता हता तेमना तरफथी खास सहायता तेमज पुष्टि मळी हती. ए देशोमां आवेला नगरोमां तेओए पोतानी आध्यात्मिक जीवननी कारकीर्दीना लगभग सघळा चातुर्मासो तेमणे ए प्रदेशोमां आवेलां नगरोमांज गाळ्या हता. केटलीक वखते आ देशोनी पश्चिममां श्रावस्ती सुधी अने उत्तरमां हिमालयनी तळेटी लगी पण तेओ पोतानुं परिभ्रमण लंबावता हता. तेमना अगीआर मुख्य शिष्यो गणधरो तरीके ओळखाय छे अने जेमनां नामो कल्पसूत्रनी स्थविरावली (§ १) मां आपेलां छे ते श्वेताम्बर तेमज दिगम्बर नामना बन्ने जैन संप्रदायोने समान मान्य छे. आ बाबतो उपरांत महावीरना जीवनसंबंधी जे हकीकतो जैन सूत्रोमां मळी आवे छे ते उपर, तेमज मक्खलिपुत्र गोसालनी साथे चालेली तकरार सुधी अने तेमां थएला तेमना विजय वाळी हकीकत उपर, अने अंते तेमना निर्वाण स्थान तरीके जे पापा नामनी नानी नगरी प्रसिद्ध थएली छे ते बाबत उपर आपणे विचार करवानी जरूरत छे. आ बधी बाबतो उपर विचार करवामां आपणे मात्र जैनोनीज परंपराओ उपर आधार राखवानो छे, एम नथी. आमांनी केटलीक बाबतोना संबंधमां बौद्ध ग्रंथोमांथी पण उल्लेखो मळी आवे छे तेथी ते प्रमाणोने पण लक्ष्यमां राखवानी जरूरत छे. बौद्ध ग्रंथोमां महावीरने तेमना सुप्रसिद्ध नाम 'नातपुत्त' थी उल्लेखेला छे अने तेमने निगण्ठो (जैन यतिओ) ना नायक तरीके तथा [illegible] ओळखावेला छे. ए ग्रंथोमां तेमना [illegible] मां जो कांइ भूल थएली होय तो ते फक्त तेमना गोत्रना संबंधमां छे. तेमना गोत्रनुं नाम, बौद्ध ग्रंथोमां अग्निवेश्यायन आपेलुं छे, जे वास्तविकमां महावीरना सुधर्मन मे शिष्यनुं गोत्र हतुं. बौद्ध ग्रंथकारोए भूलथी अथवा भ्रांतिथी शिष्यना गोत्रने गुरुनुं गोत्र लख्युं छे. महावीरनिर्वाण बाद तेमना गणधरोमांथी मात्र आ सुधर्मन गणधर ज एकला विद्यमान रह्या हता.

---

१ तेमना जीवनना आ विभागना संबंधमां लखाएलुं एक प्रकरण आचारांग सूत्रमां आवेलुं छे. जुओ आचारांग (१, ८).

१ जुओ कल्पसूत्र, जिनचरित्रो, § १२२: चम्पा, ३; वैशाली, १२; मिथिला, ६; राजगृह, १४; भद्रिका, २; आलभिका, १; पणितभूमि, १; श्रावस्ती, १; पापा, १, पणितभूमि, श्रावस्ती अने कदाच आलभिका आ त्रण शिवाय उपरनां सघळां स्थळो, उपर निर्दिष्ट थएल त्रण राज्योनी सरहदोनी अंदरज आवेलां हतां.

अने तेओ तेमना पछी युगप्रधान बन्या हता. महावीर बुद्धना समकालीन हता, अने तेथी. बिम्बिसार, तेना अभयकुमार अने अजातशत्रुनाम बे पुत्रो, लिच्छवि [illegible] अने मल्लो, तथा मक्खलिपुत्र गोसाल आदि; ते बन्नेना समकालीन पुरुषो पण एकज हता. कारण के आ नामो बन्ने धर्मनां पुस्तकोमां आपणने मळी आवे छे आपणे उपर जे ऊहापोह करी गया छीए ते उपरथी सिद्ध थाय छे के वैशालीमां महावीरना अनुयायिओ घणीज मोटी संख्यामां रहेता हता तेना उल्लेख [illegible] पिटकोमांथी. मळी आवे छे. आ वस्तु जैनग्रंथ मांथी. पण [illegible] प्रमाणो मळी आवे छे के महावीरनुं जन्मस्थान वैशालीनी राजधानीमां ज हतुं. तथा ते राजधानीना मुख्य अधिष्ठाता साथे तेमनो खास संबंध हतो. आ बन्ने हकीकतोने परस्पर मळवतां ते एक बीजी साथे सुसंगत थई रहे छे एम स्पष्ट जणाई आवे छे. आ उपरांत बौद्धोए जणावेला निगण्ठोना केटलाक सिद्धान्तो, दाखला तरीके क्रियावाद अने पाणीमां जीव होवानी मान्यता विगेरे--जैनग्रंथोमां पण तेवाज रूपमां मळी आवे छे अने अंत, नातपुत्तना निर्वाणना स्थळ तरीके बौद्ध ग्रंथोमां जणावेली पापापुरी पण जैन ग्रंथोना उल्लेखानुसार यथार्थ ठरे छे.

महावीरना जीवनने आ [illegible]वाले बुद्धना जीवननी रूपरेखा साथे सरखावतां, एमां एक पण एवी बाबत नथी जणाई आवती के जेना विषयमां एवी शंका उत्पन्न थई शके के ए बाबत बुद्धना अनुकरण रूपे पाछळथी उपजावी काढवामां आवी हशे आम होवा छतां पण आ बन्ने महापुरुषोना जीवनमां [illegible] साधारण [illegible] जोवामां आवे छे तेनुं कारण तो [illegible] छे [illegible] जीवनोमां केटलीक सा[illegible] समानताओ मळी आवे ते घणुज स्वाभाविक छे अने आवी समानता एक प्राचीन हिंदु करतां अर्वाचीन युरोपीय इतिहासवेत्ताने घणी महत्त्ववाळी बाबत भासे तेमां पण आश्चर्य पामवा जेवुं नथी. महावीरनां केटलाक सगांनां नामो पण बुद्धना सगांनां नामो साथे समानता धरावे छे. उदाहरण तरीके—महावीरनी पत्नीनुं नाम यशोदा हतुं अने बुद्धनी पत्नीनुं नाम यशोधरा हतुं. आ बन्ने नामो लगभग सरखां ज छे. महावीरना मोटाभाईनुं नाम नन्दिवर्धन हतुं अने बुद्धना ओरमान भाईनुं नाम नन्द हतुं. बुद्धनुं कुमारावस्थानुं नाम सिद्धार्थ हतुं अने महावीरना पितानुं नाम पण तेज हतुं परंतु आ [illegible] नामसादृश्यथी जो कोई पण [illegible] होय तो ते एटलोज छे के [illegible] हतुं [illegible] प्रका-रनां नामो मोटा प्रमाणमां [illegible] बीजी पण एक बाबत छे के [illegible] नाना सम्प्रदायो [illegible] वा तेना [illegible] पण कांई असंभव जेवुं नथी कारण के [illegible] उपर जणावीश ते प्रमाणे ब्राह्मणो जेमने [illegible]रिओ [illegible] कहे तेवा त्यागीओनो क्रियाओ माटे घणो [illegible] संभव हतो.

बुद्ध अने महावीरना जीवननो [illegible] माटे हवे आपणे ते बन्ने पुरुषोना जीवननी मुख्य मुख्य बीनाओने साथे साथे मूकी विचार करीए. बुद्धनो जन्म कपिलवस्तुमां थयो हतो अने महावीर वैशालीनी पासे आवेला एक गाममां जन्म्या हता. ज्यारे बुद्धनी माता तेमना जन्म पछी तरतज मरण पामी हती, त्यारे महावीरना मातापिता [illegible] पुख्त उमर थतां सुधी विद्यमान हतां. बुद्ध पोताना पितानी हयातीमां अने तेमनी [illegible] मरजी विरुद्ध त्यागी बन्या हता. परंतु महावीरे पोताना मातापितानुं मरण थया पछी पण अधिकारी [illegible] संमति लई दीक्षा स्वीकारी हती. [illegible] छ वर्ष [illegible] तपश्चर्या करी हती अने महावीरे [illegible] हता [illegible] ळथी [illegible] पोताना ध्येयनी प्राप्ति [illegible] आवी जातनी तपश्चर्याथी कांई उपयोगिता नथी, एम पण जाहेर कर्युं हतुं. परंतु महावीरे पोतानी तपश्चर्याने ध्येयप्राप्तिमाटे अत्यावश्यक मानी हती,[2] एटलुंज नहीं परंतु तीर्थ-

१. See Petersburg Dictionary, ss. vv.

२. तपश्चर्यामां गळाएलां आ बार वर्षो, हमेशां, सिद्धत्व-

कर थया पछी पण तेमणे तेवी केटलीक तपस्याओनुं अनुसरण चालु राख्युं हतुं. मक्खलिपुत्र गोसाल जेटली मोटी विरुद्धता महावीरना संबधमां धरावे छे तेटली बुद्धना संबंधमां धरावतो जोवामां आवतो नथी. जैनधर्ममां प्रथम मतभेद उत्पन्न करनार जमालिनुं नाम बुद्धना विरोधिओनी नामावलीमां आवतुं नथी. बुद्धना सघळा शिष्योनां नामो महावीरना शिष्योथी जुदा प्रकारनां छे. आ भिन्नताना उदाहरणोमां उपसंहार तरीके अंतिम उदाहरण ए पण आपी शकाय छे के बुद्ध ज्यारे कुसिनगरमां निर्वाण पाम्या हता, त्यारे महावीर निश्चितरूपे बुद्धनी पहेलां, अने पापामां निर्वाण पाम्या हता.

महावीरना जीवन संबंधमां अहीं सुधी करेली चर्चा दरम्यान जे जे हकीकतो वाचको समक्ष मूकवामां आवी छे, तेना आधारे जैनधर्मनी उत्पत्ति बौद्धधर्मने आश्रित छे, अथवा नहीं, ते प्रश्ननुं सहेलाइथी निराकरण करी शकाशे. जो के घणा खरा विद्वानो एटली बाबतनो तो अस्वीकार नथी करता के बुद्ध अने महावीर ए बन्ने भिन्न भिन्न व्यक्तिओ न हती; परंतु, तेओ, ते उपरथी उपरोक्त प्रश्ननुं बधुं निराकरण थई जतुं होय तेम स्वीकारवा तैयार नथी. प्रो वेबरे 'जैनोना आगमो' उपरना पोताना विद्वत्ता भरेला निबंधमां लखे छे के—'जैनो मात्र बौद्धधर्मना एक सौथी जुना संप्रदायरूपे छे.' अने वळी जणावे छे के 'मारा मत प्रमाणे शाक्यमुनि बुद्धथी भिन्न एवा एक महापुरुष-के जेनो बौद्ध ग्रंथोमां बुद्धना एक समकालीन विरोधी तरीके उल्लेख करवामां आव्यो छे-ते द्वारा जैनधर्मनी स्थापना थई हती. एवा अर्थवाळी परपरागत मान्यताथी पण मारा सिद्धान्तने बाध आवतो नथी. परंतु आ बाबत, मने तो आथी उलटुं, एम सूचवती होय तेम जणाय छे के जैनोए इरादापूर्वक बुद्धनो अस्वीकार कर्यो छे. अने एम करवामां तेमने कारण मात्र सांप्रदायिक विरोधज छे. आ सिद्धान्तनी सत्यताना प्रमाण तरीके, आ बन्ने संप्रदायोना संस्थापकोनी कथाओमां जे महत्त्वनी सदृशताओ उपलब्ध थाय छे, ते रजु करी शकाय तेम छे.

प्रो. वेबरनी आ मुख्य दलील के जेना उपर तेमनो आखो सिद्धान्त उभो थएलो छे, तेनुं निराकरण मारा धारवा प्रमाणे, उपरनी चर्चाथी संपूर्ण रीते थई जाय छे. आ सिद्धान्तने तो संभावनानी कोटिमां पण स्थान आपवा माटे घणा मजबुत प्रमाणोनी आवश्यकता रहे छे.सामान्य रीते एम जोवामां आवे छे के दरेक विरोधी संप्रदाय पोताना संस्थापकना उपदेशो अने सिद्धान्तोने शुद्ध अने प्रामाणिक रीते समजाववानो दावो करतो होय छे परंतु ज्यारे कोई संप्रदाय पोताना मुख्यधर्मना मूळ संस्थापकना सिवाय अन्यपुरुषने प्रमाणरूप मानतो थाय छे, त्यारे ते या तो कोई एक अन्य विद्यमान संप्रदायनो स्वीकार करे छे अथवा तो ते एक नवोज संप्रदाय प्रवर्तावे छे. आ विचारानुसार चालु चर्चामां आ बेमांनो जो प्रथम पक्ष स्वीकारीए तो आपणे एमज मानवुं पडशे के जैनधर्म कोई पण रूपमां बौद्धधर्मनी पूर्वे अवश्य हयाती धरावतोज हतो. अने जो बीजो पक्ष स्वीकारीशुं तो आपणे आम कल्पना करवी पडशे के, बुद्धना विचारोथी विमनस्क थएला, आ जैन बनेला बौद्धोए पोताना मूळ शास्त्रोमांथी बुद्धना एकाद विरोधीने. शोधी काढी तेमां पोताना पाखंडी सिद्धान्तोनुं आरोपण कर्युं हतुं. परंतु आ पद्धतिनुं बीजा कोई बौद्ध संप्रदाये अनुकरण कर्युं होय तेम अद्यापि जणायुं नथी. चर्चानी खातर क्षणभर आपणे मानी लईए के, जे जातनो आरोप ए लोको उपर मूकवामां आवे छे, वास्तविकमां तेमणे तेमज कर्युं हतुं, तो मानवुं पडशे के तेमने आ कार्य घणीज दक्षतापूर्वक कर्युं हशे तेम करवामां तेमने पोताना प्राचीन धर्मग्रंथोमां केटलेक ठेकाणे मळी आवता 'निगण्ठो' अने 'नातपुत्त' संबंधी केटलाक उल्लेखोनो उपयोग करी, तेमां फेरफारो करवा

नी प्राप्ति माटे अत्यावश्यक मनातां हतां, अने अत्यारे पण जे कोई साधु, सांसारिक जीवननो त्याग करी कोई एक स्वर्ग या मोक्षनी अभिलाषा धरावतो होय छे, तेने माटे पण आ बार वर्षना तपश्चरणनुं विधान करेलुं छे.

१. Indische Studien, XVI, 210.

पडवा हशे; केटलीक नवी हकीकतो उपजावी काढवी पडी हशे; अने तेम करी तेमणे पोताना विरोधिओना जेवाज सर्वने प्रामाणिक लागे तेवा लेखो बनाव्या हशे. परंतु आ बधी अयुक्त कल्पनाओ छे. महावीरना संबंधमां तथा तत्कालीन परिस्थिति अने लोकोना विषयमां उपलब्ध थती जैन तेमज बौद्ध परंपराओ, परस्पर जे आटली सुंदररीते मळती होई, एक बीजीने सुधारनारी अने पूर्ण करनारी देखाय छे, ते बधी बाबतोनो खरो खुलासो अमे बतावेली उपर्युक्त रीतिज थई शके छे, अने ते मात्र एज के ए बन्ने धर्मोनी परंपराओ, मुख्यरीते एक बीजाथी स्वतंत्र छे अने जे वखते ए परंपराओनुं स्वरूप निश्चित थयुं हतुं ते वखते मनातां ऐतिहासिक सत्यांश तेमां नोंधाएलां छे.

हवे आपणे जैनधर्मना विषयमां लखनारा विद्वानोने, ए धर्म अने बौद्धधर्म वच्चे जणाई आवेला सादृश्योनो विचार करीए के जे सादृश्योए ए विद्वानोना, आ बन्ने धर्मोना पारस्परिक संबंध विषयक अभिप्राय उपर घणी मोटी असर करी छे.

प्रो. लेसने,[1] ए बन्ने धर्मोनी एकरूपताना हेतुमां चार मुद्दाओ रजु करेला छे अने ते द्वारा तेमणे जैनधर्म ए बौद्ध धर्मनी एक शाखा छे एम साबीत करवानो प्रयत्न कर्यो छे. अहीं आपणे ते चारे मुद्दाओनो अनुक्रमे विचार करीशुं.

प्रो. लेसननी पहेली दलील ए छे के बन्ने धर्मोना प्रवर्तकोने जिन, अर्हत, महावीर, सर्वज्ञ, सुगत, तथागत, सिद्ध, बुद्ध, संबुद्ध, परिनिर्वृत, मुक्त इत्यादि प्रकारनां एकज सरखां बिरुदो या विशेषणो लगाडेलां जोवामां आवे छे. तेथी मूळमां ते बन्ने एकज होवा जोईए इत्यादि

आ बधा शब्दो अल्प या अधिक प्रमाणमां बन्ने धर्मोना ग्रंथोमां जोवामां आवे छे, एमां संशय नथी. परंतु तेमांए खास ध्यान खेंचवा लायक तफावत रहेलो छे; अने ते ए छे के जिन अने कदाचित् श्रमण ए बे शब्दो बाद करतां ज्यारे एक धर्म अमुक बिरुदोनो विशेष उपयोग करे छे त्यारे तेनो प्रतिस्पर्धी (बीजो) धर्म बीजा बिरुदोनो प्रयोग वधारे पसंद करे छे. उदाहरण तरीके, साधारण रीते ज्यारे बुद्ध, तथागत, सुगत अने संबुद्ध आ विशेषणो शाक्यमुनिने हमेशां लगाडवामां आवेलां होय छे, त्यारे महावीर माटे तेमनो प्रयोग क्वचित् ज थएलो होय छे वर्धमाननां बिरुदो तरीके वीर अने महावीर शब्दनो ज हमेशां प्रयोग करवामां आव्यो छे. आ करतां पण अधिक भेद सूचक एक विशेषण तीर्थंकर छे. आ शब्दनो अर्थ जैन ग्रंथोमां 'धर्मप्रवर्तक' एवो थाय छे. परतु बौद्ध ग्रंथोमां ते शब्द पाखंडीमतना संस्थापकना अर्थमां वपराएलो छे. आ प्रमाणे, आ बन्ने संप्रदायोए उक्त विशेषणसंग्रहमांथी अमुक अमुक विशेषणोने जे खास रीते पसंद करी लीधेलां जोवामां आवे छे ते उपरथी वास्तविकमां आपणने कयुं अनुमान करवानुं कारण मळे छे? शुं आपणे एम मानवुं के जैनोए आ शब्दो बौद्धो पासेथी लीधा छे? हुं एम नथी मानी शकतो. कारण ए छे के जो आ शब्दो एक वखत अमुक बिरुदरूपेज नक्की थई चुक्या होय अथवा तेनी व्युत्पत्ति उपरथी निकळता अर्थ करतां कोई खास अर्थमां रूढ थई गया होय तो ते शब्दोनो या तो तेज रीते स्वीकार थई शके अगर तो अस्वीकार थई शके. परंतु जे शब्द एक वखत अमुक खास अर्थसूचक बनी गयो होय, तेने, बौद्धो पासेथी लेनारा जैनोए, फरी तेना असल अर्थमां वापर्यो हतो एम मानवुं तद्दन अशक्य छे. आ बाबतनो स्वाभाविक खुलासो तो एज थई शके के दरेक कालमां अमुक मानसूचक विशेषणो तथा नामो प्रचलित होय छे अने ते विशिष्ट गुणधारी पुरुषोने लगाडवामां आवे छे. आवां विशेषणो तथा गुणवाचक नामो ते वखते पण प्रचलित हतां. आ शब्दोनो बधा संप्रदायो तेना मूळ अर्थमां, विशेषणरूपे प्रयोग करता हता. आ शब्दोमांना केटलाक शब्दोने, तेमां रहेली अर्थशक्ति अनुसार बधा संप्रदायोए पोताना धर्मप्रवर्तको माटे पसंद कर्या हता अने आ पसंदगीमां तेओ शब्दनी अर्थशक्ति तरफ तो जोताज हता! परंतु साथे साथे तेओ ए बाबत तरफ पण जोता हता के कया शब्दने पोताना कया प्रतिस्पर्धी मत-

1. Indische Alterthumskunde IV. p. 763 seq.

बौद्धोए तेमनी सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति माटे पसंद कर्यो छे. उदाहरण तरीके, तीर्थंकर शब्दनो व्युत्पत्त्यर्थ धर्मनो स्थापनार एटले धर्मप्रवर्तक एवो थाय छे. अने तदनुसार जैन तथा अन्य संप्रदायोए तेज अर्थमां तेनो प्रयोग करेलो छे; परंतु बौद्धोए तेने ते अर्थमां न वापरतां प्रतिस्पर्धी या पाखंडी मतना आचार्यना अर्थमां वापर्यो छे अने तेम करी तेमणे, जेओ ते शब्दने मानसूचक अर्थमां वापरता हता तेमना तरफ पोतानो द्वेष व्यक्त कर्यो छे. आथी ऊलटुं बीजा दाखलामां, बुद्ध शब्द सामान्य रीते, मुक्त अर्थात् संसाररहित थएला आत्माना अर्थमां वपराय छे; अने एज अर्थमां जैन ग्रंथोमां ते शब्दनो प्रयोग थतो अद्यापि दृष्टिगोचर थाय छे, परंतु बौद्ध ग्रंथोमां ए शब्द खास तेमना धर्मप्रवर्तकना बिरुद रूपे रूढ थएलो छे. आ हकीकत उपरथी ए अनुमान सहज थई शके छे के जे समयमां बौद्धोनी सांप्रदायिक परिभाषा निर्णीत थई ते वखते तेओ प्रकटरूपे जैनोना प्रतिपक्षिओ लेखाता होवा जोईए. आथी उलटुं, एटले जैनोए जे वखते पोतानी परिभाषा स्थिर करी ते वखते तेओ बौद्धोना प्रतिपक्षरूपे प्रसिद्ध नहीं थएला होवा जोईए.

बुद्ध धर्मनी पूर्वकालिकताना पक्षमां, प्रो. लेसन बीजी दलील ए रजु करे छे के, ए बन्ने धर्मोमां मृत्युशील मनुष्योनी अर्थात् मनुष्यरूप धर्मप्रवर्तकोनी देव तरीके उपासना करवामां आवे छे. तथा तेमनी मूर्तिओने मंदिरोमां पूजवामां आवे छे. इत्यादि.

बौद्धधर्म अने जैनधर्म सिवाय एवो अन्य कोई पण संप्रदाय के जेनो संस्थापक, महावीर अने बुद्धनी माफक, पोताने सर्वज्ञ अने सर्वथा कृतकृत्य कहेवडावतो हतो आपणी प्रत्यक्ष जाणमां आवी शके तटला समय सुधी टकी शक्यो नथी. तेथी आपणने ए बन्ने धर्मो सिवाय आ बाबतनुं त्रीजुं प्रत्यक्ष उदाहरण मळी शके तेम नथी. तो पण, जे बीजा जूना संप्रदायोना विषयमां आपणने जे काई ज्ञान प्राप्त छे ते उपरथी एम अनुमान करी शकाय छे के घणा भाग ते सघळा संप्रदायो, अने तेम नहीं तो छेवटे तेमांना केटलाक तो अवश्यमेव, बौद्धो अने जैनोनी माफक पोताना तीर्थंकरो—धर्मप्रवर्तकोने देवरूपे मानता-पूजता होवा जोईए. आथी निश्चितरूपे एम केम कही शकाय के जैनोए पोतानी आ बाबत विषयक आचार-विचारो बौद्धो पासेथीज लीधा हता पण बीजा पासेथी नहीं? आथी विरुद्ध एम तो कहेवाने कारण छे के बुद्धना उपदेशमां एवुं कांई पण तत्त्व जोवामां आवतुं नथी जेथी तेमना अनुयायिओने बुद्धना मंदिरो बांधवा माटे अगर तेमनी मूर्तिओ स्थापित करवा माटे प्रोत्साहन मळी शके. तेमना उपदेशोमां एवी तो घणीक बाबतो अवश्य नजरे पडे छे के जे आवा प्रकारनी भक्ति-पूजा-अर्चानी (अर्थात् मूर्ति पूजानी) पद्धति तरफ विरुद्धता बतावती होय छे परंतु जैनोना विषयमां आवुं कांई कारण बतावी शकाय तेम नथी. तेओ जो पोताना तीर्थंकर महावीरने देवस्वरूपे पूजे तो तेमां तेओ पोताना सिद्धान्त विरुद्ध वर्तन करे छे, एम कही शकाय तेम नथी. खरी रीते आ विषयमां मारुं पोतानुं स्वतंत्र मानवुं तो एवुं छे के असली बौद्धधर्म या जैनधर्मने मूर्तिपूजा साथे कांई संबंध नहीं होवो जोईए. कारण के मूर्तिपूजानी उत्पत्ति निर्ग्रन्थो द्वारा नहीं पण गृहस्थो द्वारा थएली छे. तेनी उत्पत्तिनुं कारण पण ए लागे छे के ज्यारे भारतना धर्मविषयक विकासक्रममां भक्ति एक मोक्षना मुख्य साधन तरीके मनावा लागी त्यारे लोकोने पोताना प्राचीन अणघड (जंगली) देवी-देवताओनी प्रचलित पूजाथी असंतोष रहेवा लाग्यो अने तेथी तेमणे केटलाक उच्च प्रतिना उपास्योनी पूजा करवानी प्रथा शरु करी खरी वस्तुस्थिति आवी होवाथी चैत्यस्थापन तथा मूर्तिपूजामां बौद्धोने परांगामी अने जैनोने तेमना अनुकर्ताओ न मानतां मारा विचार प्रमाणे, आ बन्ने संप्रदायोए स्वतंत्र रीतेज हिंदु लोकोना धार्मिक विकासना शाश्वत अने अनिवार्य प्रभावने वश थई आ प्रथा स्वीकारी हती, एम मानवुं जोईए.

आ बन्ने संप्रदायो वच्चेनी समानतानी त्रीजी दलील, ए बन्नेमां सरखी रीते मळी आवता अहिंसाना सिद्धान्त विषयनी छे. आ दलीलनी चर्चा आगळ उपर करवामां आवशे. तेथी अहीं हुं प्रो.

लेसननी चोथी दलील उपर आवुं छुं. ते दलील ए छे के बौद्धो तेमज जैनो बन्ने जगतना इतिहासनुं परिमाण बताववामां एटली मोटी काळसंख्याओ वापरे छे के जे समर्थमां समर्थ कल्पनाशक्तिने पण आंजी नाखे छे अने त्रस्त करी दे छे. इत्यादि. अलबत, ए वात तो खरी छे के आ विषयमां जैनो बौद्धोने पण पाछळ पाडी दे छे. परंतु, आ प्रकारनी कालगणनामां जैनो मात्र बौद्धोनेज मळता आवे छे एम कांई कही शकाय नहीं. ब्राह्मणोनां पण आ बाबतमां तेवांज वर्णनो आपणने मळी आवे छे. जैनोनी कालगणनात्मक पद्धतिनां परिमाणो, ब्राह्मणो तेमज बौद्धो बन्नेथी सरखी रीते जुदां पडे छे. जैनोना उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणीरूप कालचक्रनी तथा ते दरेकना छ छ आराओनी कल्पना जेटले अंशे बौद्धोना चार महाकल्पो तथा ८० नाना कल्पो के जे विश्वना क्रमथी थता सर्ग अने प्रलयरूपी नाटकना अंको तथा दृश्यो जेवा लागे छे, तेमनी कल्पनाथी भिन्न छे, तेटलेज अंशे ते ब्राह्मणोनी युगो अने कल्पोनी कल्पनाथी पण भिन्न छे. मारो एवो मत छे के बौद्धोनी कल्पना ते ब्राह्मणोनी युगपद्धतिनुं संस्कारित रूप छे अने जैनोना उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणीरूप कालचक्रनी कल्पना ब्रह्माना दिवस अने रात्रिनी कल्पनाने आधारे उत्पन्न थएली छे.

प्रो. लेसननी त्रीजी दलीलनी चर्चा उपर मुलतवी राखवानुं कारण एटलुंज हतुं के ते दलील अहिंसाना सिद्धान्त विषयक होवाथी तेने, ए बन्ने धर्मोना अन्य नीतिविषयक विचारो साथे वधारे सारी रीते चर्चवानी आवश्यकता छे. प्रो. वेबरे[1] जैनोना पंचमहाव्रतो अने बौद्धोना पांच मुख्य पापो अने शीलोनी वच्चे खास निकटवर्ती संबंध बताव्यो छे; अने प्रो. विन्डिशे (Windisch)[2] जैनोना पंच महाव्रतोनी, बौद्धोनां दश शीलो (दससील) साथे सरखामणी करी छे.

बौद्ध भिक्षुना दश शीलो नीचे मुजब छे[1]:—

१ हुं प्राणीनी हिंसा न करवानुं व्रत लउं छुं.
२ हुं चोरी न करवानुं व्रत लउं छुं.
३ हुं अब्रह्म—अपवित्रताथी विरमवानुं व्रत लउं छुं.
४ हुं असत्य न बोलवानुं व्रत लउं छुं.
५ हुं प्रगति अने सदाचारनुं प्रतिबन्धक एवुं मद्यपान न करवानुं व्रत लउं छुं.
६ हुं निषिद्ध काळे भोजन न करवानुं व्रत लउं छुं.
७ हुं नृत्य, गान, संगीत अने नाटकोथी विरक्त थवानुं व्रत लउं छुं.
८ हुं हार, सुगंधी लेपन तथा अलंकारो न वापरवानुं व्रत लउं छुं.
९ हुं ऊंची अगर पहोळी पथारीनो उपयोग नहीं करवानुं व्रत लउं छुं.
१० हुं सुवर्ण तथा चांदीनो परिग्रह न करवानुं व्रत अंगीकार करुं छुं.

आ उपरांत बौद्धधर्ममां अष्टांग शीलो (अट्ठगसील) मानेलां छे तेमांना पहेलां पांच दरेक बौद्धे आचरवानां छे; परंतु छेल्लां त्रण खास करीने धार्मिष्ठ गृहस्थोने तो अवश्य पाळवा माटे भलामण करेली छे. ए अष्टांग शील आ प्रमाणे छे[2]:—

१. हिंसा न करवी.
२. चोरी न करवी.
३. असत्य भाषण न करवुं.
४. मद्यपान न करवुं.
५. ब्रह्मचर्य पाळवुं (अधम्म एवो परस्त्रीसंग न करवो.)
६. समयविरुद्ध रात्रिए भोजन न करवुं.
७. हार, चंदन आदि सुगंधी पदार्थो धारण न करवा.
८. जमीन उपर मात्र सादडी पाथरीने सुवुं.

बौद्धोनां पांच व्रतो, नीचे आपेलां जैनयतिओनां पांच महाव्रतो साथे लगभग मळतां आवे छे:—

१. अहिंसा—प्राणीनी हिंसा न करवी.
२. सूनृत—जुठुं न बोलवुं.
३. अस्तेय—नहीं आपेलुं न लेवुं.

१. Fragment der Bhagavati, II, pp. 175, 185.

२. Z. D. M. G. XXVIII, p. 222, note.

१. Rhys Davids, Buddhism, p. 160.

२. Rhys Davids, Buddhism, pg. 139.

४ ब्रह्मचर्य-स्त्रीसंयोगथी विरमवुं.

५. अपरिग्रह-दुनियादारीनी चीजोमां आसक्ति न करवी. खास करीने ममत्वभावनो त्याग करवो.

जैनोनुं पांचमुं व्रत, बौद्धोना पांचमा शील करतां वधारे व्यापक छे. परंतु बाकीनां व्रतो, सहेज क्रमभेद सिवाय (जेमके बौद्धोनां नं. १-४) सरखांज छे. आ बन्ने धर्मोनां व्रतोनी वच्चेनुं साम्य खरेखर एटलुं बधुं अद्भुत छे, के सामान्य रीते एम सहजे अनुमान थई जाय छे के, आ बेमांथी एक धर्मवाळाए बीजा धर्ममांथी पोतानां व्रतो लीधां होवां जोईए. परंतु तेम छतां पण ए प्रश्न तो उभोज रहे छे के असलमां आ व्रतो जैनोए बौद्धो पासेथी लीधेलां के बौद्धोए जैनो पासेथी ? वास्तविक रीते विचार करतां जणाय छे, के आ बाबतमां जैनो अथवा बौद्धो-ए बेमांथी कोई पण एक संप्रदाय मौलिकतानो दावो करी शके तेम नथी. कारण के आ बन्ने धर्मोए प्राचीन ब्राह्मण धर्मना सन्यासिओना जे पांच व्रतो हतां तेनोज स्वीकार करेलो छे. ब्राह्मण संन्यासिनां पांच व्रतो नीचे प्रमाणे छे[1]:--

१. अहिंसा.
२. सत्य.
३. अस्तेय.
४. ब्रह्मचर्य.
५ त्याग.

अने पांच गौण व्रतो :--

६. क्रोध न करवो.
७. गुरुनी आज्ञामां रहेवुं.
८. अनौद्धत्य.
९. शौच.
१०. आहारशुद्धि.

संन्यासिनां उपर्युक्त पांच मोटां व्रतोमांनां पहेलां चार व्रतो जैन भिक्षुनां चार व्रतोने मळतां आवे छे. अने क्रम पण एकज सरखो छे. आथी संभवित छे के जैनोए पोतानां व्रतो ब्राह्मणो पासेथी लीधां होवां जोईए; नहीं के बौद्धो पासेथी. एम मानवानुं बीजुं पण एक कारण छे, अने ते ए के, बौद्धोए सत्यव्रतने बीजुं स्थान न आपतां त्रीजुं अगर चोथुं स्थान आप्युं छे, अने तेम करी तेमणे व्रतोना पुरातन क्रमने बदल्यो छे. वळी, जैनो बौद्धो करतां घणाज प्राचीन अने अधिक प्रतिष्ठित एवा ब्राह्मणोना संन्यासाचरणने मूकी बौद्धोना आचरणनुं अनुकरण करे ए मानवुं पण असंभवित लागे छे.

आ स्थळे जणाववुं जोईए के, आ त्रणे धर्मोमां पांचमुं व्रत, पोतपोताना आचारने खास अनुलक्षीने बनाववामां आव्युं छे. जेम के ब्राह्मण सन्यासिनुं पांचमुं त्याग (उदारता) व्रत एवुं छे के जैन अगर बौद्ध भिक्षुना आचारो तरफ जोतां, स्वाभाविक रीतेज ते तेमना माटे विहित थई शके तेवुं लागतुं नथी. महावीरनी पूर्वे जैनधर्ममां चार महाव्रतो पाळवामां आवतां हतां; अने हालनुं चोथुं व्रत ते वखते पांचमा व्रतमां अन्तर्गत थतुं हतुं. परंतु महावीरे फरीथी आ चार व्रतनां पांच व्रत बनाव्यां हतां. बीजी तरफ बौद्धो पण पांच शीलो माने छे. ते उपरथी एम जणाय छे के पूर्वे आ पांचनी संख्याने खास रीते पवित्र मानवामां आवती हती.

उपर्युक्त चर्चाना परिणामे आपणे ए स्पष्ट समजी शकीए छीए के जैनो तथा बौद्धोना भिक्षुसंप्रदायनो मूळ आदर्श कोण हतो ? ए आदर्श ब्राह्मण धर्मनो संन्यासी संप्रदाय हतो अने एमांथीज तेओए पोत पोताना यतिजीवन माटे घणाक महत्त्वना आचारो तथा नियमो लीधा हता. आ प्रकारनुं मारुं अनुमान कांई खास नवीन नथी. प्रो. मेक्समुलरे अत्यार आगमच पोताना Hibbert Lectures (पृ. ३५१) मां एवो विचार प्रदर्शित कर्यो छे अने तेज प्रमाणे प्रो. बुह्लरे पोताना बौधायन सूत्रना अनुवादमां; तथा प्रो. केर्ने पोताना भारतीय बौद्ध धर्मना इतिहास (History of Buddhism in India) मां पण तेवोज अभिप्राय आपेलो छे. हवे हुं जैन साधुनुं जीवन केटले अंशे ब्राह्मणधर्मना संन्यासी-जीवनना अनुकरणरूपे छे ते बतावषा

१ बौधायन २, १०, १८; जुओ, बुल्हरनो अनुवाद Sacred Books of the East, Vol. XIV पृ. २७५.

माटे गौतम अने बौधायन धर्मसूत्रमां[1] आपेला संन्यासीना नियमोने जैन यतिओना नियमो साथे सरखाववा इच्छुं छुं. घणीखरी बाबतोमां बौद्धो पण एज नियमोने अनुसरे छे तथापि तेनो पण यथावसरे संक्षेपमां सूचना करवामां आवशे.

११. 'संन्यासीए कोई पण प्रकारनो संग्रह करवो जोईए नहीं.'[2] (गौतम धर्मसूत्र) जैन तेमज बौद्ध भिक्षुओने पण एवी कोई पण वस्तु राखवानो निषेध करवामां आव्यो छे के जेना माटे तेने 'आ वस्तु मारी छे' एम कहेवानो प्रसंग आवे.–जुओ जैनोनुं पांचमुं (अपरिग्रह) व्रत. जैन भिक्षु वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि जे केटलीक वस्तुओ पोतानी पासे हमेशां राखे छे तेने पण तेओ पोतानी मिल्कतरूप राखता नथी. परंतु फक्त धर्मक्रियाना आचरण माटे आवश्यक साधनो (धर्मोपकरणो) मानी तेनो उपयोग करे छे.

१२. 'ब्रह्मचर्य' नुं तेणे पालन करवुं जोईए.' बौधायननी माफक जैनोने पण [illegible] छे. बौद्धो पण पांचमुं व्रत माने छे.

१३. 'वर्षाऋतु दरम्यान तेणे एकज स्थळे वास करवो जोईए.'[3] आ सूत्र उपरनी पोतानी टिप्पणीमां बुहलर लखे छे के:–'आ नियम उपरथी एम सूचित थाय छे के बौद्धो तथा जैनोना वस्सो (वर्षावास) पण ब्राह्मणोना (आ व्रतना) अनुकरणरूप छे.

१४. 'मात्र भिक्षा लेवाने अर्थेज तेणे गाममां प्रवेश करवो जोईए.' आ बाबतमां जैनो आटला बधा सख्त नथी. तेओ साधुने गाम अगर नगरमां सूवानी पण छूट आपे छे. तथापि घणा लांबा वखत सुधी रहेवानो तो तेमने पण निषेधज करेलो छे. महावीर गाममां एक रात अने नगरमां पांच रातथी वधारे क्यारे पण रह्या न हता.[4]

१५. 'तेणे मोडेथी (लोकोए भोजन करी लीधां पछी), भिक्षा माटे जवुं जोईए. तथा बीजो वार जवुं न जोईए'.[5] जैन साधुओ सवारे अगर बपोरे भिक्षा अर्थे भ्रमण करे छे. तेम करवामां कदाच तेमनो उद्देश पोताना प्रतिस्पर्धी भिक्षुओना समागमना प्रसंगने दूर राखवानो हशे. खास करीने तो तेओ दिवसमां एकज वार भिक्षा माटे जाय छे. परंतु एकथी वधारे उपवास करेला साधुने दिवसमां बे वखत पण जवानी छूट आपेली छे[6].

१६. '(मिष्टान्न माटे) सर्व लिप्साओनो तेणे त्याग करवो जोईए.' आज वाक्य जैनोना पांचमा महाव्रतना चोथा पेटा वाक्यमां पण विहित करवामां आवेलुं छे. ते उपरांत, भिक्षामां ग्रहण करे [illegible] नियमो छे ते उपरथी पण [illegible] जणाय छे.

१७. 'तेणे [illegible] वाणी, दृष्टि (अने) [illegible] अंकुश राखवा जोईए.' आ बाबत जैनोना त्रण गुप्तिओ, अर्थात् मन, वाणी, अने कायानां संयमननी साथे लगभग एक भाव धारण करे छे.

१८. 'तेणे नग्नताने ढांकवा खातर वस्त्र पहेरवुं. वस्त्रोना संबंधमां जैनोना नियमो आटला बधा सादा नथी. तेओ पोताना यतिने नग्न रहेवा माटे छूट आपे छे तेमज एक, बे तथा त्रण सुधी वस्त्रो वापरवानी पण छूट आपे छे. परंतु सशक्त अने युवान साधुने नियमपूर्वक एकज वस्त्र वापरवानुं विधान करेलुं छे.[7] महावीर तो नग्नज रह्या हता[8] अने तेथी बने तेटलुं तेमनुं अनुकरण करवामां

१ जुओ, बुह्लरनुं भाषांतर, Sacred Books of the East, Vol. II, pp. 191, 192. अहीं आपेला अंको गौतमना त्रीजा अध्यायना सूत्रोने अनुसरीने छे: बौधायनना तेने मळतां सूत्रो टिप्पणीमां सूचवेलां छे.

२ सरखावो. बौधायन २, ६, ११, १६.

३. बौधायन २, ६, ११, २०.

४. आचारांग सूत्र २, २, २, § ६.

१ कल्पसूत्र, जिनचरित्र, § ११९.

२ बौधायन, २, ६, १२, २२.

३ कल्पसूत्र सामाचारी, § २०.

४ आचारांग सूत्र, २, १५, ५, § १५.

५ कल्पसूत्र, जिनचरित्र § ११८.

६ बौधायन, l. c. § १६. ४.

७ आचारांग सूत्र २. ५, १, § १.

८ कल्पसूत्र, जिनचरित्र § ११७.

तत्पर एवा जिनकल्पी साधुओ पण नग्नज रहेता हता एम छतां, तेओने पण नग्नता ढांकवानी छूट हती.[1]

१९ 'केटलाक (एम जणाय छे के तेणे) जीर्ण-वस्त्र धोईने (पहेरवुं जोईए).' बौधायनमां[2] जणाव्युं छे के, 'तेणे वस्त्रने पीत-रक्त वर्णथी रंगीने पहेरवु जोईए.' आ नियम जैनोना करतां ब्राह्मणोना नियम साथे वधारे मळतो आवे छे. कारण के जैन यतिओने तो वस्त्रोने धोवानो अगर रंगवानो निषेध करेलो छे[3] तेमणे तो जे स्थितिमां जे वस्त्र मळ्युं होय तेज स्थितिमां तेने पहेरवानुं छे. तेम छतां पण कहेवु जोईए के जैनो ब्राह्मणोना ए नियमना--के जेनो भावार्थ मात्र एटलोज छे के संन्यासिओनो वेश बने शके तेटलो सादो अने क्षुद्र होवो जोईए, तेना मूळआशयने पराकाष्ठानी सीमाए पहोंचाडी गया छे. जैनो पोताना आचारनी कठोरताना विषयमां ब्राह्मण प्रतिस्पर्धिओने पाछळ पाडी देवामां एक प्रकारनुं गौरव समजता होय तेम देखाय छे. अने तेथी तेओ मलिनता अने कुत्सितताने यतिजीवननुं परम भूषण मानवानी भूल करे छे. आथी विरुद्ध बौद्धो हमेशां पोताना आचारने जेम बने तेम मानव-समाजना बंधारणने अनुकूल बनाववा प्रयत्नशील रह्या छे.

२०. 'तेणे वृक्षो अथवा छोडवाओना भागोने लेवा नहीं. परंतु जो ते (पोतानी मेळे) जुदा थई गया होय तो ते लेवामां बाध नथी.' जैनोनो पण तेवोज नियम छे[4] परंतु तेओ आथी पण आगळ वधीने पोताना यतिओ माटे फक्त तद्दन अचित्त वनस्पति अने फळ इत्यादिकनेज भिक्षामां लेवानी छूट आपे छे.

२१. 'वर्षाऋतु सिवाय तेणे (एकज) गाममां बे रात रहेवुं नहीं.' आपणे उपर जोई गया छीए तेम महावीर तो आज नियम पाळता हता. पछी अन्य साधुओए गमे ते रीते तेनुं आचरण कर्युं होय

२२. 'तेणे या तो शिर मुंडाववुं जोईए अगर एक शिखा मात्र राखवी जोईए.' जैनोए आ नियमने सुधारी पोताना साधुओ माटे मात्र आखुं मस्तक मुंडाववानोज विधि करेलो छे. बौधायननी[1] अनुसार संन्यासी बनती वखते ब्राह्मणे 'पोताना माथाना, दाढीना तथा शरीरना वाळ कढाववा जोईए तथा नख पण उतराववा जोईए.' जैनो पण दीक्षा लेती वखते वाळ कपाववाना आ आचारनुं अवश्य पालन करे छे अने आथीज 'मुंड बनीने (अगर पोताना वाळ उखेडी नाखीने) अगार छोडी अनगार स्थितिमां प्रवेश कर्यो.' आवो उल्लेख सर्वत्र थएलो छे[2]

२३. 'तेणे बीजोनो नाश नहीं करवो जोईए.' वांचनार आचारांगना बीजा स्कंधना घणा सूत्रोमां जोई शकशे के अंड, जीव, बीज अंकुरादिने हानि न थई जाय ते माटे जैन भिक्षुने केटलो बधो सावचेत रहेवानी भलामण करवामां आवी छे. एम जणाय छे के जैनोए उपर्युक्त नियमने वनस्पति अने प्राणिवर्गना सघळा सूक्ष्मजीवोने लागु पडे तेवो एक व्यापक नियम बनाव्यो छे.

२४. '(तेणे सघळा) जीवो प्रत्ये उदासीनता राखवी जोईए, पछी ते जीवो गमे तो तेमा प्रति मायाळुपणुं धरावता होय के क्रूरपणुं.'

२५. 'तेणे ऐहिक अगर पारलौकिक कल्याण-माटे कोई पण प्रवृत्ति करवी जोईए नहीं.'

छेल्ला बे नियमो तो जैनोना कोई पण आगम-मांथी अक्षरशः बताबी शकाय तेवा छे. कारण के ते जैनधर्मना तत्त्वना मूळभूत छे. महावीरे आ नियमोनुं यथार्थरीते परिपालन कर्युं हतुं. आना प्रमाणमां नीचेना उल्लेखो बस थशेः 'तेमना (महावीरना) शरीर उपर चार मास करतां अधिक समय पर्यंत अनेक प्रकारना प्राणिओनो झुंड जाम्यो हतो; तेओ ते उपर हरता फरता हता अने विविध क्लेशो आपता हता.'[3] 'तेमणे हमेशां त्रिगुप्तिपूर्वक तृण, शीत, अग्नि, माखी, मशक आदिथी जनित अनेक

1 आचारांग सूत्र १, ७, ५, १.

2 [illegible] २१.

3 आचारांग सूत्र २, ५, १. १, अने १, ७, ५, २.

4 सरखावो, आचारांग सूत्र. २, २, ३, १.

5 आचारांग २, १, ७, ६, अने ८ मुं अध्ययन.

1 बौधायन, २, १०, १७, १०.

2 'मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए'

3 आचारांग सूत्र १, ८, १, २,

प्रकारनां कष्टो सहन कर्यां हतां.'[1] 'तेमणे देव, मनुष्य अने तिर्यंच जनित अनेक अनुकूल तेमज प्रतिकूल बनावो समताथी सहन कर्या, खम्या तथा अनुभव्या हतां' इत्यादि. जैनयतिना संबंधमां एम पण वारंवार कहेवामां आवे छे के ते पोताना आध्यात्मिक जीवननी चरम अवस्थामां 'मरण या जीवित ए बन्नेमां निराकांक्षी होय छे.'

बौधायने आपेला बीजा केटलाक नियमो पण जैनोना आचारो साथे घणाज मळता आवे छे जेमकेः—'तेणे वचन विचार अने कर्म ए त्रणे प्रकारनां कष्टदायक साधनो द्वारा कोई पण सजीव जीवनी हिंसा करवी जोईए नहीं.' आ नियम जैनोना प्रथम महाव्रत (जुओ उपर) नुं एक स्पष्टीकरण मात्र छे. आ 'कष्टदायक साधनोने' जैनो शस्त्र कहे छे.

'तेणे शौचादि कर्म माटे अपेक्षित जळने गळवा सारु वस्त्र राखवुं जोईए.' 'तेणे (आवश्यक) शौचादि (कुवा अगर तळावमांथी) काढेला अने गळेला पाणीथी करवां जोईए.'[6] आ नियमोनुं जैन साधुओ यथार्थ पालन करे छे. तेओ पाणी गळवा माटे खास वस्त्र राखे छे. टीकाकार गोविन्द, आ पवित्र,-एटले पाणी गळवाना वस्त्रखंडनो अर्थ 'मार्ग उपरथी जंतुओने दूर करवा माटे राखेलो कुश जातना तृणनो एक गुच्छ,' एम करे छे.[7] गोविन्दनो बतावेलो आ अर्थ जो यथार्थ होय अने तेना प्रमाणमां जो कांई साची अने प्राचीन परंपरा रहेली होय-अने ते मारा मानवा प्रमाणे तो अवश्य होवीज जोईए--तो जैन साधुओ मार्गमां चालती वखते वच्चे आवता तथा बेसती वखत नीचे आवता जीवजंतुओने दूर करवा माटे जे रजोहरण अथवा पादप्रोञ्छन राखे छे, तेनुं प्रतिरूप ब्राह्मण ग्रंथोमां पण मळी आवे छे एम आपणे अहीं जणावी शकीशुं.

ब्राह्मण संन्यासिजीवनना उपकरणो तरीके 'दण्डो (यष्टिकाओ), रज्जु, पाणी गाळवामाटे वस्त्र खंड, जलपात्र अने भिक्षापात्र छे.' जैन साधुओ पण दण्डो राखे छे–अत्यारे तो अवश्य राखे छे. परंतु बौद्धो तरफ दृष्टि करतां, पिटकोमां एवो एक पण उल्लेख मारा जोवामां आव्यो नथी के जेमां यष्टिका राखवा माटे स्पष्ट विधान करवामां आव्युं होय.

जैन साधुओ पण ब्राह्मण संन्यासिओनी माफक भिक्षापात्र अने तेने बांधवानी एक दोरी तथा जलपात्र[2] राखे छे; पाणी गळवा माटे वस्त्रखंड अने रजोहरण आ बे वस्तुओ राखवा संबंधी उल्लेख तो आनी पहेलां ज आपणे करी आव्या छीए. जैन साधुनुं जो कोई पण एवुं खास उपकरण होय के जे अन्य संन्यासिओ पासे नहीं देखातुं होय, ते तेमनी एक मात्र मुखवस्त्रिका (मुहपत्ती) छे. आ बधी हकीकत उपरथी जणाशे के जैनोनां घणां खरां उपकरणो, तेमना माटे आदर्शरूप बनेला एवा ब्राह्मण संन्यासिओ अगर भिक्षुओनां जेवां ज छे.

'तेणे तेज अन्न लेवुं जोईए के जे विना मागे मळेलुं होय. जेना संबंधमां पहेलां कांई व्यवस्था थएली न होय, जे अकस्मात् ज मळी गयुं होय, अने जे फक्त पोताना जीवितने टकाववा पूरतुं ज होय.'[3]

जैनधर्मना 'भिक्षाचर्याना नियमो' वांचवाथी सहजे जणाई आवे तेम छे के ब्राह्मण संन्यासिओ माटे अन्नग्रहण करवा संबंधी जे जातना नियमोनुं बौधायने उपर प्रमाणे विधान कर्युं छे, तेज प्रकारना नियमो प्रमाणे मळेला आहारने जैनो पण 'शुद्ध अने ग्राह्य' मान्यो छे. बौद्धो आ विषयमां आटला बधा सख्त नथी. तेओ तो मात्र कोईने

१. आचारांग सूत्र १, ८, ३, १.
२ कल्पसूत्र, जिनचरित्र, § ११७, अंतिमभाग.
३. उदाहरण तरीके कल्पसूत्र सामाचारी § ५१.
४. बौधायन २, ६, ११, २३.
५. आचारांग सूत्र, पृ. १, नोट २.
६. बौधायन २, ६, ११, २३.
७. जुओ प्रो. बुल्हरनुं भाषांतर पृ. २६०, टिप्पण.

१ बौधायन २, १०, १७, ११.
२. जो के भिक्षापात्र उपरांत साधुने जलपात्र राखवानी पण छूट आपेली छे खरी तथापि एकज पात्र राखवु अधिक उत्कृष्ट मनाय छे.
३. बौधायन २, १०, १८, १३.

तेमना माटेज तैयार करवामां आवेला भोजनना आमंत्रण सुद्धांनो स्वीकार करे छे.

ब्राह्मण संन्यासी अने जैन यति माटे विहित करेला नियमोनी जे तुलना आपणे उपर करी छे, ते उपरथी ए स्पष्ट जणाय छे के जैनोना नियमो ते ब्राह्मणोनी नकल मात्र छे. परंतु अहीं ए प्रश्न थाय छे के 'निर्ग्रंथ' ए सीधी रीते (साक्षात्) ज संन्यासीनी नकल छे के परंपरापूर्वक? केम के एवो पण तर्क थई शके तेम छे के ब्राह्मण संन्यासिनी प्रथम बौद्धोए नकल करी हशे अने बुद्धभिक्षुनी, पाछळथी निर्ग्रंथोए. परंतु हुं जेम उपर सूचवी गया छुं तेम ओ तर्क प्रमाणशून्य छे. कारण के वधारे प्राचीन अने प्रमाणभूत आदर्शने छोडी, जैनो अल्पप्रतिष्ठित अने नकली एवा पोताना प्रतिस्पर्धी बौद्धोनुं अनुकरण करे ए असंभवित छे. आथी एज कहेवुं वधारे योग्य जणाय छे के तेमणे सीधी रीतेज ब्राह्मणोनुं अनुकरण कर्युं हतुं. आ मुख्य दलील उपरांत, प्रस्तुत प्रश्न विरुद्ध बीजी पण ए एक दलील छे के--उपर जणाव्या प्रमाणे जे केटलाक ब्राह्मण आचारोनुं ज्यारे जैनोए अनुकरण कर्युं छे त्यारे बौद्धोए तेम कर्युं जणातुं नथी तेथी एम साबीत थाय छे के बौद्धो जैनोना आदर्शभूत बिलकुल हता नहीं.

अहीं एक एवो पण वितर्क उठवानो संभव रहे छे के ब्राह्मण संन्यासीज जैन निर्ग्रंथ अथवा बौद्ध भिक्षुनी नकलरूपे केम न होय? परंतु आ वितर्क तद्दन प्रमाणविरुद्ध छे. संन्यासमार्ग ब्राह्मणोनी आश्रम व्यवस्थानुं एक खास अंग छे. अने आ आश्रम व्यवस्थाने कदाचित् ब्राह्मण धर्म जेटली प्राचीन न मानीए तो पण जैन तथा बौद्ध धर्मथी तो तेने अवश्य प्राचीन मानवी पडे तेम छे. वळी ब्राह्मण संन्यासिओ ज्यारे आखा भारतवर्षमां प्रसरेला हता, त्यारे बौद्धो तेमना संघनी स्थापना थया पछी, निदान प्रथमनी बे शताब्दीओमां तो, तेओ मात्र देशना एक अमुक भाग जेवा संकुचित प्रदेशमांज रहेता हता. तेथी आखा देशना संन्यासिओ माटे तेओ आदर्शभूत बन्या होय एम मानवुं सर्वथा प्रमाण शून्य छे. त्रीजी बाबत वळी ए छे के—ब्राह्मण धर्मशास्त्रना कर्ता गौतम निश्चितरूपे बौद्ध धर्मनी उत्पत्तिनी पूर्वे थई गया छे. कारण के, प्रो. बुल्हरना मत प्रमाणे आपस्तम्ब सूत्रनी रचनानो काळ मोडामां मोडो ई. स. पूर्वे पांचमी अगर चोथी शताब्दीमां मूकवो जोईए.[1] बौधायन ते आपस्तम्बनी पूर्वे थएलो छे. अने डॉ. बुल्हरना[2] कहेवा प्रमाणे ते बन्ने वच्चेना वर्षोनुं अंतर दशकथी नहीं परंतु शतकथी मापवा जेटलुं छे. गौतम ए बौधायनथी पण पूर्वकालीन छे. आ हिसाबे गौतम, अने घणुं करीने बौधायन पण, बौद्धधर्मनी उत्पत्तिनी पूर्वे थई गएला निश्चित थाय छे. हवे उपर वर्णवेला ब्राह्मण संन्यासमार्गना सघळा नियमो तो खास गौतम द्वाराज बांधवामां आवेला छे. तेथी ते मार्गने बौद्धोनी नकलरूपे मानवो ए प्रत्यक्ष भूल छे. धारो के उक्त धर्मशास्त्रोनी रचनाना समयना विषयमां प्रो. बुल्हरे करेलुं कथन कदाचित् खोटुं होय तो पण ते धर्मशास्त्रो बौद्धधर्मनी उत्पत्ति पछी सैकाओ वीत्यां बाद रचायां हता, एम तो कोई पण रीते सिद्ध करी शकाय तेम छेज नहीं. तथापि मानो के, कदाचित् तेम पण सिद्ध करी शकाय—ओ के तेम थवुं तो सर्वथा असंभवितज छे—तो पण आ स्मृतिकार ब्राह्मणो पोते जेमने आधुनिक कालमां उत्पन्न थएला मानता होय तथा जेमने मिथ्यामतिओ मानी तिरस्कारता होय तेवा बौद्धो पासेथी मोटा प्रमाणमां पोताना आचार-नियमो ग्रहण करे, ते सर्वथा अशक्य बाबत छे. तेमज नास्तिको पासेथी पोते लीधेला नियमोने ब्राह्मणो एटला बधा पवित्र माने ए पण नहीं मानवा जेवी बाबत छे. परंतु, आथी उलटुं, बौद्धोएज ब्राह्मणोना नियमोनुं अनुकरण कर्युं हतुं, एम मानवुं युक्तियुक्त अने प्रमाणसंगत लागे छे. कारण के ब्राह्मणोनी बुद्धिविषयक अने नीतिविषयक उत्कृष्टताने माटे बौद्धो हमेशां ऊंचो अभिप्राय धरावता अने ते बदल बहुमान करता हता. एज कारण छे के जैनो तेमज बौद्धोए ब्राह्मण ए शब्दने एक मानसूचक बिरुद

१. Sacred Laws of the Aryas, part I, introduction, p. XLIII.

२. L. c. p. XXII.

३ L. c. p. 49.

तरीके स्वीकारेलो छे, अने ब्राह्मणेतर जातिना पुरुषोने माटे पण तेमणे तेनो प्रयोग करेलो छे.

आ स्थळे जणाववुं जोईए के जैनो तेमज बौद्धोनो भिक्षुमार्ग, ब्राह्मणोना संन्यासमार्गना अनुकरणरूप होवा छतां, ते मूळमां तथा मुख्यरीते क्षत्रियो माटेज योजाएलो हतो. प्रो. ओल्डनबर्गना दर्शाव्या मुजब बुद्धे प्रथम पंक्तिमां उमराव अने अमीर लोकोनेज स्थान आप्युं हतुं[1]. कारण के, बनारसमां आपेला पोताना प्रथम उपदेशमां, बुद्धे पोताना धर्मना संबंधमां कह्युं हतुं के 'यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पव्वजन्ति'— जेने माटे कुलीन जातिना पुत्रो घर छोडीने अनगारता स्वीकारे छे.[2]

जैनो पण ब्राह्मणो करतां क्षत्रियोने उच्चकोटिना मानता हता, ए बाबत, महावीरना गर्भसंक्रमना संबंधमां जे एक आश्चर्यभरेली पुराण कथा प्रसिद्ध छे ते उपरथी साबीत थाय छे. ते दंतकथा एवी छे के—महावीरनो गर्भ देवानंदा ब्राह्मणीनी कुक्षिमांथी त्रिशला क्षत्रियाणीनी कुक्षिमां फेरववामां आव्यो हतो. अने तेम करवानुं कारण मात्र एटलुज बताववामां आव्युं छे के ब्राह्मणी अगर अन्य कोई नीच जातिनी स्त्रीना उदरथी तीर्थंकरनो जन्म थई शके नहीं[3].

बीजी बाजुए जोतां ब्राह्मण संन्यासिओ पण पोताना जेवाज परम आस्तिक ब्राह्मणेतर जातीय संन्यासिओने स्वसमान उच्च कोटिना न होता मानता. कारण के पाछळना समयमां एवो मत प्रचलित थएलो स्पष्ट देखाय छे के ब्राह्मण सिवाय अन्य कोई वर्णने चतुर्थ आश्रमनो अधिकार हतो नहीं. आ मतना प्रमाणमां, प्रो. बुल्हरना जणाववा प्रमाणे, मनुनो ६. ९७ मो श्लोक बताववामां आवे छे. परंतु, भिन्न भिन्न टीकाकारोना अभिप्राया तरफ दृष्टिपात करतां, आ श्लोकना अर्थना संबंधमां बधा टीकाकारो एक मत थता जणाता नथी. तेथी आ विवादग्रस्त उल्लेखने बाजुए मूकीए तो

---

१ Buddha, sein Leben, &c., p. 157 seq.

२. महावग्ग १, ६, १२.

३. दिगंबरो आ दंतकथाने युक्तिशून्य कही, एनो अस्वीकार करे छे. परंतु श्वेतांबरो तेने दृढतापूर्वक साची जणावे छे. आ दंतकथा आचारांग तथा कल्पसूत्र आदि घणा ग्रंथोमां मळी आवे छे, तेथी तेना प्राचीनतामां तो आपणने शंका रहेती नथी. परंतु ए कांई स्पष्ट समजातुं नथी के कया कारणथी आ युक्तिशून्य दंतकथा उत्पन्न थई लोकमां प्रचार पामी हशे? आ अंधकारग्रस्त प्रश्न उपर मने जो अभिप्राय आपवानी छूट होय तो, मारुं तो एवुं मानवुं छे के सिद्धार्थने ब्राह्मणी देवानंदा—जे महावीरनी साची माता हती ते—अने क्षत्रियाणी त्रिशला एम बे स्त्रीओ हती. पहेली स्त्रीना पति तरीके बताववामां आवतुं ऋषभदत्तनुं नाम घणुं प्राचीन होय तेम लागतुं नथी. कारण के जो ते प्राचीन होय तो तेनुं प्राकृत रूप 'उसभदत्त' थवाने बदले प्रायः 'उसभदिन्न' एवुं थवुं जोईए. विशेषमां, आ नाम पण एक जैनने छाजे तेवुं छे; ब्राह्मणने छाजे तेवुं नथी. तेथी मारुं तो एम चोक्कस मानवुं थाय छे के ऋषभदत्त ए फक्त जैनोए देवानंदाना बीजा पति तरीके एक कल्पी काढेलो पुरुष छे. आपणे जाणीए छीए के सिद्धार्थ पोताना त्रिशला साथेना लग्नद्वारा अनेक ऊंचो दरज्जावाळा अने मोटा प्रभाववाळा पुरुषो साथे संबंध धरावतो हतो. तेथी कदाचित् एवो विचार तेने उत्पन्न थयो होय, तो ते संभवित छे के महावीरने त्रिशलाना सपत्नीसुत तरीके प्रसिद्ध करवाने बदले औरस पुत्र तरीके जो जाहेर करवामां आवे तो वधारे लाभदायक बाबत बनशे. कारण के तेम करवाथी, महावीर त्रिशलाना प्रभावशाली सगाओना आश्रयना हक्कदार बनी शकशे. आ दंतकथा लोकोमां विश्वासपात्र पण वगरज सहेलाईथी मनाई गई हशे. कारण के महावीर तीर्थंकर तरीके प्रसिद्धिमां आव्या तेना पहेलां घणां वर्षो अगाउ तेमना मातापिता गुजरी गयां हतां. परंतु खरी वस्तुस्थिति लोकोनी स्मृतिमांथी सर्वथा लुप्त नहीं थई होय तेथी पाछळथी गर्भसंक्रमनी आ कथा उपजावी काढवामां आवी हशे. आ कल्पनाना मूळ उत्पादक जैनो नथी. तेमणे तो मात्र देवकीनी कुक्षिमांथी रोहिणीनी कुक्षिमां धरेला कृष्णना गर्भसंक्रमनी पौराणिक कथानुं स्पष्ट रीते अनुकरण कर्युं छे. आ उपरथी एम पण जणाय छे के जैनधर्मना विकासनी प्रथमनी सदीओमां कृष्णनी उपासना लोकप्रिय थई रही हती. कारण के जैनोए पोताना बावीशमा तीर्थंकर अरिष्टनेमि जे एक प्रसिद्ध यादव हता, तेमनुं चरित्र लखवामां केटलाक फेरफार सिवाय कृष्णनुं आखुं जीवन यथार्थ रीते आलेखी दीधुं छे.

पण एटलुं तो स्पष्ट देखाय छे के पाछळना समयमां ए विचार तो खास रूढ बनी गयो हतो के चारे आश्रमनो अधिकारी एक मात्र ब्राह्मण वर्णज होई शके छे. क्षत्रियो माटे त्रण, वैश्यो माटे बे अने शूद्र माटे फक्त एकज आश्रमनो अधिकार जणाववामां आव्यो छे[1]

आ सघळी हकीकतो उपरथी ए विचार तो निश्चित लागे छे, के प्राचीन काळमां पण ब्राह्मणेतर संन्यासिओ, ब्राह्मणसंन्यासिओथी एक जुदाज वर्गना तथा पृथग्भूत मनाता हता. अने तेथी आपणने एम मानवानु कारण मळे छे के ब्राह्मणेतर संन्यासिओनी आ प्रकारनी अवस्थाने लईने एवा संप्रदायोनो जन्म थयो हतो के जेमणे ब्राह्मणधर्म सामे पोतानो प्रकट विरोध जाहेर कर्यो हतो. आवाज कारणने लईने वेशधारिओ – पाखंडिओ उत्पन्न थया हता एवो भाव वशिष्ठना कथन उपरथी पण तारवी शकाय छे. त्यां एम जणावेलुं छे के केटलाक संन्यासिओए धार्मिक क्रियाओ (विधिओ) करवी छोडी दीधी हती अने वळी केटलाके तो आथी पण आगळ वधी वेदमंत्रोच्चारण पण छोडी दीधुं हतुं. आ प्रकारे क्रियामार्गनुं उल्लंघन करनाराओने उद्देशीने वशिष्ठमां नीचे प्रमाणेनुं कथन करेलुं छे, के 'भले कोई मनुष्य सघळी धार्मिक विधिओनुं अनुष्ठान छोडी दे परंतु वेदमंत्रोच्चारण तो तेणे कदापि न छोडवुं जोईए. कारण के वेदनी उपेक्षा करवाथी शूद्र थवाय छे. तेटला माटे तेणे तेम करवुं नहीं.'[2] आटला बधा भारपूर्वक करेला प्रतिबंध उपरथी सहज अनुमान थाय छे के आवुं क्रियानुष्ठान एक वखते खरेखर बंध थयुंज हशे. वळी आ उपरथी जो आपणे एटलुं अनुमान करी शकता होईए के केटलाक संन्यासिओए आवी रीते वेदोच्चारण—वेदाभ्यास करवो पण छोडी दीधो हशे, तो आपणे तेवुं अनुमान पण करी शकीए, के बीजाओए, वेदने ईश्वरप्रणीत तथा स्वतः प्रमाणभूत तरीके मानवानो इनकार पण कर्यो हशे. आ विचार उपरथी ए कल्पना सहज करी शकाय तेवी छे के आ मार्ग स्वीकारनार तेज पुरुषो हता जेओ एक प्रकारना पृथग्भूत अने ब्राह्मणेतर संन्यासिओ मनाता हता. आ रीते प्रस्तुत विवेचन उपरथी एक तो आपणे ए बाबत जोई शकीए छीए के जैन अने बौद्ध जेवा विरोधी संप्रदायोना मतभेदनुं बीज चतुर्थ आश्रमनी संस्थामां रहेलुं हतुं. अने बीजुं ए पण आपणे जोई शकीए छीए के मतान्तर धारिओए चतुर्थ आश्रमनुं अनुसरण कर्युं हतुं. आ उपरथी आपणे मानवुं पडे छे के जैनधर्म अने बुद्धधर्म ए ब्राह्मणधर्ममांथी उत्पन्न थएला एक आकस्मिक सुधारा स्वरूप मतो नथी परंतु लांबा वखतथी चालता आवता एक धार्मिक आन्दोलनना क्रमिक परिणाम स्वरूप छे.

आपणे उपर जोई गया तेम, जैनोनां तेमना छेल्ला तीर्थंकर संबंधी परंपरागत कथाओ; अथवा जैन साधुओ माटे विहित करवामां आवेला आचारो; अगर ते धर्मना श्रद्धाळु गृहस्थो माटे योजाएली धार्मिक क्रियाओ उपरथी एवुं कांई पण सिद्ध थतुं नथी के जेथी आपणने एम मानवानुं कारण मळे के जैनधर्म ए बौद्धधर्ममांथी निकळ्यो हतो. ए उपरांत बन्ने धर्मोना मुख्य सिद्धान्तोमां पण परस्पर एटलो बधो भेद रहेलो छे के जेथी आ बन्ने धर्मोनुं मूळ उत्पत्ति स्थान एक हशे एम पण मानी शकाय तेम नथी. बुद्धे निर्वाणनी अवस्थाना संबंधमां गमे तेम विचार्युं अगर उपदेश्युं होय-अर्थात् ते अवस्थाने या तो सर्वथा अभावात्मक बतावी होय के पछी तेने एक अगम्य अने अचिन्त्य सत्तावाळी कल्पी होय; परंतु एटलुं तो निःसंदेह छे के तेमणे ब्राह्मणधर्मना आत्मवादनो, के जे वादमां विश्वदेवतावादिओ तथा अणुवादिओना मत प्रमाणे आत्मा स्वतंत्र अने नित्य मानवामां आव्यो छे तेनो, स्पष्ट विरोध कर्यो हतो. अने ते विरोधज ए बौद्धधर्मनी एक खास विशिष्टता छे. परंतु आ विषयनो ज्यारे जैनोनो सिद्धान्त तपासीए छीए तो, ते संपूर्णरीते ब्राह्मणमतने मळतो आवे छे. जे भेद छे ते मात्र एटलोज छे के जैनो ज्यारे आत्माने मर्यादित आकाशव्यापी माने छे; त्यारे सांख्य, न्याय अने वैशेषिक दर्शन जेवा आ-

1. Maxmuller, The Hibbert Lectures, p. 343.

2 Chapter X, 4. Buhler's Translation.

ब्राह्मण संप्रदायो आत्माने सर्व विश्वव्यापी माने छे; वळी, जेवी रीते बौद्धोनो असंख्य उपविभागात्मक पञ्चस्कन्धवाद जैनोना अध्यात्मशास्त्रमां बिलकुल जणातो नथी, तेवी रीते जैनोनो अतिविस्तृत चेतनवाद (Hylozoistic theory) जेवो सिद्धान्त पण बौद्धोना तत्त्वज्ञानमां दृष्टिगोचर थतो नथी. जैनोनो ए सिद्धान्त तेमना संपूर्ण तत्त्वज्ञान अने आचारशास्त्रमां ओतप्रोत थएलो जोवामां आवे छे; अने ए सिद्धान्तानुसार प्राणी अने वनस्पति उपरान्त पृथ्वी, जल, तेज अने वायु जेवां तत्त्वोनां सूक्ष्ममां सूक्ष्म अणुओ सुद्धांने चेतनायुक्त मानवामां आवे छे. भारतवर्षना सघळा तत्त्वज्ञानिओए सर्वज्ञता सुधीनी ज्ञाननी जुदी जुदी तरतमताओ–पायरीओने एक अति महत्त्वनो विषय मान्यो छे. तदनुसार जैनो पण आ विषयमां पोतानो एक स्वतंत्र मत धरावे छे अने ए विषयनी तेमनी परिभाषा पण ब्राह्मण अने बौद्धोथी तद्दन जुदाज प्रकारनी छे. तेओए ज्ञानना नीचे प्रमाणना पांच प्रकारो मानेला छे:-- (१) मति–सम्यग् अवबोध; (२) श्रुत–मति बाद थएलुं स्पष्ट ज्ञान; (३) अवधि–एक जातनु अतीन्द्रिय ज्ञान; (४) मनः पर्याय–परकीय विचारोनुं विशद ज्ञान; (५) केवल–सर्वोत्कृष्ट प्रकारनुं अथवा संपूर्ण ज्ञान. जैनोनो आ एक मौलिक आध्यात्मिक सिद्धान्त छे, अने ए सिद्धान्त तीर्थंकरोनां चरित्रो लखती वखते लेखकोना मगजमां हमेशां प्रधान पणे रमी रहे छे. आ प्रकारनो सिद्धान्त बौद्धग्रन्थोमां बीलकुल जोवामां आवतो नथी. ए सिवाय बन्ने संप्रदायोना मुख्य सिद्धान्तो वच्चे बीजा पण एवा घणा भेदो बतावी शकाय तेम छे. परंतु ते बधानुं वर्णन वांचतां कदाच वाचकने कंटाळो आवे तेवा भयथी अमे आटलेथी ज विरमीए छीए.

जैनोना जे केटलाक सिद्धान्तो बौद्ध सिद्धान्तो साथे मळता आवे छे ते तो ब्राह्मणधर्ममां पण समान छे—उदाहरण तरीके पुनर्जन्मनो सिद्धान्त अर्थात् मरण पछी फरीथी जन्म धारण करवो ते; कर्मनो सिद्धान्त—अर्थात् पूर्वकृत कर्मोना धर्माधर्मरूपी परिणामो आ भवमां अगर आगामी जन्ममां जीवात्माने भोगववां पडे छे ते; तेमज संपूर्ण ज्ञान अने उत्तमचारित्र—के जेथी मनुष्य भवचक्रपरिभ्रमणनो अन्त लावी शके छे ते;– इत्यादि सिद्धान्तो लई शकीए. बीजो पण जैनो अने बौद्धोनो एक समान विचार छे, जेनी अनुसार एम मानवामां आवे छे के अनादि काळथी तीर्थंकरो अने बुद्धो एकज प्रकारना सिद्धान्तो प्ररूपता आव्या छे तथा नष्ट थता धर्मने पुनर्जीवित करता आव्या छे. ए विचार पण ब्राह्मणोना विष्णुना अवतारोवाळा विचार साथे मळतो आवे छे. परंतु, ते उपरांत, जैन अने बौद्ध ए बन्ने धर्मना एक अत्यावश्यक प्रयोजनरूपे पण आ विचारनी उत्पत्ति थएली समजाय छे. कारण ए छे के बुद्ध अगर महावीरे जे कांई प्रतिपादन कर्युं हतुं तेने तेमना अनुयायिओ सत्य—एकमात्र सत्य मानता हता. हवे आ सत्यने पण ब्राह्मणोना वेदनी माफक अनादि काळथीज अस्तित्व धरावतुं मानवुं जोईए. कारण के जो एम न मानवामां आवे तो प्रश्न थशे के शुं आ सत्य तीर्थंकरोना अवतारनी पूर्वे व्यतीत थई गएला अनंत काळ सुधी मात्र अज्ञातज रह्युं हतुं ? आ प्रश्नना उत्तरमां दरेक श्रद्धालु जैन अगर बौद्ध एमज कहेशे के नहीं एम बनवुं तो तद्दन अशक्य छे. ते तो एमज कहेशे के आ सत्यधर्मनो उपदेश भिन्न भिन्न काळमां उत्पन्न थएला एवा असंख्य तीर्थंकरो तथा बुद्धो द्वारा हमेशां अपातो आव्यो छे अने भविष्यमां पण तेवी ज रीते अपातो रहेशे. आ प्रमाणे भूतकालमां अनेक धर्मप्रवर्तको थई गयानो आ बन्ने धर्मोनो विचार—सिद्धान्त न्यायशास्त्रानुसार एक अत्यावश्यक प्रयोजनरूपे छे.

वळी जैनोना आ विचार-सिद्धान्तने प्रमाणशून्य ठरावी शकाय तेम पण नथी. कारण के बौद्ध ग्रंथोमां कोई पण स्थळे निर्ग्रंथोने एक नवीन उत्पन्न थएला संप्रदाय तरीके अथवा तो नातपुत्तने तेना संस्थापक तरीके वर्णवामां आव्या नथी. तेथी बुद्धना समयमां निर्ग्रंथोनो संप्रदाय, ते प्रायः एक प्राचीन संप्रदायज मनातो हतो. एम सिद्ध थाय छे. तेमज नातपुत्त ते, घणुं करीने पार्श्व नामे तेवीशमा तीर्थंकर द्वारा स्थापित थएला जैन धर्मना

एक मात्र सुधारक समझाता हतो. परंतु आमां आश्चर्य उत्पन्न करवावाळी बाबत ए छे के जैनो तेमज बौद्धो बन्ने वर्तमान युगना धर्मप्रवर्तकोनी संख्या लगभग सरखीज माने छे.—एटलेके जैनो २४ तीर्थंकरो माने छे; अने बौद्धो २५ बुद्धो माने छे. आ मान्यताना विषयमां हुं ए वातनी ना नथी पाडी शकतो, के, आमां एक संप्रदायनी बीजा संप्रदाय उपर असर नहीं थई होय. परंतु हुं एटलुं तो दृढतापूर्वक कही शकुं छुं के आ बन्नेमांना कया धर्मे प्रथम आ मान्यता शोधी काढी हती; अगर तो सौथी प्रथम कोणे ब्राह्मणो पासेथी तेनो स्वीकार कर्यो हतो: तेनो निर्णय करवो कठण छे. कारणके बौद्धोमां जेम, बुद्ध-निर्वाण पछीनी प्रारंभनी ज शताब्दिओमां पचीस बुद्धोनी उपासना दाखल थई हती, तेम चोवीश तीर्थंकरोनी मान्यता पण, महावीर निर्वाण बाद घणुं करीने बीजी ज शताब्दिमां जुदा पडेला दिगम्बर तथा श्वेताम्बर ए बन्ने संप्रदायोने सरखी रीते मान्य होवाथी, ते पण तेटली ज जुनी छे. परंतु आ प्रश्ननुं निराकरण करवुं ते अहीं कांई महत्त्वनो विषय नथी. कारण के पूर्वकृत विवेचन द्वारा जे निर्णयो उपर आपणे आव्या छीए ते उपर तेनी बिलकुल असर थती नथी. ते निर्णयो एज छे के—(१) जैनधर्म, ए बौद्धधर्मथी तद्दन स्वतंत्र रीते उत्पन्न थएलो एक प्राचीन धर्म छे; तेनो विकास पण तेटलोज स्वतंत्र रीते थएलो छे; तेमज तेमां बौद्ध धर्ममांथी विशेष कांई लेवामां आव्युं नथी. तथा (२) जैनो तेमज बौद्धो ए बन्नेना तत्त्वज्ञान, आचार, नीतिशास्त्र, अने जगदुत्पत्तिशास्त्रनुं मूळ ब्राह्मणो—खास करीने संन्यासिओने आभारी छे.

अत्यार सुधीनी आपणी सघळी चर्चा जैनोना पवित्र ग्रंथोमांथी उपलब्ध थती परंपरागत कथाओनी प्रामाणिकता उपर ज चालेली छे. परंतु एक अतिशय विशाल ज्ञानवाळा अने कुशल विचारक विद्वाने ए प्रामाणिकताना संबंधमां ज शंका करेली छे. ए विद्वान् ते मी. बार्थ (Barth) छे. ते पोताना Revue de l' Histoire des Religions, Vol. III, p. 90. मां नातपुत्त नामनी एक ऐतिहासिक व्यक्तिनो स्वीकार करे छे खरो, परंतु जैनोना पवित्र ग्रंथो, छेक ई० स० नी पांचमी शताब्दीमां,—एटलेके ए संप्रदायनी स्थापना थया पछी लगभग एक हजार जेटलां वर्षो व्यतीत थयां बाद, लखाएला होवाथी तेना आधारे कोई पण सबळ अनुमान करी शकवाना संबंधमां ते मोटी शंका धरावे छे. जैनधर्मना संबंधमां तेनो एवो अभिप्राय छे के ए संप्रदायना, ते प्राचीन काळथी लई पुस्तको लखाता सुधीना समय सुधीना, स्वसंवेदित अने सतत एवा अस्तित्वनो—अर्थात् तेना खास खास सिद्धान्तो अने नोंधोनी निरंतर परंपरानो—हजी सुधी निर्णयात्मक रीते निकाल थयो नथी. वळी ते जणावे छे के ' घणी शताब्दीओ सुधी तो जैनो, तेमना जेवा बीजा अनेक संन्यासिवर्गो के जे फक्त अप्रसिद्ध अने अस्थिररूपे पोतानुं जीवन गाळता हता तेओथी भिन्नरूपे ओळखायाज न होता.' तेथी मि. बार्थना अभिप्राय मुजब जैनोनी सांप्रदायिक परंपराओ ते मात्र बौद्ध परंपराओना अनुकरणरूपे, तेमणे पोतानां अस्पष्ट अने अनिश्चित स्मरणोमांथी उपजावी काढेली छे.

मि. बार्थनो आ मत एवा अनुमान उपर स्थिर थएलो मालुम पडे छे के जैनो पोतानुं पवित्र ज्ञान एक पेढिथी बीजी पेढिने आपवामां घणाज बेदरकार रह्या हता; अने तेम रहेवामां कारण ए छे के ते घणी शताब्दीओ सुधी मात्र एक नानो अने अनुपयोगी संप्रदाय हतो. मि. बार्थनी आ दलीलमां हुं कोई प्रकारनुं वजन जोई शकतो नथी. हुं अहीं ए प्रश्न पूछुं छुं के—जे धर्म पोतना थोडाक अनुयायिओ वडे एक मोटा प्रदेश उपर पथराएलो होय ते धर्म पोताना मौलिक सिद्धान्तो अने परंपराओने वधारे सुरक्षित राखी शके छे, के जे धर्मने एक मोटा जनसमूहनी धार्मिक जरूरीआतो पूरी पाडवानी होय छे ते? आ बेमांनी कई बाबत वधारे संभवित छे? जो के एकंदर रीते आ प्रकारनी हेत्वाभासात्मक तर्कपद्धतिथी आवा प्रश्ननो निर्णय थवो तो अशक्य ज छे. उपर्युक्त बे पक्षोना प्रथम पक्षमां याहुदी तथा पारसीओनुं उदाहरण रजु करी शकाय छे अने बीजा पक्षमां रोमनकॅथोलिक धर्मनो दाखलो आपी शकाय छे. परंतु जैनो संबंधी प्रस्तुत प्रश्नना वादविवादनो निर्णय करवामां आवी

आतना सामान्य सिद्धान्तो उपर आधार राखवानी कांई आवश्यकता नथी. कारण के तेओने (जैनोने) पोताना सिद्धान्तोनुं एटलं बधुं स्पष्ट ज्ञान हतुं के तेओए घणीज नजीवी बाबतमां मतभेद धरावनार पुरुषोने पण निह्नवरूपे जाहेर करी, पोताना श्रद्धालुओना विशाल समुदायमांथी तेमने जूदा करी दीधा हता. आ कथननी सत्यताना प्रमाण तरीके डॉ. ल्युमने (Dr Leumonn) प्रकट करेली श्वेताम्बर संप्रदायनी सात निन्हवो विषेनी परंपरा¹ छे. तथा दिगम्बरो, जे श्वेताम्बरोथी महावीर निर्वाण पछी प्रायः बीजी अथवा त्रीजी शताब्दिमां, जुदा पड्या हता, तेओ कांई तेमना प्रतिस्पर्धिओ (श्वेताम्बरो) थी तात्त्विक सिद्धान्तोमां मोटो मतभेद धरावता नथी छतां पण आचारविषयक तेमना केटलाक भिन्न नियमोने लीधे, श्वेताम्बरोए तेमने पाखंडिओना नामे वगोव्या छे.

आ सघळी हकीकतो उपरथी आ बाबत स्पष्ट रीते सिद्ध थाय छे के जैन आगमो [तुं हालनुं स्वरूप] नक्की थयां पहेलां पण जैनधर्म एवा अव्यवस्थित अथवा अनिर्दिष्ट स्वरूपमां विद्यमान न हतो, के जेथी, तेनाथी अत्यंत भिन्न एवा अन्यधर्मो (दर्शनो) ना सिद्धान्तो द्वारा तेनुं असल स्वरूप परिवर्तित अगर कलुषित थयुं हतुं; एम मानवाने आपणने कारण मळे परंतु आथी विरुद्ध उपर्युक्त प्रमाणो एम तो सिद्ध करी आपे छे खरां के तेमनी सूक्ष्ममां सूक्ष्म मान्यता पण सुनिश्चित स्वरूपवाळी हती.

जेवी रीते जैनोना धार्मिकसिद्धान्तोनी बाबतो आ रूपे सिद्ध थई शके छे तेवीज रीते तेमनी ऐतिहासिक परंपराविषयक बाबतो पण सिद्ध थई शके तेवी छे. वंशपरंपराथी चालती आवती जे विविध गच्छोनी विस्तारयुक्त गुर्वावलीओ❀ मळी आवे छे तथा जैन आगमग्रंथोमां जे स्थविरावलीओ उपलब्ध थाय छे ते स्पष्ट बतावी आपे छे के जैनो पोताना धर्मनो इतिहास राखवामां केटलो बधो रस धरावता हता. हुं एम कांइ चोक्कस नथी कहेतो के आवी गुर्वावलीओ पाछळथी पण जोडी कढाती नथी के अपूर्ण पट्टावलीओने पूर्ण, एटले हिंदुओना शब्दमां कहीए तो 'पक्की' बनावी शकाती नथी. कारण के दरेक संप्रदायने, पोतानो संप्रदाय एक प्रतिष्ठित आप्तपुरुषथी प्रामाणिकरीते उतरी आवेलो छे, एम बतावबा खातर पोतानी गुरुपरंपराना नामो उपजावी काढवानी स्वाभाविक रीतेज जरूर पडे छे परंतु कल्पसूत्रमां जे एक, स्थविरो, गणो अने शाखाओनी विस्तृत नामावली आपेली छे तेने कल्पी काढवामां जैनोने कोई पण प्रकारनुं प्रयोजन होय तेम हुं मानी शकतो नथी. कल्पसूत्रमां जेटली विगतो आपेली छे-तेटली पण विगतोनुं ज्ञान त्यार पछीना जैनोने रह्युं न हतुं. तेम तेथी अधिक जाणवानो तेओए क्यारे डोळ पण कर्यो न हतो गुरुपरंपरानो नोंधयोग्य बधो व्यवहार चलावबा माटे कल्पसूत्रमां आपेली संक्षिप्त स्थविरावली पर्याप्तज हती. तेम छतां पण तेमां आवेली विस्तृत स्थविरावली—के जेमां पण केटलांक तो एकलां नामोज जोवामां आवे छे-ते ए बाबत स्पष्टरीते जणावे छे के जैनो पोताना प्राचीन धर्माचार्यो-स्थविरोनी यादगिरी राखवामां केटलो बधो रस धरावता हता. ते स्थविरावलीमां आलेखेला युगो तथा बनावोनी यथार्थ माहीती तेना पछी थोडांक ज शर्दीओमां नष्ट थई गई हती.

परंतु. मात्र आटलुं सिद्ध करी बतावबाथी के जैनो तेमना आगमोनुं स्वरूप नक्की थया पहेलां पण पोताना धर्म तथा संप्रदायने सतत चालु राखवा माटे, तेम ज अन्यदर्शनीय सिद्धान्तोना संमिश्रणयोगे उत्पन्न थती भ्रष्टताथी तेने बचावी सुरक्षित राखवा माटे योग्य गुणसंपन्न हता; आपणे आ विषयमां कृतकार्य थई शकता नथी. आपणे ए पण बतावी देवुं जरूरनुं छे के तेओमां जे जे बाबत करी शकवानुं सामर्थ्य हतुं ते सघळुं तेमणे संपूर्णरीते कर्युं हतुं. आ चर्चा उपरथी आपणे स्वाभाविकरीते ज वर्तमान जैनसाहित्यना काळनी चर्चा उपर आवी जईए छीए. आ विषयमां जो आपणे आटलुं सिद्ध करी शकीए के जैन साहित्य अथवा तो छेवटे ते पैकी जे केटलाक सौथी प्राचीन ग्रंथो

¹ See Indische Studien, XVI.

❀ See Dr. Klatt, Ind. Ant. Val. XI.

छे, ते जैन पुस्तकारोहणना समयथी घणी शदीओ पहेलां रचाएला हता, तो ते द्वारा आपणे जैनोना (अंतिम) तीर्थंकर अने प्राचीनमां प्राचीन ग्रंथो ए बन्ने वच्चेना गाळाने, जो के सर्वथा दूर नहीं करी शकीए तो पण घणे अंशे अल्प करी आपवा समर्थ थई शकीशुं.

सर्वसंमत संप्रदायनी अनुसार जैनसिद्धान्त वलभिनी सभामां देवर्धिगणीना अध्यक्षपणा नीचे, निश्चित करवामां आव्यो हतो. आ बनाव वीर निर्वाण पछी ९८० (अथवा ९९३) मा वर्षे एटले ई० स० ४५४ (अगर ४६७) मां[1] बन्यो हतो, एम कल्पसूत्र [§ १४८] उपरथी जणाय छे. संप्रदाय एवो छे के ज्यारे देवर्धिगणीए सिद्धान्तने नष्ट थई जवाना जोखममां जोयो त्यारे तेमणे तेने पुस्तकाधिरूढ कराव्यो. तेनी पहेलां, आचार्यो क्षुल्लकोने सिद्धान्त शीखवती वखते लिखित ग्रंथोनो बिलकुल उपयोग करता न होता. देवर्धिगणीना समय पछी ज लिखित पुस्तकोनो उपयोग शरू थयो. आ हकीकत तद्दन साची छे कारण के प्राचीन समयमां पुस्तकोनो बिलकुल उपयोग थतो न हतो एम आपणने बीजी हकीकतो उपरथी पण जणाई आवे छे ब्राह्मणो तो लिखित पुस्तक करतां पोतानी स्मरणशक्ति उपर ज विशेष आधार राखता हता अने निःसंदेहरीते जैनोए तेमज बौद्धोए तेमनी ज आ प्रथानुं, अनुकरण कर्युं हतुं परंतु अत्यारे जैनयतिओ पोताना शिष्योने शास्त्र शीखवती वखते लिखित पुस्तकोनो उपयोग अवश्य करे छे. आ उपरथी आपणे मानवुं पडे छे के शिक्षण पद्धतिमां थएलो आ फेरफार देवर्धिगणीने आभारी छे, एम बतावनारो वृद्ध संप्रदाय तद्दन साचो छे. कारण के आ बनाव बहुज महत्त्वनो होवाथी भुली शकाय तेम नथी. प्रत्येक आचार्यने अथवा तो छेवटे प्रत्येक उपाश्रयने आ पवित्र आगमोनी नकलो पूरी पाडवा माटे देवर्धिगणीने सिद्धान्तना पुस्तकोनी दरेकनी घणी मोटी संख्या तैयार कराववी पडी हशे. हवे देवर्धिगणीए सिद्धान्तने पुस्तकारूढ कराव्यो एवो जे लेखी संप्रदाय मळे छे तेनो भावार्थ प्रायः उपर प्रमाणेनोज होवो जोईए. कारण के ए तो भाग्ये ज मानी शकाय तेवुं छे के तेनी पहेलां जैन साधुओ जे कांई कंठस्थ करता हशे तेने सर्वथा नज लखता होय. ब्राह्मणो वेदनुं अध्ययन कराववामां लिखित पुस्तकोनो उपयोग करता नथी छतां पण तेमनी पासे तेवां पुस्तको तो जरूर जोवामां आवे छे. तेओ (ब्राह्मणो) आ पुस्तकोने खानगी उपयोग माटे एटले के गुरुनी स्मरणशक्तिने मदत करवा माटे राखे छे. मारुं दृढ मानवुं छे के जैनो पण आ ज पद्धतिने अनुसरता हशे. बल्के तेओ ब्राह्मणोथी पण वधारे आ पद्धतिनुं अनुसरण करता हशे, केमके ब्राह्मणोनी माफक तेओनुं एवुं मानवुं तो हतुं ज नहीं के लिखित पुस्तको अविश्वस्य छे. तेओ तो मात्र जे एक प्रचलित रिवाज हतो, के आगमनुं ज्ञान मौखिकरीते ज एक पेढी द्वारा बीजी पेढीने अपावुं जोईए, तेने लईने ज लिखित ग्रंथोनो विशेष उपयोग करवामां संकोचाता हता. हुं अहीं एम प्रतिपादन करवा इच्छतो नथी के जैनोना पवित्र आगमो असलथी ज छुटा छवाया पण आवी रीते, पुस्तकोमां लखेला ज हता. अने एम न कहेवानुं खास कारण बीजुं कांई नहीं, परंतु बौद्ध भिक्षुओ पासे लिखित पुस्तको न हतां एम जे कहेवाय छे तेज छे. बौद्ध भिक्षुओ पासे आवां पुस्तको नहतां तेना प्रमाण तरीके एवुं कहेवामां आवे छे के तेमनां सूत्रोमां, ज्यारे प्रत्येक अंगमवस्तुथी लईने नानामां नानी अने क्षुद्रमां क्षुद्र एवी घरमां वापरवा लायक वासणो जेवी चीजोनो पण कोई ने कोई रीतिए उल्लेख थएलो अवश्य जडे छे"[1] त्यारे लिखित पुस्तकनो क्यां ए पण बिलकुल उल्लेख थएलो जोवामां आवतो नथी. आ कथन, मारा मानवा प्रमाणे, ज्यां सुधी जैन यतिओ, भ्रमणशील जीवन गुजारता हता त्यां सुधी तेमने पण लागु पडे तेवुं छे. परंतु ज्यारथी तेओ पोताना तावाना

१. संभवित न लागतुं होवा छतां ए शक्य छे के सिद्धान्तनिर्णयनो समय आ करतां ६० वर्ष पछी एटले ई. स. ५१४ (अथवा ५२७) होवो जोईए. जुओ कल्पसूत्र, उपोद्घात पृ. १७.

१. Sacred Books of the East, Vol XIII Introduction, p, XXXIII,

अथवा पोताना माटे बनावेला उपाश्रयोमां रहेवा लाग्या त्यारथी तेओ पोतानां हस्तलिखित पुस्तको पण अत्यारनां माफक, राखवा लाग्या हता.

आ दृष्टिए जोतां, देवर्धिगणीनो जैन आगमसाहित्यसाथेनो संबंध, साधारणरीते जेम मनाय छे. तेनाथी कोई विलक्षण प्रकारनो होय तेम जणाय छे तेमणे वस्तुतः तेमनी पहेलां अस्तित्वधरावता हस्तलिखित ग्रंथोने सिद्धान्तना आकारमां गोठवी दीधा हता. अने तेम करती वखते जे जे सूत्रो-आगमोना हस्तलिखित ग्रंथो उपलब्ध थया न होता, ते सघळा तेमणे विद्वान् धर्माचार्योना मुखेथी लखी लीधा हता.

वळी, आवी रीते धार्मिक शिक्षणपद्धतिमां दाखल थएला आ नवा फेरफारने लीधे पुस्तको एक अत्यावश्यक साधनरूप थई पडेलां होवाथी प्रत्येक उपाश्रयने ए आगमग्रंथोनी नकलो पूरी पाडवा माटे तेनी घणी नकलो कराववामां आवी हशे. आ रीते जोतां देवर्धिगणानी सिद्धान्तनी आवृत्ति ते, तेमनी पहेलां अस्तित्व धरावता पवित्र सिद्धान्तग्रंथोनो लगभग प्राचीन ज आकारमां निर्णीत करेलो एक नवो पाठमात्र छे. आ आवृत्तिकारे, संभव छे के, प्राचीन सिद्धान्तमां कोईक कोईक उमेरा कर्या हशे. परंतु आटला उपरथी संपूर्ण सिद्धान्त नवो बनाववामां आव्यो छे एम तो खरेखर नज कही शकाय. आ अंतिम आवृत्तिमां निर्णीत थएला पाठनी पूर्वेनो सिद्धांत पाठ पण केवळ यतिओनी स्मरणशक्तिना आधारे ज लखवामां आवता पाठ जेवो अव्यवस्थित न हतो परंतु ते पाठ हस्तलिखित प्रतिओ साथे मेळवेलो हतो

आटलुं विवेचन कर्या बाद हवे आपणे जैनोना पवित्र आगमोनी रचनानो समयविषयक विचार करीए. संपूर्ण आगमशास्त्र प्रथम तीर्थंकरनुं ज प्ररूपेलुं छे ए जातना जैनोना विचारनुं तो निराकरण करवा खातरज हुं अहीं सूचन करूं छुं. सिद्धान्तना मुख्य ग्रंथोनो समय नक्की करवा माटे आपणे आना करतां वधारे सारां प्रमाणो-पुरावाओ एकत्र करवा जोईए छूटक अने असंबद्ध सूत्राला रको गमे त्यारे आगमग्रंथोमां दाखल थई गया होय तथा देवर्धिगणीए पण भले तेने पोतानी आवृत्तिमां स्वीकारी लीधा होय. पण तेटला उपरथी आपणे कोई प्रकारनुं सबळ अनुमान काढी शकीए नहीं. हुं म्लेच्छ अथवा अनार्य जातिओनी[1] जे यादीओ ए सूत्रोमां मळी आवे छे ते उपर वधारे वजन मूकी शकतो नथी. तेमज माने निह्नवो, के जेमांनो छेल्लो वीरनिर्वाण पछी ५८४ वर्ष थयो[2] हतो, तेना उल्लेख उपरथी पण कांई अनुमान काढी शकाय नहीं आवा प्रकारनी विगतोना संबंधमां जो एम मानवामां आवे के जे आचार्यो पोतानी शिष्यपरंपराने पेढी दरपेढीए लिखित या कथित रूपे सिद्धान्तपाठ सोंपता गया हता, तेओए ते (विगतो) ने सिद्धान्तनी टीका टिप्पणीरूपे अगर तो मूळ सूत्रोमां पण दाखल करी दीधी हती तो तेमां कांई अस्वाभाविकता जेवुं नथी. परंतु सिद्धान्तमां एक महत्त्ववाळी बाबत ए जणाय छे के तेमां कोई पण स्थळे ग्रीक लोकोना खगोळशास्त्रनी गंध सरखी जोवामां आवती नथी. कारण के जैन ज्योतिषशास्त्र ते, वास्तविकमां, एक अर्थरहित अने अश्रद्धेय कल्पना मात्र छे तेथी आपणे एम अनुमान करी शकीए छीए छे के जैन ज्योतिषशास्त्रकारोने ग्रीक जातिना खगोळ शास्त्रनी स्हेज पण माहीती होत तो तेवुं असम्बद्ध तेओ जरूर न लखत. हिन्दुस्थानमां ग्रीसनुं आ शास्त्र ई.स. नी त्रीजी अगर चोथी शताब्दिमां दाखल थयुं हतुं एम मनाय छे आ उपरथी आपणे ए रहस्य काढी शकीए छीए के जैनोना पवित्र आगमो ते समयनी पहेलां रचायां हतां.

जैन आगमोनी रचनाना समयनिर्णयमाटे बीजुं प्रमाण ते तेनी भाषा विषयक छे. परंतु, कमनसीबे हजी सुधी ए प्रश्ननुं स्पष्ट निराकरण थयुं नथी के जैनागमो, जे भाषामां अत्यारे आपणने उपलब्ध थाय छे ते ज तेनी मूळभाषा छे

---

१ अनार्य जातिओमांनो 'आरब' शब्द ते, वेबरना धारवा प्रमाणे, कदाच 'आरब' वाचक बने, परंतु मारा मानवा प्रमाणे ते शब्द 'तामिलो' नो वाचक छे. कारण के तामिलोनी भाषाने द्रविडीयन लोको अरबमु कहे छे.

२. See Weber Indische Studien, XVI, P. 237.

अर्थात् जे भाषामां सौथी प्रथम तेनी संकलना थई हती तेज भाषामां अत्यारे आपणने उपलब्ध थाय छे, के पाछळथी, पेढी दरपेढीए ते ते काळनी रूढ (प्रचलित) भाषानुसार तेमां उच्चारण-परिवर्तन थतां थतां छेक देवर्धिगणीना नवीन संस्करण वखतनी चालु भाषाना उच्चारण पर्यंतनी भाषाथी मिश्रित थएला आजे मळे छे? आ बे विकल्पोमांनो मने तो बीजो ज विकल्प स्वीकरणीय लागे छे. कारण के ए आगमोनी प्राचीन भाषाने चालु भाषानी रूढिमां फेरववानो वहीवट ठेठ देवर्धिगणी सुधी चालु रह्यो हतो. अने अंते देवर्धिगणीना संस्करणे ज ते वहीवटनो अंत आण्यो हतो, एम मानवाने आपणने कारणो मळे छे. जैन प्राकृत भाषामां स्वरूपसंगत वर्णविन्यासनो जे अभाव दृष्टिगोचर थाय छे तेनु कारण, जे लोकभाषामां (Vernacular Language) ने पवित्र आगमो हमेशां उच्चाराई रह्या हता, ते भाषामां निरंतर थतुं रहेलुं क्रमिक परिवर्तन ज छे. जैनसूत्रोनी सघळी प्रतिओमां एक शब्द एकज रीते लखेलो जोवामां आवतो नथी. आ वर्णविन्यासविषयक विभिन्नतानां मुख्य कारणोमांनुं एक कारण तो बे स्वरो वच्चे आवता असंयुक्त व्यंजननो प्रकृतिभाव (तदवस्थ राखवारूप), लोप, के मृदूकरण थवारूप छे; अने बीजुं कारण बे संयुक्त व्यंजनोनी पूर्वेना ए अने ओ ने तदवस्थ एटले कायम राखवारूप अथवा तेने क्रमथी इ अने उ ना रूपमां परिवर्तित करवा (लघूकरण) रूप छे. ए तो अशक्य ज छे के एकज शब्दना एकज समयमां एकथी वधारे शुद्ध गणावा लायक उच्चारो होई शके. उदाहरण तरीके-भून, भूय; उदग, उदय अने उअय; लोभ,लोह;इत्यादि. आपणे आ प्रकारनी जुदी जुदी लेखन पद्धतिओने ऐतिहासिक लेखनपद्धतिओ मानवी जोईए. एटले के देवर्धिगणीवाळा सिद्धान्तसंस्करणमां साहाय्यभूत बनेली बधी हस्तलिखित प्रतिओमां जे जे भिन्न भिन्न लेखनपद्धतिओ मळी आवती हती ते बधी प्रामाणिक मानवामां आवी हती अने तेथी ते सघळी पद्धतिओने ए सूत्रनी नकलोमां साचवी राखवामां आवी हती. आ विचार जो युक्तियुक्त जणातो होय तो, आपणे, सौथी प्राचीन अने रूढिबहिष्कृत लेखनपद्धतिने आगमरचनाना आदि समयनी अथवा तो तेना निकट समयनी उच्चारसूचक मानी शकीए. अने सौथी अर्वाचीन लेखनशैलीने सिद्धान्तना अंतिम संस्करणना समयनी अगर तेनी नजीकना समयनी उच्चारदर्शक मानी शकीए.[1] वळी सौथी प्राचीनरूपमां उपलब्ध थती जैन प्राकृत भाषाने, पाली तथा हाल, सेतुबन्ध विगेरेनी (पाछला समयनी) प्राकृत साथे जो आपणे सरखावीशुं तो आपणने स्पष्ट जणाशे के जैन प्राकृत ए पाछळनी प्राकृत करतां पालीने वधारे मळती आवे छे. आ उपरथी आपणे एवा निर्णय उपर आवी शकीए छीए के कालगणनानी दृष्टिए पण जैनोना आगमो, त्यार पछीना समयमां थएला प्राकृत ग्रंथकारोना ग्रंथो करतां दाक्षिणना बौद्धसूत्रो [ना रचना समय] साथे वधारे समीपता धरावे छे.

परंतु, आपणे जैन आगमोनी रचनाना समयनी मर्यादा, तेमां प्रयोजाएला छंदोनी मददथी, आथी पण वधारे निश्चितरीते आंकी शकीए तेम छीए. हुं

---

१ हुं एम नथी कहेतो के कोई पण शब्दना एक काळमां बे रूपो ज न होई शके. बन्ने रूपोवाळा घणाए शब्दो थया हशे. परंतु प्रायः प्रत्येक शब्दना बब्बे त्रण त्रण रूपो एक साथे प्रचलित रहेवानी बाबतमां मने जरूर शंका रहे छे.

१. कोई अहीं एवी दलील करी शके छे के आवी जातनी एटले रूढिबहिष्कृत लेखनपद्धतिना अस्तित्वनुं कारण मात्र संस्कृत भाषानी असर छे. परंतु जैनोनुं प्राकृत-भाषानुं ज्ञान हमेशां एटलुं बधुं संगीन रह्युं हतुं के जेथी तेमने पोताना आगमोने समजवा माटे संस्कृतनी सहायता लेवी ज पडती नहोती के जेथी तेनी तेना उपर असर पडे. परंतु आथी उलटुं, जैनोना संस्कृत ग्रंथोनी प्रतिओमां प्राकृत शब्दो जेवा लखेला घणा शब्दो मळी आवे छे. उपर प्रमाणे मानतां पण केटलीक जोडणीओ तो एवी मळी आवे छे के जेने संस्कृतीकरणनी दृष्टिए पण समजावी शकाय तेम नथीः– व त. दारयने बदले मळतुं दारग एवुं रूप लईए. आ शब्दनुं संस्कृत प्रतिरूप 'दारक' थायछे परंतु 'दारग' एवुं थतुं नथी.

आचारांग अने सूत्रकृतांग सूत्रना प्रथम स्कंधोने, सिद्धान्तना सौथी प्राचीन भाग तरीके मानुं छुं. अने मारा आ अनुमानना प्रमाण तरीके हुं आ बे ग्रंथोनी (स्कंधोनी) शैली बतावीश. सूत्रकृतांग सूत्रनुं आखुं प्रथम अध्ययन, वैतालीय वृत्तमां रचाएलुं छे. आ वृत्त धम्मपद आदि दक्षिणना अन्य बौद्ध ग्रंथोमां पण वपराएलो जोवामां आवे छे. परंतु पालीसूत्रोमां पद्योमां प्रयोजाएलो वैतालीय वृत्त, ते, सूत्रकृतांग सूत्रना पद्योमां मळी आवता वैतालीय वृत्तनी दृष्टिए जोतां, वृत्तना विकास क्रमना प्राचीन स्वरूपनो द्योतक छे. आ बाबतमां हुं अहीं वधारे न लखतां, थोडाज समयमां जर्मन ओरिअन्टल सोसाइटीना जर्नलमां, 'वेदनी पछीना कालना छंदो' ('Post-Vedic Metres') ए मथाळा नीचे प्रकट थनारा मारा लेखमां विस्तृतरीते चर्चवा इच्छुं छुं. संस्कृत साहित्यना सामान्य वैतालीय [वृत्तना] श्लोको, के जेमांना केटलाक ललितविस्तरामां पण मळी आवे छे, तेनी साथे मुकाबलो करी जोतां, सूत्रकृतांगनो वैतालीय वृत्त तेथी वधारे प्राचीन रूपनो जणाय छे. वळी ए बाबत पण अहीं लक्ष्यमां लेवा लायक छे के प्राचीन पालीसाहित्यमां आर्यावृत्तमां गुंथेलां पद्यो मळी आवतां नथी; धम्मपदमां तो ते सर्वथा नथी ज. तेम अन्य बौद्ध ग्रंथोमां पण तेवां पद्यो मारा जोवामां आव्यां नथी. परंतु, आचारांग अने सूत्रकृतांग सूत्रोमां तो एक एक संपूर्ण अध्ययन आर्यावृत्तमां लखेलुं मळी आवे छे. आ आर्यावृत्त, सामान्य [रीते ओळखाता] आर्या वृत्तथी स्पष्ट रीते प्राचीन तथा तेनो जनक स्वरूप देखाय छे. सामान्य आर्यावृत्त ते, सिद्धान्तना वधारे अर्वाचीन भागोमां, तथा प्राकृत अने संस्कृत भाषाना ब्राह्मण ग्रंथोमां अने ललितविस्तरादि जेवा उत्तरना बौद्ध ग्रंथोमां पण नजरे पडे छे. प्राचीन जैनग्रंथोमां प्रयोजाएलो त्रिष्टुप छंद पण पाली ग्रंथोमां मळी आवता ते छंद करतां अर्वाचीन रूपनो अने ललितविस्तरामांना करतां प्राचीनरूपनो छे. अंते, ललितविस्तरादि ग्रंथोमां जोवामां आवता आ सिवायना बीजा अनेक प्रकारना कृत्रिम वृत्तो—जेमांनो एक पण वृत्त जैनसिद्धान्तमां जडी आवतो नथी—उपरथी एम सिद्ध थतुं होय तेम जणाय छे के आ प्रकारना अर्वाचीन ग्रंथोनी रचनाना समय पूर्वे जैनोनी साहित्य विषयक अभिरुचि निश्चित थएली हती. आ सघळी बाबतो उपरथी आपणे एवो निर्णय करी शकीए छीए के, जैनोना सौथी प्राचीन साहित्यनी समयमर्यादा पाली साहित्य अने ललितविस्तरा ए उभयना रचनाकालनी वच्चे निश्चित थाय छे. पाली पिटकोनुं पुस्तकाधिरोहण (अर्थात् पुस्तकरूपे लखाण) वट्टगामणि जेणे ई. स. पूर्वे ८८ वर्षे पोतानुं राज्यशासन शरू कर्युं हतुं तेना समयमां थयुं हतुं. जो के आ समयथी केटलीक शताब्दीओ पूर्वे पण ते पिटको अस्तित्व तो धरावतां हतां ज. आ विषयनी चर्चा करतां छेवटे प्रो. मेक्समूलरे नीचे प्रमाणेना विचारो जणाव्या छे 'तेटला माटे, मारा विचार प्रमाणे, अत्यारे तो आपणे बौद्ध सूत्रोना अर्वाचीनमां अर्वाचीन रचना-समय तरीके ई. स. पूर्वे ३७७ मा वर्षने, निर्णीत करी, संतोष मानवो जोईए,-के जे समये द्वितीय संगिति मळी हती.'[1] त्यार बाद पण ए पाली सूत्रोमां उमेरा तथा फेरफारो थया होय ए असंभावित नथी. परंतु आपणी प्रस्तुत दलील धम्मपदना कोई एकाद फकराके भागने आधारे उभी थएली न होई, तेमां तथा अन्य पालीग्रंथोमां मळी आवता विविध छंदो उपरथी तारवी कढाना छंदःशास्त्रना नियमोना पाया उपर स्थापित करवामां आवेली छे. तेथी, ए ग्रंथोमां दाखल थएला उमेरा या फेरफारोथी, अमारा ए निर्णयने-के समस्त जैन सिद्धान्त साहित्य ई. स. पूर्वे चोथी शताब्दि बाद रचाएलुं छे,-तेने कोई पण प्रकारनी हानि पहोंची शकती नथी.

आपणे उपर जोई गया के जैनसिद्धान्तनो सौथी प्राचीन विभाग ललितविस्तरानी गाथाओथी अधिक जूनो छे. आ ग्रंथ (ललितविस्तरा) ना विषयमां एवुं कहेवाय छे के तेनो ई. स. ६५ मां चीनी भाषामां अनुवाद थयो हतो. आ उपरथी वर्तमान जैन साहित्यनी उत्पत्तिनो समय ई. स.

---

१ Sacred Books of the East, Vol. X, p. XXXII.

नी शरुआत पहेलां मानवो जोईए वळी दाक्षिण अने उत्तरना पद्यात्मक बौद्ध ग्रंथोनी छन्द अने भाषाशैली विषयक विशिष्टताओना प्राचीनतम पद्यात्मक जैन सिद्धान्तोमां मळी आवता अल्प या आधिकांश साम्यद्वारा, आपणे जो, आ बे सीमाओ वच्चे आवेला प्रस्तुत विवादास्पद समयना कालविषयक अंतरनो विचार करीए छीए तो जैन साहित्यनी शरुआतनो समय, उत्तरना बौद्ध साहित्यना समय करतां पाली साहित्यना समयनी अधिक समीप ठरे छे.

वळी आ प्रकारना अनुमानने श्वेताम्बर संप्रदायनी एक परंपरागत कथाद्वारा समर्थन पण मळे छे. परंपरा एवी छे के जे वखते भद्रबाहु युगप्रधान हता ते वखते बार वर्षनो एक दीर्घ दुष्काळ पड्यो हतो. ते दुष्काळना अंते पाटलीपुत्रमां संघ भेगो थयो हतो अने तेणे सघळां अंगो एकत्र कर्यां हतां. आ भद्रबाहुना अवसाननी तारीख श्वेताम्बरोना कथन प्रमाणे वीर पछी १७० वर्ष छे, अने दिगम्बरोना कथन प्रमाणे ते १६२ वर्ष छे. आ उपरथी तेओ चंद्रगुप्त, के जे श्वेताम्बरोना उल्लेखानुसार वी. नि. पछी १५५ मा वर्षे गादीए आव्यो हतो, तेना समयमां थया हता. प्रो. मेक्समूलरे चन्द्रगुप्तनो समय ई. स. पूर्वे ३१५-२९१ जणावेलो छे तथा वस्टरगार्ड (Westergaard) अने केर्न (Kern)[2] वधारे संभवित रीते ते समय ई. स. पूर्वे ३२० जणावे छे. आ बन्ने वच्चे जे अल्प तफावत छे ते महत्त्वनो नथी. लगभग आ हिसाबे जैन सिद्धान्तनो रचना-समय ई. स. पूर्वे चोथी शदीना अंतमां अगर तो त्रीजी शदीनी शरुआतमां आवे छे. साथे साथे ए पण लक्ष्यमां राखवानुं छे के उपरोक्त संप्रदाय-परंपरानो भावार्थ ए छे के पाटलिपुत्रना संघे, भद्रबाहुनी साहाय्य सिवाय ज अगीआर अंगो एकठां कर्यां हतां. भद्रबाहुने दिगम्बरो अने श्वेताम्बरो बन्ने सरखी रीते पोताना आचार्य माने छे. तेम छतां श्वेताम्बरो पोताना स्थविरोनी यादीने भद्रबाहुना नामथी आगळ नहीं चलावतां, तेमना समकालीन स्थविर संभूति विजयना नामथी आगळ लंबावे छे. ए उपरथी एम फलित थाय छे के पाटलिपुत्रना संघे एकत्र करेलां अंगो मात्र श्वेतांबरोना ज सिद्धान्तो मनाया हशे, पण आखी जैन समाजना नहीं. आवी वस्तुस्थिति होवाथी, आपणे सिद्धांत रचनाना कालने जो युगप्रधान श्रीस्थूलभद्रना समयमां एटले ई. स. पूर्वे त्रीजी शताब्दिना प्रथम भागमां स्थिर करीए तो ते खोटुं नहीं गणाय.

आपणी उपरोक्त तपासनुं परिणाम जो प्रामाणिकताने पात्र बनतुं होय,—अने ते बनवुंज जोईए कारण के तेना बाधक प्रमाणोनो अभाव छे—तो वर्तमान जैन साहित्यनी उत्पत्तिनो समय ई. स. पूर्वे लगभग ३०० वर्ष पहेलां अथवा ए धर्मनी उत्पत्ति पछी लगभग बे शताब्दी पहेलां मूकी शकाय नहीं परंतु आ उपरथी एम तो खास कांई मानी लेवानी जरूर नथी ज के जैनो पासे पोताना अंतिम तीर्थंकर अने सिद्धान्तरचनाना आ समय वच्चेना अन्तरालमां, एक अनिश्चित अने असंकलित धार्मिक तथा पौराणिक परंपरा उपरांत खास आधार राखवा योग्य वधारे सुदृढ धर्मसाहित्य हतुं ज नहीं. कारण के एम जो मानवामां आवे तो पछी जैन परंपरानी विश्वसनीयताना विषयमां जे विरोधदर्शक प्रमाणो मी. बार्थे रजु करेलां छे ते वास्तविकमां पाया विनानां छे एम कही शकाय नहीं. तथापि एक बाबत अहीं ध्यानमां लेवा लायक छे. अने ते ए छे के श्वेताम्बरो अने दिगम्बरो ए बन्नेनु एम कहेवुं छे के अंगो सिवाय पहेलांना कालमां तेनाथी पण वधारे प्राचीन एवां चौद पूर्वो हतां. अने ते पूर्वोनुं ज्ञान क्रमथी नष्ट थतुं थतुं अंते सर्वथा नष्ट थई गयु हतुं.

चौद पूर्वोना विषयमां श्वेताम्बरोनी मान्यता आ प्रमाणे छेः-चौद पूर्वो ए दृष्टिवाद नामना बारमा अंगमां समाएलां हतां अने ते महावीर निर्वाण पछी १००० वर्ष व्यतीत थया पहेलां नष्ट थयां हतां. जो के आ कथन प्रमाणे चौद पूर्वो तो सर्वथा नष्ट

१ परिशिष्ट ९,५५.

२. Geschiedenis van het Buddhisme in Indie, ii, p. 266 note.

थई गयां छे, तो पण दृष्टिवाद अने तेमां अंतर्गत थएलां चौद पूर्वोना विषयोनी विस्तृत सूचि अद्यावधि समवायांग नामना चोथा अंगमां तथा नन्दीसूत्रमां आपेली जोवामां आवे छे.[1] आ दृष्टिवादमां आवेलां एवा त खास मूळ एवाज हतां के, जेम हुं मानुं छुं, तेना साररूप हतां. तेनो आपणे निश्चय करी शकता नथी. गमे तेम हो परंतु तेमां समाएला विषयोना संबंधमां एक घणी विस्तृत परंपरा तो अवश्य जोवामां आवे छे.

खरेखर आपणे, कोई पण नष्ट थई गएला एवा अति प्राचीन ग्रंथ या ग्रंथसमूहना विषयमां मळी आवती परंपराने साची मानी लेवामां घणीज सावधानी राखवानी जरूर छे. कारण के आवा प्रकारनी प्राचीन परंपरा, घणीक वखते केटलाक ग्रंथकारोद्वारा पोताना सिद्धान्तोनी प्रामाणिकताना पूरावा रूपे कल्पी काढवामां आवी होय छे. परंतु प्रस्तुत बाबतमां, पूर्वोना विषयमां मळी आवती आटली बधी सामान्य अने प्राचीन परंपरानी सत्यताना विषयमां शंका करवाने आपणने कोई कारण जणातुं नथी. कारण के अंगोनी प्रामाणिकता ते कांई पूर्वोने लईने मानवामां आवती नथी. अंगो तो जगत्ना निर्माणना समकालीन (एटले अनादि ज) मनाय छे. तेथी जो पूर्वो संबंधी आ परंपराने मात्र एक कूटलेख रूपेज मानीए तो तेनो कांई पण अर्थ थई शके नहीं. परंतु तेने जो सत्यरूपे मानी लईए तो, जैनसाहित्यना विकासविषयक आपणा विचारो साथे ते बराबर बंधबेसती आवी जाय छे. ' पूर्व ' ए नामज ए वातनी पूरेपूरी साक्षी आपे छे के तेनुं स्थान पाछळथी बीजा एक नवा सिद्धान्ते लीधुं हतुं. अर्थात् पूर्वनो अर्थ पहेलानुं एवो थाय छे.[2] अने आ दृष्टिए ज्यारे आपणे विचारीए छीए त्यारे निःसंदेहरीते प्रतीत थाय छे के, जे समये पाटलीपुत्रना संघे अंगसाहित्य एकत्र कर्युं हतुं, तेज समयथी पूर्वोनुं ज्ञान व्युच्छिन्न थतुं चाल्युं हतुं, एवी जे हकिकत कहेवाय छे, ते तद्दन वास्तविक छे. उदाहरण तरीके भद्रबाहु पछी चौदमांथी दशज पूर्वोनुं ज्ञान अवशिष्ट रह्युं हतुं, एवुं जे कथन छे ते आपी शकाय छे.

आ उपरथी खात्री थशे के चौद पूर्वविषयक प्रचलित परंपरानो अमे जे एवो खुलासो करेलो छे के पूर्वो ते सौथी प्राचीन सिद्धान्तग्रंथो हता, अने तेना पछी तेनुं स्थान एक नवा सिद्धान्ते लीधुं हतुं, ते युक्तिसंगत छे. परंतु आटलो खुलासो आप्या बाद आ प्रश्न उभो थाय छे के आवी रीते प्राचीनसिद्धान्तनो त्याग करवामां तथा नवा सिद्धान्तनुं निरूपण करवामां शुं प्रयोजन उपस्थित थयुं हशे? आ विषयमां मात्र कल्पना सिवाय अन्य कोई गति नथी. अने तदनुसार मारो स्वतंत्र अभिप्राय आ प्रमाणे छेः—आपणे जाणीए छीए के दृष्टिवाद नामना बारमा अंगमां चौद पूर्वो आवेलां हतां तथा ते पूर्वोमां मुख्यत्वे करीने दृष्टिओनुं एटले जैन अने जैनेतर दर्शनोना तात्त्विक विचारो—अभिप्रायोनुं वर्णन करेलुं हतुं. आ उपरथी आपणे एम कल्पी शकीए छीए के तेमां महावीर अने तेमना प्रतिस्पर्धी धर्मसंस्थापकोनी वच्चे थएला वादोनुं वर्णन आवेलुं हशे. मारा आ अनुमानना समर्थनमां प्रत्येक पूर्वना नामना अंते जे ' प्रवाद ' ए शब्द मूकवामां आव्यो छे ते आपी शकाय छे. आ उपरांत ए पण एक वात ध्यानमां राखवानी छे. के महावीर कोई एक नवा धर्मना संस्थापक न हता, परंतु, जेम में सिद्ध करेलुं छे, तेओ एक प्राचीन धर्मना सुधारक मात्र ज हता. तेथी पण ए घणुंज संभवित छे के महावीरने पोताना प्रतिपक्षिओना अभिप्रायोनुं मजबुतरीते खंडन करवुं पडयुं हशे; अने जाते स्वीकारेला अगर सुधारेला एवा पोताना सिद्धान्तोनुं घणुंज समर्थन करवुं पड्युं हशे आम कहेवानुं कारण ए छे के प्रत्येक धर्मसंस्थापकने यथार्थमां पोताना नवा सिद्धान्तोनुं प्रतिपादन करवा पूरतो ज प्रयत्न करवानी आवश्यकता रहे छे. तेने

१ See Weber, Indische Studien, XVI p. 341.

२. ' पूर्व ' शब्दनो अर्थ जैनाचार्योए नीचे मुजब समजावेलो छेः—तीर्थंकरे पोतेज प्रथम पोताना गणधर नामे प्रसिद्ध शिष्योने पूर्वोनुं ज्ञान आप्युं हतुं. त्यार पछी गणधरोए अंगोनी रचना करी. आ कथन, पहेलाज तीर्थंकरे अंगो प्ररूपेलां छे एवा आग्रह साथे जेटले अंशे ऐक्य धरावतुं नथी, तेटले अंशे ते खरेखर सत्य गर्भित लेखावा योग्य छे.

एक सुधारकना जेटलो प्रवादी बनी जवाना जोखमने उपाडवानी अवश्यकता रहेती नथी. हवे वखत जतां ज्यारे महावीरना ते प्रतिस्पर्धिओ आ जगतमांथी अदृश्य थई गया हता, तथा तेओ द्वारा स्थापित थएला संप्रदायो पण नामशेष थई गया हता, त्यारे महावीरना ए प्रवादो, के जे तेमना गणधरोए स्मरणमां राख्या हता तथा तेओ द्वारा पाछळनी शिष्यपरंपराने पण जे सोंपवामां आव्या हता, ते पाछळना लोकोमां महत्त्ववाळा न मनाया होय ए स्वाभाविक छे. ए कोण कही शके एम छे के जे एक जमानामां आ प्रकारना दार्शनिकोना तत्त्वज्ञान विषयक विविध प्रवादो अने कलहो व्यावहारिक उपयोगितावाळा जणाया होय तेज प्रवादो अने कलहो, सर्वथा परिवर्तित थएला एवा अन्य जमानामां पण तेवाज उपयोगी सिद्धान्तो तरीके मनाई शके ? आ ज विचारानुसार, नवा जमानाना जैनसमाजने पोतानी सामायिक परिस्थितिने अनुकूल आवे तेवा एक नवा सिद्धान्तनी जरूर जणाई हशे अने तेने परिणामे, मारूं मानवुं छे के, नवा सिद्धान्तनी रचना अने जूना सिद्धान्तनी (पूर्वोना ज्ञाननी) उपेक्षा थवा पामी हशे.

प्रो. वेबर[1] दृष्टिवाद अंगने नष्ट थवामां एवुं कारण जणावे छे के श्वेताम्बर समाज ज्यारे एक समये एवी अवस्थाए आवी पहोंच्यो हतो के जे वखते तेने पोताना (प्रचलित) विचारो अने ते ग्रन्थमां (दृष्टिवादमां) आलेखित विचारोनी वच्चे अत्यंत अनुपेक्षणीय अंतर स्पष्ट देखावा लाग्युं, त्यारे ए चौद पूर्वोवाळुं दृष्टिवाद अंग उपेक्षाने पात्र थयुं हतुं. परंतु, प्रो. वेबरनी आ कल्पनानी विरुद्ध, श्वेताम्बरोनी माफक दिगम्बरो पण, पोताना पूर्वो अने ते उपरांत अंगो सुद्धांने व्युच्छिन्न थएलां जणावता होवाथी, हुं तेमना मतने मळतो थई शकतो नथी. तेमज निर्वाणनी तुरतज पछीनी बे शताब्दिमां जैन समाजे एटली बधी झडपथी प्रगति करी लीधी होय के जेथी ते समाजना बन्ने मुख्य संप्रदायोने पोताना पूर्व सिद्धान्तनो त्याग करवा जेटली आवश्यकता जणाई होय, एम पण मानी बेसवुं तद्दन असंभवित लागे छे. बीजी ए पण बाबत लक्ष्यमां राखवा योग्य छे के जैन धर्ममां बे संप्रदायो थया पछी तेना तत्त्वज्ञानमां बीलकुल फेरफार थयो न होतो—अर्थात् ते तद्दन स्थिरज रह्युं हतुं. आनुं प्रमाण मात्र एज छे के आ बन्ने संप्रदायोना तत्त्वज्ञानमां कोई विशेष उल्लेखयोग्य भेद नजरे पडतो नथी. आचारशास्त्रना विषयमां अलबत आ बन्ने संप्रदायोमां केटलाक भिन्न भिन्न विचारो जोवामां आवे छे, परंतु, अत्यारे पण ज्यारे श्वेताम्बरोमां लांबा समयथी, तेमना वर्तमान सिद्धान्तसमूहमां विहित थएला घणाक आचारोनुं पालन बंध थएलुं होवा छतां पण तेओ तेना तरफ उपेक्षा धरावता नथी त्यारे तेवाज कारणने लईने ते वखते अस्तित्व भोगवता एवा तेमना पूर्वात्मक सिद्धान्तसमूहना विषयमां श्वेताम्बरोए तेटला बधा आवेशमां आवी जई पोताना पूर्व साहित्यनो सर्वथा त्याग सुधां करी नांख्यो हतो एम मानवुं युक्तिसंगत जणातुं नथी. आ उपरांत नवा सिद्धान्तनो जे समय आपणे उपर निर्णीत कर्यो छे, ते समय पछी पण लांबा वखत सुधी पूर्वो विद्यमान हतां एम मानवामां आवे छे परंतु, आखरे ज्यारे पूर्वोना प्रवादमय साहित्य करतां नवा सिद्धान्तद्वारा जैन तत्त्वो वधारे स्पष्टरीते प्रकाशित थता देखावा लाग्यां अने वधारे व्यवस्थासर लोको समक्ष मूकावा लाग्यां त्यारे पूर्वो स्वभाविक रीते ज, नहीं के तेमनी बुद्धिपूर्वक कराएली उपेक्षाने लीधे, अदृष्ट थयां हतां.

आपणी प्रस्तुत चर्चा जे आ स्थळे समाप्त थाय छे ते उपरथी, हुं धारूं छुं के, आटली बाबतो प्रकटरीते सिद्ध थएली छे—जैनधर्मनी उत्क्रांति (प्रगति) कोईपण समये कोईपण अत्यंत असाधारण एवा बनावोथी, जबरदस्त अटकाव पामेली नथी. बीजुं ए के आपणे आ उत्क्रांतिनी शरुआतनी अवस्था उपरांत तेनी सघळी विविध अवस्थाओनो पत्तो मेळवी शकीए छीए, अने त्रीजुं ए के जैनधर्म ए निर्विवादरीते स्वतंत्र मनाता एवा कोई पण धर्मनी माफक स्वतंत्ररीते उत्पन्न थएलो छे—परंतु कोई अन्य धर्म अने खास करीने बौद्धधर्मनी शाखारूपे

१. Indische Studien, XVI. p. 248.

बिलकुल प्रवर्तेलो नथी. आ विषयनी विशेष विगतोना संशोधननुं कार्य भावि शोधखोळ उपर निर्भर छे तेम छतां मने आशा छे के, हुं जैनधर्मनी स्वतंत्रताना संबंधमां तथा तेना पवित्रग्रंथो (आगमो)ने, ते धर्मना प्राचीन इतिहासने प्रकट करवामां क लेखी साधनोरूपे स्वीकारवाना विषयमां, अत्यार सुधी जे केटलाक विद्वानोना मनमां अमुक संदेहो स्थान पामी रह्या छे, तेने दूर करवा सफळ थयो छुं.

साहित्य--समालोचन.

१

धनपालकृत भविष्यदत्त कथा.

[डॉ. हर्मन जेकोबी द्वारा संपादित अने जर्मनीमां प्रकाशित.]

प्रख्यात जर्मन विद्वान् डॉ. हर्मन जेकोबीनुं नाम एक जैन स्कॉलर तरीके जगत्प्रसिद्ध छे. तेमणे जैनधर्म अने जैन साहित्यनो घणो ऊंडो अभ्यास कर्यो छे. जैन धर्मना केटलाए संस्कृत-प्राकृत ग्रंथोनुं तेमणे संशोधन अने संपादन कर्युं छे. तेमज केटलाएनुं जर्मन अने इंग्रेजी भाषामां भाषांतर कर्युं छे. जैन धर्म, जैन इतिहास अने जैन साहित्य उपर तेमणे अनेक लेखो लख्या छे, अने भाषणो आप्यां छे. आजे अमे, आ नीचे, डॉ. साहेबे संपादन करेला एक जैन पुस्तकनुं संक्षिप्त परिचय आपवा इच्छीए छीए जे हमणांज प्रकट थयुं छे.

ए पुस्तकनुं नाम भविष्यदत्त कथा ('भविस्सयत्त कहा') छे अने ते धनपाल नामे एक वणिक् विद्वाननुं बनावेलुं छे. धनपाल नामे प्रसिद्ध जैन ब्राह्मण पंडित, जे विक्रमनी ११ मीं शताब्दीमां, संस्कृतसाहित्यप्रसिद्ध नृपति भोजना समयमां थई गयो छे अने जेणे तिलकमंजरी नामे एक श्रेष्ठ जैन आख्यायिका बनावी छे, तेनाथी आ धनपाल भिन्न समजवो जोईए. ते धनपाल जाते ब्राह्मण हतो अने आ धनपाल धक्कडवंशीय वैश्य जातिनो छे. एना पितानुं नाम महेश्वर अने मातानुं नाम धनश्री हतुं. ए उपरांत, ए क्यांनो वतनी हतो अने क्यारे थई गयो, ते जणायुं नथी. एनी कृतिनी भाषा उपरथी जे अनुमान थाय छे ते प्रमाणे ए विक्रमनी १२ मी अगर १३ मी शताब्दी थयो होवो जोईए.

भविष्यदत्त कथा जैन समाजमां जाणीती छे अने संस्कृत प्राकृतमां बनेली ए नामनी बीजी पण घणी कथाओ उपलब्ध थाय छे. कथानी वस्तुमां ज्ञान पंचमीनुं माहात्म्य वर्णवामां आव्युं छे. धनपालनी आ कथानुं संपादन करवामाटे डॉ. जेकोबीए जे परिश्रम उठाव्यो छे ते तेमां रहेली वस्तुनी दृष्टिए नहिं परंतु तेनी भाषानी दृष्टिए छे. आ कथानी रचना अपभ्रंश भाषामां थएली छे. अपभ्रंश भाषा ए भारतवर्षनी हिन्दी गुजराती आदि प्रचलित मुख्य भाषाओनी अनंतर जननी छे. मूळ संस्कृतमांथी प्राकृत निकळी, प्राकृतमांथी अपभ्रंश जन्मी अने अने अपभ्रंशमांथी आजनी देशभाषाओ अवतरी; एवुं भाषाशास्त्रनुं कथन छे. अपभ्रंश भाषानुं व्याकरण तो हेमचंद्रसूरिए पोताना सिद्धहेम व्याकरणना आठमा अध्यायना चोथा पादमां विस्तृत रीते आपेलुं छे परंतु भाषाशास्त्रिओने आज सुधीमां ए वातनी खबर न होती मळी के, केटलाक छूटा छवाया दोहाओ के तेवाज बीजा पद्यो सिवाय ए भाषामां रचायला अखंड ग्रंथो पण जैनोना जूना पुस्तक भंडारोमां पड्या पड्या सड्या करे छे ! सन् १९१४ नी सालमां ज्यारे डॉ जेकोबी हिंदुस्थाननी मुलाकाते आव्या त्यारे तेमणे ए संबंधमां केटलीक पूछ-परछ करी, जेना परिणामे अमदाबाद निवासी साहित्यरसिक श्रावक भाई श्रीकेशवलाल प्रेमचंद मोदीना प्रयत्नथी प्रस्तुत कथानी एक प्रति तेमना जोवामां आवी. डॉ. जेकोबी ए ग्रंथ जोई बहु खुशी थया अने तुरत ते आखा पुस्तकनो फोटोग्राफ पडावी लई पोतानी साथे जर्मनी लई गया. पाछळथी तेमणे ए ग्रंथनी बीजी प्रतो मेळववामाटे

पण प्रयत्न कर्यो अने तेना लीधे पाटणना भंडारमांथी तेनी एक जूनी प्रति कढावी प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजीए डॉ. जेकोबी तरफ मोकली आपी. परंतु कमनसीबे तेज अरसामां जर्मनीए इंग्लांड साथे महायुद्ध जाहेर कर्यो, तेथी ते प्रति डॉ. जेकोबीने न मळतां थोडा महिना पछी पाछी पाटण आवी. डॉ साहेबने युद्धना कारणे बीजी प्रत मळवानी आशा रही नहिं अने युद्धनी समाप्ति सुधी वाट जोईने तेमनाथी बेशी शकाय नहिं, तेथी तेमणे एक मात्र ते फोटोग्राफना आधारे ज महान् परिश्रम उठावी आ ग्रंथनी प्रस्तुत आवृत्ति, लडाई दरम्यान ज (सन् १९१८ मां) प्रकट करी छे अने तेम करी तेमणे भाषाशास्त्रिओ माटे एक नवीन विषयना उपयोगी अध्ययनन महाद्वार खुल्लुं कर्युं छे.

ए समग्र पुस्तकमां डेमी ४ पेजी जेवी पहोळी साईझना एकंदर ३२० लगभग पानां छे, जेमां प्रारंभनां १०० पानां प्रस्तावना अने विवरणमां (जे जर्मन भाषामां लखाएलां छे) रोकाएलां छे. विवरणमां प्रथम ग्रंथ, कर्ता, ग्रन्थगत वस्तु आदिनो परिचय आपवामां आव्यो छे अने पछी, लंबाणथी अपभ्रंश भाषा, तेनो इतिहास, तेनो विकास, तेनुं व्याकरण, तेनुं छन्दशास्त्र, अन्यान्य भाषाओ साथे रहेलो तेनो संबंध, साहित्यमां मळेलुं तेने स्थान, इत्यादि अनेक प्रकारना ज्ञातव्य विषयो, घणी ऊंडी शोधखोळ साथे, चर्चवामां आव्या छे.

विवरण पछी मूळ ग्रंथ आप्यो छे जेणे १२० पृष्ठ रोक्यां छे ग्रंथ रोमन लिपिमां मुद्रित करवामां आव्यो छे. ग्रन्थान्ते, ग्रन्थमां आवेला बधा शब्दोनो कोष आप्यो छे अने ते साथे दरेक शब्दनो संस्कृत प्रतिशब्द पण आप्यो छे.

पोताना देशमां चाली रहेला महान युद्धना भयंकर अशांतिकाळमां पण जगतने एक तद्दन नवीन विषयनुं उपयोगी ज्ञान आपवा माटे, आटली वृद्धावस्थामां उठावेला अथाग परिश्रम निमित्ते, विद्वत्समाज तरफथी डॉ. जेकोबी खरेखर बहु बहु धन्यवादने पात्र छे.

आ अमूल्य पुस्तकना विषयमां अमने बे वात बहु खटके छेः-एक तो एनी प्रस्तावना तेमज विवरण जे जर्मन भाषामां लखवामां आव्यां छे, ते इंग्रेजीमां लखायां होत तो वधारे ठीक थात. कारण के भारतना अभ्यासियोमां जर्मन भाषा जाणनार विरल ज होय छे. तेथी बधा जिज्ञासु अभ्यासियो एनो यथेष्ट लाभ नहिं मेळवी शके. बीजुं, मूळ ग्रन्थ जे रोमन लिपिमां छापवामां आव्यो छे ते पण भारतीयोनी दृष्टिए निरुपयोगी जेवो ज छे. भारत वर्षना मोटा मोटा स्कॉलरो सुधांने रोमनलिपिमां छापेला संस्कृत-प्राकृत ग्रंथो वांचता घणो परिश्रम पडे छे; तो पछी साधारण अभ्यासिओना माटे तो कहेवुं ज शुं परंतु ए विषयमां तो अमने संतोष राखवानुं कारण छे के वडोदरा राज्य तरफथी प्रकट थती गाइकवाड ओरियन्टल सीरीजमां पण ए ग्रंथ छपाय छे जेनी लिपी देवनागरी (बालबोध) ज छे.

जो कोइ पण विद्वान् आ पुस्तकनी बहुतथ्यपूर्ण प्रस्तावनानो इंग्रेजीमां के देश भाषामां जो अनुवाद करी-करावी आपे तो भाषाशास्त्रनी दृष्टिए बहु मोटो लाभ थवानो संभव छे.

२

सूरीश्वर अने सम्राट्.

[कर्ता मुनिराज विद्याविजय. प्रकाशक, यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर. पृष्ठसंख्या, २१-४१७. पाकुं पूंठुं. किं. रु० २-८-०]

जैन समाज तरफथी, आधुनिक गुजराती भाषामां, जे बे चार मुनिओ अगर श्रावकोना हाथे लखाएलां नानां मोटां ५-१० पुस्तको प्रकट थयां छे, ते सौमां मुनिराज विद्याविजयजीनुं लखेलुं 'सूरीश्वर अने सम्राट्' नामनुं पुस्तक प्रथम स्थान भोगवे छे, एम कहेवामां जराए अतिशयोक्ति जणाती नथी. मुनिजीनी आ कृतिए केवळ जैन साहित्यमां ज नहिं परंतु समग्र गुजराती साहित्यमां-खास करीने ऐतिहासिक पुस्तकोमां-एक उपयोगी उमेरो कार्यो छे, एम कहेतां अमने आनंद थाय छे.

जगद्गुरु हीरविजयसूरिए मुगल सम्राट् अकबरना बादशाही दरबारमां जई, धर्मजिज्ञासु करे

अथवा राज्यनीतिकुशल कहो-गमे ते कहो परंतु ते असाधारण व्यक्तित्ववाळा बादशाहने जे रीते ए त्यागी जैनाचार्ये पोताना धर्मनो प्रभावोत्पादक बोध आप्यो हतो, अने ते बोधने सांभळी जे रीते ते दयाळु बादशाह जैनधर्म प्रति पोतानी सविशेष प्रीति प्रकट करी हती, तेनो संक्षिप्त पण सारभूत इतिहास अमे अमारा कृपारसकोष नामना पुस्तकनी लांबी प्रस्तावनामां (जे हिन्दी भाषामां लखायली छे) आज थी ४-५ वर्ष अगाउ आप्यो हतो. ते प्रस्तावना लखती वखते ज अमारा मनमां एवो संकल्प थयो हतो के प्रसंग मळे, हीरविजयसूरिना जीवन संबन्धमां मळी आवतां सघळां साधनोने एकत्र करी, ते उपरथी एक सविस्तर जीवनचरित्र ए महान् जैनयतिनुं अवश्य तैयार करवुं जोईए. प्रस्तुत पुस्तक जोईने अमने आनंद थाय छे के अमारो ए शुभ संकल्प, अमारा एक योग्य मुनिबंधुना साथे उत्तमरीते पूर्ण थयो छे.

हीरविजयसूरिनुं आसन जग धर्मगुरुओमां एक उच्च स्थान भोगवे छे. अकबर जेवा महाबुद्धिवान्, व्यवहारचतुर, गूढहृदयी, सूक्ष्मदर्शी अने राजनीतिकुशल सम्राट्ना अंतःकरणमां, तेना देश, जाति, धर्म, स्वभाव, अने ध्येयथी तद्दन विरुद्ध संस्कारवाळा धर्मगुरुनो विरक्तिप्रबोधक धर्मबोध अनायासे उच्चस्थान मेळवे ए एक जगत्ना इतिहासमां आश्चर्यजनक नोंध गणावी जोईए.

ए प्रतापी सम्राट्ना, तेनी आसपासनी समग्र परिस्थितिथी अने तेना खास आनुवंशिक जीवन-संस्कारोथी विरुद्ध जता अनेक विचारो अने आचारो भिन्न भिन्न इतिहासकारोए अनेक स्थळे नोंध्या छे, परंतु ते आचार-विचारोनुं यथार्थ कारण कोई पण लेखके स्पष्टरीते आपेलुं न होवाथी आधुनिक इतिहासज्ञोए-खास करीने युरोपीय इतिहासज्ञोए-ए विषयमां अनेक तर्क-वितर्को चलाव्या छे अने हजीए चलाव्ये जाय छे. पण कहेतां खेद थाय छे के, जैन साहित्यमां, ए विषयनो खरो खुलासो आपनारा असंख्य पुरावाओ विद्यमान होवा छतां, कोई पण विद्वाने आज सुधीमां ए पुरावाओनी तपास सुधां करी नथी. युरोपना विद्वानो तो विदेशी होवाथी कदाच ए बाबतमां ओछा उपालंभने पात्र होई शके परंतु भारतना पुरातत्त्वज्ञोनी ए विषयक उपेक्षा तो खरेखर अक्षम्य ज गणी शकाय. युरोपना केटलाक विद्वानोने अकबरनी विविध अने परस्पर विरुद्ध एवी जीवनवार्ताओमां क्रिश्चियन धर्मनी असरना स्वप्न आववां लाग्यां अने तेमनां स्वप्नस्मरणोने अमारा देशबंधु विद्वानो यथार्थरूपे पण मानवा अने कहेवा लाग्या; परंतु कोईना मनमां ए विचार नथी आव्यो के जैनोना सैंकडों लेखोमां अकबरनी जे आटली बधी प्रशंसा करवामां आवी छे तेनुं शुं कारण छे, ए तरफ पण जरा दृष्टि तो नांखी जोईए. अमारा लोकोनी आवीज अनुकरणप्रियता के प्रमादशीलताने जोईने परदेशी विद्वानो जे अमने मौलिकताशून्य अने गंभीरविचारविहीननी कुत्सित उपाधिओथी संबोध्या करे छे तेमां केटलेक अंशे सत्य अवश्य छे, एम अनिच्छाए मानवानी फरज पडे छे.

अकबरना प्रधान मंत्री शेख अबुल-फजले आईन-ए-अकबरीमां अकबरना साम्राज्यमांनी प्रधान प्रधान व्यक्तिओनी जे लांबी टीप आपी छे, तेमां, प्रथम श्रेणिमां गणावेला सर्व श्रेष्ठ मनुष्योमां हीरविजय सूरिनुं पण नाम दर्ज छे; तेमज पांचमी श्रेणिना मनुष्योनी नामावलीमां ए सूरिना प्रधान शिष्य विजयसेनसूरि अने भानुचंद्र उपाध्यायनां नामो पण आपेलां छे. परंतु आजथी दश वर्ष पहेलां कोई पण देशी के विदेशी विद्वाने अबुल फजले नोंधेला सर्व श्रेष्ठ मनुष्योमांना एक एवा ए हीरविजयसूरि, तेमज पांचमा वर्गमां आपेला विजयसेनसूरि अने भानुचंद्र नामना पुरुषो कोण छे अने शा कारणथी तेमना नामो आईन-ए-अकबरी जेवा महान् ग्रंथमां नोंधवामां आव्यां छे तेनी तपास करवा माटे परिश्रम कर्यो न हतो. 'हीरविजय सूरि' ए नाम फारसीमां कोई जुदा प्रकारनी जोडणीथी लखवामां आव्युं हशे तेथी आईन-ए-अकबरीना इंग्रेजी अनुवाद कर्ता मी. ब्लॉकमेने ते नाम इंग्रेजीमां 'हारिजीसूर (Harigi Sur)' आवी रीतनी जोडणी करीने आप्युं छे. मी. ब्लॉकमेने आईन-ए-

अकबरीमां आपेली नामोनी उक्त लांबी टीपमांनी घणीक व्यक्तिओनी, बीजा बीजा इतिहासो उपरथी पण ओळखाण आपवा बाबत महेनत लीधी छे: परंतु 'हरिजीसूर' नाम माटे तेणे कोई पण नोंध करी नथी.

आईन-ए-अकबरीमांनुं आ नाम सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हीरविजयसूरिनुं छे, एवुं ज्ञान कराववानुं मान अमारा सद्गत स्नेही श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल, एम्. ए. ने घटे छे. तेमणे बनारसथी निकळता 'जैनशासन' नामक एक साम. यिक पत्रना, वीर संवत् २४३९ ना दीवाळीना खास अंकमा 'हीरविजयसूरि अथवा अकबरना दरबारमां जैनो' (HIRAVIJAYASURI or THE JAINAS AT COURT OF AKBAR) एवा मथाळा नीचे, 'C' एवी संक्षिप्त सही साथे, एक प्रामाणिक लेख इंग्रेजीमां प्रकट कराव्यो हतो.[1] ते लेखमांज भाई श्रीदलाले सौथी प्रथम पुरातत्वज्ञोने ए अज्ञात बाबतनी माहीती आपी हती के आईन-ए-अकबरीमां जे 'हरिजीसूर' एवुं नाम मळी आवे छे ते नाम बीजा कोईनु नथी पण जैन समाज अने जैन इतिहासमां प्रसिद्ध-एवा आचार्य हीरविजयसूरिनुं ज छे. अने तेनी साथे तेमणे संक्षेपमां हीरविजयसूरि अने अकबरना समागमनो सप्रमाण इतिहास पण आलेखी बताव्यो हतो.

भाई श्रीदलालनो ए मौलिक आविष्कार वांचीने ज प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ मि. विन्सेन्टए. स्मीथ साहेबे 'अकबरना जैन गुरुओ' (THE JAIN TEACHERS OF AKBAR) ए नामनो एक महत्त्वनो इंग्रेजी निबन्ध 'भांडारकर स्मारक निबन्ध संग्रह' (R. G. Bhandarkar Commemoration Volume) मां प्रकाशित कराव्यो हतो, अने तेमां अकबरना जीवनमां हीरविजयसूरिए भजवेलो भाग संक्षिप्त परंतु स्पष्ट रीते बतावबामां आव्यो हतो. तेवीज रीते पोताना 'अकबर' नामना प्रसिद्ध पुस्तकमां पण ए साचा इतिहासप्रेमी विद्वाने, हीरविजयसूरिने केटलेक अंशे उचित स्थान आपी, ए बाबतमां इतिहासवेत्ताओथी थती आवती मोटी भूलनुं कांईक संशोधन कर्युं छे.

सूरीश्वर अने सम्राट्मां मुनिराज विद्याविजयजीए एज विषय अनेक ऐतिहासिक प्रमाणोना आधारे संपूर्णरीते आलेख्यो छे अने सम्राट् अकबरना इतिहासमां जगद्गुरु हीरविजयसूरि केवुं महत्त्वनुं स्थान धरावे छे ते सारी पेठे समजाव्युं छे. पुस्तकने प्रामाणिक बनाववामाटे मुनिजीए यथेष्ट संभाळ लीधी छे. परिशिष्टमां जे केटलाक फारसी फरमानो आप्या छे, ते आज सुधीमां जाणमां नहिं आवेला एवा छे अने तेथी पुस्तकनी महत्तामां उपयोगी उमेरो थयो छे. हीरविजयसूरि, अकबर अने अबुल फजल विगेरेनां चित्रोथी पुस्तकनी शोभा वधारे आकर्षक बनी छे. परंतु, हीरविजयसूरीनी जे मूर्तिनुं चित्र आप्युं छे ते तेवुं सुन्दर अने आल्हादक नथी, तेथी कोई बीजी वधारे सुन्दराकृति मूर्तिनुं चित्र मेळववामां आव्युं होत तो वधारे ठीक लागत।

अंते, आवुं उपयोगी, प्रामाणिक अने मूल्यवान् पुस्तक लखवा माटे मुनिराज विद्याविजयजीनुं पुनः एकवार अभिनंदन करी अमे अमारुं वक्तव्य समाप्त करीए छीए अने दरेक जैन अने जैनेतर विद्वान्ने एक वार आ पुस्तक अवश्य जोई जवानी खास भलामण करीए छीए.

३

तत्त्वार्थ परिशिष्ट मूल अने भाषांतर.

['मूल कर्ता आगमोद्धारक आचार्य श्रीसागरानंद सूरीश्वरजी,—भाषांतर कर्ता मुनी (?) मानसागरजी. प्रसिद्धकर्ता मास्तर उमेदचंद रायचंद. मु. अमदाबाद. मूल्य ज्ञानाभ्यास.' पृ. १८–१४८,]

समग्र जैन साहित्यमां एक तत्त्वार्थसूत्र ज एवो ग्रंथ छे के जेना अध्ययनथी जिज्ञासु मनुष्य संक्षेपमां जैन धर्मनुं संपूर्ण स्वरूप समजी शके छे. ए ग्रंथ जैन धर्मना श्वेतांबर अने दिगंबर-बन्ने संप्रदायोने समानभावे पूज्य अने मान्य छे. अलबत्, बन्ने

१ ए लेख पाछळथी, वडोदराथी प्रकट थता 'लाईब्रेरी मेसेलेनी' नामना त्रैमासिकमां पण प्रकाशित थयो हतो.

संप्रदायोना सूत्रपाठमां केटलीक पाठ-भेद अवश्य रहेलो छे, परंतु तेथी तेनी पूज्यतामां कोई पण प्रकारनो भेद नथी. ए सूत्र पर बन्ने संप्रदायोना समर्थ पूर्वाचार्योए भाष्य टीका आदि अनेक व्याख्यानो करेलां छे अने तेनो सर्वत्र प्रचार पण छे एज सूत्रना परिशिष्टरूपे समालोचित पुस्तकनी रचना करवामां आवी छे. वास्तविकमां, तत्त्वार्थसूत्रनी रचनामां एवी कोई खास न्यूनता नथी के जेथी तेनी पूर्ति करवा माटे परिशिष्ट बनाववानी आवश्यकता प्रतीत थाय. अने कदाच तेवी आवश्यकता जणाय तो पण ते कार्य पूर्ण अनुरूप तो बीजा उमास्वातीथी ज थई शके बीजाए तेवो प्रयत्न करवो ते अमारा लघुमत प्रमाणे तो एक प्रकारे अनधिकारचेष्टा जेवुं ज गणाय. पूर्वना महान् महान् आचार्योए केटलाक शास्त्रोनी पूर्ति माटे एवा केटलाक प्रयत्नो कर्या छे खरा परंतु ते वार्तिक के भाष्यना रूपमां छे, सूत्रना रूपमां तो नहिं ज. अस्तु.

मूल तत्त्वार्थशास्त्रनी सूत्र-संख्या श्वेताम्बरोना पाठ प्रमाणे ३४४ छे अने दिगम्बरोना पाठ प्रमाणे ३५७ छे. जो के आम संख्यानी दृष्टिए जोता बन्ने संप्रदायोना पाठमां मात्र १३ ज सूत्रोनो फेर जणाय छे परंतु वास्तविकमां तेम नथी. कारण के श्वेताम्बरीय सूत्रपाठमांना केटलांए सूत्रो दिगम्बरीय सूत्रपाठमां नथी अने तेवीज रीते दिगम्बरीय सूत्रपाठोना केटलांए सूत्रो श्वेताम्बरीय सूत्र पाठमां नथी. त्रीजा अध्यायमां ज्यां जंबूद्वीपनुं भौगोलिक वर्णन आवेलुं छे त्यां एक साथे श्वेताम्बरीय पाठ करत, दिगम्बरीय पाठमां २०—२१ सूत्रो सर्वथा वधारे छे. सर्वथा वधारे एटला माटे के ते सूत्रोमां आपेलुं वर्णन श्वेताम्बरीय पाठमां बिल्कुल नथी. श्वेताम्बरीय सूत्र पाठना समर्थ टीकाकार आचार्य हरिभद्रे दिगम्बरीय पाठना ए आधिक्य माटे टीका पण करी छे अने जणाव्युं छे के आ सूत्रो पाछळथी कोईए बनावी लीधां छे अने सूत्रकारना संक्षेप करणात्मक अभिप्रायनी दृष्टिए तेनुं अस्तित्व अयुक्त छे. आश्चर्य छे के जे जातनां सूत्रोने हरिभद्रसूरि-सूत्रकारनी अपेक्षाए अयुक्त जणावे छे तेज जातनां नवां सूत्रो रची तत्त्वार्थना परिशिष्टरूपे सागरानंदसूरि प्रकट करावे छे.

आ परिशिष्टात्मक सूत्रोनी संख्या १३० जेटली छे अने ए सूत्रोमां घणा भागे खगोल अने भूगोलना विषयनीज पूर्ति करवामां आवी छे. जैन मान्यता प्रमाणेना खगोल अने भूगोलनुं वर्णन केटलाक सूत्रग्रन्थो सिवाय मुख्य करीने क्षेत्रसमास अने संग्रहणी नामना प्रकरण ग्रंथोमां विस्तृतरीते वर्णवामां आवेलुं छे. ए ग्रंथो वधारे विस्तृत होवाथी संक्षेपमां तेनुं ज्ञान कराववामाटे आ परिशिष्टनी रचना सागरानंदसूरिए करी छे, एम भाषांतरकार जणावे छे. परिशिष्टकार आचार्य, आ विषयक जैन साहित्यना शब्द-शरीरना समर्थ ज्ञाता छे एमां संशय नथी. ए विषयमां तेमना जेटलुं सूक्ष्म ज्ञान भाग्येज बीजा कोई मुनि धरावता हशे. परंतु तेमनी आ प्रस्तुत कृति अमने तो अनुपयुक्त अने असंबद्ध जेवी लागे छे. कारण के एक तो आ परिशिष्टमां आपेलां सूत्रोनी रचनामां कोई पण क्रम गोठववामां आव्यो नथी, अने बीजुं सूत्रोनी संकलना पण क्लिष्टार्थ भरेली छे. जो आवा प्रकारना परिशिष्टनी तेमने खास आवश्यकता ज जणाई हती तो जाते नवीन सूत्रकार थवानी आकांक्षा करतां जूना ग्रन्थोमांथी तेवां सूत्रो चूंटी काढी संग्रहकार थवानी इच्छा वधारे प्रशंसनीय गणाई होत. तत्त्वार्थ सूत्रकारनी ज कृतिरूपे मनाता जंबूद्वीपसमास नामना ग्रंथमांथी आ परिशिष्ट पूर्णरीते संग्रही शकाय तेम छे. तेमज दिगम्बर संप्रदायना सुप्रसिद्ध ग्रंथरत्न तत्त्वार्थराजवार्तिकमां आ जातनां एकथी एक उत्तम अने अत्युपयोगी वार्तिको भरेलां छे, तेमांथी पण जो आ विषयनां वार्तिको उध्दृत करवां होय तो घणी सारी रीते करी शकाय तेम छे. प्रस्तुत परिशिष्टमांए पण केटलांक सूत्रो तो दिगम्बरीय सूत्र पाठमांथीज—शब्दो उलट पालट करीने जेमनां तेम—लीधेलां अमारा जोवामां आवे छे. तेथी तेम न करतां तेना तेज शब्दोमां जो ते सूत्रो राख्यां होत तो, आमां जे क्लिष्टार्थता नजरे पडे छे ते न पडत.

मुनि मानसागरजीनुं करेलुं भाषान्तर बहुज साधारण प्रतिनुं छे अने केटलेक ठेकाणे तो उलटो अर्थ-विपर्यास करावे तेवो छे. उदाहरण तरीके

एक दाखलो आपीशुं. पांचमां पानामां नीचे प्रमाणे सूत्र छे.—

‘ उध्दृत्ताश्चक्रिहरियुगलार्हज्जिनयतिदेश-

सम्यक्त्ववन्तः । ’

आ सूत्रनी रचनामां जे खामी छे तेनो तो अमे अहिं निर्देश ज करवा इच्छता नथी. भाषान्तरना विषयमां ज अमारे थोडुंक कहेवुं छे. आ सूत्रनो शब्दार्थ अने विशेषार्थ नीचे प्रमाणे करवामां आव्यो छे.

‘ शब्दार्थ—अनुक्रमे पहेली नारकी आदीथी नीकळेला चक्रवर्ती, बलदेव अने वासुदेव. अरिहंत केवली, सर्वविरति, देशविरति अने सम्यक्त्व वाळा थाय छे. ’

‘ वि०—पहेली नारकीथी नीकळेलो चक्रवर्ती थाय. बीजी नारकीथी नीकळेलो जीव वासुदेव अथवा बलदेव थाय. त्रीजी वालुका प्रभाथी नीकळेलो जीव तीर्थंकर थाय.’ इत्यादि.

आ शब्दार्थ अने विशेषार्थनी वाक्यरचनाथी तो वाचकने एवोज अर्थावबोध थाय के पहेली नरकमांथी निकळेलो प्राणी चक्रवर्तीज थाय, बीजीमांथी निकळेलो वासुदेव अगर बलदेवज थाय. त्रीजीमांथी निकळेलो तीर्थंकर ज थाय इत्यादि । परंतु यथार्थमां परिशिष्टकारनो खुदनो कहेवानो भावार्थ एम नहिं हशे. कारण के तेम होय तो ते तद्दन असंगत गणाय. आ विषयमां शास्त्रकारोनो अभिप्राय तो एवो छे के नरकमांथी निकळेलो जीव जो चक्रवर्ती पद प्राप्त करवाने योग्य होय तो ते फक्त पहेली नरकमांथी ज निकळेलो होय छे. वासुदेव अगर बलदेव पदनी प्राप्ति पहेली अने बीजी एम बन्ने नरकमांथी निकळेला जीवोने होई शके छे अने तेवीज रीते तीर्थंकर पदनी प्राप्ति पहेली, बीजी अने त्रीजी नरकसुधीमांथी निकळेला प्राणियोने थई शके छे. इत्यादि. आवी रीत बीजां पण घणां स्थले अर्थ-करणमां भूलो थयेली नजरे पडे छे. आशा छे के बीजी आवृत्तिमां आ संबंधमां उचित लक्ष्य आपवामां आवशे. बाकी एकंदर रीते परिशिष्टमां ए विषयनो सारो संग्रह थयो छे अने साथे जे आकृतियां विगेरे आपी छे तेथी ए विषयना अभ्यासीने सहेलाईथी अर्थज्ञान थई शके तेम छे

आहि प्रसंगथी एक जरा कडवी पण हितकर वात सूचववानुं मन थई आवे छे के—सागरानंदसूरि जेवा विद्वान् अने प्रतिभाशाली मुनिए आजना जमानामां आवा अनावश्यक अने अनुपयोगी कामोमां काळक्षेप करवो उचित नथी. समय घणो बदलाई गयो छे. सर्वसाधारणनी अभिरुचि कोई जुदा ज विषयोना अभ्यास तरफ वधती जाय छे. विद्वानोना अध्ययन-मननतुं साहित्य क्षेत्र भिन्नज प्रकारनुं थई रह्यु छे नवीन वातावरणमां उछरती अने केळवणी पामती प्रजानो आवी जातना लूखा, नीरस, अनुपयुक्त, जूना विषयो तरफ अभिरुचि वधे के श्रद्धा बेसे तेम बिल्कुल नथी. वर्तमान समयमां प्रत्यक्ष प्रमाणथी निश्चित थयला खगोल अने भूगोलना सिद्धान्तो आगळ जगतना दरेक धर्मना ए विषयना जूना विचारो निस्तेज अने अर्थहीन साबित थया छे, अने प्रत्येक धर्मना बहुश्रुत विद्वान् ते विचारोने अधिकांश कल्पना-प्रसूत माने छे.

तत्त्वार्थसूत्र में जाते कॉलेजियनो तेमज ग्रेज्युएट-डबलग्रेज्युएट जेवा उच्च शिक्षण पामेला अनेक जैन—अजैन अभ्यासियोने तुलनात्मक पद्धतिए पण शीखव्युं अगर वंचाव्युं छे तेमां आवतो खगोल-भूगोल विषयक भाग केवळ विनोदनी खातर समजावतां पण मने घणो संकोच थतो हतो अने शीखनार तेवा एके एक सूत्र उपर लावर उपहास व्यक्त करता हता. जो के हुं केटलेक अंशे तेनुं समाधान अमुक पद्धतिए करी शकतो. परंतु यथार्थ समर्थन तो माराथी कोई पण प्रमाणथी न ज थई शकतुं. मने घणाक विद्वानोए तो आवी खास सूचनाओ करी छे के तत्त्वार्थसूत्रमांथी आ विषयने लगतो विभाग काढी नांखी तेने संक्षिप्त बनाववानी आवश्यकता छे के जेथी नवीन शिक्षितोने आ विषयनी गंध सुधां न आवे अने तेथी तेमना मनमां, आपणा पूर्वाचार्योनी बीजी अननुपमेय कृतियोनी प्रामाणिकताना संबंधमां कोई पण प्रकारना कुतर्को किंवा सन्देहो उत्पन्न

थवा न पामे. त्यारे बीजी बाजू सागरानंदसूरि जेवा एक सारा विद्वान् आ विषयना परिशिष्टो रचवामां महत्त्व समजी रह्या छे। जैन विद्वानोनुं कर्तव्य छे के तेओ जगत्मां प्रसार पामती भिन्न भिन्न ज्ञान-शाखाओनुं विशाल अध्ययन करी, तत्त्वज्ञान, इतिहास अने साहित्य जेवा गंभीर विषयो उपर वधारे प्रकाश पाडे अने तेम करी जैन धर्मनुं गौरव प्रकाशित करे. आ विषयमां अमारे जैन विद्वानोने घणुंक कहेवानुं छे जे यथावसरे कहेवामां आवशे. आजे तो फक्त सूचनारूपे आ बे शब्दो लख्या छे आशा छे के नम्र अने प्रेमभावे लखाएलां आ वाक्योनो सरल ज अर्थ करवामां आवशे अने भविष्यमां सागरानंद सूरिनी कोई आदर्श कृतिनी स्मरणीय समालोचना करवानो उत्तम अवसर अमने प्राप्त थशे.

मुंबई युनिवर्सिटीनो एम्. ए. क्लासनो अर्धमागधीना कोर्स.

गत अङ्कमां, मुंबई युनिवर्सिटीए पोताना अभ्यासक्रममां आ वर्षथी जे अर्धमागधी (अथवा तो प्राकृत) भाषाने दाखल करी छे तेनो बी. ए. सुधीनो कोर्स आपी देवामां आव्यो छे. स्थळाभावने लीधे एम्. ए. नो कोर्स आपवो रही गयो हतो ते आ नीचे आपवामां आवे छे.

ई. स. १९२१ ना वर्षमां.

1. ...ध्ययनसूत्र संस्कृत टीका साथे.
2. (a) Comparative Philology—
   - (1) Relation between Sanskrit and Prakrit and between the Prakrits themselves, as in Bhandarkar's Wilson Philological Lectures.
   - (2) General Principles, as in Gune's Introduction to Comparative Philology.

   (b) History of Jain Literature —
   - (1) Buhler.-Indian Sect of the Jainas, translated by J. Burgess. Lazac & Co., London.
   - (2) Weber. Sacred Literature of Jainas.
   - (3) Warren.—Jainism.
3. Jaina Philosophy:—
   Pravachanasara of Kundakunda, With the Baudha, Sankhya and Arhata Darsana, from Sarvadarsanasamgraha (Anandasrama Series)
4. Translation from and into Ardha-Magadhi.

ई. स. १९२२ ना वर्षमां.

1. आवश्यक सूत्र पूर्वार्ध, हरिभद्रसूरिनी टीका साथे, आगमोदय समितिए छपावेलुं.
2. उपर प्रमाणे.
3. Jaina Philosophy:—
   Syadvadamanjari of Mallisena, with Baudha, etc. Darsanas as in 1921.
4. Translation from and into Ardha-Magadhi.

ए सिवाय बी. ए. क्लासना ऐच्छिक विषयमां जे एक पेपर जैन साहित्यनो राखेलो छे तेमां नीचे प्रमाणेनां पुस्तको पाठ्यपुस्तको तरीके नियुक्त करेलां छे.

१९२०.

१. आचारांग सूत्र (मूळ मात्र).
२ हेमचन्द्राचार्यरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुष—चरित्र, पर्व १० (महावीर चरित्र) मांना सर्ग १—८.

१९२१–१९२२.

१. प्रवचनसार दीपिका साथे.
२. बीजामां उपर प्रमाणेज.

पंजाब-युनिवर्सिटिमें जैन साहित्यको स्थान ।

बंबई और कलकत्ता युनिवर्सिटिमें तो आज कई वर्ष हुए जैन साहित्यको कितनाएक स्थान मिल चुका है। परंतु. पंजाब-युनिवर्सिटिमें अभीतक उसे किञ्चित् भी अवकाश नहीं मिला था। उसमें कारण केवल पंजाबके जैन भाईयोंकी अनभिज्ञता और उपेक्षा ही है। पंजाबके जैनियोंमें मामूली शिक्षाका भी बडा भारी अभाव है तो फिर ऊंची कक्षाकी शिक्षाके बारेमें तो कहना ही क्या। यही सबब है कि आजतक पंजाबमें, अन्य धर्मीय सेंकडों ही ग्रेज्युएट संस्कृतके पारंगत विद्वान् हो गये हैं परंतु जैनियोमें वैसा एक भी मनुष्य नहीं था। हमें यह जान कर प्रसन्नता हो रही है कि पंजाबके जैन समाजकी इस न्यूनताकी पूर्ति करनेवाला एक पुरुष तैयार हो गया है और वह है लुधियाना निवासी श्रीयुत लाला बनारसी दास जैन। बनारसी दासजीने एम्. ए. तककी ऊंची शिक्षा प्राप्त की है और संस्कृत-प्राकृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। आपका एक इंग्रजी लेख जै. सा. सं. के प्रथम अंकमे प्रकाशित हो चुका है। आप लाहोरके ओरिएन्टल कालेजमें प्रोफेसर हैं। आपने हालहीमें बहुत कुछ परिश्रम करके पंजाब युनिवर्सिटिकी एम्. ए. की परीक्षामें जैन साहित्यको उचित स्थान दिलाया है और उसके शुभ समाचार जैन साहित्य संशोधकमें प्रकट करनेके लिये भेजे हैं जो आपहीके शब्दोंमें नीचे प्रकट किये जाते हैं:—

"बडे हर्ष की बात है कि पंजाब युनिवर्सिटिने अपनी (संस्कृत की) सब से उच्च परीक्षा अर्थात् एम० ए० (M. A.) में जैन फिलॉसफी तथा साहित्य को भी स्थान दे दिया है। इस वर्ष निम्न लिखित ग्रन्थ नियत हुए हैं:—

१ स्याद्वाद मञ्जरी (संपूर्ण)।

२ सूत्रकृतांग (प्रथम के ६ अध्ययन)।

३ उत्तराध्ययन (प्रथम के दस अध्ययन)।

४ जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास (अंग्रेजी)।

इसके लिये सारी जैन समाजको श्रीयुत ए० सी० वूलनर (Captain A. C. Woolner)— लाहोर के ओरियन्टल कालेज के प्रिंसीपाल—को धन्यवाद देना चाहिये जो कि इस देशमें जैन साहित्य के प्रचार का बडा प्रयत्न कर रहे हैं। आप स्वयं भी प्राकृत के अद्वितीय विद्वान हैं, आर जैन साहित्यसे हार्दिक प्रेम रखते हैं।

चूं कि पंजाबमें संस्कृत पढनेवाले जैन विद्यार्थी विरले हैं, इस लिये अन्य धर्मी विद्यार्थीयों को जैन साहित्य की ओर लाने के लिये एक वजीफा (Scholarship) की आवश्यकता है जिस को स्थायी रूप देने के लिके रु० १०००० चाहिए। जो महाशय इस खाते में दान देना चाहें वे इसी पत्र द्वारा सूचना देवें ताकि रुपया शीघ्र युनिवर्सिटिमें भेजने का प्रबन्ध किया जावे।"

स्कालर्शिपके लिये जो सूचना बनारसी दासजीने इस निवेदनमें की है उसकी तरफ हम प्रत्येक विचारशील और उदारचित्त भाईका लक्ष्य खींचना चाहते हैं। खास कर पंजाबी जैन भाईयोंको इस विषयमें पूरा खयाल करना चाहिए और अपना कर्तव्य बजाना चाहिए।

अशुद्ध-संशोधन.

गया अंकमां प्रकट थएला श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाहना "हरिभद्रसूरिनो समयनिर्णय" शीर्षक लेखमां भ्रमथी एक-बे ठेकाणे अशुद्ध पाठ छपाई गयो छे, तो ते नीचे प्रमाणे सुधारी वांचवानी भलामण करवामां आवे छे.

पृष्ठ ४१, कालम २, पंक्ति १३-१४ मां नीचे प्रमाणे पाठ छेः—

'आ ५९८ ने वर्तमान गणतरीए गणाता गुप्त संवत् तरीके....'

तेना बदले नीचे प्रमाणे वांचवुं—

'आ ५९८ ने मारी गणतरी मुजबना मूळ गुप्त संवत् तरीके....'

तेवीज रीते, तेनी नीचे पंक्ति २४ मां नीचेप्रमाणे पाठ छे—

गुप्त संवत् ५९८....सिद्धर्षिए श्रीचन्द्रकेवली चरित्र रच्युं.'

तेने नीचे प्रमाणे सुधारी वांचवुं—

'गुप्त संवत् ५९८....सिद्धर्षिए (श्रीचंद्रकेवली चरित्रमां जणाव्या मुजब) ग्रन्थ रचना करी.'

बृहट्टिप्पनिकानामप्राचीनजैनग्रंथसूची

एकादशाङ्गानि ।

१. श्रीआचारांगसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम्—२५२५ ।
  (१) निर्युक्तिः श्रीभद्रबाहुकृता ग्रन्थाग्रम ४५०, गाथा ३६२ ।
  (२) चूर्णिः ८३०० ।
  (३) वृत्तिः शीलाचार्यीया ९३३ वार्षिका, १२००० ।
२. श्रीसूत्रकृतांगसूत्रम् – २१०० ।
  (१) निर्युक्तिः २६५, गाथा २०८ ।
  (२) चूर्णिः १०००० ।
  (३) वृत्तिः शीलाचार्येण कृता, १२८५० ।
३. श्रीस्थानांगसूत्रम्—३६०० ।
  (१) वृत्तिः श्रीअभयदेवैः ११२० वर्षे कृता, १४२५० ।
४. श्रीसमवायांगसूत्रम्—१६६७ ।
  (१) वृत्तिः ११२० वर्षे अभयदेवीया, ३५७४ ।
५. भगवतीसूत्रम्—एकचत्वारिंशत्-शतकमयम् १५७५२ ।
  (१) चूर्णिः ३११४ ।
  (२) अवचूर्णिः पत्तमवितकोशेऽस्ति ।
  (३) वृत्तिः ११२८ वर्षे अभयदेवसूरिकृता १८६१६ ।
६. ज्ञातधर्मकथासूत्रम्—५४०० ।
  (१) वृत्तिः ११२० वर्षे कृता ३८०० ।
७. श्रीउपासकदशासूत्रम्–८१२ ।
८. श्रीअन्तकृद्दशासूत्रम्—८९९ ।
९. श्रीअनुत्तरौपपातिकदशासूत्रम्—१९२ ।
  (१) उपासक–अन्तकृत्–अनुत्तरौपपातिकवृत्तिः–१३०० ।
१०. श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्रम्–१२५६ ।
  (१) वृत्तिः ४६०० ।
११. श्रीविपाकसूत्रम्–१२१६ ।
  (१) वृत्तिः ९०० ।
  एकादशांगीसूत्रसंख्या ३५३३९ ।
  वृत्तिसंख्या ७४७९० ।

द्वादशोपाङ्गानि ।

१२. उववाइयसूत्रम्—११६७ ।
  (१) वृत्तिः ३१२५ अभयदेवीया ।
१३. राजप्रश्नीयसूत्रम्—२०७९, २१२० ।
  (१) वृत्तिर्मलयगिरीया ३७०० ।
१४. जीवाभिगमसूत्रम्–४७०० ।
  (१) चूर्णिः—१५०० ।
  (२) वृत्तिर्हारिभद्री प्रदेशवृत्तिनाम्नी ११९२ ।
  (३) वृत्तिर्मलयगिरीया १४००० ।
१५. प्रज्ञापनासूत्रम्—षट्त्रिंशत्पदमयम् - ७७८७ ।
  (१) लघुवृत्तिर्हारिभद्री—३७२८ ।
  (२) वृत्तिर्मलयगिरीया—१६०००, १४५०० (?) ।
  (३) प्रज्ञापनातृतीयपदसंग्रहणी श्रीअभयदेवसूरिकृता गाथा १३३ । तदवचूरिश्च-४३० ।
१६. श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रम्—२०५४ ।
  (१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।
१७. श्रीसूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रम्–२२९६ ।
  (१) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० ।
१८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम्—४४५४ ।
  (१) चूर्णिः १८७९ ।
  (२) वृत्तिर्मलयगिरीया ९५०० ।
१९–२३. निरयावलिका—कल्पावतंसिक–पुष्पिता–पुष्पचूलिका- दशा-(५) सूत्राणि–११०९ ।

(१) निरयावलिकादीनां पंचानां वृत्तिः, ११२८ वर्षे ।

आवश्यक-मूल-च्छेद-सूत्र-वृत्त्यादीनि ।

२४. मूलावश्यकसूत्रसामायिकादीनि, षड् अध्ययनानि—१०० प्रमाणानि ।
(१) साधुप्रतिक्रमणसूत्रं तु ११० ।
(२) ललितविस्तरा चैत्यवन्दनावृत्तिर्हारिभद्री १२७० ।
(३) ललितविस्तराटिप्पनकं देवसूरिगुरुमुनिचन्द्रीयम् १६०० ।
(४) चैत्य-साधुवन्दन-श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः ९५६ वर्षे पार्श्वेण कृता २००० प्रमाणा ।
(५) ईर्यापथिकी—चैत्यवन्दनासूत्र—वन्दनकानि ।
(६) ईर्या० १५० चैत्य० ८४० वन्द० ७२७ चूर्णयः ११७४ वर्षे यशोदेवकृताः ।
(७) प्रत्याख्यानस्वरूपं यशोदेवकृतम् गाथा—३६० ।
(८) प्रत्याख्यानवृत्तिः—५५० ।
(९) चैत्यवन्दनादिसूत्र-साधु-श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रपदपर्यायमंजर्यः—अकलंकदेवसूरीयाः ।
(१०) श्राद्धसामायिक-प्रतिक्रमणसूत्रव्याख्याप्रकरणम्—११८३ वर्षे जैनदेवम् गाथा २९३ श्लोक ३६५ ।
(११) चैत्यवन्दनामहाभाष्यं श्रीशान्तीयम्, सूत्रव्याख्याचरणादिवाच्यम्—'महामहपणमंत' इत्यादिपदम् गाथा ९२२ ।
(१२) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः ।
(१३) षडावश्यकं चैत्यवन्दनादिसर्वसूत्रव्याख्यारूपम् तपाश्रीदेवेन्द्रसूरिकृतम् २७२० ।
(१४) चैत्यवन्दनादिवृत्तिः कुलप्रदीपः २४५८ ।
(१५) चैत्यवन्दना-वन्दनक-प्रत्याख्यानवृत्तयः श्रीतिलकीयाः ५५० ।
(१६) श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रलघुवृत्तिः श्रीतिलकीया ३०० ।
(१७) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः श्रीतिलकीया २९६ ।
(१८) चैत्यवन्दनाटीका हारिभद्रीया ४८२ ।
(१९) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः आवश्यकबृहद्वृत्तिगता ।
(२०) साधुप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभी ५४८ ।
(२१) श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णिः ११८३ वर्षे विजयसिंहीया ४५९० ।
(२२) श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रवृत्तिः १२२२ वर्षे श्रीचंद्रीया १९५० ।
(२३) चैत्यवन्दनाविचारो गाथाबन्धेन सूत्रव्याख्यारूपः ।
(२४) चैत्यवन्दनकप्रत्याख्यानभाष्याणि त्रीणि तपाश्रीदेवेन्द्रसूरिकृतानि, गाथा ६३, ४१, ४८ ।
(२५) चैत्यवन्दनाभाष्यवृत्तिः संघाचारनाम्नी तपाश्रीधर्मघोषसूरिकृता ८५०० ।
(२६) बालावबोधा चैत्यवन्दनावृत्तिः खरतरतरुणप्रभसूरिभिः १३३१ वर्षे कृता ७००० ।
(२७) साधुप्रतिक्रमणादिषड्विधावश्यकसूत्रवृत्तिः नेमिसाधुना ११२३ वर्षे कृता १५५० ।
(२८) पंचपरमेष्ठिविवरणं प्राकृतगाथामयं बहुवन्तरकथम् ११६८ वर्षे मतिसागरम् गाथा २५० ।
(२९) आवश्यकनिर्युक्तिः ३१००, २५५० ।
(३०) आवश्यकचूर्णिः १३६००, १८४७४ ।
(३१) आवश्यकबृहद्वृत्तिर्हारिभद्री २२००० ।
(३२) तट्टिप्पनकं मलधारि-हेमचन्द्रीयम् ४६४० ।
(३३) आवश्यकवृत्तिर्मलयगिरीया १८००० ।
(३४) लघुवृत्तिः श्रीतिलकीया १२९६ वर्षे कृता १२३२५ ।
(३५) आवश्यकावचूरिः प० २२६ ।
(३६) विशेषावश्यकसूत्रं श्रीजिनभद्रगणिकृतम् ४००० ।
(३७) बृहद्वृत्तिर्मलधारि-हेमचन्द्रीया २८००० ।
(३८) वृत्तिर्मलयगिरीया ९००० नास्ति ।
(३९) जीर्णा वृत्तिः १४०००, पत्तनं विना नास्ति ।

२५. ओघनिर्युक्तिसूत्रम् ११६४ ।
(१) चूर्णिर्नास्ति ।
(२) भाष्यम् ३००० नास्ति ।
(३) वृत्तिर्द्रोणीया ६८२५ ।
(४) वृत्तिर्मलयगिरीया सूत्रमिश्रा ८८५० नास्ति ।

२६. दशवैकालिकसूत्रम् ७०० ।
(१) निर्युक्तिः गाथा ४४५, ४५२ ।
(२) चूर्णिः ७०००, ७९७० ।
(३) बृहद्वृत्तिर्हारिभद्री ७५५० ।
(४) वृत्तिः श्रीतिलकीया नेमिचरित्रगर्भा ७००० ।
(५) लघु-बृहद्वृत्त्युद्धाररूपा सुमतिसूरीया २६०० ।

२७. पाक्षिकसूत्रम् ३०० ।
(१) वृत्तिः यशोदेवकृता ११८० वर्षे २७०० ।

२८. पिण्डनिर्युक्तिसूत्रम् ७०८ ।
(१) वृत्तिर्नास्ति ४००० ।
(२) लघुवृत्तिराद्या, तत्राद्यानि १३५० हारिभद्राणि,

शेषाणि तु १७५० देवाचार्यशिष्यवीराचार्यकृतानि ३१०० ।
(३) वृत्तिर्मलयगिरीया सूत्रमिश्रा ७५०० ।

२९. उत्तराध्ययनं षट्त्रिंशदध्ययनमयं सूत्रम् २००० ।
(१) निर्युक्तिः ७००, गाथा ६०७ ।
(२) चूर्णिर्गोवालियमहत्तरशिष्यकृता ५९००, ५८५० ।
(३) लघुवृत्तिः ११२९ वर्षे देवेंद्रगण्यपरनामश्रीनेमिचन्द्रसूरीया समूत्रा १४००० ।
(४) शान्त्याचार्यीया बृहद्वृत्तिः सूत्रमिश्रा १८००० ।

३०. निशीथसूत्रं विंशोद्देशमयम् ८१२, ९५० ।
(१) बृहद्भाष्यम् १२००० ।
(२) भाष्यम् ७००० ।
(३) निशीथ-चूर्णि-सूत्र-भाष्याणि २८००० ।
(४) निशीथचूर्णिविंशोद्देशव्याख्या ११७३ वर्षे पार्श्वदेवगणिकृता ११०० नास्ति ।
(५) निशीथविंशतमोद्देशवृत्तिः ११७३ वर्षे श्रीचन्द्रीया ११०० ।

३१. कल्पविशेषचूर्णिः ३१००० ।

३२. कल्पचूर्णिः १२७०० ।

३३. कल्पवृत्तिः सूत्रभाष्यगर्भा. आद्यानि ४६०० मलयगिरीयाणि, शेषा तु १३३२ वर्षे तपाक्षेमकीर्तीया ४२००० ।

३४. व्यवहारसूत्रं दशोद्देशकमयम् ३७३ ।
(१) भाष्यम् ६४०० ।
(२) चूर्णिः १२००० ।
(३) व्यवहारवृत्तिः सूत्र-भाष्यगर्भा मलयगिरीया ३३६२५, ३४६२५ ।

३५. कल्पसूत्रं षड्-उद्देशमयम् ४७३ ।
(१) बृहद्भाष्यम् १२००० ।
(२) भाष्यम् ७६०० ।
(३) विशेषचूर्णिः ११०० ।

३६. दशाश्रुतस्कन्धसूत्रं दशाध्ययनमयम् २१०६, २२२५ ।
(१) निर्युक्तिः १५४, २२० ।
(२) चूर्णिः ४३२१ ।

३७. पर्युषणाकल्पसूत्रम् १२१६ ।
(१) निर्युक्तिः गाथा ६८ ।
(२) चूर्णिः ७०० ।
(३) कल्पनिरुक्तटिप्पनकं विनयचन्द्रसूरिकृतम् १५८ ।
(४) कल्पटिप्पनकं पृथ्वीचन्द्रीयम् ६४० ।
(५) संदेहविषौषधिवृत्तिः १३६४ वर्षे जैनप्रभी ।

३८. महानिशीथसूत्रं लघु-मध्यम-बृहद्वाचनम् ३५००, ४२००, ४५४४ ।

३९. पंचकल्पसूत्रं ११३३ ।
(१) निर्युक्तिर्नास्ति ।
(२) भाष्यं संघदासगणिकृतम् गाथा २५७४, ३०३५ ।
(३) चूर्णिः ३०००, ३१३६ ।

४०. जीतकल्पसूत्रं जिनभद्रीयम् गाथा १०५ ।
(१) भाष्यम् ३१२५ नास्ति ।
(२) चूर्णिः सिद्धसेनीया १००० ।
(३) चूर्णिटिप्पनकं भृगु० गु० ३ विना न ।
(४) वृत्तिः १२२४ वर्षे श्रीतिलकीया १८०० ।
(५) जीतकल्पविवरणं संक्षिप्तगमनिकारूपम् 'सिरिवीरजिणं नमिउं' इति ५४३ ।
(६) श्राद्धजीतकल्पस्य सूत्र-वृत्ती श्रीतिलकीये गाथा ३० वृत्ति० ११५ ।
(७) यतिजीतकल्पस्य श्रीसोमप्रभसूरीयस्य वृत्तिः साधुरत्नसूरीया ५७०० ।
(८) श्राद्धजीतकल्पस्य तपाश्रीधर्मघोषसूरीयस्य वृत्तिः श्रीसोमतिलकसूरीया २६०० न ।

४१. नन्दीसूत्रम् ७०० ।
(१) चूर्णिः ७३३ वर्षे कृता, स्तम्भतीर्थं विना नास्ति ।
(२) लघुवृत्तिर्नास्ति २३०० प्रमाणा ।
(३) नन्दीबृहद्वृत्तिर्मलयगिरीया ७७३२ ।
(४) टिप्पनकं श्रीचन्द्रीयमाद्यावृत्तिसत्कम् ३३०० ।

४२. अनुयोगद्वारसूत्रम् गाथा १६०४ ।
(१) चूर्णिर्जिनदासमहत्तरीया २२६५ ।
(२) लघुवृत्तिर्नास्ति ।
(३) बृहद्वृत्तिर्मलधारिहेमचन्द्रीया ५८०० ।

४३. आतुरप्रत्याख्यानम् गाथा ८४-१३४ ।
(१) आतुरप्रत्याख्यानवृत्तिराञ्चलिकभुवनतुंगसूरिकृता ६३ ध्यानकनामगर्भा ४२० ।

४४. महाप्रत्याख्यानसूत्रम् १४३ ।

४५. देवेन्द्रस्तवः गाथा ३०३ ।

४६. तंदुलविचारिकम् ४०० ।

४७. संस्तारकः गाथा १२१ ।

४८. भक्तपरिज्ञा १७१ ।

४९. आराधनापताका, १०७८ वर्षे वीरभद्राचार्यकृता ९९३ ।

५०. गणिविद्या गाथा ८५ ।

५१. अंगविद्या षष्टिअध्यायात्मिका ९००० ।

५२. चउसरणम् गाथा ६४ ।

(१) चउसरणवृत्तिः आञ्चलिकभुवनतुंगसूरीया ८०० ।

५३. द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः गाथा २२३ श्लोकाः २८० ।

५४. ज्योतिष्करण्डवृत्तिः ससूत्रा मलयगिरीया सू० १८५० वृ० ५००० ।

५५. मरणसमाधिः गाथा ६५६ ।

५६. तीर्थोद्गारः गाथा १२३३ ।

५७. सिद्धप्राभृतसूत्र-वृत्ती, सूत्रम् १२०, वृत्तिः ८५० ।

५८. निरयविभक्तिः २०० नास्ति ।

५९. चन्द्रवेधकम् १७४ ।

६०. अजीवकल्पः गाथा ४४ ।

६१. गच्छाचारः गाथा १३८ ।

६२. वीरस्तवः गाथा ४३ ।

आगमेतर-चरणकरणानुयोगादिग्रन्थाः ।

६३. वसुदेवहिंडिप्रथमखण्डम् संघदासवाचककृतम ११००० ।

६४. वसुदेवहिंडिद्वितीयखण्डं अपराचार्यकृत ६६०० ।

६५. वसुदेवमध्यमखण्डं ससंग्रहणीकं ९००० ।

६६. ऋषिभाषितानि ४५।८५० ।

६७. खण्ड-पुद्गल-निगोद-बन्ध-षट्त्रिंशिकावृत्तयो रत्नसिंहसूरि-विस्तारिताः ।

६८. तत्त्वार्थसूत्रं औमास्वातं २२५ ।

(१) भाष्यं वृत्तिरूपं ।

(२) टीका भास्वामिशिष्यसिद्धसेनीया भाष्यव्याख्यारूपा १८२८२, २२२८२ ।

(३) तत्त्वार्थलघुवृत्तिः दिगम्बरा देव० विना नास्ति ।

६९ श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रं औमास्वातं ४०० ।

(१) वृत्तिर्हारिभद्री २२३० ।

७०. विशेषणवतीसूत्रं जिनभद्रक्षमाश्रमणकृतं गाथा ४३८ ।

(१) विशेषण-वृत्तिर्नास्ति ।

७१ प्रवचनसारोद्धारसूत्रं २७६ द्वाररूपं नेमिचन्द्रीयं श्लोकाः २००० गाथा १६०६ ।

(१) वृत्तिः २००० मितसूत्रगर्भा, २७६ द्वारा, १२४२ वर्षे सिद्धसेनसूरिकृता १८५००, १६५०० ।

(२) विषमपदटीका भृगु० विना न ।

(३) धर्मसंग्रहणीवृत्तिर्मलयगिरीया, सूत्रमिश्रा, ११०००, १०५०० प्रत्यन्तरे ।

७२. समयसारटीका अमृतचन्द्रसूरीया भृगु [पुरम्] देव [पत्तनं] वि [ना] न ।

७३. पञ्चास्तिकायसंग्रहाऽभिधसमयस्य वृत्तिः, अमृतचन्द्रसूरीया देव [पत्तनं] विना न ।

७४. प्रवचनसारस्य वृत्ति, अमृतचन्द्रसूरीया देव० विना न ।

७५. पाञ्चसूत्रं प्राकृतमूलम्, सूत्राणि २१० ।

(१) वृत्तिश्च हारिभद्री ८८० ।

७६. पञ्चवस्तुकसूत्रं हारिभद्रम्, १६९४ ।

(१) पञ्चवस्तुटीका हारिभद्री, ५०५० ।

७७. पञ्चाशकानि १९, हारिभद्राणि, ११८४ ।

(१) पञ्चाशकवृत्तिः १९, नवाङ्गअभयदेवैः ११२४ वर्षे कृता, ७४८० ।

(२) आद्यपञ्चाशकचूर्णिः, ११७२ वर्षे यशोदेवीया सभावाच्या, ३३०० ।

७८. षोडशकसूत्रं हारिभद्रं, ३३० ।

(१) षोडशकवृत्तिः, १५०० ।

७९. ३२ अष्टकवृत्तिः १०८० वर्षे जैनेश्वरी, ३३७४ ।

८०. धर्मसूत्राऽष्टक ३२ सूत्रे हारिभद्रे २९३, २५६ ।

८१ धर्मबिन्दुवृत्तिर्मुनिचन्द्री, ३००० ।

८२. योगबिन्दुसूत्रं हारिभद्रं, ५२० ।

(१) योगबिन्दुवृत्तिः ३६२० ।

८३. प्रशमरतिवृत्तिः ११८५ वर्षे हरिभद्रीया, १८०० ।

८४. श्रावकभङ्गकादि-विचार-गाथादिवृत्तिर्विजयदेवसूरिकृता, ५५७ ।

८५. दर्शनसत्तरी हारिभद्री, गाथा, १२० ।

८६. जीवसमासवृत्तिर्मलधारिहेमचन्द्रीया, ६६२७ ।

८७. नवतत्त्वगाथानां देवगुप्तीयानां भाष्यस्य नवाङ्गअभयदेवशिष्यस्य वृत्तिः ११७४ वर्षे यशोदेवी, २४०० ।

८८. "एगविहं सम्मरुई" इत्यादि सम्यक्त्व गाथावृत्तिः, १०५ ।

८९. विचारसारप्रकरणं प्रद्युम्नसूरिकृतं सोपयोगि, बहुसंग्रहं गाथा, ८९७ ।

९०. पवयण संदोह: .... ।

(१) पवयण संदोहवृत्तिः .... ।

९१. सिद्धिपञ्चाशिकासूत्र-वृत्ती तपाश्रीदेवेन्द्रसूरीये-७१० ।

९२ योनिप्राभृतं वीरात् ६०० धारसेनम् ।

९३. पिण्डविशुद्धिसूत्रं जिनवल्लभम्—गाथा–१०३ ।

(१) वृत्तिः ११७६ वर्षे यशोदेवी–२८०० ।

(२) दीपिका लघुवृत्तिरूपा–५५० ।

(३) *अणुवृत्तिः ११८० वर्षे श्रीचन्द्रसूरिया ४४०० ।

*प्रत्यन्तरे ' अनुवृत्तिः ११७६ वर्षे यशोदेवी–२८०० । वृत्तिः ११८० वर्षे श्रीचन्द्रसूरीया ४४०० ' ।

९४. कर्मप्रकृतिसूत्रम्-गाथ -४७५ ।

(१) टीका मलयगिरीया ससूत्रा-८००० ।

(२) वेदनादि ८ करणवाच्या चूर्णि:-७००० ।

(३) कर्मप्रकृतिचूर्णिटिप्पनकं मुनिचन्द्रीयम् १९२० ।

९५. पञ्चसंग्रहस्य शतक-सप्ततिका-कषायप्राभृत-सत्कर्म-कर्मप्रकृति-संग्रहात्मकस्य वृत्तिः सूत्रकारचन्द्रर्षिकृता, पत्तनं विना न

(१) पञ्चसंग्रहवृत्तिर्मलयगिरीया ...... ।

९६ दीपकसंग्रहवृत्तिर्मलयदीपकम् (?), प्राक् तुल्य देश स्थम्, भृ० दे० विना न ।

९७. बृहत्कर्मविपाकवृत्तिः परमानन्दकृता-९६० ।

९८. बृहत्कर्मविपाकटिप्पनकम्—उदयप्रभसूरीयम् ४२० ।

९९. बृहत्कर्मस्तववृत्तिः श्रीगोविन्दाचार्यकृता १००९-१०९० ।

१००. बृहत्कर्मस्तवटिप्पनं वृत्तिरूपम् उदयप्रभसूरीयम् २९२ ।

१०१ बृहद्बन्धस्वामित्ववृत्तिः ११७२ वर्षे हरिभद्रीया-५६० ।

१०२. वस्तुविचारसाराख्यबृहत्षडशीतिकस्य जैनवल्लभस्य वृत्तिः प्राकृता रामदेवी ८०५ ।

१०३. आगमिकवस्तुविचारसाराऽपरनामकस्य जिनवल्लभीयस्य बृहत्षडशीतिकस्य वृत्तिर्मलयगिरी २१४० ।

१०४. बृहच्छतकवृत्तिर्मलधारि-हेमचन्द्रीया ३७४० ।

१०५. जिनवल्लभीयस्य सार्धशतकस्य सूक्ष्मार्थविचारसारापराख्यस्य वृत्तिः ११७२ वर्षे हरिभद्रीया ८५० ।

१०६ सूक्ष्मार्थविचारसारापरनामक-जिनवल्लभीयसार्धशतकवृत्तिः ११७१ वर्षे धनेश्वरीया ३७०० ।

१०७. शतकचूर्णिः २३८० ।

१०८. शतकटिप्पनकम्—उदयप्रभसूरीयम् ९७४ ।

१०९. आगमिकवस्तुविचारसारस्य ' बृहत्षडशीतिक ' इति प्रसिद्ध नाम्नो जैनवल्लभस्य वृत्तिः-यशोदेवीभद्रसूरीया (?)—१६३० ।

११०. सूक्ष्मार्थविचारसाराऽपर ख्यसार्धशतकवृत्तेः टिप्पनकम् १४०० ।

१११. सूक्ष्मार्थविचारसाराख्यसार्धशतकवृत्तिः प्राकृता ।

११२. आगमिकवस्तुविचारसाराख्यषडशीतिकवृत्तिः ११७३ वर्षे हरिभद्रसूरीया ८५० ।

११३. नव्यकर्मविपाकवृत्ति—नव्यकर्मस्तववृत्ति – नव्यबन्धस्वामित्वाऽवचूर्णि—नव्यषडशीतिकवृत्ति—नव्यशतकवृत्तयः ५ सूत्रकारतपाश्रीदेवेन्द्रसूरीयाः, १८८१, ८३०, ३८५, २८००, ४२४० ।

११४. सप्ततिचूर्णिर्नास्ति ।

११५ सत्तरीटीका प्राकृता श्रीचन्द्रगणिमहत्तरीया २३००, २२२८ ।

११६. सत्तरिटिप्पनकम्, खरतररामदेवगणिकृतम्, गाथा, ५४७ । .

११७. सत्तरीटीका मलयगिरीया....... ।

११८. सत्तरीभाष्यं नास्ति ।

११९. बृहत्संग्रहणीसूत्रं जिनभद्रगणिकृतम्, गाथा, ५३० ।

(१) बृहत्संग्रहणीवृत्तिः ११३९ वर्षे शालिभद्री २८००-२५०० ।

(२) बृहत्संग्रहणीवृत्तिर्मालयगिरी ५००० ।

(३) लघुसंग्रहणीवृत्तिः, ' नमिउं अरिहंताई ' त्ति, मलधारिदेवभद्रीया ३५०० ।

१२०. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिर्मालयगिरी ७८८७ ।

१२१. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिः सिद्धसूरीया ११९२ वर्षे, ३००० ।

१२२. बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तिः, ११३३ वर्षे देवभद्रीया १०००, स्तम्भने ।

१२३. बृहत्क्षेत्रसमासलघुवृत्तिर्नास्ति ।

१२४. लघुक्षेत्रसमासवृत्तिर्हरिभद्रसूरीया ५११ ।

१२५ क्षेत्रसमासमूत्र संस्कृतमाह्निकचतुष्टयरूपम् उमास्वातिवाचककृतम्....... ।

(१) वृत्तिः, २८८० ।

१२६. जम्बूद्वीपसंग्रहणी वृत्तिः १५० ।

१२७. वीतरागस्तवाः० ......२० ।

(१) वृत्तिः प्रभानन्दी २१२५ ।

१२८. शोभनस्तुतयः ९६ ।

(१) वृत्तिः पं० धनपालकृता, ९५० ।

१२९. धनपालपञ्चाशिका ।

(१) धनपालपञ्चाशिकावृत्तिः प्रभानन्दसूरीया ६४०, ११०० ।

१३०. ' निम्मलनहे वि ' इति वीरस्तवस्य पं० धनपालकृतस्य वृत्तिः सुराचार्यकृता २२५ ।

१३१. भक्तामरप्रदीपिका भृगुपुरं विना नास्ति ।

१३२. भक्तामरस्तववृत्तिः गुणाकराचार्यैः १४२६ वर्षे, कृता, १५७१ ।

१३३. ' जनेन येन ' स्तुतिवृत्तिः ३०५ ।

१३४. 'नम्रेन्द्रमौलि' इत्यादि बप्पभट्टिस्तुतयः ९६।
(१) वृत्तिः सहदेवकृता ७३५।
१३५. यत्राऽखिल ५८, श्रीतीर्थराज ४, जयवृषभ २८ स्तुतयः, शस्ता शमा ४, युयं युयम् ४, देवेन्द्रैरनिशम् स्तोत्रवृत्तयः, सत्तरिसयठाणं ३५९, क्षेत्रसमासः ३८९, श्रीशैवेयम्, इत्यादिस्तवनानि च श्रीसोमतिलकीयानि ११००–७०–६००—२५०—२१० १९८०।
१३६. अजितशान्तिस्तववृत्तिः, श्रीगोविन्दीया ३००।
१३७. श्रीअजितशान्तिस्तववृत्तिः देव० विना न।
१३८. जयतिहुअणवृत्तिः २५०।
१३९. अजितशान्ति–भयहर–उवसग्ग–तं जयउ–सिग्घ–भव–मयरहियं–उल्लासिक्कम– समस्मरणवृत्तिः १३६५ वर्षे जैनप्रभी २२३७।
१४०. उपसर्गहर–भयहरस्तववृत्तौ उपसर्ग० वृत्तिः ३०० भयहर० वृत्तिः १६०। देवपत्तनं विना न।
१४१. 'ऐंद्रस्रेव' इत्यादि लघुस्तववृत्तिः ३००।
१४२. धरणोरगेंद्रस्तववृत्तिः।
१४३. सिद्धसेनकृताः २० द्वात्रिंशिकाः ८५०।
१४४. २४ जिनस्तवाः २४, ६, ६ गाथामिताश्च्यवनादि–१५ वस्तुवाच्याः।
१४५. २४ जिनस्तवाः २४, ८, ८ गाथाः, च्यवनादि ३९ वाच्या मलधारिदेवप्रभीयाः।
१४६. जम्बुगुरुकृतजिनशतकवृत्तिः आशांबरी ससूत्रा १०२५ वर्षे कृता शांबमुनिना, अत्र क्रम कर–मुख–वाग्–वर्णन–रूपाः ४ परिच्छेदाः, सूत्रकाव्यानि १०० वृत्तिः १५५०।
१४७. समन्तभद्रकृत–'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसम्' इत्यादि २४ जिनस्तवाः २४, वृत्तयः दिगम्बरप्रभाचन्द्रीयाः १५४१।
१४८. आराधनापताका अनेकधा श्रीसोमप्रभादिसूर्यादिकृताः।
१४९. †आराधनापताका आञ्चलिककृता ९३१।
१५० दूसमदण्डिका गाथा ९२।
१५१. दूसमविच्छेयदण्डिका २०४।
१५२. दूसमदण्डिका ११२।
१५३. व्युच्छेददण्डिका गाथा १७३।
द्वितीया तु योगसारगणिकृता।

१५४. शत्रुंजयादि ६३ तीर्थकल्पाः संस्कृतप्राकृताः, १३८९ वर्षादौ जिनप्रभसूरिकृताः प्रसिद्धतीर्थैति–ह्यवाच्याः ३५०३।
१५५. शत्रुंजयमाहात्म्यं, कल्पितप्रायम्, आधुनिकधनेश्वरीयम्।
१५६. शत्रुंजयकल्पः, पालित्तयसूरिकृतः, पत्तनं विना न।
१५७. गौतमभाषितानि काव्यानि ४२ प्राकृतानि।
१५८. विवेकविलासो जिनदत्तसूरिकृतो द्वादशोल्लासात्मकः
१५९. सोमनीतिः सोमदेवसूरिकृता।
१६०. शतपदी ११७ पदार्थमयी आञ्चलिकरणीता १२९४ वर्षे महेन्द्रसिंहाचार्यकृता ५४५०।
१६१. निर्जतीर्थककल्पितकुमतनिरासाऽपरनामकतत्त्वबोधप्रकरणं हरिभद्रीयम् आञ्चलिकपौर्णिममतच्छितं ५०४०।
१६२. आचरणाशतकं चरणसहस्रोदधिसत्कं शतपदीपूर्वपक्षरूपम्।
१६३. श्रावकसामाचारीवृत्तिर्देवगुप्ताचार्यीया १२००।
१६४. प्रवचनपाक्षिकादि २५ अधिकारप्रतिबद्धा आलापकाः १४४३ वर्षे श्राकुलमण्डनसूरीयाः।
१६५. तपासामाचारी ७००।
१६६. सामाचारी १३६ अधिकारा मलधारिदेवप्रभसूरीया।
१६७. सामाचारी सुबोधा सर्वानुष्ठानगोचरा धनेश्वरशिष्य–श्रीचन्द्रीया १४५०–१२२१।
१६८. सामाचारी अनेकविधा गच्छांतरीया।
१६९. उपधानस्वरूपं श्रीदेवसूरिकृतम्।
१७०. उपदेशमालावृत्तिः प्राकृता कृष्णर्षिशिष्यजयसिंहसूरिकृता ९१३ वर्षे।
१७१. उपदेशमालावृत्तिः सिद्धर्षीया हेयोपादेयेत्यादिका।
१७२. हेयोपादेयेत्यादिकैव केनापि कथाभियोजिता सं० १५००, ९५००।
१७३. उपदेशमालाकर्णिका १२९९ वर्षे औदयप्रभी ससूत्रा १२२७४, असूत्रा–११४११
१७४. दोघट्टी उपदेशमालावृत्ति रात्नप्रभी सं० १२३८ वर्षे असूत्रा ११९५०, ससूत्रा ११८२९।
१७५. उपदेशमालालघुवृत्तिः सिद्धर्षीया ३५८६।
१७६. उपदेशमालावृत्तिर्हेयोपादेयेत्यादिका श्रीसिद्धसूरीया ४१६०।

†प्रत्यन्तरे 'पताका' शब्दो नास्ति।

१ प्रत्यन्तरे 'छिद्रम्'।

१७७. पुष्पमालावृत्तिर्मलधारि-सूत्रकृत्-हेमचन्द्रैः ११७५ वर्षे कृता १३८६८ ।

१७८. धर्मोपदेशमालावृत्तिः ११९० वर्षे मुनिदेवीया ६८०० ।

१७९. धर्मोपदेशमालालघुवृत्तिः ९१५ वर्षे जयसिंहीया ।

१८०. धर्मोपदेशमालाविवरणं स्तम्भतीर्थं विना न ।

१८१. भवभावनावृत्तिः, सूत्रकृत्-मलधारी-हेमचन्द्रीया ११७० वर्षे १३००० ।

१८२. दिनकृत्यवृत्तिः तपाश्रीदेवेन्द्रीया १२८२० ।

१८३. धर्मरत्नवृत्तिः तपाश्रीदेवेन्द्रीया श्राद्ध २१ गुणादि-वाच्या ९७००-९६८२ ।

१८४. हितोपदेशमालावृत्तिः सूत्रकार-प्रभानन्द-भ्रातृ पं० परमानन्दीया १३०४ वर्षे ९५०० ।

१८५. सम्यक्त्ववृत्तिः सूत्रकार-चन्द्रप्रभसूरि-संतानीय-श्रीतिलकीया १२७७ वार्षिकी ८००० ।

१८६. सम्यक्त्ववृत्तिः प्राकृतकथागर्भा १२००० ।

१८७. दर्शनशुद्धिवृत्तिर्देवभद्रसूरिकृता ३६०० ।

१८८. दर्शनशुद्धिः संदेहविषौषधीनाम्नी गाथा २६२ ।

१८९. 'माणुस्सखित्ते' ति विवेकमञ्जरीवृत्तिः १२२३ वर्षे अकलङ्कदेवीया ।

१९०. विवेकमञ्जरीवृत्तिर्बालचन्द्री ८००० ।

१९१. उपदेशकन्दलीवृत्तिर्बालचन्द्री ७६०० ।

१९२. शीलोपदेशमालावृत्तिः १२९४ वर्षे रुद्रपल्लीयश्रीसोमतिलकीया ।

१९३. योगशास्त्र १२ प्रकाशवृत्तिर्हैमी १२००—१२३०० ।

१९४. योगशास्त्र केवल ४ प्रकाशवृत्तिः

१९५. उपदेशपदसूत्रं हारिभद्रम् १०४० ।

(१) उपदेशपदवृत्तिः ११७४ वर्षे मौनिचन्द्री सूत्रगर्भिता १४५०० ।

१९६. संवेगरंगशाला ११७५ वर्षे नवांगाऽभयदेववृद्धभ्रातृ-जिनचन्द्रीया १००५३ ।

१९७. वन्दनकुलकवृत्तिः श्रीजिनकुशलसूरिकृता ४३७० पाश्चात्र न (?) ।

१९८. विषयविनिग्रहकु० वृत्तिः १३३७ वर्षे मालचन्द्री १०००८ स्तम्भतीर्थं विना न ।

१९९. नवपदवृत्तिर्देवगुप्ताचार्यादिभिः १०७३ वर्षे कृता २१७० ।

२००. नवपदवृत्तिः १०७३ वर्षे जिनचन्द्रगण्याद्यैः कृता-२२१० ।

२०१. नवपदवृत्तिः कुलचन्द्रादिकृता १०७३ वार्षिकी २६०० ।

२०२. नवपदवृत्तिः ११६५ वर्षे यशोदेवोपाध्यायकृता ९५०० ।

२०३. अभिनवनवपदवृत्तिः ११८२ वर्षे सूत्रकारदेवेन्द्रीया ९००० ।

२०४. भगवतीद्वादशशतकगततृतीयउद्देशसत्कजयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रहप्रकरणस्य मानतुंगीयस्य वृत्तिर्जयन्तिचरित्र-वाच्या प्राकृतमूला १२६० वर्षे मालयप्रभी ६६०० ।

२०५. ठाणवृत्तिर्हेमसूरिगुरुदेवचन्द्रीया, तन्सूत्रं प्रद्युम्नसूरिकृतम् १३००० (वृत्तिमानम्) ।

२०६. धर्मोपदेशप्रकरणं प्राकृतमूलं-बहुकथासंग्रहं १३०५ वर्षे यशोदेवीयम् ८३३२ ।

२०७. पवज्जाविहाणवृत्तिः १३३८ वर्षे प्रद्युम्नीया ४५०० ।

२०८. पवज्जाविहाणवृत्तिः जैनप्रभी २४८ ।

२०९. धर्मविधिप्रकरणवृत्तिः जयसिंहसूरिकृता १११४२ ।

२१०. धर्मविधिप्रकरणवृत्तिः १२९६ वर्षे उदयसिंहाचार्यीया ५५२० ।

२११. ऋषिमण्डलस्तवः संस्कृते मेरुतुंगसूरिकृतः कारिका ७० ।

२१२. 'इसिमंडल' इत्याद्यऋषिमण्डलस्तवः गाथा २७१ ।

२१३. 'इसिमंडल' इति ऋषिमंडलवृत्तिः ४६१४ ।

२१४. 'भत्तिभर' इति ऋषिमण्डलसूत्रम् २०८ ।

(१) अस्य वृत्तिः आंचलिकभुवनतुंगीया ।

२१५. गौतमपृच्छावृत्तिः खरतरश्रीतिलकोपाध्यायकृता५६०० ।

कथानुयोगग्रंथाः ।

२१६. कथाकोशसूत्रम् गाथा २३९ ।

(१) कथाकोशवृत्तिः ११०८ वर्षे जैनेश्वरी ६००० ।

२१७. कथामणिकोशवृत्तिर्नेमचन्द्रकृत ४१ अधिकारसूत्र-व्याख्यारूपा ११९० वर्षे आम्रदेवी ।

२१८. शीलभावनावृत्तिः १२२९ वर्षे रविप्रभी ९५७० ।

२१९. कथारत्नकोशः सम्यक्त्वादि ५० अधिकारः ११५८ वर्षे देवभद्रसूरीयः १२३०० ।

२२०. धर्माख्यानककोशवृत्तिः प्राकृतबहुकथामयी पत्तनं विना न ।

२२१. दानोपदेशमालावृत्तिः पत्राणि ७१ ।

२२२. प्रश्नोत्तरमालावृत्तिः १४२९ वर्षे देवेन्द्रसूरिकृता।
२२३. उपदेशचिन्तामणिः १४३६ वर्षे आंचलिकजयशेखर-सूरिकृता १२०९३ ।
२२४. श्रीआदिनाथचरित्रं प्राकृतम्, जयसिंहदेवराज्ये ११६० वर्षे वर्धमानसूरिरचितम्, ११०००, १२००० ।
२२५. श्रीआदिनाथचरित्रं संस्कृतं संप्रति न ।
२२६. श्रीअजितचरितं सं० न ।
२२७. श्रीअजितचरितं प्राकृतं न ।
२२८. श्रीसंभवच० सं० न ।
२२९. अभिनन्दनच० सं० न ।
२३०. अभिनन्दनच० प्रा० न ।
२३१. सुमतिचरितं सं० न ।
२३२. सुमतिचरितं प्रा० मुख्यं सोमप्रभीयं कुमारपालराज्ये कृतम् ९६२१ ।
२३३. पद्मप्रभचरित्रं प्राकृतं न ।
२३४. सुपार्श्वचरितं संस्कृतं न ।
२३५. सुपार्श्वचरितं ११९९ वर्षे लक्ष्मणगणिकृतम् गाथा ८७०० श्लोकाः १०१३८–१०९८८ ।
२३६. चन्द्रप्रभचरितम्, सं० १३०२ वर्षे सार्वनन्दम् ६१४१ ।
२३७. चंद्रप्रभचरितं सं० प्रा० १२६४ वर्षे देवेंद्रसूरीयम् ५३२५ ।
२३८. चंद्रप्रभचरितं प्रा० यशोदेवम् ६४०० ।
२३९. चंद्रप्रभचरितं प्रा० श्रीकुमारपालराज्ये हारिभद्रम् ८०३२ ।
२४०. सुविधिचरितं प्रा० न ।
२४१. सुविधिचरितं सं० न ।
२४२. शीतलचरितं सं० न ।
२४३. शीतलचरितं प्रा० न ।
२४४. श्रेयांसचरितं सं. १३३२ वर्षे मानतुंगाचार्यैः कृतम्, ५१२४, स्तम्भतीर्थे विना न ।
२४५. श्रेयांसचरितं प्रा० देवभद्रीयम् ११०००, स्तम्भतीर्थे विना न ।
२४६. श्रेयांसचरितं प्रा. श्रीजयसिंहदेवराज्ये हरिभद्राचार्य-कृतम्, गाथा ६५८४, स्तम्भतीर्थे विना न ।
२४७. वासुपूज्यचरितं सं० ११९९ वर्षे वर्धमानाचार्यकृतम् ५४९४ ।
२४८. वासुपूज्यचरितं प्रा० चांद्रप्रभम्, हेमसूर्यादिशोधितम् ८०००; स्तम्भतीर्थे विना न ।
२४९. विमलचरितं सं० न ।
२५०. विमलचरितं प्रा० न ।
२५१. अनंतचरितम् प्रा० गाथाबद्धं १२१६ वर्षे श्रीनेमिचन्द्र-सूरीयम् गाथाः १२००० ।
२५२. धर्मचरितं सं० नेमिचंद्रीयं न ।
२५३. धर्मचरितं प्रा० न ।
२५४. शांतिचरितं सं० † १३३२ वर्षे मौनिदेवम् ४८८५ ।
२५५. शांतिचरितं सं० माणिक्यसूरीयम् ५५७४ ।
२५६. शांतिचरितं सं० पौर्ण-अजितप्रभसूरिभिः १३१७ वर्षे कृतम् ४९११ ।
२५७. शांतिचरितं प्रा० गद्यपद्यमयम् ११६० वर्षे श्रीहेमसू-रिगुरुदेवचन्द्रसूरीयम् १२१०० ।
२५८. श्रीशांतिचरितं सं० श्रीमाणिभद्रसूरिणा १४०२ वर्षे कृतम् ६२७२ ।
२५९. कुंथुचरितं सं० विबुधप्रभसूरिकृतम् ५५५५ ।
२६०. कुंथुचरितं प्रा० न ।
२६१. अरचरितं प्रा० न ।
२६२. अरचरितं सं० न ।
२६३. मल्लिचरितं प्रा० ११७५ वर्षे जैनेश्वरम् ५५५५ ।
२६४. मल्लिचरितं सं० श्रीविनयचन्द्रीयम् ।
२६५. मल्लिचरितं बहुप्राकृतं हरिभद्रीयं कुमारपालराज्ये कृतं गाथाकाव्यमयं ग्रन्थाग्रम् ९००० ।
२६६. मुनिसुव्रतचरितं सं. पौर्ण० मुनिरत्नसूरिकृत २० स्थानककथाकलितम् ५१८५ ।
२६७. मुनिसुव्रतचरितं प्रा. ११९३ वर्षे चंद्रसूरीयं गाथा १०९९४ ।
२६८. मुनिसुव्रतचरितं बहुकथानकं ९ भवं विनयचंद्रसूरीयम् ४५५२ ।
२६९. नमिचरितं सं. न ।
२७०. नमिचरितं प्रा. न ।
२७१. नेमिचरितं प्रा. १२१६ वर्षे हरिभद्राचार्यैः कृतम् ८०३२ ।
२७२. नेमिचरितं प्रा. भवभावनावृत्त्यन्तर्गतमन्तरंगवक्तव्यतामिश्रम् ५१०२ ।
२७३. नेमिचरितं प्रा. गद्यपद्यमयं १२३३ वर्षे देवसूरिशिष्य-रत्नप्रभीयम् १३६०० ।
२७४. पार्श्वचरितम् सं. सर्वानंदसूरिकृतम् ।

† प्रत्यन्तरे १३२२ वर्षे ।

२७५. पार्श्वचरितं सं. १२१८ वर्षे भावदेवसूरिकृतम् ६७७४-६४०० ।

२७६. पार्श्वचरितं सं. माणिक्यचन्द्रसूरिकृतं १२७६ वर्षे ५२७८ ।

२७७. पार्श्वचरितं प्रा० ११६५ वर्षे नवांग-अभयदेवप्रथमशिष्यदेवभद्राचार्यैः कृतम् ९००० ।

२७८. पार्श्वचरितं प्रा० दशभवावाच्यं गाथा २५१४ ग्रंथाग्रम् ३२०० ।

२७९. महावीरचरितं सं० न ।

२८०. वीरचरित्रं प्रा. ११३९ वर्षे गुणचन्द्रगणिकृतम् १२००० ।

२८१. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे नेमिचंद्रसूरिकृतम् १२०००

२८२. वीरचरित्रं प्रा० ११३९ वर्षे नेमिचंद्रसूरिकृतं २८१०-२४०० ।

२८३. महापुरुषचरितं मु० प्रा० शलाकापुरुषवृत्तवाच्यं ९२५ वर्षे शीलाचार्यैः कृतम् १०००० ।

२८४. महापुरुषचरित्रं प्रा० ६३ शलाकापुरुषवृत्तवाच्यं आम्रकृतम् गाथा ८७९०, श्लोकाः १००५० ।

२८५. कथावलीप्रथमपरिच्छेदः, प्रा० मु० २४ जिन-१२ चक्र्यादिहरिभद्रसूरिपर्यंतसत्पुरुषचरित्रवाच्यो भाद्रेश्वरः २३८०० ।

२८६. त्रिषष्टिः श्रीऋषभादि ६३ महापुरुषवृत्तप्रतिबद्धा श्रीहेमसूरीया संपूर्णा ।

२८७. त्रिषष्टीयं श्रीआदिचरितं केवलं ५००० ।

२८८, त्रिषष्टीयं रामायणं पृथक् ३७१४ ।

२८९. त्रिषष्टीयं नेमिचरितं ४९६५ ।

२९० त्रिषष्टीयं पार्श्वचरितं १६०० ।

२९१. त्रिषष्टीयं महावीरचरितं ३४९२ प्रत्यन्तरे ५१६१ देवगिरि ।

२९२. परिशिष्टपर्व जम्बूप्रमुखाऽऽर्यरक्षितान्तपुरुषवाच्यं ३४६० ।

२९३. त्रिषष्टिगतं नलचरित्रं ११७७ ।

२९४. पद्मानन्दमहाकाव्यं २४ जिनवृत्तरूपं पं०अमरचन्द्रकविकृतं १८ सर्गरूपं ८१९१ ।

२९५. श्रीपार्श्व १० गणधरचरित्राणि प्रा० मुख्यानि ४३५०

२९६. अममजिनस्य भाविनश्चरित्रं मुनिरत्नसूरिभिः १२५२ वर्षे कृतम् ।

२९७. पुण्डरीकचरित्रं सं० १३७२ वर्षे कमलप्रभं, क्वचिद् अनागमिकार्थं ३३०० ।

२९८. ११ गणधरचरित्रं सं० खरतर देवमत्युपाध्यायीयं ६५०० ।

२९९. हरिवंशचरितं सं० नेम्यादिबहुवृत्तवाच्यमाद्यन्तरहितं श्लोकाः ९००० ।

३००. हरिवंशचरितं सं० बन्दिकककविकृतं पुराणभाषानिबद्धं नेम्यादिवृत्तवाच्यं ९००० ।

३०१. पद्मचरितं प्रा० वीरात् ५३० वर्षेषु गतेषु विमलसूरिभिः कृतं मुख्यैवराग्यरसं १०५५० ।

३०२. सीताचरितं प्रा० ३१०० ।

३०३. सीताचरितं धर्माऽधर्मशास्त्रगतं प्राकृतं ३४०० ।

३०४. प्रत्येकबुद्धचरितं १२६१ वर्षे श्रीतिलकीयं ६०५० ।

३०५. जम्बूस्वामिचरितं प्रा० ८२ (?) वर्षे गाथा १६४४ ।

३०६. जम्बूस्वामिचरितं प्रा० संध्यादियन्धे १०१६ वर्षे गं० सागरदत्तेन कृतं २६०० ।

(१) तस्य टिप्पनं ११०० ।

३०७. पृथ्वीचन्द्रचरितं प्रा० मुख्यं गाथादिमयं ११७१ वर्षे शान्तिसूरिभिः कृतं ७५०० ।

(१) पृथ्वी० टिप्पनं १२२६ वर्षे कानकचन्द्रं ११०० ।

(२) पृथ्वी० चरित्रसंकेतो विषमपदव्याख्यारूपो रत्नप्रभसूरिकृतः ५९५ ।

३०८. समरादित्यचरित्रं प्रा० मूळ हारिभद्रं गाथा १०००५

३०९. समरादित्यचरित्रं सं० १३२४ वर्षे प्रद्युम्नीयं ४८७४ ।

३१०. पाण्डवचरित्रं सं० मलधारि देवप्रभसूरीयं ९८८४ ।

३११. प्रभावकचरितं सं० वज्रस्वामिप्रमुखप्रभावकाचार्यवृत्तवाच्यं १३३४ वर्षे प्रभाचन्द्रं ५७७४ ।

३१२. कुमारपालप्रतिबोधः बहुप्रा० शतार्थिसोमप्रभसूरिभिः १२४१ वर्षे कृतः ८८०० ।

३१३. कुमारपालप्रतिबोधः सं० १५७५ ।

३१४. मुनिपतिचरितं प्रा० ११७२ वर्षे हारिभद्रीयं गाथा १४४ श्लो० ८०५ ।

३१५. मुनिपतिचरित्रं सं० १००५ वर्षे जम्बूनागमुनिकृतं ३२०० उद्दृ० २७०० ।

३१६. महीपालचरित्रं स्तम्भतीर्थं विना न ।

३१७. उपमितभवप्रपञ्चोद्धारः सं० देवसूरिकृतः २३७० ।

३१८. उपमितभवप्रपञ्चासारसमुच्चयो वार्धमानः १४६० ।

३१९. उपमितसारोद्धारः सं० १२९८ वर्षे श्रीचन्द्रशिष्यदेवेन्द्रसूरीयः २७३० ।

३२०. कुवलयमाला प्रा० मु० ८३५ वर्षे उद्द्योतनसूरीया १३००० ।
३२१. कुवलयमाला सं० रत्नप्रभसूरीया ३८९४ ।
३२२. भुवनसुन्दरीचरित्रं प्रा० गाथाबद्धं नाइलकुलश्रीविमलसिंहाचार्यैः ९७५ वर्षे कृतं गाथा ८९११ ।
३२३. हरिविक्रमचरित्रं सं० आगमिकजयतिलकसूरीयं ।
३२४. सुलसाचरित्रं सं० आगमिकजयतिलकसूरीयं ।
३२५ मलयसुन्दरी कथा सं० आगमिकजयतिलकीया २४३० ।
३२६. मलयसुन्दरी कथा प्रा० न ।
३२७. मनोरमाचरित्रं प्रा० मु० गाथामयं च ११४० वर्षे श्रीअभयदेवसूरीशिष्य-वर्धमानसूरीयं १५००० ।
३२८. सप्तक्षेत्रीनामकथा ११७८ वर्षे गुणाकरीया ७२०० ।
३२९. सुदर्शनाचरित्रं प्रा० तपाश्रीदेवेन्द्रीयं गाथा ४०५२ ।
३३०. मृगावतीचरित्रं मलधारि देवप्रभसूरीयं १८७३ ।
३३१. सुरसुन्दरीकथा १६ परिच्छेदा धनेश्वरमुनिकृता संवत् १०९५ वर्षे गाथा ४००० ।
३३२. बृहत्पूजाष्टकं रत्नचूडकथयाऽङ्कितम् ।
३३३. रत्नचूडकथा पूजाफलवाच्या नेमप्रभाचार्यीया ३५०० ।
३३४. पूजाष्टककथा प्रा० १०६० ।
३३५. पूजाष्टककथा सं० न ।
३३६. विजयचन्द्रकेवलिकथा प्रा० पूजाष्टककथागर्भा ११२७ वर्षे चन्द्रप्रभसूरीया ४७०० गाथा ३९१० ।
३३७. विजयचन्द्रकेवलिकथारहितास्तद्गताः पूजाष्टककथाः प्रा० ।
३३८. कौमुदीकथा जैनकृता १६०० ।
३३९. पञ्चमीकथा दशकथानकात्मिका प्रा० महेश्वरसूरीया २००४ ।
३४०. नर्मदासुन्दरीकथा १७०० ।
३४१. जयसुन्दरीकथा प्रा० न ।
३४२. सर्वांगसुन्दरीकथा प्रा० २६७५ ।
३४३. ऋषिदत्ताचरित्रं प्रा० न ।
३४४. कुसुमसारकथा नेमिचंद्राचार्यैः १०९९ वर्षे कृता गाथा १७०० ।
३४५. दमयन्ती कथा २,५० (?)
३४६. सौभाग्यसुन्दरी कथा ।
३४७. जिनदत्तकथा १२०० ।
३४८. कथारत्नसागरः १५ तरंगात्मको मलधारिनरचन्द्रसूरीयः १५ कथाः ।
३४९. धन्यशालिभद्रचरित्रं पूर्णभद्रगणिना १२८५ वर्षे कृतं श्लोकाः–१४६० ।
३५०. स्थूलिभद्रचरित्रं तपाजयानन्दसूरिकृतं श्लोकाः ६८४ ।
३५१. पञ्चाख्यानकं पूर्णभद्राचार्यैः १२५५ वर्षे शोधितम् ४६०० ।
३५२. प्रद्युम्नचरित्रं शाम्बचरित्रं १०७० ।
३५३. प्रबन्धचूडामणिर्मेरुतुङ्गसूरीयः ३५०४ ।
३५४. २४ प्रबन्धाः ८४ कथाश्च राजशेखरसूरीयाः ।
३५५. लीलावतीकथा भूषणभट्टसुतकृताऽऽद्यरसमिश्रिता च परसमयगता गाथाः–१४३९ ।
३५६. कथापुस्तिका अनेकविधकथाभिरनिर्दिष्टनामिकाभिरुपेताः ।
३५७. कथापुस्तिका विविधाः ।

न्याय–तर्कग्रन्थाः ।

३५८. सम्मतिसूत्रं सिद्धसेनदिवाकरकृतम् गा० १७० ।
(१) सम्मतिवृत्तिर्मल्लवादिकृता–७०० ।
(२) सम्मतिवृत्तिः काण्डत्रयोपेता प्रद्युम्नशिष्यअभयदेवीया २५००० ।
(३) सम्मतिवृत्तिरन्यकर्तृका ।
३५९. प्रमाणकलिकाख्यवार्तिकसूत्र–वृत्ती शान्त्याचार्यीये, मू० ६०, वृ० २८७३ ।
३६०. नयचक्रवालवृत्तिर्मल्लवादीयद्वादशारनयचक्रतुम्बसूत्रव्याख्यारूपा ससूत्रा १८००० ।
३६१ अनेकान्तजयपताकासूत्रं हारिभद्रं सदवचूरि ४ धिकारं–३६००–३५०० ।
३६२ अनेकान्त० वृत्तिर्हारिभद्री ८२५० ।
(१) तट्टिप्पनकं मौनिचन्द्रम् २००० ।
३६३. स्याद्वादरत्नाकरसूत्रं ८ परिच्छेदं वादिश्रीदेवसूरिकृतम् ।
३६४. स्याद्वादरत्नाकर आद्यांशीया वादिश्रीदेवसूरिकृतः ३६०००, प्रथमखण्डं विना ।
(१) रत्नाकरावतारिकाऽऽख्या तल्लघुटीका रत्नप्रभीया ५००० ।
(२) तट्टिप्पनकं न ।
३६५. न्यायावतारसूत्रं सिद्धसेनीयम् ।
(१) तद्वृत्तिर्हारिभद्री च, सू० ३२, वृत्तिः २०७३ ।
(२) न्यायावतारवृत्तिः सिद्धव्याख्यानिककृता ।

३६६. आप्तमीमांसाऽलंकारनामाऽष्टसहस्रीतर्को विद्यानन्दसूरीयः ८००० ।

३६७. प्रमाणमीमांसासूत्र-वृत्ती हेमसूरीये सू० ..वृ०.... ।

३६८. अनेकान्तवादप्रवेशो हारिभद्रः —७००—७३० ।

३६९. सर्वज्ञसिद्धिप्रकरणं हारिभद्रम् ३०० ।

३७०. द्रव्यालंकारस्तर्कः पं० रामचन्द्रगुणचन्द्र कृतः ४०० ।

३७१ प्रमाणसंग्रहप्रकरणं ९ प्रस्तावं जैनं ७१२ ।

३७२. प्रमेयरत्नकोशः सर्वज्ञसिद्ध्यादि २३ वादस्थलः चन्द्रप्रभसूरीयः ११८० ।

३७३. षड्दर्शन दिङ्मात्रविचारः ।

३७४. षड्दर्शनसमुच्चयसूत्र-वृत्ती, सूत्र-८६, वृ. ११५२।

३७५. परिणामिवस्तुव्यवस्थापनं १८० ।

३७६. बोटिकनिषेधो वस्त्रव्यवस्थापनरूपः ।

३७७. सर्वार्धप्रमाभावाद्यभावनिरासवादस्थलानि ४,—३१० ।

३७८. केवलिभुक्ति—स्त्रीमुक्तिप्रकरणं शब्दानुशासनकृत्—शाकटायनकृतं, तत्संग्रहश्लोकाश्च ९४, प्रत्यन्तरे९० ।

३७९. हारिभद्रो नन्दिवृत्त्याद्यनमस्कारसंबद्धसर्वज्ञव्यवस्थापनावादः ।

३८०. सर्वज्ञव्यवस्थापनावादो योऽपि सोऽपि बहुरल्पो वा

३८१. अपशब्दनिराकरणं २१५ ।

३८२. भेदाभेदाद्यनेकान्तव्यवस्थापनं च—२०० ।

३८३. स्याद्वादमञ्जरी मल्लिषेणाचार्यैः १३४९ वर्षे कृता ३००० ।

३८४. समन्तभद्रकृत—श्रीवर्धमानस्तोत्रवृत्ति विषमार्थाः ।

३८५. अपौरुषेयवेदनिराकरणम् ।

३८६. प्रत्यक्षानुमानाधिकप्रमाणनिराकरणं च यशोदेवसाधुकृतम् ।

आद्य तु त्रिवर्गपरिहारेण* । अग्रां० पत्राणि ११, प्रत्यन्तरे प. १४ ।

३८७ श्वेताम्बरदर्शनसिद्धिः, प. १९ ।

३८८. लोकतत्त्वनिर्णयो हारिभद्रः—१७० ।

३८९. न्यायकुमुदचन्द्रसूत्र-वृत्ती दिगम्बरीय अकलङ्कदेव—प्रभाचन्द्रकृते सू० वृ. १६००० ।

३९०. प्रमेयरत्नमाला परीक्षामुखलघुवृत्तिरपरनाम्नी, तत्सूत्रं च—वृ. १५६७, सू. १४० ।

३९१. न्यायविनिश्चयवृत्तिः—अनन्तवीर्यकृता दैगम्बरी ।

३९२. आप्तपरीक्षावृत्तिस्तत्त्वार्थसूत्राद्यश्लोकव्याख्यारूपा ।

३९३. पत्रपरीक्षा च पत्रवाक्यप्रकारव्याख्या ।

३९४. प्रमेयकमलमार्तण्डो दिगम्बरीयप्रभाचन्द्रीयः ११००० ।

३९५. अध्यात्मतरङ्गिणीटीका दिगम्बरीयलक्ष्मरूपा ।

३९६. हेतुबिन्दुटीका तर्करूपा ।

३९७. प्रमाणवार्तिकाऽऽद्यपरिच्छेदसूत्रं बौद्धीयम्,

(१) तद्वृत्तिश्च आद्यपत्र. २—३ रहिता ।

३९८. तर्कभाषा टीका बौद्धमतवाच्या बालावबोध ३ परिच्छेदा ८४० ।

३९९ न्यायबिन्दुसूत्रं बौद्धमतवाच्यम् ।

(१) तट्टीका च धर्मोत्तराचार्यकृता सू. टी. १४७७ ।

४००. न्यायप्रवेशकटीका च हारिभद्री सू. टी. ५९७ ।

४०१. न्यायप्रवेशकटिप्पनं ११६९ वर्षे श्रीचन्द्रीयम् ।

४०२. तत्त्वसंग्रहः प्रकृतीश्वरादिनिरासवाच्यो बौद्धः—१७१६ ।

४०३. न्यायकुसुमाञ्जलितर्कः ५०४६ मितः ।

४०४. न्यायतर्कसूत्रं (१) भाष्य, (२) वार्तिक,

(३) तात्पर्यटीका, (४) तत्परिशुद्धि,

(५) न्यायालंकारवृत्ति, (६) पञ्चप्रस्थानन्यायतर्काणि

(क्रमशः)—अक्षपाद—वात्स्यायन—भारद्वाज-वाचस्पति -उदयन-श्रीकण्ठ—अभयतिलकोपाध्यायकृतानि षडपि ५३००० ।

४०५. न्यायकलिकाटीका नैयायिकीय १६ पदार्थतत्त्ववाच्या ४०५ ।

४०६. सारसंग्रहो नैयायिकीय १६ पदार्थवाच्यः ।

४०७. न्यायभूषणसूत्रं न्यायसारापरनामकं ४०० ।

(१) न्यायसारटीका जायसिंही २९०० ।

(२) न्यायसारटीका न्यायसारविचाराख्या ।

(३) न्यायसारपञ्जिका ।

४०८. मतमनोहरग्रन्थगतहेतुसाध्यगताशेषविशेषाभिरूपणसूत्रव्याख्यारूपं ७४० ।

४०९ षट्पदार्थप्रवेशप्रकरणं वैशेषिकीयं—९५० ।

४१० भास्करभूषणः सृष्ट्यादिवाच्यः ।

४११ किरणावली ।

४१२. न्यायतन्त्रटीका व्याख्याखण्डम् ।

४१३. किरणावलीटिप्पनके द्रव्यपदार्थः २३७३ ।

४१४. कन्दली—किरणावल्योः सूत्रम् ७७७ ।

---

* कवर्ग—चवर्ग—टवर्ग—इति वर्गत्रयगतव्यञ्जनानि परिहृत्यान्यैर्व्यञ्जनैरेतत् प्रकरणं रचितम् ।

४१५. न्यायकन्दलीटीका श्रीधरेण १०४८ वर्षे कृता वैशे-(षि) कमता ६००० ।
४१६. कन्दलीटिप्पनकं पं. नरचन्द्रकृतम् २५०० ।
४१७. कन्दलीपञ्जिका १३८५ वर्षे मलधा० राजशेखरीया ४००० ।
४१८. न्यायलीलावती ।
४१९. सांख्यसप्ततिसूत्र-वृत्ती, ७६, पृ. ...... ।
४२०. वृद्धवादसारप्रकरणं विजिगीषुयोग्यं भट्ट श्री विलास-कृतं ९०० ।
४२१. शास्त्रदर्पणो ब्रह्माऽद्वैतविद्रूपणादिवाच्यः ।
४२२. खण्डनखण्डखाद्ये श्रीहर्षकविकृते परिच्छेदाः ४, ५००० ।
(१) खण्डनखण्डटिप्पनकम् ।

व्याकरण-कोश-ग्रन्थाः ।

४२३. हैमव्याकरणसूत्राणि ११०० ।
४२४ उणादि ३०० ।
४२५. लिङ्गानुशासनं. २०० ।
(१) हैमचतुष्क पृ.-हैमाख्यातबृहद्वृत्तिहैमतद्धितबृहद्वृत्ति-हैमकृद्वृत्तिः, एवम् १८००० ।
(२) १—३—४—५—६—७—८—११—२७ पादे बृहन्न्यासः शब्दमहार्णवनामा ।
४२६. धर्मघोष कृतन्यासः—९००० न ।
४२७. रामचन्द्रकृतन्यासः—५३००० न ।
४२८. परिभाषावृत्तिः—४००० ।
४२९. हैमन्यासोद्धारो लघुन्यासः कनकप्रभकृतः २८ पाद-सत्कः ।
४३०. कक्षापटो हैमबृहद्वृत्तिविषमपदव्याख्यारूपः ।
४३१. हैमबृहद्वृत्तिचतुष्काख्यात २—कृ—३ ढुंढिका ।
४३२. हैमप्राकृत पाद ४ वृत्तिः २४८५ ।
(१) प्राकृतवृत्तिदीपिका हरिभद्रसूरिकृता १५०० ।
(२) प्राकृतरूपसिद्धिः—हैमप्राकृतवृत्त्यवचूरिरूपा मल-धा. पं. नरचन्द्रकृता प्राकृतप्रबोधाख्या १६०० ।
४३३. हैम चतुष्क आख्या—कृत्-तद्धित लघुवृत्तिः ६००० ।
४३४. काकलकायस्थकृत हैमलघुवृत्ति १ चतुष्का-२ आ-ख्यात—३ कृत्—४तद्धित ढुण्ढिका दीपिका वाच्या।
४३५. हैमचतुष्कवृत्ति अवचूरिः २२१३ ।
४३६. हैमलिङ्गानुशासनवृत्तिः ३६८४ ।
४३७. हैमधातुपारायणम् ।
४३८. हैमोणादिवृत्तिः ३२५० ।
४३९. हैमन्यायवृत्तिः १७५ ।
४४० हैमनाममाला १८०० ।
(१) हैमनाममालावृत्तिः ६ काण्डा प्रभुश्रीहेमसूरि-कृता ९९९७ ।
४४१. हैमानेकार्थनाममालासूत्रं सशेषं १८२७ ।
(१) हैमानेकार्थनाममाला [व्याख्या] स्वरकाण्डषट्का, आदौ स्वर—व्यञ्जनकमेण तद्वनामाऽन्त-व्यञ्जनक्रमबद्धा श्री महेन्द्रसूरिकृता १०६६० ।
४४२ हैमदेशीनाममालासूत्रम् ।
(१) हैमदेशीनाममालाया रत्नावली-इति नाम्नी वृत्तिः-वर्णाष्टकक्रमनिबद्धा—३३२०—३५०० ।
४४३ सप्तसप्ततिसारप्रकरणं हैमसंबद्धम् ।
४४४. हैमविभ्रमसूल-वृत्ती पं. गुणचन्द्रकृते सू. २१, वृ. ६०० ।
४४५. कारकसमुच्चयोऽधिकारत्रयात्मकः, आद्यद्वयवृत्तियुग् १२८० वर्षे श्रीप्रभसूरिकृतः प्राथमिकार्थः ।
४४६. मुष्टिव्याकरणं मलयगिरिकृतम् ।
४४७. कातन्त्राऽपरनाम कलापकचतुष्काख्यातकृद्वृत्तिर्दुर्ग-सिंहकृता ।
४४८. कातन्त्रचतुष्काख्यातकृत्पञ्जिका—त्रिलोचनदासकृता दौर्गसिंहवृत्ति विषमपदव्याख्यारूपा ।
४४९. अख्यातावचूरिर्लौकिकव्याकरणसम्बद्धा प. ३६ ।
४५० लौकिककृद्वृत्ति टिप्पनकं तत्सूत्र-वृत्तिगर्भम् ।
४५१. कातन्त्रलघुवृत्तिः २१००, ८००० ।
४५२. धातुपारायणं त्रिलोचनदासीयम् ।
४५३. कलापकविशेषव्याख्यानं न्यासरूपं धातुसूत्रं यावत् ३२५ ।
४५४. औक्तिकं वृत्तित्रयोद्धारकृतम् ।
४५५. कौमारसारसमुच्चयः श्लोकरूपो वृत्तित्रयोद्धारसंग्रहा-त्मकः ३१० ।
४५६. कलापकोणादिवृत्तिः पाद षसत्का ।
४५७. षड्भाषालक्षणपारायणं १४ ।
४५८. प्रमेयरत्नभाण्डागारे विशेषविवरणं कलापकाख्यात-कृद्विषयम् ।
४५९. नामाख्यातीयवृत्तिर्लक्षणकियत्पदसंग्रहात्मिका ६२५ ।
४६०. कातन्त्रप्रयोगसमुच्चयः ५०० ।

४६१. कातन्त्रोत्तरं विद्यानन्दापरनामकं समासप्रकरणं यावत् विद्यानन्दसू० कृ० व्या० ।
४६२. लिङ्गानुशासनममरकृतं अमरकोशसंबद्धकाण्डत्रये १४७० ।
४६३. लिङ्गानुशासन ३४ आर्यामितं वामनकृतं ३४ ।
४६४. अमरकोशक्षेपः ।
४६५. अमरकोशटिप्पनकम् ।
४६६. स्यादिसमुच्चयः पं० अमरकविकृतः ।
४६७. स्यादिसमुच्चयः अमरकविकृतः ।
४६८. लौकिकस्यादिप्रक्रिया सर्वधर० कृ० ।
४६९. सारस्वतव्याकरणं १२२० ।
४७०. सारस्वतटिप्पनकं १२०० ।
४७१. सारस्वतव्याकरणप्रक्रिया ।
४७२. गणरत्नमहोदधिः पं० वर्धमानेन ११९७ वर्षे कृतः ।
४७३. शाकटायनव्याख्या बह्व्यः ।
४७४. शब्दप्रभेदानुयायिनाममाला महेश्वरकविकृता ।
४७५. काशिकावृत्तिः पाणिनिकृता । (?)
४७६. व्याकरणरत्नकोशः पाणि० लघुवृ० ।
४७७. रूपावतारकसंक्षिप्तव्याकरणं पाणिनीयसंग्रहात्मकं समासान् यावत् ।

छन्दःसाहित्यग्रन्थाः ।

४७८. हलायुधच्छन्दोवृत्तिर्भट्टहलायुधकृता १२३३ ।
४७९. छन्दःप्रदीपो विप्रकृतः ९०० ।
४८०. वृत्तरत्नाकरो भट्टकेदारकृतः १५० ।
(१) तद्वृत्तिः श्रीकण्ठकृता ८२० ।
४८१. जयदेवच्छन्दःशास्त्रवृत्तेः टिप्पनकं श्रीचन्द्रसूरिकृतम् ।
४८२. नन्दिताढ्यप्राकृतछन्दोवृत्तिः श्रीदेवाचार्यशिष्यप्रकरणसु (शत ?) कारिरत्नचन्द्रगणिकृता ।
४८३. छन्दोऽनुशासनाऽपरनामकच्छन्दश्चूडामणिवृत्तिर्हेमसूरिकृता ४१००-२९९९ ।
४८४. गाथारत्नकोशो गाथालक्षणादिवाच्यः ७३ ।
४८५. काव्यप्रकाशसूत्र-वृत्ती १० उल्लासे सू० १४१ वृ० १७३० ।
४८६. जयन्तीदीपिका जयन्तपुरोधःकृता ४७३० ।
४८७. काव्यप्रकाशसंकेतः १२१६ वर्षे माणिक्यचन्द्रीयः ३२४४ ।
४८८. काव्यप्रकाशविकाशः ... ।
४८९. काव्यप्रकाशावचूर्णिः १२५० ।
४९०. काव्यप्रदीपिका सूत्र-वृत्तिगर्भा पाल्हदेवकृता ६००० ।
४९१. काव्यानुशासननामालंकारचूडामणिवृत्तिः श्रीहेमसूरीया ८ अध्याया २८००—४२०० प्रत्यन्तरे ।
४९२. अलङ्कारचूडामणिवृत्तिविवेको हेमसूरीयः ४००० ।
४९३. दण्डयऽलङ्कारः ... ।
४९४. अलंकारमहोदधिटीका मलधा० नरेन्द्रप्रभीया १२८- वर्षे कृता ४५०० ।
४९५. कविशिक्षा नाम काव्यकल्पलता सू० ५०० ।
(१) सूत्रवृत्तिः पं० अमरकविकृता वृ० ३३५७ ।
४९६. वाग्भटालङ्कारवृत्तिः ६०० ।
४९७. रुद्रटालङ्कारः ६ अध्यायः ।
४९८. कविशिक्षा बप्पभट्टिशिष्यविनयचन्द्रकृता ।
४९९. अलङ्कारसर्वस्वं राजानकश्रीरुचककृतं १६०० ।
५००. काव्यकल्पलतापरिमलः, पं० अमरकविकृतः ।
५०१. श्रीभोजराजकृताऽलङ्कारस्य वृत्तिः पदप्रकाशनाम्नी । आजडकृता काव्यबन्धादिवाच्या...... ।
५०२. चन्द्रालोकालङ्कारः पं० अमरकविकृतकाव्याम्नायः प० २० ।

गद्यपद्य काव्यग्रन्थाः ।

५०३. श्रीद्व्याश्रय महाकाव्यं श्रीहेमसूरीयं २० सर्ग संस्कृतं २८२८-३०२८ ।
५०४. द्व्याश्रयकाव्यपद २८ वृत्तिः, १३१२ वर्षे खरतर-अभयतिलकीया १७५७४ ।
५०५. प्राकृतद्व्याश्रयसूत्रं है ९५० ।
५०६. प्राकृतद्व्याश्रयपाद ४ वृत्तिः. खरतरपूर्णकलशीया १३०७ वर्षे कृता ४२३० ।
५०७. धर्माभ्युदयकाव्यं वस्तुपालचरित्रवाच्यं, उदयप्रभीयं ५२००—५०४० ।
५०८. श्रीशालेयं काव्यं शालिभद्रचरित्रवाच्यं पं० धर्मकुमारकृतं १३३४ वर्षे १२२४ ।
५०९. श्रीधर्मनाथमहाकाव्यं २१ सर्ग दिगम्बरीयकाव्यादिबन्धकाव-हरिचन्द्रकृतम् ।
५१०. श्रीनेमिचरित्रं महाकाव्यं संस्कृतं गद्य-पद्यमयं बहुखण्डितं १०९० वर्षे भोजराजराज्ये सूराचार्यकृतम् ।
५११ श्रीनेमिमहाकाव्यटिप्पनकं १४०० ।
५१२. श्रीनेमिनिर्वाणकाव्यं वाग्भटकृतं १५ सर्ग १३६० ।

५१३. नेमिदूतकाव्यं विक्रमकृतम् ।
५१४. कुट्टिनीमतकाव्यं सं० दामोदरकृतं १२९० ।
५१५. विक्रमांकाभ्युदयकाव्यम् ।
५१६. बालभारतं ४३ सर्ग अमरकविकृतं परसमयवाच्यं ६७७४ ।
५१७. अभिनन्दकाव्यं रामचारतं वा ३६ सर्गम् ।
५१८. सोमपालविलासकाव्यम् ।
५१९. जल्हणकविकृतकाव्यम् १००० ।
५२०. नरनारायणनन्दकाव्यं मन्त्रिवस्तुपालकृतं १६०० ।
५२१. तिलकमञ्जरीकथा, धनपालकृता चम्पूरूपा वर्णनसारा ।
(१) तिलकमञ्जरीटिप्पनकं शान्त्याचार्यीयं १२०० ।
५२२ तिलकमञ्जरीसारोद्धारो लघुधनपालकृतः–१२०० ।
५२३. कादम्बरीकथा बाणकविकृता पुलिंद्रकृतसंधाना ।
५२४. सौभाग्यमंजरीकथा सं० गद्यपद्यमयी, पर्त्तीय पं० महेंद्रकृता ३१०० ।
५२५. वासवदत्तकथा सुबंधुकविकृता ।
(१) वासवदत्ता० टीका नारायणकविकृता ।
५२६. चम्पूकथा ७ उल्लास त्रिविक्रमभट्टकृता दमयन्तीकथापरनाम्नी २५०० ।
(१) चम्पूकथादिटिप्पनकं चण्डपालकृतं १९०० ।
५२७. शातवाहनकृतगाथासप्तशती......।
(१) टीका भुवनपालकृता ४५०० ।
(२) शात० गाथावृत्तिः, श्रीआजडेन कृता ।
(३) शात० गाथावृत्तिः, जल्हणदेवकृता ।
५२८. रघुकाव्यं २० सर्ग १५७२ ।
५२९. माघकाव्यं २० सर्ग २७०० ।
(१) माघकाव्यटीका वल्लभदेवकृता १२००० ।
५३०. कुमारसंभवकाव्यं ८ सर्ग ६१५ काव्यानि ।
(१) कुमारसंभवकाव्यवृत्तिर्दिगम्बरीयधर्मकीर्तिकृता ।
५३१. मेघदूतकाव्यम् ।
(१) मेघदूतवृत्तिः ।
५३२. किरातकाव्यं १८ सर्ग भारविकविना ... . पर्वे कृतम् ।
(१) किरातकाव्यस्य भारवीयस्य वृत्तिः प्रकाशवर्षकृता ।
(२) किरातार्जुनीयकाव्यटीका लोकानन्दकृता ।
५३३. गौडवधकाव्यं गाथाः ११६८ ।
५३४. नैषधमहाकाव्यं श्रीहर्षकविकृतं २२ सर्ग काव्यानि ४००९ ।
(१) नैषधटीका चाण्डवी ।
(२) नैषधटीका गादाधरी ।
(३) नैषधीटीका विद्याधरी ।
५३५. दशरूपालोकम् ।
५३६ भारतशास्त्रम् ।
५३७. धनुर्विद्या च ।

नाटकानि ।

५३८. रघुविलासनाटकं पं० रामचंद्रकृतम् ।
५३९. नलविलासनाटकं पं० रामचन्द्रकृतम् ।
५४०. चाणाक्यनाटकम् ।
५४१. मोहपराजयनाटकं मन्त्रियशःपालकृतं श्रीकुमारपालनृपप्रतियद्धं मायोऽन्तरद्रुतवाच्यं १३२० ।
५४२ मानमुद्राभञ्जननाटकं सनत्कुमारचक्रि-विलासवतीसंबन्धप्रतिबद्धं देवचन्द्रगणिकृतं १८०० ।
५४३. प्रबुद्धरौहिणेयं रामचन्द्रीयं १००० ।
५४४. मुद्रितकुमुदचन्द्रनाटकं यशश्चन्द्रकृतं ५३५ ।
५४५ प्रबोधचन्द्रोदयनाटकं १०१० ।
५४६. दूतांगदनाटकम् ।
५४७. शृंगारतिलकनाटकम् ।
५४८. मुरारिनाटकम् ।
(१) मुरारिटिप्पनकं देवप्रभसूरिकृतं ७५०० ।
(२) मुरारिटिप्पनकं मल० नरचन्द्रसूरीयं २३५० ।
५४९. अनर्घ्यराघवनाटकम् ।
५५०. मुद्राराक्षसनाटकं चन्द्रगुप्त-चाणाक्यसंबद्धं विशाखदेवकृतं ।
५५१. सुकृतमण्डनं वस्तुपालसंबद्धम् ।
५५१. राघवाभ्युदयनाटकं पं. रामचन्द्रकृतं १० अंकम् ।
५५२. चन्द्रलेखाविजयनाटकम् ।
५५३. विक्रमोर्वशीनाटकं कालिदासकृतं ७०० ।
५५४. कर्पूरमंजरी नाटकम् ।
५५५. रत्नावलीनाटिका हर्षदेवकृता ७३३ ।
५५६. वनमालानाटिका पं. अमरचन्द्रकृता ।

ज्योतिः–शकुन–योगाम्नाय–मन्त्र–कल्प–सामुद्रिक–शास्त्राणि ।

५५७. आयज्ञानतिलकसूत्र-वृत्ती बोसिरिकृते सू. गा. ७५० ।
५५८. आयसद्भावः १९५ । वृत्तिः १६०० ।

५५९. कूरपर्वतः (?) ।
५६०. प्रश्नव्याकरण ज्योतिर्वृत्तिः ।
५६१. चूडामणिग्रन्थः २३०० ।
५६२. चूडामणिसारग्रन्थः४१ प्रकरणो लक्ष्मणभट्टकृतः६७२।
५६३. त्रिशती श्रीधरीया।
५६४. गणितशास्त्रम् ।
५६५. चन्द्रोन्मीलनचूडामणिसारशास्त्रम् ।
५६६. ज्ञानमञ्जरी ।
५६७. वस्तुसार १, ज्योतिषसार २, द्रव्यपरीक्षा ३, रत्नपरीक्षा ४, श्रीवार्ता तद्वृत्तयः ६ ग्रन्थाः १३७२ वर्षे ठ. फेरुकृताः ।
५६८. गणिततिलकग्रन्थवृत्तिः सिंहतिलकसूरीया ।
५६९. प्रश्नप्रकाशो नरचन्द्रसूरिकृतः २० प्रकाशाः ३६० ।
५७०. नरपतिजयचर्या एकाशीतिकादि ८४ चक्रा ।
५७१. नरपतिजयचर्या गतप्रज्ञा ।
५७२. नयनपूर्वाङ्कपञ्चाङ्गतिथिविवरणं करणशेखरवृत्तिनामकं १९० ।
५७३. वाराहीसंहिता सूत्र-वृत्ती—४००० ।
५७४. भाद्रबाहवीसंहिता सूत्रम्......।
५७५. सारावलीज्योतिष्कं २७०० ।
५७६. ज्ञानदर्पणज्योतिष्कं त्रैलोक्यप्रकाशं हेमप्रभसूरिकृतं ११४१ ।
५७७. भुवनदीपकः पद्मप्रभः १६७ ।
(१) वृत्तिः सिंहतिलकीया १७०० ।
५७८. रत्नकोशज्योतिष्कम् ।
५७९. रत्नमालाज्योतिः ।
५८०. ऋषिसंवत्सरादिदेवमन्त्रा अनेकविधा इह अनिर्दिष्टनामकाः ।
५८१. हर्षप्रकाशज्योतिष्कं हर्षदेवगणिकृतम् ।
५८२. चन्द्रार्कग्रहसारज्योतिष्कम् ।
५८३. आशाधरीयपद्धतिः, यन्त्राणि च ।
५८४. बृहज्जातकं २५ अध्यायरूपं वराहमिहिरीयम् ४०० ।
५८५. श्रीधरीयजातकपद्धतिटीका ।
५८६. षट्पञ्चाशिकावृत्तिः सप्ताध्याया ५५० ।
५८७. प्रश्नज्ञानपद्धतिः भट्टोपलकृता १८० ।
५८८. विद्वज्जनवल्लभाख्यप्रश्नज्ञानं १९ अध्यायं श्रीभोजीयम् ।
५८९. पुस्तकेग्रन्थाः गा. ११५ ।
५९०. श्रुतज्ञानं पाशाकेवली विशेषरूपं श्लो. २१५ ।
५९१. मातृकाकेवली ५० ।
५९२. देवतादि ११ द्वारैः कालज्ञानम् ।
५९३. प्राकृतं पिपीलिकाज्ञानम् ।
५९४ नाडीसंचारज्ञानं च ।
५९५. सिद्धाज्ञापद्धतिः ।
५९६ नाथपुस्तिका योगिनामाम्नायग्रन्थसत्का हरीमेखलाजनाश्चर्यकराञ्जनसिद्धयादियोगादिवाच्या, खेलवाडि माहुयाकृता, गाथा ११९७ ।
५९७ अर्घकाण्डं दुर्गदेवीयं अ० १०–१४७ ।
५९८. मन्त्रमहोदधिः प्रा दिगम्बर श्रीदुर्गदेवकृतः, मं. गा. ३६ ।
५९९. भैरवपद्मावतीकल्पः श्रीमल्लिषेणसूरिकृतः ४०० ।
६००. रुद्राक्षकल्पः ७५ ।
६०१. श्वेतार्ककल्पः ।
६०२. कामरूपपञ्चाशिका निमित्तग्रन्था तद्वृत्तिः सू. वृ. ८८ गा. (?) ।
६०३. वसन्तराजो लावशर्मणः २३५० ।
६०४. शकुनसारोद्धारो माणिक्यसूरीयः १३३८ वार्षिकः ५०८ ।
६०५. शकुनशास्त्रं प्राकृतं वार्तामयं र. १४ ।
६०६. सामुद्रिकम् ६७ ।

प्रकीर्णकग्रन्थाः ।

६०७. श्रीशान्तिनाथचरितं दिगम्बरीयं गा. २१९६ ।
६०८. यशोधरचरितं दिगम्बरीयम् ।
६०९. यशोधर काव्यपञ्जिका ।
६१०. प्रतिक्रमणटीकासूत्रं दिगम्बरीयम् ।
६११. आनन्दसमुच्चयः ।
६१२. अध्यात्मशास्त्रं बहुप्रकरणमयम् ।
६१३. पातञ्जलियोगशास्त्रवृत्तिः सूत्रयुता श्रीभोजराजकृता ।
६१४. आत्मावबोधो मलधा. देवप्रभसूरिकृतः ५५० ।
६१५. ज्ञानार्णवोऽध्यात्मवाच्यः श्रीशुभचन्द्रसूरीयः हैमयोगशास्त्रतुल्यवाच्यो बहुवैराग्यः ४००० ।
६१६ ज्ञानदीपिका पिण्डस्थादिध्यानवाच्या ।
६१७ तत्त्वार्थसाराख्यं मोक्षशास्त्रं अमृतचन्द्रसूरीयम् ।
६१८. संवेगद्रुमकन्दली विमलाचार्यकृता, कारिका ५२ ।
६१९. ज्ञानार्णवशुद्धोपयोगसूत्रम् ।

६२०. ज्ञानाङ्कुशः का. २८ ।
६२१. योगकल्पद्रुमः ।
६२२. अमृताशीतिः ।
६२३. विरूपाक्षयोगशतं गा. १०१, अ. ६१ ।
६२४. साम्यशतं विजयसिंहीयं १०४ ।
६२५. शमभावशतं अन्तरङ्गकथावाच्यं श्रीधर्मघोषसूरिकृतम् १०२ ।
६२६. गीता भारते भीष्मपर्वगता ७१६ ।
६२७. धर्मपरीक्षा परसमयाऽसंबद्धतावाच्या दिगम्बरीयाऽमितगतिकृता ।
६२८. वज्रसूची विप्रजात्यादिनिरासवाच्या ।
६२९. भविष्योत्तरोद्धारः परसमयबहुस्वरूपवाच्यो जैनकृतः परसमयज्ञानाय ।
६३०. द्विजवदनचपेटा विप्रजात्यादिनिराकरणवाच्या ।
६३१. वनस्पतिसत्तरी (१) } श्रीमुनिचन्द्रसूरि
६३२. पाक्षिकसत्तरी (२) } कृता (प्रत्येकं)
६३३. अङ्गुलविचारः (३) } गा. ७०
६३४. सम्यक्त्वस्वरूपं जिनचन्द्रगणिकृतं, गा. १०४ ।
६३५. जिनप्रतिष्ठा ।
६३६. यतिप्रतिष्ठास्थापनस्थलं जिनदेवसूरिकृत, ११८७ वर्षे, प. २६ ।
६३७. श्रीशान्तिवेतालीया पर्वपञ्जिका अपर्नविद्यादिवाच्या ।
६३८. श्रीशीलाचार्यीया धूमावल्यादिवृत्तिः ।
६३९. कुसुमाञ्जल्यादिवाच्या समुद्राचार्यकृता २५० ।
६४०. ग्रहदोषशान्त्यध्यायः (१)
दोषशान्तिकं जैनं (२)
लौकिकं (३) च
त्रयमपि सिंहतिलकसूरिकृतं त्रयाणां यथाक्रम् १२४ संख्या पत्र ५ ।
६४१. आलोचनाविधान-आलोचनपदसंग्रहादयोऽनेके संग्रहाः ।
६४२. सूक्तरत्नाकर-सुभाषितसमुद्रप्रमुखाः सुभाषितग्रन्था अनेकविधाः सर्वे धर्मकुमारीयाः ।
६४३. शुभावली ।
६४४. दानादिप्रकरणं सं सूराचार्यकृतं समासबद्धं काव्यादिबन्धं प. ३४ ।
६४५. सुधाकलशाख्यसुभाषितकोशः पं. रामचन्द्रकृतः, पत्र..... ।
६४६. दीपालीकल्पः १४४ ।
६४७. दीपोत्सवकल्पः, सं. १३८१ वर्षे विनयचन्द्रकृतः २७४ ।
६४८. दृष्टान्तशत १०४ ।
६४९. तत्वबिन्दुः ७१ ।
६५० योधप्रदीपिका ५२ ।
६५१. सिन्दूरप्रकरः ९८ ।
६५२. दृष्टोपदेशः ५१ ।
६५३. सर्वेऽपि सूक्तरूपाः ग्रन्थाग्रम् ३८०५ ।

जैन जागृति   जैन जागृति   जैन जागृति

(पाक्षिक पत्र)

सम्पादक—मुनिराज श्रीजिनविजयजी

तमे जैन छो ? जैन समाजनी खरी हालत जाणवा इच्छो छो ? जैन धर्मनी उन्नति थाय एम चाहो छो ?

जो आ प्रश्नोना उत्तर 'हा' मां आपवाना होय तो तो आजे ज एक कार्ड लखी जैन जागृति नामना पाक्षिक पत्रना ग्राहक तरीके पोतानुं नाम दाखल करावो.

[illegible] थी पहेलुं सत्तरसुं [illegible] कार्तिक सुदी प्रतिपदाना दिवसे आ पत्रनो प्रथम अंक प्रकट थशे अने पछी हमेशां दर [illegible] ते प्रकट थतुं रहेशे

जैन समाजने [illegible] आपवा माटे, तेमज तेना सामाजिक अने धार्मिक प्रश्नोना [illegible] अने युक्तिसंगत [illegible] आपवा माटे आ पत्र प्रकट करवामां आवे छे. एमां [illegible] उत्साह-प्रेरक [illegible] लेखो आवशे. जैन समाजनी वर्तमान परिस्थिति उपर [illegible] विचारो दर्शाववामां आवशे. [illegible] आ [illegible] मां [illegible] थई शके ? [illegible] आ प्रकारना समयमां आपणुं धार्मिक [illegible] थई शके ? अने [illegible] आपणे सामाजिक [illegible] एवा प्रश्नो उपर आ पत्रमां [illegible] करवामां आवशे. सामाजिक अने धार्मिक विषयो उपरांत नैतिक, ऐतिहासिक, [illegible] आदि विषयो उपर पण सारा सारा लेखो अने विचारो एमां हमेशां आव्या करशे

टूंकाणमां कहीए तो जैन संघमां केळवणी विषयक व्यापारविषयक राष्ट्रविषयक समाजविषयक अने धर्मविषयक दरेक प्रकारनी जागृति उत्पन्न करवा माटे ए पत्र प्रगट करवामां आवे छे

पत्रना आदर्शमाटे विशेष लखवुं नकामुं छे कारण के मूळ वाचको पहेला उपर थी ज आ ने वांचनमां विचारी शकशे के एनुं सम्पादन कार्य स्वयं मुनिराज श्रीजिनविजयजी महाराजना हस्तक थशे कि बहुना ?

पत्रनी भाषा मुख्य करीने गुजराती रहेशे परंतु लिपि देवनागरी [illegible] रहेशे जेथी पंजाब, राजपूताना अने युक्तप्रान्तना भाईओ पण सहेलाईथी एनो लाभ लई शकशे.

पत्रनुं वार्षिक लवाजम टपाल खर्च साथे [illegible] राखवामां आवशे. ग्राहको पासेथी ज नकलो काढवामां आवशे. तेथी ग्राहक थवा इच्छनारे तरतमां ज एक कार्ड लखी नाम नोंधाववा विनंती छे.

पत्र व्यवहार नीचेना शिरनामे करवो.

व्यवस्थापक,

जैन जागृति कार्यालय,

[illegible] आगम जैन विद्यालय,

पूना—सिटी.

[illegible] Jain Sahitya Sanshodhak Samaj, [illegible] College Road, Poona City, [illegible] Kesto 'Hanuman Press' [illegible], 300 Poona City.

संरक्षक—श्रीयुत हरगोविंददास रामजी शाह—मुंबई

॥ अर्हम् ॥

॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

खंड १] [अंक २

जैन साहित्य संशोधक

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि विषयक सचित्र त्रैमासिक पत्र ।

संपादक

मुनिराज श्रीजिनविजयजी ।

प्रकाशक—

जैन साहित्य संशोधक समाज ।

ठि० भारत जैन विद्यालय, फर्गुसन कालेज रोड, पूना सिटी ।

वार्षिक मूल्य ५)) रु०] ● [प्रस्तुत अंक मूल्य १॥ रु०

इसे अवश्य पढिए

जैन साहित्य संशोधक का दूसरा अंक कार्तिक महिनेमें प्रकट हुआ था और यह तीसरा अंक ७ महिने बाद ज्येष्ठमें प्रकाशित होता है । जै. सा. सं. त्रैमासिक है इस लिए प्रति तीन महिनेमें प्रकाशित होना आवश्यक है और यदि समयपर न निकले तो ग्राहकोंका उस बारेमें तकाजा करना भी व्याजिब है । परंतु जिन कई प्रकारकी अड़चनोंके कारण हम अभी तक इसको समयपर नहीं निकाल सके उनका ख्याल यदि हमारे विज्ञ पाठकोंको हो तो वे हमें अवश्य इस बारेमें क्षमा प्रदान करेंगे ।

पत्रके संपादक मुनिजीको आजकल अधिक रहना अमदाबाद होता है । उनके शिर पर, गुजरातके राष्ट्रीय विद्यापीठ की तरह नहीं पर दो दो संस्थाओंका कामभार [illegible] गुजरात पुरातत्त्व मंदिर और आर्यविद्या मंदिर नामक महत्त्वकी संस्थाओंके [illegible] इस लिए वहांके कामको संभालना उनका प्रथम कर्तव्य है । जब वहांके कामसे [illegible] मिलती है तब वे यहां लिखते [illegible] कर हम पत्रका काम शुरू करते हैं । यह पत्र इतना बड़ा है कि इसके छपनेमें कमसे कम दो-ढाई महिने लगते हैं सो भी प्रेसवालोंकी कृपा होती है तो- नहीं तो इससे भी ज्यादह समय लग जाता है । इस लिए यथासमय पत्र नहीं निकल सके तो उसमें हमारा कोई दोष नहीं ऐसा समझना चाहिए

दूसरी बात यह है कि इस प्रकारके पत्र सभी इसी तरह [illegible] निकला करते हैं । हमारे [illegible] तो याद होगा कि गवर्मेंटकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'इंडियन एंटीक्वेरी' [illegible] 'एपिग्राफिया इंडिका' जैसे जगत्प्रसिद्ध [illegible] भी कभी कभी १०-१२ महिने जितने 'लेट' होते हैं ।

यह पत्र कोई कमाईके लिये नहीं निकाला जाता; केवल साहित्यके प्रकाशनार्थ ही निकाला जाता है । इसका खर्च कोई ग्राहकोंकी फीससे पूरा नहीं होता । ग्राहकोंकी जितनी फी आती है उससे तो तिगुनासे भी अधिक खर्च इस संस्थाको गांठका जोड़ना पड़ता है । यदि सारा खर्च ग्राहकों ही की जिम्मेवारी पर रखकर इसको प्रकाशित करना हो तब तो इसका मूल्य ७॥ रुपयेकी बनिस्बत 'इन्डियन एंटिक्वेरी' आदि जर्नलोंकी तरह २० रुपये वार्षिक रखना पड़े । परंतु जैन समाजमें ऐसे विषयोंके जिज्ञासुओंकी जो हालत है उसका ख्याल किया जाय तो शायद एक भी जिज्ञासु ऐसा नहीं निकलेगा जो २० रुपये वार्षिक दे कर इसका ग्राहक बने । इससे पाठक समझ सकेंगे कि जैन साहित्य संशोधककी क्या परिस्थिति है ।

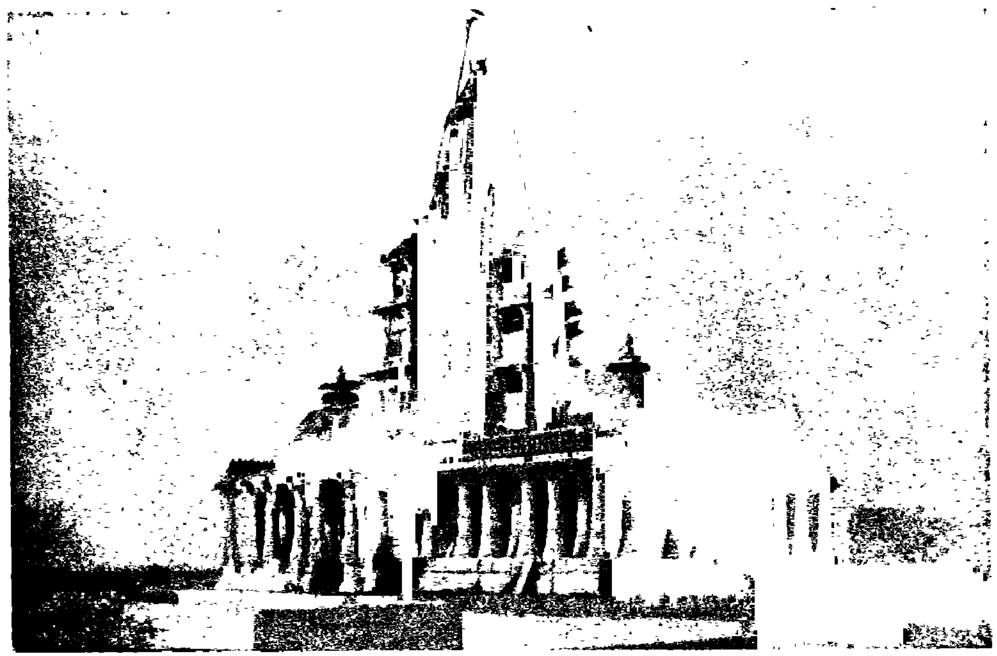
यद्यपि परिस्थिति विकट है, तो भी हम अब इसे समयपर प्रकाशित करनेकी कोशिशमें अवश्य लगे हुए हैं ही । उम्मीद है कि ४ था अंक पाठकोंके हाथमें जल्दी ही पहुंच जायगा क्यों कि इस अंकके छपते [illegible] उसका भी छपना शुरू करवा दिया गया है ।

इस अंकमें ग्रंथावलोकन [illegible] नहीं आ सके, इस लिए अगले अंकमें वे ही अधिक दिये जायगे ।

इस अंकमें जो एक पुरानी पट्टावली दी गई है वह बहुत महत्त्वकी और अपूर्व है । उसको बड़े परिश्रमके साथ छपाई गई है । पाठक उसे खूब ध्यान दे कर पढ़ें । पहली दफह पढ़नेमें अवश्य जरा कुछ कठिनता पड़ेगी, क्यों कि उसकी भाषा जो है सो पुरानी गुजराती है और कुछ विलक्षण भी है । परंतु मननपूर्वक पढ़नेसे उसका मतलब सब ठीक समझमें आ जायगा ।

निवेदक-

व्यवस्थापक-जै. सा. सं.



चतुर्मुख जैन मंदिर, कापरडा, जोधपुर (मारवाड)

॥ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

' पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ । '

' जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ । '

' दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ । '

—निर्ग्रन्थप्रवचन—आचारांगसूत्र ।

खंड १] गुजराती लेख विभाग [अंक ३

क्षेत्रादेश पट्टक.

आ शीर्षक नीचे आजे केटलाक क्षेत्रादेश पट्टको आपवामां आवे छे. घणा वांचको आ मथाळुं वांची विचारमां पडशे के ' क्षेत्रादेश पट्टक ' ए वळी शुं छे. अमे अहिं संक्षेपमां तेनी समजण आपीए छीए.

जैन यतियोमांथी[1] जे जे यतियोना आचार-विचारो अने विधि-विधानो एकज सरखां होय तथा

१ अहिं अमे जे यतिशब्द वापर्यो छे ते, वर्तमानमां जे रूढी अनुसार संकुचित अर्थमां ए शब्द वपराय छे ते अर्थमां नथी वापर्यो, परंतु एना वास्तविक अर्थवाळा व्यापक अर्थमां वापर्यो छे. अहिं आपेला यति शब्दथी आजे कहेवाता यतियो अने मनाता साधु बन्ने प्रकारना वेशधारी त्यागियो समजवाना छे. कारण के यति अने साधु शब्दथी सबोधाता वर्गमां आजे जे खास अमुक प्रकारनी आचार-पालननी भिन्नता जोवामां आवे छे, ते फक्त लगभग छेल्ला २५० वर्षथीज हयातीमां आवी छे. तेनी पहेलां ए भिन्नता न हती. विक्रमना १८ मा सैकाना प्रारम्भमां ए भिन्नतानो प्रादुर्भाव थयो छे. ए समय पहेलां जैन (श्वेताम्बर साम्प्रदाय) नो त्यागीवर्ग एक मात्र ' यति ' नामथीज ओळखातो हतो. जैन शास्त्रोप्रमाणे यति, भिक्षु, साधु, श्रमण ए बधा शब्दो एकज प्रकारना भावार्थवाळा होई एकज प्रकारना वर्गने आ शब्दोथी संबोधवामां आवे छे. वर्तमानमां जे प्रकारनी वर्गभिन्नता दृष्टिगोचर थाय छे तेना प्रादुर्भावनो इतिहास बहु जाणवा जेवो छे; परंतु आ स्थळे तेनो प्रसंग न होवाथी, बीजा कोई प्रसंगे ते लखवा इच्छा छे.

जेओ एकज व्यक्तिनी आज्ञानुसार पोतानी जीवनचर्या पाळता होय तेवा बधा यतियोना एक समुदायने जैनसाहित्यमां ' गच्छ ' ना नामथी संबोधाय छे. ए ' गच्छ ' नो जे नायक होय-जे व्यक्तिनी आज्ञामां ए बधो यति समुदाय वर्ततो होय तेने आचार्य कहेवामां आवे छे. आलङ्कारिक भाषामां कहीए तो गच्छ-नो नायक ए एक प्रकारे राजा गणाय. जेम राजानी आज्ञानुसार तेनो बधो अधिकारी-वर्ग अने प्रजा-वर्ग पोतानी जीवनचर्या चलावे छे तेम आचार्यनी आज्ञानुसार तेनो बधो यतिसमूह अने अनुयायीगण पोतानी धर्मचर्या चलावे छे आ आलङ्कारिक कल्पना मध्यकालमां तो लगभग यथार्थरूप पण धारण करवा जेटली प्रयत्नवती थई गई हती. ए समयमां आचार्य मूर्तिमन्त राजा जेवाज रूपमां देखावाना मोहमां सपडाई गया हता. राजानी माफक आचार्य पण छडीदार, चोपदार, पालखी, नगारो, निशान, चमर आदि राज्यचिन्हो धारण करवा लाग्या हता. अस्तु. जेम राजा पोताना अधिकारीयोमांथी अ-मुक वर्षे अमुक अधिकारीने अमुक स्थाननो अधिकार चलाववा मोकले, तेम ए आचार्य पण पोताना आज्ञानुवर्ती यतियोने दर वर्षे जुदा जुदा स्थळोमां चातुर्मास करवा माटे मोकलता. आ माटे तेओ ' आ वर्षे अमुक यतिए अमुक स्थानमां चातुर्मास रहेवुं ' एवो आदेश (हुकम) दरेक वर्षे काढता अने जेम आजे गवर्मेंटना प्राईवेट सरक्युलरो दरेक अधिकारीने मोकली देवामां आवे छे तेम ते आदेशोनी अनेक नकलो करावी समुदायना दरेक यतिपासे पहोंचाडवामां आवती. आ प्रकारना लखाणवाळा आदेश-पत्रने 'क्षेत्रादेश पट्टक' कहेवामां आवे छे. क्षेत्र एटले चातुर्मास रहेवा माटेनुं स्थान, अने ते सम्बन्धी आचार्यना आदेश एटले हुकम नो जे पट्टो ते 'क्षेत्रादेश पट्टक' आवा पट्टको अर्थात पट्टाओ दरेक गच्छ अने समुदायना आचार्यो काढता. ए पट्टकोनी लखवानी रीतमां साधारणरीते प्रारम्भमां स्वर्गस्थ आचार्यने नमस्कार करेलुं होय छे. पछी जे वर्ष माटे ए पट्टक काढवामां आव्यो होय तेनो उल्लेख करवामां आवे छे. तदनन्तर वर्तमान आचार्य के जेना तरफथी ए पट्टक कढाय छे—तेनुं नाम होय छे अने ते पछी जे देशना क्षेत्रो माटे ए आदेश होय छे तेनुं नाम नोंधाय छे प्रारंभमां आटलुं मथाळुं कर्या पछी नीचे क्रमवार एकेक पंक्तिमां, जे यतिने जे गामे रहेवानुं होय तेनी सूचि आपवामां आवे छे. तेनी नीचे जो कोई यतिने कांई गुन्हाबद्दल समुदायमांथी बहिष्कृत करवामां आव्यो होय छे तो तेनी पण सूचना आप-वामां आवे छे अने छेवटे बे-चार पंक्तिओमां आचार्य तरफथी बधा यतियोने सामान्य शिखामण अपा-एली होय छे. तेमां लखेलुं होय छे के आ पट्टा प्रमाणे दरेक यतिए पोतपोताना निर्दिष्ट स्थाने वेळासर जई रहेवुं. समुदायनी मर्यादानुं जे विधानपत्र करेलुं होय ते प्रमाणे वर्तवुं. जे कोई अविचारितरीते वर्तशे तेने सखत उपालम्भ आपवामां आवशे. जे स्थाने रहेवुं होय त्यां श्रावको साथे लडझघड करवी नहीं. लोक व्यवहारनुं यथायोग्य पालन करवुं. चातुर्मासमां क्यांए जवुं आववुं नहीं. दरेकरीते सावधान रहेवुं. इत्यादि. आ पट्टकोना शिरोभागे राजमुद्रा (मोहोर = शिक्का) नी माफक आचार्य पोताना हाथे " सही " अथवा " सही छइ " एवा शब्दो सीक्स-लाईन के एईट लाईन पाईका करतांए वधारे मोटा कदवाळा अक्षरोमां लखे छे —के जे प्रकार उदयपुर (मेवाड) ना महाराणाओ तरफथी निकळता जूना फरमानोमां पण जोवामां आवे छे.

आ प्रकारना १० पट्टको अमने प्र० श्री कान्तिविजयजी महाराजना शास्त्रसंग्रहमांथी मळी आव्या छे जे क्रमथी अहिं प्रकट करवामां आवे छे. आ दसे पट्टको तपागच्छनी मुख्य शाखाना छे. आ पट्टको उपरथी केटलीए उपयोगी बाबतोनी माहिती मळी आवे छे. आजथी मात्र १०० वर्ष पहेलांज जैन यति-योनुं सामुदायिक बन्धारण केवुं व्यवस्थित हतुं, जैनसमाजनी केटली बहोळी संख्या हती, त्यागियो पण केटली मोटी संख्यामां विद्यमान हता. तेमना उपर आचार्यनी केवी सारी सत्ता हती, समाजमां यति-यो कोई पण प्रकारनो विखवाद उभो न करी शके ते माटे आचार्यो केवी काळजी राखता, इत्यादि अनेक सामाजिक बाबतो उपर आ पट्टकोथी जाणवा जेवो प्रकाश पडे छे आ पट्टको प्रमाणे सो दोढ

सो वर्ष उपर जेटलां गामो जैन यतियोने चातुर्मास रहेवा योग्य सारी श्रावकसंख्यावाळा हता, तेनाथी अर्धां गामो पण आजे यति के साधुमाटे एक रात रहेवा पुरती श्रावकनी वस्तीवाळा रह्या नथी. ए एकज बाबत ऊपरथी जोई शकाय छे के जैन समाजनी संख्या केटली बधी झडपथी घटी गई छे तथा घटती जाय छे. तेज प्रमाणे यतियोनी संख्यानी पण जबरदस्त घटतो थई छे कर्नल टॉड पोताना राजस्थान नामक प्रसिद्ध इतिहासमां एकला राजपूतानामां ज मात्र खरतर गच्छना ११०० यति लख्या छे. तेना बदले आजे १११ पण विद्यमान नथी हीरविजयसूरिनो यतिसमुदाय लगभग २००० जेटली संख्यावाळो हतो तेना ठेकाणे आजे २०० नो पण नथी एज रीते जे अनेक ठेकाणे सेंकडो घरो श्रावकोना हता त्यां आजे ५-१० पण रह्या नथी. अस्तु.

पट्टक १.

—·*—

अहिं आपवामां आवता पट्टकोमां, आ पट्टक सौथी जुनो छे ए विक्रमसंवत् १७७४ नी सालनो छे. ते वखते तपागच्छनी मुख्य गादी उपर आचार्य विजयक्षमासूरि हता. आ पट्टक जाडा देशी कागळ उपर लखेलो छे. तेनी लंबाई ३½ फीट अने पहोळाई ३½ इंच छे एकंदर १४६ पंक्तिओ लखेली छे. अक्षर सुंदर देवनागरी जैन शैलीना छे. मूळ नकल नीचे प्रमाणे छेः—

सही छइ.

ॐ नत्वा भ[1]। श्रीविजयरत्नसूरीश्वरगुरुभ्यो नमः ।

संवत १७७४ वर्षे भ । श्रीविजयक्षमासूरिभिर्जेष्ठस्थित्या[2]देशपट्टको लिख्यते । श्रीगुर्जरदेश ।।

पं[3]। न्यायविजयसंपरिकरा मारवाडदेशे तथा मेवातदेश तथा गुर्जरदेश ।

उ[4]। श्रीविमलविजय ग[5] । सूरति १

पं । जिनविजय ग । वृद्धश्रीजीसत्क भरूच १

पं । प्रेमविजय ग । वृद्धश्रीजीस । पाटण १

पं । ऋद्धिविजय ग । वृद्धश्रीजी सत्क राधनपुर १ ठाणुं ३ पाटणमध्ये

पं । लब्धिविजय ग । वृद्धश्रीजीसत्क वडोदरुं १

पं । वृद्धिविजय ग । प । ज्ञानस । अस्मत्पार्श्वे[7]

पं । रूपानन्द ग । रायपुर १ ठा. ७ राजनगरमध्ये

पं । धनविजय ग । उ । श्रीविनीतस । इलमपुर १

पं । नित्यविजय ग । श्रीजीसत्क लघुमरुदेश

पं । गंगविजय ग । श्रीजीसत्क मेवाडदेश

पं । गंगविजय ग । पं । हेमसत्क गंगेर १

पं । मानविजय ग । श्रीजीसत्क अस्मत्पार्श्वे

पं । सोहविजय ग । श्रीजीसत्क इदलपुर १ ठा. २ राजनगरमध्ये

पं । जीवविजय ग । पं । ज्ञानसत्क अस्मत्पार्श्वे

पं । विनयविजय ग । वृद्धश्रीजीसत्क ब्यारा १ ब्यालोल २

पं । प्रेमविजय ग । लघुवृद्धश्रीजीसत्क धणोज १ पांचोट २

पं । भीमविजय ग । पं । सुखविजय स । सोरठदेशे दीव १

पं । क्षिमाविजय ग । } उ । श्रीरत्न स । राजनगर १
पं । सुमतिविजय ग । }

पं । कर्पूरविजय ग । पं । सत्य स । वीसलपुर १ ठा. ४ पाटणमध्ये रसूलपुर २ हलदपुर ३

पं । दीपविजय ग । पं । कनक स । उसमापुर १ गोझज २

पं । जिनविजय ग । पं । कीर्ति स । नडीयाद १ पंडोल २

प । गुणविजय ग । उ । श्रीजीसत्क सरखेज १

प । दानविमल ग । पं । चन्द्रसत्क कच्छदेश भजनगर १

पं । रूपविमल ग । पं । कान्तिविमल स । सोरठदेशे नवुंनगर १

पं । देवविजय ग । पं । नामिविजय स । श्रीजीसत्क महिसाणो १ पालोद्र २

पं । गौतमसोम ग । अहम्मदपुर १

पं । वीरचंद्र ग । पं । विशेषसत्क वणोद १ धनेरां २

---

१ 'भ ।' एटले भट्टारक २ 'ज्येष्ठस्थिति' चातुर्मास. ३ 'पं ।' पंडित अथवा पन्यास. ४ 'उ' उपाध्याय. ५ 'ग ।' गणी. ६ 'स । =' सत्क = तेना शिष्य. ७ आचार्यनी पासे

पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । हर्षसत्क सोरठदेश घोघाबंदिर १

पं । न्यानविजय ग । उ । श्रीदेवसत्क । चाणीपुर १ सकंदरपुर २

पं । मयाचन्द्र ग । प । कपूर स । थिराद्र १

पं । भक्तिचन्द्र ग । उ । श्रीधर्मसत्क मावड १ गोठडा २

पं । मेरुविजय ग । उ । श्रीमेघसत्क मेवाडदेश

पं । पुण्यविजय ग । वृद्धसीजीसत्क वजीरपुर १

पं । नयविजय ग । उ । श्रीउदयसत्क वांकानेर १ चूडाराणपुर २

पं । चतुरविजय ग । पं । ऋद्धिसत्क दशाडो १ कलाडो २ लोलाडो ३

पं । मेघविजय ग । पं । अमरसत्क । इडर १

पं । देवचन्द्र ग । प । तेज स । फुरमांनवाडी १

पं । मोहनविजय ग । प । रूपसत्क वडनगर १

पं । रत्नविजय ग । पं । दयासत्क वीरमगाम १ भोजुआ २

पं । प्रतापविजय ग । पं । प्रेमसत्क तेरवाडु १ भलगाम २

पं । चंद्रविजय ग । प । मान स । चंदूर १

पं । कमलविजय ग । पं । केसर स । घारज १

पं । प्रमोदचन्द्र ग । प्रांतिज १

पं । दोलतिसागर ग । प । लाभसत्क स्याणी १ भोईकु २

पं । प्रीतिविजय ग । पं । अनंतसत्क वडालवी १ टा. २ थानवास पाटणमध्ये.

पं । कल्याणवर्धन ग । प । धीरसत्क पाटडी १ वजाणु २

पं । केसरविजय ग । पं । जय स । विपन्नचलाने कुणघर १

पं । महिमाविजय ग । प । रवि स । हरसोर १

पं । विवेकविजय ग । पं । रंग स । सेभर १

पं । भक्तिसुंदर ग । पं । पुण्यसत्क पाटणमध्ये थानवास

पं । नरविजय ग । उ । श्रीविनयसत्क राजपुर १

पं । कुंअरविमल ग । कडी १ करण २

पं । केसरविमल ग । पं । दीप स । पचासर १

पं । देवविजय ग । पं । नित्यसत्क सिद्धपुर १

पं । केसरकुशल प । न्यायकुशल ग । शांतलपुर १

पं । रत्नविजय ग । पं । लब्धिसत्क मरु अच्छ १

पं । गुलालविजय ग । पं । गुणसत्क गंधार १ जंबुसर २

पं । लालचंद्र ग । पं । जिन स । सानली १

पं । जीवणचंद्र ग ।
पं । दानचंद्र ग । } पं । तेज स । पाटणमध्ये

पं । केसरविजय ग । पं । लक्ष्मी स । लाडोल १ बीजापुर २

पं । पुण्यविजय ग । पं । रंगसत्क डीसा १ झेरडो २

पं । हर्षविजय ग । पं । गुणसत्क नंदु पुरु १

प । तत्त्वविजय ग । उ । श्रीउदयसत्क वाराही १ कोरडा २

प । अमरविजय ग ।
प । राजविजय ग । } पं । सुमति स । पाल्हणपुर १ वगदा २

पं । हस्तिविजय ग । उ । श्रीलक्ष्मीसत्क वडाली १ खेड २

प । कृष्णविजय ग । पं । रूपसत्क मालणा १ मगरवाडा २

पं । मेघविजय ग । पं । रूपसत्क चाणसमो १

प । खिमाविजय ग । उ । श्रीविमल स । आसाइल १

पं । मेघविजय ग । पं । प्रेमसत्क पाटणमध्ये

पं । जीवविजय ग । प । नित्य स । दहीयद्र १ सुमणाल २

प । भाग्यचंद्र ग । प । सभासत्क डुगरेज १

प । कल्याणसुंदर ग । पं । महिमा स । खभायत १

प । अमृतविजय ग । पं । उत्तम स । वेड १ राफु २

पं । न्यानविजय ग । पं । धीरसत्क । राजनगरमध्ये

पं । सुमतिविजय ग । प । रूपसत्क । मारवार १

पं । रंगविजय ग । पं । ज्ञान स । बलोड १

प । नित्यविमल ग । पं । विनीत स । वलासणो १

प । तीर्थसुंदर ग । वावड १

प । जिनविजय ग । पं । ज्ञान स । मोडासो १

प । नामिविजय ग । पं । तिलक सत्क । कंबोई १

प । उदयविजय ग ।
प । रत्नविजय ग । } उ । श्रीनय स । वासा १

पं । देवविजय ग ।
पं । अमरविजय ग । } प । नित्य स । मांडल १

पं । दानविजय ग ।
प । लालविजय ग । } पं । लब्धिस । राजनगर मध्ये

पं । सहिविजय ग । पं । नित्य सत्क । सेषपुर १
पं । लाभविजय ग । प । कुंअर सत्क । थिरा १ रांणकपुर २
पं । भाणविजय ग । पं । मेघसत्क सांहीगांम १
पं । न्यानसागर ग । पं । वृद्धिसत्क । आगलोड १
पं । चतुरसागर ग । पं । उत्तम स । गोला १
पं । सुंदरचंद्र ग । प । उत्तम स । देत्रोज १
पं । लालविजय ग । पं । कुंअर स । बैणप १ सुनन २
पं । चन्द्रविजय ग । पं । भक्ति स । गोधावी
पं । रूपविजय ग । पं । माणिक्य सत्क । समुं १ गनेर २
पं । सुंदरविजय ग । पं । कृष्णसत्क । नदासण १
प । प्रतापविमल ग । प । दान स । कच्छदेश भजनगमध्ये
पं । रंगविजय ग । पं । केसर स । वारेजा १
पं । न्यायसागर ग । पं । उत्तम स । प्रेमापुर १
पं । राजविजय ग । प । प्रेम स । काजीपुरा १
प । रूपविजय ग । प । वृद्धि स । डभोई १
प । देवविजय ग । प । दीप स । सीहपुर १
पं । सुर्वाविजय ग । वृद्धश्रीजी स । थानवासू पाटणमध्ये
पं । मानविजय ग । पं । चंद्रसत्क कवोई सोलकीनी १
प । जयविजय ग । ऋ । विनय स । नागवु १ दूधका २
प । जिनविजय ग । प । उत्तम स । ऊंमता १
प । खिमाविजय ग । प । नित्य स । मुंडदु १ फोरणा २ वातिम २
पं । धनसागर ग । पं । ललित स । वसुं १
प । आणंदविजय ग । श्रीजी स । राजनगरमध्ये थानवासू
पं । दर्शनविजय ग । प । केसर स । निजामपुर १
पं । रूपविजय ग । ऋ । हस्तिसत्क थालकु १
प । उत्तमविजय ग । ऋ । विनय स । हारेज १
पं । सुजाणविजय ग । पं । रूप स । आंत्रोली १
पं । रत्नविमल ग । पं । वर्धमान स । अहमदनगर १
पं । सुखविजय ग । पं । महिमा स । सेरीसुं १
पं । प्रीतिविजय ग । पं वृद्धि स । फेदरा १
पं । कृष्णविजय ग । पं । ऋद्धि स । पीर भडीयाद १
प । पुण्यविजय ग । पं । थिर सत्क । लीछ १
पं । जीवसागर ग । पं । गंग स । वावि १ दांमु २
पं । गजविजय ग । ऋ । जीव स । छठीयाडुं १
पं । ऋद्धिविजय ग । पं । प्रेम स । रणोद १
पं । प्रेमविजय ग । पं । प्रेम स । मणोद १
पं । जीवणचंद्र ग । श्रीचद्र स । ठा. २ पाटणमध्ये
प । मानविजय ग । प । तेज स । मातर १
पं । केसरविजय ग । पं हेम सत्क । दांता १
पं । भक्तिचंद्र ग । पं । मयाचंद्र स । घेरालु १
पं । धनविजय ग । हस्तिसत्क । कवीरपुर १
प । कृष्णविजय ग । पं । प्रीति स । चीलोडुं १
ऋ । गौतमविजय श्रीजीसत्क गोढवाडदेशे
ऋ । चेलो । प । पुण्यसत्क । थानवासू पाटणमध्ये
ऋ । कृष्णविजय पं । चंद्रसत्क अंवासण १
ऋ । लब्धिविजय । पं । दीप सत्क । विठ्ठलापुर १
ऋ । हस्तिविजय । उ । श्रीनयसत्क । राजनगरमध्ये ठा. १
ऋ । हंसविजय । प । वृद्धि स । ओदरा १
ऋ । धनविजय । ऋ । चांपा स । पाषल १
ऋ । भाग्यविजय । पं । जिन स । वसही १
सा । गोकलश्री ठा. १ शेषपुरमध्ये ठा. १
सा । जीवी राजनगरमध्ये

॥ अत्रोद्धरित क्षेत्रादि सत्यापना अस्माभिरेव विधेयेति ॥

॥ समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपरं । पट्टाप्रमाणैं सहु पोता पोताने आदेशे पुहचयो । मर्यादा पट्टक मुक्यो छे ते प्रमाणे प्रवर्तयो । ए अणविचार्यु चालस्ये ते उपालंभ पामस्ये । बीजुं गृहस्थ सघाते चढी बोलवुं नहीं । गृहस्थोनो मन ठाम राखवुं । लौकिक व्यवहार विशेषे राखवुं । चोमासा मांहे किहांई जावुं आववुं नहीं ते समझी सावधानपणें प्रवर्तवुं ॥

---

१ सा । एटले साध्वी—गुरुणी.

पट्टक २

आ पट्टक संवत् १८२८ नी सालमां लखायलो छे ते वखते आचार्य विजयधर्मसूरी गादी उपर हता. ए पट्टकनी लंबाई ३ फीट २ इंच अने पहोळाई ६½ इंच छे. एमांदर १२३ पंक्तिओ छे.

सही

ॐ नत्वा भ । श्रीविजयदयासूरीश्वरगुरुभ्यो नमः ।

संवत् १८२२ वर्षे भ । श्री श्रीविजयधर्मसूरिभिर्ज्ये-ष्ठस्थित्यादेशपट्टको लिख्यते । श्रीगुर्जरदेशे ।

पं । हेमविजय ग । श्रीजीसपरिकराः वृद्धमरुदेशे ।

पं । शान्तिविजय ग । पं । लब्धि स । पादरो १ मुंजपुर २ मानपुर ३

पं । हितविजय ग । उ । श्रीशुभ स । वीसलनगर १ सिद्धपुर २ कडा ३ जासका ४ देणप ५

पं । राजविजय ग । पं । हर्ष स ।
पं । इन्द्रविजय ग । पं । राज स
} कच्छदेशे

पं । नेमविजय ग । पं । खिमा स ।
पं । न्यायविजग ग । पं । नेम स
} पाटण १ कुणगिर २

पं । विनीतविजय ग । पं । प्रेम स । मालण १ गोला २ वासणा ३

पं । रंगविजय ग । पं । उदय स । ईलोल १ वघनापुर २

पं । हर्षविजय ग । पं । विवेक स । मेसाणा १ सामेतरा २

पं । मोहनविजय ग । पं । सुमति स । वावि १ माढकुं २

पं । सामलचंद्र ग । पं । लाल स । वसु १ चांगा २ मयादर ३

पं । मोहनविजय ग । पं । प्रताप स । उमता १

पं । लब्धिविजय ग । पं । लाभ स । कोलीनी कंबोई १

पं । दर्शनविजय ग । पं । देव स ।
पं । कान्तिविजय ग । पं । दर्शन स
} ईडर १ पाल २

पं । रत्नविजय ग । उ । श्रीशुभ स । मगरवाडा १ वडगाम २

पं । भाणविजय ग । पं । प्रेम स । दक्षणदेशे

पं । भक्तिविजय ग । पं । नय स । राधनपुर १ कमालपुर २

पं । विवेकविजय ग । पं । कृष्ण स । असावुल नवोवास १

पं । कुशलविजय ग । पं । मान स । वीजापुर १ अहम्मदनगर २ कडली ३

पं । अमृतविजय ग । पं । भाण स । मोहनपुर १ रणासण २ पीपलदल ३ करबटिआं ४

पं । मोहनविजय ग । पं । हंस स । सोरठदेशे भावनगर १

पं । शान्तिविजय ग । पं । कृष्ण स ।
पं । जसविजय ग । पं । विवेक स
पं । कान्तिविजय ग । पं । लाल स
} राजनगर १ गोधावी २ रायपुर ३

पं । गणेशरुचि ग । पं । हीरस । अस्मत्पार्श्वे

पं । दीपविजय ग । पं । राज स ।

पं । जयविजय ग । पं । दीप स । दसाडो १ वजाणा २

पं । गजविजय ग । पं । गंग स ।
पं । हंसविजय ग । पं । गज स ।
} वढवाण १ सीहाणी २ चूडा ३

पं । सुजाणविजय ग । पं । शान्ति स । वडोदरो १

पं । कृष्णविजय ग ।
पं । जसविजय ग ।
} पं । रंग स । शांतिलपुर १ वहुआ २

पं । देवविजय ग । पं । विनीत स । मीयागाम १ ईश्वर २ वलण ३

पं । शुभविजय ग । पं । मान स ।
पं । कनकविजय ग । पं । शुभ स ।
} पिटलाद १ ओतराली २

पं । शान्तिविजय ग । पं । उदय स । आगलोड १

पं । जयविजय ग । पं । सुंदर स । द्रापरा १

पं । भक्तिविजय ग । पं । कांति स ।
पं । कुशलविजय ग । पं । राज स
} पाल्हणपुर १ वगदा २

पं । मोहनविजय ग । पं । उत्तम स । वलासणो १

पं । जीतवर्धन ग ।
पं । सकलवर्धन ग
} पं । कल्याण स । वीरमगाम १ मांडल २

पं । केसरसोम ग । पं । धन स । विहारा १ वालोल २

पं । उत्तमविजय ग । पं । जिन स ।
पं । सुजाणविजय ग । पं । प्रेम स ।
पं । भाणविजय ग । पं । सुमति स ।
} सुरति १

पं । उदयसागर ग । पं । न्याय स ।
पं । रत्नकुशल ग । पं । विनीत स ।
पं । न्यायकुशल ग । पं । रत्न स ।
} लीमडी १ अंचवालिउं २

पं । नायकविजय ग । पं । गुण स । कोठ १ गांगड २

पं। जीवविजय ग। पं। सुख स। देकावाडो १ सेदातपुरो २ छणियार ३

पं। मोहनविजय ग। पं। गुलाल स। सोवनगढ १ बुहारी २ धुंटाडिओ ३ पारणे हजुर आववुं*

पं। प्रेमविजय ग। पं। शुभ स। वडनगर १ गुंजा २ उंझा ३

पं। प्रमाणविजय ग। पं। पुण्य स। नेसडा २ आंगणवाडो ३

पं। मानविजय ग। } पं। जिन स। मेवाडदेशे
पं। खुस्यालविजय ग। } उदयपुरमध्ये

पं। माणविजय ग। पं। राम स। लांवणोज १ खेषला २

पं। सुबुद्धिविजय ग। पं। रूप स। हेवदपुर १

पं। खुस्यालचन्द्र ग। पं। भाग्य स। } कूअर १
पं। खुस्याल विजय ग। श्रीजी स } राफु २

पं। चतुरविजय ग। पं। मेघ स। खंभायत १ वटादरो २ नानोदरो ३

पं। रत्नविजय ग। पं। पुण्य स। वेणप १ उचोसण २ थिराद ३

पं। विनीतविजय ग। पं। नेम स। } समी १
प। माणिक्यविजय ग। पं। विनीत स } चंदूर २
दूधषा ३

पं। इन्द्रसोम ग। पं। गौतम स। कुकुआव १

पं। मानविजय ग। उ। श्रीरूप स। डभोई १ कारवण २

पं। खुस्याल विजय ग। पं। नेम स। } चाणसमो १
पं। उमेद विजय ग। पं। वृद्धि स। } रामपुरो २

पं। हस्तिविजय ग। प। रंग स। थाषा १ धनेरा २

पं। प्रतापविजय ग। पं। लक्ष्मी स। } थिरा १
पं। अमृतविजय ग। पं। प्रताप स। } काकर २

पं। रत्नचंद्र ग। पं। सुगाल स। चिलोरा १

पं। न्यानविजय ग। पं। प्रमोद स। कडी १ डांगरवु २ षडसमुं ३

पं। कपूरविजय ग। पं। अमर स। द्रांगधरो १

* चोमासुं पूरे थया बाद आचार्यपासे आववुं.

पं। अमीविजय ग। पं। माणिक्य स। छठियाडो १ धीणोज २ वणवा ३

पं। अमरविजय ग। पं। सुख स। दक्षणदेशे

पं। उदयचंद्र ग। पं। भक्ति स। डीसा १ झरडा २ राजपुर ३

पं। नयविजय ग पं। राम स। धोता १ सकलाणा २ मेता ३

पं। विवेकविजय ग। पं। ऋद्धि स। मुंडेठा १

पं। ज्ञानविजय ग। पं। लक्ष्मी स। साचोर १

प। प्रतापचन्द्र ग। पं। दान स। } सावली १
पं। भावचंद्र ग। पं। दोलत स } जामला २

पं। उत्तमविजय ग। } पं। सुमति स। दक्षणदेशे
पं। भानविजय ग। }

पं। कुंअरविजय ग। पं। गज स। ईटोलो १ अनस्तू

पं। धनविजय ग। पं। माणिक्य स। } वाराही १ कोरडा २ धोलकडुं ३
पं। क्षमारुचि ग। पं। गणेश स। }

पं। जीवणविजय ग। पं। लाल स। मातर १

पं। सोभागविजय ग। } पं। चंद्र स। पाटडी १
पं। अमृतविजय ग। }

पं। जयसागर ग। पं। न्याय स। राजपुर १

पं। डुंगरविजय ग। पं। मेघ स। वरण १

पं। अमृताविजय ग। पं। भाण स। वेडि १

पं। जिनविजय ग। पं। कल्याण स। पेढामली १

पं। माणिक्यविजय ग। पं। जिन स। हणादरु १ देलवाडो २

पं। हर्षविजय ग। पं। कृष्ण स। वोहरा कठोर १ कांवलेज २

पं। धीरसागर ग। पं। न्याय स। नवसारी १

पं। विवेकविजय ग। पं। रत्न स। भरुअच्च १

पं। षिमाविजय ग। पं। पुस्याल स। लींच १ नंदासण २

पं। भीमविजय ग। पं। रंग स। रानेर कोलीनी १

पं। विवेकाविजय ग। पं। न्यान स। गांभू १

पं। बुद्धिविजय ग। प। मोहन स। बडावली १

पं । केसरविजय ग । पं । विनीत स । लूणपूर १ भीमाण २
पं । कस्तूरविजय ग । पं । न्यान स । आमोद १
पं । विनयचंद्र ग । पं । भक्ति स । मावड १ गोठडा २
पं । गुलालचंद्र ग । पं । सामल स । खेरालु १
पं । राजविजय ग । पं सुंदर स । झिणोर १ सांसरोद २
पं । माणिक्यविजय ग । पं । वृद्धि स । सांईगाम १ भाभर २ तेरवाडो ३
पं । जसविजय ग । पं । प्रताप स । गणोद मणोद २
पं । प्रेमविजय ग । पं । रूप स । फेदरा १ पींपली २
पं । हर्षचंद्र ग । पं । प्रमोद स । वडाली १ हापा २
पं । महिमा विजय ग । पं । हित स । राणकपूर १ भलगाम २
पं । राघवविजय ग । पं । लाल स । सांपरा १ सांकरा २
पं । दोलतविजय ग । पं । प्रेम स । षाषल १
पं । मतिविजय ग । पं । गज स । वातिम १ फोरणा २
पं । भाणविजय ग । पं । मेघ स । उंबरी १
पं । गुणविजय ग । पं । पुस्याल स । जामपुर १
पं । माणिक्य विजय ग । प । दीप स । धोलको १ कटोसण २
पं । जिनविजय ग । पं दर्शन स । गणाद् बहिः *
पं । वृद्धिविजय ग । पं । विनय स । पानसणा १ राणपूर २
पं । मोहनचंद्र ग । पं । उदय स । सीहपूर १
पं । लालविजय ग । पं । साधु स । गोलको १ अणवरपुरो २
पं । अनोपचंद्र ग । पं । अमी स । चांगा १
पं । केसरविजय ग । पं लाल स । दांता १ वमही २
पं । कांतिविजय ग । पं । जीवण स । षेमंत १ बुराल २ डाभला ३
पं । नायकविजय ग । पं । दीप स । सानेथ १ झझाम २

* समुदाय (गच्छ) बहार.

पं । विनीतविजय ग । पं । हित स । दक्षणदेशे जेसिंघपूर १
पं । कृष्णविजय ग । पं । षुस्याल स । पीलूचो १ चांदणसर २ डभाड ३
पं । षुस्यालविजय ग । पं । गज स । महवा १ सादडा २
पं । सुजाणविजय ग । पं । राम स । रानेर १ वसराई २
पं । रूपविजय ग । पं । गौतम स । समउ १
पं । जसविजय ग । पं । कांति स । वणोद १ पाडला २
पं । धर्मविजय ग । पं । थान स । पोसीणा १
पं । सहजरुचि ग । पं । वल्लभ स । सुरतिमध्ये
पं । रत्नविजय ग । ऋ । देव स । वामा १

अत्रोद्धरितक्षेत्रादिसत्यापना अस्माभिर्विधेयेति ॥

समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपर । सहु पट्टा प्रमाणइं पोतापोतानइं क्षेत्रादेशइं पुंहचयो । जे कोई पारका क्षेत्रमांहिं रहस्यइं तथा क्षेत्र आलटपालट करस्यइं तथा कोई क्षेत्र क्रयविक्रय करस्यइं तथा चोमासामांहिं कोइ किहांइ फिरस्यइं हिरस्यइं तथा कोइ गृहस्थोसुं चर्चा बोलस्यइं तो तेहनइं आकरो उपालंभ आवस्यइं । सर्वथा गुदरास्यइं नहीं । गुदरवा ज श्रीजीनी आण छइं । एहवु जाणी मर्यादामांहिं प्रवर्तवुं इति श्रेयःश्रेणयः ।

पट्टक ३

आ पट्टक २ फुट ११ लांबो अने ५¾ इंच पहोळो छे. लीटीओ एकंदर १२३ लखेली छे.

सही

ॐ नत्वा भ । श्रीविजयदयासूरीश्वरगुरुभ्यो नमः ।

संवत् १८१३ वर्षे भ । श्री श्रीविजयधर्मसूरिभिर्ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टको लिख्यते । श्रीगूर्जरदेशे ।

पं । हेमविजय ग । । श्रीजी सपरिकराः श्रीमरुदेशे
उ । श्रीराजविजय ग । पं । हर्ष स । } शांतलपुर १
पं । इंद्रविजय ग । उ । श्रीराजस । } वहुआ २
पं । शान्तिविजय ग । पं । लब्धि स । पावरो १ मुंजपुर २

पं । नेमविजय ग । पं । षिमा स । } पाटण १
पं । न्यानविजय ग । पं । नेम स । } कूणगिर २
पं । विनीतविजय ग । पं । प्रेम स । ईलोल १
पं । रंगविजय ग । पं । उदय स । ईडर १ जामला २
पं । हर्षविजय ग । पं विवेक स । वीजापुर १ लाडोल२
पं । मोहनविजय ग । पं । सुमति स । } वावि १
पं । बुद्धिविजय ग । पं मोहन स । } माढकुं २
पं । सामलचंद्र ग । पं । लाल स । गोला १ चांगा २ खेरालु ३
पं । मोहनविजय ग । पं । प्रताप स । उंमता १
पं । लब्धिविजय ग । पं । लाभ स । सांईगाम १
पं । दर्शनविजय ग । पं । देव स । } सावली १
पं । कांतिविजय ग । पं । दर्शन स । } वधनापुर २
पं । रत्नविजय ग । उ । श्रीशुभ स । पीलूचो १ चांदणसर २ डभाड ३
पं । भाणविजय ग । पं । प्रेम स । दक्षणदेश
पं । प्रसिद्धविजय ग । पं । हित स । } पाल्हणपुर १
पं । पद्मविजय ग । पं । माणिक्य स } बसु २ नगरा ३
पं । भक्तिविजय ग । पं । नय स । थिरा १ चांगा २
पं । विवेकविजय ग । पं । कृष्ण स । असाउल नवावास
पं । कुशलविजय ग । पं । मान स । आगलोड १ कडोली २
पं । अमृतविजय ग । पं । भाण स । वडाली १ अहम्मदनगर २ पेढामली ३
पं । मोहनविजय ग । पं । हंस स । सोरठदेश
पं । शान्तिविजय ग पं । कृष्ण स ।
पं । जसविजय ग । पं । विवेक स । } वीरमगाम १ मांडल २
पं । कांतिविजय ग । पं । लाल स
पं । गणेश रुचि ग । पं । हरि स । अस्मत्पार्श्वे
पं । दीपविजय ग । पं । राज स । } लीवडी १
पं । जयविजय ग । पं । दीप स । } अंकेवालिउ २
पं । देवविजय ग । पं । विनीत स । मीयागाम १ ईषर २ वलण ३

पं । गजविजय ग । पं । गंग स । } ध्रांगधरो १
पं । हंसविजय ग पं । गज स } चूडा २
पं । सुजाणविजय । पं । शान्ति स । वडोदरो १
पं । शुभविजय ग । पं । मान स । } राजनगर १
पं । कनकविजय ग । पं । शुभ स । } रायपुर २
पं । शांतिविजय ग । पं । उदय स । खेडि ब्रहमानि १
पं । जीतवर्धन ग । } पं । कल्याण स । दसाडो १
पं । सकलवर्धन ग । }
पं । जयविजय ग । पं । सुंदर स । गनेर १ कांवलेज २ कुंदियाणां ३
पं । कृष्णविजय ग । } पं । रंग स । कच्छदेशे
पं । जसविजय ग । }
पं । जीवविजय । पं । सुख स । कोठ १ गांगड २ नानोदरा ३
पं । भक्तिविजय ग । पं । कांति स । } राधनपुर १
पं । कुशलविजय ग । पं । राज स । } कमालपुर २ अणवरपुरो ३
पं । कमरसोम ग । पं । धन स । सोवनगढ १
पं । रत्नकुशल ग । पं । विनीत स । } वढवाण १
पं । न्यानकुशल ग । पं । रत्न स } सीहाणी २
पं । मोहनविजय ग । पं । उत्तम स । पीपलदल १ करवटिआ २
पं । उत्तमविजय ग । पं । जिन स ।
पं । सुजाणविजय ग । पं । राम स । } सुरति १
पं । हर्षविजय ग । पं । कृष्ण स ।
पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । सुजाण स । लालना मांडवा १
पं । नायकविजय ग । पं । गुण स । } नडियाद १
पं । भाणविजय ग । पं । सुजाण स । } मगुपेयज २
पं । मोहनविजय ग । पं । गुलाल स । विहारा १ मानपुर २
पं । मानविजय ग । पं । जिन स । } डभोई १
पं । सुजाणविजय ग । पं । प्रेम स । } कारवण २
पं । प्रमाणविजय ग । पं । पुण्य स । राणकपुर १ आंगणवाडो २

पं । षुस्यालविजय ग। पं । जिन स ।
पं । कस्तुरविजय ग। पं । षुस्याल स } आज्ञाप्रमाणें

पं । प्रेमविजय ग । पं । शुभ स । वडनगर १ थावड २ गुंझा ३ उंझा ४

पं । माणविजय ग । पं । राम स । धीणोज १ लूणवा २

पं । षुस्यालचंद्र ग । पं । भाग्य स ।
पं । षुस्यालविजय ग । श्रीजी स } वाराही १ सोनेथ २ झझाम ३

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । रूप स । हेम्वदपुर १

पं । चतुर विजय ग । पं । मेघ स । धोलको १ चि-लोरा २ वटादर ३

पं । विनीतविजय ग । पं । नेम स ।
पं । माणिक्यविजय ग । पं । विनीत स } चाणसमो १ कटोसण २ रामपुरा ३

पं । रत्नविजय ग । पं । पुण्य स । गोत्रको १ राफू २

पं । षुस्यालविजय ग । पं । नेम स ।
पं । उमेदविजय ग । पं । वृद्धि स } समी १ चदूर २ टुंभषा ३

पं । मानविजय ग। उ । श्री रूप स । वोहरा कठोर १ वसराई २

पं । प्रतापविजय ग। पं । लक्ष्मी स ।
पं । अमृतविजय ग पं । प्रताप स } भाभर १ वेणप २ उन्चासण ३

पं । हस्तिविजय ग । पं । रंग स । लूणपुर १

पं । इंद्रसोम ग। पं । गौतम स ।
पं । षुस्यालविजय ग। पं । गज स । } द्रापरो १ मह-वासादूडा २

पं । रत्नचंद्र ग । पं । मुगाल स । गोभानी

पं । न्यानविजय ग । पं । पमोद स । कडी १ सेदात-पुरो २ लाधणोज ३

पं । कपूरविजय ग । पं । अमर स । फेदरा १ पीपली २

पं । अमीविजय ग । पं । माणिक्य स । सिद्धपूर १ सीहपुर २

पं । अमरविजय ग । पं । सुख स
पं । देवविजय ग । पं । अमर स } दक्षणदेशे

पं । उदयचंद्र ग । पं । भक्ति स । डीसा १ झेरडा २ वरण ३

पं । धनविजय ग । पं । राम स । मावट १ गोटडा २

पं । नयविजय ग । पं । माणिक्य स ।
पं । क्षमारुचि ग । पं । गणेश स । } पाटडी १

पं । विवेकविजय ग । पं । रत्न स । भरुअच्च १

पं । उत्तमविजय ग ।
पं । भावविजय ग । } पं । सुमति स । दक्षणदेशे

पं । ज्ञानविजय ग । पं । लक्ष्मी स । साचोर १ थिराद २

पं । प्रतापचंद्र ग । पं । दान स ।
पं । भावचंद्र ग। पं । दोलत स । } वीसलनगर १ कडा २ जासका ३ देणपूर ४

पं । जयसागर ग । पं । न्याय स । राजपुर १

पं । कुंअरविजय ग । पं । गज स । झिणोर १ सांसरोद २

पं । शोभागविजय ग । पं । चंद्र स । वारेजो १

पं । जीवणविजय ग । पं । लाल स । देकावाडो १

पं । अमृतविजय ग । पं । चंद्र स । वणोद १ पाडला २

पं । डुंगरविजय ग । पं । मेघ स । जामपूर १ सांकरा २

पं । अमृतविजय ग । पं । भाण स । कोयडा १ धोलकडुं २

पं । जीवणविजय ग । पं । कल्याण स । हापा १

पं । षीरसागर ग । पं । न्याय स । नवसारी १

पं । उदयसागर ग । पं । न्याय स । वारेजो १

पं । विवेकविजय ग पं । ऋद्धि स । समउ १

पं । षिमाविजय ग पं । षुस्याल स । डांगरवु १ वडसमुं २

पं । रामसागर ग । पं । दोलत स । आंतरोली १

पं । भीमविजय ग । पं । रंग स । कोलीनी कंबोई १

पं । विवेकविजय ग । पं । न्यान स । गांभ १

पं । केशरविजय ग । पं । विनीत स । सांपरा १ वातिम २ फोरना ३

पं । कस्तुरविजय ग । पं । न्याय स । मानर १

पं । विनयचंद्र ग । पं । भक्ति स । मगरवाडो १ वड-गाम २ डाभला ३

पं । राजविजय ग । पं । सुंदर स । ईटोलो १ अनस्तू २

पं । माणिक्यविजय ग । पं । वृद्धि स । भेसाणा १ छठियाडो २ सामेतरा ३

पं । जसविजय ग । पं । प्रताप स । वडावली १

पं । प्रेमविजय ग । पं । रूप स । खंभायत १

पं । हर्षचंद्र ग । पं । प्रमोद स । वलसाणो १
पोशीणा २

पं । महिमाविजय ग । पं । हित स । रानेरकोलीनी १
घीमाणा २

पं । राघवविजय ग । पं । लाल स । रणोद १ मणोद २

पं । दोलतविजय ग । पं । प्रेम स ।
पं । गुणविजय ग । पं । खुस्याल स । } मुंडेठा १

पं । मतिविजय ग । पं । गज स । काकर १

पं । वृद्धिविजय ग । प । कांति स । मालण १
मासणा २

पं । भाणविजय ग । पं । मेळ स । वासा १ पाषल २

पं । माणिक्यविजय ग । पं । दीप स । पेटलाद १

प । जिनविजय ग । प । दर्शन स । गणाद बहिः

प । वृद्धिविजय ग । प । विनय स । राणपुर १
पानसणा २

पं । मोहनचंद्र ग । पं । उदय स । धोता १ सकलाणा
२ मेता ३ मयादर ४

पं । लालविजय ग । प । साधु स । कुअर १

पं । भाणविजय स । प । सुमति स । बुहारी १
पुंटाडिआ २

प । अनोपचंद्र ग । प । अमी स । नेसडाव २

पं । केसरविजय ग । पं । लाल स । दांता १ वसही २

पं । कांतिविजय ग । पं । जीवण स । धापा १
धनेरा २

पं । नायकविजय ग । पं । दीप स ।
पं । भवानविजय ग । पं । नायक स । } लींच १
नंदासणा २

पं । विनीतविजय ग । प । हित स । दक्षणदेशे

पं । कृष्णविजय ग । पं । खुस्याल स । वेडि १

पं । रूपविजय ग । पं । गौतम स । टेवरी १ अरणी-
वाडा २

पं । जसविजय ग । पं । कांति स । कुकुआवि १
छणियार २

पं । धर्मविजय ग । पं । थान स । हणाद १ देलवाडो २

पं । सहजरुचि ग । पं । वल्लभ स । सूरतिमध्ये

पं । रत्नविजय ग । ऋ । देव स । भलगाम १

**अत्रोद्धारितक्षेत्रादिसन्यापना अस्माभिर्विधे-
येति मं० ॥**

॥ समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपरं । सह पट्टा प्रमाणइं पोतापोताना नइं क्षेत्रादेशइं पुंहचयोजे कोई पारका क्षेत्रमाहि रहस्यइं तथा क्षेत्र आलट पालट करस्यइं तथा कोई क्षेत्र क्रय विक्रय करस्यइ तथा चोमासामांहिं कोइ किहांइ फिरस्यइं हिरस्यइं तथा कोई गृहस्थो सुं चढी बोलस्यइं तो नेहनइ आकरो उपालंभ आवस्यइं । सर्वथा गुदरास्यइं नहीं गुदरवाज ऋ जोनी आण छे । एहवुं जाणी मर्यादामें प्रवर्त्तवुं ।

——

पट्टक ४

आ पट्टक ३ फुट २ इंच लांबो अने ६½ पहोळो छे. पंक्ति संख्या १२६.

सही

॥ ॐ नत्वा भ श्रीविजयदयासूरीश्वर गुरुभ्यो नमः ॥ सं १८२४ वर्षे भ । श्री श्री विजयधर्म्मसूरिभिर्ज्येष्ठ स्थित्यादेशपट्टको लि ॥ श्री गुर्जरदेशे ॥

पं । हेमविजय ग । श्राजीसपरिकराः श्रीमरुदेशे ।

उ । श्रीराजविजय ग । हर्ष स ।
पं । इंद्रविजय ग । उ । श्रीराज स । } कच्छदेशे ।

पं । नेमविजय ग । पं । खिमा स ।
पं । ग्यानविजय ग । पं । नेम स ।
पं । विनीतविजय ग । पं । प्रेम स । } पाटण १ कुणगिर २ आगलोड १

पं । रंगविजय ग । पं । उदय स । वीसलनगर १ कडा
२ जासका ३ देणप ४

पं । हर्षविजय ग । पं । विवेक स । साबली १ पीपल-
दल करबटिआ २

प । मोहनविजय ग । पं । सुमति स ।
पं । बुद्धिविजय ग । पं । मोहन स । } वावि १ माढकुं २

पं । सुजाणविजय ग । पं । शांति स । वडोदरो १

थापरो २ मुंजपुर ३

पं । लब्धिविजय ग । पं । लाभ स । उच्चोसण १

पं । सामलचंद्र ग । पं । लाल स । मालण १ गोला २

पं । रत्नविजय ग । उ । श्री शुभ स । मगरवाडो १ वडगाम २

पं । भाणविजय ग । पं । प्रेम स । दक्षणदेशे

। प्रसिद्धविजय ग । पं हित स ।
। पदमविजय ग । पं । माणिक्य स। राधनपुर १ राफू २ कमालपू ३

पं । विवेकविजय ग । पं । कृष्ण स । असाउल नवावास १

पं । भक्तिविजय ग । पं । नय स । पाल्हणपुर १ वगदा २ मेता ३ मयादर ४

पं । कुशलविजय ग । पं । मान स । वीजापुर १ थावड २

पं । अमृतविजय ग । पं । माण स । ईडर १

पं । मोहनविजय ग । पं । हंस स ।
पं । शुभ विजय ग । पं । मान स ।
प । कनकविजय ग । पं । शुभ स । राजनगर १ रायपुर २ गोधावी ३

पं । गणेशरुचि ग । पं । हरि स । अस्मत्पार्श्वे

पं । शांतिविजय ग । पं । कृष्ण स ।
पं । जसविजय ग । पं । विवेक स ।
पं । कांतिविजय ग । पं । लल स । पाटडी १ बज्जाणू २

पं । देवविजय ग । पं । विनीत स । डभोई १ कारवण २

पं । दीपविजय ग । पं । राज स ।
पं । जयविजय ग । पं । दीप स । वीरमगाम १ भोज्जुआ २

पं । शांतिविजय ग । पं । उदय स । वडावली १ गांभू २

पं । गजविजय ग । पं । गंग स ।
पं । हंसविजय ग । पं । गज स । वढवाण १ सीहाणी २

पं । जयविजय ग । पं । सुंदर स । रानेर १ कांबलेज २ कुंदियाणो ३

पं । जीतवर्धन ग । पं । कल्याण स । कुकुआव १

पं । सकलवर्धन ग । पं । कल्याण स । मांडल १

पं । कृष्णविजय ग । पं । जसविजय ग । पं । रंग स । कच्छदेशे १

पं । जीवविजय ग । पं । सुख स । कोठ १ गांगड २ नानोदरो ३

पं । भक्तिविजय ग । पं । कांति स ।
पं । कुशलविजय ग । पं । राज स । वाराही १ कोरटा २ धोलकडुं ३

पं । केसरसोम ग । पं । धन स । विहारा १ कानपुरो २

पं । रत्नकुशल ग । पं । विनीत स ।
पं । ग्यानकुशल ग । पं । रत्न स । लींबडी १ अंघेवालिउं २

पं । मोहनविजय ग । पं । उत्तम स । जामला १

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । सुजाण स । आंतरोली १ लालना मांडवा २

पं । उत्तमविजय ग । पं । खुस्यालविजय ग । पं । जिन स ।
पं । सुजाणविजय ग । पं । प्रेम स ।
पं । सुजाणविजय ग । पं । राम स । सूरति १ हरिपुरो २

पं । भाणविजय ग । पं । गुण स ।
पं । नायकविजय ग । नडियाद १

पं । मोहनविजय ग । पं । गुलाल स । गणाद् बहिः

पं । मानविजय ग । पं । जिन स ।
पं । राजविजय ग । पं । सुंदर स । पादरो १ ग्वासद २

पं । प्रमाणविजय ग । पं । पुण्य स । समउ १

पं । प्रेमविजय ग । पं । शुभ स । वडाली १ पेढामली २

पं । भाणविजय ग । पं । राम स । रणोद १ मणोद २

पं । खुस्यालचंद्र ग । भक्ति स ।
पं । खुस्यालविजय ग । श्री जी स । चाणसमो १ रामपुरो २

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । रूप स । हेब्बदपूर १

पं । चतुरविजय ग । पं । मेघ स । खंभायत १ वटादरो २

पं । विनीतविजय ग । पं । नेम स ।
पं । माणिक्यविजय ग । पं । विनीत स । समी १ चदूर २ दूधषा ३

पं । रत्नविजय ग । पं । पुण्य स । वेडी १ अणवरपुरो २

पं । खुस्यालविजय ग । पं । नेम स । } मेसाणो १
पं । उमेदविजय ग । पं । वृद्धि स } छटियाडो २ सामेतरा ३

पं । हस्तिविजय ग । पं । रंग स । नेसडाबे १

पं । मानविजय ग । उ । श्रीरूप स । बुहारी १ धसराई २ धुंटाडिओ ३

पं । प्रतापविजय ग । पं । लक्ष्मी स । } सोईगाम १
पं । अमृतविजय ग । पं । प्रताप स । } बेणप २

पं । रत्नचंद्र ग । पं सुगाल स । मातर १ बारेजो २

पं । इंद्रसोम ग । पं । गौतम स । } मीयागाम १
पं । खुस्यालविजय ग । पं । गज स । } ईश्वर २ नलण ३

पं । कपुरविजय ग । पं । अमर स । चूडा १ राणपुर २

पं । ग्यानविजय ग । पं । प्रमोद स । कडी १ छणीयार २ कटोसण ३ लांघणोज ४

पं । अमीविजय ग । प । माणिक्य स । वडनगर १ घोता सकलाणा २

पं । अमरविजय ग । प । सुख स । } दक्षणदेशे
पं । देवेंद्रविजय ग । पं । अमर स । }

पं । उदयचंद्र ग । पं । भक्ति स । डीसा १ झेरडा २ राजपुर ३

पं । नयविजय ग । पं । राम स । सीहपुर १

पं । धनविजय ग । पं । माणिक्य स । ध्रांगधरा १

पं । क्षमारुचि ग । पं । गणेश स । कूअर १

पं । विवेकविजय ग । पं । ऋद्धि स । रानेर कोलीनी १ वातिम २ फोरणा ३

पं । उत्तमविजय ग । } पं । सुमति स ।
पं । भावविजय ग । } दक्षणदेशे ।

पं । मोहनविजय ग । पं । प्रताप स । उंमता १

पं । ज्ञानविजय ग । पं । लक्ष्मी स । साचोर १ थिराद २

पं । प्रतापचंद्र ग । पं । दान स । } सिद्धपुर १
पं । भावचंद ग । पं । दोलत स । } लालपुर २

पं । जयसागर ग । पं । न्याय स । राजपुर १

पं । कुंअरविजय ग । पं । गज स । ईटोलो १ महेवासावडा २ अमरसु ३

पं । अमृतविजय ग । पं । भाण स । सांपरा १ सांकरा २

पं । हर्षविजय ग । पं । कृष्ण स । वोहरा कठोर १

पं । सोभाग्यविजय ग पं । चंद्र स । नंदासण १

पं । जीवणविजय ग । पं । लाल स । सेदातपुरो १

पं । डुंगरविजय ग । पं । मेघ स । उंबरी १ अरणीवाडो २

पं । अमृतविजय ग । पं चंद्र स । दकावाडो १

पं । भीरसागर ग । पं । न्याय स । धोलको १

पं । विवेकविजय ग । पं । रत्न स । भरुअच्च १

पं । गुलालचंद्र ग । पं । सामल स । खेरालु १

पं । कांतिविजय ग । पं । दर्शन स । ईलोल १ हापा २

पं । जीवणविजय ग । पं । कल्याण स । अहमदनगर १

पं । खिमाविजय ग । पं । खुस्याल स । लींच १

पं । रामसागर ग । पं । दोलत स । दसाडो १

पं । भीमविजय ग । पं । रंग स । थिरा १

पं । विवेकविजय ग । पं । ग्यान स । धीणोज १ लूणवा २

पं । केसरविजय ग । पं । विनीत स । वरण १

पं । कस्तुरविजय ग । पं । ग्यान स । चिलोरा १

पं । विनयचंद्र ग । पं । भक्ति स । पीलूचो १ चांदणसर २ डभाड ३

पं । माणिक्यविजय ग । पं । वृद्धि स । भाभर १ आमपुर २ तेरवाडो ३

पं । जसविजय ग । पं । प्रताप स । संनिथ १ झझाम २

पं । प्रेमविजय ग । पं । रूप स । पेटलाद १

पं । हर्षचंद्र ग । पं । प्रमोद स । वखतापुर १

पं । महिमाविजय ग । पं । हित स । मुंडेठा १

पं । राघवविजय ग । पं । लाल स । राणकपुर १

पं । दोलतविजय ग । पं । प्रेम स । } काकर १
पं । खुस्यालविजय ग । पं । गुण स । } चीमाणा २

पं । मतिविजय ग । पं । गज स । वासा १ धावल २

पं । वृद्धिविजय ग । पं । कांति स । बसउ १ चांगा २

पं । मोहनचंद्र ग । पं । उदय स । मावड १ गोठडा २

पं । भाणविजय ग । पं । मेघ स । लूणपुर १

पं । माणिक्यविजय ग । पं । दीप स । वसुमेयज १

पं । जिनविजय ग । पं । दर्शन स । गणाद् बहिः
पं । वृद्धिविजय ग । पं । विनय स । फेदरा १ पीपली२
पं । लालविजय ग । पं । साधु स । गोत्रका १
पं । माणविजय ग । पं । सुमति स । झिणोर १ सांसरोद २
पं । कस्तुरविजय ग । पं । खुस्याल स । नवसारी १
पं । पुण्यसोम ग । पं । केसर स । सोवनगढ १
पं । मुक्तिविजय ग । पं । हस्ति स । दक्षणदेशे १
पं । अनोपचंद्र ग । पं । अमी स । भलगाम १
पं । कांतिविजय ग । पं । जीवण स । धाधा १ धनेरा२
पं । नायकविजय ग । पं । दीप स । } वणोद १
पं । भवाणविजय ग । पं । नायक स । } पाडला २
पं । विनीतविजय ग । पं । हिन स । दक्षणदेशे १
पं । कृष्णविजय ग । पं । खुस्याल स । दांता १ वसही२
पं । रूपविजय ग । पं । गौतम स । कोलीनी कंबोई १
पं । जसविजय ग । पं । कांति स । डांगरवुं १ बडसमुं २
पं । धर्म्मविजय ग । पं । भान स । हणाद १ पोसीणा२
पं । सहजरुचि ग । पं । वल्लभ स । सूरतिमध्ये १
पं । रत्नविजय ग । ऋ । देव स । चांगा १
पं । रंगचंद्र ग । पं । भक्ति स । वलासणो १

॥ अत्रोद्धरित क्षेत्रादि सत्यापना अस्माभिर्विधेयेति मंगलं ।

॥ समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपरं सहु पट्टा प्रमाणइं पोता पोतानइं क्षेत्रादेशइं पुंहचयो । जे कोई पारका क्षेत्रमांहि रहस्यइं तथा क्षेत्र आलट पालट करस्यइं तथा कोई क्षेत्र क्रयविक्रय करस्यइं तथा चोमासा मांहइं कोई किहां फिरस्यइं हिरस्यइं तथा कोई गृहस्थांसुं। चर्दा बोलसइं तो तेहनइं आकरो उपालंभ आवस्यइं। सर्वथा गुदारास्यइं नहीं । गुदरवाज अम्हनइं श्री श्री जी नी आणाछइं । एहवुं जाणी मर्यादामांहि प्रवर्तवुं ॥

पट्टक ५.

आ पट्टक ३ फुट १ इंच लांबो अने ६½ पहोळो छे. पंक्तिओ १३७.

सही

॥ॐ नत्वा भ । श्रीविजयदयासूरीश्वरगुरुभ्यो नमः॥

संवत् १८३७ वर्षे म । श्री श्रीविजयधर्मसूरिभिर्ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टको लिख्यते । श्रीगुर्जरदेशे ।

पं । देवविजय ग । पं । श्रीजी सपरीकरा राद्धनपुर १ वाराइ २ भीलोट ३ कमालपुर ४
पं । रामविजय ग । पं । रंग स । } चाणसमुं १
पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । राम स । } वडावली २ कंबोई सोलंकीनी ३
पं । नेमविजय ग । पं । हंस स । राजनगरमध्ये
पं । शान्तिविजय ग । पं । उदय स । वड १ राफू २
पं । रंगविजग ग । पं । ज्ञान स । } मेसाणा १
पं । शान्तिविजय ग । पं । रंग स । } भिणोज २
पं । हंसविजय ग । पं । सुजाण स । पाधरू १ अनस्तु२ ईषर ३
पं । शान्तिविजय ग । पं । कृष्ण स । } राजनगर १
पं । हेमविजय ग । पं । कपूर स । } रायपुर २ आसावल नवो वास ३
पं । न्यानविजय ग । पं । नेम स । वीसलनगर १ वडनगर २ गोठुआ ३
पं । जयविजय ग । पं । दीप स । वीरमगांम १ भोजुया२ गोरीआ ३ केसरडी ४
पं । भक्तिविजय ग । पं । कांति स । }
पं । कुशलविजय ग । पं । कृष्णविजय ग । पं । राज स । } पाल्हणपुर १ पीलुंचुं २ गावज ३ गोठडा ४ वगदा ५
पं । कल्याणविजय ग । पं । प्रसिद्ध स । } पाटण १
पं । सिवसुंदर ग । पं । उत्तम स । } कुंणगर २
पं । जिनविजय ग । पं । पदम स । } चिलोडुं ३
पं । देवविजय ग । पं । अमी स । } ठाणुं ४ अस्मत्पार्श्वे
पं । मोहनविजय ग । पं । नय स । }
पं । वृद्धिविजय ग । पं । देव स । } दशाडुं १
पं । पुण्यविजय ग । पं । भक्ति स । } कल्याडुं २
पं । उत्तमविजय ग । पं । सुमति स । सूरति १ नवसारी२

पं । मोहनविजय ग । पं । उत्तम स । आगलोड १

पं । सकलवर्धन ग । पं । कल्याण स ।
पं । विवेकवर्धन ग । पं । मेघ स । } वढवांण १ चुडा २ राणपुर ३

पं । मनरूपसागर ग । पं । अनन्त स । सावली १ वलासणु २

पं । जिनविजय ग । पं । कपूर स । दक्षणदेशे । गांधली १

पं । रत्नकुशल ग । पं । विनीत स ।
पं । न्यानकुशल ग । पं । रत्न स । } पाटडी १ वणोद २ पाडला ३

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । सुजाण स । नडीयाद १

पं । कनकविजय ग । पं । सुभ स । मीयां १ वलण २

पं । मानविजय ग । पं । जिन स । राजनगरमध्ये

पं । खुस्यालविजय ग । पं । जिन स । आमोद १

पं । पदमविजय ग । पं । उत्तम स । पाटणमध्ये

पं । भाणविजय ग । पं । रांम स । छठिआडुं १ लुंणवा २ सामेतरा ३ सदातपुरुं ४ वडसमुं ५ कडी ६ छर्णायार ७

पं । लालविजय ग । पं । रत्न स । लींवडी १ अंचेवालींउ २ पांनसणा ३ उंतलीउ ४

पं । कुशलविजय ग । पं । देव स । वसवावी १ ।

पं । हस्तिविजय ग । पं । कुशल स । गणाद्‍ बहिः ।

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । रुप स । हेवदपुर १

पं । खस्यालविजय ग । पं । श्रीजी स ।
पं । कल्याणचन्द्र ग । पं । खुस्याल स । } वाराही १ धोलकडुं २

पं । विनीतविजय ग । पं । नेम स ।
पं । माणिक्यविजय ग । पं । विनीत स । } समी १ दुधषा २ षाषल ३ भभाणा ४

पं । चतुरविजय ग । पं । मेघ स । पेटलाद १ वटादरुं २ वसु ३ पेयज ४

पं । मोहनविजय ग । पं । गुलाल स । गणाद्‍बहि १

पं । अमीविजय ग । पं । सुख स । थराद १ गेला २

पं । हंसविजय ग । पं । गज स । सिभपुर १ सीपुर २

पं । जिनविजय ग । पं । जय स । सोवनगढ १ दमण २ आगासी ३

पं । उमेदविजय ग । पं । वृद्धि स । वीजापुर १ लाडोल २

पं । पदमविजय ग । पं । उमेद स । मोहनपुर १ रणासण २

पं । हस्तिविजय ग । पं । रंग स । जांमपुर १ कसरा २

पं । हर्षविजय ग । पं । मोहन स । जासका १ उंमता २ देंणप ३

पं । मुक्तिविजय ग । पं । श्रीजी स ।
पं । डुंगरविजय ग । पं । मुक्ति स । } डभोई १ कारवण २

पं । प्रतापविजय ग । पं । लक्ष्मी स ।
पं । अमृतविजय ग । पं । प्रताप स ।
पं । गोविन्दविजय ग । पं । हेम स । } बेंणप १ कोरडा २

पं । अमीविजय ग । पं । रत्न स ।
पं । भाणविजय ग । पं । हंस स । } गोत्रकूं १ झझांम २

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । जीव स । द्रांगदरुं १ सायला २ शिष्य मेघविजय गाणाद्‍बहि

पं । खुस्यालविजय ग । पं । ऋद्धि स । टीकर १ घांटीलुं २

पं । मांनविजय ग । पं । दीप स । कच्छदेशे

पं । वृद्धिविजय ग । पं । सुजाण स । द्रापरो १ पाधरीओ २

पं । कपूरविजय ग । पं । अमर स । कोठ १

पं । नयविजय ग । पं । राम स । मेता १ मयादर २ वसु ३

पं । कस्तुरविजय ग । पं । मांन स । वोरा कठोर १ कुंदी आणुं २

पं । धनविजय ग । पं माणिक्य स । सोईगांम १ भरडुउं २

पं । रत्नविजय ग । पं । न्यान स । लींच १

पं । दर्शनविजय ग । पं । न्यान स । गणाद्‍बहि

पं । माणिक्यविजय ग । पं । मोहन स । पाटणमध्ये

पं । बुद्धिविजय ग । पं । मोहन स ।
पं । मेघविजय ग । पं । अस्मत्स । } वावि १ माडकुं २

पं । विवेकविजय ग । पं । ऋद्धि स । मुंडेठु १ लुणपुर २ छत्राला ३

पं । ज्ञानविजय ग । पं । लक्ष्मी स । साचोर १

पं । प्रतापचन्द्र ग । पं । दान स । } गणाद्बहि
पं । भावचंद्र ग । पं । दोलत स । }

पं । जसविजय ग । पं । कान्ति स । कटोसण १ वातिम २ फोरणा ३

पं । कुंअरविजय ग । पं । गज स । ग्वासद १

पं । हीरचंद्र ग । पं । गुलाल स । } ईडर १
पं । धीरजचंद्र ग । पं । हीरा स । } वेरालु २

पं । अमृतविजय ग । पं । भाण स । चंदूर १

पं । डुंगरविजय ग । } पं । मेघ स । उंबरी १
पं । भाणविजय ग । } काकर २

पं । नायकविजय ग । पं । विनय स । वषतापुर १ जामला २

पं । इन्द्रविजय ग । पं । अमृत स । वडाली १

पं । चन्द्रविजय ग । पं । उत्तम स । राजनगरमध्ये

पं । हर्षविजय ग । पं । जस स । भोलकुं १

पं । सोभाग्यविजय ग । पं । चंद्र स । डांगरवुं १

पं । प्रेमविजय ग । पं । भाण स । नानोदरुं १

पं । अमृतविजय ग । पं । चंद्र स । नंदासण १ लांघणोज २

पं । माणिक्यविजय ग । पं । सुबुद्धि स । आंतरोली १

पं । जीवणविजय ग । पं । लाल स । फेदरा १ पींपलींउं २

पं । प्रेमविजय ग । पं । दर्शन स । वागडदेशे

पं । कान्तिविजय ग । पं । दर्शन स । वागडदेशे

पं । अमृतविजय ग । पं । विवेक स । भरूअच्य १

पं । खिमाविजय ग । पं । षूस्याल । कुकुआवि १ देकावाडु २

पं । रूपसागर ग । पं । राम स । लालना मांडवा १ कटोदरू २

पं । विनयचंद्र ग । पं भक्ति स । वरण १ झीवाल २ प्राषा ३ घनेरा ४

पं । नायकविजय ग । पं । गुलाल स । द्यावड १

पं । वसंतविजय ग । पं । भाग्य स । मातर १

पं । माणिक्यविजय ग । पं । वृद्धि स । मोरवाडुं १ उन्द्योसण २ सोनेथ ३

पं । प्रतापविजय ग । पं । वृद्धि स । पंचार १

पं । रत्नविजय ग । पं । प्रेम स । षंभायत १

पं । महिमाविजय ग । पं । हित स । रानेर १ नेसडा २

पं । राजविजय ग । पं । सुंदर स । वडोदरूं १ ईटोलुं २

पं । जीवणविजय ग । पं । नायक स । अम्मदनगर १

पं । षूस्यालविजय ग । पं । प्रेम स । ईलोल १ कानडा २

पं । यसविजय ग । पं । प्रताप स । अणवरपुर १

पं । सोभाग्यविजय ग । पं । खिमा स । मोभासादडा १

पं । रविविजय ग । पं । विनीत स । समउं १ घीमाणा २

पं । दोलतविजय ग । पं । प्रेम स । } थिरा १
पं । गुणविजय ग । पं । षूस्याल स । } गोलीवाडुं २

पं । ज्योतिर्विजय ग । पं । रत्न स । दक्षिणदेशे

पं । भाणविजय ग । पं । केसर स । कुअर १

पं । वृद्धिविजय ग । पं । कान्ति स । मालण १ गोला २ वडगाम ३

पं । यसविजय ग । पं । कनक स । सोझींतरा १

पं । रूपविजय ग । प । षूस्याल स । मुंजपुर १

पं । हंसविजय ग । पं । जीवण स । षेडब्रहमानी १

पं । पुन्यसोम ग । पं केसर स । व्यारा १ कानपुरो २

पं । देविंद्रविजय ग । पं । हर्ष स । बुहारी १ घुटाडीओ २

पं । मतिर्विजय ग । पं । गज स । गणाद् बहि

पं । मोहनचंद्र ग । पं । उदय स । मगरवाडुं १

पं । पानाचंद्र ग । पं । उदय स । डीसा १ झेरडा २ राजपुर ३

पं । माणिक्यविजय ग । पं । दीप स । गांगड १ देवाडभो २

पं । जिनविजय ग । पं । दर्शन स । हरसोर १

पं । लालविजय ग । पं । माणिक्य स गांभु १

पं । वृद्धिविजय ग । पं । विनय स । गोधावी १

पं । भाणविजय ग । पं । सुमति स । झींणोर १

पं । भवानविजय ग । पं न्यायक स । मणोद १

पं । रामविजय ग । पं । विनीत स । रानेर १ वाक्रोल २

पं । गुणविजय ग । पं । प्रेम स । सांपरा १

पं । कृष्णविजय ग । पं । खुस्याल स । धोलासकलाणा १

पं । रूपविजय ग । पं । गौतम स । कंबोई कोलीनी १

पं । रविविजय ग । } पं । केशर स

पं । प्रेमविजय ग । } भाभर १

पं । वसंतविजय ग । पं । देव स । सांकरा १

पं । मानविजय ग । पं । रत्न स । पीपलडल १ कर-बटीउं २

पं । रत्नविजय ग । मु । देव स । तेरवाडु १

पं । मोहनसौभाग्य ग । प भाग्य स । आगणवाडुं १

पं । क्षिमारुचि ग । प । गणेश स । मांडल १

पं । भाग्यविजय ग । पं । यस स । बजाणु १

पं । मणिविजय ग । प । मान स । रणोज १

पं । सहजरुचि ग । प । वल्लभ स । सूरतमध्ये

पं । रामविजय ग । प । तेज स । सीहाणी १

प । ज्ञानसागर ग । प । उदय स । मालक १

प । हेमविजय ग । पं । भीम स । टांकणपुर १ भल-गांम २ चांगा ३

अत्रोद्धारितक्षेत्रादिसंस्थापना अस्माभिर्विधेयेति मङ्गलम् । ॥ समस्त साधु समुदाय याग्यं अपरं सह पट्टा प्रमाणे पोता पोताने क्षेत्रादेशे जई पोहचज्यो। जे कोई पारका क्षेत्र माहे रहस्ये तथा क्षेत्र आलटपालट करस्ये तथा कोई चोमासामाहि फरस्ये हरस्ये तथा कोई गृहस्थोस्यु चर्चा बोलस्ये तथा गच्छना कांम एकठा नहि थाइ तो आकरो उपालंभ आवस्ये । गुदरास्ये नही। सर्वथा जे गुदरवाज श्री श्रीजीनी आंग छे। एहवुं जाणि सर्व मर्यादामांहि प्रवर्तवुंज ॥

पट्टक ६.

आनी लंबाई ३ फुट अने पहोळाई ७½ छे. पं-क्तिओ पचंदर १३३.

सही

ॐ नत्वा ॥ भ श्री श्रीविजय धर्म्मसूरीश्वर गुरुभ्यो नमः । सं । १८६६ वर्षे ।

भ । श्री श्रीविजय जिनेंद्र सूरीभिर्येष्वास्थित्यादेश-पट्टकः लि । श्री गुर्ज्जरदेशे ॥

पं । दानविजय ग । श्रीजी सपरिकराः । भावनगर १ वरतेज २ दाठा ३

पं । खुशालविजय ग । वृद्धश्रीजी सं । पं । नायक विजय ग

उ । श्री खुस्यालस । थिरा १ आलमोठ २ कुशलपरो ३ तेरवाडो ३ चांगा ५

प । मोहनविजय ग । पं । नय स । पं । रूपविजय ग । प । राज स । गवनपुर १ कमालपुर २ भीलोट षाषल मांडवी ३

पं । उत्तमविजय ग । पं । सुमति स । पं । लाधाचंद्र ग । प । रंग स । सुंमर १ अगासी २ बाहिरको ३

पं । कृष्णविजय ग । प । राज स । पं । धनविजय ग । पं । भक्ति स । समी १ चद्रर २ दूधा धंधाणा ३

पं । वल्लभविजय ग । प । हित स । प । भावविजय ग । पं । हस स । मइयां १ वडोदरा २ इंटोले ३

पं । हेमविजय ग । श्री जी स । वडाली १ वषतापुर २

पं । राजवर्धन ग । पं । सकल स । प । वीरवर्धन ग । पं । जीत स । पं । खुस्यालवर्धन ग । पं । धर्म्म स । वढवाण १ चूडा २ राणपुर ३ साहेला ४

प । ललितविजय ग । प । चतुर्विजय ग । पं । मोती-विजय ग । पं । ग्यान स । विसलनगर १ कडा २ जासका ३ सीवाला ४ गोठवा ५ मालक ६ गुंजा ७ देणप ८ षरोडासगराडा ९

पं । माणिक्यविजय ग । प । विनीत स । पं । ज्ञान-विजय ग । पं । माणिक्य स। वेड १ राफु २

पं । डुगरविजय ग । पं । मुक्ति स । पं । विवेकविजय ग । पं । डुंगर स । सुरति १ नवसारी २

पं । रूपविजय ग । पं । पदम स । सोरठदेशे नवीनगर १

पं । रंगविजय ग । पं । अमृत स । भरुअछ १ देज-बारो २

पं । तत्त्वविजय ग । पं । जय स । पादरो १ गवासद २ आंकपाड ३

पं । प्रतापविजय ग । पं । उतम स । दमण १ वालोल २

पं । देवविजय ग । पं । अमी स । पं । कनकविजय ग । पं । कपुर स । मसांणो १ उंढाइ २ लांघणोज ३ छटीयाडो ४ नदासण ५ डांगरुआ ६ विलोदरो ७

पं । देवविजय ग । पं । दीप स । पं । मानविजय ग । पं । हित स । राजनगर १ हैवदपुर २ असावल ३ नवोवास ४ फेदरा ५ रायपुर ६ परोहतीयो ७ हर्षजीना मुआडा ८

पं । विनयविजय ग । पं । कल्याण स । पं । ऋषभविजय ग । प । जिन स । पाटण १ कुणगर २ वायड ३ अडोया ४

पं । माणिक्यविजय ग । प । मोहन स । आगलोड १

पं । उत्तमचंद्र ग । पं । उदय स । पालणपुर १ वगदा २ दाताचसी ३ सेरगढ ३

पं । कांतिविजय ग । पं । न्यान स । पं । देवविजय ग । पं । कांति स । विजापुर १ लाडोल २ हापु ३ भांडु ४

पं । न्यानविजय ग । पं । राग स । वाराही १ भोलकडा २ अर्गाचांणा ३

पं । हस्तिविजय ग । कुशल स । प । माणिक्यविजय ग । पं । हस्ति स । गणाद्वहि:

पं । हेमविजय ग । पं । कपुर स । पं । चतुर्विजय ग । प । शांति स । गोत्रको १ नवोपरा २

पं । कल्याणविजय ग । प । जय स । दसाडो १ कलाडो २ संखेश्वर ३

पं । नायकविजय ग । प । केशरविजय ग । पं । जय स । विरमगाम १ गोरीया २ भाजुगा ३

पं । भाग्यविजय ग । श्री जी स । वजाणो १

पं । गुमानविजय ग । प । नायक स । लींवडी १ अंचवाल्याया २

प । सुख्यालविजय ग । प । राज स । लोंड १

पं । हीरविजय ग । प । भाण स । गढ १ मडाणा २

पं । गोकलविजय ग । प । वृद्धि स । मगरवाडो १

पं । दीपविजय ग । पं । प्रेम स । पं । उमेदविजय ग । दीप स । पीपलदल १ करपटीयो २

पं । रविविजय ग । पं । मेरु स । पं । केशरविजय ग प । रवि स । मांडल १ लुणीयार २

पं । भाणविजय ग । पं । केशर स । पं । मोहनविजय ग । पं । भाण स । वणोद १ कुंआरद २ संघलपुर ३

पं । रुपविजय ग । पं । केशर स । गणाद्वहि:

पं । रविविजय ग । पं । विनीत स । चाणसमो १ कवोई २ वडावली ३ कथरावी ४ वसी ५ संडेर ६ लुणावा ७ मुडेरा ८ षांभेलणा ९

पं । शांतिविजय ग । पं वृद्धि स । वाव १ मादको २

पं । विनयविजय ग । पं । रावत स । डीशा १ डाआ २ समओर वायाणो ३

पं । अमृतविजय ग । पं । प्रताप स । सोइगाम १ असारो २

पं । केशरविजय ग । प । मेघ स । अम्मत् पार्श्वे

पं । प्रतापविजय ग । पं । विवेक स । राणकपुर १ मल्गांम २

पं । हेमविजय ग । पं । भीम स । जामपुर १ आमलुणा २

पं । वल्लभविजय ग । प । गुणविजय ग । पं । विमल स । कुंअर १ अणोरपुरो २ लोभाडा ३

पं । मुक्तिविजय ग । पं । हेम स । इडर १ लांबोदरा २

प । राजेंद्रविजय ग । अम्मत् स । श्रापरो १

प । कांतिविजय ग । अम्मत् स । सरीयद १

पं । रत्नविजय ग । पं । हेम स । प्रांतज १

पं । गुजानविजय ग । उ । श्री सोभाग्य स । मणोद १

पं । शांतिकुशल ग । पं । विवेक स । हरीपुरा १ छापरीयाओल २ वोराकटोर ३

पं । नवलविजय ग । पं । जिन स । वनु १

पं । भक्तिविजय ग । पं । देव स । गणाद्वहि: ॥

प । हेमविजय ग । पं । गौतम स । पालडी १ केशरडी २ नानोदरो ३

पं । ज्ञानविजय ग । पं । राजेंद्र स । जंबूसर १

पं । राजविजय ग । पं । रूप स । सावली १ वला-सणा २

पं । रूपविजय ग । पं । मोहन स । मावड गोटडा १ उंबरी २

पं । भीमविजय ग । पं लाल स । रानेर १

पं । धनविजय ग । पं । फत्ते स । मातर १

पं । जीतविजय ग । पं । माणिक्यविजय ग । प । लाल स । डभोइ १ कारवण २ लीलोड ३

पं । लालविजय ग । पं । उमेद स । जामला १

पं । मुक्तिचंद्र ग । पं । भव स । सीपुर १

पं । हेमचंद्र ग । पं । विनय स । मालण १

पं । प्रेमचंद्र ग । प । जीवण स । झरडा १ वरण २

पं । हर्षविजय ग । पं । रत्न स । गोधावी १

पं । हर्षविजय ग । पं । धर्म स । सोभासादडा १ मुंजपुर २

पं । कांतिविजय ग । पं । नायक स । वागेजो १

प । धर्मविजय ग । पं । पुन्य स । धोतासकल्याणा १

प । प्रतापविजय ग । प । फत्ते स । मेता १

पं । विवेकविजय ग । प । गोविंद स । अनस्तु १

प । वसंतविजय ग । प । भाग्य स । सरधेज १

प । उत्तमविजय ग । पं । मेघ स । अम्मन पाभे

प । तेजविजय ग । प । माणिक्य स । कोठ १ गांगड २

प । हसविजय ग । प । गंगा स । कोरडो १ सोनिथ २

प । जयविजय ग । पं । गंगा स । उबरी १

पं । लक्ष्मीविजय ग । प । मोहमा स । } धानेरा १

पं । विनयविजय ग । प । दोलति स । } लुणपुर २

पं । भक्तिविजय ग । पं । रूप स । कंबोइ १ देगांदर २

पं । कांतिविजय ग । प । दान स । प । सुमति विजय ग । प । गुण स । कणा १ काकर २

पं । खुश्यालविजय ग । प । प्रेम स । इलोल १

पं । भवानविमल ग । प । लब्धि स । पाडला १

पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । तेज स । वडनगर १ उमता २

पं । भवानविजय ग । पं । प्रमोद स । झींणोर १

पं । रूपविजय ग । उ । सोभाग्य स । सोरठदेश

पं । तेजविजय ग । पं । रत्न स । सांकरा १

प । नायक विजय ग । प । इंद्र स । धांणोज १ वांसा २ दोनावाडो ३

प । हर्ष विजय ग । पं खुश्याल स । कडी १ देकावाडो २

पं । हर्षविजय ग । पं । पदम स । खेड १ ब्रमाना २

प । मानविजय ग । पं । विनय स । राजपुर १

पं । सरूपचंद्र ग । प । हीर स । खराल १ अहमदनगर २

प । वीरविजय ग । पं । हर्ष स । थिराद १

पं । मुक्तिविजय ग । पं । मेघ स । मंडेरो १ रामपुरो २

पं । दीपविजय ग । प । हस्ति स । पीपली १

पं । भाग्यविजय ग । प । अमृत स । पीलुचा १

पं । रंगविजय ग । प । प्रेम स । नडीआद १

प । ज्ञानविजय ग । पं.। जीत स । आंगोली १

पं । शांतिविजय ग । प । रूप स । गणादवांहि:

प । विद्याविजय ग । प । रूप स । द्यानंद १

प । लालविजय ग । प । किस्तुर स । पेटलाद १

पं । वसनविजय ग । प । देव स । रणोद १

प । रूपविजय ग । प । भाव स । वडावल १

प । सुजाणविजय ग । प । विनीत स । चिलोडो १ वदरको २

प । रूपविजय ग । प भाण स । विहारा १

पं । हितविजय ग । प । जिन स । मोढेरो १

पं । हेमविजय ग । प । देवेंद्र स । बुहारा १

प । हितविजय ग । प । मान स । नडावाद १

प । प्रेमविजय ग । प । भीम स । वमसावी १

प । हितविजय ग । प । मेघ स । पंचासर १

पं । हेमविजय ग । प । मोहन स । चडा १ सिमोणा २

पं । भीमविजय ग । प । प्रेम स । मोरवाडो १

पं । नेमविजय ग । पं । राम स । गांभ १

पं । रामविजय ग । प । तेज स । सायाणो १

पं । वृद्धिविजय ग । प । भीम स । भाभर १ कुआला २

पं । प्रेमविजय ग । पं । शीव स । धोळका १ मोरीयो २
पं । दयासोम ग । पं । जीत स । इपर १ वलण २
पं । फत्तेविजय ग । पं भाण स । वैणप १
पं । न्यानविजय ग । पं । सोभाग्य स । पांचडा १
पं । तत्त्वसोम ग । पं । राज स । सोवनगढ १
पं । कपुरविजय ग । पं । विनय स । साचोरकारोला १
पं । प्रेमविजय ग । पं । अमृत स । रानेर १
पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । खुस्याल स । उंचोसण १
पं । राजविजय ग । पं । दर्शन स । कडी १
पं । विवेकविजय ग । पं । हर्ष स । वेरसद १ वटादरो २

अत्रोद्धरीत क्षेत्रादि सत्यापना अस्माभिर्विधेयेति मंगलं ।। गच्छ बार वालार्थी आहार विहार करसे ते उपालंभ पामशे ।।

समस्त साधु समुदाय योग्य । अपर सह पट्टा प्रमाणे पोतानें क्षेत्रादेशें जइ पोहचज्यो । त० कोइ पारकाक्षेत्रमांहि रहस्यै । त० क्षेत्र आलटपालट करस्ये । त० कोइ चोमासामांहि फरस्यै हरस्यै । त० कोइ गृहस्थोसुं चढी वोलस्यै तो आकरो उपालंभ आवस्ये । सर्वथा गुदरास्यै नहीं । गुदरवाज श्री श्रीजीनी आणछइ । एहवु जाणी मर्यादामांहि प्रवर्त्तवुं ।। इति श्रेयं ।।

पट्टक ७

आ पट्टक २ फुट १० इंच लांबो अने ७½ पहोळो छे. पंक्ति संख्या ८१.

सही

श्री

।।श्रीअर्हं नमः।।

।। श्रीगौतमाय नमो नमः ।।

।। श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।।

।।ॐ नत्वा भ । श्रीविजयमहेन्द्रसूरीश्वरपरम गुरुभ्यो नमः ।।

संवत् १८७३ वर्षे भ । श्री श्रीविजयसूरीद्रसूरिभिर्ग्येष्ठस्थित्यादेशपट्टको लिख्यते । श्रीगुर्जरदेशे ।

पं । न्यांनविजय ग । पं । जीत स । सेनापुर । कोरलवारा । मेथी । समनी । राजपीपळा । जंबुगांम । धवलगांम । टाणु २ आमोद मध्ये
पं । गौतमविजय ग । पं । जात स । साणद । मोरीयुं । मोडासर । कुंआरज । कोठ । भेगडा । वारद (?) पीपली । वलदांणो । गोरज । धोलेरा । बावलो । नांनोदरुं । सांकोड । मांकोड । धोलेराविंदर ।
पं । दयालविजय ग । पं । विद्या स । नोकोर ।
पं । भक्तिविजय ग । पं । पदम स । जवुसर । कारोल । मासर । गंजेरा । हणवी ।
पं । नयनमविजय ग । पं । चारित्र स । कुंणी । दसरथ । खभाली । गोटवा ।
पं । अभयविजय ग । वृद्धश्रीजी स । राजनगर । सरखेज । धोलका । पलीयट । आगणज । सोझा । घोरज ।
पं । प्रेमविजय ग । पं । अमर स । मुगपुर । वांसला । गुडी । समनी । कलमाइ । कलादरुं । भेडसम । मासम । मगलेसर । झाडसर । अंगारेसर ।
पं । गुलाबचंद्र ग । पं । दोलतचंद्र स । } करवाडु ।
पं । कनकचंद्र ग । पं । पानाचंद्र स । } सुआ । कोलवणु ।
पं । विनयविजय ग । पं । जीत स । सुरत । छीपवाड । आंभलीरायण । निवडीकुई । नानु हरीपरुं । मोटु परु । नानपरुं । वोगा कटोर । पुंणा । कतारगाम । ओडपाड । वरीयाव । घोघा । भावनगर ।
पं । जयविजय ग । पं । मांन स । विजापुर । गवाड । लोदरुं । पेढांमली । कडोली । सोझा । रंगपुर । सरदारपुर । लाडोल । दावडा । पीथापुर । सुंदरपुर । माणसा । रीद्रोड । अमृतपुर ।
पं । रत्नविजय ग । पं । अमृत स । अकलेसर । दीवा । दीवी ।

पं । हर्षविजय ग । पं । तत्त्व स ।
पं । षुसालविजय ग । पं । प्रीती स । } षंभायत विंदर

पं । चतुरविजय ग । पं । हीत स । अकब्बरपुर

पं । नायकविजय ग । उ । लक्ष्मी स । रांनेर । सरस । कुदियांणुं । भगवा डांडो ।

पं । नायकविजय ग । पं । सौभाग्य स । हरीपरुं । छापरीयाओल ।

पं । रत्नविजय ग पं । अमृत स । गरीतुं । वडसमुं । कादरगांम । मगाल ।

पं । नयविजय ग । वृद्ध श्रीजी स । चांदणसल । खराल ।

पं । धर्मविजय ग । वृद्ध श्रीजी स । { वारजु । महियज । लाली । चांसर । असलाली । जनलपर । गीरमता । टीवा । नवागांम । महिजडुं । ढोडा ।

पं । रामविजय ग पं । प्रेम सत्क { कांनेरा । चोवलज । [illegible] । नाज । नाहज । नायक । वागजडी । पारांणुं । वसहि । वांडजा ठाणु १ आंमोद मध्ये । ठाणु २ भरुअच्चमध्ये

पं । रत्नविजय ग । प मुक्ति स । गोभरा ।

पं । प्रेमविजय ग । प । माणीक्य स । पुणानगर, दक्षणदेश ।

पं । मोहनविजय ग । प । भुपति स । वापगांम ।

पं । सभाचंद्र ग । प । सोमचंद्र स । पाज ।

पं । भगवानविजय ग । प । हित स । कावली ।

पं । कपुरविजय ग । प । केसर स । गणदेवी । वीली मोरुं । आल्होद । वारडोली ।

पं । मोहनविजय ग । पं । विनीत स । मालपुर । रणीयालुं ।

पं । शांतिविजय ग । प । विनीत स । नंदरबार । इसरवाडी । पीपलनार । मांगीयातुंगीया ।

पं । पद्मविजय ग । पं । रुप स । बुहारी ।

पं । दयाविजय ग । पं । देव स । पादरा । ठाणु १ वडोदरामध्ये

पं । रामविजय ग । पं । कस्तुर स ।

पं । वल्लभविजय ग ।
पं । लक्ष्मीविजय } पं । श्रीधर स । वडोदरु । आंति । मांति ।

पं । उत्तमविजय ग । पं । तीर्थ स । काकरीयुं । षरगांम ।

पं । रंगविजय ग । प । जस स । कडी राजपुर । रांमपुर । भकोडुं ।

पं । वीवेकविजय ग । प । चारित्र स । व्यारा । कांनपुरा ।

पं । दयाविजय ग । प । दीप स । कपडवाणीज ।

पं । नीत्यविजय ग । प । प्रमाद स । मेसांणा । झोटाणा ।

पं । रंगविजय ग । पं । गुलाल स । कुकरवाडु । ओयघल । देवडुं ।

पं । भक्तिविजय ग । वृद्ध श्रीजी स । कोलवणुं ।

पं । षुसालविजय ग । पं । देवेंद्र स । चांपानयर । वेजलपर ।

पं । कपुरविमल ग । पं । सुमति स । केसरडी ।

पं । दीपविजय ग । पं । रत्न स । गणाद बहिर ।

पं । हर्षितविजय ग । पं । मुनेंद्र स । दक्षणदेश तलेगांम ।

पं । हंसविजय ग । प । हर्ष स । जुनेर ।

पं । भोजचंद्र ग । प । भक्तिचंद्र स । आनरसमुं ।

पं । हर्षविजय ग । प । श्रीधर स । वाला । पालडी ।

पं । प्रेमविजय ग । पं । धरणेन्द्र स । मालवदेश ।

पं । चतुरविजय ग । पं । लक्ष्मी स । ठाणु १ व्यारामध्ये ।

पं । सौभाग्यरत्न ग । पं । भवानीरत्न स । आंमोद । सरभांण । सीयागांम ।

पं । रत्नविजय ग । पं । मांन स । वोहांण ।

मु । रंगविजय ग । पं । प्रताप स । भृगुपुरमध्ये

पं । सीवचंद्र ग । पामोल ।

पं । नेमविजय ग । पं । माणीक्य स । पूर्वदेशे

पं । नेमविजय ग । पं । प्रेम स । चिणापुरपट्टण ।

अस्मत्स ठाणु ४ श्री सुरतमध्ये ॥

॥ इत्यादि क्षेत्र सत्यापना ॥ ॥ अस्माभिर्विधि ज्ञेयाः ॥

तथा समस्त साधु समुदाय योग्य । पोतपोतना लख्या क्षेत्रादेश प्रमाणे साचववा । तथा जे कोई नही साचवे तथा जे कोई अदला बदली करस्येः, तथा जे क्रय विक्रय करसे । तथा जे कोइ ग्रस्थादि संघाते विरुधपणे प्रवर्तसे । तेहने आवते पट्टे आकरो उपालंभ देवासे । गुदरासे नहिः ॥ माटे एवुं जांणी गच्छमृजादा गुरु परंपराइं प्रवर्तवुंः ॥ सहि ॥ एवंच, पालणपुर । मालण । मगरवाडु । वडगाम । रुपाल । मेगाल । विसलनगर । वडनगर । कदनुपर । महुपर । गुंजा । गोठुंवा । कडा । धिणोज । झोटाणा । करोसण । मांणोकपुर । हाथा । नाजपर । मांगसा । पीणापर । वासणा । चिगडाली । बोदरु । उनाउआ । वालुआ । गोधावी । सेला । धुमा । वसहि । वरानपुर । नोरगाबाद । टिंगोडु । गांदली । पीपलनार । नलधर । महुआ । सरभांण । वणश । सत्तेण । वलसाड । टिंबा परगणुं । वसरावी । मांडवी । कालीयावाडी । म्हमाई विंदर । वसहि विंदर । इसनपुर । मगोडी । वडवाण । निवडी । पाणेठा । गांड । उंतडीयु (?) सोझेतरा । वसो । मातर । फतेपर । देवांण । वारीयु । वारेठी । सोनगढ । वालोल । नीझराल । झोटांणा । दुझांणा । हेदराबाद । पलीयड । घेरज ।

॥ इत्यादि क्षेत्र श्री आगकार धारमें छे ॥ सहिः ॥

पट्टक ८

श्री

आनी लंबाई ३ फुट ३ इंच, पहोळाई ७ इंच. पंक्ति संख्या १२८.

॥ ॐ नत्वा । भ । श्री श्रीविजय धर्मसूरिश्वरपरमगुरुभ्यो नमः स १८८० वर्षे । भ । श्री श्रीविजयजिनेन्द्रसूरिभिर्येश्रमिस्थत्यादेश पट्टक लि । श्री गुर्जरदेशे ।

पं । माणिक्यविजय ग । श्रीजीसपरिकर । पाटणपुर १ वगदा २ दांता ३ लुंणपुर ४ पांचडा ५ वनाली ६ मोरियो ७ चंडेस ८ गोरीयल ९

पं । खुस्यालविजय ग । पं । देव स । पं । मानविजय ग । पं । हित स । राजनगर १ सरखेद २ हेबदपुर ३ आसावद । ४ मोरीयो ५ रायपुर ६ नवो वास ७

प । विवेकविजय ग । पं । प्रेमविजय ग । पं । डुंगर स । दमण १ पालडी २ वोराकडार ३

पं । नायकविजय ग । प । परमविजय ग । उं । श्री पुन्याल स । पं । धर्मचन्द्र ग । पं । कल्याण स । सुरत १ हरीपुरा २ नवसारी ३ छापरीया ओल ४

प । सुबुद्धिविजय ग । पं । वल्लभ स । पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । सुबुद्धि स । वडोदरा १ डभोई २ राहुपुरा ३

पं । पुन्यविजय ग । प । दीपविजय ग । पं । कृष्ण स । पाट्टण १ कृष्णगर २ कंबोई कोटिनी ३ भलगांव ४

पं । विनयविजय ग । पं । कल्याण स । पं । ऋषभविजय ग । प । जिन स । मोधी १ अनगढ २ लीलोड ३ फतेपुर ३ वडगा ४

पं । महावीरविजय ग । प । जयविजय ग । पं । विवेक स । वीजापुर १ लाडोल २ हासोर ३ समो ४

पं । रूपविजय ग । पं । परम स । मगाद वलि

प । वीरविजय ग । पं । शुभ स । राजनगरमध्ये ।

पं । नायकविजय ग । पं । केशरविजय ग । प । जय स । वेसमगांव १ गोरीया २

प । मुक्तिविजय ग । प हंस स ।
पं । कनकविजय ग । प । कपुर स । } आमोद १ नरसापुर २
पं । लक्ष्मीविजय प । ग । मुक्ति स ।

पं । शिवचन्द्र ग । पं । उत्तम स । मुरंड १ गीर २ अगासी ३

प । रूपविजय ग । पं । राज स । प । वल्लभविजय ग ।

पं । मोहन स । चांगसमा १ वडावलि २ कंबोई सोलंकीनी ३ केथरावी ४ लणवा ५

पं । केशरविजय ग । पं । उत्तमविजय ग । पं । मेघ स । भावनगर १ वालुकर २ वरतेज ३ भंडारीयो ४

पं । मुक्तिविजय ग । प । मेघ स । प । मोहनविजय ग । पं । मुक्ति स । मेसांणो १ रागणोज २

पं । रामविजय ग । पं । रूप स । ईडर १ वडावलि २ खेडब्रह्मांणी ३ रणासण ४

प । जेतविजय ग । प । शान्त स । थरा १ धाग २ कुंदरा ३ भवांण । ४ वडा ५

पं । मानविजय ग । पं । दर्शन स । राधनपुर १ मागरी २ मोढेरा ३ कमलापुर ४ मुंजप ५ जांम ६ वेठ ७ कुआर ८

पं । दीपविजय ग । प । भाव स । जंबुसर

प । सुबुद्धिविजय ग । प । रंग स । भरुअच्च १ देजवाडा २

प । शुभविजय ग । प । कल्याण स । वणोद १

पं । प्रतापविजय ग । पं । उत्तम स । दक्षणदेश ।

प । भक्तिविजय ग । पं। कीस्तुर स । वीहारा १

पं । कीर्तिविजय ग । पं । गुमान स । रायकपुर १

पं । रूपविजय ग । पं । मोहन स । मावड १ गोठडा २ ऊमरी ३ सथलांणा ४ मेता ५

प । चतुरविजय ग । पं । न्यान स । मणोद १ गांभु २

पं । लक्ष्मीकुशल ग । पं ऋद्धि स । सोरठदेश ।

पं । तेजविजय ग । पं । हेम स । ममी १ दुदका २ कुंआरव ३

पं । राजेन्द्रविजय ग । अस्मत्स । डभोई १ कारवण २

पं । देवविजय ग । पं । कांति स। पं। शुभविजय ग । पं। ललित स । सिद्धपुर १ कलाणो २

पं । माणिक्यविजय ग । पं । हस्ति स । ईलोल १ सावली २ वलासणो ३

पं । चतुरविजय ग । शांति स । पं । राजविजय ग । पं । हेम स । पाटडी १ देकावाडे २ छणवार ३

पं । ऋद्धिवर्धन ग । पं । धर्म स । पं । गणेशवर्धन ग। प । राज स । नीबडी १ पीपली २

पं । हेमविजय ग । पं । गोतम स । गणाद् बहि

पं । ज्ञानविजय ग । प । माणिक्य स । अणवरपुरे

प । विनयसागर ग । प । उमेद स । गणाद् बहि

प । प्रतापविजय ग । पं । विवेक स । खेमविजय ग । प । प्रताप स । मयादर १

प । जीतविजय ग । पं । जिन स । प । कल्याणविजय ग । पं । ज्ञान स । मांडवी १ आडपाड २

प । रामविजय ग । प । नेम स । प । रूपविजय ग । प । उमेद स । वढवांण १ चुडा २ घोलेरा ३ पीरमडीयाद ४ सायला ५

पं । माणिक्यविजय ग । प । गुलाब स । झींणार १

प । सुज्ञानविजय ग । उ । श्री सोभाग्य स । सेरगढ १ चीत्रोडा २

प । चतुरविजय ग । उ । भक्ति स । वसु १ नांदोतरो २

पं । प्रतापविजय ग । प । भवांन स । पादरा

प । विवेकविजय ग । पं । हंस स । जांमला १

पं । अमृतविजय ग । प । वल्लभ स । मांडल १

पं । ज्ञानविजय ग । प । राजेन्द्र स । सुहारी १

पं । भीमविजय ग । प । हेम स । आंतरोली १

प । राजविजय ग । पं । भीम स । वलय १

पं । ज्ञानविजय ग । पं । रवी स । मालण १

पं । धनसागर ग । पं । फते स । मातर १ नांनोदरो २

पं । दीपविजय ग । प । हस्ति स । देलाडभी १

प । हर्षविजय ग । पं । गुलाल स । ऊमता १ देणफ २

प । उत्तमविजय ग । } प । वल्लभ स । दसाडो १
प । लब्धिविजय ग । } कलडाडो २

पं । मोतीविजय ग । पं । न्यान स । सुडेरा १

पं । हस्तिविजय ग । पं । माणिक्य स । पीपलदल १ करपडीयो २

पं । भाग्यविजय ग । पं । अमृत स । वीसलनगर १ कडा २ जासका ३ गोठवा ४ सिवाला ५ गूंजा ६ वसीडाभल ७ मालक ८

पं । धर्मविजय ग । पं । पून्य स । वडगांम १
पं । पद्मविजय ग । पं । भाग्य स । पेटलाद् १ वेजलका २ षांघली ३
पं । कांतिविजय ग । अस्मत्स । टेंबाचुडी १
पं । क्षमाविजय ग । अस्मत्स । मगरवाडो १
पं । रत्नविजय ग । अस्मत्स । नांगा १
पं । कांतिविजय ग । पं । दोलति स । सरीयद १ वायड २
पं । केशरचंद्र ग । पं । कल्याण स । चंदुर १
पं । तेजविजय ग । पं । रत्न स । षाषल १
पं । मुक्तिविजय ग । पं । प्रताप स । घोता १ सकलांणा २
पं । नेमविजय ग । पं । भाण स । खंभायत १ वटादरो २
पं । जीवणविजय ग । पं । कुअर स । अस्मत्पार्श्वे
पं । कुंअरविजय ग । पं । हेम स । वजाणा १
पं । चतुरविजय ग । पं । नवल स । वडनगर १ लुंणवा २ ओढाई ३
पं । हीरविजय ग । पं । लाल स । अमनगर १
पं । रत्नविजय ग । पं । षुस्याल स । रुपाल १ सडो २
पं । हर्षविजय ग । पं । सुजांण स । केशरडी १
पं । धनविजय ग । पं । षुस्याल स । गोधावी १
पं । नेमविजय ग । पं । रूप स । पीलुंचो १
पं । दीपविजय ग । पं । वीनय स । गढ १ वडावल २
पं । मानविजय ग । पं । वीनय स । धांनेरा १ झेरडा २ वरणझमाल ३
पं । नायकविजय ग । पं । इंद्र स । धीणोज १ रणोज २
पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । षुस्याल स । चीलोडो १ वदरको २ धवलको ३
पं । धनविजय ग । पं । भुषण स । मोरवाडो १
पं । हेतविजय ग । पं । मेघ स । कोठ १ गांगड २
पं । जयविजय ग । पं । हर्ष स । पारकरनगर १
पं । नेमविजय ग । पं । राम स । छठीयारडो १
पं । कपूरविजय ग । पं । वीनय स । डीसा १ राजपुर २ आहेडा ३
पं । जीतकुशल ग । पं । दीप स । पं । ऋद्धिकुशल ग । पं । कीस्तुर स । रानेर १

पं । फत्तेविजय ग । पं । भाण स । सांकरा १ वांसा २ रानेर ३
पं । गोविंदविजय ग । पं । भवान स । ईडर १
पं । रंगविजय ग । पं । प्रेम स । नडीयाद १
पं । कीस्तुरविजय ग । पं । गोकल स । मडाणा १
पं । देवीचंद्र ग । पं । दुलि स । डुंगरपुर १ वांसवालो २ मोहणपुर ३
पं । विद्याविजय ग । पं । रूप स । पं । उत्तमविजय ग । पं विद्या स । षेरालु १ चांदणसोल २
पं । उत्तमविजय ग । पं । वीनीत स । गोलको १ गाजदीपुरो २
पं । ऋद्धिविजय ग । पं । ज्ञान स । मुंजपर १
पं । रूपविजय ग । पं । भाण स । सोवनगढ १
पं । हितविजय ग । पं । जिन स । वालोल १
पं । गुमानविजय ग । पं । रुप स । लिंछ १ अंबासण २
पं । सुखविजय ग । पं । प्रमांण स । नंदासण १
पं । नीत्यविजय ग । पं । हर्ष स । कडी १ कुकुआव २
पं । दयासोम ग । पं । जीत स । ईटोलु १
पं । प्रेमविजय ग । पं । अमर स । जांमपर १ कसरा २
पं । विवेकविजय ग । पं । हर्ष स । वोरसद १
पं । हितविजय ग । पं । हंस स । संषसर १
पं । सुंदरचंद्र ग । पं । दुलि स । सीपर १
पं । हेमविजय ग । पं । सुख स । गणादुवाहि
पं । उत्तमविजय ग । पं । राजेंद्र स । सोमासादडा १
पं । मोतीविजय ग । पं । मुक्ति स । सिरदारपुर १
पं । ऋद्धिविजय ग । पं । लक्ष्मी स । पंचासर १ पाडला २ सांईगांम ३

अत्रोद्धरीतक्षेत्रादौ सत्थापना अस्माभिर्विधेयाइति मंगलम् ।

समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपरं सहु पट्टाप्रमाणें पोता पोतानें क्षेत्रादेशें जई पोहचज्यो । जे कोई पारका क्षेत्रमांहिं रहस्यें । त । क्षेत्र आलटपालट करस्ये । तथा क्रयविक्रय करस्ये । त । कोई चोमासमांहि फिरस्यें हिरस्यें । तथा ग्रहस्थ थकी चढी बोलस्यें । तो तेहनें आकरो उपालंभ आवस्ये । सर्वथा गुदरास्यै नही । गुद-

रवाज श्री श्रीजीनी आंण छई । एहवुं जांणी मर्यादामांहिं प्रवर्तवुं । इति श्री ॥

पट्टक ९
३ फुट ३ इंच लांबो. ६½ इंच पहोळो. १३३पंक्ति.
सही॥

॥ ॐ नत्वा भ । श्री श्री विजयधर्म्मसूरीश्वर परमगुरुभ्यो नमः ।

सं । १८८२ वर्षे भ श्री श्री विजयजिनेंद्रसूरिभिर्येष्ट-स्थित्यादेशपट्टकलिख्यतेः ॥ गुर्जर देशे ॥

पं । माणिक्य विजय ग । श्री जी सपरिकरा । उदेपुर मेवाड देश । गुजर देश ।

पं । खुस्यालविजय ग । पं । देव स । पं मानविजयग । पं । हित स । राजनगगर १ सरखेद २ आवल ३ हेवदपुर ४ रायपुर ५ मोरीयो ६

पं । विवेकविजय ग । पं । प्रेमविजय ग । पं । डुंगर स । सुरत १ नवसारी २ हरीपुरो ३ छापरीया आल ४

पं । नायकविजय ग । पं । मोहनविजय ग । उं । श्री खुस्याल स । पं । धर्म्मचंद्र ग । पं । कल्याण स । पाटण १ कुणगर २ कंबोइ कोलीनी ३

पं । पदमविजय ग । उं । श्री खुस्याल स । मणोद १

पं । सुबुद्धि विजय ग । पं । वलभ स । लक्ष्मीविजय ग । सुबुद्धि स । डभोइ १ वडोदरो २ राहपुरो ३ कारवण ४ लीलोड ५

पं । पुन्यविजय ग । पं । दीपविजय ग । पं कृष्ण स । राधनपुर १ मोलोड२ कमालपुर ३ वाराही ४ केण ५ चड ६ ।

पं । विनयविजय ग । पं । कल्याण स । पं । रूपभविजय ग । पं । जिन स । खंभायत १ जंबुसर २ बोरसद ३

पं । गुलाबविजय ग । पं । जयविजय ग । पं । विवेक स । विजापुर १ पीपलदरकरपडीयो २ लाडोल ३

पं । स्वर्णविजय ग । पं पदम स । राजनगरमध्ये १

पं । वीरविजय ग । पं । शुभ स । राजनगरमध्ये १

पं । नायकविजय ग । पं । जय स । पं । शुभविजय ग । पं । कल्याण स । वरिमगांम १मांडल २ गोरीया ३

पं । मुक्तिविजय ग । पं । हंस स । पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । मुक्ति स । ईलोल १ सरदारपुर २

पं । तेजविजय ग । पं । हेम स । धानेरा १ आहेडा २ झरडा ३

पं । कनकविजय ग । पं । कपुर स । सावली १

पं । शिवचंद्र ग । पं । उत्तम स । ममोई १ वसी२ नागोथागो ३

पं । दीपविजय ग । पं । भाव स । पं । भक्तिविजय ग । पं । विवेक स । झींणोर १

पं । रुपविजय ग । पं । राज स । पं । वलभविजय ग । पं । मोहन स । वीसलनगर १ कडा२ जासका ३ गोठवा ४ भालक ५ सेवाला ६

पं । केसरविजय ग । पं । उत्तमविजय ग । पं । मेघ स । भावनगर १ वाल्कर२ वरनेज ३ भंडारीयो ४

पं । मुक्तिविजय ग । पं । मेघ स । पं । मोहनविजय ग । पं । मुक्ति स । सिद्धपुर १ मेता २ लुणवा ३ कलांणा ४ नांदोतरो ५

पं । राजविजय ग । पं । रूप स । पं ।मनरूपविजय ग । पं मया स । आगलोल १ समउ २ हरसोर ३ रणासण ४ वलासणो ५

पं । जैनविजय ग । पं । शांति स । पं । हीरविजय ग। पं । जैन स । समी १ चंद्रुर २ दुदषा ३

पं । मानविजय ग । पं । दर्शन स । चाणसमो १ वडावली २ कंबोई सोलंकीनी ३ कंथरावी४

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । रंग स । भरूअच १ देजवारो २

पं । भक्तिविजय ग । पं । कौस्तुर स । सोवनगढ १

पं । कीर्त्तिविजय ग । पं । गमान स । चुडा १

पं । रूपविजय ग । पं । मोहन स । पालणपुर १ वगदा २ दांता ३ उणापुर ४ पांचडा ५ धनाडी ६मोरीयो ७ नंदयर ८ जसलोदी ९

पं । चतुरविजय ग । पं ग्यान स । भीणोज १

पं । लक्ष्मीकुशल ग । पं । रुद्धि स । दमण १ पालर्डी २

पं । जयविजय ग । पं । हर्ष स । थरा १ जामपुर २

पं । क्षमाविजय ग । पं । मणि म । सांईगांम १ मोरवाडो २ भामर ३

पं । राजेंद्रविजय ग । अस्मत्स । पादरो १

पं । देवविजय ग । पं । कांति स । पं । शुभविजय ग । पं । ललित स । वडनगर १ डाभला २ उंढाई ३

पं । मणिक्यविजय ग । पं । हास्ति स । ईडर १ वषतापुर २

पं । चतुरविजय ग । पं । शांति स । पं । राजविजय ग । पं । हेम स । दसाडो १ कलाडो २

पं । बुस्यालावर्धन ग । पं । धर्म्म स । पं । गणेशवर्द्धन ग । पं । राज स । वडवाण १ धोलेरा २ राणकपुर ३ साहेला ४ पीरमर्डीयाद ५

पं । हेमविजय ग । पं । गौतम स । गणादुवही ।

पं । ज्ञानविजय ग । पं । माणिक्य स । संखेश्वर

पं । विनयसार ग । पं । उमेद स । गणादुवही

पं । प्रतापविजय ग । पं । विवेक स । } मजादर १
पं । खेमविजय ग । पं । प्रताप स । }

पं । जितविजय ग । पं । जिन स । } बुहारी १
पं । कल्याणविजय ग । पं । जीत स । } वालोल २

पं । रामविजय ग । पं । नेम स । } पाटडी १ पंचासर २ कुअर ३
पं । रूपविजय ग । पं । उमेद स । }

पं । माणिक्यविजय ग । पं । गुलाब स । मीयां १ ईटोली २

पं । सुग्यानविजय ग । उ । श्री सोभाग्य स । घोडीयाल १

पं । चतुर्विजय ग । उं । भक्ति म । पीलुचा १ टींवाचुडी २

पं । प्रतापविजय ग । पं । भवान स । भुजपुर १

पं । विवेकविजय ग । पं । हंस स । घेराल १

पं । गौतमविजय ग । पं । ज्ञान स । मांडवी १

पं । भीमविजय ग । पं । हेम स । आंतरोली १

पं । माणिक्यविजय ग । पं । राज स । वलय १

पं । ग्यानविजय ग । पं । रवी स । रांगा १

पं । धनसागर ग । पं । फत स । पेटलाद १

पं । दीपविजय ग । पं । हस्ती स । नडीयाद १

पं । हर्षविजय ग । पं । गलाल स । सीपुर १ चांणसोल २

पं । उत्तमविजय ग । } नीवडी १ सिंहाणी २ अंचेवालीयो ३
पं । लब्धिविजय ग । पं । वलभ स । }

पं । मोतीविजय ग । पं । ग्यान स । मुंढेरा १

पं । हस्तिविजय ग । पं । माणिक्य स । वडाली १

पं । भाग्यविजय ग । पं । अमृत स । लींच १ नंदासण २ लांघणोज ३ कडी ४ असारण ५

पं । धर्म्मविजय ग । पं । पुन्य स । वडगांम १

पं । पद्मविजय ग । पं । भाग्य स । मातर १

पं । कांतिविजय ग । अस्मत्स । रणोद १

पं । क्षमाविजय ग । अस्मत्स । अस्मत्पार्श्वे

पं । रत्नविजय ग । अस्मत्स । अस्मत्पार्श्वे

पं । कांतिविजय ग । पं । दौलत स । सरीयद १ कहरा २

पं । केसरचंद्र ग । पं । कल्याण स । कुंआरा १

पं । तेजविजय ग । पं । रत्न स । वासा १

पं । गुमानविजय ग । पं । रूप स । चीलोडा १ वदरको २

पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । भाण स । वाव १ थराद २ उचोसण ३ देणप ४

पं । मुक्तिविजय ग । पं । प्रताप स । मालण १

पं । नेमविजय ग । पं । भाण स । रांनेर १ बोरा कठोर २

पं । कुंअरविजय ग । पं । हेम स । नानोदरा १

पं । चतुर्विजय ग । पं । नवल स । मेसांणो १

पं । हरिविजय ग । पं । लाल स । अमदनगर १

पं । रत्नविजय ग । पं । खुस्याल स । रुपाल १ समो २

पं । हर्षविजय ग । पं । सुजाण स । केसरडी १

पं । धनविजय ग । पं । सुखण स । अणवरपुरो १

पं । हेतविजय ग । पं । मेघ स । कोठगांगड १ वटादरो २

पं । नेमविजय ग । पं । राम स । गांभु १

पं । धनविजय ग । पं । खुशाल स । छर्णीयार १ देकावाडो २ कुंकुडाव ३

पं । नेमविजय ग । पं रूप स । गोला १

पं । दीपविजय ग । पं । विनय स । गढमंडाणा १

पं । मानविजय ग । पं । विनय स । वसु १

पं । नायकविजय ग । पं । इंद्र स । छठीयारडो १

पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । खुस्याल स । गोधावी १

पं । कपुरविजय ग । पं । विनय स । डीसा १ वडावल २ वरणझनाल ३

पं । जितकुशल ग । पं । दीप स । } व्याहागा १
पं । रूद्धिकुशल ग । पं । कीस्तुर स । }

पं । फतेविजय ग । पं । माण स । उंदरा १ रानेर २ वायड ३

पं । गोविंदविजय ग । पं । भवान स । ईंधर १

पं । रंगविजय ग । पं । प्रेम स । पांथली १

पं । कीस्तुरविजय ग । पं । गोकल स । मगरवाडो १

पं । देवचंद्र ग । पं दुलि स । मोहणपुर १

पं । विद्याविजय ग । पं । रूप स । } मावडगोठडा १
पं । उत्तमविजय ग । पं । विद्या स । } उंवरी २ सथलांणा ३

पं । उत्तमविजय ग । पं । विनीत स । गोत्रको १ गाजदीपूरो २

पं । मानविजय ग । पं । विवेक स । अगार्सी १

पं । रूद्धिविजय ग । पं । ज्ञान स । मोमासादडा १

पं । जशविजय ग । पं । नेम स । आपरा १

पं । रूपविजय ग । पं । माण स । ओडपाड १

पं । सुखविजय ग । पं । प्रमाण स । धधाणा १

पं । नित्यविजय ग । पं । हर्ष स । पीपली १

पं । दयासोम ग । पं । जिन स । ईटोलो १

पं । प्रेमविजय ग । पं । अमर स । सांकरा १ बाषल २

पं । विवेकविजय ग । पं । हर्ष स । वसरावी १

पं । हेतविजय ग । पं । हंस स । वजाणो १

पं । सुंदरचंद्र ग । पं । दुलि स । ऊंमता १ देणप २

पं । उत्तमविजय ग । पं । राजेंद्र स । देवाडमो १

पं । मोतीविजय ग । पं । मुक्ति स । जांमठा १

पं । रूद्धिविजय ग । पं । लब्धी स । पं । मुक्तिविजय ग । पं । भिम स । वणोद १ पामला २

पं । मोतीविजय ग । पं । तेज स । रायपुर १

अत्रोद्धरीत क्षेत्रादी सत्यापना अस्माभिर्विधेयाति मंगलम्॥

समस्त साधु समुदाय योग्यं । अपरं सहु पट्टाप्रमाणे क्षेत्रादेश पोतारने जइ पोहचज्यो । तथा जे कोई पारका क्षेत्रमाहिं रहस्यै तथा क्षेत्र आलटपालट करस्यै तथा जे कोई चोमासामांहि फिरस्यै तथा जे कोई गृहस्थोसु चढी बोलस्यै तो आकरो ऊपालंभ आवस्यै । सर्वथा गूदरास्यै नहीं । गूदरवा तो श्री श्रीजीनी आण छइं । एहवुं जाणी मर्यादा प्रमाणे प्रवर्तवुं ।

पट्टक १०

आ पट्टकनी लंबाई २ फुट ५ इंच. पहोळाई ७ इंच. पंक्ति संख्या ११६.

सही ।

ॐ नत्वा ॥ भ । श्री श्री विजयजिनेंद्र सूरीश्वरपरम गुरुभ्यो नमः ॥

सं । १९०३ वर्षे विजयदेवेंद्र सूरीभिर्येष्टस्थित्यादेश पट्टक लिख्यते ॥ श्रीगुर्जरदेशे॥

*पं । ...विजय ग । श्री जी सपरिकराः । श्रीलघुमरुदेशे । भनीमाल १ राजपर २

पं । ...धर्मविजय ग । पं । डुंगर स । पं । नरोत्तमविजय ग । उ । श्रीविवेक स । पं । अमरविजय ग । पं । प्रेम स । रानेर १ ओडपाड २

पं । पद्मविजय ग । पं । मोहनविजय ग । उ । श्रीविवेक स । धीणोज १

पं । धर्मचंद्र ग । पं । कल्याण स । पं । रूपचंद्र ग । पं । धर्म स । मुंबै १ बाहिरकोट २ वसी ३ आगासी ४ नागुथाणो ५ माम ६

पं । क्षमाविजय ग । श्रीजी स । मालण १

पं । गुमानविजय ग । उ । श्रीमाणिक्य स । अस्मत् पार्श्वे ।

---

*आ पट्टकनी जमनी बाजुना प्रारंभनो केटलोक भाग खराब थई गएलो छे तेथी केटलांक नामो जता रह्यां छे.

पं । मानविजय ग । पं । दर्शन स । पाटण १ डीसा २ वडावल ३ अहिडा ४ कंबोईकोलीनी ५ मावड-गोठडा ६ उंबरी ७ सथलासणो ८ भालुसणो ९ वाव १०

पं । वीरविजय ग । पं । शुभ स । राजनगरमध्ये १

पं । माणेकविजय ग । पं । जय स । वीरमगांम १ गो-रीयो २

पं । गुलाबविजय ग । पं । जयविजय ग । पं । विवेक स । वीजापुर १ पिंपलदलकरपटीयो २

पं । माणिक्यविजय ग । पं । खेम स । मांडवी १

पं । ...चंद्र ग । पं । शिव स । पं । प्रथवीचंद्र ग । पं । अमी स । सोरटदेशे गोघा १

पं ।.........ल ग। पं । रुचिर स । पं ! विनयकुशल ग।

पं । कुअर स । पं । चतुर कुशल ग । पं । दौलतकुशल ग । पं । लक्ष्मी स । सुरत १ हरीपुरो २ कठोर ३ छापरीयाओल ४

पं । रंगविजय ग । पं । केशर स । बुहारी १ पालडी २ बगवाडो ३

पं । शांतिविजय ग । पं । केशर स । पं । राजविजय ग । पं । उत्तम स । दमण १

पं । खुश्यालविजय ग । पं । देव स । राजनगरमध्ये १

पं । मोहनसागर ग । पं । शिव स । पालणपुर १ वगदा२ घोडीयाल ३ चित्रोडी ४ सलिमकोट ५ पांचडा ६ धनाली ७ मोरीओ ८

पं । रूपविजय ग । पं । पद्म स । राजनगरमध्ये १

पं । राजविजय ग । पं । रूप स । पं । जीतविजय ग । पं । उमेद स । इल्लोल १

पं । देवविजय ग । पं । कांति स । पं । जीतविजय ग । पं । शुभ स । आगलोड १ सिरदारपुर २

पं । मनरूपविजय ग । पं । मया स । सावली १ खंड-ब्रह्मानी २

पं । उत्तमविजय ग । पं । वल्लभ स । पं । सुखविजय ग । पं । अमृत स । राधनपुर १ अणवरपुरो २ गाज-दीपुरो ३

पं । विनयविजय ग । पं । कल्याण स । पं । रुषभविजय ग । पं । जिन स ! मीयां १ अनस्तु २

पं । पुन्यविजय ग । पं । दीपविजय ग । पं । कृष्ण स । वीसलनगर १ डाभला २ कडा ३ गुंजा ४

पं । मोतीविजय ग । पं । मुक्ति स । वखतापुर १ जांमला२

पं । नीतीविजय ग । पं । तेज स । थिरा १ जामपर २ कसदा ३ उंदरा ४

पं । कनकविजय ग । पं । कपुर स । हाफु १ हरसोर २

पं । लालचंद्र ग । पं । प्रेम स । सोरटदेशे वलय १

पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । सुबुद्धि स । वडोदरा १ डभोई २

पं । रूपविजय ग । पं । राज स । सिद्धपुर १ पाषल २ भमांणा ३ मीलोट ४ कमालपुर ५ राफु ६

पं । दीपविजय ग । पं । भाव स । पं । भक्तिविजय ग । पं । विवेक स । झीणोर १ भ्रापरा २ :

पं । फतेविजय ग । पं । जेत स । वाव १ कुआला २ थिराद ३

पं। शुभविजय ग । पं । कल्याण स । संखेसर १ पंचा-सर २

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । रंग स । भरुअच १ देज-वारो २

पं । भक्तिविजय ग । पं । किस्तुर स दक्षणदेश ।

पं । रूपविजय ग । पं । मोहन स । चानसमो १ वडावलि २ गामु ३

पं । चतुरविजय ग । पं । न्याय स । गढ १ मथा २ मेडाणा ३

पं । जयविजय ग । पं । हर्ष स । भावनगर १ वरतेज२

पं । किस्तुरविजय ग । पं । मोहन स । धोलेरो १ पिंपली २

पं । नायकविजय ग । पं । मुक्तिविजय ग । पं । भीम स । वणोद १ पाटडी २ मांडल ३

पं । खेमविजय ग । पं । मणि स । भाभर १ मोरवाडो २

पं । नायकविजय ग । पं । दीप स । पं । लब्धिविजय ग ।

पं । लावण्य स । समी १ सातलपुर २ दूधषा ३ वेड ४

पं । माणिक्यविजय ग । पं । हस्ति स । रणासण १

पं । मोहनविजय ग । पं । चतुर स । पं । कुंअरविजय ग । पं । हेम स । दिकावाडो १ कुंआरद २

पं । खुस्यालवर्धन ग । पं । धर्म्म स । वढवाण १ ध्रांगधरा २

पं । रामविजय ग । पं नेम स । लिंबडी १ राणपुर २ सीआणी ३

पं । हीरसागर ग । पं । चतुर स । चुडा १

पं । मुक्तिविजय ग । पं । गुलाल स । पं । अमीविजय ग । पं । मुक्ति स । वसु १ सासम २

पं । पद्मविजय ग । पं । रवि स । दशाडो १ कुअर २ कलाडो ३

पं । तत्त्वविजय ग । पं । किर्ति स । वडगांम १

पं । विद्याविजय ग । उ । श्री सौभाग्य स । मुंजडी १ चांगा २

पं । प्रेमविजय ग । पं । चतुर स । मसाणा १ कडी २ छठीयारडो ३ मणोद ४

पं । प्रतापविजय ग । पं । भवान स । वडादरो १ जंबु-सर २

पं । विवेकविजय ग । पं । हंस स । ईडर १

पं । गौतमविजय ग । पं । ग्यान स । विहारा १ सोवन-गढ २

पं । भीमविजय ग । पं । हेम स । व्हांधणोज १ नंदासण २

पं । ग्यानविजय ग । पं । रवि स । धोला १ सकलाणा २

पं । धनसागर ग । पं । फते स । गोभावी १

पं । जयविजय ग । पं । दीप स । मातर १

पं । हर्षविजय ग । पं । गुलाल स । } वडगांम १
पं । भाणविजय ग । पं । हर्ष स । } मांडक २

पं । रविविजय ग । पं । दया लविजय ग । पं । रूप स । गोत्रको १ वाराही २

पं । सुबुद्धिविजय ग । पं । गुलाब स । चंदर १

पं । भाग्य विजय ग । पं । अमृत स । वडाली १ वडन-गर २ टींटोइ ३

पं । भीमविजय ग । पं । सुमति स । अंबासण १ कुकु-आव २ पाडला ३ केशरडी ४

पं । धर्म्मविजय ग । पं । पुन्य स । चांणसोल १

पं । पद्मविजय ग । पं । भाग्य स । आंतरोली १

पं । कांतिविजय ग । पं । दोलत स । मरीयद १

पं । गुमानविजय ग । पं । रूप स । चिलोडा १ वदरको २

पं । मुक्तिविजय ग । पं । प्रताप स । गोला १

पं । कुंअरविजय ग । पं । लक्ष्मी स । सोइगांम १ वेणप २ उबोसण ३

पं । महिमाविजय ग । पं । नेम स । खंभात १ धांधली २

पं । जसविजय ग । पं । उत्तम स । वजाणा १

पं । चतुरविजय ग । पं । नवल स । खराळु १ ऊंमता २

पं । क्षेमाविजय ग । पं । प्रताप स । मजादर १

पं । हीरविजय ग । पं । लाल स । अमनगर १

पं । रत्नविजय ग । पं । खुस्याल स । रुपाल १

पं । हर्षविजय ग । पं । सुजाण स । नांनोदरो १

पं । हीनविजय ग । पं । मेघ स । गणादबहि:

पं । दीपविजय ग । पं । विनय स । पीलुचो १ नांदोतरो २

पं । मानविजय ग । पं । विनय स । धानेरा १ डुआ २ सरडा ३

पं । लक्ष्मीविजय ग । पं । खुशाल स । कोट १ गांगड २

पं । फते कुशल ग । पं जीत स । दक्षणदेश

पं । फतेविजय ग । पं । भाण स । सांकरा १ गानेर २ वागड ३ वांमा ४

पं । अमृतविजय ग । पं । रंग स । नडीयाद १

पं । किस्तुरविजय ग । पं । गोकल स । मगरवाडा १

पं । देवचंद्र ग । पं । दुलि स । मोहनपुर १

पं । विद्याविजय ग पं । रूप स । पं । जयविजय ग । पं । विद्या स । दक्षणदेश एवला १

पं । हितविजय ग । पं । हंस स । दक्षणदेश ब्रांनपुर १

पं । रुचिविजय ग । पं । ग्यान स । मुंजपुर १

पं । यशविजय ग । पं । नेम स । पादरा १ मोभा-
सादडा२ नवसारी ३
पं । मुक्तिविजय ग । पं । नेम स । वीरसद १
पं । सुखविजय ग । पं । प्रमाण स । पालीताणामध्यें१
पं । नित्यविजय ग । पं । हर्ष स । पेटलाद१
पं । दयासोम ग । पं । जीत स । ईटोलो१
पं । सुंदरचंद्र ग । पं । दुलि स । डायलाणा १
पं । उत्तमविजय ग । पं । राजेंद्रस । देवाडभा १
पं । मोतीविजय ग । पं । धन स । सीपर १
पं । यशविजय ग । पं । हेम स । भगवा १
पं । लाल विजय ग । पं । किस्तुर स । बालोल १

अत्रोद्धरितक्षेत्रादिसत्यापना अस्माभिर्विधेयेति मंगलं ।। समस्तसाधु समुदाय येगं । अपरं सहु पट्टाप्रमाणे पोता २ नें क्षेत्रादेश जई पोहचज्यो । जे कोई पारका क्षेत्र मांहि रेहस्यें तथा क्षेत्र आलटपालट करस्यें । त । क्षेत्र क्रय विक्रय करस्यें । त । चोमासा मांहि कोई फिरस्यें हिरस्यें । त । कोई ग्रहस्थो थकी चढी बोलस्यें तो तेहनें आकरो उपालंभ आवस्यें । सर्वथा गुदरास्यई नहीं गुद-रवाज श्री श्रीजीनी आणछइं । एहवुं जाणि मर्यादा मांहि प्रवर्त्तवुं ।। ।। श्री ।। श्री ।।

सदयवत्स सावलिंगानी जैन कथा.

(सद्गत श्रीयुत चिमनलाल डा. दलाल. एम्. ए.)

[सद्गत विद्वान श्रावक श्रीयुत चिमनलाल डाह्याभाई दलाल एम्. ए. जैन साहित्यने लगता जे छुटा छवाया बे चार लेखो लख्या हता ते बधा एकज संग्रहमां गळवाई रहे तेवा उद्देशथी तेमना ए लेखोने जैन साहित्यसंशोधकमां क्रमथी प्रगट करवानो विचार राख्यो छे अने तेमांनो आ प्रथम लेख छे. आ लेख तेमणे 'वसन्त' पत्रना संवत १९७२ ना चैत्रना अंकमां प्रकट कराव्यो हतो.—मुनिजिनविजय]

*सदेवंत सावळिंगानी कथा गुजरातमां आबालवृद्ध जाणीती छे. तेना आठ भवना नेह तथा विजोगनी वार्ताओ पण प्रेमथी वंचाय छे. आ कथा हमणांज नहीं पण जुना वखतमां पण हिंदुस्ताननी जुदी जुदी भाषाओमां लोकप्रिय हती. अने तेथी करीने कविओए पोतानी कवित्वशक्ति सूदानां पराक्रमो तथा सूदा–सावळिंगानो अद्भुत प्रेम वर्णववामां बतावेलो छे आ कथा जेटली लोकप्रिय छे तेटलीज जुदा जुदा रूपमां मळी आवे छे. [१] संस्कृतमां रत्नशेखरना शिष्य हर्षवर्धननी सदयवत्सकथा (गद्यमां): आ कथा सं. १५१० —३० ना अरसामां रचायेली लागे छे. [२] प्राचीन गुजरातीमां भीम कविनो सदयवत्स वीरप्रबंध उर्फे सदयवत्सवीरचरित्र. [३] कर्ताना नाम वगरनी (वणु करीने जैन) सदयवच्छ सावलिंगा चउपइ. [४] संवत् १५९७ मां रचायेली कीर्तिवर्धननी सदयवत्स सावलिंगा चउपई. [५] मारवाडी भाषामां सं. १ ९७ मां लखायेली सदेवच्छ सावलिंगानी वात दूहा साथे.

[६] आ उपरांत गूजरातीमां नित्यलाभ नामना जैन साधुए सदयवत्स सावलिंगा चउपई तथा हिंदीमां सदेवंत सावळ्याका दूहा पण जणायला छे.

लोककथाना सागर रूप कथासरित्सागरमां सदयवत्सनी कथा जणाती नथी; परंतु उज्जयिनी, हरसिद्धिमाता, प्रतिष्ठान तथा शालिवाहन, बावन, वीर खापरीओ चोर,

---

*संस्कृतमां सदयवत्स, प्राकृतमां सुदयवच्छ, सुदवच्छ तेना सुद; गूजरातीमां सूदो, सदयवच्छ अने सदेवंत; मारवाडीमां तथा हिंदीमां सूदो तथा सदेवच्छ एवां नामो छे. सावलिंगाने केटलाक ठेकाणे सावलिंगी पण कही छे.

२ श्रीरत्नशेखरगुरुप्रवरप्रसादात
हर्षादिवर्धनगणी सुरसैकपात्रम् ।
चक्रे कथां सदयवत्सकुमारसक्तां
सत्पात्रदानविमलाभयदानरम्याम् ॥

३ श्रीखरतरगच्छगगनदिणंद प्रतपे श्रीजिनहरषसूरींद ।
शिष्य तास बहुविद् विचार दीपति दयारत्न दिणकार ४९.
मुनि कीरतिवरधन शिष्य तास बंधवजनराषण रंगरास ।
गुरुअनुमति निजमनि उल्लास ए कहीयो मे प्रथम अभ्यास
पामें नग पदमणि सुविलास पदमाणि पामैं सखघरवास ।
भणतां लाभे वंछितभोग सुणतां प्रीतमतणो संयोग ॥५१॥
वालभ प्रीयतणी पदमणी जेहना नवी परदेसैं भणी ।
रतिवंछित जे सुणसी सदा ते पामें पग पग संपदा॥५२॥
संवत मुनि निधि रस ससी विजयदसमी रविवार ।
चतुरचाहि रची चोपई मुनिकेशव हितकार ॥ ५३ ॥
वेधक जे वांचे सुणें वंछित पूजे (रे) हाम !
जिम सावलिंगा सुष लह्यो सुदयवत्स सुखठाम ॥५४॥
मैं रचना आहीज रची कविजन परमकृपाल ।
सुणि कैं जि न हांसी करो करिजयो दया दयाल ॥५५॥

तथा सदयवत्सना अद्भुत पराक्रमो उपरथी धारी शकाय छे के आ कथानी उत्पत्ति पण विक्रमनी कथाओ जेवी ज छे अने तेटली ज जूनी छे.

में तपासेली पांच जूदी जूदी कथाओमां आपेली वार्ताओ त्रण विभागमां वहेंची शकाय छे.

उज्जयिनीना राजा प्रभुवत्सने महालक्ष्मी राणीथी सदयवत्स नामनो पुत्र हतो. ते द्यूतने विषे घणो आसक्त हतो. प्रतिष्ठानना राजा शालिवाहननी पुत्री सावलिंगाना स्वयंवरमां सदयवत्सने आमंत्रण आव्युं. राजाए मंत्रिनी साथे सदयवत्सने मोकल्यो. मंत्री कृपण होवाथी कुमारने जोइता पैसा आपे नहीं. स्वयंवरमां कुमार सावलिंगाने पोताना गुणोथी आकर्षीने परण्यो. उज्जयिनीमां महादेव नामने एक दरिद्री ज्योतिषी रहेतो हतो. पोतानी स्त्रीनी प्रेरणाथी राजसभामां प्रभुवत्स राजा पासे आव्यो. राजाए तेने पूछ्युं के तुं कोया शास्त्रमां प्रवीण छे. तेणे कीधुं के नष्टलाभ, भूत, भविष्य, वर्तमान, वगेरे सर्व हुं जाणुं छुं. राजा आ दर्पवाळा वाक्यथी कोप्यो अने पासे रहेला जयमंगळ हस्तिनुं आयुष्य पूछ्युं. महादेवे कीधुं के काले बे पहोर ने मरशे. राजा आथी गुस्से थयो, अने तेने बंदीखानामां नाख्यो. तेनी रक्षार्थे मूकेला जनो हसवा लाग्या के जूओ आणे हस्तिनुं मृत्यु जाण्युं पण पोतानुं कारागृहपतन न जाण्युं.

गगने गणयति गणकश्चंद्रेण समागमं विशाखायाः ।
अन्यासक्तां गृहिणीं कथमपि मूढो न जानाति ॥

राजाए बोलावेला वैद्योए कीधुं के हाथीने कंई पण रोग नथी माटे तेने खानपानथी संतोषवो. राजाए हाथीने चारे तरफथी बंधाव्यो अने रक्षार्थे पुरुषो मूक्या. बीजे दिवसे बपोरे हाथी मदोन्मत्त थइने आलानस्तंभ तोडीने नाठो. चौटामां सौगंधिक, दोसी, नस्तिक, घांची, तेली, तंबोळी, वगेरेनो माल ढोळी फोडीने आगळ दोड्यो. ब्राह्मणनी स्त्रीनी अदरणीना उत्सवनो वरघोडो तेना पीयरथी सासरे जतो हतो त्यां हस्ति आव्यो. लोको नाठा परंतु ब्राह्मणी आभूषण तथा गर्भना भारथी नासी शकी नहीं. हस्तिए तेणीने पकडी, तेणीना पतिए बूम पाडी अने तेणीने बचावे तेने हार वगेरे इनाम आपवानुं कह्युं. सदयवत्से हस्तिने मारीने ब्राह्मणीने छोडावी. राजा खुशी थयो अने कुमारने युवराजपद आप्युं. मंत्रीने चिंता थई के हवे कुमार में तेने लग्न समये पैसा आप्या न हता तेथी मारा उपर वेर राखशे अने मने नक्की खराब करशे. कारण के हवे मारा दिवस भराया छे.

दीहा रुठा तं करइ जं वइरी न करंति ।
दीह पालट्टइ रावणह पत्थर नीर तरंति ॥

आथी तेणे कुमारने कढाववानो उपाय चिंतव्यो. अडदपूरित लोह स्थाल उपर कृष्ण दुकूल आच्छादीने राजाने भेट मोकल्यो.

राजाए कारण पूछ्युं. मंत्रीए कीधुं के एक स्त्रीना कारणथी जेणे सकलमंगलनो कारण जयमंगल हाथी हण्यो तेने तमो यौवराज्य आपो छो. राजा काचा काननो होवाथी पुत्रने राज्यमांथी जता रहेवानो हुकम कर्यो.

दुब्बलकन्ना वंकमुहा अंधगला सगास ।
जेना गुण तुरंगमह तेना माणसदास ॥

कुमारे देश छोडवानो निश्चय कर्यो, कारण के जे देशमां मान तथा प्रतिष्ठा न होय ते देशमां सज्जन पुरुषे रहेवुं उचित नथी.

माण पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडउ चइज्ज ।
मा दुज्जणकरपल्लव दंसिज्जंत भमिज्ज ॥

माताए वार्यो पण रह्यो नहीं. सावलिंगा पण साथे नीकळी. मार्गमां मोटुं रण आव्युं सावलिंगा तृषातुर थई. तेणी समस्यामां बोली.

सामि कुरंगा रणथले जलविण किम् जीवंत ।
सदये कहयुं–हियउ सरोवर प्रेमजल नयणई नीर पीयंत ॥

सदयवत्स समज्यो के तेणी तृषातुर थई छे. तेथी पाणी शोधवा चाल्यो. एक प्रपापालिका देखाई. तेणीए कीधुं के आ हरसिद्धि मातानी प्रपा छे अने जेटलुं पाणी तेटलुं रुधिर आपो तो तेमांथी पाणी अपाय. तेणे कबूल कर्युं कारण के प्रेममां कंई अशक्य नथी.

कीरइ समुद्दतरणं पइसिज्जइ हुयवहंमि जालाए।
एवं लहिज्जइ मरणं किं दुलहं अज्झमिणेहस्स ॥

वृद्धा तेनी साथे गई अने सावलिंगाने पाणी पायुं अने रुधिर माग्युं. कुमार शिरच्छेद करवाने उद्युक्त थयो, हरसिद्धि माता प्रत्यक्ष थई अने कह्युं के में तारी परीक्षाने माटे आ अरण्य वगेरे विकुर्वेलुं छे. तारा अचल साहसथी हुं प्रसन्न थई छुं. हुं अवंती अने प्रतिष्ठान नगरोनी अधिष्ठात्री देवी छुं माटे वर माग. कुमारे द्यूत तथा संग्राममां जय माग्यो. देवीए सार्यादि द्यूतने वास्ते बे पासा, कपर्दक द्यूतने वास्ते कपर्दिक तथा संग्राममां जयने वास्ते लोहक्षुरिका आपी. आगळ चालतां एक कुमारिकाने स्त्रीओना समूहनी वच्चे ध्यान धरती दीठी. सावलिंगा अंदर गई अने तेणीनो वृत्तांत पूछ्यो. कुमारिकाए कह्युं अहींथी पांच गाउ उपर आवेली द्रागवतीना राजा धरवीरनी स्त्री धारिणीनी कुक्षिथी उत्पन्न थयेली हुं लीलावती नामनी राजकन्या छुं. बंदिजनना मुखथी सदयवत्सना गुण सांभळवाथी आ कामितप्रद तीर्थमां तेने मेळववाना हेतुथी छ महीनाथी हुं ध्यान धरुं छुं. काले हवे काष्ठ भक्षण करवानी छुं. सावलिंगाए सदयवत्स संबंधी हकीकत कही. सर्व नगरमां आव्या. सदयवत्स जोडे लीलावतीनुं लग्न कर्युं. ए अरसामां त्यां धर्मघोष नामना आचार्य आव्या. तेमणे थोडो पण धर्म मनुष्ये करवो ते उपर मृगांकनी कथा कही. सदयवत्स श्रावक धर्म पाम्यो. लीलावतीने पितृगृहे राखीने सदयवत्स सावलिंगा साथे आगळ चाल्यो. रस्तामां पर्वतसंधि उपर शिलाथी आच्छादित एक कंदरा दीठी. बन्ने अंदर पेठा. कंदरामां पांच चोर हता. तेमणे विचार्युं के आ पुरुषने मारीने तेनी सुरुपवती स्त्री लई लइए. चोरोए द्यूत रमवाने आव्हान कर्युं. जे हारे ते पोतानुं शिर मूके एवी शरत करवामां आवी. सदयवत्स जीत्यो पण चोरोनो शिरच्छेद कर्यो नहीं. चोरो प्रसन्न थया अने कह्युं के अमारी पासे अदृष्टांजन, संजीवनी, रससिद्धि, वगेरे विद्याओ छे ते तमने आपीए. सदयवत्से ना पाडी. एक चोर छानेमाने तेना उत्तरीये पद्मिनी पत्र वेष्टित लक्ष मूल्यनो कंचुक बांध्यो. चोरोए कीधुं के संकटमां अमारुं स्मरण करतां तमारी मदद अमे आवीशुं. कुमार आगळ चालतां एक निर्जन नगरमां आव्यो. राजभवनमां आवतां पासे एक स्त्रीनुं रुदन सांभळीने तेणीनी पासे गयो. तेणीए कीधुं के हुं नंदराजानी लक्ष्मी छुं. निर्नाथ होवाथी हुं रुदन करुं छुं माटे तुं मारो पति था. नगरनी निर्जनता विषे पूछतां लक्ष्मीए कीधुं के आ वीरपुर नगरमां एक तापस आव्यो हतो ते स्त्रीथी केवल विरक्त छे एम बताववाने कोई स्त्रीनो स्पर्श थाय तो घणोज गुस्से थतो. एकदा नगरनी वेश्या तेने अडकी राजा पासे फरीयाद जतां वेश्याए कीधुं के ए केवल ढोंगी छे. राजाए परीक्षा करवा माटे तेने पोताना आवासमां आण्यो अने राणी साथे सहवासमां आवे एवी गोठवण करी; राणीने जोईने तापस कामातुर थयो अने भोगनी प्रार्थना करी. राणीए बूम पाडवाथी राजा आव्यो अने तापसने तेणे हण्यो. ते तापस मरीने राक्षस थयो अने पूर्वभवना वेरथी नगरनी आवी स्थिति करी. प्रातःकाले लक्ष्मीए धनना ढगला बताव्या. सदयवत्से सावलिंगाने कह्युं के आ सर्व आपणे आगळ उपर बलिविधान करीने ग्रहण करीशुं. त्यांथी चालतां अनुक्रमे तेओ प्रतिष्ठान नजीक आवी पहोंच्या. पासेना गाममां भद्रने घेर स्थिति करी. सावलिंगाने कह्युं के हुं तारा वास्ते प्रतिष्ठानमांथी तारा पिताना नगरमां प्रवेश वास्ते उचित रथ आभूषण वगेरे लई आवुं. सावलिंगाए कह्युं के पांच दिवसमां नहीं आवो तो हुं काष्ठभक्षण करीश. सदयने प्रतिष्ठानमां प्रवेश करतां एक टूंटक मळ्यो. अपशकुन मानी सदय पाछो फर्यो. टूंटकने खोटुं लागवाथी फरीथी पुष्प खाद्य वगेरे मांगलिक वस्तुओ स्थाळमां भरीने लाव्यो. टूंटके कीधुं के हुं सिंहलना राजानो सुरसुंदर नामनो पुत्र छुं. कौतुकथी हुं ५०० हाथी तथा क्रोड सोनैया साथे आ नगर जोवा आव्यो हतो. परंतु ते सघळुं हुं द्यूतमां हारी गयो अने छेवटे द्यूतकारोए मारा हस्तनाकादिक पण कापी लीधां. ज्यारे दैव रुठे छे त्यारे ते द्यूत रमाडे छे.

देवह रुठइ कांइ करई कीसुं चपेटा देइ ।
केइ वेसाघर पाठवइ केइ रमाडइ जूअ ॥

बन्ने जणा नगरमां पेठा. रस्तामां सूर्यप्रासादमां विवादनो कलह सांभळ्यो. राजानी मानीती कामसेना नामनी वेश्याए दंताकना पुत्र सोमदत्त श्रेष्ठिए तेणीने घेर आवीने तेणी साथे संभोग कर्यो एवुं स्वप्नुं दीठुं. आथी तेणीए सोमदत्त पासे ते संभोगना नपक्षुद्रमां लेवा पोतानी अक्काने मोकली. अक्काए लांघणो करी पण सोमदत्ते पाई पण आपी नही. आनो विवाद सूर्यप्रासादमां चालतो हतो. तेनो आज त्रीजो दिवस हतो. कुमारने तेनो निर्णयकर्ता नीम्यो. कुमारे श्रेष्ठिने कीधुं के राजमान्यनो विरोध करवाथी दंतिलमंत्रीनी माफक दुःख पामे छे मांटे तेणीने पैसा आप. श्रेष्ठि पासे कुमारे धन मंगाव्युं अने वेश्याने कीधुं के अर्थ धन ले. तेणीए ना पाडी. छेवटे कुमारे एक आदर्श मंगावीने तेनी सामे सघळुं धन मूक्युं. वेश्याने कीधुं के आमानुं प्रतिबिंबित धन ले, प्रत्यक्ष छे ते नही. कारण के स्वप्न अने प्रतिबिम्ब ए सरखी अवस्था छे, वेश्या विलक्षण थईने घेर गई. कामसेना आ वृत्तांत सांभळीने नृत्य करवाना मिषे सूर्यप्रासादमां आवी. कुमारने देखीने तेणी कामज्वरपीडित थई. कुमारने पोताने घेर तेडाव्यो टूंटके निषेध कर्यो. तेणे कुमारने समजाव्यो के वेश्याओ धूर्त होय छे. कारण के

आंखइ रमइ मनइ हसइ जन जाणइ एसी ।
पिण ते मारइ पुरिसनइ जं कठ्ठ करवत्त ॥

कुमार वार्यो छतां वेश्याने घेर गयो. आग्रहथी पांच दिवस त्यां रह्यो, नगरमां द्यूत रमवा जतां घणुं स्वर्ण मेळव्यूं. थोडोक भाग टूंटकने सावलिंगा वास्ते आभूषणादिक खरीदवा आप्यो. बीजो बधो वेश्याने बक्षीस आप्यो. पांचमे दिवसे कुमारे रजा मांगतां वेश्याए रहेवानो घणो आग्रह करतां तेनुं उत्तरीय खेच्युं. तेमांथी एक वेष्टन भोंय उपर पड्युं. वेश्याए ते छोडी जोतां रत्नमय कंचुक दीठो अने ते कुमार पासे माग्यो. कुमारे कंचुक आप्यो अने ते पहेरीने राजसभामां जतां मार्गमां एक श्रेष्ठिए तेणीने नीहाळीने पोतानो चोरायला कंचुक वेश्याए पहेर्यो छे ते खात्री करी लिधी. महाजन लोक आ संबंधी राजा पासे फरीयाद लईने गयूं. राजाए पूछ्युं के तमारूं शुं चोरायुं छे. उत्तर मळ्यो के चोरायली चीज वेश्याना उरःस्थलनुं मंडन छे. राजाए वेश्याने पूछ्यूं. वेश्याए कीधुं के अमारे त्यां अनेक नटविटचौरादिक आवे छे अने जो अमे आम नाम दईए तो अमारो रोजगार तूटी जाय. राजाए विचार्युं के गमे तेटलुं बहु मान करो तो पण वेश्या पोतानी थती नथी. कारण के

पासा वेसा अग्गि जल ठग ठक्कुर सोनार ।
ए दस होइ न अप्पणा मंकड बडुअ बिडाल ॥

राजाए वेश्याने शूळि उपर आरोपवानो हुकम कर्यो. कुमारने खबर थतां ते शूळिस्थाने गयो अने तलारक्षकने कीधुं के हुं चोर छुं माटे वेश्याने छोड. तलारक्षके ना मानतां कुमारे बळात्कारे वेश्याने छोडावी. तलारक्षक सामो थयो. कुमारे तेनी नासिका छेदी. राजाए सेना मोकली तेने पण कुमारे हरावी. पांचमो दिवस होवाथी एक दिवसने माटे सोमदत्तने प्रतिभू तरीके मूकीने कुमारे काष्ठभक्षण करवा तत्पर थयेली सावलिंगाने बचावी. प्रतिज्ञा प्रमाणे कुमार त्यांथी पाछो शूळिस्थाने आव्यो. राजाए बावन वीर मोकल्या तेवामां युद्ध जोवाने अनेक विद्यासिद्ध युद्धकौतुकी अभिनवनारद एक पुरुष आव्यो. तेणे कुमारनी अवस्था आगळना पांच चोरोने जईने कही. चोरो तरत मददे आव्या. बावनवीर पण हार्या. राजाए कुमारनुं नाम पूछ्युं. कुमारे उत्तर आप्यो नही तेथी वेश्याने पूछ्युं. वेश्याए कुमारनुं खड्ग रजू कर्युं. कुमारे कीधुं के ए खड्ग मे सदयवत्स पासेथी द्यूतमां जीतीने मळवेलुं छे. राजाए कुमारने आंतरवाने गजघटा बोलावी परंतु कुमारे सिंहनादथी नसाडी मूकी. राजा पगे लागतो सामे आव्यो. कुमार विनयथी भेट्यो अने तेणे सघळो वृत्तांत कह्यो. राजाए कीधुं दैवनी गति विचित्र छे. कारण के—

उयणं भुवणक्कमणं अत्थमणं तह य एगदिवसंमि ।
सुरस्स वि तिन्नि दसा का गणणा इयरलोगस्स ॥

राजाए पोताना पुत्र शक्तिसिंहने मोकलीने सावलिंगाने तेडावी लीधी. बन्नेए केटलोक काळ प्रतिष्ठानमां रहीने आनंदमां गाल्यो. सदयवत्से वणिक्, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण एम त्रण मित्रो कर्या. एवामां एक वैदेशिक आव्यो कुमारे तेने पूछ्युं के तमे कांई कौतुक दीठुं ? तेणे कह्युं के तुंबवन नगरमां धनपति श्रेष्ठिना मृत पिता घणी वखत बाळ्यां छतां रात्रे सजीवन थईने घेर आवे छे. कुमार आ सांभळीने मित्रोसाथे ते नगर तरफ चाल्यो. तुंबवन नगरमां प्रवेश करतां एक ब्राह्मणनी पुत्रीने सीकोत्तरी वळगी हती तेने छोडावीने ब्राह्मण मित्रने ते कन्या परणावी. व्यवहारीने घेर जईने तेना पितानुं शब स्मशानमां लीधुं. सवारे बाळवुं एम नक्की करीने वाराफरती सर्वे एकेक पहोर जागता रह्या. प्रथम वणिकनी चोकीमां एक स्त्रीनो रुदनस्वर संभळायो. वणिक शबने पोतानी पीठे बांधीने स्त्रीपासे गयो. स्त्रीए कीधुं के आ मारा पतिने शूळ उपर आरोप्यो छे तेने खावानेवास्ते थाल लावी छुं. पण शूळि उंची होवाथी माराथी पहोंचातुं नथी. वणिककुमारे तेणीने उंची करी. ते स्त्री उंची चढीने शूळारोपित पुरुषनुं मांसभक्षण करवा लागी. मांसनो खंड पडवाथी वणिककुमारे ते स्त्रीने पछाडी. नासतां नासतां ते स्त्रीनो कंकणवाळो हाथ वणिके कापी लीधो अने रेतमां दाटी दीधो. बीजा पहोरे ब्राह्मणकुमारे एक राक्षसने राजकुमारीने लईने आवतो दीठो. राजकुमारी साथे भोगप्रार्थना करता ते राक्षसने ब्राह्मणे पाछळ रहीने मार्यो. त्रीजे पहोरे क्षत्रियनो वारो आव्यो. ते शबने बाळवाने देवता लेवा आगळ गयो. त्यां भूतोने खीचडी पकावता दीठा. तेमनी आगळ सात पुरुषो खीचडीमां शाक तरीके खावा बांधेला हता. क्षत्रियकुमारे भूतोने बीवडावीने नसाड्या अने पाषाणथी खीचडीनुं भाजन भागी नाख्युं. बांधेला सात पुरुषो राजकुमारो हता. चोथे पहोरे सदयवत्स उठ्यो. आ समये शब बोल्युं के मारी साथे द्यूत रम. शबमां रहेला वेताले पोतानो बाहु प्रसारीने राजमहलमांथी सोगटा बाजी आणी. जे हारे ते पोतानुं मस्तक मूके तेवुं पण थयुं. वेताल हारतां कुमारे तेनुं मस्तक छेद्युं अने शबने बाळी नाख्युं. प्रभाते श्रेष्ठी पासे गया अने कबुलेलुं धन तथा कन्या मागी. श्रेष्ठीए कीधुं के हुं काले बराबर खात्री करीने आपीश. कुमार राजा पासे फरीयाद लईने गयो. राजाने रात्रिनो सर्व व्यतिकर कह्यो. राजाए पुरावो माग्यो, कापेलो हस्त बतावतां ते राणीनो नीकल्यो. राजानी स्त्री सीकोतरी साबीत थई. राजकुमारो तथा राजकुमारीने पण रजु कर्या. मंत्रिए स्त्रीचरित्र उपर एक दृष्टांत कह्युं. जे व्यंतरो होय छे ते मरता नथी ते तो फक्त " ले गुण सिरि गांठडी " ना दृष्टांतमां जेम कौतक प्रियज होय छे. परंतु जे मनुष्यो राक्षसी विद्यानी उपासना करीने मांसलोलुपो राक्षसनी माफक आचरे छे तेओनुंज मृत्यु थाय छे. श्रेष्ठिए तोपण बीजे दिवसेज खात्री करीने धन आप्युं. वणिकपुत्रने ते श्रेष्ठीनी कुमारी परणावी अने क्षत्रियने राजकन्या परणावी. सदयवत्स त्यांथी प्रथम कहेला निर्जनपुरमां आव्यो. त्यां राक्षसने आराधीने वीरकोट नामनुं नगर वसाव्युं सदयवत्सने लीलावती तथा सावलिंगाथी वनवीर तथा वीरभानु नामना बे पुत्रो थया. सदयवत्से कालिकाचार्य चतुर्थीनी संवत्सरी करनार पासे पोते वसावेला नगरमां वीरजिनेश्वरनां मंदिरमां प्रतिष्ठा करावी. एवामां उज्जयिनीथी आवेला एक भाटना मुखथी सांभल्युं के उज्जयिनीने सीमाडाना राजाओए छ मासथी घेरो घालेलो छे. शत्रुने हरावबाने सदयवत्सना पुत्रो गया. पाछळथी सदयवत्स पण गयो. शत्रुओने हराव्या, प्रभुवत्से सदयवत्सने राज्य आप्युं. वीरकोटनुं राज्य कुमारोने आप्युं. कोईक समये अवंतीमां कालिकाचार्य पधार्या तेमणे सदयवत्सनो पूर्वभव कह्यो. विंध्याचलनी पल्लीमां गोत्राक नामना नगरमां व्याघ्र राजाने धारलदेवीनी कुक्षिथी गुणसुंदर नामनो भद्रकपरिणामी पुत्र हतो. श्यामार्य गुरु पासे जीवदया तथा अभयदाननो उपदेश पाम्यो अने सम्यक्त्वमूल बार व्रत अंगीकार कर्या. गुणसुंदर अन्नपानथी मुनिओने प्रतिलाभतो तथा जीवदया तथा अभयदान आपवामां तत्पर रहेतो. उद्यानमां क्रीडा करतां चार पुरुषो तेने मल्या,

तेओए कह्युं के अमने वेतालपुर नगरमां देवीना बलिदान माटे पकड्या हता त्यांथी अमे नासी आवेला छीए. ते नगरना लोको हिंसालु छे अने शोणितप्रिया नामनी तेमनी देवी थोडा काळनी सिद्धिने माटे महिषनो अने वधारे भारे माटे सिद्धि मनुष्यनो बलि मागे छे. गुणसुंदर त्यां गयो अने बलि आपता लोकोने नसाडीने माणसने बचाव्यो. कुमारे पछी देवी समक्ष पोताना कंठे खडग धर्युं. देवीए तेनो हाथ पकड्यो. देवीने प्रतिबोधीने जीवहिंसा बंद करावी. अंते आराधनाथी मृत्यु पाम्यो. कालिकाचार्ये कह्युं के तुं जीवदया तथा अभयदानथी आ जन्ममां पराक्रम, तथा मुनिने दान आपवाथी भोग पाम्यो छुं. सदयवत्सने जातिस्मरण थयुं. सदयवत्स श्रावक धर्म आराधीने स्वर्गे गयो. आवती उत्सर्पिणीमां मोक्षे जशे. आ कथा रत्नशेखरना शिष्य हर्षवर्धनगणिये रचेली छे. रच्या संवत् आपली नथी पण सं० १५१०-३० ना अरसामां रचायेली होवी जोइए.

डॉ० हर्मन जेकोबीनी जैन सूत्रोनी प्रस्तावना.

(प्रथम भाग- चालु.)

अनुवादक—श्रीयुत अंबालाल चतुरभाई शाहा, बी. ए.

[प्रथम भाग (अंक २) ना पृष्ठ ९७ उपर अपूर्ण रहेली प्रस्तावनानो आ अवशेष भाग छे. एकरीते आ ते प्रस्तावनानुं परिशिष्टज छे. कारण के एना मूळ लेखके एने तेज रूपे लख्युं छे. आमां आचारांग अने कल्पसूत्र एम बे जैन सूत्रोनी रचनाशैली विगेरेनुं वर्णन करवामां आव्युं छे.—संपादक.]

हवे आ पुस्तकमां जे बे सूत्रोनुं भाषांतर करवामां आवेलुं छे तेना विषयमां बे शब्दो लखवा जेटलुं मारुं कर्तव्य बाकी रह्युं छे.

प्रथम सूत्रनुं नाम आचारांग सूत्र छे जे केटलीक वखते सामायिकना नामे ओळखाय छे. ए सूत्र ११ अंगो पैकीनुं प्रथम अंग छे. जे चार अनुयोगो अर्थात् विषयोमां सर्व सिद्धान्तो विभक्त थएला छे तेमांना चोथा अनुयोगना विषयभूत गणाता आचारनुं आ सूत्रमां वर्णन करेलुं छे. चार अनुयोगोनां नाम आ प्रमाणेः—धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग अने चरणकरणानुयोग. आ सूत्रना बे श्रुतस्कन्धो छे जे परस्पर भाषाशैली तथा वर्णनपद्धतिमां एक बीजाथी घणाज भिन्न पडे छे. बीजा श्रुतस्कन्धना पेटा-विभागोने चूलाओ अर्थात परिशिष्टो कहेला छे. आ उपरथी प्रथम श्रुतस्कन्ध ज वास्तविक प्राचीन सूत्र होय तेम जणाय छे. आवोज मत प्राचीन समयमां पण प्रचलित हतो, तेनो पुरावो आ सूत्रनी विद्यमान एवी सौथी प्राचीन टीकामां करेली सूचना उपरथी स्पष्ट मळी आवे छे. सामान्य रीवाज प्रमाणे दरेक ग्रंथमां आदि, मध्य अने अंत एम त्रण प्रकारनां मंगल-कथनो मानवामां आवे छे, ते अनुसारे शीलांकाचार्ये पोतानी टीकामां आ सूत्रना पण त्रण मंगलनो उल्लेख करेलो छे. तेमां आदि मंगल तरीके तो प्रथम श्रुतस्कन्धना प्रथम अध्ययनना पहेला उद्देशकना प्रारंभिक वाक्यने, मध्य मंगल तरीके पांचमां अध्ययनना पांचमां उद्देशकना प्रथम वाक्यने अने अंत मंगल सोळमी

१ आ टीका कांई पहेलीज टीका छे एम नथी. कारण के शीलांगाचार्ये पण पोतानी टीकामां गंधहस्तिनी टीकानो उल्लेख करेलो छे

गाथाना उत्तरार्द्धने टांक्युं छे. आ उपरथी एम स्पष्ट समजाय छे के टीकाकार आचारांग सूत्रनी समाप्ति प्रथम श्रुतस्कन्धना आठमा अध्ययनना चोथा उद्देशकनी सोळमी गाथा—के जे ए श्रुतस्कन्धनी उपान्त्य गाथा छे—साथे थएली माने छे. आथी ए सिद्ध थाय छे के आचारांग सूत्रनो सौथी प्राचीन भाग ते तेनो प्रथम श्रुतस्कन्ध छे. बाकीनो भाग पाछळथी उमेरवामां आव्यो छे. आ (प्रथम) श्रुतस्कन्ध पोताना विषयमां परिपूर्ण छे. तेमां श्रद्धाशील आत्माओमाटे मोक्षपर्यंतना मार्गनुं गूढ भाषामां वर्णन करेलुं छे. एनुं अंतिम अध्ययन के जे तीर्थंकरे सहेला कीर्तिकर परीषहोनुं लोकाकर्षक वर्णन आपतुं एक विजयगीत जेवुं छे, ते प्रायः पाछळना समयमां उमेरवामां आवेलुं छे; तो पण जे स्वरूपमां ते अत्यारे उपलब्ध थाय छे ते रूप एक साचा योगीजीवननुं उच्च आदर्श दर्शक होई घणुं महत्त्वनुं छे. आ सूत्रनो मोटो भाग एक अत्यंत भ्रांत एवा गद्यरूपमां लखाएलो छे. तेमां घणा ठेकाणे वाक्यांशो नजरे पडे छे तथा केटलांक स्थळोए तो एवां पण वाक्यो मळी आवे छे जेनो कोई अर्थ बेशी शकतो नथी. आ शैली जोई आपणने ब्राह्मणोना सूत्र–ग्रंथोनुं स्मरण थई आवे छे खरुं; परंतु ए बेमां वच्चे एक मोटो भेद ए छे के ब्राह्मण ग्रंथोमां एकाकी जणातां सूत्रो, ते विचारोनी तार्किक शृंखलाना आवश्यक अंकोडा–अवयवो रूप छे; पण आ सूत्रमां नजरे पडता असंबद्ध वाक्यो या वाक्यांशो कोई एक मुख्य विचारना स्पष्टीकरण करवा अर्थे एक बीजा साथे संबंध धरावता होय तेम जणातुं नथी. तेने वांची जथाथी आपणने ते कोई तर्क संयुक्त चर्चानो बोध करावनार कोई संगत शास्त्र होय एम नथी जणातुं; परंतु ते वखतमां विद्यमान केटलाक पवित्र ग्रंथोमांना अवतरणोनो बनेलो एक उपदेशक वचनसंग्रह होय तेम जणाय छे. मारा आ अनुमाननी सत्यता, ए सूत्रना गद्य भागमां अहीं तहीं वेराएली जे गाथाओ अथवा गाथांशो मळी आवे छे, तेनाथी सिद्ध थाय छे. कारण के आमांना अनेक गाथांशो ते सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन अने दशवैकालिक सूत्रोमां जडी आवती गाथाओ अथवा गाथाना पादोने घणा[*] मळता आवे छे. आ उपरथी ए बधा पादो या पद्योने ते वखतमां प्रमाणभूत गणाता ग्रंथोना अवतरणो रूप मानवां जोईए. आज निर्णय केटलाक गद्य वाक्योने—अने तेमां खास करीने जे जे वाक्यो स्वयं अपर्याप्त छे तेमने, पण लागु पाडवो जोईए. आ अवतरणोनी पण वधारे समजुती आपवा माटे अगर तो तेमनी अर्थपूर्ति करवा माटे बीजा पण तेवां वाक्यो अगर पद्यो उमेरेलां छे, जेमांना केटलाक नमुना नीचे प्रमाणे छेः—

१, ४, १, ३, मां आवेल 'अहो य राओ गतमाणे धीरे' आ त्रिष्टुभ छंदनो एक पादमात्र होई स्पष्टरीते अवतरण जणाय छे. एनो पछी आवेल 'सया आगयपन्नाणे' ए वाक्यांश, ए अवतरणनुं अर्थ बोधन करे छे; जेम के 'अहो य राओ=सया' अने 'गतमाणे धीरे=आगयपन्नाणे' आ पछीनो वाक्यांश 'पमत्ते बहिया पास' छे. जे संभवितरीते एक श्लोकनो पाद छे. आ पछीनुं वाक्य 'अप्पमत्ते सया परक्कमेज्जा' ए छे; अने ते उपरना वाक्यनुं नैतिक तारण छे. आ उपरथी आनो अनुवाद आपणे आ प्रमाणे करीएः—'रातने दिवस प्रयत्न करतो अने धीर' अर्थात् सदा तत्पर ज्ञानवाळो 'जो प्रामादिओ बहार उभा रहे छे' (तेटला माटे) अप्रमत्तरीते सदा प्रवृत्त थवुं जोईए.' टीकाकार अवतरण अने तेना टिप्पणने जुदा पाडता नथी परंतु ते तो आ बधा पदोने एक वाक्यना अवयवो समजे छे, अने तेनो अर्थ मारा अनुवादना मूळमां (पृ. ३७) जेम लखेलो छे तेज प्रमाणे ते आपे छे.

अनी माफक बीजां पण घणां ठेकाणे, शीलांके पोतानी टीकामां जेवो अर्थ कर्यो छे तेवो ज अर्थ में मारा अनुवादमां आपवो उचित धार्यो छे. कारणके केटलीक वखत अवतरण अने ते पछीना मूळ ग्रंथ–भागने अलग तारवी काढवानुं काम अत्यंत अशक्य होय तेम जणायुं छे. तेथी सिद्ध करी बतावी शकाय तेवा पद्यांशोने छोडी

बाकीनां अवतरणोने अलग पाडवानुं साहस मे स्वीकार्यु नथी. आ कारणथी मारे उपरोल्लिखित एक श्लोकना पाद जेवा अन्य पादोने, तेमना तरफ लक्ष्य खेच्या सिवाय जता करवा पडया छे. वात ए छे के प्रत्येक गद्यात्मक ग्रंथमां आवा श्लोक-पादो नजरे पडयां करे छे के जेमने पद्यरूपे गणावाना आशयथी नथी ज उध्दृत करवामां आव्या ! आ कारणथी आपणा आ ग्रंथमां पण तेमांना, घणा खरा शंकास्पद होवा छतां, क्वचितज श्लोकना पादो जेवा देखाय ए स्वाभाविक छे. आ करतां पण मोटामां मोटी मुस्केली तो गद्यात्मक अवतरणो शोधी--तारवी काढवामां पडे छे. आवी जातनां वास्तविक अवतरणो पण आ प्रमाणे मेळवेलां छेः-१, ३, १, १ मां आवेल 'सुत्ता अमुणी, मुणिणो सततं जागरंति' आ वाक्योनी भाषा, अन्य गद्यात्मक भागथी स्पष्ट भिन्न पडे छे. छतां पण आ अवतरणो अने मूळ ग्रंथ-भाग वच्चे लीटी दोरी बतावबानुं काम अशक्य छे. उपर जे कांई कहेवामां आव्युं छे ते उपर थी ए स्पष्ट समजी शकाशे के प्राथमिक अनुवाद समये आचारांगना प्रथम श्रुतस्कंध जेवा ग्रंथने योग्य न्याय आपवानुं काम केटलुं मुस्केली भर्युं छे. तेथी घणांक स्थलोमां तो, मूळ सूत्रनो अर्थ, जेवो टीकाकारे आपेलो छे तेवोज मे आपेलो छे. एटला माटे टीकाकारोना संप्रदायद्वारा संरक्षित अर्थावबोध करतां आगळ वधी मूळ सूत्रकारना असली आशयने अनुसरता अर्थनुं उद्‌घाटन करवानुं कार्य हुं भावि संशोधको उपर छोडी दउं छुं.

पूर्वकालमां प्रथम श्रुतस्कंधमां हालनां आठ अध्ययनो उपरांत एक महापरिण्णा नामनुं नवमुं अध्ययन हतुं, जे अत्यारे नष्ट थएलुं छे. समवायांग, नन्दी, आवश्यक-निर्युक्ति अने विधिप्रभामांना उल्लेखो अनुसार ते नवमुं हतुं; परंतु आचारांगसूत्रनी निर्युक्ति के जेमां आचारांगसूत्रना प्रत्येक अध्ययन तथा उद्देशकमां आवेला विषयोनी व्यवस्थित यादी आपेली छे, तेना, तथा शीलांकादि टीकाकारोना मतानुसार ते अध्ययन आठमुं हतुं[२]. तेमां सात उद्देशको हता अने भिक्षु जीवनना संबंधमां केटलुक विस्तृत वर्णन आपेलुं हतुं. कदाच, आज विषयनी विस्तृत हकीकत पुनः बीजा श्रुतस्कंधमां आवती होवाथी ते महापरिन्ना वधारे पडतुं थवाने लीधे नष्ट थयुं होय तो ते संभवित छे.

बीजा श्रुतस्कंधमां चार चूलाओ एटले परिशिष्ट रूप चार विभागो छे. असलमां तेनी पांच चूलाओ गणाती हती परंतु निसीहज्झयण नामनी पांचमी चूला हालमां एक जुदी स्वतंत्र सूत्र तरीके मनाय छे. पहेली अने बीजी चूलामां आचारविषयक नियमो आपेला छे. ते बेनी रचनाशैली प्रथम श्रुतस्कंधथी घणीज जुदी जातनी छे. ते तद्दन कंटाळा भरेली छे एटलुंज नहीं परंतु सूत्रने पण योग्य नथी. आ भागनो अनुवाद करवामां तेमां आवता अनेकानेक पारिभाषिक शब्दोने लीधे घणी मुस्केली पडी छे. आमांना केटलाक शब्दो तो एवा छे के जे टीकाकारे करेला स्पष्टीकरण छतां पण समजी शकाता नथी. बीजा केटलाक शब्दोनुं टीकाकारे मात्र संस्कृत रूपज आपेलुं छे अने अर्वाचीन जैनोने ते समजवामां व्याख्यानी जरूर न होय तेवो देखाय छे. पण आवा शब्दोना संबंधमां अमारी स्थिति जुदी ज छे. कारण के आ शब्दोने ज्यारे कोई पण यति सहज समजावी शके छे त्यारे ते माटे अमारे खास कल्पनाथी काम लेवुं पडे छे. एटला माटे हुं आशा राखुं छुं के भारतवर्षीय विद्वानो जेओ यतियो पासेथी आवी बाबतोना सहेलाईथी खुलासाओ मेळवी शके छेः तेओ आ विषयमां पोतानुं लक्ष्य आपशे अने जे केटलाक पारिभाषिक शब्दोना अर्थो युरोपीय विद्वान जैन ग्रंथोनी सहायताथी करी शकतो नथी तेना तेओ यथार्थ अने प्रमाणभूत खुलासा मेळवशे.

त्रीजी अने चोथी चूला, ते परिशिष्ट पर्वना नवमा सर्गमां जणाव्या प्रमाणे, पूर्व विदेहनामना एक पौराणिक भूखंडमां वसता एवा सीमंधर स्वामिए स्थूलिभद्रनी मोटी बहेनने कही हती. आ परंपरागत कथन बणुंज विलक्षण मालम पडे छे, के जे आचारांग सूत्रना छेला बे प्रकरणोने, जेनी रचनाशैलीना समयना विषयमां आपणा शब्दोमां

२ जुओ कलकत्ता आवृत्ति. १. पृ. ४३५.

कहिए तो, तेवाज विषयना वर्णन करवावाळा कल्पसूत्रनी रचना समयना समकालीन ठरावी दे छे.

त्रीजी चूला ते खरेखर घणीज महत्त्वनी छे. अने आनुं कारण ते तेमां महावीरना जीवन चरित्र माटे मळी आवती हकिकतो छे के—जे हकिकतो ने आधारे कल्पसूत्रमांनुं महावीर चरित्र लखायुं छे. आचारांग सूत्रना घणा गद्य भागो बहुज थोडा फेरफार साथे कल्पसूत्रमां नजरे पडे छे. तेमां, ए उपरांत ऐतिहासिक दृष्टिए महत्त्व धरावती एवी कोई बाबतनो भाग्येज कोई उमेरो थयेलो जोवामां आवे छे. जे मात्र उमेरवामां आव्युं छे ते एक साधारण बनेलुं, तेमज नवी परिस्थितिने अनुरूप थएला जैन ग्रंथोमां पण अनेक स्थळे जोवामां आवतुं, तेवुं वर्णन मात्र छे. आ गद्य भागो उपरांत आचारांग सूत्रमां एवी केटलीक गाथाओ आवेली छे जेनो कल्पसूत्रमां अभाव छे. आ गाथाओने प्रथम श्रुतस्कंधना आठमा अध्ययनमां आवेली गाथाओ जोडे जो आपणे सरखावीए छीए तो आचारांग सूत्रना बे श्रुतस्कंधो वच्चे केटलो मोटो तफावत रहेलो छे ते आपणे सहेजे समजी शकीए छीए. आ बन्ने श्रुतस्कंधोना चर्चित विषयना अंगे कांइज भेद नथी, तेमज वर्णन पण बन्नेमां आर्या गाथामां करवामां आवेलुं छे. परंतु भाषाशैली तथा वृत्तप्रयोगने अंगे दृष्टिगोचर थतो भेद एटलो मोटो जणाय छे के तेना कारण तरीके ते बन्ने श्रुतस्कंधोनी रचना वच्चे एक मोटुं कालान्तर मानवुं ज पडे छे.

बीजी चूलाना उतरार्धमां पंच महाव्रत तथा तेना पचीश अवांतर भेदोनुंज वर्णन आपेलुं होवाथी तेना संबंधमां कांई विवेचन करवानी जरुर नथी. तेमज चोथी चूलानी बार गाथाओना संबंधमां पण एटलुंज कहेवा योग्य छे के ते संभवित रीते प्राचीन छे अने तेने आ स्थळे मुकवानुं कारण पण एटलुंज छे के तेने माटे आनाथी बीजुं अधिक सुंदर स्थान मळ्युं नहीं होय.

आचारांग सूत्रनो मारो आ अनुवाद, मैं, पालिटेक्स्ट सोसायटीमां प्रकट थयेली मारी पोतानी आवृत्तिने आधारे करेलो छे. ते उपरांत मैं आचारांग सूत्रनी कलकत्तानी आवृत्तिमां प्रकाशित थएली टीकाओनो उपयोग करेलो छे. जेमनां नामो नीचे प्रमाणे छेः—

१ शीलांक के जेनुं बीजुं नाम तत्त्वादित्य छे; तेनी टीकाः आ टीकानी रचना शक संवत् ७९८ अर्थात् ई० स० ८७६ मां वाहरी साधुनी सहायताथी समाप्त थई हती.

२ बृहत् खरतर गच्छना आचार्य नामे जिनहंस सूरिनी दीपिका आ दीपिकाः ते शब्दे शब्द टीका उपरथी उपजावी काढेली छे. जो के एमां लख्युं छे के ते शीलांकनी टीकानो संक्षेप मात्र छे. परंतु आ संक्षेप एवा प्रकारनो थयो छे के तेमां निर्युक्तिना गाथाओ उपरनी शीलांकनी टीप्पणी सर्वथा उडावी देवामां आवी छे—के जे गाथाओने शीलांक प्रत्येक अध्ययन तथा उद्देशकनी पहेलां पोताना उपोद्घात रुपे मुके छे.

३ पार्श्वचन्द्र कृत बालावबोध अथवा गुजराती भाष्यः बीजा श्रुतस्कंधना जे केटलाक भागो प्राचीन टीकाकारो द्वारा समजाववामां नथी आव्या, तेमना विषयमां मैं आज भाष्यनी मदद लीधेली छे. आ भाष्य सामान्य रीते तो प्राचीन टीकाकारोना खुलासानेज अनुसरे छे छतां पण तेनो वधारे संबंध दीपिका साथे होय तेम जणाय छे.

कल्प सूत्रना विषयमां मे लंबाणथी, ते ग्रंथनी मारी आवृत्तिनी प्रस्तावनामां कहेलुंज छे. तेथी ते विषयनी विशेष माहीती मेळववा माटे वाचकने ते पुस्तक जोई लेवा सुचवुं छुं. तेना प्रकाशन समय पछी प्रो० वेबरे पोताना "जैनोना पवित्र पुस्तको" उपरना निबंधमां आ विषयनी चर्चा करेली छे अने तेमां तेमणे मारी केटलीक भुलो पण सुधारी छे. तेमणे एवो निश्चय प्रगट कर्यो छे के आखुं कल्पसूत्र, दशाश्रुतस्कंध जे चोथुं छेद सूत्र मनाय छे तेना आठमा अध्ययन तरीके लेवानुं छे. मारा आ अभिप्राय साथे प्रो० वेबर एकमत धरावे छे के "समाचारी" एटले यतिओना आचार—

नियमो ते भद्रबाहुनी कृति मानी शकाय * तथा स्थविरावली ते संभवित रीते सिद्धान्तना संपादक देवर्धिगणीनो ज करेलो उमेरो कही शकाय. आ उपरांत प्रो. वेबर जे सूचवे छे के महावीरनुं चरित्र पण देवर्धिगणिनुं ज रचेलुं छे ते वात मने मान्य थई शकती नथी. कारण के आ ग्रंथ जो आटला बधा प्रसिद्ध पुरुषनो रचेलो होय तो पछी संप्रदाय आ बाबतने बिलकूल विस्मृत थवा दे ते तद्दन अशक्य छे.

स्थवीरावलीना संबंधमां नोखी बाबत छे. कारण के तेने चार अगर पांच भिन्न भिन्न यादीओ उपरथी संकलित करीने ग्रन्थना संपादके जिनचरित्रोनी पाछळ मात्र मूकी दीधेली छे. जिनचरित्रोनी भाषाशैली उपरथी आपणे तर्क करी नथी शकता के तेनो कयो भाग समाचारीथी पछीनो हशे; कारण के विषयनी भिन्नताने लईने तेवी जातनो शैलीभेद तो आचारांग सूत्रनी पहेली बे चूला अने त्रीजी चूलामां पण नजरे पडे छे ज. तेमज जिनचरित्रोनी प्राचीनताना विरुद्धमां दलील रूपे आपणे वर्ण्य वस्तुना अल्पत्वने पण बतावी शकीए नहीं. कारण के आटली हकिकतो आपवानो हेतु एक जीवन चरित्र लखवानो न होई मात्र भक्ति-मार्ग पण होई शके. आम कहेवानुं कारण ए छे के देरासरोमां तीर्थंकरोनी मूर्तिनी पूजा करती वखते ज स्तुति अगर स्तवना बोलवामां आवे छे, तेवी एक[1] स्तवनामां (चैत्य वंदनमां) सर्वे कल्याणकोनुं वर्णन करेलुं छे. जिनचरित्रोनो मुख्य संबंध पण आ कल्याणकोनी साथेज होय एम स्पष्ट जणाय छे. अने आ बाबत एम साबीत करे छे के तीर्थंकरोनी भक्तिमां कल्याणकोनुं वर्णन करवानी प्रथा घणीज प्राचीन छे. आम जो न मानवामां आवे तो एनो निर्णय करवो अशक्य थई पडशे के कल्पसूत्रमां वर्णवेला आ शुष्क विषयनुं आटलुं लांबु वर्णन करवानुं लेखकने केम मन थयुं हशे.

कल्पसूत्रना भिन्न भिन्न भागो गमे ते समयमां रचाया होय परंतु एटलुं तो चोक्कस छे के आ ग्रंथ एक हजार करतां पण वधारे वर्षोथी जैनोमां अत्यंत सन्मान पात्र बनेलो छे. आटला माटे पूर्वना पवित्र पुस्तकोना अनुवाद-संग्रहमां आ ग्रंथने स्थान मळवु उचित छे. एना संबंधमां मारी इच्छा तो एटलीज होय के जे ग्रंथावलीमां ते प्रकाशित थवानो छे ते ग्रंथावलीने योग्य मारो अनुवाद पण सुंदर बने. परंतु आ कर्तव्यमां केटलेक अंशे जोहुं निष्फळ निवड्यो जणाउं तो वाचको आ बाबत ध्यानमां लेशे के गमे तटला तेने खेडवाने प्रयत्नो थया छतां पण जे साहित्य हजी सुधी आपणे माटे एक अक्षत भूमि तुल्य ज छे तेवा (साहित्य) ना ग्रंथोने परकीय भाषामां अनुवाद करवानो मारो आ प्रयत्न छे, अने तेथी क्षमा मळशे एवी मने आशा छे.

समाप्त.

* "समाचारी" महावीर पछी छ पेढीओ वीत्यां बाद रचाई हशे ते बाबत ६-८ द्वारा स्पष्ट जणाय छे. पण ते आनाथी पण कदाच अर्वाचीन होय तो ते पण असंभवित नथी. कारण के ६ ठा गणधरोना शिष्योनी तुरत पछी आवनार स्थवीरोने, 'आ समयना श्रमण निर्ग्रन्थोथी विरुद्ध अगर विलक्षणना वाळा गणावेला छे. छतां पण आ ग्रन्थ—भाग वधारे अर्वाचीन होय तेम तो नज मनाय. कारण के ९८—१० मां जणाय छे के जेम पाछळना समयमां बनेलुं हतुं तेम जिनकल्पना व्यवहार त्यां सुधी लुप्त थयो न होतो.

[1] 'चतुर्विंशति तीर्थंकराणां पूजा' नामनी एक डेकन कोलेजनी हस्तलिखित अर्वाचीन प्रतमां पूजा विधिनुं वर्णन तेमज आवां केटलांक स्तोत्रो या चैत्य वंदनो पण आप्यां छे.

A COMPARATIVE STUDY OF उत्तराध्ययनसूत्र With PALI CANONICAL BOOKS.

By Prof. P. V. BAPAT, M. A.; Fergusson College; Poona.

It is now admitted by all that Mahavir or Vardhaman who is commonly colled Nigantha Nataputta in Bhddhistic works was a contemporary of Gotama Buddha. In Pali Literature of the Buddhist we actually get references to six philosophical teachers who were contemporaries of Gotama, of whom Nigantha Nataputta is one. (see Digh 2, 29-30). It is no wonder then that they should be influenced by one anothers' philosophical conceptions, religious doctrines and ideals of conduct as well as by the manner and method of their expression. In this short essay we mean to trace out such similarities of thought and expression in Prakrit books of Jainas and Buddhist. As for the former we shall restrict ourselves to the first Mulsutra of the Jainas—the Uttaradhyayana.

We shall consider these parallelisms from two points of view--that of matter and manner.

I. As for the first we may say that there are striking similarities in the Jain and Buddhistic descriptions of a monk's behaviour, his attitude towards woman conception of a Brahmin importance of self-control, and their expression of several common thoughts We shall illustrate one by one.—

(i) A MONK'S GENERAL CONDUCT.

He should be patient and should return no evil words even when he is spoken in harsh words--

अक्कोसिज्ज परो भिक्खुं न तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होई बालाणं तम्हा भिक्खू न संजले ॥

(उत्त० II, 24)

सोच्चाणं फरुसा भासा दारुणा गामकंटया ।
तुसिणीओ उवेहेज्जा न ताओ मणसीकरे ॥

(ibid II, 25)

हओ न संजले भिक्खु मणं पि न पओसए ।
तितिक्खं परमं नच्चा भिक्खुधम्मं विचिंतए ॥
समणं संजयं दन्तं हणेज्जा को वि कत्थइ ।
नत्थि जीवस्स नासोत्ति एवं पेहिज्ज संजए ॥

(ibid II, 26-27)

We find a similar idea expressed in the following—

पठवीसमो नो विरुज्झति इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो ।
रहदोऽव अपेतकद्दमो संसारा न भवन्ति तादिनो ॥

(धम्मपद 95)

खन्ती परमं तपो तितिक्खा निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।

न हि पब्बजितो परूपघाती समणो होति परं विहेठयन्तो॥

(ध० 181)

सुत्वा रुसितो बहुं वाचं समणानं पुथुवचनानं ।

फरुसेन ने न पटिवज्जा । न हि सन्तो पटिसेनिकरोति ॥

(सु० नि० 932)

न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो ।

धी ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धी यस्य मुञ्चति ॥

(ध० 389)

Here in this stanza the word ब्राह्मण is not used in the sense of one who is so simply by birth but one who is the best man and deserves honour and respect at the hands of all.

It is said that a monk should not wish for honour and respect.

णो सक्किअमिच्छई न पूअं (उत्तरा० XV, 5)

अच्चणं रयणं चेव वंदणं पूअणं तहा ।

इड्ढीसक्कारसम्माणं मणसा वि न पत्थए ॥

(उ० XXXV, 18)

असतं भावनमिच्छेय्य पुरक्खारं च भिक्खुसु ।

आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥

ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो ।

ममेव अतिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मि च ॥

इति बालस्स संकप्पो इच्छा मानो च वड्ढति

(ध० 73-74)

We are told that a monk should not be hampered by any of his possessions that may be with him but he should be free to move like a bird.

पक्खी पत्तं समादाय निरविक्खो परिव्वए ।

(उ० VI 16)

सेय्यथा पि महाराज पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति, एवमेव खो महाराज भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन, सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति ।

(Digh. II, 66)

A monk is not allowed to practise in medicine or maintain himself by interpreting the signs of body, sounds or the earth and in air, dreams, cries of birds and beasts or in any way enjoying himself in love arts.

तेगिच्छं नाभिणंदिज्जा (उत्तरा० II 33)

जे लक्खणं च सुविणं च अंगविज्जं च पउंजंति ।

न हु ते समणा वुच्चन्ति एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥

(उ० VIII, 13)

छिन्नं सरं भोममन्तलिक्खं सुविणं लक्खणदण्डवत्थुविज्जं ।

अंगविआरं सरस्स विजयं जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खु।

(उ० XV, 17)

जो लक्खणं सुविण पउंजमाणे निमित्तकोऊहलसंपगाढे ।

कुहेडविज्जासवदारजीवी न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥

(उ० XX, 45)

अथब्बणं सुपिनं लक्खणं । नो विदहे अथो पि नक्खत्तं।

विरुतं च गब्भकरणं । तिकिच्छं मामको न सेवेय्य ।

(सु० नि० 927)

यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा......तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति सेय्यथीदं...एवं विपाको चन्दग्गाहो भविस्सति, एवं विपाको सुरियग्गाहो भविस्सति,......एवं विपाको उक्कापातो भविस्सति, एवं विपाको दिसादाहो भविस्सति, एवं विपाको भूमिचालो भविस्सति......सुभिक्खं भविस्सति, दुब्भिक्खं भविस्सति ।

or others such as—आवाहनं, विवाहनं,... सुभगकरणं, दुब्भगकरणं, विरुद्धगब्भकरणं, जिव्हानित्थद्दनं......आदासपञ्हं, कुमारीपञ्हं सन्तिकम्मं...वत्थुकम्मं.........। (Digh II, 59-62.)

A monk is to be content whether he gets or not his food—

लद्धे पिण्डे अलद्धे वा नाणुतप्पिज्ज संजए (उ० II, 30)

अलत्थं यदिदं साधु नालत्थं कुसलामिति ।

उभयेनेव सो तादि रुक्खं'व उपनिवत्तति ॥

(सु० नि० 712)

He is not allowed to store food—

सन्निहिं च न कुव्विज्जा लेवमायाइ संजए (उ० VI, 16)

यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा ... सन्निधिकारपरिभोगं अनुयुत्ता विहरन्ति—सेय्यथीदं अन्नसन्निधिं पानसन्निधिं ...... आमिससन्निधिं इति वा, इति एवरूपा सन्निधिकारपरिभोगा पटिविरतो होति, इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

He should take recourse to the borders forests—

पंतं सयणासणं भइत्ता। (उ० XV, 4)

पन्तं च सयनासनं ... एतं बुद्धान सासनं।

(ध० 185).

(ii) A MONK'S ATTITUDE TOWARDS WOMAN.

He is always to avord the company of women considering them to be dangerous—

संगो एस मणुस्साणं जाओ लोगंमि इत्थीओ।

जस्स एआ परिण्णाया सुकडं तस्सं सामञ्ञं॥

(उ० II, 16)

एअमादाय मेहावी पंकभूआउ इत्थीओ।

नो ताहि विणिहणेज्जा चरेज्जत्तगवेसए॥

(उ० II, 17)

Ananda the favourite disciple of Gotama Buddha asked the Buddha while he was on his death-bed how all monks should be have towards women the answer was. "You should shun their gaze" If that is not possible "you must watch yourself"

"कथं मयं भन्ते मातुगामे पटिपज्जामाति। अदस्सनं आनन्दाति। दस्सने भगवा सति कथं पटिपज्जितब्बं। अनालापो आनंदाति। आलपन्तेन भन्ते कथं पटिपज्जितब्बंति। सति आनन्द उपट्ठापेतब्बा ति।

(Digh 16, 5·9)

Also we find the following—

नो निग्गंथे इत्थीणं कुड्डुंतरंसि वा दूसंतरंसि वा भित्तिंतरंसि वा कुइअसद्दं वा, रुइअसद्दं वा, गीअसद्दं वा, हसिअसद्दं वा, थणिअसद्दं वा, कंदिअसद्दं वा, विलविअसद्दं वा सुणित्ता हवई से निग्गंथे। तं कहमिति चे? आयरिआह—निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डंतर ि वा जाव विलविअसद्दं वा सुणमाणस्स बंभयारिस्स ंभचेर संका वा कंखा वा ... जाव ... केवलिपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसिज्जा तम्हा खलु निग्गंथे नो इत्थीण कुड्डंतरंसि ... जाव सुणमाणो विहरेज्जा

(उ० XV 6)

अपि च खो मातुगामस्स सद्दं सुणाति. तिरोकुड्डा वा तिरोपाकारा वा हसन्तिया व भणन्तिया वा गायन्तिया वा रोदन्तिया वा ... सो तदस्सादेति, तन्निकामेति तेन च वित्तिं आपज्जति, इदं पि खो ब्राह्मण ब्रह्मचरियस्स खण्डं पि छिद्दं पि वा सबलं पि कम्मासं पि; अयं वुच्चति ब्राह्मणो अपरिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरति संयुत्तो मेथुनेन संयोगेन न परिमुच्चति जातिया जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि ... न परिमुच्चति दुक्खस्माति वदामि।

(Ang. VII. 5th Vagga.)

(iii) That a Brahmin is made not by mere birth but by his actions—

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।

कम्मुणा वइसो होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

(उ० XXV, 32)

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो।

कम्मना वसलो होति कम्मना होति ब्राह्मणो॥

(सु० नि० 136 cf. 650–651)

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं। (ध० 396)

If he has got mental defilements or if he is a man of bad conduct then he is no Brahmin and will not be saved from perdition on account of his birth in a Brahmin family.

कोहो अ माणो अ वहो अ जेसिं
मोसं अदत्तं च परिग्गहो अ।
ते माहणा जातिविज्जाविहिणा
ताइं तु खित्ताइं सुपावगाइं॥ (उ० XII, 14)

तेच पापेसु कम्मेसु अभिण्हमुपदिस्सरे ।
विड्डेऽव धम्मे गारय्हा संपरायं च दुग्गतिं ।
न ते जाति निवारेति दुग्गचा गरहाय वा (सु० नि० 141)

if he is free from all lusts and passions then he is a Brahamin

जहा पउमंजले जायं नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं तं वयं बूम माहणं ॥
(उ० XV, 2)

वारि पोक्खरपत्तेव आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिप्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥
(ध० 141)

(iv) IMPORTANCE OF SELF-CONTROL.

To subdue oneself is far better than conquering others ; one is the architect of one's own fortune Therefore, one should always make supreme efforts to discipline oneself as self-control is a very difficult thing

जो सहस्सं सहस्सेण संगामे दुजए जिणे ।
एगं जिणिज्ज अप्पाणं एस मे परमो जओ ॥
(उ० IX, 34)

यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने ।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो ॥
(ध० 103)

अप्पा चेव दमेअव्वो अप्पा हि खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थ च ॥
(उ० I, 15)

अप्पणा अणाहो सन्तो कहं मे नाहो भविस्ससि ।
(उ० XX. 12)

अत्तानं चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्त हि किर दुद्दमो ॥
अत्ताहि अत्तना नाथो कोहि नाथो परो सिया ।
अत्तनाऽऽ सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥
(ध० 159-160)

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च दुपट्ठिअ सुपट्ठिओ ॥
(उ० XX, 37)

न तं अरी कंठछित्ता करोति जं से करे अप्पणिआ दुरप्पा।
(उ० XX, 48)

The same idea is expressed in the following—

दिसो दिसं यं तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।
मिच्छा पणिहितं चित्तं पापियोनं ततो करे ॥
न तं मातापिता कयिरा अञ्ञे वा पि च ञातका ।
सम्मा पणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे ॥
(ध० 42-43)

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।
(ध० 380)

(v) MISCELLANEOUS.

Besides these, we find several other miscellaneous illustrations of parallel thoughts—

माणुस्सं खु सुदुलहं (उ० XX, 11)
किच्छो मनुस्स पटिलाभो (ध० 182)
अरइरइसहो पहीणसंथवे विरए आयहिए पहाणवं ।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥
(उ० XXI, 21)

नारती सहती धीरं नारति धीरसंहति ।
धीरो च अरतिं सहति धीरो हि अरतिं सहो ॥
(Ang. IV, 1·2.)

मासे मासे उजो बालो कुसग्गेणं तु भुंजए ।
न सो सुअक्खाअधम्मस्स कलं अग्घति सोळसिं ॥
(उ० IX, 44)

मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं ।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोळसिं । (ध० 70)
फेणबुब्बुअसन्निभे [सरीरंमि] (उ० IX, 13)
फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसंबुधानो
(ध० 46)

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा ।

समो निंदापसंसासु समो माणावमाणओ ।

(उ० XIX,90)

सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।

एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता (ध०81)

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा वजन्ति न कामकामा लपयन्ति सन्तो।

सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ।।

(ध० 83)

Compassion for all animals—

जगनिस्सिएहिं भूएहिं तसनामेहिं थावरेहिं च।

नो तेसिमारभे दण्डं मणसा वयसा कायसा चेव।।

(उ० VIII,10)

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये। (ध०105)

cf मेत्ताय फसे तस थावरानि (सु० नि० 967)

सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं (ध० 142)

II. Even when we come to the menner of expression, we do find some peculiarities common to both the litaratures—

(i) Even in Jain Sutras we find sometimes सुअं मे आउसं corresponding to Pali एवं मे सुतं coming at the beginning of almost every Buddhistic Sutta.

(ii) As in Pali, we find in Jain literature several technical points denoted by fixed numerals; as 8 मदा; 9 kinds of बंभगुत्ति, 25 Bhavnas, 22 परीसहा and so on like Buddhistic Eight-fold path, five Nevaras, four knots, six Ayatanas, 38 Bodhipakkhiya dhammas. This peculiarity comman to both these litratures was necessary in those condition to help the memory

(iii) We find the Anuswar is very often dropped as एआण for एआणं, as बुद्धान for बुद्धानं.

(iv) We find very often the same idea expressed in similar words, phrases or ward-clusters, similes and mataphors—

(a) words—अप्पकुक्कुए–अपकुक्कुच; उक्कुडुओ–उक्कुटिको; लूह–लूख; परीसहा–परिस्सया; मिलक्खुआ–मिलक्खुका; मायण्णे–मत्तञ्ञू; अइच्छति–अतिच्छति (cf अतिच्छथ भन्ते); अच्छहिं–अच्छन्ति; संलेह-सलेख;–तसेसु थावरेसु च.

(b) phrases and ward-clusters—धमणिसंतए-धमणिसंथत; जहाकरेणुपरिकिण्णे **कुंजरे सट्ठिहायणे** (उ० XI 18) सेय्यथाऽपि नाम **कुंजरो सट्ठिहायनो** गंभीरं पोक्खरणिं ओगाहेता (म० नि० 35-3) घोरव्वसील (ध० 208) घोरव्वसीला (XIV 35) नाइदूरमणासन्ने–नातिदूरं न अच्चासन्ने ।

(c) similes and mataphors.

भासच्छन्ना इवग्गिणो (उ० XXV 18)

भस्मच्छन्नो व पावको (ध० 71)

मेरुव्व वाएण अकंपमाणे (उ० XXI 19)

सेलोयथा एकघनो वातेन न समीरति (ध० 81)

वुच्छिन्द सिणेहमप्पणो कुमुदं सारदिअं व पाणिअं ।

(उ० X, 28)

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं व पाणिना ।

(ध० 285)

(N. B.—It is worth testing what must have been the real original reading. The Buddhistic reading means 'You root out affection from your heart just as you easily pluck out a lotus growing in the Sarat Season;' while the Jain reading means " Just as a lotus growing in the Sarat Season leaves the water and cornes above the surface of the water, so you leave affection. ")

धुत्ते वा कहिणा जिए (उ० V,16)

अत्तनो पन छादेति कलिं वा कितवा सठो (ध०252)

We here by no means pretiend to give an exhaustive list of all such parallelisms. But we may be confident that if we make a close and thorough study of Jain Prakrit works especially the Angas and Upangas, we shall find much food for reflection much that will

make us pause and consider the causes of close proximity of thought and expression in Jain and Buddhistic literatures.

Here we may take the opportunity of thanking the authorities of the University of Bombay for having made it possible, according to a new regulation, to make a comparative study of Jain and Buddhistic Prakrit Literatures even at the stage of B. A. examination. We hope Jain students will not lose this opportunity and take up Pali and Ardha magadhi lamguages for their B. A. examination.

But some rich men must come to the help of poor Jain students who canenot pursue the study of their Sacred Literature for want of encouragement. Will it be too much to expect rich Jain merchants to come forward with hand some donations to educational institutions in places like Poona, Bombay, Ahmedabad and Surat for making provision of teaching the Jain Sacred Literature ?.

RATNAKARA PANCHAVIMSHATIKA.

Translated from Samskrit by

K. P. MODI, B. A. LL. B., AHMEDABAD.

1. May He ever be victorious who is blessed pleasure house of spiritual wealth before whose lotus feet prostrate even the lords of gods and men, who is omiscint, who is best because of his superhuman qualities and who is the store house of knowledge and art.

2. Oh, a support of the three worlds, Mercy incarnate, physician to remove the malady of worldly existence, not easy to be surmounted, free from all attachment, all knowing Lord! I with child like simplicity, beg to lay the following before you.

3. Does not a child, impelled by his child nature prattle something before his father without (any idea of what he has to say) previous thought? In the same way Oh Lord! I full of repentance truly put my ideas before you.

4. No charity is done by me, no good life has been led by me, no chastity has been observed by me, no austerity has been performed by me, no good thoughts have been thought by me in this life. Oh Lord! fruitless is my journey in this life.

5. I am burnt by fire of anger, stung by a wicked snake of-avarice, swallowed by a cobra of pride, and bound by a snare of deceit. How can I worship Thee?

6. Oh Lord of the world! Oh best of Jains! no good deed has been performed by me in previous life, and I find no happiness in this life. Persons like me are born simply to add up the number of lives

7. Oh Lord of amiable conduct! I feel my heart to be harder than a stone because it was not moved with feelings of deep bliss, even though it had the good fortune to see your moon-like face.

8 Oh Lord! after wandering in many lives I obtained through you the three jewels, difficult to obtain even with great pains and even those jewels I lost through sleep of carelessness.

9. I liked asceticism simply to deceive others, I preached religion simply to please the people, I acquired knowledge to combat with others, Oh Lord! how much should I describe my ridiculous life?

10. I have sullied my mouth by slandering others, my eyes by looking on wives of others to lust after them, my mind by thinking harm to others, Oh Lord, what shall be my fate?

11. Oh Lord, what I, being blind by passion, have endured under the influence of pain caused by the force of cupid, I lay before you through shame. You, being Omniscient know all that.

13. Oh Lord, it was due to my mental delusion that I allowed Prameshti-Mantra (obaisance to the liberated souls, Tirthankars, pontiffs, teachers and good men) to be eclipsed by other Mantras; again literature to be ignored by false scriptures and that I wsa inclined to do wrong acts under the influence of bad gods.

13. I, a fool, having left you who had come within the range of my eye, pondered on the amorous pastimes of beautiful women as regards their glances, breasts, deep navel, loins etc.

14. Oh Saviour! How is it that a particle of mental attachment that

stuck to me by gazing at the faces of rolling eyed women, is not gone, though washed in the ocean of pure sacred literature.

15. I am neither beautiful in person, nor do I possess a collection of virtues. I have no pure grace of arts. I do not possess any power of resplendent lusture, still, I am troubled by egoism.

16. Life soon draws near the end, but not my inclination to sin; I grow old, but not my desire for sense-enjoyments; I made efforts for preparing medicines, but not for leading a religious life, Oh Lord! there is no limit to my self-delusion.

17. Oh Lord! fie upon me that I listened to the evil speech of the worldly persons that there is no soul, no merit, no future life and no sin, though you, the sun of absolute knowledge were shining clearly.

18. Although I have reoched human stage my life is like crying in the wilderness because I did not worship God, did not revere worthy persons and I did neither observe layman's nor ascetic's religious duties

19. Oh Lord of Jinas! look at my folly. I ran after imaginary things like the wish-fulfilling cow, wish-fulfilling tree and the wish-fulfiling jewel, but did not run after Jain religion which bestows real happiness.

20. I, a base one always thought of pleasures of enjoying good things, but did not view them as the womb of diseases; I thought of the increasing of wealth and not that of death; I thought only of a woman, but did not consider her as the cause of hell-bondage.

21. I could find no room in the heart of the good by pure conduct, I did not get fame by doing benevolent actions, I did not acquire religious merit by propaganding religion etc.; Alas! my life is really wasted.

22. No feeling of dispassion arose in me by hearing the preachings of my preceptors. I could not keep my peace by hearing the words of wicked men. Oh Lord! I have not a particle of spiritual knowledge. How can I, then, cross this ocean of worldly existence?

2'. In my previous life I earned no religious merit. I shall not do it in future life. If I am such, then Oh Lord! all the three lives—the past, the present and the future are ruined.

24. Oh Venerable One! Oh Lord! What is the use of narrating my life in detail before you in vain. As you know fhe nature of the three worlds, what is my life to you?

25. Oh Best of the Jinas! There is no leader like Thee to save the poor, and there is no man more worthy of compassion other than I among the people. Still Oh Yenerable One! I do not ask for worldly wealth, but oh ocean of spiritual wealth! Abode of auspicious things! I pray for the jewel of true faith, that is beneficial and leading to Salvationa.

॥ जैन साहित्य संशोधक-ग्रंथमाला ग्रंथांक १ ॥

अर्हम्

वीरवंशावलि

अथवा

तपागच्छवृद्धपट्टावलि

(जैन साहित्य संशोधक, खंड १ अंक ३-परिशिष्ट)

संपादक-

मुनिराज श्रीजिनविजयजी

प्रकाशक—जैन साहित्य संशोधक कार्यालय,

ठि. भारत जैन विद्यालय—पूना सीटी.

प्रस्तावना ।

આ વીરવંશાવલિ અથવા તપાગચ્છ વૃદ્ધપટ્ટાવલિની હસ્તલિખિત પ્રતિ, સાહિત્યપ્રેમી શ્રીયુત કેશવલાલ પ્રેમચંદ મોદી બી. એ. એલએલ્. બી. (અમદાબાદ) એ મોકલી હતી જે તેમને પં. શ્રી ગુલાબવિજયજીના પુસ્તકભંડારમાંથી મળી આવી હતી. એ પ્રતિ, જેમ છેવટે જણાવેલું છે, સંવત્ ૧૯૬૨ માં લખાએલી છે–એટલે નવીજ છે. મૂળ કઈ પ્રતિ ઉપરથી એ નકલ કરવામાં આવી છે તે જાણવામાં આવ્યું નથી. એ પ્રતિની પત્રસંખ્યા ૧૧૨ છે તેમાં ૩૭-૩૮ નો આંક ભેગો એકજ પાનાઉપર આવેલો હોવાથી એકંદર પાંનાં ૧૧૧ છે. પાનાની દરેક બાજુએ ૧૨–૧૨ પંક્તિઓ લખેલી છે અને દરેક પંક્તિમાં ૨૫ થી ૩૦ અક્ષરો આવેલા છે. અમે આ આવૃત્તિમાં હાલની નવી પદ્ધતિ પ્રમાણે દરેક પાનની બંને બાજુની સમાપ્તિ સૂચવનારા અંકો ક્રમથી (   ) આવા કોંસમાં આપ્યા છે.

આ પટ્ટાવલીનો કર્તા કોણ છે તે કાંઈ આદિ અંતમાં લખ્યું નથી. તેમજ બીજા પણ કોઈ સાધ નથી તે જાણી શકાયું નથી. પટ્ટાવલિની પૂર્ણાહુતિ સંવત્ ૧૮૦૬ માં થએલા વિજયઋદ્ધિસૂરિના સ્વર્ગ-વાસસાથે થાય છે તેથી એમ અનુમાન કરી શકાય કે એ જ સમય દરમ્યાન એની સંકલના થએલી હોવી જોઈએ. નહિ તો વિજયઋદ્ધિસૂરિની પાટ ઉપર આવનાર આચાર્યનો ઉલ્લેખ એમાં અવશ્ય કરવામાં આવ્યો હોત. પટ્ટાવલિનો કર્તા કોઈ આણંદસૂર ગચ્છાનુયાયી યતિ હોવો જોઈએ. કારણ કે એમાં વિજયસેનસૂરિ પછીની જે પરંપરા આપી છે તે તેજ પક્ષની છે અને વિજયદેવસૂરિ જેવા પ્રસિદ્ધ આચાર્ય અને તેમના સમુદાયમાંથી ક્રિયા ઉદ્ધાર કરી સંવેગ પક્ષ સ્થાપનાર સત્યવિજય પંન્યાસ આદિનો એમાં જરાએ ઉલ્લેખ નથી.

પટ્ટાવલિ કર્તા ખરેખર બહુ સંગ્રાહક રૂચિવાલો છે એમાં સંદેહ નથી. તેણે પોતાની એ પટ્ટાવલિમાં મળી આવતી દરેક ઐતિહાસિક હકીકતને નોંધવાની કાળજી લીધી છે. આટલા વિસ્તાર સાથે લખાએલી બીજી કોઈ પટ્ટાવલિ અમારી જાણમાં આવી નથી. એમાં વળી ઘણા ઠેકાણે તો સંવત સુધાનો ઉલ્લેખ કરેલો છે જે અન્યત્ર મળવો બહુ દુર્લભ છે. જો કે ઘણાક ઠેકાણે સંવતના આંકડાઓમાં મોટી ભૂલો પણ કરેલી છે અને તે ભૂલોના લીધે તેણે કોઈ વ્યકિતને કોઈ સાથે સમકાલીન ઠરાવી દીધી છે. જેમ કે–પ્રસિદ્ધ દાનેશ્વરી જગડુ શાહ જે વાસ્તવિક રીતે વિક્રમના ૧૪ મા સૈકાના પ્રારંભમાં થયો છે, તેને એમાં ૧૩ મા સૈકાના કુમારપાલનો સમકાલીન થએલો લખ્યો છે. આ મોટી ભૂલ સંવતના આંકડાના લીધેજ થએલી છે. કારણ કે જે પંચવરષી ભયંકર દુકાલ સંવત્ ૧૩૧૧ થી ૧૫ સુધી પડયો હતો તેના ઠેકાણે એણે ૧૨૧૧ થી ૧૫ સુધી પડેલો લખ્યો છે; અને આવી રીતે શતકના આંકમાં ભૂલ થવાથી સો વરસ પછી થએલા જગડુને કુમારપાલનો સમકાલીન ઠરાવી દીધો છે. આટલી મોટી ભૂલ શી રીતે થઈ તેનું નિશ્ચિત કારણ સમજાતું નથી. પરંતુ એમ અનુમાન કરી શકાય કે જે મૂળ પાના યા પુસ્તકમાંથી જગડુની હકીકત તેણે લીધી હશે તેમાં શતકના અંકમાં દોષ-દોષ હોવો જોઈએ. અને તે દોષની ભ્રાંતિએ તેણે પોતાની કુમારપાલની સમકાલીનતાવાળી કલ્પના ઉપજાવી કાઢી હોવી જોઈએ. અસ્તુ.

બીજી પણ આવી અનેક ભૂલો એમાં થએલી નજરે પડે છે. તો પણ એકંદર એ પટ્ટાવલિ બહુ ઉપયોગી છે એમાં જરાએ સંદેહ નથી.

આની ભાષા જેવી હસ્તલિખિત પ્રતિમાં મળી આવી છે તેવીજ અમે કાયમ રાખી છે. તેમાં માત્રાનોએ ફેરફાર કર્યો નથી. જો કે લખનારની ભાષાજ્ઞાનસંબંધી ન્યૂનતાના લીધે એની ભાષા વ્યાકરણબદ્ધ કે એકરુપ જરાએ નથી; તો પણ અજ્ઞાન લેખકની ભાષાના એક નમૂનારુપે પ્રસિદ્ધ કરવાની ઇચ્છાથી અમે તેમાં જરા પણ પરિવર્તન કરવું ઉચિત ધાર્યું નથી. આના લીધે કદાચ કેટલાક વાચકોને તે સમજતાં જરા કઠિણ પડશે ખરી, પરંતુ જો વિશેષ ધ્યાનપૂર્વક અને એક બે વાર ઉલટાવીને વાંચવામાં આવશે તો એકંદર હકીકત બધી સ્પષ્ટ સમજી શકાય તેવી અવશ્ય છે.

આ પટ્ટાવલિનો લગભગ અરધા ઉપર જેટલો ભાગ, 'જૈન શ્વેતામ્બર કાન્ફરન્સ હેરલ્ડ' ના સન ૧૯૧૫ ના જુલાઈ–આકટોબરના સંયુક્ત અંકમાં, તેના વિદ્વાન સંપાદક શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેશાઈ, બી. એ. એલએલ. બી. એ પ્રકટ કર્યો હતો; જે તેમણે જૈન એસોસીએશન ઑફ ઇન્ડિયાના હસ્તલેખોમાંની એક પ્રતિ ઉપરથી ઉતારી લીધો હતો. તે પ્રતિ અધુરી હોવાથી તેમને તેટલોજ ભાગ મળી શક્યો હતો. તેમજ તે ઉતારો તેમણે સુધારીને હાલની ભાષામાં કર્યો હતો. એટલે સંપૂર્ણતાની અને મૂળ ભાષાની દૃષ્ટિએ આ પ્રસ્તુત આવૃત્તિ વિદ્વાનોને અવશ્ય આદરણીય થશે એમ સમજીને અહીં એને પુનઃ સમગ્ર રીતે પ્રકાશિત કરવામાં આવી છે. આશા છે કે વિદ્વજ્જનો એનો યથેષ્ટ લાભ લેશે. તથાસ્તુ.

ભારત જૈન વિદ્યાલય. પૂનાઃ
વૈશાખ કૃ૦ ૫, વિક્રમ સંવત્ ૧૯૭૭.

—मुनि जिनविजय ।

वीर वंशावलि

अथवा

तपागच्छवृद्धपट्टावलि ।

॥ ॐ ॥ अथ वृद्ध पट्टावलि लिख्यते ।

श्रीआदिदेवादिजिनांश्च सर्वान्
सीमंधरादीनिह वर्तमानान् ।
श्रीजैनदेवींश्च सुगुरून् प्रणम्य
श्रीवीरवंशावलिकां लिखामि ॥

अथ शिवललनालीलाविलासदातुश्रीपर्वमाहात्म्यकथनानन्तरं श्रीवीरशिष्यपरंपरा कथयति । तत्रादौ वर्तमानतीर्थाधिराजनमस्कारमाह ।

प्रकटितजगदानन्द
सुरतरुमणिसुराभिमहिमरमणीय ।
प्रणते हितप्रणेता
शासननता जयति जिनवीर ! ॥

पुनः स वीर किदृशः ?

श्रीशासनाधीश्वरवर्धमानो
गुणैरनन्तैरतिवर्धमानः ।
यदीयतीर्थं खखाह्वनेत्र-
वर्षाणि यावद्विजयि प्रसिद्धम् ॥

इति मुख्य स्वामी ।

सद्वासमुष्टिद्वयमुत्तमांगे
प्रक्षिप्य सिद्धार्थजिनो व्ययस्य (?) ।
संस्थापयामास पदे स्वकीये
स्वामी सुधर्मा जयताच्चिरं सः ॥

सद्धर्मवंतं पितरं स्वकीयं
स्वकीयपत्नीरथ मातरं निजाम् ।
संबोध्य रात्रौ प्रभवादिचोरान्
दीक्षां ललौ प्राप पदं च जंबूः ॥

श्रीमान् प्रभवस्वामी
गणनाथो गुणमणिसलिलनाथः ।
शय्यंभ (१-२) वोऽपि सूरि—
र्मणकपिता समजनिष्ट नतः ॥

निजगतिनिर्जित भद्र—
कृतभद्रः श्रीगणियशोभद्रः ।
तत्पट्टे..................
.... ॥

अथ नव गणधर वीर विद्यमान थकां वैभारगिरि— पर्वतोपरि मासभक्त संलेषणाकरी मोक्षगता ॥

श्रीवीरमोक्षें गया पछी बारे वरसें गोतम मुक्त । गोत्र गोतम । मगध देसे गोवर नगरे वसुभूति विप्रगृहे पृथिवी स्त्री सुत । इंद्रभूति नाम । पंचास वर्ष गृहवास । त्रीस वर्ष वीरसेवा । बारवर्ष केवल पर्याय पाली । सर्व आयु बाणु वर्ष भोगवी श्रीवीरथी बारे वर्षे मोक्ष गया ।

१ सुधर्मा स्वामी ।

पछी श्रीवीरपाटे पांचमा गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी पहेलें पाटें थया । तथाहि ।

कोलाग सन्निवेशे धमिल्ल नामा विप्र तेहनी स्त्री भद्दिला नामें । ते हरिद्रायण गोत्रथी उपनी । तेहनो पुत्र । उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रें जन्म हुओ । सुधर्म्मा नाम दीधु । अनुक्रमें योवनावस्थायें वक्षसगोत्रथकी उपनी एक

कन्या परणावी । तेहस्युं संसारिक सुष भोगवतां एक पुत्री हुइ । ते सुधर्मा चार वेद सांगोपांगनो पाठी छें । तेहनें पासे पांचसयें विद्यार्थि वाडवसुत विद्याभ्यास (२-१) करे छे । पिण ते सुधर्मना चितनें विषें एक महा संदेह छे । ते किस्यो ? जे जेहवो ते तेहवो । ते संदेह श्रीवीरवचनें निःसंदेह हुओ । तिवारें पांचसय छात्र युक्त वर्ष पंचास गृहस्थपणु भोगवी, संसयछेदक श्रीवीरहस्त दीक्षा लीधी । वर्ष बहितालीस शिष्यपणें श्रीवीरनो विनय किधो । एतलो (?) वर्ष वाणु छद्मस्थापद भोगवी । पुनः वर्ष आठ केवली पद भोगवी । एवं सर्व आयु वर्ष सोनो संपूर्ण । मास एक चउविहार अणसण । पांचमें आरें । पश्चिमदिशि । श्रीवीरनें मुक्ति हुआ पछी वीसे वर्षे श्रीगिरनारपर्वतोपरि श्रीसुधर्मा नामें श्रीवीरना पहेला पटोधरनें मुक्ति हुइ ।

श्रीवीरज्ञानोत्पत्तेःचउद वर्षे जमाली प्रथम निन्हव ।सोले वर्षे तिष्यगुप्त द्वितीय निह्नव । प्रथम नाम निग्रंथी । श्रीवीरनें प्रथमपाटें सुधर्मा स्वामी जाणवा ॥ १ ॥

२ तत्पट्टे श्रीजंबूस्वामी ।

हवें ते जंबू कुमारनी उत्पत्ति कहें छे । पूर्वदिशिं मगधदेशें वछ भूमिगें राजगृह नगरें काश्यपगोत्री श्रेष्ठ ऋषभदत्त । तेहनी स्त्री धारणिनामें । तेहनी कूषें पांचमा ब्रह्मदेवलोकथी आयु संपूर्ण [थयें] देवतानो जीव(२--२) चवी आवी बेटापणें उपनो । तिवारें धारणीइं मध्यरात्रे सूतां थकां सुहणे सफलंत जंबूनो झाड दीठो । तेहनें अहिनाणें जंबू कुमार नाम दीधू । अनुक्रमें वर्ष सोलनो हुओ । एहवे अवसरें श्रीसुधर्मा केवली विचरता आव्या। तेहनें मुखे उपदेस सांभली लघुकर्मी जीव जंबू कुमारें चोथु वर्त आदरयुं । सुधर्मा केवलीयें विहार कीधो । भोग समर्थ जाणी वार २ मातापिता संसारनी वार्ता कहें । तोहि पिण जंबु पाणिग्रहण न वांछे । मातापितायें हर्ष पूरणमाटे वणा आग्रहथी उत्तम व्यवहारियानि बेटी आठस्यूं परणाव्यो । पिण तेहस्यूं स्नेह दृष्टी जोडें नही । संसारीकनां मृदुवचन बोले नही । यतः

हावो मुखविकारः स्यात् भावो चित्तसमुद्भवः ।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमो भ्रूसमुद्भवः ॥

एहवी २ काम चेष्टा करी अंग देषाडें । पण जंबु ते स्त्री सांहमी दृष्टी जोडें नही, एहवे वणा मनुष्यनें मुखिं जंबुनें घरें नवाणु कोडी सूवर्ण द्रव्य आव्यो सांभली प्रभवो नामें चोर पालथी च्यारसें नवाणु चोर मनुष्य लेइ रात्रिं जंबू घेर द्रव्य लेवा (३—१) पइठो । घरनें छूटक चोक माहिं द्रव्यनो ढीग कीधो देषी अवस्वापनी विद्याने प्रक्रमे सकल घरना मनुष्य प्रतें निंद्रा दीधी । पछी तालोद्घाटनी विद्याइं तालां उघाडी गृहार्थीसनी परें अबीह थका द्रव्यनी गांटडी बांधी माथें मुकी । च्यारसें नवाणु चोर सहर्षित चित्तथका स्वघरें जावा उद्यमि हुआ। एतले जंबुना सीलधर्म महिमायकी शासन देव्याइं थांभानि परें निश्चल थंम्या । अनें जंबु तद्भव मोक्षगांमि छे ते माटे अवस्वापनि नींद्रा न आवी । एतले प्रभवो मेढीयें चढ्यो । देषें तो रंगसालायें जंबू नवोढा स्त्रियोने उपदेश रूप प्रतिबोध कही दृष्टांतें समजावि छे । ते जंबू वचन सांभली स्त्री पण पाछो पडुत्तररूप दृष्टांत करे छे । पिण संसार विरक्त थका, द्रव्यना ढिग चोर लियें छे ते सांहमु जोता नथी । ए मोटा अचरिज देषी लघुकरमी जीव प्रभवो जंबू कथक दृष्टांत सांभली मनसुं विचारें छे जे धन्य ए जंबू कुमारनें । नवांणु कोडि कनक अनें तूरत परणी नवोढा नव कन्या थकी वेगलो छे । धिग मुजने जे हूं राजपूत्र कहवाउं छुं । भी (३—२) लसंग रही घणा जीवनें दृढबंधनें तथा दृढ प्रहार करी त्रासिं महादुष आपू छु । तो मुझनें कुण गति हुस्यें । इस्युं विचारी प्रतिबोधपांमी च्यारसेंनवाणु परिकरसहित प्रभवो आवी जंबूनें नम्यो । एतलें शासनदेव्याइं ते सकलनें व्रत लेवानो आशय जाणी बंधन थकी मुक्या । जंबूयें पण नव स्त्रीओनें प्रतिबोधी प्रभाते स्वमातापिता अने ८ प्रियानां मातापिता—एवं पांचशें सत्यावीस मनुष्य युक्त ।पुनः नवाणु कोडी सूवर्ण उपरि मूर्छा तजी नीर्लोभिता थें...... पाणिग्रहणनें अवसरें तिलकें दीधा कोडी सत्यावीस घरनो मूलगो द्रव्य—एवं नवाणु कोडि संख्यायें जाणवो । ते तजी वर्षसोल गृहस्थपणें रही । श्रीसुधर्मा हस्तें दीक्ष्य

लीधी । वर्ष वीस श्रीसुधर्मानी विनय शिष्यपणें कीधो । वर्ष चउमालीस युग प्रधान पदें केवली पद भोगवी । छेहला केवली बिरुद धरावी । श्रीवीर स्वमुखें श्रेणिकनें कह्युं जे पेहला देवलोक थकी आवी इणिं सूर्याभदेव नाटिक कीधू ते देवनो जीव छेहलो जबूनामें केवली होसें । ए वचननें अनुसारें जाणज्यो । सघ (४–१) लो आउषो वर्ष ऐसीनो भोगवी संपूर्ण । प्रभवानें स्वपाटिं थापि श्रीवीरमुक्ति हुआ पछी वर्ष चोसठें श्रीजंबू मोक्ष हुआ । तत्र—

बार वरसेहि गोयमो सिद्धो वीराओ वीसहि सुहमो ।
चउसट्ठी ए जंबू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा ॥

ते जंबू मोक्ष हुया ते साथे उत्तम बोल दस विच्छेद हुया ते कहे छे । यतः—

मणपरमोहि पूलाए आहारग खवग उवसमे कप्पे ।
संयमतिय केवल सिज्झणाय जंबूम्मि वुच्छिन्ना ॥

एतलें मुक्तिनां कपाट देता गया । अत्र जंबू उपमा—

लोकोत्तरं हि सौभाग्यं जंबूस्वामिमहामुनेः ।
अद्यापि यं पतिं प्राप्य शिवश्री नान्यमिच्छति ॥

श्लोकः—

चित्तं न नीतं वनिता विकारै–
र्वित्तं न नीतं चतुरैश्च चोरैः ।
यद्देहगेहाद् द्वितीयं निशीथे
जंबूकुमाराय नमोऽस्तु तस्मै ॥

इति जंबू संबंध । द्वितीय पाट ।

३ तत्पट्टे श्री प्रभवस्वामी ।

तेहनो काइक स्वरूप कहे छे । वंध्याचल पर्वतने विषें तलहटीई जयपूर नगरें कात्यायण गोत्रि जयसेन राजा । तेहनें प्रभवनामे १ विणयधरनामे २ बिहू पुत्र छे । ते मांहिं पिता गुणें जेष्ट जाणी कनिष्ट जे लघु पूत्रनें राज (४–२) दीधू । एतलें प्रभवो कोधे घरथकी नीकली भीलनी पालें पल्लिपति पासिं जइ रह्यो । तिणे राजपूत्रजाणी आदर देइ पांचसें चोरनो स्वामी कीधो । चारसो नवांणु चोर लेई दूष्टात्मा अति क्रूरपणाथी घणा मनुष्य प्रतिं उपद्रव उपजावे पण कोइ वारवा समरथ नहीं । एहवें जंबूनें घरें द्रव्यना समुह आव्या जनमुखथी जाणी, प्रभवो पोताना समुदायनें लेइ रात्रि जबूनें घरें द्रव्य हरवांन पेंठो। बीजा चोर सघला द्रव्यें विळगा छे । एतलें प्रभवो मालीयें चढ्यो, देखे तो रंगमोहले जंबू हस्त नव परणीत कंकण बांध्यो छे । संसारनें विषे सर्व आनित्य पण स्त्रीओनें कहे छे । ते उपदेस सांभली जंबू साथें प्रभवें वर्ष त्रीस संसारीकपणो भोगवी, श्रीसुधर्म्मा केवली हस्तें दीक्षा लीधी । वर्ष चोमालिस श्रीजंबूनी सेवा, शिष्यपणें कीधी अनें वर्ष इग्यार जुग प्रधान पद भोगव्यु । एकदा श्रीप्रभवें पोतानें पाटें थापवानें अर्थे श्रुतबलें करी स्वसंघन विषें उपयोग देइनें जोयु । पिण पाटयोग्य कोइ न दीठो । तिवारे पर सासनें उपयोग देवे थके पूर्व दिसें (५–१) मगध देसें राजगृही नगरें वक्षगोत्रि यजुर्वेदीय यज्ञारंभ करतो शिय्यंभव बाह्मण वेदकुंभ दीठो । तिहां स्वशिष्य मोकली यज्ञकुंडनी खेरी हेठें श्रीशांतिबिंब दर्शन करी प्रतिबोध पामी, श्रीप्रभव पासें दीक्षा लीधी । हवे प्रभव स्वामी सर्वायु वर्ष पंचासीनुं संपूर्ण पाली श्रीवीरमुक्ति हुआ पछी वर्ष पंचोत्तरें श्रीप्रभवस्वामी स्वर्ग हूआ । इति त्रिजो पाट ॥ ३ ॥

हवें श्री पार्श्वनाथना प्रथम गणधर श्री सुभेय नामें । तस्य शिष्याचार्य्य श्री हरिदत्त । तस्य शिष्याचार्य्य श्री समुद्र स्वामी । तस्य शिष्याचार्य्य श्री केसी । श्री वीरवारें केसी स्वामी । तस्य शिष्याचार्य्य श्री स्वयंप्रभसूरि । तस्य शिष्याचार्य श्री रत्नप्रभसूरि प्रगट हुआ । तेहनें श्री वीरमुक्ति पछी वर्ष बावन आचार्य पद हुओ । श्री वीरमुक्ति गया पछी वर्ष पच्योत्तेर ओईसा नगरि चामुडा प्रतिबोधी घणा जीवनें अभय दान देई साचिल नाम दीधुं । पुनः तेहीज नगरनो स्वामी परमार श्री उपळ देव प्रतें धर्म्मोपदेस देई एक लाखनें नवाणु हाजार गोत्रो (५–२) स्यू प्रतिबोध्या । तिणे श्री पार्श्वनाथ प्रासाद थाप्यो । एहिज सूरियें प्रतिष्ठ्यो । तिहांथी उपकेश ज्ञाति कहांणी । श्री रत्नप्रभसूरीनें उपकेश गच्छ लोके कह्यो । तिहां पोहकरणा मोजग हुआ । इति चोथो पाट ॥ ४ ॥

४ तत्पट्टे श्रीशय्यंभव स्वामी ।

तेहनो वक्षस गोत्र । तिणें सगर्भा, यज्ञारंभनें विषे, स्त्रीनें घरें मुकी श्री प्रभव स्वामी पासें दीक्षा लीधी छे । यज्ञ करतां शिय्यंभवनें प्रभवा स्वामीइं संवाद करी, यज्ञ स्थंभथी श्री शान्तिनाथजीनी प्रतीमा देषाडीनें प्रतिबोधी दीक्षा दीधी । तेवारें केडें ते स्त्रीनें मनक नांमें पूत्र हूओ । ते बेटे पण लघुपणें पीता श्री शय्यंभव पासे दीक्षा लीधी । पूत्रना स्नेह थकी साधुनो आचार शिषववा उपगारनें हेतें श्री दशवीकालक एहवें नांमें सूत्र दस अध्यन निपजाव्या । ते बाल साधुनी छमासनी आयु स्थिति थाकतें सूत्र नीपजाव्यो छमासें ए सिद्धांत भण्यो । अनुक्रमें ते बालक साधु मरण पांम्यो । तिवारें अन्य साधुयें पोतानो पुत्र जांण्यो । गुरुयें नेत्रें आंसू पात थाता जांणी (६–१) साधोये वैराग्य वचन कही समझाव्या । निर्मोह दशामां चेतना आणी समता भावे हुआ ।

हविं श्री शय्यंभव स्वामीयें वर्ष अठावीस गृहस्थ पद भोगव्युं । अनें वर्ष इग्यार श्री प्रभवनी सेवा शिष्यपणें कीधी । पुनः वर्ष त्रेविसताइ युगप्रधान पद भोगवी सर्व आयु (वर्ष) बासट संपूर्ण पाली श्रीवीर मुक्ति गया पछी वर्ष अठाणुंयें श्री शिय्यंभव सूरि स्वर्ग हूओ ॥ ५ ॥

यतः—कृतं विकालवेलायां दशअध्ययनगर्भितम् ।

दशवैकालिकामिति नाम्ना शास्त्रं बभूव ततः ॥ १ ॥

अतः परं भविष्यंति प्राणिनो ह्यल्पमेधसः ।

कृतार्थास्ते मनकवत् भवंतु त्वत्प्रसादतः ॥ २ ॥

श्रुतांभोजस्य किंजल्कमिदं संबोधरोधतः ।

महाफलसमायातौ न संवने महात्मभिः ॥ ३ ॥

५ तत्पट्टे श्री यशोभद्र स्वामी ।

तेहनो तूंगीकायन गोत्र । तिणें वर्ष बावीसतांइ संसारीपणु भोगवी श्री सय्यंभव गुरुहस्ते दीक्षा लिधि, अने वर्ष चउद श्री सियंभव स्वामीनी सेवा शिष्यपणें कीधी । पुनः वर्ष पचास यूगप्रधान पद भोगवी सर्व आयु वर्ष छा (६–२) सी संपूर्ण पाली, श्रीवीर मुक्ति हुआ पछी, वर्ष एकसो वहेतालीस विसें श्रुतकेवली श्रीयशोभद्र स्वामी स्वर्गे हुआ । इति पंचम पाट ॥ ५ ॥

६ तत्पट्टे श्री संभूति विजय सूरी ।

श्री भद्रबाहु स्वामी । २ । ए बेहू गुरू भाइ जाणवा । ते मांहि श्री संभूति विजय सूरी ते पटधर जाणवा अनें भद्रबाहु स्वामी ते गच्छनी सार संभालीना करनहार जाणवा । ते माटें बिहूनो नाम जोडें लष्यो छें । तिहां प्रथम वडा गुरुभाइ श्री संभूति विजय स्वामी । तेहनो माढर गोत्र छें । अनें बीजा लघु गुरू भाइ श्री भद्रबाहु स्वामी । तेहनो प्राचीन गोत्र छें । हिवें श्रीसंभूति विजय स्वामीये वर्ष वहेंतालीस गृहस्थाश्रम भोगवी श्री गुरू यशोभद्र पासिं दीक्षा लीधी । अनें वर्ष चयालीस श्री यशोभद्र स्वामीनी सेवा शिष्य पणें कीधी । पुनः वर्ष आठ युगप्रधान पद भोगवी सर्वायु वर्ष ९० संपूर्ण । श्रीवीर मुक्ति हूआ पछी वर्ष १५६ वीतें श्री संभूती विजय स्वामी स्वर्गे पूहुता ॥ १ ॥ हवें बीजा लघु गुरूभाइ भद्रबाहु स्वामि तेहनुं काइक स्वरूप(७–१)कहें छें।

दक्षिण दिशि प्रतिष्ठानपूर नगरें प्राचिन गोत्रिया वराहमीर । १ । अनें लघु बंधव भद्रबाहु । २ । नामें वाडव रहे छें । तिणें श्री यशोभद्र गुरूनी वाणी सांभली गुरुहस्तें दीक्षा लीधी । ते बेहूं बंधव घणें दिनें विद्याभ्यास करतां षट् दर्शनना मतना शास्त्र तेहना जाण हूआ । एकदा गुरु यशोभद्र चित्तनें विषे चिंतवें जे ए बडो भाइ योग्य छें, पिण अहंकारी छे । तेहथी पद योग्य नही । अनि नाहनो भाइ भद्रबाहु तेहनि समतायुक्त श्रुतसमुद्र जांनी गुरुयें सूरी कीधो । एतले ते वाराहमिहर वडो भाइ गुरु तथा भद्रबाहु—ए बिहूं उपर घणें कुषें यती वेष लोपी पूनरपि संसारी हुइनें आजीवीका हेतिं पोताना नामनी वाराही संहिता नांमें योतिषनो शास्त्र नीपजावी मनुष्यनि निमित्त शास्त्रें प्रश्न कहें । एकदा राजसभायें आवी वाराहमीहर मूहं कुंडालुं करी कहें, जे आज थकी पांचमें दिनें पूर्व दिसि थकी बीजा प्रहरनें अंतें इणिं कुंडावर्त्तमध्यें अभ्र मार्ग थकी देव योगें बावन (७–२) पलनो मछ पडसें । ते सांमली राजा श्रीभद्रबाहूनें कहें, ए किम । तिवारें भद्रबाहु कहें, जे मेह पूर्व दिसी थकी कह्यो ते मेह

इशान कुणे थकी आवसें । थाकतो दिन घडी छ पाछली रहेस्यें तिवारें । पण छठो दिन पांचममां भलवानी मुख्य घडीयें, ते मस्य कूडाला बाहिर किंनारें पडस्यें । साडा एकावन पलनो तोलमान होसी । तो तिमही हूओ । राजायें भद्रबाहूनें प्रसंसा अनें वाराहमिहरनें निभ्रंछीओ ।......राजा कहे ए मूढ ते किम ? जे तिहांथी आवतां पवननें जोरें मत्स शोषाणो तेहनी मालीम रही नही । एतली बुद्धि न्यून एहनी जाणवी ।

पुनः केतलेक दिने राजसदनें राणीइ पूत्र जनम्यो । तेतलें वराहमेहर कहें, एहनो शत वर्ष आयु छे । एटले राजायें भद्रबाहूनें पुछयो । तिवारें भद्रबाहू कहें एहनें आज थकी सातमें दिनें बिलाडी मुषथी नीश्चय मरण छे । ते सांभली राजायें नगर थकी सर्व मंजारी कढावी। सातमि दिन दासी ते वालकनें उच्छंगें लेइ निरषे छे । एहवें भाविनें व(८--१) सें अकस्मात् मांजारीनें आकारें भोगल खटीइं थकी पडी मस्तकघात हुओ । मरण पाम्यो । श्री भद्रबाहुनो वचन साचो जांणी घणी आदर कीर्ति हुइ । राजाईं वराहमीहरनुं वचन असत्य जाणी देश बहार कीधो । तें पिण अणादर थकी कोधें मरण लही व्यंतर हओ । पहेला भवनो वैर संभारी गुरूना संघनें मारिनो उपद्रव्य करे । तिवारें गुरुयें श्रुतनो उपीयोग दीधो । वराह जीव जाणी उपसर्गहर स्तोत्र नीपजाव्यो । जिणि जल मंत्री छाटणी थकी ते व्यंतर नाठो । श्री संघ समाधी हई । श्री भद्रबाहु स्वामीइं नवमा पूर्व हूंती कल्पसूत्र उधरीनें रचना कीधी । ते भद्रबाहु स्वामीयें वर्ष पस्तालीस संसारी पद भोगवी पछे श्री यशोभद्र सूरी हस्तें दीक्षा लीधी अनें वर्ष सत्तर ताइ श्री यशोभद्र स्वामीनी सेवा शिष्य पणें कीधी । पुनः वर्ष चउद युग प्रधान पद भोगवी श्री स्थूलीभद्रनें अतियोग्य विद्याधिक जाणि पोताने पाटें थापी; सर्वायु वर्ष छहोत्तरनुं संपूर्ण । श्री वीर मुक्ति हूआ पछी व० (८--२) एकसो सित्तरें श्री भद्रबाहु संहिता कारक, पुनः आवश्यक निर्युक्ती ।१। पचषाण निर्युक्ति ।२। ओघ निर्युक्ति ।३। पिंड निर्युक्ति।४। उत्तराध्ययन निर्युक्ति ।। ५ ।। आचारांग निर्युक्ति । ६ । सुगडांग निर्युक्ति । ७ । दशविकालक निर्युक्ति । ८ । विवहार निर्युक्ति । ९ । दशाकल्प निर्युक्ति । १० । ए दश निर्युक्ति कारक; अनें उपसर्गहर स्तोत्र करी महामारी निवारक पंचम श्रुत केवली बिरुद धारक श्री भद्रबाहू स्वर्ग हुओ । इति भद्रबाहू संबंध । पाट । ६ ।

७ तत्पट्टे श्रीस्थुलिभद्र स्वामी ।

तेहनुं स्वरूप कांइक काहिए छीए । पूर्वदिशि पाडलीपूर नगरें नवमो नंद राज्य करे छे। तेहने नागरज्ञाति गोतम गोत्री शकडाल नामे मंत्री छे । तेहनें लक्ष्मीनामें स्त्री छे । तेहनें थूलीभद्र १ अने सिरीओ २ [बेहू पूत्र छे] जखा १ जखदिन्ना २ भूया ३ भूयदिन्ना ४ सेणा ५ वेणा ६ रेणा ७ ए सात थूलिभद्रनी बहेनो जाणवी । हेवें ते स्थूलिभद्रनि नीशाल भणी वेश्यावरें संसारीकना सूष विषयासक्त शिखवानि नायका वरें मूक्यो । पूर्व (९--१) कर्मानुयोगें तेहस्युं संग हुओ । भोगी भ्रमर थको तिहांज रह्यो । पिता सूषप्रमण कहावें । विलसवा द्रव्य मोकले । इम विलसतां वार कोटि स्वर्ण षाधा । एहवें बार वरसनें अंत राजाने दरबारें कांइक वररुचिनामे ब्राह्मण पंडत आव्यो । राजानी कीर्ति कीधी । द्रव्य देवराव्यो । तेहनें सकडालें द्रव्य न दीधो । पछें तिणे पंडते प्रपंच करी राजाने पोकार्यो । तेहथी, अकस्मात् लघूभाई सिरीओ तेहनें हाथें पीतानुं मरण जाणी, प्रत्यक्षपणें संसारनु स्वरूप असार देषी, वर्ष त्रीस ग्रहस्थ पणें रही, वैराग्य वासीत चीतथकी श्रीसंभुतिविजय स्वामी हस्तें दीक्षा लीधी । राजा कहें ए किस्यूं कीधूं । तिवारइ श्रीस्थूलिभद्र राजा प्रतिं कहें, यतः—

हस्ते मुद्रा मुखे मुद्रा मुद्रा स्यात्पादयोः द्वयोः ।
तत्पश्चात् गृहे मुद्रा व्यापारं पंच मुद्रिकम् ।। १ ।।

पुनः श्री स्थूलीभद्र स्वामी चउद पूर्व सूत्रें भण्या, अने दश पूर्व अर्थि भण्या । वर्ष चोवीस श्रीसंभूतिविजय स्वामीनी सेवा विनइपणें कीधी । अने वर्ष पस्तालीस युगप्रधान पद भोगवी, सर्व आयु वर्ष नवाणुनुं संपूर्ण । (९--२) श्रीवीरमुक्ति हुआ पछी बसें पनरे वर्षे, कोसा नामें नायका प्रतिबोधक, गुरु श्री संभूतिविजय दुष्कर २

कथक त्व धन्न २, इदं वड व्रतरक्षक, बिरुदधारक, श्री स्थुलिभद्र स्वामी स्वर्गे पुहूता ।

ते संघाते पाहिलुं वज्रऋषभ नारा च संघयण १ अनें पाहिलुं सम चउरंस नामे संस्थान २ पुनः पूर्वनुयोग ३ ए त्रिहुं वस्तु विच्छेद हुइ । एहवें श्रीवीर मुक्ति हुआ पछी वसें चउद वर्ष गइ थकें अव्यक्त नामा त्रिजो निन्हव प्रगट हूओ । यत उक्तम्—

केवली चरमो जंबूस्वाम्यथ प्रभवः प्रभुः ।
शय्यंभवो यशोभद्रः संभूतिविजयस्तथा ॥
भद्रबाहुः स्थूलिभद्रः श्रुतकेवलिनो हि षद् ।

ए छ श्रुत केवली जाणवा । अत्र महारुषि श्री–
स्थूलिभद्र वर्णन काव्यं—

वेश्या रागवती सदा तदनुगा षड्भी रसैर्भोजनं
शुभ्रं धाम मनोहरवपुरहो नव्यो वयः संगमे ।
कालोयं जलदाविलस्तदपि यः कामं जिगीयादरात्
तं वंदे युवतीप्रबोधकुशलं श्रीस्थूलिभद्रं मुनिम् ।१।

श्रीशांतिनाथादपरो न दानी
दशार्ण (१०–१) भद्रादपरो न मानी ।
श्रीशालिभद्रादपरो न भोगी ।
श्रीस्थूलभद्रादपरो न योगी ॥ २ ॥

ए श्री स्थूलीभद्रनो संबंध अन्य चरित्रें विस्तार छें । ते माटे अत्र विस्तार कर्यो नथी ।

पुनः श्री वीर मोक्ष हूआ पछी वसें अनें वीस वर्ष गइ हूंति बोध मत प्रकट हूओ । इति थुलिभद्र संबंध । पाट ७ ।

८ तत्पट्टे श्रीआर्य महागिरि ।

श्रीआर्य्य सुहस्ति सूरि ।

ए बेहूं गुरुभाइ जाणवां । ते मांहि प्रथम वडा गुरुभाइ श्रीमहागीरी, तेहनो गोत्र एलापत्य नांमें छे । अनें बीजा लघु गुरुभाइ श्री आर्य सुहस्ति सुरी तेहनो गोत्र वासिष्ठ छे । ते मांहि प्रथम श्री आर्य महागिरि सूरि ते पटोधर जाणवा अनें श्री आर्य सुहस्ति सूरि ते गछनी सार संभालिंना करणहार जाणवां । ते माटे बिहूंनो नाम जोडें लख्यो छें । तिहां प्रथम वडा गुरुभाइ श्री आर्य महागिरि सूरि वर्ष त्रीस संसारीक पद भोगवी श्री स्थूलीभद्र स्वामीपासें दीक्षा लीधी । अने वर्ष च्यालीसताइं गुरु श्री स्थूलीभद्र स्वामीनी सेवा शिष्यपणें कीधी । वर्ष त्रीस युग प्रधान पद भोगवी सर्वायु (१०-३२)एक शत वर्ष संपूर्ण। लघु श्रीआर्य सुहस्ति सूरीनें गछ भलावी श्री आर्य महागिरी सूरीइं जिन कल्पीनी तूलना करी । श्री वीर निर्वाणि हूआ पछी वसें पसतालीस वर्ष वीते श्री आर्य महागीरी सूरी स्वर्ग हूआ ॥ १ ॥

ए हवें श्रीवीर मुक्ति हुआ पछी वसें अठावीस वर्षे गंग नांमा पांचमो निन्हव प्रगट हूओ ।

हवें श्री आर्य सुहस्ति सूरि भव्य जीवनें परमोपकारी थका विचरता मालव देसें उजेणी नगर भद्रा नामें सार्थवाही पासें वाहनशाला याची चोमासु रह्या छे । तिहां निसि सज्झाय ध्यान करें छे, एतले सात भूमिइं भद्रापुत्र अवंति सुकमाल नामें बतीस स्त्रीओ साथें सुष विलास करतां, गुरु कथक अध्ययन मधुर स्वर एक चित थकी सांभली, जाति स्मरण पांमी, पूर्व भव नलनी गुल्म विमाननो देवसुष दीठो । स्त्रीओनो सुष विलास मूकी उतावलो मेडी थकी उतरी गुरुनें नमी कहे, साधुजी ए तुमे कही एहवी जे नलनी गुल्म विमान-सुष देवसाहिबीनी वात ते तुम अत्र रह्या किम जाणो छो ? श्री आचार्य कहि—श्रीजिनवचनानुसारें । श्रेष्ठि (११–१) पूत्र कहे, पूज्य ! एतलो ए सुष भोगवी अत्र उपनो अनें पुनरपि ते देवसुष हुं किम पांमु ? श्रीगुरु कहें, व्रत लिओ तो ते सुष लहो । तिवारें तिणें भद्रा मातानी आज्ञा लही, बत्रीस कन्या कोटी द्रव्य तजी; श्री गुरुहस्ति दीक्षा लीधी । गुरुनें कहें ए कठीण दीक्षा मे घणा दिन ताई न सचवाय ते माटें अणसण करुं । सांभली कहे तमारा जीवनि जिम सुषनो हेतु हुइ तिम करो । गुरुवचन तहत्ति कही जिहां समसानि कंथेरी बननें विशे काउसगो रही अणसण कीधु । मारगि जातां कोमल पणाथकी बिहु पगें कंथेरना कांटा खुंचवे करी लोहीना टबकां पड्यो छें । तेहनी गंधे रात्रिनें विषे प्रसूता सीयालणी पोताना परिवारस्युं जिहां अवंति सकुमाल साधु देहनी मुर्छा तजी

काउसग्गीं रह्या छें तिहां आवी । विहु पगथी मांडी सघलो सरीर भक्षण रूप उपसर्ग कीधो । पिण तें मुनि दृढाचित थकी ध्यान न चल्यो । आयू संपूर्ण उदारीक देह तजी सौधर्म्म राजध्यानीइं नलनीगुल्म विमानें देवनी साहीबीये उपनो (११–२) एतलें मातायें पूत्र आयु पूर्णि, पिण भंगुर देह जाणी एक सगर्भा वहुने घरें मुकी । एकत्रीस वहु युक्त भद्रा दीक्षा आराधी देवलोके गयां । घरें सगर्भानें पूत्र जनम्यो तिणें पीता दग्ध स्थानकें प्रासाद नीपजावी श्रीअवंति नामें श्रीपार्श्वनाथनो बिंब थापी ते सद्गतिनो भजनार हुओ ।

हवें सीयालणीनो संबंध कहें छें—अवंति सुकुमाल पाहिलां त्रीजें भवें माछिनो अवतार हुओ । तिहां विं स्त्री हुंति । ते माछियें साधुनो उपदेश सांभली श्रीधर्म्म आराधी मरण पांमी नलनी गुल्म विमानें देवपणें उपनो । तिहांथी चवी कोटीध्वज विवहारीयानें घरें अवंति सूकुमाल नामें पूत्र पणे उपनो । अनें वडी स्त्री विभव वणीकपूत्री हुइ । पुनः नाहनी स्त्री मरीने अपमांनी हती, ते वाडवी हुइ । तिहां थकी मरण पांमी सीयालणी हुइ । ते वेर भक्षण रुप महा उपसर्ग साचव्यो । ते पार्श्व बिंब आज दिनताइ सप्रभाव उज्जेणी नगरीइ छें । इति अवंति सुकुमाल संबंध छे ॥ १ ॥

दश पूर्वधारक श्री आर्य सुहस्ती सुरी पुनः (१२–१) जेहनो नव दीक्षित भिक्षुक जीव तेइने उपगारी पणें हुआ । श्री वीर मोक्षें गया पछी वर्से पंचासी वर्षे संप्रति इसइ नांमे राजा हुओ । तेहनो संबंध कहें छें । एकदा श्री आर्य सुहस्ती सूरी विहार करतां कोसंबी नगरीइं वनें वाटिकाइं रह्या । शिष्य गुरू आज्ञा लही नगरमांही आहारनें उद्यमें गया छे । तिहां दुर्भिक्ष योगें अन्नने अभावें भिक्षुक घणा हुआ छें । पण साधुनें पण घणें आदरें सरस आहार आपता देषी एक रंक भिक्षुक ते साधु साथे हुओ । आहार लेइ साधु वाटीकाइ आव्या । गुरू आगलें आहार आलोइं छें एटलें रंक पण द्वारि आवी उभो । साधुनें कहें छे मुजनें ए आहार आपो । गुरु कहें साधुनो आहार साधुनें कल्पें, बीजा गृहस्थनें न कल्पें । सांभली कहें, मुजने शिष्य करो । पिण आहार आपो । हूं घणो क्षुधार्ति छु । तिवारें गुरु दशपूर्वजाण छें । तिणें श्रूत उपीयोग दीधो । शासन उद्योत कारक जांणी दिक्षा आपीनें आहार पण दीधो । घणा दीन थकी तिनें सरस जांणीनें आहार विशेषें लीधो (१२–२) । निर्बल सरीर थकी तेह रंकाने विसूचिका हुइ । घणी असाता उपनी । उदर पीडा थकी वेदें । पहेलां जे गृहस्थ भिक्षुक पणें, जे आहार न देता घणा तिरस्कार करतां ते गृहस्थ नगर सेठ जेहवा आवी, नव दीक्षीतेनें साधु वेष उदय आव्यो जांणं; बहूमूल्य औषधादिकें विशेष भक्ति वेयावच साचवें । ते देषी रंक साधु मन चिंतवे जे ए धन्य ए चारित्रनें, धन्य ए वेषनें, जेना महिमा थकी एक कोटीध्वज लखेसरी व्यवहारीया बहुमांने करी मुझ भक्ति साचवे छें । एहवा शुभ चारीत्रनी अनुमोदनाइं काल पांमी उजेणी नगरीइं श्रेणिकनें आठमे पाटे कुणाल राजा, ते ओरमान मातानाकपट थकी वर्ष तेरनो चक्षू हीण थयो छें, तेहने घरे बेटा पाणि उपनो । केतलेक दिनें तेहनो जन्म थयो एतलें अकस्मात पेटशूल रोग पीडा थकी पीतानो नास हुओ । तुरत ते बालकने लावी पाट तषतें बेसारयो । ते माटे एहनुं नांम संप्रति राजा कहीइं । अनुक्रमें योवन अवस्थाइं पाम्यो । एहवें केतलेक दिनें श्री आर्यसुहस्ति सूरी (१३–१) उज्जेणीई चौमासु आव्या । तिहां दीवालीइं जूहार भटारें दिनें श्री गौतम केवलोछव महिमाइं श्री वीरचैत्यें रथ जात्राइं समस्त संघयुक्त महामहे राजपंथे जातां गवाक्षे वातायनि बेठा थकां संप्रतिइं श्री गुरुने देषी, जातिस्मरणे पूर्व भव दीठो । मनस्यूं चिंतवें, ए गुरि पाहिलां रंकनें भवें मुजने महा उपकार, दीक्षा देइनें, कीधो छें । एहवो वीचारी गोख थकी उतरी गुरुने वांदी, कहें मुजने तुमे ओलषो छो ? । गुरु कहे, मालवाधीश प्रबल पून्यनें जगत ओलखें । ते सांभली संप्रति कहें इणहीज नगरनो हु क्षत्री रंक नव दीक्षित चेलो तुमारो, ते माटें तूंहि कृपा करी मुजनें धर्म उपदेश कहो । तिवारें संप्रतिनें गुरु कहें अथ श्लोक—

दिने दिने मंगलमंजुलाली
सुसंपदा सौख्यपरंपरा च ।
इष्टार्थसिद्धिः बहुला च बुद्धिः
सर्वत्र सिद्धिः सृजतां सुधर्म्मम् ॥ १ ॥

अतः कारणात् सर्वत्र चंद्र बल तारा बल ग्रह बल दृग्-बल बाहु बलादिभ्यो बलवत्तरं धर्म्मबलं विलोक्यते ॥२॥

बीजेनैव भवेद्बीजं (१३—२) प्रदीपेन प्रदीपकम् ।
द्रव्येणैव भवेद् द्रव्यं भवेनैव भवांतरम् ॥ ३ ॥

एहवो उपदेश श्री गुरु मुषनो सांभली; संप्रति कहे, हे कृपानिधी ! उत्तम गतिना जाणहार रूडा जीव, तेहना कुंण आचार हुइ ? गुरु कहे हे संप्रति ! हे माहामतिना स्वामी, सांभल । उत्तम प्राणीना एह आचार हूइं । श्लोक—

अधः क्षिपंति कृपणा वित्तं तन्नयियासवः ।
संतस्तु गुरुचैत्यादौ तदुचैःपदकांक्षिणः ॥ १ ॥

एहवा वचन उपगारी गुरुना मुषथी सांभली समकित लही सूकृत करतो हुओ, संप्रति नृप, जिन प्रसाद मंडित प्रथवी शोभावतो हुओ । तेहनी संख्या—सवा लाष नोतन प्रसाद निपजायतो हूओ । तेहनें बारणे वें हजार धर्म-शाला निपजावी । सवाकोटी श्री जीनबिंब कीधा । ते मांहि पंचाणुं हजार धातूना बिंब । शेष बिंब उपलना राता, पीला, सांम, स्वेत, जाणवा । इग्यार हजार वापिका तथा कूंड नीपजाव्या । कोइ तेरा हजार पण कहे । छत्रीस हजार जिर्णोद्धार निपजाव्या । ते किम, दिन प्रतें एक प्रासाद जीर्णोद्धार नीपजानी (१४—१) वधामणी आवें, ते द्वारपालक बीजे दीनें कहें । एटलें संप्रतिनु आयु वर्ष सोनुं जाणवूं । । अनें सो वर्षना दिवस छत्रीस हजार हूया । ए प्रमाणें जीर्णोद्धार जाणावा । ते मांहि मुख्य जीर्णोद्धार श्री समलीका विहारनो नीपजाव्यो ।

हवे ते श्री शकुनिका विहारनी उत्पत्ति कहे छें । श्री नर्मदा उपकंठे भृगु क्षेत्रि कोरंटक वने आम्ली वृक्षे एक समली पोताना बालक सहित रहे छे । ते निरंतर पोताना बालकने पोखें । एटले षाटकी वीचारें जें ए समली चांचस्यू सबलो मंस बिगाडें छे । एटले समली आवी चांच पूटें मांस खंड लेइ वड वृक्ष साखायें बेठी । तेतले खाटकीए बांणें करी विंधी । मारग विचमां भूमीइं पडी । एहवें कोइक जैन गृहस्थे नमस्कार संभलावीओ । ते समलीइं सांभल्यो । एतलें पोताना बालक उपरें मोह न आण्यो । नवकार सद्द्यो । तेहना महिमा थकी मरण पांमी सीहल द्वीपना राजा श्रीचंद्र घेरे बेटी उपनी । ते वृषवंती हुइ । एकदा पितानें साथें ते कार्यार्थे भृगुकछे आवी (१४—२) । ए बजारें दाटें ऋषभदत्त व्यवहा-रियाना मुषथकी नोकार सांभली जाती स्मरण पांमी पाछिलो समली भव दीठो । ते पासें थकी नौकार शि-ख्यो । जैन धर्मि श्रधावंत हूइं । जे ठेकाणें बांणे विंधाणी भूमीइं पडी हूंति तिणहिज ठेकाणे विद्यमांन शासन श्री वीसमा तिर्थंकरनो जांणी बावन्न देवकुलिका सहित प्रासाद नीपजावी श्री मुनिसुव्रत स्वामीनो बिंब थाप्यो । ते प्रासाद मांहिं वड वृक्षें समलीनु स्वरूप कीधु । ते बालीका सील धर्म आराधी तीव्र तप तपी मरण पांमी इशान बीजें देव लोकें देवता पणें उपनी । यतः

हरिवंशभूषणमणि
भृगुकच्छे नर्मदासरे तीरे ।
श्री शकुनीकाविहारे
मुनिसुव्रतजिनपतिर्जयति ॥ १ ॥

इति शकुनीका वीहार उत्पत्ति ॥

पुनः संप्रतिये उत्तर दिस मरूधरि धंधाणि नगरि श्री पद्मप्रभ स्वामीनो प्रासाद बिंब नीपजाव्यो । बीजा-गीरी पासनो प्रासाद निपजाव्यो । ब्रह्माणी नगरी श्री हमीर गढीं श्रीपास प्रासाद बिंब नीपजाव्यो । इलोर गिरि सिषरं श्री नेमी बिंब थाप्यो (१५—१) । ते दक्षण दिसें जाणवो । पूर्व दिसि रोहिसगीरें श्रीसूपासनो प्रासाद बिंब नीपजाव्यो । पछिमे देवपतनें पूनः इडर गढें श्री शान्तिनाथनो प्रासाद बिंब निपजाव्यो । पूनः पूनः संप्रति स्व प्राक्रम त्रिखंडाधीश मंगल श्रेणी निमित्तं सदैव सूर्योदये अष्टोतरी, एकवीस भेदी, सत्तर भेदी, अष्ट भेदी, नवपदादी, मन पवीत्रें श्री जिन भक्ति साचवें । पूनः श्री सिद्धगीरी । १ । रेवंतगीरी । २ । श्री शंखे-स्वर । ३ । नंदीय । ४ । ब्राह्मण वाटक । ५ । रथ

आत्रादि प्रमुख महातीर्थ जाणी वर्ष माहिं वार च्यार संघपति हूई। जात्रानो लाभ कमावे। प्रचुर चित्त सम क्षेत्रे वित्त वावतो हुओ, मार सब्द मुखें न कहें, कानें पण मार सब्द सांभलें नही। न्याय घंटा वाजे। एहवी रीते संप्रति न्याय धर्मि राज्य करें छे। एहवें एक साधु मास षमणनो चोवीहारी तप संपूर्ण काउसर्गपारी गिरि-गुफा माहिंथी नीकलो, उजेणी नगरें पारणाने दि आहार अर्थे आव्या। तिहां दुर्भिक्षने योगें भिखारी घणा हूआ। कोइ तेहनें अन्न न आपे। एहवे ते साधुनें तपस्वी जाणीनें (१५—२) गृहस्थे कमाड उघाडी घरमाहिं लीधा। साधुयें पारणो करी पुनः अठाइ पचखी, आवी गुफाइं निश्चल काउसग ध्यानें रह्यो। एतलें सबले भिष्यारीइं मली चिंतव्युं जे ए यती तरत आहार लेइ गया छे, तिहां भिखारीए आवी तेह तपस्वीनो उदर विदारी अन्न षाधो। नगरमां वात प्रसिद्ध थई। संप्रतिइं यतीवात जाण्यो। श्री केवली तीर्थंकर वचनानुसारें भस्मग्रहनें योगें दिन रहांणीनों समय जांणी संप्रतिइं समग्र देशे श्री आर्य सुहस्ती प्रमुख साधु समुदायनें घणे आग्रहें महा महोत्सवें वेसकृत (?) धर्मशालाइं पधराव्या। कपाट हुआ छे नही। पुनः संप्रति राजाइं पोताना दास तथा घरनी दासी तेहनें साधु साधवीनो वेष देइ अनारज देसें विहार कराव्यो। घणा गाढा मिथ्यात्वीनें समकीत पमाडी आर्य जैन कीधा। इत्यादि उत्तम सुकृत करी इह परभव आत्मा कल्याणनु हेतु जाणी (१६—१) नीपजावी, कौरव कुल मोरिय वंस सोभावी संप्रति नृप सो वर्ष आउ संपूर्ण, सदगतिनो भजनार हूओ।

गाथा—कोसंबीए जेण दमगो पव्वाविओ तओ जाओ।
उजेणीए संपइ राया सो नंदओ सुहत्थी ॥१॥

इति संप्रति नृप संबंध ॥

ए श्री आर्य सुहस्ति सूरि लघु गुरुभाइ ते गच्छना पटोधर हूआ, अने वडा गुरु भाइ आर्य महागिरि सूरि तेहूणे जिन कल्पनी तूलना कीधी। दाक्षिण पणें राज्य पिंड लीधो। ते माटें विहुं गुरु भाइनें मांडली अहार पांणीनो व्यवहार जूदो हूओ। श्री महागीरी सूरीइं सम्मित शिषरनी यात्रानें हेतें पूर्वदेशे विहार कीधो। तेहनी च्यार पेढीनें आंतरें श्री देवर्द्धी क्षमाश्रमण हूआ। हिंवे श्री आर्य सुहस्ती सूरीइं वर्ष त्रांस संसारी पद भोगवी श्री स्थूलीभद्र स्वांमीने हस्तें दीक्षा लीधी, अनें वर्ष चोवीस शिष्य पणें गुरुनी सेवा कीधी। पुनः वर्ष छहेंतालीस युगप्रधान पद भोगवी सर्वायु वर्ष सोनुं संपूर्ण श्री वीर मुक्ति हूआ पछी वसेंनें एकांणु वर्षे श्री आर्य सु (१६—२) हस्ती सुरी स्वर्ग हूआ॥ पाट ८॥

९. तत्पट्टे श्री सुस्थित स्वामी ॥ १ ॥

लघु गुरु भाइ श्री सुप्रति बद्ध स्वामी ॥ २ ॥

ए विहू गुरु भाइनो व्याघ्रापत्य गोत्र छे। ते माहिं श्री सुस्थित स्वांमी ते पटधर जाणवा अनें लघु भाइ श्री सुप्रतिबद्ध स्वांमी ते गच्छनी चिंताना करणहार हूआ। ते मार्टे ए विहू गुरुभाई नांम जोडें लख्यां छे। पूनः ए वेहू गुरु भाइइं आलीयखंडे काकंदी नगरीइं, महर्षि गौतम कथक जे सूरी मंत्र तेहनो कोटिवार स्मरण कीधो। तिवारें नवमा पाट थकी कोटिक गच्छे एहवो बीजो नाम प्रगट हुओ। ते पहिलां श्री सुधर्मा स्वांमी थकी मांडी आठ पाट सुधी निग्रंथ गछ एहवो नाम कहेवातो। तेहनें सर्व आयु संपूर्ण श्री वीर मुक्ति हुआ पछी वर्ष त्रिणसें अनें बहोंतर वितके थके श्री सुस्थित स्वांमी स्वर्ग हुआ। पुनः श्री वीर निर्वाण हुआ पछी त्रिणसें अनें उगणासी वर्ष वीतें, श्री भृगुकच्छ नगरें श्री आर्य खपुटाचार्य प्रगट हुआ। पाट ९ मो।

१० तत्पट्टे श्रीइंद्रदिन्न सूरि।

अनें लघु गुरु भाइ बीजा श्री प्री (१७—१) यग्रंथ सूरी। तिहां वृद्ध गुरु भाई श्री इंद्रदिन सूरी तेहनों कौसिक गोत्र छे, लघु गुरु भाइ प्रीयग्रंथ सूरी तेहनो कासप गोत्र छे, श्री इंद्रदीन सूरी विहरता मुढेरीइं पुहुता। एहवें श्री वीर मुक्ति हुआ पछी च्यारसें सीतर वर्ष गया हुंते मालव देशें उजेणी नगरें परमार वंसे राजा श्री विक्रमादित्य प्रगट हुओ। तेह वर्षनु मान कहें छे। श्री वीर निर्वाणें (?) पालक राज्य वर्ष साठ। नंद राज्य वर्ष १५५। मोरिय राज्य वर्ष १०८। पुष्फमित्र राज्य

वर्ष त्रीस । बलमित्र १ भानुमित्र २ श्रीकालिकाचार्यना भांणेज तेहनो राज्य वर्ष साठ । नरवाहन राज्य वर्ष च्यालीस । गर्द्दभिल्ल राज्य वर्ष तेर । साकी राज्य वर्ष च्यार । श्री वीर मुक्ति हुआ पछी च्यारसें छनु वर्ष गयें दक्षिण दिसे श्री गौदावरी नदीनें कांठ पइठाणें भुजंगा धीप सानीध थकी श्री शालीवाहनो साको प्रगट हूओ । एवं वर्ष च्यारसेंने सीतरनो मेल हूओ ।

श्री वीर मुक्ति हुआ पछी त्रणसेंने वीस वर्ष गया पछी मोरीय राजानें राजें श्री आर्य सुहस्ती सूरीने संघाडे (१७-२) पहिला श्री कालिकाचार्य प्रगट हुआ । तिणे सौधर्म्मेंद्र आगलें निगोदनो विचार रुप विवरो कह्यो । पुनः श्री पन्नवणा उपांग सूत्रना कारक ए चोथा युग प्रधान जांणवा । पुनः बीजा कालिकाचार्य श्री वीर मुक्ति गया पछी च्यारसेनें त्रेहपन वर्ष वीतें बलमित्र-भानुमित्र राजानें राज्यें दक्षण दिसें गोदावरी नदीनें कांठे पइठाणें राजा श्री शालिवाहनना आग्रह थकी एकतालीस जैनाचार्यनी शाक्षिइं, श्री पर्व आये हूते यक्षोत्सवें श्री पर्वनो अंतराय जांणी भाद्रवा सुद पांचमथी चोथ दीने पर्जुषण पर्व कीधो । एहनो विस्तार श्री कालिकाचार्यनि कथा थकी जांणज्यो ।

श्री वीर मुक्ति गया पछी च्यारसेंनें एकवीस वर्ष गयें हूतें श्री इंद्रदिन सूरी स्वर्ग हुआ । हवें लघु गुरु भाइ श्री प्रीयग्रंथ सूरी श्री वीरसासननें प्रभावक हूआ । तेहनो संबंध कहे छे । अजयामेर गढीनी तलहटीइं हर्षपुर नगर वसें छें । एकदा तिहां विहार करता श्री प्रीयग्रंथ सूरी आव्या । एहवें छागनें होमवानें सकल (१८-१) मंत्रना जाण जग्न करता उद्यमी हुआ छे । एतलें जैन गृहस्थें गुरुनें जागनी वार्त्ता कही । तिवारें श्री गुरुयें सूरी मंत्रें वास मंत्री श्रावकने देइ, कह्या जे ए वास बोकडानें माथें ठवज्यो । जिम एहनें अभयदांन हूसे अनें शासन पण उन्नत होसें । श्रावके गुरुइं कह्युं तिमज कीधु । एतले बोकडो देव अधीष्टित थकी आकाशें जाइ उभो रह्यो । यागकृत वाडव प्रति मनुष्य भाषायें, अरे विप्रो ! तुम्हे सांभलो, जेतला पसूनी देहायें रोम होय तेतला हजार वरस सूरी पसूना घातनो करणहारनो जीव नरके रह्यो वेदना वेदे । यतः

महतामपि दानानां कालेन क्षीयते फलम् ।
भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते ॥ १ ॥

ते छागना एहवा वचन सांभली सकल मनुष्यना वृंद छागनें पुछे छें—जे तूं कूंण छे ? छाग कहे—हुं याचक देवता छुं । ए अज माहरु वाहन छे । तें माटें तुमे ए धर्म वांछो छो ते सर्व मिथ्या छे । साचा धर्म्मनी परीक्षा करो, तो श्री प्रीयग्रंथ सूरीनें पूछो । तिणें वाडवें गुरुनें धर्म्म पूछ्यो तिवारें सूरीइं, यत गाथा—

धम्मो मंगलमु (१८-२) क्किठं अहिंसासंजमो तवो ।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ २ ॥

ए गाथाइ कही । ते सांभली सर्व वाडव प्रतिबोध पांमी दया धर्म्म प्रत्यें आराधता हूआ । श्रीगुरुइं बोकडानें अभयदानना देणहार जांणी कीर्त्ति हूइ । एतलें ए प्रीयग्रंथ थिवीरनें श्रीवीर सासनें प्रभावक कह्या ।

इति प्रियग्रंथ सूरी संबंध ।

एहवें अवसरें प्रथम तिर्थंकर श्री रुषभ पुत्र नमि १ विनमि २ तेहनी शाषायें विद्याधर वंशी श्री वृद्धवादी सूरी तेहना शिष्य श्री सिद्धसेन सूरी श्री कल्याण मंदिर स्तोत्रना करणहार प्रगट हूआ । तिहां प्रथम वृद्धवादी सूरीनो संबंध कहे छे । एकदा विद्याधर शाषाइं आ०श्री स्कंद सूरी विहार करता गोड देशें कोसलपूर नगरें आव्या । तिहां मुकुंद नांमे वाडवें वृद्धपणें गुरु वांणी सांभली वृज्या । चिंतव्युं चिंतवे, जे शास्त्रंन विषें पंडिते कह्युं छे ।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्षते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथाहि धर्म्म विदुषा परीक्षते
श्रुतेन शीलेन तपो (१९-१) दयागुणैः ॥१॥

शिव शासननें विषें ए च्यार आत्मशुद्धिना भेद माहि एके शुद्ध नथी, एक जैन विना । तथा अभिनिवेश मिथ्यात्विना शास्त्र १ शील २ तप ३ दया परिणाम ४ ए च्यार वाना शुद्ध न कहिए । इम जैन दर्शननी साखी

वस्तु जाणी श्री स्कंदलाचार्य पासिं मुकुंदें दीक्षा लीधी। वृद्धावस्ताईं पिण रात्रें गाढिं स्वरें विद्यानो उद्यम करे। तिवारें गुरु कहें, भो महानुभाव! रात्रिं मोटे शब्दे न भणीयें। अनार्य मनुष्य जागें। खांडण पीसण आरंभे प्रवर्ते। तेहवें एक वृद्धा स्त्री ते साधु रात्रें भणतां घोष पाठ करतां ते डोसी कहें—रे साधु! तु घरडपणे भणीनें स्यूं मूसल फुलावीस? अमनें नीद्रा करवा देतो नथी। ते हेतुथी गाढे शब्दे अहेतु थाइं।

यथा यतः

जागरिया धम्मीणं अहमाणं तु सुत्तया सेइ।

वच्छाहिव भगोणीए अकहिंसु जिणो जयं मिय ॥१॥

इति भगवत्यंगे।

एहवुं गुरुनु वचन सांभली रात्रि भणवुं मूकी दिवसें घोष पाठ करें। तिवारें गृहस्थ तथा लघु शिष्यादिक (१९–२) ते पिण हास्य करी हसइं। ते किम जे तुम्हे गरडपणें गाढिं शब्दें भणीने किस्युं ते मुशल फुल्हावस्यो? ते हासु सांभली कास्मीर देशि पुंहूंतो सारदा मंदिरे उपवास करी बेठो। निश्चले सरस्वति प्रसन्न थइ। कहिं, वृद्ध! वर मांगी। हुं तुझने तुठी। ते कहे गरडपणें बुद्धि वांछु। ते सांभली वाग्देवी कहइ, जा तुं विद्यापात्र हुओ। ते श्रुतदेव्यादत्त वर लेई आवी गुरु वांदी बाजारनें विषइ घणा मनुष्य समाक्षि, ते डोसी समक्षि, सारदादत्त वरना महिमा थकी मुशल सुकुं हतुं ते नवपल्लव कूपलें करी शोभाव्युं फुलाव्युं। काव्य प्राह—

मुद्रो श्रृंगे शक यष्टिप्रमाणं १

शीतो वान्हि र मारुतो निःप्रकंप ३

यो पद छूते सर्वथा तत्र किंचिद् ४

वृद्धोवादी क किंमहीम्न वादी ॥ १ ॥

गुरें विद्यापात्र योगजांणी आचार्य पद देइ श्री वृद्धवादी सूरी नाम दीधु।

इति वृद्धवादी सूरी संबंध॥

पुनः हवइं श्री कल्यांण मंदिर स्तोत्रना उत्पत्ती कहइं छइं। (२०–१) श्री वृद्धवादी सूरी विहार करता भृगु कच्छि आव्या। एहवइं मालव मंडले उज्जेणी नगरी कौशिक गौत्रें देवरुषी नामइं वाडव रहि छइं। तेहनी देवशिका नामें स्त्री छे। तेहनो पुत्र कुमुदचंद्र नांमी महा षट् अंगनो जाण छइं। तिणें अन्य पंडितना मुष थकी वाग्देवी प्रशन्न थई श्री वृद्धवादीनो घणो महिमा सांभली अत्यंत गर्व धरी जे मुंजनें विद्यावादें जीतस्यें तेहनो हु शिष्य थाइस। एहवी प्रतिज्ञा धारी जिहां भरुयाच्छ श्री वृद्धवादी छइं तिहां आव्यो। एहवइं वृद्धवादी तेह चिंताइ नगर बाहिर आव्या छे। तिहां बिहुं एकठां मिल्या। वनइं विषइं गौवर्लीया तथा पिंडारा गौ चारइं छइं। कुमुदचंद्रि विद्यावादनो आसय जणाव्यो। तेह पिंडारानी शाषीया करी विद्यावाद प्रारंभ्यो। तिहां प्रथम कुमुदचंद्रें संस्कृत वाणी कही। पिंडारा न समजइं। ते कहे, ए विद्या कांई नहीं। ब्रह्म तुं फोकट आरडे छे। मूर्ख छइं। तिवारें वृद्धवादि सूरी अव (२०–२) सरना जाण हुइं। कल्पक रजोहरण कटिबांधी डंड उंचो हाथिं राषी प्रदक्षणा रुपी घरणीइं नाचता हुआ मुषि इम भणिजे। अथ चालि—

नवी मारीइं नवी चोरीइं, परदारा गमण न कीजीइं।
थोडास्युं थोडुं दीजइं, तउं टगि मगि सगि जाइइं। १।
गाय भिस जीम नीलु चरइं, तिम तिम दूध दूणो भरइं।
तिम तिम गोवाला मनि ठरइं, छाछिं देयंतां ते हू तरइं।२
गुलस्यु चावइं तिलतांदुली, वेढ वजावइं वांशली।
पहिरणि ओढणि हुइं धावली, गोवाला मन पुगी रली।३
मोटा जोटा मिल्या पिंडार, माहो माहि करय विचार।
महीषी दूझणी सरजी भली, दीइं दाबोटा पूगी रली।४।
वन माहि गोवाला राज, इंद्रतणि घरि ते नहिं आज।
भमर भिस दूझि वली सोल, सुखि समाधि हुइं रंगरोल।५
वाटउ भरीउं दहीनें बोल, जीमणो कर लेइ बेसि बोल।
इणि परइं मुह मेलावउ करइं, स्वर्गतणी वातज वीसरइं ६
हडहडाट नवी कीजे घणुं, मर्म्म न बोलीजे केह तणुं।
कूडी शिष म देज्यो आल, ए तुम्ह धर्म्म कहुं गोवाल।७
गर (२१-१) इस विच्छु नवी मारइं, मारंतओ पिण उगारिइं।
कूड कपटथी मन वारीइं, इंणि पिरइ आप कारिज सारीइं।

गोवालीया उठ्या गह गही, हर्षित थका ताली देता सही।
भलो एहीज डोकरउ, नही भणाओ एहीज छोकरउ ।९।
भट जे बोल्यो भूतप्रलाप, फोड्या कांन विगोइओ आप।
जीत्यो ए हरयो तुं हल्ला, पाए लागी करइं ए गुर भल्ला।

ते गोवालीयाना वचन सांभली कुमुदचंद्र श्रीवृद्धवादीनें कहें हूं प्रतिज्ञा संपूर्णि। विद्यावादें हारयो। ते माटि मुझने शिष्य करो। किसा थकी, तुम्हे समयना जाण अनि हुं समयनो जाण नहि। एतली माहरी बुद्धि काची। गुरें दीक्षा देइ 'कुमुदचंद्र' साधु नाम दीधुं। केतलेक दिनें गुरुसंग थकी श्रुतधर हूया। अतिगर्वित थकी, एकदा श्रीगुरुनें कहें, गणधर गुंथीत जे प्राकृत सिद्धांत छइं ते सवला संस्कृत करुं। इम कही महा उद्दाम विद्यापणइं 'नमो अरिहंताणं' ए सकल पंच पद प्राकृत छई, तेहनि संस्कृत निपजावी गुरुनें संभलाव्यो "नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु (२१-२) भ्यः" ते सांभली गुरु कहे—सकल गुण सम्र श्रीदेवाधिदेव सर्वाक्षर संनिपात लब्धिना धणी गणधरादि हुआ। अनि श्रुत केवली पिण आगि हुया। पिण जे श्रीवीर मुखि गणधरें त्रिपदी पांमीनइं मुग्ध प्राणीनइं उपगार नइं हेतइं प्राकृत भाषाइं रचना कीधी। तेहनु वचन अन्यथा करइं ते अनंत संसारी हुइं। ते माटि 'नमोऽर्हत्सिद्धा०' ए वचनं तुम्हनइं मोटी आलोयणा आवी। ते वृद्धवादी गुरुनो वचन सांभली कुमुदचंद्र चेलो गुरु पासें वृद्धनु वचन अन्य कय्यानी आलोयण मागइं। तिवारइं गुरु कहइं, गाढा मिथ्यात्वीनें प्रतिबोधी समकित पमाडी जैनपणु आदरावी गत तीर्थ पाछो वालइं तओ श्रीसंघि गच्छ मांडलइं आवइं। एहवुं गुरु १ संघ २ नु वचन माण करी एकाकी वीहार करता अवधुत वेंशि, बारमइं वर्षि, मालवदेसि, उज्जेणी नगरइं, परमार श्री वीक्रमार्क राज्यें शिप्रातटिं श्रीमहाकालेश्वरनि प्रसादि शिव लिंग उ (२२-१) परि मस्तक देइ सुतो। बीजइं दिनि प्रात समइं अर्चक सिवपूजक आव्यो। एतले प्रौढ शरीर, लंब भुजा, विशाल अवयव, निःस्पृह, अवीह, देषी अर्चक कहइं—तूं उठि उठि। ए शिव भोलो भस्मयोगी तेहनें दूहवी किस्यूं मरण मागइं छे। इम गाढइं स्वरि अर्चक वार वार कहइं तेतलइं मनुष्य एकठा हूंआ। कहि उठि उठि। पिण किम हि न उठि। तिवारें भरडइं विक्रम पोकारयो। वीक्रम कहीइं, ताणी घसरडी प्रासाद बाहि काढी नांख्यो। ते भरड राजाना अनुचर लई मनुष्यना समुदाय मीली उठाडवा लागा। पिण ते वज्र तुल्य। शिवनी आशातना जाणी पुनः अर्चक विक्रमइं पोकारें। विक्रमें शिव मर्यादा लोपी जांणी त्राजणा दीधा। ते त्राजणा राणीनें प्राहार हुइ। रांणी आक्रंद करें। ते सांभली वीक्रम चित्तें चितवइं, जें ए महा कोइक सिद्ध पुरुष छे। एहस्यु प्राक्रम नही। विक्रम आवी हाथ जोडी नमी कहे—हे कृपानिधी! मुज अपराध खमी तुम्हे प्रसन्नि प्रत्यक्ष थाओ। ते सांभली कुमुदचंद्र तत्काल उठी कहे, रे अहो! वि (२२-२) क्रम, आ नगरइं तुज राज्यि किसी अन्याय वार्ता छइं। विक्रम कहेइं, ते अन्याय वार्ता कहो। तिवारइं श्रीकुमुदचंद्रइं मुखथकी विक्रमनइं अवंति सुकुमालनो संबंध संभलाव्यो। विक्रमनइं मनि संदेह हूओ। कहें ते परमेश्वर श्रीपास अवंतिनो तुम्हे कीर्ति कहो। तिवारें कुमुदचंद्र श्रीपार्श्वनाथ त्रेवीसमा तीर्थंकर तेहनी स्तुति रूपे श्रीकल्याणमंदिर स्तोत्र कहइं छइं। ते कहितां जेतलि एकादशम काव्यें श्रीपार्श्व परमेश्वरिं पहिलाथी काम राग जीतो छइं ते स्तवइं। "यस्मिन् हरप्र० ११" ए काव्य कहितां शिवलिंग थकी धूम्रज्वाला प्रगट हुई। पुनः कुमुदचंद्रि बारमा काव्यमां अद्भुत रसि करी श्रीपार्श्वदेवनो महिमा वर्णवइं छे। "स्वामिन्नल्पगि० १२" ए बारम काव्य कहितां शिवलिंगनो तेज हीण हूओ। पुनः श्रीकुमुदचंद्र तेरमा काव्यमां वीर रसं करी श्रीपार्श्वनो धर्म्म वीर पणुं वर्णवइं छइं "क्रोधस्त्वया० १३" ए तेरमूं काव्य कहितां शिवलिंग स्फोट हुई। पिंडीइं विरह हूओ। ते मांही थकी तत्काल (२३-१) श्रीधरणेंद्र श्रीपद्मावतइं संवीत, पुनः पार्श्वयक्ष १ वैरोट्या देवीइं २ युक्त श्रीअवंतिपासनो बिंब प्रगट हुओ। ते देखी वीक्रम वीस्मय पांम्यो। सकल मनुष्य युक्त श्रीपास प्रणमी बइठो।

कुमुदचंद्र कहै, रे वीकम ! किहां ए हरलिंग अनिं किहां राग द्वेष वर्जित ए परमेश्वर । यतः—

पापदावाग्निजलदः सुरेंद्रगणसेवितः ।
समस्तदोषरहितो निःसंगः कलुषापहः ॥ १ ॥
अस्य पूजानमस्कारप्रभावैर्भविनां विभोः ।
भवंति संपदो वश्या मुक्तिश्चापि गृहांगणे । २ ॥
सततमुच्चरितं येन जिन इत्यक्षरद्वयं ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ३ ॥

एहवी कुमुदचंद्रकथक स्तुती सांभली मिथ्यात्व शल्य टाली समकित धर्मि निश्चल हुओ । महामहोत्सवें श्री अवंतिपास थाप्या । गुरु वचनें संघपति श्रीसिद्धाचलनो हुओ । पुनः महोय दानइं करी स्वसंवत्सर प्रवर्तावतो हुओ । निकंट एक छत्र राज्य भोगवी, पात्र अपात्रनी परीक्षा करी, एक शत अनि वाविस नूतन प्रासाद नीपजा (२३—२) वी, सप्त शत जिर्णोद्धार करीं, पर दुःख टालवा अग्रेसरी हुई, महा परमोपगारि थको परमार वंश शिरोमणि श्रीविक्रमादित्य सुकृतनो संचय करी सद्गतिनो भाजन हुओ । श्रीकुमुदचंद्र इणि परें गयु तीर्थ पाछो वाल्यो । गाढा मिथ्यात्वीनें गाढो समकिती कीधो । आवा बारे वर्षे श्रीवृद्धवादी गुरुनें वांदी आणाभर्म लोप्यानी आलोयणा लेई, मिथ्या दुःकृत देई, संघ शाखि स्व गच्छ मांडले लीधा । श्रीवृद्धवादी गुरुइं पोतानि पाटिं थापि श्रीसिद्धसेन सूरि नाम दीधुं । सम्मति ग्रंथ करता, अनुक्रमें विहार करतां, दक्षिण देशे प्रतिष्ठान पुरइ दिन इग्यार अणशणि, श्रीवीरमुक्ति हुआ पछी, ध्यारसइ अनइ सितोतरि वर्षि पुनः विक्रम १८ वर्षि श्रीसिद्धसेन सूरी स्वर्ग हुओ । यतः—

सव्व पभावगा तेय जिण शासण संसकारिणो जेओ ।
भवंतरेण चिणओ ए ए भणिया जिणमयंमि ।१।

इति सिद्धसेन सूरिसंबंध ॥

११ तत्पट्टे श्री दिन्न सूरि ।

तेहनो गौतम गोत्र । ए सुरीइं कर्णाटक देशिं विहार की (२४—१) धो । एक भक्ति विगय रहित जाणवो । ए सूरि चउद उपगरणना धरणहार हुआ । अत्र उपगरणनो विवरो । एहवें अवसरि चंदेरी नगरिं साधु शबनें दग्ध स्थिति हुई । ते पहेला साधुनी देह जिनावरनें उपगारिं काम आविं एहवउ जांणी जल थलनें विषई साधु एकठा थई परठवता । ते वार्ता वृद्ध परंपराइं गुरुमुषथी जांणज्यो ॥

१२ तत्पट्टे श्रीसिंहगिरि सूरि ।

तेहनुं कौशिक गोत्र । एहवइ

श्रीशांतिसूरि ॥ १ ॥
श्री सुधर्मसूरी ॥ २ ॥
श्रीआर्यनंदीसूरी ॥ ३ ॥
श्री शांडिल्यसूरी ॥ ४ ॥
श्रीहीमवंत सूरि ॥ ५ ॥
श्रीलोहीतसूरी ॥ ६ ॥
श्रीरत्नाकर सूरी ॥ ७ ॥

ए सात युग प्रधान प्रगट हुआ । पुनः श्री आर्य महागिरिना शिष्य स्थिविर श्री आर्य रक्षित सूरी । तेहनें संघाडें लब्धि संपन्न श्रीदुर्बलीका पुष्पमित्र सूरी प्रगट हुआ । तेहने भणावानइं घोष पाट उद्यमइं करी सूर्योदय सेर दस घृत जठराग्नि जरतुं । पुनः नागार्जुन सूरी १ श्रीस्कंदिल सूरी । २ । श्रीपादलिप्त सूरी । ३ । औषधीइं पादलेप करी आकासमार्गि उडी श्री (२४—२) सिद्धाचल । १ । गिरिनार । २ । सम्मित शिखर । ३ । नंदिय । ४ । ब्रह्माण वाटक । ५ । एवं पंच तीर्थनी यात्रा करी पाक्षिक तपनुं पारणुं करता हुया ।

श्रीवीरमुक्ति हुया पछी पांचसओ अनि पचवीस वर्षे श्री शत्रुंजय उच्छेद हुओ ।

श्री वीर निर्वाण हुआ पछी पांचसओ अनइं चुमालीस वर्षे गइं थकि छठो निन्हव रोहगुप्त नांमि प्रगट हुओ ।

श्रीवीर निर्वाण हुया पछी पांचसो अनि सडतालीस वर्षे, पुनः वीक्रम २६४ वर्षे, श्रीसिंहगिरि सूरि स्वर्ग हुया ।

१३ तत्पट्टे श्रीवज्रस्वामी ।

हवि श्री वज्रस्वामीनो संबंध कहुं छुं । जंबुद्वीपे दक्षिणाऽर्ध भरतें अवंति दिशिं तुंबवन ग्रांमि गौतम

गौत्रइं श्रीधनगिरि रहइं छइं । तिणे सगर्भा सुनंदा स्त्रिनें घरे मुकी आर्य समती साला सहित वैराग्यें श्री सिंहगिरि सूरीनो उपदेस सांभली दिक्षा लेई गुरु साथि विहार कीधो । केतलेक दिनें घरे सुनंदाने बेटो हूओ । सुनंदानी सहीयर स्त्री ते बालकने रमाडतां कहइं—ताहरइं पिताइं दीक्षा लीधी न हुत तो (२५-१) जन्म ओत्सव करत । एहवा वचन स्त्रीनां ते बालके काने सांभली जाति स्मरणइं पूर्व भव दीठो । चित्तिं चिंतवे जे हुं पिण चारित्र लेउं । एहवउ विचारी एकमनो थई घणु रुदन करी । तेह थकी सुनंदा घणी आकुली हूई । मनें चिंतवीं जे एहनो पिता आवे तउ तेहने आपुं । इम करतां षट् मासनउ हूओ । एहवि अवसरइं श्रीसिंहगिरि सूरी शालाइं रह्या । तिहां धनगिरि । १ । अनि आचार्य समित । २ । ए बिहूं साधु गुरुनि आज्ञा लही तुंबवन ग्राम मांहिं आहारनी गविषणाइं जाइ छे । एतले ज्ञान उपयोगी शकुन विचारी गुरु कहे—हे शिष्य ! तुम्हनें आज गोचरीइं जातां साचित अचित जे मिले ते लेज्यो । गुरुवचन अंगी करी ते बेहु मुनि संसारिक वंदाववा सुनंदा घरे पुहुंता । नगर मनुष्यइं घर स्त्रीइं ओलखी रुदन करतो बालक तेणीं पीडानी एहवी जे स्त्री कहइं 'आ सुत तुम्हारो तुम्हे लिओ ' इम कही बेटो धनगिरिनइं दीधो । एतले तुरत रोतो रह्यो । ते बालक झोलीइं (२५-२) लेई गुरु वचन संभारी धर्मलाभ देइ धनगिरि गुरु पासि आव्या । घणे भारइं बाहु नमती देखी वज्रसमान भार जांणी गुरुइं वज्र कुमार नांम दीधुं । साधवीने उपाश्रयें शिय्यातरि श्राद्धि सुश्रूषा साचवी । पालणइं पउढाडइं । रात्रिने विषइं साधवी इग्यार अंगनी सझाय करे । ते पालणें सूतां सांभलतां थका बालकने अंग इग्यार मुखि आव्यां । इम करतां ते वज्र बालक त्रिण वरसनो हूओ । एतले तेजवंत पूत्र सुनंदा गुरु पासि मागइं—मुनइं माहरो बेटो साधुजी आपो । गुरु कहे धरमलाभइं विहराव्यो बालक अम्हे पाछों न दीउं । इम करतां राजा समक्ष विवाद हूओ । राजा कहे—बोलाव्यो जेहनइं पासि आइं तेहनो ए बालक, एहवो राजानो वचन सांभली सुनंदाइं भांति २ नी सुखडी मूकी; गुरिं रजोहरण मुक्यो । एतलइं वज्र कुमार राजसभा समक्षि रजोहरण मस्तकं लेइं नाच्यां; सुखडी अनि माता साहमुं न जोयुं । तिवारें ते देखी सुनंदा विचारइं, जे भाईइं १ स्वामिइं २ (२६-१) अनइं बेटइं ३ पिण दीक्षा लीधी । हवि संसारइं रह्यो मुझनइं कुण आधार । एहवउ जांणीनइं श्री सिहगिरिपासि सुनंदाइं दीक्षा लीधी । वज्र कुमारइं आठ वर्षनइं दीक्षा लेइं दश पूर्व भण्या । एकदा श्रीसिंहगिरि बहिर्भुमी गये हुतइं अन्य साधु नगर मांहिं आहारनें अर्थि गया छइं । एहवइं शालाइं यंत्रकपाटि बाल लीलाइं साधुनी उपधि एकठी करी । विद्यार्थी ना भणइं । एहवइं इग्यार अंगनी वांचना दीइ छइं । एतलइं गुरु शालानें द्वारें विवर थकी गुप्त पणइं रह्या ते सघलो व्यतिकर देखी, जोग्य जांणी, श्री सिहगिरि सूरीइं दश पूर्वधर वज्रने पोतानें पाटिं थाप्या । श्री सिंहगिरि सूरिनी आज्ञा लही, पांच शत मुनि साथि पूर्व दिशि थकी विहरता उत्तर दिशि आव्या । श्री वज्र स्वामी तिहां दुर्भिक्षियोगिं संघ सिदातो जांणी पूर्व भव मित्र जृंभिक देवार्पित आकाशगामिनि विद्याइं श्री संघने बार योजन कल्पकनो विस्तार, अडसटि कोटइं (२६-२) निपजावी सुभिक्षइं महानसी पुरइं मुक्या । पुनः श्री वज्र सूरी उत्तर दीशि थकी विहरता दक्षण पंथि तुंगिया नगरइं चोमासइं रह्या । तिहां रस विकारना जोगथी श्लेष्म हुओ । शिष्य प्रति श्री वज्र सूरी कहइं—जिवारइं आज तुम्हे आहारने अर्थि गृहस्थनें घरे जाओ तिवारें शुंठिनो खंड याचि लावजो । तिणें शिष्य निमज सुंठि लावि गुरु हस्ते दीधी । गुरिं कर्णे ते शुंठि थापि चिंते जे आहार करी ए खंड वावरिसुं । आहारने करवइं ते सुंठि खंड वावरवी वीसरी स्यांजेनी पडिलेहण करतां, मुष वस्त्रिका पडिलेहतां, कर्ण थकी सुंठी खंड प्रथवीइं पड्यो । ते देखी पोतानो प्रमाद तथा विसरण पणुं जांणी विचारइं, जे हूं दश पूर्वनो धारक तेहनिं ए किम वीसरी ? उपयोग दीधइं थकी पोतानुं आयु थोडुं जांणी पोताना शिष्य श्री वज्रसेन, तेहनि पोतानें पाटइं थापी, कहे तुम्हे सोपारक पत्तनइं विचरो । तिहां

बार वर्षनइं अंतइं, दुर्भिक्षनइं योगि, लक्ष द्रव्यें, एक हांडी खीरनी विष मिश्रि (२७—१) त थकिं मरणें, श्रे० जिनदत्त, भा० ईश्वरी, पूत्र च्यार, उत्तम पात्र छइं, तेहनइं अभयदान दीओ । इम कहीजो, जे बार हजार जिहांज जुगंधरीना भरया वाहण आवस्यें । समुद्रथी पर द्विपथी आवर्सी । ए उपकार तिहां जाई करो । एहवां श्री गुरुनी आज्ञा लही श्री वज्रसेन सुरीइं विहार करता हुवा । एहवी श्री वज्रसेननइं युगप्रधान पदवी हुइं । ने समयइं बीजो उदय हुओ । वीर मुक्ति हुयां पछी छसइ सोले वर्षः ।

हवि श्री वीर निर्वाण हुआ पछी श्री वज्रसुरीनो च्यार सय अनि पंचाणु वर्षे जन्म हुओ । वर्ष आठ गृहस्थ पणइं रह्या । अनि वर्ष चुमालीस शिष्यपणीं श्री सिंह गिरि गुरुनि सेवा कीधी । वर्ष छत्रीस युगप्रधान पद भोगव्युं । सघलुं आयु वर्ष अठ्यासि संपुर्णि । श्री वीर नीर्वाण हुआ पछी पांचसि अनि चोरासी वर्ष गये हूतइं, दक्षिण दिशि, मांगिया नामि पर्वतनइं विषइं शिलाउपरि अणशणि, श्री वज्र स्वामी स्वर्ग हुआ ।

श्री वज्र स्वामी नामि वज्रि शाषा कहिवाणी । पुन इणहिज वर्षि गोष्ठामाहिल नामि सातमो निन्हव प्रग-(२७--२) ट हुओ ।

जिम श्री जंबु सामि दश बोलनो विच्छेद हुओ तिम श्रीवज्र साथइं, चोथु अर्ध नाराच नामा संघयण । १ । अनि दश पूर्व २ ए बिहु उत्तम बोलनो विच्छेद हुओ ।

महागिरिः १ सुहस्ती २ च सूरिः श्री गुणसुंदरः ३ ।
श्यामाचार्यः ४ स्कंदिलाचार्य ५ रेवतीमित्रसूरिराट् ६
श्रीधर्म्मः ७ भद्रगुप्त ८ श्र; श्रीगुप्तो ९ वज्र सूरिराट् १० ।
युगप्रधानप्रवरा दशैते दश पूर्विणः । २ ।
चंद्रकुलसमुत्पन्निपितामहं महाथिमुं ।
दशपूर्वनिर्धि वंदे वज्रस्वामिमुनीश्वरं ।। ३ ॥

अत्र श्री वज्र वर्णन । उक्तं च---

किं रूपं किमुपांगसूत्रपठनं शिष्येषु किं वाचना
किं प्रज्ञा किमु निस्पृहत्वकं किं सौभाग्यभंग्यादिकं ।
किं वा संघसुमन्नतिः सुरनतिः किं तस्य किं वर्णनं ।
वज्रस्वामीविभोः प्रभावजलधे रेकैकमप्यद्भुतं ।। १ ॥

ए वज्रस्वामी संबंध अन्य चरित्रे विस्तार छे, मांटे लवलेश कह्यो ।

१४ तत्पट्टे श्रीवज्रसेन सूरी ।

तेहनु भारद्वाज गोत्र । गुरु श्रीवज्र-स्वामीने वचनें विहार करता समुद्र तटे सोपारक पुर पत्तनें शालाइं (२८—१) रह्या । मध्यानें सलहड गोत्री श्रे० जिनदत्त, तेहनी स्त्री ईश्वरी, तेहनें बेटा च्यार नागिंद्र १ चंद्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर ४ ए नामि छइं । तेहने वेरें श्रीवज्रगुरुना वचनानुसारे भिक्षार्थं पुहुता । एतलइं स्त्री भरतार विष मिश्रित आ-हार देखी सांहमी दृष्टि संजाइं कहइं, श्रीगुरु ! तुम्ह यो-ग्य निर्दोष आहार नहिं छइं । ते सांभली श्रीवज्रसेन कहें, ए आहार भुमिकाइं शरण करो । गृहस्थ कही, विषम समइं मर्यादावंत गृहस्थनी मर्यादा किम रहइं । वज्रसेनजी कहइं प्रभातिनइं समयइं खाडीइं जिहाज युग-धरी धानि भर्या आवस्यइं । ते गुरु वचन सांभली विष हांडी भू शरण करी । व्यवहारीओ जिनदत्त, स्त्री इश्वरी, पुत्र च्यार युक्त हाथ जोडी श्री वज्रसेननें कहइं, तुम्हे महामूनि निस्पृह छो । जओ तुम्हारुं वचन सत्य हुस्ये तओ अम्हे तुम पासें व्रत लेइस्यु । ए प्रतिज्ञा लेइ महा श्रद्धावंत थया । श्री सुरि शालाइं आवी स्मरण करतां बार पहर संपूरण हुआ । समूद्रीं जिहाज युगंधरी (२८-२) इं भरया आव्या । घणो सुभिक्ष हुओ देवी श्री अभयदाननो दातां जाणी जिनदत्त, स्त्री इश्वरी, नगिंद्र १ चंद्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर ४ ए च्यार बेटा युक्त श्री वज्रसेन सूरीपासें दीक्षा लीधी । अनुक्रमि ते च्यारे जणा कतलेक उणां दश पूर्वधर हूआ । ते चिहूंनें आचार्य पदि कीधा । नागिंद्र १ चंद्र २ निर्वृति ३ विद्याधर ४ च्यारथी ए च्यार शाषा प्रगट हुई । अनि तिणे चिहूए पिण एकविस आचार्य कीधा । तेह थकी तेहनें नामि चुरासी गच्छ कहिंवाणा । एतलइं श्रीवीर निर्वाण हुआ पछी पांचसे ब्यासी वर्ष गयइं हुते ए च्यार शाखा प्रगट हुई। ए च्यार शाषा जाणवी ।

तीहां थकी श्री वज्रसेन सूरी केतलेक दीने विचरता श्रीसोरठ देसिं मधुमतिइं कपर्दि नामी वणकर वसेछे; तेहनीं घरीं आडी १ अनी कुहाडी २ नामी बे स्त्री छइं, पिण ते कपरदी तेहनीं अभक्ष १ अपेय २ ए बिहूनो अणाचार जांणी प्रहार रूपें शिक्षा दीइं छइं । एहवे श्रीवज्रसेन सूरीयें ते वणकरनिं दूषीयो दे (२९-१) षी बहिर्भूमि जातां थकां श्रीगुरुइं कोमल वचनं बोलाव्यो। कही, रे कपर्दी ! तु अम्ह पासिं आवी । ते कपर्दी पिण आवी हाथ जोडी उभो रह्यो । एहवइं श्री गुरुइं आगिम ज्ञान करी दृष्टि दीधी, सुलभ बोधी जांण्यो । वली तेहनु आयु घडी २ नुं जांणी गुरु श्रीवज्रसेने कहियो, अहो कोकिल ! तुने महाकष्ट देखि छइं । तुं धर्म करी पच्च-खाणनु परमाण कर, जिम कष्ट मिटे । ते गुरुनुं वचन सांभली विनयवंत कपर्दी कहे, श्री गुरु ! ते पच्चखांणनी मुझने कृपा करो । तिवारे गुरु श्री वज्रसेन कहे-' नमो अरिहंताण ' इत्यादि नमस्कार मुष थक उच्चारी, पछी कटी दोरानी गांठी छोडि एक ठिकाणे बेठां भोजन १ अनि जल लेवूं २ । पछी तीमहीज कटी दोरानी गांठि बांधी । ते गुरु वचन कपर्दी अंगि करी, ते वन उचर्यु । एहवइं तिण हिज दिनें सर्प्प गरल व्याप्त अमिस खंड तेहनो भोजन हुओ । तेहथी ते कप्पर्दी मरण पांम्यो । पच्चखाण अंगी (२९-२) कऱ्याथी ते महिमाइं अणपन्नी-पणपन्नी मध्ये उपनो । अवधि ज्ञानइं जाण्यो, पोतानो पाछिलो भव । नमस्कार सहित पच्चखाण महिमा मोटो दीसें छे। इवी गुरुइं पच्चखांण शिखव्यो पहिले भोजनें तुरत मरण पांम्यो जांणी बिहूं स्त्री मिलि राजाने पुकारिओ-जे इणि महात्माइं कांइक शीषवी मारीओ । राजाइं श्री वज्रसेन गुरुने राव लेवा बेसाऱ्या । कहे, तुम्हे साधु थई किम ए स्त्रीनो स्वामी माऱ्यो ? एहवे कपर्दी पोताने ज्ञान करि जुइं । एतले उपकारी गुरुने कष्ट जांणी गांमप्रमाणे देव शक्तिं पथर शिला निपजावी, आकाशे रह्यो, सकल लोकने कहे-—ए मुझ गुरु प्रत्यें खमावी प्रणमो ! नहि तो आ शिला गांम उपरइं पाडुं छुं । ए गुरु मुझ प्रतिं महा उपगारी छइं । तिणे राजाइं मरणना भय थकी श्रीवज्र-सेनने प्रणमी शालाइं पधराव्या । एतलि कपर्दीइं शिला संहरी प्रसन थई राजादि लोक समक्षि ए गाथा कहे-—

मांसासी मज्जरओ इक्केण चेव गंठिसहिएण ।
सोहं तंतुवाओ (३०-१) सुसाहुवाओ सुरो जाओ ॥

श्री गुरुने वांदी, कहइं, मइं श्री भगवान ! किस्या कर्म कीधा, इम कही, ते तुमहे कृपावंत करुणासमुद्र हित करी कहो । ते सांभली गुरु कहइं—तें पूर्व भवि मोटा पाप कीधा । पिण तेहनी पचिखतानी हेतुइं सकल कर्म्म क्षालणइं श्री सिद्ध क्षेत्र गिरिइं श्री संघने साहय्यना कारक थाओ । श्री रुषभ परमेश्वरनी भक्तीमां रहओ । ते श्री वज्र गुरुना वचन सांभली कपर्दी यक्ष हरख्यो । कहे, मुज जन्म कृतार्थ हूओ । जे ए महातीर्थनि भक्ति मुजने उदय आवी । ए तीर्थ किस्यो छे —

यत्र बहुकोटिसंख्यासिद्धिमगुः पुंडरीकमुख्यजिनाः ।
तीर्थानामादिपदं स जयति शत्रुंजयगिरीशः ॥ १ ॥

एहवी बहुमानइं स्तुति करतो थको ते व्यंतर श्री सिद्धाचली कपर्दी नामा यक्ष श्री संघने कुशल कारक हूओ । एतलि विरति मास एकनाइं कीजइ तओ ओगणत्रीस उपवास कीधानो लाभ हुइं । काव्यं—

यः पूर्वे ततुवायः कृतः मुकृतलेर्वदुरितः पूरितो यत् (१) प्रत्याख्यानप्रभावादमरमृगदृशा (३०-२) सानिध्यं यः प्रपेदे । सवाहवाकशालिप्रथमजिनपदांभोजयोस्तीर्थ-रक्षा—दक्षः श्री यक्षराजः स भवतु भवतां विघ्नमर्दी कपर्दीः । १ ।

इति कपर्दी संबंध ॥

हवइ श्री वज्रसेन सूरीइ वर्ष नव गृहस्थ पणु भोगवु । वर्ष एक सो अनि सोल श्री वज्र स्वामी गुरुनी सेवा शिष्य पणे कीधी । अनिं वर्ष त्रिण युगप्रधान पद भो-गवुं । सर्व आयु वर्ष एकसओ अनि अट्ठावीस संपूर्णी, श्री वीरमुक्ति हुया पछी छसय अनिं वीस वर्ष, पुनः श्री विक्रमादित्य थकी एकसो अने आठि वर्षे श्री वज्रसेन सूरी स्वर्ग हुआ ।

एहवे श्रीवीर मुक्ति हुआ पछी पांचसे अनि सीत्तर

वर्षे श्री सिद्धि क्षेत्रि सा. जावडें तेरमो उद्धार कीधो ।

श्रीवीर मुक्ति हूआ पछी श्री वज्रसेन सूरी चिरं राज्ये वर्ष छ सय अनि नव गये हूंतें, पुनः वीकमथी १३९वर्षि दक्षिण दिशि कर्णाटक देशि दिगंबर नामि सर्व विसंवादी सातमें बोलनी परूपणा थापि आठमो ए निन्हव हूओ ।

पुनः श्री वीरनीर्वाण पछी छ सतनें वीसें वर्षे श्री (३१–१) गिरिनार सा जावडें उद्धार कीधो ।

१५ तत्पट्टे श्री चंद्र सूरि

तेहनो सलहड गोत्र: श्री वज्रसेन चंद्र शाषानो उदय जांणी च्यार गुरु भ्रातामध्यें श्री चंद्रसूरीनिं पाट थापना कीधी । अन्य तृण गुरु भाई शाखाइ रह्या घणा गोत्र प्रतिबोध्या । श्रीचंद्र गछ एवुं बीजु नाम कहिवाणुं ।

पुनः विक० संव० ३७७ वर्षे निर्वृति कुलि राज चैत्र गच्छीय आ० श्री धनेश्वर सूरी । सवालाख ग्रंथ श्री सिद्धाचल महातीर्थनो महिमा हूतो । तिवारे वलभी नगरें श्री शिलादित्य राजाइं अल्पायु अनि विकल्प घणा जांणि ते पूर्वग्रंथ सवालक्ष हूंतो ते माहि थकी सार २ संबंध दश हजारनइं संख्याइं उद्धरीनें श्री सिद्धाचल महात्म कीधो ।

हवि ब्रह्म द्वीपीका शाषानी उत्पति कहइं छइं । आहिर देशि अचलपुर नगर परिसर कृष्णा अनि वेन्ना एहवे नामइं बिहुं नदीनी वीचली ब्रह्म नामी द्वीप छे । तिहां च्यारसें अने नियाणुं तापसनि परिवारि देवशर्म्मा नामि कुलपति रहे छे । ते मुख्य देवशर्म्मा आ (३१-२) पणो महिमा वधारवा सर्व तापसने बिहु पगने विषि उषधी लेप करी संक्रांतिना पर्वना पारणानि दिन वेन्ना नदीना जल उपरी हिंडी अचलपुर आवे । ते चमत्कार देषी मीथ्यात्वी गृहस्थ भोजन देइ प्रसंसा करे । तपस्वी महा तप सक्ति चमत्कारि छे । जैननी नींदा करी श्राद्धने कहे तुम्हारा जैन माहिं कोइ एहवा प्रभावक नथि । एहवे तिहां विहार करता श्री वज्र स्वामीना मामा श्री आर्य समिति सूरी आव्या । तिवारे जैन गृहस्थे तापसनो सर्व संबंध कह्यो । ते गृहस्थ वचन सांभली गुरु विचारी जे कोइक ओषधीना जोगथी कपट छइं पिण तपशक्ति नहिं । गुरें श्रावकने तेडी कह्यां ए तपासनें रुडि परि वि पग धोइ जीमाडज्यो । गृहस्थे तिमज कीधुं । अमारो हर्ष छइ इम कही बलात्कारि देवशर्म्मा तापसें ना २ कहितां वि पग वलि प्राक्षि करी धोया । भोजन देइ बोलवा लोकवृंद साथइं हूया । पादलेप औषधी धोया थकी नदीमां अर्द्ध विचालइं बूडवा लागो । तिवा (३२-१) रे लोके कपट कही निभ्रंच्छीओ । मुख श्याम हूओ । तेहवइं तेहनी प्रतिबोधवानें श्री आर्य समिति सुरी तिहां नदी तटिं आवी सकल लोक वृंद देषतां, चिपटी देई गुरु कहे—हे वेन्ने । अम्हे पेलइं पार जावा वांछुं छुं । तततले नदीना बिहूं कुल एकठा मिल्या । सकल लोक मनि विस्मय हूओ । तिवारि श्री आर्य समिति सूरी मनुष्य वृंद सहित तापस स्थानि कनइं जाइनइं धर्म्मोपदेश देइने ते पांचसि तापस प्रतिबोधी दीक्षा दीधी । ते सवला श्री आर्य समिती सुरीना शिष्य हुआ । तेहनी संघाते तेडी श्री गुरु संघ सहित शालाइं आव्या । श्री जिनशासनो-न्नति हुई । तिहां थकी ब्रहमाण गछ हूओ । श्रीवीर नीर्वाण हूआ पछी छसइं अनि इग्यार वर्ष गयइं हुति ते तापस साधु थकी श्री ब्रहम दीपीका शाषा केहेवाणी ।

एवं पाट पन्नर सूरी श्री थिरावली सुत्रि करी थविर कह्या; हवे तेहना शिष्य ते आचार्य कह छइं ।

१६ तत्पट्टे श्री समंतभद्र सूरि ।

श्री वैराग्य निधी थका किवारइं वाडीनि विषइं रहइं, किवा (३२-२) रइं यक्षनइं देहेरें वासो रहे । किवारइं वननें विषइं रहे । इम जावजीव अहर्निश निःस्पृह पणइं सकल सूरी छत्रीस गुणे संपूर्ण देषी लोके वनवासी एहवुं बिरुद दीधुं । तिहां थकी चोथु नाम वनवासी गच्छ कहिवाणुं ।

श्री वीरमुक्ति हूया पछी आठसइं नइं बीयासी वर्षे चैत्यवासी हुआ ।

विक. सं. ४२८ वर्षे श्री अनंगसेन तुंअर थकी दील्ली नगरीनी थापना हुइ ।

१७ तत्पट्टे श्री वृद्धदेव सूरी ।

श्री वीक. सं. ५९२ वर्षे श्री सांचोरपुर नगरें ओईसा

नगर थकी आवी चहूआण श्री नाहडइं श्री वीर बिंब अढार भार सुवर्णमय सप्रासाद थाप्यो । श्री वृद्धदेव सूरीइं प्रतिष्ठयो ।

१८ तत्पट्टे प्रद्योतन सूरी ।

एहवै विक्र. सं. ५९५ वर्षे अजयामेरु नगरें श्री रुषभ बिंब प्रतिष्ठा नीपजावी । पुनः सुवर्णगीरीइं दो. धनपतिइं द्विलक्ष द्रव्य सुकृति करी यक्षवसती नाम श्रीवीर बिंब प्रासाद सहित प्रतिष्ठा हुई । एहीज सूरीइं प्रतिष्ठा कीधी ।

१९ तत्पट्टे श्री मानदेव सूरी ।

सूरी पदना महिमा थकी षट्विगय त्यागी (३३-१) तेहने भक्तिवंत गृहस्थ भक्ति करी आहार आपे तो आहार न लेवो । ते तपना महिमा थकी पद्मा १ जया २ विजया ३ अपराजिता ४ एच्यार देवी श्री गुरुनी भक्ति साचवे । अमारि पलावइं । श्री सूरिइं नाडओल नगरे लघु शान्ति निपजावी तेहनइं संभलाववाइं तथा तेहने जलमंत्री छांटवे चतुर्विध संघ थकी महामारि काढि संघ उपद्रव रहीत हूओ । श्री सूरी संघने कुशलकारी हूया । श्री गुरुनो वृध सिंध देशीं विहार हूओ ।

उच्च गाजिखान देराउल प्रमुख नगरिं घणा सोढा राजकुमार प्रतिबोधी उपकेश कीधा । एहनो विस्तार सबंध प्रभावक चरित्रनइं धुरें ते जोइ वांचज्यो ।

२० तत्पट्टे श्री मानतुंग सूरी ।

श्री सूरीइं अष्ट भय गर्भित मयहर कहितां 'नमीऊण' इस्ये नामइं स्तोत्र श्री पार्श्वनाथनी स्तवना रुपइं श्री पद्मावतीनी कृपा थकी नीपजावी ते माहि 'विलसंत भोग भीसण ०' ए गाथा आठमीनइं कहिवे करी जणइं श्री नागराज वशि कीधो । पुनः श्री सूरीइं श्री चक्रेश्व-(३३-२) रीना साज्य थकी वृद्ध भोज राजानी समाने विषे श्री भक्तामर एहवइं नामइं स्तोत्र प्रगट कीधो ।

ते भक्तामर स्तोत्रनो उत्पत्ति कहइं छइं । यथाः— मालवदेशी उजेणी नगरइं राजा भोज वृद्ध छे । ते राज्य करें छे । तिहां मयुर १ अने बाण २ एहवे नामइं बिहुं याइय महाविद्यापात्र रहइं छइं । एकदा ते बिहुं विद्या विवाद करता राज सभाइं माहोमाहि अहंकार धरें । हुं घणो भण्यो, तेह थकी हुं अधिक पात्र छुं । इम बेहुं मत्सर धरता देखी वृद्ध भोज कहें, रे दक्षो ! तुम्हे बेहुं कास्मिर देशी जाओ । तिहां सारदा जेहनइं विद्यावंत कहइं ते मोटो पंडित । ते बिहू राजानो वचन सांभली कास्मिर भणी चाल्या । अनुक्रमा घणो मारग उलंघी सारदा मंदिर प्रति पाम्यां । भोजन करा संध्याइं बिहु सुता छइं, एतलइं सरस्वतीइं परिक्षार्थि मयूरने अर्ध जागतें ए समस्या पद पूछयूं जे——

" शतचंद्रं नभस्थलं "

ते सांभली मयूरे कह्युं

दामोदरकराघातविह्वलीभूतचेतसा ।
दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचंद्रं नभस्थलं ॥१॥ (३४-१)

एहवी समस्या मयूरें संपूर्ण कही ।

ते सांभली पुनः बाणनें परीक्षा हेति सारदाइं समस्यानुं पद पूछीओ जे-" शतचंद्र नभस्थलं " ते सांभली बाणे अर्ध जागतइं कह्यूं

यस्यामुत्तंगसौधाग्रे विलोलवदनांबुजे ।
विरराज विभावर्या शतचंद्रं नभस्थलं ॥ १ ॥

एहवी समस्या बाणे करी । ते बीहुनी वांणी सांभली कुमारीका कहे तुम्हे बिहुं महाप्रज्ञ छो; एहवूं बिरुद लही कतलेक दिवसे घेर आव्या । बिहुने पंडित जांणिया । तो पिण मयूरनइं वृद्ध जाणी भोज घणो आदर दीइं । एतले बाण द्वेष धरी । स्वहस्तें चउरंगो हुइ चंडीकाने प्रासादे बेठो । चंडीकाना काव्य ६१ करी स्तवना कीधी एतले चंडी प्रत्यक्ष हुइ कहइं वर मांगी, हुं तुठी । ते बाण कहे, लोके आश्चर्यपणा थकी हस्त पाद नव पल्लव आपओ । देवी कहे हूआ । एतले हस्तपाद नव पल्लव लही नगर मध्य थई दरबारे राजानी कचेरीइं बाण आव्यो । महा आम्नायवंत जांणी राजाइं आदर आप्यो। एहवो चमत्कार देखी राजा श्री (३४-२) वृद्ध भोज सभा समक्ष सकल पंडित मंडलीने कहइ, जे चमत्कार देखी राजा शिवि दर्शन विना एहवा चमत्कार आमनाय अन्य दर्शनि न हुइ । एहवूं सांभली राजानो कामदार

जैन छे, ते कहे—इणहीज नगरे जैनाचार्य श्री मानतुंग सूरी महा आम्नायना धारक महा विद्यापात्र निगवी छइं। ते सांभली वृद्ध भोजे श्रीमानतुंगसूरीनें कचेरीइं तेड्या। वांदी कहे, हे दर्शनी ! महापुरुष छो तुम्हे सासनने महिमा करो। तिवारें श्रीमानतुंग वृद्ध भोजने कहें पग थकी कंठ लगें आठील अडतालीस ताला सहीत गाढी मुश्क देही करो। राजाइं सहु कचेरीना मनुष्य देषतां तिमज कीधु। पछी तिहां थकी उपाडी ओरडा माहि घाली बारणे ताला देइ रक्षक मुक्या। कहयुं, सज्जपणे रहीज्यौ। श्रीगुरु ओरडे बेठा। श्री रुषभ स्तुति तद्रुप श्रीभक्तामर स्तोत्र कहितां श्रीरुषभ देवनी कींकरी चक्रेश्वरी शक्ति आवी। एक २ काव्यइं एक निगड एक तालओ उघाडे इम (३५-१) कहितां थकां "आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा० ४२" ए काव्य बहितालीसमुं कहितां थकां सर्व आठील भागी ओरडाना कपाट षुल्या। श्री सूरी रक्षकने पासें आवी उभा। सेवके जेइं वृद्ध भोजने वीनव्या। श्रीगुरु कचेरी आव्या देषी राजा नम्यो। आश्चर्य पांमी कहइं, धन्य ए धर्म्म! धन्य ए दर्शन जैन! जिहां एहवा प्रभाविक महाम्नायना जांण, श्रीमानतुंग जेहवा रत्न त्रयीना आराधक छइं। महा निस्पृह निर्लोभी जांणी, परमार वृद्ध भोज श्रीसूरीनइं कहइं, तुम्हे कीस्यो स्मरण कीधो। तिवारें श्रीगुरु कहे भक्तामर स्तोत्र रुपीइं श्रीरुषभदेवनी स्तुतीनो स्मरण कीधो। वृद्ध भोज कहै, ते कहो। जे स्तोत्रे आठील त्रुटा एहवा मंत्राम्नाय छे। तिवारें श्रीसुरीइं स्वर पद अक्षर मंत्र युक्त सभा समक्षइं प्रगटपणे श्रीभक्तामर स्तोत्र कह्यौ। ते सांभली वृद्ध भोज श्रीसूरीनें महामहोछवें शालाइं पधराव्या। ते दिन थकी श्रीभक्तामर स्तोत्रनो महिमा भूमंडलइं लोकने विषे विस्तर्यो। श्रीजिन शासननी कीर्त्ति हुइ। इति भक्तामरनी उत्पत्ति जांण (३५-२) वी।

२१ तत्पट्टे श्री वीर सूरी। श्री सुरीयें दक्षिण देशी नागपुर नगरें श्री नेमीनाथ बिंब प्रतिष्ठयो। एहवइं समइं श्री वीरनीर्वाण हुआ पछी आठसय अनि पिस्तालीस वर्षे पुनः वि. सं. ४२१ वर्षे पश्चीम दिशि वल्लभी नगरनो भंग हुओ॥

२२ तत्पट्टे श्री जयदेव सूरी। इणी सुरीयें रणतंभोरनइं गिरि श्रृंगइं विक्र. ५७२ वर्षे पद्मप्रभ बिंब प्रतिष्ठ्यो। पुनः श्री पद्मावती मूर्ति स्थापि। श्री गुरुइं थलेची मरुधरइं विहार कर्यो। तिहां भाटी क्षत्रीयना प्रतिबोधक हूया।

२३ तत्पट्टे श्री देवानंद सूरी। श्री सुरीइं पश्चिम दिशि देवकइं पत्तनइं विक्र. ५८५ वर्षे श्री श्री पार्श्वनाथ बिंब थाप्यो। पुनः वि० ५७१ वर्षि कच्छ देशी सुथरी ग्रामइं शिव अनि जैननइं वाद हूओ॥

२४ तत्पट्टे श्री विक्रम सूरी। श्री गुरुने भारथी प्रसंन हुइं। गुर्ज्जर देशी सरस्वती नदीइं तट्टे खरसडी ग्रामने विषे विमासी चउवीहार तप कीधो। ते तपना महिमा थकी सारदाइं श्री गुरु नमी पीपलीनो वृक्ष सुकओ हूंतो ते (३६—१) नवपल्लव कीधो। श्री गुरु कीर्त्ति हुई। पुनः श्री गुरुइं धान्यधार देशें गोला नगरइं घणा परमार क्षत्री प्रतिबोधी उपकार कीधा।

२५ तत्पट्टे श्री नरसिंह सूरी। श्री सूरीइं उमरगढि पुहकरना तलावने कंठे भादा प्रमुख नगरे नवरात्रीय अष्टीमीनि दिनइं महिष बकनो व्यंतर राक्षस भोग लेता तेहने धर्म्मोपदेश देइ महिषना वध मुकाव्या॥

२६ तत्पट्टे श्री समुद्र सूरी। मेवाड देशी कुंभलमेरइं जाति खोमण क्षत्री। संसार असार जांणी गुरु श्री नरसिंह पासि दिक्षा लीधी। श्री गुरुइं योग्य जांणी गच्छ नायक पद दीधुं। श्री सुरीइं बाहडमेर कोटडा प्रमुख नगरि चामुंडा प्रतिबोधक हूया। पुनः अणहिल्ल पत्तन (?) दिगंबर वाद जीनी वैराट नगरें जय कर्यो। यत उक्तं—

खोमाणराजकुलजोऽपि सुमद्रसूरी
गच्छे शशांककल्पः प्रवणः प्रमाणी।
जित्वा तदा क्षपणकान् स्ववशं वितेने
नागह्रदे भुजगनाथनमस्यतीर्थे॥ १॥

एहवें वि० सं० ५२५ वर्षी श्री जिनभद्र गणि

(३६—२) क्षमाश्रमण ध्यान शतकना करणहार प्रगट हुआ । पुनः एहवें छ युगप्रधान प्रगट हूया तेहना नाम कहे छै—

नागहस्ति सूरी १
रेवतीमित्र सूरी २
ब्रह्मद्विप सूरी ३
नागार्ज्जुन सूरी ४
भूतदिन्न सूरी ५
भावडहार श्रीकालिक सूरी ६

एवं षट् युगप्रधान जांणावा । इणी कालिकाचार्य श्रीवीर निर्वाण हुआ पछी ९९३ वर्षे, केटला एक आचार्य कहें—नवसें अनिं ऐसी वर्ष हूया पछी, पुनः विक्र० ५०० अनिं त्रेवीस वर्ष गये हूंते चौराणु कालनो विवरो कह्यो । ए पिण त्रीजा कालक सूरीश प्रभावक जांणवा ।

श्रीवीर निर्वाण थया पछी एक हजार वर्षमांहि एकवीस वर्षे ओछइं, पुनः विक्र० ५४५ वर्षे याकिनी महत्तरा सुत श्री हरिभद्र सूरी प्रगट हूया । तेहनी उत्पत्ति कहे छै—

मगध देसी कुमारीया ग्रामि हारिद्रायण गोत्रेः हारिभद्र नामइं ब्राह्मण व्याकर्ण प्रमुख खट शास्त्रनो वेत्ता रहे छै । घणुं ब्रह्म कीयाइं करी कुशल छै पिण प्रतिज्ञावंत छै । जे कोई मुन्हें प्रश्न पूछइं तेहनो (*३८—१) अर्थ न उपजै तओ हुं तेहनो शिष्य थाउ । इम चिंतवी तीर्थ यात्राइं निकल्यौ, भृगुक्षेत्रनं पांम्यो । तिहां एकदा संध्याइं नगरमां वाजार जातां धर्मशालाइं साधवी प्रतिक्रमण संपूर्ण आवस्यक सूत्रनी गाथा गुणे छइं ।

चक्की दुगं हरिपणगं पणगं चक्कीण केसवो चक्की
केसव चक्की केसव दुचक्की केसवो चक्की ॥ १ ॥

ए गाथा उभे रही हरीभद्रे सांभली, शालाइं आवी कहइं—भो साधवी जी तुम्हे कीस्यो आ चिगाचिगायमान शब्द कह्यो । ते सांभली साधवी कहे नवुं शास्त्र लपीइं तिवारे चिग २ शब्द हुइं । एहवुं साधवी कथक वचन सांभली जे हरीभद्र चिंतवै जे महारी विद्यानो प्रयास निफल हूओ । ए गाथा साधवी कथक तेहनो अर्थ मुझ थकी न उपनो । साधवीनें कहें—ए गाथानो अर्थ कहो । साधवी कहै—नगर बाहिरे वाडी अम्हारा गुरु रहे छे ते अर्थ कहेस्यें । तिवारे हरिभद्रे वाडीमांहि जाइं गुरु वांदि, गाथा पूछी, अर्थ सांभली, प्रतिज्ञा संपूर्णि शिष्य हूओ । योग्य गीतार्थ जांणी श्रीगुरें आचार्य पद(३८-२) देइ, श्री हरिभद्र नाम दीधुं । श्री सूरीइं तिहां थकी विहार कीधो । श्री हरिभद्र भृगुक्षेत्र मास कल्पि रह्या । तिहां रहिना श्री हरिभद्र सूरीनें हंस १ अनिं परमहंस २ नामि बिहु शिष्य शिरोमणी शास्त्रना पाठी छे तिणे गुरु वीनवा—अम्हे बौध मतनी विद्यानो उद्यम करवा बौद्ध देसि जासुं । गुरु कहे ए नहीं । तो हा पांण कपट थकी ते बिहु बौद्ध मतनी विद्याना रहस्य लेवा बोद्ध देशी जाइं बौद्धाचार्य पासें बिहु सिष्य विद्या भणता हूया । एकदा पुस्तीकाइं शास्त्रना अक्षरनें विषे बौद्धाचार्यइं खडीका दीधी दीठी । चित्ते विचारि जे कोइक जैन छे । ते बेहूनी परीक्षा करवाने निश्रेणीनइं पावडीइं जिन प्रतिमानो स्वरूप खडीनें खड थकी आलखो, गुरु छात्रनें भणाववानइं मेढीइं बेठा । एतले बौद्धना विद्यार्थि स्वरूप उपरें पग मुकीनें भणवा आव्या । तेहने पाछलि हंस १ परमहंस २ आव्या । जिन बिंब देखी खडीना खड थकी प्रतिमा उपरइं जनोइनो आकार (३९—१) करी, तेउपर पग थापी, आवी आचार्य पासें भणवा बेठा । आचार्यें जांण्युं जे ए जैन छे । अनिं बिहुं शिष्य जांण्युं जे आचार्यें आपणनें जैन जाण्या । मरणना भय थकी पुस्तीका लेइं नभमार्गे विद्यावली पोताना देशि निकल्या । आचार्यें जाण्युं । बौद्ध राजानें कहयुं—ए जैन मालिम हुआ, आपणां मतनी विद्याना रहस्यनी पुस्तिका लेइ जाइं छै। सांभली राजाइं सेन चडाव्युं । विद्या युद्ध करतां प्रथम हंसने हण्यो । बीजा परमहंस साथि विद्यावाद करतां परमहंस लडथडीओ आवतो २ श्रीभृगुकछइं शकुनिका विहारि तिणे बौद्धनी पुस्तिका नांषी।पछी ते बीजा परमहंसने

---

*हस्तलिखित प्रतिमां ३७ना बदले भूलथी ३८नो आंक छपाएलो होवाथी ३७ मां पानानो आंक आप्यो नथी.

पिण हण्यो। ते बौद्ध सेन प्रातकाल हुओ आणी पोताने देसि चल्यो। हवि प्रभाते गृहस्थ श्री मुनिसुव्रतने दर्शनि आव्या। देव प्रदिक्षणाइं गृहस्थनें रजोहरण १ अनि चुपडी २ लाधा। ते श्रीहरीभद्रनें दीधा। गुरे रजोहरण ओलख्यो। बौद्ध पुस्तीकानि चुपडी ते मांही घंटाकर्णनो मंत्र वा (३९-२) च्यो। श्रीहरीभद्रे चितव्युं जे मुझ शिष्य बिहू बौद्ध वेशी विद्या भणवा गया तेहने बौद्ध कड करी हण्या दीसे छे। विद्याना रहस्य लेइ जातां जांणी हण्या। गुरुने क्रोध हुओ। शालाने यंत्र कपाट करी, तेलपूरीत कढाइ लोहनी अग्नी चढावी गुरु दत्त पूर्व आम्नाय करी, जेतले कढाइ कांकरी नाषइं तिवारे बौद्ध तपस्वी चउदशत अनि चुमालीस मंत्राकर्षित शकुनीका रूपि कढाहनि प्रदिक्षणा दीये छे। तेहवें जाकिनी नामि साधवी, जेहना मुख थकी गाथा सांभली वाडीमा जाइं गुरुमुख थकी गाथार्थ सांभली संपूर्ण प्रतिज्ञाइं हरिभद्रे व्रत लीधु छे, एतले इहां याकिनी नामी साधवी ते श्री हरीभद्र सूरी नें उपकारीणी हुई। ते माटी याकिनीसूनु श्रीहरीभद्रसूरी एहवओ बिरुद काहिवाणु। ते श्रीहरीभद्रनी गुरुबहिन याकिनी साधवीइं उंचु जोयु, एतलइं शकुनीका रूपें बौद्धाचार्य आवता दीठा। साधवीइं जाण्यु जे कोपना फल कहवा लइ। घणा जीवने असंतोष (४०-१) उपनो जांणी आचार्यनि कोपनी शांतिनइं हेति शिज्ञातरी श्राविका साथइं लेई शाला द्वारि उभी रही गुरु प्रतिकहे—एक पचिंद्री जीवनो घात अजांण थकी हुओ तेहनी आलोयण कहो। तिवारइं शालाइं रह्या गुरु कहे—पंच कल्याणक तप अनि उपवास दश चउविहार कर्या छेः। एतले बिहू उपवासे एक कल्याणक तप जांणवो। पंच कल्याणक तपनी आलोयण तुम्ह ने आवी। ते सांभली साधवी कहे—अजाणपणानी एवडी आलोयण कहो छो, तिवारइं जांणपणाथकी घणा पंचेंद्रीय जीवना वधनी आलोयण कीसी हुइ? ते सांभली गुरु कहे—ते कहयु स्युं। गुरुने कोपनी शांति हुई। बोध सघला आकर्ष्या ते जीवता मुक्या। ए असार संसारे कुण गुरु कुंण शिष्य इम चितवी स्वचित्त थकी कृत पाप शुद्धिनइं देती आकर्षित बोधनी संख्याइं चउदशत अनि चउमालीस प्रकर्ण पूजापंचाशक प्रमुष, एक २ पंचाशके गाथा पंचास २ (४०-२) हुइं एहवा ५० पंचाशक, त्रीस अष्टक, सोल षोडस, पुनः आवश्यक वृद्धवर्ति कारक, विक्र० सं० ५६५ वर्षे श्री हरिभद्र स्वर्ग हुओ। इणि परि श्री हरिभद्रसूरी हुवा।

पुनः श्रीहरिभद्र सूरीना भाणेज श्रीसिद्धर्षि उपमिति भव प्रपंचा १ श्रीचंद्रकेवली चरित्र २ श्रीविजयचंद्रकेवली चरित्र ३ ना करणहार स्वर्ग हुओ।

इति हरिभद्र संबंध ॥

२७ तत्पट्टे श्रीविबुध प्रभसूरी।

एहवइं श्रीवीरमुक्ति हुआ पछी एक हजार अनें चउद वर्ष गयइं हूतइं पुनः वीक्रसं० ६०१ वर्षे गये हुंतइं मालवदेशी धारनगरइं श्री सम्मति ग्रंथना करणहार श्री मल्लवादी सुरी प्रगट हुया।

पुनः एहवे अवसरि आचार्य श्री बप्पभट्टसूरि प्रगट हुया तेह

बप्पभट्ट सूरीसंबंध

कहे छे। जुमाहड देशि गोपाचलनी तलहट्टीइं गोपनगर वसे छे। तिहां चहुआंण श्री आम राजा राज करइं छे। एहवे अवसरइं श्री भारद्वाज वंशि प्रष्णवाहन कुलें हर्ष पुरी (४१-१) य गछि आचार्य बप्पभट्ट सूरी विहार करता आव्या। श्रीगुरु उपगारीपणें धर्म्मकथा कहे। तिवारइं श्री आम संघ सहित गुरुप्रति वीनती करे, जो तुम्हे महा साधु छो। भव्य जीवने पवित्रनइं हेतु जंगम तीर्थ छे। ते माटे इहां गोपनगरे चुमासे तुम्हे अवश्य रहिवुं। गुरु कहइं जिहा लगण तुम्हारि सुदृष्टि हुसि तिहां लगण रहिस्युं। इम कही श्रीगुरु चोमासे रह्या। आम प्रमुख संघ श्रीगुरुनी बहु विविध भक्ति साचवइं। निरंतर गुरु वांदी गुरुमुखे धर्म्मव्याख्या सांभले। गुरुवांणी रंजितथको परम जैन राजा हुओ। एकदा पुन्य तीथीनइं दिनें आम राजानी स्त्री नीला वस्त्र सिणगार पेहरी गुरु मुख आगली गूहलीइं स्वास्तिक करइं छे। तिहां पगले २ वार २ मुखि

मरकलडा करइं । तिवारइं आम राजाइं गुरु श्री बप्प-भट्टनें पुछयुं—

बाल:चमकंतिए एए कुणह कीस मुहभंगी ।

तदा गुरु कहइं—

नूनं रमणीपण्से महलिया छवइ मुह भंगे ॥ १ ॥ (४१२)

ए वचन सांभली राजा म्लान मुख हूओ । एतलें श्री गुरुनें मुक्ताफलिं वधावतां नील वस्त्र देषी अवस्थाइं चक्षुना तेजहीणनें अंग नीलावस्त्र उपरि श्री सुरिनी तिहां दृष्टि रही । तिहां आमनि पिण दृष्टि हुई । चितस्यु संदेह हूओ । जे साधुनी दृष्टि नीलें सिणगार उपरि रही । व्याख्यान सांभली घरे आवी राजाइं गुरुनी परिक्षा जोवाने अर्थि पोताना घरनी वडी दासीनइं नीला सिणगार पहिरावि, रात्रि प्रहर सवा गया पछी, शाल्याइं गुरु पासें मोकली । जिहां रात्रि बप्पभट्टि संथारा पोरसी कही संथारइं संथार्या छे, तिहां आवी आचार्यना चरण स्पर्श्या । कोमल हाथ जांणी गुरु कहइं—ए कुण स्त्री ? तिवारइं ते कहइं, हुं राजानी रांगी तेहनी मुख्य दासी ।राजानी आज्ञा थकी इहां तुम्हारी भक्तिमां आवी छउं । गुरु नीरादरइं निभ्रंछी काढी । ते दासी म्लान मुखी थई आम पासिं आवी सर्व स्वरूप कह्युं । इतें (४२–१) श्री गुरुइं उपयोग देतां थकां धर्म्मकथाईं नीला वस्त्रनो उपयोग हुओ । आम मनें संदेह जांणी मुदृष्टिनी प्रतिज्ञा पूर्ण हूइ । प्रभातना पडीकमणानी क्रिया साचवी गंतुक मनी हूया । विहार करतां थकां खडीनां षंड थकी शालाने बारणे ए गाथा लीषी—

दो तुंबडाइं हत्थें वयणें धम्म अक्खराय चत्तारी ।

वीउलंच भरहवासं को अम पहूत्तणं हरइ ।१।

आम अनि अन्य राजाने मांहो मांहि विरोध छइं, तेहनइं नगरइं आव्या । तिणें आम गुरु आव्या जांणी घणो आदर देई, विहू हाथ जोडी कहइ—हे पूज्य ! जिवारी आम अत्र तेडवा आवें तिवारइं आमनगरइं जावुं, नहीं तु नहीं । एहवी प्रतिज्ञा करी तिहां रह्या । हवइं ग्वालेर नगरें गृहस्थ प्रातकालि देव दर्शन करी शालाइं आव्या, गुरु नही । नगरइं वार्ता हुई एतलेइं आम राजा पिण आव्या । शाला जोता बारणीए लखीत गाथा देषी । आम राजाइं वांची, दासी मोकल्यानी वार्ता सांभली । मनस्युं (४२–२) पश्चाताप करतो हुओ–मुझ थकी अवज्ञा हूई । केतलेक दिनें गुरु प्रति वीनती कहावी । तिवारइं गुरु धर्म स्नेह जांणी कहिराव्युं, जे तुम्हे वेष परिवर्त्तइं आवज्यो । तिवारे कौतुक रूपइं आम राजा कापडीना वेषे धूसर मलीन हूइं, मस्तकें आम्ल पत्रनो छोगओ धरी, विहूं कान ऊपरी तुंअरी पत्र थापी, पुन: विहूं हस्तक मांहि बीजोरानां फल ग्रही, शत्रु नगरी, जिहां गुरु, विरोधी राजा सहित, संघ समक्ष, व्याख्यान कहइं छइं, तिहां उतावलो आवी उभो रह्यो । आचार्ये आम ओलख्यो । साहमु जोइ अ दर देइ कहइं—" आम ! आवओ, आम ! आवओ ते सांभली—सकल सभा महा धुंसर रुप देषी, आमनो शत्रु राजा ते श्री गुरुनें पूछें—ए पुरुषनइं मस्तके किस्युं तेवारइं गुरु कहें—ए आम्ल । ते सांभली विरोधी राजा पुनः पुछें—ए पुरुषनें कानइं किस्युं ? तिवारइं गुरु कहइं—तुं अरि । ते सांभली विरोधी राजा गुरु...... आमनइं कहइं......(४३–१) विहराति ए समस्या गुरु कथक सांभली शाला बाहिरइं आम नीकली बारणइं खडीना खंड थकी ए श्लोक लिष्यो.

गिरि गोपपुरे रम्ये प्रभो ! तत्र पधार्यतां ।

सभामध्ये समागत्य, प्रतिज्ञा पूरिता मया ॥ १ ॥

सकल लोक देखतां ए श्लोक लिषि आम पोतानइं घरे आव्या । बीजइं दीनें संघ तथा राजा पासें गुरु आज्ञा मांगी । अम्हे गोप नगरइं जास्युं । तिवारइं आमनो शत्रु राजा कहइं, जिवारइं तुमनइं तेडवा आम आवइं, ते तुह्मारो वचन छइं । ते सांभली गुरु कहइं । ते तो काले वाख्यान मांहि आविनइं गया । तिवारइं विरोधी राजा कहें तुम्हे मुझने कह्यो न्हीं । गुरु कहें संघ समक्षइं मइं कह्युं जे ' आम ! आवो आम ! आवो ' पुन तुम्हे पुछयुं जे ए पुरुष मस्तके किस्युं, तवारे अम्हे कह्युं जे ए आम्ल । पुनः तुम्हे पूछयुं, जे ए कानें स्युं,

अमे कहयूं जे तुअरी। पुनः तुम्हे कहयूं जे एहना हाथमांहि स्युं, जिवारें अम्हे कहयो, जे ए बीजोरा। एतले (४३-२) आमने नामि आम राजा जांणिवा। पुनः तुअरि कहिता ताहरो ए शत्रु। पुनः बीजोरा कहितां तुम्हे राजा ए पिण राजा। ए श्लोक पिण पूर्ण प्रतिज्ञानो बारणइं सकल लोक देखतां लिख्यो छै। ते सांभली आम शत्रु विचारी, जे शत्रु सांकडे आव्यो हुतो पिण तेहना पुन्य थकी कुशलें गयो। प्रतिज्ञा संपूर्ण, संवाशा लेई गुरु ग्वालेर नगरें आव्या। आम राजाइ शालाइं महोच्छवे पधराव्या। महा हर्ष पांमी श्री बप्पभट्ट सूरीनें मुख बार व्रत उचर्या। एकदा गुरुनइ आम कहइं—तुम्हे श्रीगुरु! मुझ उपरि कृपा करी कांइक ए जीव प्रत्यें सुकृत कहो। तिवारइं गुरु कहइं आ असार संसार तेहनें विषइं दोष रहित श्रीजिनवर, तेहनी भक्ती, तेहिंज सार, जेह थकी प्राणिनें सद्गति हुई। यतः

कारयंति जिनानां ये तृणावासमपि स्फुटं।
अखंडितविमानानि ते लभंतेऽत्र विष्टप ॥ १ ॥

ते गुरुनो उपदेश सांभली ग्वालेर नगरइं एक शत अनि आठ गज ऊंचओ प्रासाद नीपजावी ते मांहि श्री वीरबिंब (४४-१) विक्रम सं. ७५६ वर्षि भमिगृह थाप्यो। श्रीबप्पभट्टि प्रतिष्ठ्यों। पुनः श्रीसिद्ध गीरिइं त्रणि लक्ष मनुष्यें संघपति थई यात्रा कीधी। साढाचार कोटि सुवर्ण सुकृति करि श्रीजिन धर्म आराधी आम चहुआण वि० सं० ७६० वर्षि स्वर्गी हूओ। पुनः श्रीसूरीनें वाख्यानस्थाइं मानस गाथा सूर्योदय सुधाडि चढती। तेहना शोषना शोष थकी सातसेर घृत जरतु। श्रीवीर निर्वाण हूआ पछी तेरसइं अनि पांत्रीस वर्ष वीतइं पुनः वीक्रम सं. ७६१ वर्षि श्री गोपाचलाधीशः राजा श्री आम प्रतिबोधक आ० श्रीबप्पभट्ट सूरी स्वर्ग हूओ।

उक्तं च

य विष्ठतिसवेस्मनि, सार्ध द्वादशसुवर्णकोट्याः
निर्मापितो आमराज्ञा गोपगिरौ जयति जिनवीर ॥ १

इति बप्पभट्ट सूरी संबंध ॥

२८ तत्पट्टे श्रीमानदेव सूरी।

पोतानी देही असमाधी पणइं चित थकी श्री सूरीमंत्र वीसरी गयो। केतलेक दिनें श्रीसूरिनइं समाधी हूई। तिवारइं श्री सुरि (४४-२) गिरीनार पर्वति आवी विमासी चउवीहार तप कीधओ। अंबीका आवी कहइं—ए किम? तिवारे सुरी कहै—मुझ देही असमाधी सूरीमंत्र मुझ चित्त थकी वीसरी गयो। ते सूरीवचन सांभली देव्याइं श्रीसुरिमंत्र संभारी विजयादेवीनें पूछी श्रीसुरीनै मंत्र कह्यो—

विद्यासमुद्रहरिभद्रमुनींद्रमित्रं
सूरिर्बभूव पुनरेव हि मानदेवः।
मांद्यात्प्रयातमपियोनघऽसूरिमंत्रं
लेभेऽम्बिकामुखगिरा तपसोज्जयन्ते ॥ १ ॥

२९ तत्पट्टे श्रीजयानन्द सूरी।

श्री सूरीना उपदेश थकी वि० स० ८२१ वर्षि श्री हमीरगढि, विज्जानगरें, ब्रह्माणि नंदिय, ब्राह्मण वाटक, महुरि नगरें, श्रीपास इत्यादिक श्रीसंप्रतिकारक नवशत प्रासाद जीर्णोद्धार प्रा० मं० सामंतइं कीधो।

पुनः विक्र० सं० ८४१ वर्ष थकी मांडी पिस्तालीतांइं पंच दुकाली हूइ। ते अवसरइं घणा साधु मर्याद थकी सिथिल हूया। तिवारे उ० श्री गोविंद, उ० श्री संभुति, श्री दुष्यगणि क्षमाश्रमण, उग्रतपस्वी श्री क्षे (४५-१) मर्षी, मलधारी गच्छीय श्रीहर्षतिलक, श्रीथूलिभद्रवंश श्रीहर्षपुरीय गच्छे श्रीकृष्णर्षि, प्रमुख गीतार्थी मिलि, श्रीसुरीना वचन थकी समय विषम जांणी महानगरइं शुभ थानिकइं सिद्धान्तना भंडार हूया—ज्ञान यत्न कीधा।

पुनः वि० स० ८६१ वर्षि श्रीकरहेडा नगरइं श्री पार्श्वनाथनो प्रासाद हूओ। उपकेशभूत गोत्रे को० खीम सिंघ कराव्यो। एहवा अनेक सुकृत श्रीसूरीना उपदेश थकी हूया ॥

३० तत्पट्टे श्री वीरप्रभ सूरी।

एहवइं वि०सं०९२९ वर्षि ढीलीइं चहूआण हूआ।

तुअरनें दीली थकी चहुयांणें काढ्या । पुन वि० सं. ९५२ वर्षे श्री नाडोलनगरे श्रीनेमि बिंब सूरींइं प्रतिष्ठ्यौ। एहवइं अवसरें दंडनायक श्रीविमल प्रगट हुओ।

विमलनो संबंध कहइं छइं।

श्रीगुर्जरदेशी वढीयार षंडि पंचासरा ग्राम थकी आवीनई चावडो वनराज वि० सं ७९५ वर्षि वणोदनगर वसावी रह्यो। पिण चिहुं दिशि भयंकर वन देषी उदासी रहे। तिवार (४५—२) इं श्रीवीर निर्वाण हुआ पछी वारसइं अनइं बिहोतरी वर्षि पुनः विक्रम सं० ८०२वर्षि अणहिल्लवाडओ पाटण वसाव्युं।

तिवारइं विमलना वृद्ध पितानि ग्राम गांभु थकी तेडी लावी श्री वनराजिं पाटण मध्ये वसाव्या। तेहना वंशमां प्रो०दो० वीरो तेहनी भार्य्या वीरी कुक्षि वि० सं० ९४५ वर्षे विमलनो जन्म हूओ। अनि वर्ष ८ थकी मांडी वर्ष ११ ताइं हाटि व्यापार कीधुं। वर्ष १३ मे श्री धर्म्मघोष सूरीनो उपदेश सांभली श्री पत्तनाधीस श्री भीम राजाइं बाण प्राकम जांणी प्रधान पद दीधो। वर्ष...४ देश साध्या। द्वादस म्लेछ छत्रोद्दालिक सकल भूप चुडामणि विरुदधारक चंद्राउलि१ आरासणि २ नगर थापक। पुनः वि० सं० ९८८ वर्षि श्री धर्म्मघोष सूरी नागिंद्र १ चंद्र २ निवृत्ति ३ विद्याधर ४ प्रमुष सकल आचार्ये मिलि श्री अर्बुदोपरि नवीन प्रासादकारक। तन्मध्ये श्री वालानाह क्षेत्रपाल दत्त श्री ऋषभ बिंब स्थापक। पुनः आरासणी श्री नेमि बिंब स्थापक (४६—१) अन्य एकादश धन महाप्रासादकारक, अढी हज्जार जीर्णोद्धारकारक, एहवे वि० सं० ९९१ वर्षि गीरीनारासन्नी श्री जीर्णदुर्गाधिपति श्री राय खिंगारनो जन्म हुओ। वि० सं० ९८९ वर्षि पोरु वणिक प्रति द्रव्य देई विमलइं द्वादश गोत्र प्रति प्राग्वाट कीधा। वि० सं० ९९१ वर्षि सोमपुरा वाडवने विमल द्रव्य देई शिलावट कीधा। वि० सं० ९९३ वर्षे दंडनायक बिरुदधारक श्री विमल स्वर्गी हूओ। यतः

नागिंद्र चंद्र निवृत्ति विद्याधरप्रमुखसंघन ।
अर्बुदकृतप्रतिष्ठो युगादिजिनपुंगवो जयति । १ ।

तिणहिज विआइं ए सकलाचार्य मिलि पाखि चउदसि दिने थापी।

इति विमलोत्पत्ति ।

३१ तत्पट्टे श्री यशोदेव सूरी ।

ते गुर्जर देसी वालिम नगरइं, नागर वाडव कौशीक गोत्रि, विक्र० सं० ९९५ वर्षे जन्म हूओ। एहवइं विक्र० सं० ९४१ वर्षि

श्री यशोभद्र सूरी

प्रगट हुया। तेहनो संबंध कहे छे।

श्री सांडेर गच्छे श्री ईश्वर सूरींइं पोतानइं पाटिं पद देवानें वद (४६—२) री देवी आराधी। ते आवी कहें अर्बुदपासनि रोहाईखंडे पलासी गामी प्रा० नारायण गोत्रि मापुनी भार्या गुणी तत्पुत्र सुधर्म वर्ष पाचनो छइं। ते हवणा पोसालइं भणि छइं। तिहां पूर्व कर्म्मना योगी कोइक वाडव पुत्र खडीओ पाटी एकांति स्पामिके मुकी घेर जिमवा गयो। एतलइं सुधर्म्मइं तेहनो षडीओ लीधो। पाछो मुकता अफलाणो.भागो खंड२ हुआ।एतलइं ते वाडव पुत्र आव्यो।बालके कह्यं-ताहरो षडीयो सुधर्मि षंड २ कीधा।तिवारइं वाडव पुत्र कहइं तेहिज षडियो लेउं। मनुष्य वणुंज वाल्यो पिण न रहो। तुज मस्तकनी तुंबडी ते मध्ये शालिना तंदुलनउं करंबउ खाउं तओ हूं वाडव। सुधर्म्म कहइं हूं मओ तुजनें मारुं तओ हूं वणिक। बिहुं एहवी प्रतिज्ञा कीधी छे। ते सुधर्म्म ताहरा गछ पाटनो उदयकारी छे, एहवउ कही वदरी देवी अदृश्य हुइ। ते देवी वांणी सांभली श्री ईश्वर सूरी रोहाइ खंडइं पलासी ग्रामे आव्या। तिहां देवीनी प्रेरणाइं (४७—१) सुधर्म्म गुरु वाणी सांभली दीक्षा लीधी। तिहां थकी श्री सुरी मडाहडई नगर आव्या। पुनः वदरी देवी आराधी। देवी कहे इहां सुधर्म्मनइं पदवी दीओ, हुं तेने सहायकारी छुं। गुरु देवी वचन थकी मुडाहडइं नगरइं तिणहीज घडी ए पद देई आ० श्री यशोभद्र सूरी नाम दीधुं। तिणहिज घडीइं नित्यें आठ कवल आहारना अभिग्रह धारक श्री आ० हुआ। श्री वदरी देवी भक्ति साचवें। तिहां थकी विहार करता गुरु श्री ईश्वर सूरी१

श्री यशोभद्र सूरी २ बीहूं पाली नगर चाउमासें रह्या। तिहां निरंतर आ० उत्तर दिशि सूर्य देवनो प्रसाद छइ तेहिज दिसि देह चिंताइं जाई। महा तपस्वी जांणी श्री दीवाकर आचार्यनइं प्रसन्न हूओ। आ० नइं कहइ, कांइ वर मांगी। तिवारइं आ० यशोभद्र कहइं सकल वांछित दें। सूर्य देव कहि, हूस्यइं। गुरु शिष्य तिहां निर्विघ्न रहइं छइं। एहवइं गुरु श्री ईश्वरी सूरि स्वर्ग हूओ। चउमासइं संपूर्णि विहार करता श्री य-(४७-२) शोभद्र सूरी बलीभद्र गुरुभाइ सहित सरिग्ग नगर आव्या। तिहां श्री सूरीना उपदेशथी वोसीर गोत्रे दो० धनराजइं विक्र० सं० ९६९ वर्षि प्रासाद नीप-जावी श्री श्रीयांस बिंब थाप्यो। पुन इणहीज वर्षि मुडाहडइ नगरइं श्री सूरीना उपदेश थकी किन्हडीओ प्रासाद हूओ। तिहां साहमी वात्सल्य सांडेरा नगरइं वीई हूइ रह्या। दो० धनराज गुरुनइं वीनती करइं जे घृत नहीं। श्री सूरीइं वीर विद्यानइं प्राबल्यें करी पाली थकी घृत अणावी साहमी वच्छलइं, श्री गुरुनी कीर्ति हूइ। पछी दिन त्रीजि सांडेर थकी दो० धनराज घीनो द्रव्य लेइ पाली नगरइं आवी कहइ धीनो द्रव्य लीओ। ते कहइं घी कुण काम आव्यो। दो० धनराज कहे प्रासादनइं ओछवइं साहमि वछली काम आव्यो। ते गृहस्थ हाटमां जाई वीना टाम जूइ। घीना टाम ठाली दीठा। एतलइं व्यवहारी कहे ए द्रव्य तुम्हे सुकृत करो। इणि धनराजें पालीमध्ये सुकृत कीवुं। तिहां थकी श्री सूरीइं आ (४८-१) हड, खमणूर, करहूटक, कविलाण, भेगूर प्रमुख नगरे घणा मिथ्यात्वि प्रतिबोधी श्री नाडलाई नगरें चउमासि आव्या। एत-लइं तिहां पूर्व कलहकारी प्रतीज्ञाधारी पहिलानओ बालमित्र दुकालइं अन्नना अभावथी कानफटो-योगीनो शिष्य हूओ। मर्छान वीद्या सीख्यो। केतलेक दिहाडे पाछो घर पलासी गांमइं आव्यो। लोक पुत्रनी सोध करतां जिहां नाडलाई नगरइं शालाइं गुरु व्याख्या-न कहइं छइं तिहा आवी मस्तकनी जटा उतारी सर्प कीधो। बाध्यांनना लोक वीहता हूया। तेतलइं गुरु मुखाकारी पूर्वलो मित्र विरोधी उलख्यो। एतले श्री सुरीइं वदरी देवी समर्यां. सुदर्शी फाडी तेहना खंड खंडइं नकुल प्रगट कीधा। तेह थकी पन्नग नाठा। योगी म्लान वदनइं नाठा। पुन. प्रासादनो वाद हूओ। गुरु कांति नगरी थकी तथा वलीपुर थकी बावन वीर-नइं प्राक्रमी श्री रुषभ प्रासाद आण्यो। योगीइं शंभू प्रासाद आण्यो। बेइ प्रासाद थंभ्या। जटिलें कोत्र-नइं वशि मंत्र योगि (४८-२) करि प्रतिमाना मुष वांका कीधा। संघ गुरुने वीनती करी, देवदर्शनि कोई मनुष्य न आवइ। तिवारि गुरुइं अघोतर जलकुंभ मंत्री बिंबनइं पषाल कीधो। बिंब मूल रूपी हुया। पुनः प्रासादना थांभा तथा पाट डगामग डगमगता जांणी गुरु दत्त आम्नाय थकी पत्थरनइं पाटि मंत्र लिषी सकल प्रासाद थिर कीधो। गुरु शंभु प्रासादनूं ईडु मंत्र बलइं पाडयु। श्री जिन शासननो जय २ कार हूओ। श्री गुरुनी कीर्ति हूई। इम जटिलनें अनेक वादि जित्या। जटिल देश नगरीमां फिरइं।......................

मस्तकमां मणि छइ। ते तुम्हे मरण हूआ पछी मस्तक मोडी उग्रही लेज्यो। ते पछी मुज देहनइं अग्निसंस्कार करज्यो। तिणइं शिष्यें तथा संघे तिम-हिज कीधुं। केतलेक दिनें तिण योगीइं गुरु मरण जांणी पूर्व संकेतइं आवी दुग्धपात्र भरी वेगलो गुप्तइं रह्यो। गुरु कायंक कल्पकनो चहि उपरिं चंदुओ कीधो। बदरी देवी चहि पछवाडइं प्रदक्षिणा दीयें छइं, एतलि तिण योगी वर्षा वायुनी उत्पत्ति किधी, जांण (४९-१) इं जे मस्तकनी षोपरी लेऊं। एतलि बदरी देवीइं वायुनइं अग्नि पोतानी शक्ति थकी योगि-नि उपाडी नीर मांहि गुरु एकठा नाख्या। ते मरण पांमी श्री संडेर गछनो रखवालओ यक्ष हूओ। देवी गूरु तिलानि नमी स्वस्थानिक मुडाहडइं नगरइं आवी। श्री गुरुनी प्रतोज्ञा बदरी देवीनी साहाय्य थकी संपूर्ण हुई। इणि परें वि० सं० ९७५ वर्षें श्री यशोभद्र सूरी हूता हूआ।

यतः— बहूआ १ किन्नरपी २ भीमरुपी ३

चउथा यशोभद्रसूर ४
ए त्रिहु कालि प्रणामतां
दूरीय प्रणास इंदुरि ॥ १ ॥

इति सांडेर गछे आ० श्रीयशोभद्र सूरी संबंध ।

३२ तत्पट्टे श्री प्रद्युम्नसूरी ।

श्री सूरीना उपदेश थकी पूर्व दिसि सतर प्रासाद हुया । ११ ज्ञानना भंडार लिखाव्या । सात यात्रा श्री समित गिरिनी श्रीसूरीइं कीधी ॥

३३ तत्पट्टे श्रीमानदेव सूरी ।

श्री सुरीइं श्रावक श्राविकानइं हेतुइं उपधान वहिवानि विद्या प्रगट कीधी । ए विहुंनओ अल्प आयु जांणिवओ । (४९.–२)

३४ तत्पट्टे श्रीविमलचंद्र सूरी ।

तेहनें श्रीपद्मावतीना साहाज्य थकी चित्रकूट पर्वतइं स्वर्गसिद्धिनी प्राप्ति हुई ।

३५ तत्पट्टे श्री उद्योतन सूरी ।

पूर्व दिशि श्री समेत गिरिनी यात्रा पांच करी । ए तीर्थ कहेवओ छइं । यतः—

विंशत्यास्तिर्थकरैरजितादिभिर्यत्र शिवपदं प्राप्तं ।
देवकृतस्तुपगणः स जयति समेतगिरिराजः ॥ १ ॥

पुनः एतलइ सांभल्यु, जे अर्बुदाचल उपरि विमल दंडनायकें श्री रुषभ बिंब थाप्यी, तीर्थ प्रगट कीधो जांणीनइं श्रीसूरी मनिस्युं चितवइं जे—

अष्टषष्टेषु तीर्थेषु यत् पुण्यं किल यात्रया
आदिनाथस्य देवस्य दर्शनेनापि तद्भवेत् ॥ १ ॥

ते माटि आबू, नंदिय, बंभणवाद, दाडिमाणक प्रमुष ठांणि नेमि न निहाल्या; एहवा हर्ष सहित श्रीगुरु तिहां थकी विहार करता थका आबूनी तलहटिइं टेली नामइं गाम, तेहनी सीमइं, मोटी घणी साखा युक्त वडवृक्षनो विस्तार देषी, उष्ण कालइं, शीतल छायाइ श्रीसुरि तिहां विश्राम्या । एतलइं श्री सर्वानुभूति यक्ष प्रगट हुया । प्रसन्न प (५०—१) णि श्रीसूरीनें कहइं —आ शुभ घडिका छइं, ते माटि तुम्हें तुह्मारा शिष्यनें आचार्य पद दीओ, तओ आ वड वृक्षनी परि अखंड शाषाइं करी विस्तार उदय हुइं । तिवारें श्री सूरीइं देव कथक थकी श्री वीरइं निर्वाण हूया पछी चउदसइं अनि चउसठि वर्षि, पुनः वि० सं० ९९४ वर्षे श्रीसर्वदेव सूरी, प्रमुष आठ आचार्य स्वहाथि थाप्या । तिवारइं तिहां थकी वडनें अहिनांणि पांचमो वड गछ एहवो नाम प्रसिद्ध हूओ । पिण ते सघला गुरु भाई शालाइं रह्या । तिहां थकी महिमावंत तीर्थनी यात्रा करी अझारी नगर आव्या । तिहां संप्रति निर्मापित श्रीवीर प्रासादि डोकरा शिष्यनें योग्यजांणी सूरिपद देइं श्रीवर्द्धमान तीर्थंकरना प्रासादनि अहिनांणि श्रीवर्द्धमानसूरी नाम दीधुं । गुरु कृपा जांणी श्री सारदाइं बालिका रुपे गुहलीयें स्वस्तिक कीधो । तुष्टमांन हुइं । प्रा० सा० रांके पदोत्सव कीधो । श्रीगुरें तेहनी गुर्जरी विहार कीवानी आज्ञा दीधी । श्रीसूरी नीत्यें एक भक्ति जांण (५०—२) वा श्री उद्योतन सूरीनो मेदपाटी धवल नगरिं स्वर्ग हूओ ॥

३६ तत्पट्टे श्री सर्वदेव सूरी ।

श्री सूरी विचरता भरुअछि नगरि आव्या । तिहां कान्हडीओ योगी श्री गुरुनें गृहस्थनो बहुमान देषी कोधि करी ८४ सापनो करंड लावी शालाइं वाद करवा आवी बेठो । तिवार श्री सूरीयें ते देषतां जिमणा हाथनी कनिष्टांगुलीइं करी पोतानि चिहु पासइं भूमंडले वलयाकारें त्रिण रेषा कीधी । एतले तिणे ८४ सर्प्प करंडीइं थकी काढी गुरु सांहमा मुक्या । ते रेषा त्रिणताइं आवइं पिण आगिल न आवइं । पाछा करंडीइं आवी बइठा । पछी तिणे अधिक कोधि करी वंशनलिका थकी काढी सिंदूरीओ सर्प्प महा विषाकुल गुरु साहमो मुक्यो । ते रेषा त्रिणसुधी जाइ पाछो आव्यो । एहवे चउसठि योगिणि माहिली कुरुकुल्लानामि देवि ते धर्म-शाला बाहिरइं पिपली वृक्षइं रहे छे । तिणे गुरुनें उग्र तपसी जांणी तिहां आवी सिंदूर सापनी दाढा बंध करी । योगीगुरुनें नमी पोतानि स्थां (५१-१) निकइं गयो । श्री गुरुनी कीर्ति हुइं । पुनः श्री गुरुना उपदेश थकी वि० सं० १००२ वर्षि सत्तावीस प्रासाद हुआ । प्रतिष्टया ।

३७ तत्पट्टे श्री देव सूरी !

श्री सूरीने हल्लारदेश स्वांमी राजश्री कर्णसिंही रूपश्री बिरुद दीधुं । पुनः जेहना उपदेश थकी ओ० कुर्कट गोत्रि सं० गोपि नव प्रसाद कीधा । पुनः चउदशत एक श्री जिन बिंब धातु पट्टिकाइं भराव्या । दक्षिणें नासिक नगरे श्रीचंद्रप्रभ प्रासादे जीर्णोद्धार हुओ। पुनः वि० सं० १००४ वर्षे श्री रामसैन्य नगरइं श्रीरुषभ प्रासाद हुओ । पुनः श्री सूरीयें मालवदेसि घणा-पोरु गृहस्तनें प्रतिबोधिनें जैन प्राग्वाट कीधा । वि० सं० १००७ वर्षि शाखानि स्थिति हुई ॥

३८ तत्पट्टे श्री अजितसिंह सूरी ।

श्री सूरीना उपदेश थकी मेवाड देशी प्रा० दौ० रुगनाथी सत प्रासाद नीपजाव्या । पुनः वि० सं० १०१० वर्षि श्री रामसैन्य नगरे श्री रुषभ चैत्ये श्री चंद्रप्रभ स्वांमी बिंब प्रतिष्ठा हुई । (५१-२)

यदुक्तं—चारित्रशुद्धिविधिवज्जिनागमा-
द्विधाय भव्यानभितः प्रबोधयन ।
चकार जैनेश्वरशासनोन्नतिर्यः
शिष्य लब्धाभिनवोनु गौतम(?) ॥ १ ॥
नृपाद्दशाग्र (सं. १०१०) शरदांसहस्रे ।
यो रामसैन्याह्वपुरे चकार ।
नाभेयचैत्येऽष्टमतीर्थराज—
बिंबप्रतिष्ठा विधिवत्स्वद्वर्व्यैः ॥ २ ॥
चंद्रावतीभूपतिनेत्रकल्पं
श्रीकुंकणमंत्रिणमुच्चऋद्धिं ।
निर्मापितोत्तुंगविशालचैत्यं
योऽदीक्षयत शुद्धगिरा प्रबोध्य ॥ ३ ॥

एहवे वि. सं. १०२८ वर्षि आचारांग सूत्र १ सुगडा ग सूत्र २ टीकाना करणहार श्रीशीलाचार्य प्रगट हुआ।पुनः तिणहीज वर्षि नीवृत्ति गच्छे अनेक ग्रंथकारक श्रीदोणाच्यार्य प्रगट हूया। पुनः मालव देसि उज्जेणि श्रीलघु भोजराजानो राज्य हुओ । तेहनइं बेटइं वीरनारायणि वि. सं. १०७७ वर्षि सिवांणो गढ वसाव्यो । पुनः एहवें वि० सं० १०९४ वर्षि, श्रीवडगछइं श्रीलघुभोजदत्त वादीवैताल बिरुदधारक थिराद्रीइं चहुआण क्ष (५२-१) श्री प्रतिबोधक श्रीशांति सुरी प्रगट हुआ । श्री सूरीयें चक्रेश्वरी १ पद्मावती २ ना साहाय्य थकी छवठण (?) पाणि वि० सं० १०९१ वर्षि सातसें श्रीमाली गौत्रने धुलिकोट पडतो कह्यो । एतलि श्रीसंघ रक्षक, उत्तराध्ययननी वृद्ध टीका आढार हजारना कारक, पुनः जीवविचार प्रकरणना कारक, कांनोहडी नगरइं विक्रम सं० ११११ वर्षि श्री शांति सूरीनो स्वर्ग हुओ । एहवइं वि० सं० १११७ वर्षे वडगछइं श्री चक्रेश्वरइं ग्यारसया अनइं पनर राज कुमर प्रतिबोध्या । पुनः धनपाल पंडिते श्रीरुषभ पंचाशिका । १ । देशीनाम माला कीधी ।

३९. तत्पट्टे श्री यशोभद्र सूरी ।

लघु गुरुभाई श्रीनेमिचंद्र सूरी ।

एहवइं डोकरा आ० गुरु श्री उद्योतन सूरी आज्ञा लही श्री अझाहरी नगर थकी विहार करता श्री गुर्जरइं अणहल पाटणि आवी श्रीवर्द्धमानसूरि स्वर्ग हुया । तेहना शिष्य श्रीजिनेश्वर सूरी । पाटणि राजा श्री दुलभनी सभाइं कूर्चपुरगच्छीय चैत्य (५२-२) वासी साथी कांस्यपात्रनी चरचा कीधी । तिहां श्रीदशविकालिकनि चरचा गाथा कहीनें चैत्य वासीनें जीत्या । तिवारइं राजाश्री दुलभ कहे ए आ० शास्त्रानुसारे खरुं बोल्या तेह थकी विक० सं० १०८० वर्षे श्रीजीनेश्वर सुरिइं खरतर बिरुद लाद्धो । तेहना सिष्य श्रीजिनचंद्र १ लघु गुरुभाई श्री अभयदेव सूरी २ । तत्पट्टे श्रीजिनवल्लभ सुरि हूया । तिणि चित्रकूट पर्वति आवी श्रीमहावीरनओ छठओ कल्याणक परुप्यो । पुनः दोढसो, छयासीया ग्रंथ नीपजाव्यो । एक शत अनि चौत्रीस बोलइं करी खरतर गछनी समाचारी थापी । जेहना शिष्य श्री जिनदत्त सूरी हूया । तेहनो संबंध कहइ छइ—

विक्रम० सं० ११३२ वर्षि जन्म । एहवि श्रीजयसिंघ दे राज जन्म हओ । वि० सं० ११४१ वर्षि दीक्षा । विक० सं० ११७० वर्षे सुरीपद । श्रीसूरीनइं तपस्वी जोगी चउसठी योगिणी, बावन वीर, पूनः पंच-

पीर ए सदैव श्री गुरुनि भक्ति साचवइं । एकदा श्रीगुरु विहार करता श्रीगुर्जर(५३-१)देशी वडनगरइं आव्या। तिहां संघ घणि भक्ति साचवइं । श्रीसंप्रति निर्मापित श्रीमहावीर प्रासादि घणा स्नात्रि, अष्ट प्रकारी पुजा, अष्टोतरीइं पंच शब्दा सदैव हूया । तिवारइं मिथ्यात्वी बाडवइं जैन महिमा जांणि कोइक त्रिवाडी बाडवने घरे डोकरी गो करेरडी जणीने मृत्यु पामी । द्वेष थकी ते बाडवे गौ शव रात्रि एक द्वे मिली उपाडी लेई गुप्तपणइं जिनघरे मूकी । सुप्रभाति शिष्य जिनदत्त दर्शनि आव्या। प्रदिक्षणा करता गौ शव दीठो । तुरत आवी गुरुने कह्यौ । गुरे उपयोग देइ जोयुं । मिथ्यात्वि व्यंतर पिण नही । मिथ्यात्वि बाडव जांण्या । श्रीगुरुइं देववरनी मोटी आसतना जांणी बावन वीर माहिलो पूर्णभद्र वीर तेड्यो । ते हाथ जोडी कहे कार्य कहो । गुरु कहइं शासनोन्नति करो । आ प्रासाद थकी छ मासनी अवधइं ए शव सजीवन करी प्रगट पण काढो । किसइं जेह जीव... ने अभयदान हुइं । ते गुरुनइं वचने देव गो कलेवरइं पइठो । एतलें देववर थकी प्रगट पणि सकल वा(५३-२) डव तथा अन्य मनुष्य देषतां ते गो भिंग चुणावती जिहां त्रिवाडी वाडवनइं घरइं शिघइं देव शक्ति वत्सीनइं हेत करी मिलि । स्तनि दूधपान ते वत्सीइं कीधो । ते देषी सकल वडनगर वाडव हर्षित हुआ । माहोमाहि कहइं— अनामुका त्रीवाडी ! आ किस्युं ? ते त्रीवडी कहइं—ए महा कांईक देव शक्ति । नगरइं वार्ता हुई । ए जैनाचार्य महाम्नाय धारक । पुनः अत्र गो १ अनइ वत्सी २ ए बिहुं जीवने अभयदानना दातार कृपावंत दयावंत जांणी सकल मिथ्यात्वि श्रीगुरुने नम्या । श्रीजिनशासननी उन्नति हुई । एतलइं नाम तो श्रीजिनदत्त सूरी पिण गौ १ वत्सीने २ अभयदान देवे थकी उपगारी हुया, तेह थकी सकल मनुष्ये वडनगर मिली श्री जिनदत्तने 'उपगारी सूरी' ए बीजो नाम कह्यो । पुनः अणहिल पत्तन पासें श्री वायड नगर श्रीगुरुइं वायड आतीया घणा गृहस्थ प्रतिबोधी जिनधर्म्म वासित कीधा । पुनः श्री सूरीइं वृद्ध सिंधु देशी उच्चा (५४-१) नगरे पंचनदीइं मध्य भागइं सैयद मलेछनइं वादइं जीत्या । तिहां घणा जाडेचा क्षत्रीय प्रतिबोधी आढार गोत्र उपकेस ज्ञाती कीधा । ते परम जैन धर्म्म वासीत हूआ । श्री जिन शासनइं शोभिनीक ए सूरी कहीवाणा। श्री गुरुना नाम स्मरणि दुखा र्त्ति विलय जाय । अनुक्रमि श्री कुमारपाल राज्ये विक्र० सं० १२११ वर्षे श्री सूरीनइं स्वर्गा हूओ ।

इति जिनदत्त सूरी संबंधः

पुनः एहवइं श्री मरुदेशी श्री फलवर्द्धि पुरी तीर्थनी उत्पत्ति, ते कहे छे । पुनः नांणावाल गछे श्री मानदेव सूरी विहार करता फलवाद्धिपुरी चुमासुं रह्या । तिहां ओ० गुरुड गोत्रि श्रे० पारस नामें गृहस्थ रहे छे । ते भद्रक परिणामि करी निरंतर श्री सूरी वांदइं । एकदा ते पारस श्रेष्ठी गाम बाहिर कार्यार्थि, लघु बोरडीनी जालि वृक्ष मध्यें कांइक नीला अनि कांइक सूका म्लान फूलइं करी पूजीत एहवओ पाषाणनो ढींगलो देषी, गुरु श्री मानदेवनइं आवी पुछ्युं (५४-२) जे ए दृषद सदैव पूजि देखुं छूं । ते माटे अत्र स्थानिके कांई आश्चर्य दिसे छइं । तिवारी श्री सूरी पारसनइं कहइं— ए दृषद पिहुलो करओ । तिणे पारस गुरु आज्ञा थकी ते दृषद वेगलो भिन्न भिन्न कीधा । तेतलइं श्री पार्श्व बिंब दीठओ । पासने अधिष्ठायकि प्रगट मनुष्यने शब्दि कहइं—जे प्रासाद करावो पूजा करजे । तिवारइं पारस कहइं द्रव्य नहीं । अधिष्ठायक कहइं श्री पासना मुषाग्रे समु प्रभाति स्वर्णना अक्षतनो ढिगलो निरंतर द्रव्य प्रमाणे हुस्यइं । ते द्रव्ये प्रासाद नीपजावजे । पिण ए वार्ता कांई आगलइं न कहेवी । ते पारस श्रेष्ठी अंगीकार करी घरे आवी श्री गुरुने बिंब प्रगट हूआनी वार्ता कही । तिवारइं ते अधिष्ठायक आराध्यो । तिवारइं ते देव आवी गुरुने कहइं—पहिलो इणि पुरि इणि ठिकांणे संप्रति नृपकारक पार्श्वनाथनो प्रासाद हुंतो । ते कालना योगी जर्ज्जर हुई क्षय हुओ । ते बिंब ए श्री पासनो प्रगट हूई । श्रे० पारसनइं दर्शन दीधो । बीजइं दिने देदक (५५-१) थक प्रमाणे स्वर्ण अक्ष-

तनो ढिगलो प्रत्यक्ष साचओ देषी श्रे० पारसइं प्रासाद नवो प्रारंभ कीधो । मूल मंडप १ रंगमंडप २ नृत्यमंडप ३ सर्व निपजाव्युं । द्वार कोट निपजाव्यो। तेहवे एक दिनें स्वपुत्री पुछ्युं—ए द्रव्य तुम्हे किहा थकी लावओ छओ ? इम वार ३ पुछे । पारस श्रेष्टिइं पुत्रीनइं भद्रक पणइं यथास्थित कह्युं । तिवारइं अभिप्रायकइं द्रव्यनी वार्त्ता प्रगट करी जांणी स्वर्णाक्षत द्रव्य बंध कीधो । तिवारइं प्रासाद एतलो रह्यौ । तिवारइं श्रीमानदेव सूरिइं श्रे० पारसना आग्रह थकी वि० सं० ११९८ वर्षे श्री फलवर्द्धि नगरें महा महोछवइं श्री पास बिंब थाप्यो । यदुक्तं—

श्रीमत पार्श्वजिनाधीशः फलवर्द्धिपुरस्थितः ।
प्रणम्य परया भक्त्या सर्वाभीष्टार्थ साधकः । १ ।

इणिपरें स महिम्न श्रीफलवर्द्धि तीर्थ प्रगट हूओ ।

४० तत्पट्टे श्री मुनिचंद्र सूरी ।

श्री सूरीना उपदेश थकी वि. सं. ११९५ वर्षि श्री दधिपद्रइं वायट ज्ञातीय ठा. अंबराजइं श्री शांतिनाथनो बिंब था (५५–२) प्यों । पुनः श्री सूरीना उपदेश थकी श्री सीरोही नगर वि. सं. ११९७ वर्षि विज्जापान सगात्रि(?)चहुआण श्री पृथ्वीराज हुओ । श्री सूरीइं पाक्षी सत्र ग्रंथ नीपजाव्यो । एहवइं वि. सं. ११९८ वर्षि श्री अभयदेवसूरी प्रगट हुआ ।

श्री अभयदेवसूरीनी उत्पत्ति कहइं छइं ।

मेदपाट देशी वडसल ग्रामइं तूंअर सगा नामि राजपुत्र रहे छे । तिहां कोटिक गछे खरतर बिरुद धारक श्री जीनेश्वर सूरी विहार करता तिहां आव्या । श्री सूरीनइं देषी सोंगो (सगो ?) नम्यो । श्री गुरुइं भव्यात्मा जांणि उपदेश कह्यो । सांभली बुझ्यो । तत्काल दीक्षा लीधी । जोग्य जांणी आ० पद देई श्री अभयदेव सूरी नाम दीधु । अत्युग्र षट् विगयना त्याग थकी पूर्व कर्म्मानुसारें देही कुष्ट हुओ । श्री सूरी पूर्वोपार्जित कर्म्मे अहियासता थका गुज्जरात देसि भाणपुर गामि आव्या । वडवृक्ष हेठलि रात्रि सुता सुप्रमां तप लब्धि थकी अर्धनीसाइं सासन देवी कहइं—ऋषीश्वर ! जाग्र छो ? ते देवीवांणी सांभली सूरी कहै—रोगग्रस्तनइं निद्रा किहां थ (५६–१) की ? । एहवी आ० नी वांणी सांभली शासन देवीइं बालीका स्वरूप धरी आवीनइं आचार्यनइं करइं जिमणै हाथै सूत्रना कोकडा नव देइं । मुझ देही समाधी हुइं उवेलीस्युं । ते सांभली श्री सरस्वती कहइं सेढी नदीनइं कंठी पलास वृक्ष हेठइं चीकणी भूमिका छइं । ते अहिनाणइं पहिलां श्री नागार्ज्जुन योगीइं विद्यासीधीइं भूभंडारित बिंब श्री थंभण पासनओ समहिम्न छइं । तिहां तुम्हे जाज्यो । श्री थंभण पासनी स्तुती करज्यो । कीर्तना करतां ते बिंब सद्य प्रगट हुसइं । तेहना स्नात्रनइं जलि सकल रोग ए देह थकी जास्यें । पिण कोकडा नव तुम्हे उवेलज्यो । इम कही देव्या श्री शारदा स्वस्थानिकइं गयां । तेहना वचनने अनुसारइं गौदुध चीकणी भूमीनइं अहिनांणी खाखर वृक्ष हेठली जाई श्री अभय देवाचार्य उभा रही श्री थंभण पासनी कीर्त्ति तद्रूपि जयतिहुण बलि इ 'फणि फण फार फुरंत रयणकर' १७७० ए काव्य सतरमु कहितां श्री पास बिंब (५६–२) भूमिका थकी प्रगट तत्काल हुओ । श्री संघि स्नात्र ओछवइं श्री पासना अभिषेकनओ जल सुचिपात्रइं भरी गृहस्थि श्री आचार्यनी देहीनइं छांटवि करी गुरु अंग थकी सकल रोग उपद्रव सम्या । देह तमसुवर्णोपम हूइ । महोछव मंगल जय शब्द हूओ । तिणहीज ठिकाणइं सेढी नदीनइं तटि थंभणपुरनामें गाम थाप्यो । प्रासाद नीपजावी वि सं. ११२९ वर्षि श्री अभयदेव सूरीइं थंभणपुर प्रासादि श्री पासजी थाप्या । तिहां थकी विहार करता श्री अणहिल्ल पाटणि श्री पंचाश्वर पासने जूहारी चोमासे रह्या । रहितां थकां एकदा गुरुने शासन देव्या दत्त नव सूत्रना कोकडानो उपयोग आव्यो । तिवारइं श्री सूरीइं वि. सं. ११२० वर्षि भगवती प्रमुष नव अंग सूत्रना जे सिद्धान्त तेहनी टीका नीपजावी । एहवे श्री थंभण पास प्रगट कार वि. सं. ११४५ वर्षि श्री गोपनगरें आ० श्री अभयदेव सूरी स्वर्ग हुओ । तेह पछी (५७–१) केतलेक वर्षे गुर्ज्जर देसी यवनराज हूओ ।

तिवारइं श्री सकल संघि मिली समभाव बिंब जाणी वि. सं० १३६२ वर्षे श्री खंभायत नगेर सुठिकाणें घणे यत्नि श्री थंभणापास थाप्या। नीलुप्पल समान नील वर्ण देह धारक सकल क्षुद्रोपद्रववारक ते बिंब आज लगाणि समभाव छइं।

उक्तंच—जयत्यसौ स्तंभनपार्श्वनाथः
प्रभावपूरैः पूरितं सनाथः।
विघ्नसभन्वंवतरणैव येन
कुष्ठोपतापोऽभयदेव सूरी॥

स्फुटीचकाराभयदेवसूरी—
र्योर्भूमीमध्यस्थितमूर्ति सिद्धं (?)॥ १॥

इणि परि आ० अभयदेव सूरी हूता हुआ।
इति आ० अभय देव सूरी संबंध।

पुनः एहवइं वि. सं. ११५२ वर्षे श्री जयसिंह देवि श्री सीद्धपुर नगर वसाव्युं। इग्यार मालइं करी श्री रुद्रालय थाप्यो। पुनः श्री सुविधिनाथ नवमा तीर्थकरनओ प्रासाद नीपजाव्यो। स्व दर्शन १ अपर दर्शन २ पोषी घणुं मुकृतइं द्रव्य कीधो। वि. सं. ११५४ वर्षे वृष तटाक १७ (५७—२) कराव्या। ४१ जलनी दीर्घ वापीका निपजावी। ६१ कुंड बंधाव्या। ६७ लघु तटाक; दर्भावती. सहेली, झंझुवाडा प्रमुष नगरें गढ बंधाव्या। लघु वापिका १०२१, विश्राम थांनीक १०६८, देव देव्या यक्ष प्रासाद एक लक्ष निपजाव्या। एहवइं गुर्जर अणहिल्ल पत्तनाधीश सोलंकी श्री जयसिंह देव राज्यें श्री कोटिक गछे, चंद्र कुले, वज्री शाषाइं आ० श्री देवचंद्र सूरी तेहना शिष्य आ० श्री हेमचंद्र सूरी प्रगट हूआ।

हवई श्री हेमचंद्राचार्यनी उत्पत्ति कहे छै।

गुर्जर देशि धंधुकि नगरइं मोढ ज्ञाती गोत्री साचओ रहे छेइं। तेहनी स्त्री चंगी नामि। तेहनओ पुत्र चंगदेव नामि छै। तिहा विहार करता आ० देवचंद्र सूरी आव्या। श्री सूरीनो धर्मोंपदेस सांभली तिणइं चंगदेव नामिं वणिकुपुत्र गुरु संयोगें परम श्रावक हूओ। वि. सं. ११४५ वर्षे तेहनो जन्म। पांचमे वर्षे वि. सं. ११५० वर्षे दीक्षा लीधी। सोमदेव रुषी नाम दीधुं। श्री गुरुनी कृपा (५८—१) थी अनुक्रमि गुरु श्री देवचंद्र सूरी १ अनि शिष्य रुषी सोमदेव २ ए बिहू कलिंजर नामि पर्वतइं कोइक ओषधीनइं सोधिवा जाइं छइं। तिहां मारगमां श्री मलय गिरि सूरी मिल्या। तिहां थकी कुमारिया गामें जातां थका तटाके धोबी वस्त्र धोतो दीठो। पद्मनी चीर देषी पूछीओ। तिवारें ते वस्त्रख्यालक गुरुने कहइं—आ गामनो श्रेष्ठी तेहनी पहिरवानो छे। तिहां चउमासि रह्या। केतलेक दीने ते श्रीमाली गृहस्थनें पद्मनीना मुष आगिलइं विद्या साधननुं रहस्य कह्यो। श्री जीन शासननो भक्तिने हेते तिणे श्रीमालिइं अंगिकार कीधो। शुभ दिनइं श्री रुषभ देव प्रासाद भूमीग्रहे श्री देवचंद्रसूरी १ श्री मलयगिरी सूरी २ रु० सोमदेव ३ ए त्रिह साधु दिगंबर हुइ काउस्सगें रह्या। सन्मुखि नग्न पद्मनी स्त्री उभी रही। तेहनो स्वामी श्राम श्रे० ते नग्न खड्ग हाथई झाली लेई श्री गुरुने पासइं आवी साहस धैर्य धरी उभो र (५८-२) ह्यो। गुरुइं गृहस्थनइं कह्युं—ध्यान थकी चुके तेहना मस्तकइं तत्काल खड्ग दीजे, विलंब नहीं। इम विधि विद्या साधतां साहसीक धैर्यपणो देषी ते देव इग्यारमइं दिने आवी कहइं 'तूठा, वर मागि'। तिवारइं गुरु श्री देवचंद्र सूरीइं वीर ५२ वसिनओ वर माग्यो। श्री मलयगिरी सूरीइं सिद्धांतनी टीका करवानो वर माग्यो। अनि रु० सोमदेवि राजा प्रतिबोधवानी शक्ति मागी। त्रिहु साधुनें ते देव वर देई अलोप हुओ। गृहस्थने कोटी द्रव्यनी प्राप्ति हुई। तिहां थकी देवदत्त वर लेई श्री मलयगिरी सूरीइं मालव देश विहार कीधो अनि गुरु श्री देवचंद्र सूरी १ अनि शिष्य रु० सोमदेव २ ए बिहू गुरु शिष्य श्री गिरिनारि नेमीश्वरनी यात्राइं दर्शन करवा गया। तिहां मारग कोइक गामि एक वाणिक दरीद्री रहइं छे। पहिला तेहनइं माता पिता महा श्रीमंत हुता। तेहनी भ्रांति तणे वाणिके घरनी पुनः......थकी स्वर्णीने तिहा थकी द्रव्य प्रग (५९—१) ट कीधो। व्यंतराधिष्ठित सवतरा प्रगट हुया। तेह थकी घरने मध्य भागइं दि-

गलो कीधो छे। मत्याक्षि लीहालानओ समुह छैं। तिणे समयइं बि पोहरइं मध्यानइं श्रीगुरु अनि शिष्य तेहनइं घरे आहारनइं अर्थि गया। तिणे सुक्ष्मरव (?)दान दीधुं। ते आहार देखी सोमदेव शिष्य वार २ गुरु साहमी दृष्टि करी संज्ञाइं समझावइं पिण गुरु संज्ञाइं न समझ्या। तेतलि वणिक समझ्यो जे ए ऋषी महा भाग्यनो स्वामी जांणी उतावलो आवी तत्काल सोमदेव ऋषी प्रति बि हाथि उपाडी सेवंत्राना ढगला उपरि बइंसाड्यो। एतले ते गृहस्थना पुन्यनइं योगइं ते सेवंत्राना समुहना ढिगला थकी ऋ० सोमदेवनी दृष्टिना प्रभाव थकी ते व्यंतर नाठो। एतले वणिकें साक्षात् प्रगटपणे सुवर्ण ढगलु दीठो। तिवारे ते गृहस्थे घणा आग्रहे गुण निष्पनि श्री गुरुनइं वीनती करी वि०सं०११ ६६ वर्षि ऋ० सोमदेवनइं श्री गुरुइं आचार्य (५९-२) पद देई श्री हेमचंद्र सूरी नाम दीधुं। वि० सं० ११६७ वर्षि गुरु श्री देवचंद्र सूरी स्वर्ग हुओ। एहवइं अनेक ग्रंथ कारक श्री मलयगिरिसूरी स्वर्ग हुओ।

श्री मुनिचंद्र सूरी जावजिव लगइं छ विगायना नियम धारक श्री सूरीइं सोरट देसि प्रासाद बिंब प्रतिष्ठ्या। सुमतादि चारित्रइं समर्थ यतः—

संविग्नमौलिविकृतीश्चसर्वा—
स्तत्याज देहेप्यममः सदा यः।
विद्यादिनैयाभिवृत्तप्रभावः
प्रभागुणे यः किल गौतमोऽस्य ॥ १ ॥
अष्टयेश (११६८) मितेऽब्दे
विक्रमकालाद्दिवंगतो भगवान।
श्रीमुनिचंद्रः मुनींद्रो
ददातु भद्राणि संघाय ॥ २ ॥

४१ रत्नपट्टे श्री अजितदेवसूरी।

लघु गुरु भाइ सकल वादी मुगट बिरूद धारक श्री वादि देव सूरि २। ए बिहुं गुरु भाई। ते मध्ये बडा गुरु भाई ते पट्टधर अनि लघु भाई ते गच्छनी मर्यादाना सार संभालिना करणहार। वि०सं० ११६८ वर्षे निवृत्ति कुलें श्री महेंद्र सूरीना उपदेश थकी थोवा बिं (६०-१) दरें श्री मालि ज्ञाति नांणवटी सा०हीरइं श्री नवखंडा पार्श्वनाथनो बिंब भराव्यो। वि०सं० ११७७ वर्षी श्री नागुरी शाखा कहिवांणी। श्री अजित देव गुरु प्रति गुरु वाणि रंजित थको अणहिल पत्तनाधीशः सो० श्री जयसिंह देव निरंतर त्रिणे प्रदक्षिणा देइ वांदेई। श्री सूरी पाश्चिम दीसी देवके पत्तनइं श्री जिन शासनइं शोभा कारक हूया १ अनि लघु गुरु भाई श्री वादिदेव सूरी तेहना शिष्य श्री रामचंद्र सुरी, तिणि स्नात्र विधि प्रगट कीधी।

तेहवइं श्री मरुदेशि जीराउली तीर्थनी उत्पत्ती हुई। आवूनी पासिं जीराउली गामइं वोसिरगोत्रि श्रे० श्री धांधल रहै छइं। तेहनी गौ सेहली नदीनइं कांठइं बोरडीनी जाल मांही सीमाडे चरवा जाइं छें। तिहां दूध झरइं। संध्यासमयइं ते गौ वणिक घरें दूध न दीइं। तिवारइं ते धांधल गृहस्थ जाणइं जे कोई सीमइं दोहीने दूध लीइं छें। तेहनी भ्रांतीं तेणे संवाते पुत्रने मोकल्यो। जिहां गौ चरइं तिहां पृथ्वीनइं ठिकांणि दूध करी गई। ते देषी पुत्र घरे आवी (६०--२) दूध झरण बात पिता प्रति कही। तिणइं धांधलइं आश्चर्य जांणी ते दूध झरण मर्मीका षणी। एतलइं घणा कालनी श्री पास मूर्ति प्रगट हूई। एतलइं अधिष्ठायकें स्वप्न दीधो, ते मुझने जीराउली नगरइं थाप्यो। तिवारइं धांधलइं प्रासाद नीपजावी महोत्सवें वि० सं० ११९१ वर्षि श्री पार्श्वने प्रासादे थाप्या। श्री अजितदेव सूरीइं प्रतिष्ठ्या। घणा दिन ताइं श्री पार्श्वनाथनी भक्ति साचवतो श्रे० धांधल सद्गतीनो भजनार हुओ। ते श्री पार्श्व परमेश्वर जे जीरापली नगरइं रह्या। सकल भक्ति लोकनी वांछापूरक मरि उपद्रव निवारक सप्रभाव तीर्थ हुओ।

यतः—प्रबलेपि कलिकाले
स्मृतमपि यन्नाम हरति दुरितानि।
कामितफलानि कुरुते
स जयति जीराउलीपार्श्वः ॥ १ ॥

इति श्री जीराउली पार्श्व उत्पत्तिः

पुनः वि० सं० ११९१ वर्षि दीली नगरें विल्हाती

पठांण आव्या । चहूआणनइं काव्या, म्लेछाण हूओ ।

हवइं श्री देव लोडण पास तिर्थनी उत्पत्ति कहे छे ।

गुज्जर देसि सेरिसा नगरें नागिंद्र गच्छइं श्री देवेंद्र सूरि शिष्य सहित विहार करता आव्या । पिण गुरु शिष्य थकां (६१–१) वीराकर्षण विद्यानी पुस्तिक गुप्त पणि राखइं । एकदा गुरु रात्रिं निद्राइं आव्या । एतलइं एक शिष्ये ते पुस्तिका चंद्रमानइं उद्योति वांची। बावन वीर आव्या । कहि, किस्युं काम छे ? । ते शिष्य कहइं इणि पुरें जिन प्रासाद नही छइं ते माटिं पश्चिम दिशिं जैन कांति नगरी थकी श्री जिन दर्शननो आ वणो पुन्य जाणी तुह्मारी शक्ति इहां एक प्रासाद लाव्यो । तिवारें ते शिष्यना वचनें वीर कहें अह्मारुं प्राक्रम प्रभाति कुर्कट शब्द न हुइं तिहां लगण, शब्द पछी नही । शिष्य आज्ञा लही बावन वीर जैन कांति नगरी थकी रात्रि प्रासाद लेई सेरीसई नगरइं आव्या । एहवें उंच थकी गुरु जाग्या । तिवारें आकासि कोलाहल, बावन वीर नो आंण्यो प्रासाद श्री पासनो देखी चित्ते चिंतवइं ए किस्युं ? पुस्तिकानो उपयोग आव्यो । एतलि तिहां पुस्तिका नही । श्री गुरुइं शिष्यनां काम जाणी श्री चक्रेश्वरी स्मरीनइं कहइं ए शिष्यनें मालिम नहीं । रात्रि वणी छइं ते माटि तुमो कागिमा कुर्कट बोलावओ । गुरु आज्ञा थकी ते देवीइं तिमज कीधो । एतलइं प्रभात हुइं जांणी वीर स्वस्थानकि (६१–२) प्रोहता । एतलइं प्रासाद तिहांज रह्यो । तेह थकी वि०११...वर्षे सेरीसा नगरइं श्री लोडण पासनी थापना हुइ । आ० श्री देवेंद्र सूरी तिहां थकी विहार करी अणहील पत्तनइं पधार्या। पणम्या । इति सेरीसा तीर्थ उत्पत्तिः ।

४२. तत्पट्टे श्री विजयसिंह सूरी ।

चारित्र चूडामणी बिरुद धरता विचर्या । एहवइं सोलंकी श्री कुमारपाल प्रगट हुओ । तेहनी उत्पत्ति कहइं छइं ।

गुर्जर देसि अणहिल वाडा पाटण पासें देइथली नगरइं सो० श्री त्रिभुवनपाल भार्या वावली कास्मीरी । पुत्र पांच, ते माही कनिष्ठ कुमारपाल नामी तेहनो वि.सं.११७७ वर्षे जन्म हुओ । विक्रम सं० ११९७ वर्षि श्री षंभायतें श्री सूरी मुखें धर्म्मोपदेश लह्यो । वि.सं.११९९वर्षे कुमारपाल टीको हूओ । एतलइं गुरुने वणइं ओच्छवइं शालाइं पधराव्या । सदैव व्याख्यान सार कांइक सुकृत कहो । तिवारें सूरी कहीइं

दीर्घायुः परं रूपमारोग्यं श्लाघनीयता ।

अहिंसायाः फलं सर्वं किमन्यत् कामदेवसा ।। १ ।।

एहवा वचन श्री गुरुनां सांभली चउमासइं जी-(६२-१) वाकुल भूमिका जांणी गुरु मुखे कुमारपालि नियम लीधो जे चउमासें सैन्य चढाइं युध न करवओ। ते वार्त्ता केतलेक दिनें दिल्ली नगरइं म्लेछइं सांभळी । तिहां थकी सैन्य आवी अणहील वाडें उतर्यो । सहिर पाषति गढ कोट नही तिवारिं कुमारपालि गुरु विनव्या— सैन्य १ अनइं युद्ध २ नो तुह्म मुखइं माहरइं नीयम छइं । सूरी कहइं धर्म्म थकी कुशल हुसइं । श्री सूरिइं कंटेश्वरी पादर देवी स्मरीनें कहें जिन शासनइं ए राजा नियम धारक छे तेह थकी परचक्रनो उपद्रव्य निवारो । ते गुरु आज्ञा लही देव्याइं रात्रि निद्राइं सूतो म्लेछनइं उपाडी कुमारपालना महलमां लावी मुंक्यो । प्रभाते जागी उठयो । स्व सैन्य अनुचर नही । एतलइं चउति दिनइं राजधिनइं अनुचरें दंतधावन निमित्तें पावन जलसंपूर्ण पात्र अंचलो लावी दीधो । ते देखी मुगल कहइ—ए कुण स्थान ? तुं कुण ? ते अनुचर कहइं ए राजा श्रीकुमरपालनओ मंदिर । हुं तेहनो सेवक । ते मुगल सेवकना वचन सांभळी मनस्युं विचारइ—हुं एहना राज्य लेवा आव्यो छु, पिण मोकइं ह आण्यो छण (६२-२) इं, अनइं एह महा भाग्यनो स्वामी मुझस्युं मैत्री वांछइ छइं । एहना पीर पिण साचा छइं । तओ ए राजानओ हुं मित्र । तिवारइं मुगल १ अनि कुमारपाल २ बिहु मित्र हुइ माहो माहि भेट आपि पीराण पत्तन नगरनो नाम देइ, कुमारपालनइं स्वधर्मि दृढता पणुं १ अनि उपगारी पणुं २ देखी प्रसंसा करतो दील्ही नगरइं मुगल पुहतो । श्री जिन सासनइं महिमा हुओ । गुरु कीर्ति हुइ । एतलइं विक्र० सं० १२०७ वर्षि सो० श्री कुमा-

रपालें अढार देशि अमारि पलावि । हवे ते अढार देशना नाम यथा—

कर्णाटे १ गुर्जरे २ लाटे ३ सौराष्ट्रे ४ कच्छ ५ सैंधवे ६। उच्चायां ७ चैव भंभर्यां ८ मारवे ९ मालवे १० तथा ॥ १ ॥ कौंकणे ११ च तथा राष्ट्रे १२ कीरे १३ जालंधरे १४ पुनः । पंचाले १५ लक्ष्मवाडे १६ दीपे १७ काशी १८ तटे पुनः ॥ २ ॥

मारि शब्द एहवओ मुखि कहिवइं करी चउविहार उपवास एक करइं । सकल प्राणि छण्यां पाणी पीइं । पुन वि० सं० १२०९ वर्षि हेमी व्याकरण श्री हेमाचार्ये प्रगट कीधो । विक्र० सं० १२११ वर्षि सप्त लक्ष मनुष्य श्री सिधाच (६३-१) लें संघपति हुआ । वि० सं० १२११ वर्षे लेउआ गाथापतिनइं दया पाल जाणी सांडरिया विरुद दीधो । वि० सं० १२१३ वर्षे श्रीमाली मं० बाहड देई श्री सिद्धाचलइं चउदमो उद्धार नीपजाव्यो । वि० सं० १२१६ वर्षे वंभगढ थकी श्री शांतिप्रजांने नूतन वस्त्रार्थि शालीवना सात हजार घर पाटणी आवी वसाव्या । वि० सं० १२१८ वर्षे श्री हेमाचार्य अमावस्यानी पूर्णिमा देषाडी । वि० सं० १२२१ वर्षे तारणगिरिइं श्री अजित जिन बिंब थाप्या । तिणहीज वर्षे सातसें लेखकने द्रव्य आपी एकवीस ज्ञानकोश लिषाव्या । न्याय घंटा सदैव वाजइं । श्री गुरु उपदेशि चउदशत अनि चुमालीस, ८४ मंडप सहित प्रासाद नीपजाव्या । पुनः एकवीस शत जीर्णोद्धार नीपजाव्या । एकदा मं० बाहडदे श्री गुरुने वीनती कहइ जे नवीन प्रासाद नीपजावइं पुण्य किंवा जीर्णोद्धारनो लाभ ? एहवुं मंत्रीनुं वचन सांभली श्री सूरी कहइं । यतः—

नूतने श्रीजिनागारविधाने यत्फलं भवेत् ।
तस्मादष्टगुणं पुण्यं जिर्णोद्धारे विवेकिनः ॥ १ ॥

एहवओ गुरुवचन सांभली मंत्रीइं पन्नरशत जीर्णोद्धार निपजा (६३-२) व्या । तेमांहि प्रथम जीर्णोद्धार वि. सं. १२२० वर्षे श्री भृगुकच्छे श्री शकुनिका विहारनो कीधो । श्री गुरुना साह्ज्य थकी । पुनः इणहीज वर्षि आगिम गच्छ हूओ । पुनः एकदा कुमारपालनें रात्रि सूतां थकां पूर्वि बालावस्थाइं अभक्ष भक्षण खाधओ छइं तो गुरु पासइं बारव्रत उचर्यां, ते मांसनो स्वाद दाढामां उपनो जाणी चिंतवइं अभक्ष भक्षनइं संभरवइं खंडित हूओ । प्रभाति गुरु वांदि पूछिओ । तिवारइं गुरु कहइं—एहनी आलोयणा तुम्हे बत्रीस लक्षणा पुरुष छओ तेह थकी बत्रीस वरो प्रासाद, बावनदेव कुलिका सहित निपजावओ । ए व्रत भंग हुआनी तुम्हने ए आलोयण दीधी । ते गुरुवांणी अंगीकार करी स्थपिता तिहुयण पालने नामि तिहूयण वीहार, बहुत्तरी देव कुलिका सहित निपजाव्यो । तेमांहि २४ बिंब रत्नमय, बिंब २४ स्वर्ण—पित्तलमय, बिंब २४ रुपमय, पुनः मुख्य प्रासादे एक सओ अनि पंचवीस अंगुल प्रमाणी अरिष्ठ रत्नमय मूल नायक श्री रुषभदेव बिंब स्थापित, सकल देव कुलिका सुवर्ण कलस युक्त जा (६४—१) णवी । निरंतर सत्तरभेदि, पुनः पर्व पर्वि अष्टोत्तरी, जिनभक्ति हुइं । बिहुं टंक प्रतिक्रमण, त्रि टंक देववंदनक, साच वई । सूर्योदये स्वगृहइं श्री शांतिनाथनइं अनि वीतराग एकशत आठ नाम समरी पछी अठारमय कोटी ध्वज गृहस्थ युक्ति, तिहूयणपाल विहारइं, श्री रुषभदेव दर्शन करी, गुरु वांदि, उपदेश सांभली, घरे आवी, सदैव सातसिं साधर्म्मिक जीमाडी । पछी एक भक्त करइं। मासे २ लक्ष साधर्म्मिक पोषि । प्रति वर्षि यात्रा सात सवा २ लक्ष मनुष्यइं करवि ।

अथ द्रव्य संख्या, कोठार च्यार अघटित स्वर्ण भर्या । कोठार च्यार अघटित रुपि भर्या । कोठार १ मुक्ता फलि भर्यो । कोठार १ नानाविध रत्ने भर्यो । पार्श्व पाषांणना खंड च्यार । कोठार १ विद्रुमनो पिंड भर्यो । १५ लक्ष कोठार पवीत्र धानइंकरी भर्या । अथ सैन्य द्विपद संख्या—७२ सामंत । चारशत प्रधान । सातसै कोटवाल । १८ लक्ष पायक । एक लक्ष दूत । ११ हजार गज (?) । १२ हजार अंगमर्दक । १७ हजार सूयार । १५ दास अनि दासि । वि ख्रि । अथ चउपद संख्या—११ लक्ष हय । ११ हजार (६४—२) पालखी । ५० हजार रथ ।

२४ हजार करभ । १७ हजार वेसर । २२ हजार महिषा । दोढलाष वृषभ । एक लक्ष शकट । १५ सो कौतुक चडोल । इणि परि पूर्वभवपून्ये भोगवें । पूर्व-लइ भवइं कोइक व्यवहारीयानें घरे कुमारपालनउ जीव चाकर हूतो । तिहां निर्म्मल श्रद्धा थकी नव कपर्दीकानां अढार फूल आव्यां । ते लेइ सिद्ध गीरीइं श्री परमेश्वर-नइं चढाव्यां । तिणे पून्येकरी १८ देशनी साहिबी भोगवतो, श्री गुरु वचनें सुकृत करतो, जिन सासन सोभावतो, थको दिन नीगमइं । एहवइं वि. सं. १२२९ वर्षि सार्ध त्रि कोटि ग्रंथ करता, कलिकाल सर्वज्ञ बिरूद धारक, अष्टादश देशाधिपति बोधक, श्री तारणगिरी तीर्थ थापक आ० श्री हेमचंद्रसूरी स्वर्ग हूओ । उक्तंचः—

सो जयइ वुड्ढवाई १ सिद्धसेनो जयउ खलु हरिभद्दो । सिरी बप्पभट्टसूरी ४ पालित्तो ५ अभयदेवो य ६। सिरीमलयागिरिसूरी ७ सूरी सिरियसोभद्दो य ८ । सिरिहिंमसूरीअ ९ अमि पवरथेरा जयंतु जुगपवरा ॥ पुनः विक. सं. १२३० वर्षि कलिकाल राजर्षि विरुद धारक श्री जीनसासनुन्नतिकारक (६५—१) सो० श्री कुमारपाल स्वर्ग हूओ। यतः उक्तम्

दया धर्म्म सुवेलडी रोपीरुषभ जिणंद ।
श्रावककुलमंडप चडी सिंची कुमर नरिंद ॥१॥

श्री कुमारपाल संबंध ॥

हवइं श्री अंचल गछनी उत्पत्ती कहइं

वडगछ बिरूद धारक श्री उद्योतन सूरी । तेहनें पाटी श्री सर्वदेव सूरी । तेहना लघु गुरु भाइ आ० श्री पद्मदेव सूरी १। तेहना शिष्य श्री उदयप्रभ सूरी २, धर्म्मचंद सूरी ३, विनयचंद्र सूरी ४, गुणसागर सूरी ५, विजयप्रभसूरी ६ तेहना नरचंद्र सूरी ७ तेहना श्री वीरचंद्रसूरी ८ तेहना शिष्य आ० श्री जयसिंह सूरी । ते आबूनी तलहटीइं दत्ताणि नगरें शालाइं रह्या छे । एहवइं तिहां श्रो० वृद्ध द्रोण नामि सेठ रहिछइं । तेहनइं नारी नांमा स्त्री छइं, तेहनइं गोदा नामइं बेटो छे । तेहनो वि० सं० ११३६ वर्षि जन्म हुओ । पुनः तिणे पुन्यने योगे वि० सं० ११४२ वर्षि श्री जयसिंहसुरी हास्ते दीक्षा लीधी । तिहां प्रथम साधुनओ आचार ओलखवानइं हेति श्री दशवैकालिक सूत्र गुरु तेहनें भणाविता हूया । भणता थका अध्ययन सातमानी गाथा छठी भणवा मांडी । (६५—२) ते गाथा—

सीउदगं न सेवेज्जा शिलावुठं हिमाणियं ।
उसिणोदगं तत्थ फासुयं पडिगाहिज्ज संजइ ॥१॥

ए गाथानओ अर्थ गुरुइं भणाव्यो । ते अर्थ गोदें चित्तमांहि विचार्यो । पोशाल मांहि ताढा सचित्त पांणीना भांडा भरया देषी गुरुनइं पूछें, श्री गुरुजी अन्नहा वाहाई अन्नहा किरिया कहीइं । ए वचन सांभली गु० कहे, सुशिष्य एह किरिया आ समयइं न चालि । तिवारि तिणे शिष्यें कह्यु ए क्रिया करइं तेहनइं लाभ किंवा त्रोटो ? गुरु कहे—लाभ, पिण तेहने त्रोटो नहीं । एहनी गुरें योग्य कियापात्र तपस्वी जांणी उपाध्याय पद देइ श्री विजयचंद्र नाम दिधुं । तिणइं तिहां थकी गुरु वांदी आज्ञा लही च्यार साधुस्युं विहार कीधो । केतलेक दिवसें पावइ पर्वति आव्या । तिहां संप्रति नृप कारक प्रासाद श्री संभव देवनइं नमस्कार करी चउ विहार मासखमणें उपाध्याय काउस्सगि रह्या । मास संपूर्णि जितेंद्रिय तपस्वी पणइ जांणी महाकाली देव्या वांदी कहीइं—हुं तुम्ह उपरी प्रसन्न छुं । तुह्मो संघनइं कल्याणकारि हुं । मुझनें संभारइं उपद्रव वेगलो करीस । पिण आज (६६—१) कृष्णाष्टमी छइं ते माटि मुझनइं अष्टमाइं दीनइं उपवासी तुम्हे संभारज्यो । ते देवी दत्तवर थकी उपाध्याय श्री विजयचंद्र पावागिरि पीठ थकी उतरी भालिज नगरइं आवी मासखमणनें पारिणए यशोधन भणशालीनइं घेर आहार लीधो । एतलइं देवीनइं वर थकी मुख्य गृहस्थ यशोधन धनशाली हुओ । एतले पांचमा आरानइं योगी केवलीनें अभावें करी आपआपणी स्वइंछा थकी नव नवी किया नव नवी समाचारी आदरी । एतलिं पोताना गुरुनी मूल समाचारी लोपीनइं, वि० सं० ११६९ वर्षि, श्री जयसिंह देव राज्ये एकसओ अनि सित्तर बोलनी परूपणाइं श्री विधिपक्ष गछनाम दीधुं । तिहां थकी केतलेक दीनें श्रीविजयचंद्र उपा-

ध्याय विहार करता वडणप नगरि आव्या । तिहां श्री श्रीमाली कोडि नामें व्यवहारीओ प्रतिबोधी स्व गछिं कीधो । तिहां थकी विहार करता घणा गृहस्थने प्रतिबोधी दीक्षा देता पुनः श्राधि प्रमुषनें दीक्षा देता थका पश्चिम देश मंदाउर नगरइं आव्या । तिहां वि० सं० १२०२ वर्षि उ० श्री विजयचंद्रनें सूरी पद हुओ । श्री आर्यरक्षित सूरी ना (६६-२) म दीधुं । केतलाक चौमासा पश्चिम दिशि कीधा । तिहां थकी विहार करता श्री विधि पक्ष गछ विरुद धारक श्री आर्यरक्षीत सूरी गुज्जराति अणहिल पत्तनि पंचाश्वरनइं नमवा आव्या । तिहां शालवी गृहस्थनइं तंतुआ जीवनी उत्पत्ती देखाडी स्व गछइं लीधा । तिहां चउमासे रह्या । एहवइं वडणप नगर थकी कोटी व्यवहारीओ कोइक कार्यार्थे पाटणइं आव्यो । तिहां देव दर्शन करी जिहां शालाइं राजा कुमारपाल आ० श्री हेमचंद्रना मुष थकी उपदेश सांभलीइं छे, तिहां आवी सभा समक्षइं श्रीहेमचंद्रने वस्त्रांचलइं वांदइं । ते देखी राजा कुमारपाल कहइं—ए कुण गृहस्थ जे वीगर वांदणइं इम वांदइं ? ते सांभली श्री हेमचंद्र कहे—ए विधिपक्षीक । तिवारि कुमारपाल कहइं—ए वस्त्रांचलि गुरुनइं वांदइं छइं तेह थकी एहनो नाम अंचलिक कहो । एतलइं वि०सं० १२२१ वर्षि बीजुं नाम अंचल गछ कहिवाणो । तिहां थकी श्री आर्यरक्षित सुरि विहार करता श्री वडणप नगरी आव्या । एहवइं सओ वर्ष आठ संपुर्णा (६७-१) वि० सं० १२३६ वर्षे श्री आर्य रक्षित सुरी स्वर्ग हुओ । एहवइं वि० सं० १२३६ वर्षि साढ पूर्णिमा प्रगट हुओ ।

इत्यंचलगच्छ उत्पत्तिः ।

तेहवइं गुजराति सोलंकी कुमारपाल राज्य छतइं एहवइं, सोरठ देशि, हलार खंडा, भद्रश्वर नगरे, श्री मालि सा. सोल्हा भार्या खेति पुत्र सा०जगडु, तेह दरीद्री पणइं नगर मांही मनुष्यना कार्य करतो माता सहित काठिण उदर पूर्ण करे छै । एकदा तिहां विद्याधर शाषाइं आ० श्री धर्ममहेंद्र सूरी आवी चउमासी रह्या । एकदा एकादशीनइं दिवसि सकल गृहस्थ प्रतिक्रमणइं करी स्व २ नइं घेरे गया, पिण सा जगडुओ शालाइं खुणे एक ठिकाणें अंधकारी सुतो छइं । एहवइं आकाश थकी एक तारानो पत्तन हुओ । एतलइं शिष्य कह्यौ, श्री गुरु एह किस्युं ? तिवारइं गुरु कह्यु—पांचवर्ष लागटइं दुर्भिक्ष हुसइं । तिहां घणा जीवनो संहारनो मालिम हुओ । ते सांभली शिष्य कहइं—तिणे समयइं कोइ अभयदाननो देणहार हुसि किंवा नहि ? तिवारि गुरु कहइं—इसि नगरइं सा० जगडु श्रीमाली रहि छइं । हिवणां ते दरिद्रि छइं । पिण तेहना वृद्ध पिता श्रीवंत हूता । ते पोताना पितानी घरभूमि षणइं द्रव्य काढी व्यापारइं घी द्रव्यनें वधारो करी नइं, घणा जीवन रक्षक पणइं, जिन प्रासाद नीपजावी, श्री सिद्धाचलें यात्रा करी, श्री जिनशासनि आचंद्रार्क विख्यात् हुसिं । ते गुरु वचन सांभली तिण जगडुइं गुरु वांदि तिमज कीधुं । समुद्रमें व्यापार ते जेम—तुरीनी वुहरत—द्रव्य वधारी देशि २ द्रव्य मोकली, अन्न—उदक—घृत—गुड—खंड—साकर—तेल—प्रमुषनो संग्रह कराव्यो । ते वि. सं. १२११ वर्ष थकी वि. सं. १२१५ तांइं एवं वर्ष पांच सा० जगडु घणा जीवनइं अभयदाननो देणहार हुओ । श्री सिद्धाचल १ गिरिनारि २ श्री वेलाकूलि ३ श्री नर्म्मदातटे ४ श्री अजयामेरु ५ इत्यादि महादान शाला कीधी ।

दूहो—नोकारवाली मणि अडा० ।

पुनः कवीत—अट्ठ सहस्स मुंड० ।

एहवो जगडुओ दानें उदार, उपकारी, गुण जांणी दुर्भिक्ष वृद्ध वाडव रूपि जगडुनी परीक्षा करी वाचा दीधी जो तुज मुझ मिलवो हूओ, मिलाइ हूइ । ति(६८-१)हां थकी पन्नरा तरो वर्ष जे हूसे ते दुर्भिक्ष नही थाइ । इम कही दुर्भिक्ष पोतानइं थानकें गयो । श्रीमाली सा० जगडुओ पिण देव गुरुनी भक्ती साचवी घणा सुकृत करी सद्गतिनौ भजनार हुओ । यतः

दानामृतं यस्य करारविंदे
वाक्यामृतं यस्य मुखारविंदे ।
कृपामृतं यस्य मनोरविंदे

स वल्लभः कस्य नरस्य न स्यात् ॥ १ ॥
देयं देयं सदा देयं अन्नदानं विचक्षणैः ।
अन्नदातुर्यशो नित्यं जगडूकस्य यथाद्भुतं ॥२॥

इति श्रीमालि सा जगडु उत्पत्ति ।

४३ तत्पट्टे श्रीसोमप्रभसूरी ।

लघु गुरु भाई श्री मणिरत्नसूरी ।

ए बेहू गुरु भाई जांणवा । श्री सूरी उत्तम प्राणिनें धर्म्मोपदेशनइं कहिवइं थकी उपगार करता विचरइं । एतलइ प्रा० मंत्री वस्तुपाल १ लघुभाइ मं० तेजपाल २ प्रगट हूया । तेहनो संबंध कहइ छइं ।

वस्तुपाल तेजपाल संबंध ।

गुर्जरात देसि धुलका नगरइं प्राग्वाट जाति ऊंबरड गौत्रि सा० आसराज रहै छे । ते पाटणि वस्त्र व्यापारे आव्यो । तिहां हाटमांडी रह्यो । मालसुद गांमि व्यापार करी । एकदा पंचासरा पासनी यात्रा करी धर्म्मशालाइं चित्रावाल गछि आ० श्री भुवनचंद्रसूरी प्रति वांदि बइटो । एहवि तिहां श्रीमा (६८-२) ली ज्ञाती वणहर गौत्रे सा० आंबो, तेहनी स्त्री लक्ष्मी, तस्य पुत्री बाल विधवा कुंवर नांमी । ते श्री गुरुनि वांदि छइं । एतलि गुरु वांदतां थका श्री सूरीइं वामकुक्षी तिल वर्ण देषी मस्तक धूणीओ । तिवारइं पासें बेर्मा शिष्ये कहयुं श्री गुरु ए कीम ? गुरु कहे—एहनि कुक्षि युग्म पुत्र वस्तुपाल १ तेजपाल २ नामि पुत्र घणा पुन्यना करणिना कारक हूसि। तेहनो आचंद्रार्कि नाम रहस्यइं । ते गुरु कथक वचन सा० आसराजी सांभल्युं । केतलेक दिवसें पूर्व कर्म्मना संचयना योग थकी ते बिहूनो संग हुओ । एतलि तिहां थकी ते बिहू पलायन हूई मांडलि नगरइं जाइ रह्या । अनुक्रमि वि० सं० १२६० वर्षि वस्तुपालनो जन्म हूओ । पुनः एकसओने पंचास पलनइं अंतरे तेजपाल जन्म हूओ २ । तिणे आसराजि पाहिला गुरि नाम कह्या हूंना तेहीज नांम दिधां । एहीज मालव देसि नलवर नगरइं शालिकुमार प्रगट हुओ । तेहनइं मनुष्य ढांलो नांम कहे छे । राजा श्री वीरधवलनइं राज्यइं पुनः वि० सं० १२४१ वर्षि लाषो फुलाणी प्रगट हूओ । एतलि वस्तुपाल १ तेजपाल (६९-१) २ मांडलि नगरइं वर्ष पांचना हूया । तिवारि तिहां मनुष्य शात पूछि । एतलिं तिहां थकी आसराज पछिम दिशि जाइ देवकइं पत्तनइं रह्यो । तिहां मनुष्यि बालक मोटा तेजवंत देषी गांम ठिकांणुं पूछइं । तिहां थकी एतले घोडिआल गामि पोतानें देशि आवी रह्या । तिहां वर्ष आठना बि बालक हूया । तिवारइं घृत कूपिकानो व्यापार करइं । एहवे तिहां श्री भुवनचंद्रसूरी विहार करता आव्या । सा० आसराजइं कुंवर स्त्रीइं ओलख्या । गुरुइं बि बालकनें पुनवंत जांणी तिवारइं श्री गुरुइं वि०सं० १२६९ वर्षि वस्तुपालनइं जिनशासन किर्ति कारक उत्तम योग्य जांणी अंबिका १ अनि कवड यक्षनओ २ वर दीधो । गुरुइं विहार करतां तारणगिरिं श्री अजितनाथनी यात्राइं गया। केटलेक दिनें सा० आसराज तिहां थकी स्त्री कुअर युक्त बिं बंधव लइ धवलकइ नगर आवी रह्या । इहां थकी गुरुदत्त वरनइं महिमाइं दिन २ व्यापार थकी उदयवंत हूया । एहवइं विक्र० सं० १२७४ वर्षे वस्तुपालनें ललतादेस्युं पाणी ग्रहण हूओ १ पुनः भ्रातृ तेजपालने अनोपदेस्युं पाणिग्रहण हूओ (६९-२) २। एहवे माता कुअरदेनो स्वर्ग हूओ । दिवस इग्यारनइं आंतरइं पिता सा० आसराजनो स्वर्ग हूओ । एवं वर्ष १८ व्यापार हूया । तिणहिज वर्षि अंबिका—कवड यक्षनी कृपा थकी राजा श्री वीरधवली वस्तुपालनें घणा आग्रहि मंत्रि पद दीधो । तेजपालनें भंडारी पद दीधो । अणहिल पाटण आगार निपजावी तिहां रह्या । ततले तिहां भंडारी पद तथा मंत्री पदनइं तिलक अवसरि मंत्री वस्तुपालें ज्ञाति त्रीस पाटण माहलि पोषतो हूओ । एहवे पाटण नगरश्रेष्ठीनें घरें भवीतव्यना योग थकी अजाणपणे तुहतरो वीसरयो। ते सुठनो पुत्र वर्ष १३ नो ते सामान्यपणा थकी घी तेल हलद्र हींग्वा वेची सिहुं पुहेर घेर आव्यो । एतले मातानें रुदन करती दीठी । ते देषी पुत्र कहे—ए किम ? तिवारे माता कहे—आपणइं घेर तुहूतरु नहीं । अनि ए राजमंत्री भाग्यवंत हूओ पिण ए छिद्र सहित छइ । यतः

वयोवृद्धास्तपोवृद्धा ये च वृद्धा बहुमताः ।
सर्वेपि धनवृद्धानां द्वारे तिष्ठंति किंकराः॥१॥

इम विचारी तीणइं वृद्धाइं बेटा आगलि कहें—आसराज प्राग्वाट सा०, कु (७०—१) यर बाल विधवा श्रीमाली, मंत्री तेहना पुत्र, मोटो छीद्र ए छइं । ए वात पुत्रनें सघली कही । ते सांभली बेटानें हर्ष हुओ । एतलें जिहां समग्र साजनो भोजन करइं छें मुख्य गृहस्थ हर्ष मई बेटा वार्ता करइं छे, तिहां तिणें आवी चोरासी साजनानी आज्ञा करी, बिहाथ जोडी, माताइं कही जे विपरीत वात, तेहनी वीनती सकल साजानानइं कीधी । तिवारइं तेहनो साजनो कहइं—रे मुग्ध ! तुं कुण घर आ पत्तनें मुख्य हुई ? ते ए कीसी वात कही ? लाजतुं नथी । एतलें ते कहे मंत्रीनी उत्पत्ती सघली ते वृद्ध गृहस्थ आगलि प्रकासी । सांभली सकल लज्जावंत हुआ । चिंतइं संदेह पड्यो । सकल साजनइं तेहनी माता वृद्धा पूछी । तिणें कहयुं मुझ वरइं नुहतवं नहीं, अनि तेहने वेरं तुम्हें द्रव्यें गया । पिण तुम्हें सकल साजनो जाइ वडडी गामी जे एहनी उत्पत्तीना कारक श्री भुवनचंद्र गुरु सत्य गोत्रीयाने पूछो । तिणें साजनें वृद्ध गुरु पुछया । तिवारें श्री गुरुइं यथार्थ कह्यो । एतालि ते पाटणि आव्या । मंत्रीनी वात मांहा मांही कहीवइ नगरमां तथा अन्य गामि वि (७०-२) स्तरि । एतलें तिहां थकी वि०सं० १२७५ वर्षे मंत्री वस्तुपाल १तेजपाल २ थकी प्राग्वाट लघुशाषा प्रगट हुई । एतलें स्वज्ञातीयां परज्ञातीया दुर्बल गृहस्थनें भोजन तेडी कवल २ स्वर्ण मुहर देइ स्वज्ञात वधारी नाम राष्युं । सकल ज्ञाती जीम्या । ते लघुशाषा हुइ । एतलि श्री भुवनचंद्र सुरी विहार करता पाटणि आव्या । महामोहोत्सवि शालाइं पधराव्या । चौमासइं रह्या । मं० वस्तुपाल गुरु वचनइं पंचासरपास प्रासादि वर्षि मांहि च्यार प्रौढ साधर्मिक संतोषइं । पुनः कुमारपाल विनिर्मित श्री तीहुणपाल विहारि एकादसि, चतुर्दशिइं, अष्टातरी पुजाइं स्वजाति साधर्मिक पोषइं । नित्यें सतरभेदि स्व नीर्म्मापित श्री वासुपूज्य प्रासाद हुई । एकदा श्री भुवनचंद्र सूरी मं० प्रति उपदेश कहें

जीयं जलबिंदु सम्मं संपत्तिओ तरंगलोलाओ ।
सुमिणं च समं पिम्मं जं जाणिज्ज करीज्ज सु ॥१॥

एहवो उपदेश गुरुमुष थकी सांभली मंत्री वस्तुपालि वि०सं० १२८० वर्षि श्री अ (७१-१)र्बुदोपरि प्रासाद थंभ थाप्यो । पुनः वि०सं० १२८२ वर्षि प्रासादि कलस दंड ध्वज चढाव्यो । श्री नेमिश्वर थाप्यो । तिहां श्री भुवनचंद्र सूरीइं स्व शीष्य उ० श्री जगचंद्रनें तथा पं० देवेंद्रनें सूरी पदइं कीधा । तिणहिज प्रासादि बिहुं भ्रातानी स्त्रीयइं नव नव लक्षइं द्रव्य वावरीनें स्व स्व नामि बिहुं आलीया नीपजावी नाम राख्युं । तिण हिज वर्षि श्री गिरनारी मं० वस्तुपालें उद्धार कीधो । एतलइं श्री आबु, सिद्धाचल, गीरनार, ए तिहु तीर्थे अढार लक्ष मनुष्यइं उ० श्री देवभद्र आ० श्री जगचंद्र आ० श्री देवेंद्र प्रमुख स्वेतांबर इग्यार आचार्य, पुनः दिगंबर भ० एकवीस आचार्य युक्ति यात्रा करी । सकल संघ सहित मं० वस्तुपाल पाटणि आव्या । केटलिक दिनें गुरु श्री भुवनचंद्र सूरि स्वर्ग हुआ । तिवारें मंत्रीइं वणे आग्रही उ० श्री देवभद्र आ० श्री जगचंद्र आ० श्री देवेंद्र नइं वीनती करी पाटणे चौमासु राख्या । उतरीइं चउमासइं मं० नी आज्ञा लही त्रिहु विहार कीधो । भीलडी नगरइं श्री पास दर्शनि आव्या । एहवे तिहां हिंदूआणि (७१-२) देश थकी श्री सोमप्रभ सूरी पिण विहार करता भीलडी नगरें सह हर्षि पास दर्शनि आव्या । तिवारइं उ० श्री देवभद्र, आ० जगचंद्र, आ० देवेंद्र, ए तिहुए श्री सोमप्रभ सूरीनें वांदणइं करी वंद्या । तिवारी श्री सोमप्रभ सूरीइं षरतर, स्तवपक्ष, आगिम, राकापक्ष, विवंदणिक, उपकेश, जीरावल्ली, नांणावाला, निंबजिया, इत्यादि आचार्यनी शाक्षि वि०सं० १२८३ वर्षे श्री सोम प्रभ सूरि १ मणिरत्न सूरिइं जावजीव आंबल तपना धारक १ पुनः समता आदि गुण आगला जाणी स्व गछइ लेई आ० श्री जगचंद्र सूरी नइं पोतानी पाटि थाप्या । श्री बीजापुरें नगरीं उ० श्री देवभद्र, आ०श्री जगचंद्र सूरी, आ० श्री देवेंद्र, ए त्रिहु चौमासि रह्या, अनि श्री सोम प्रभ सूरी१ श्री मणिरत्न सूरी २ वडोली

नगरी चउमासइं रह्या । एतलि पुनः मं० वस्तुपाल बीजी वार संघपति हूओ । श्री सोमप्रभ सूरी, श्री मणिरत्न सूरी, आ० श्री जगचंद्र सूरी, आ० श्री देवेंद्र सूरी उ० श्री देवभद्र सहित श्री सिद्धाचल यात्रा जातां मार्गि श्री वढवाणि नगरें संघ उ (७२-१) तर्यौ । तिहां श्री मालि शा० वृ० सा. रत्नें दक्षिणावर्त्त शंखनें महिमाइं सप्त दिन ताइं नाना विधि सुखाशिकानइं भोजानि तथा सवस्त्र आभूषणि पहिरामणी सकल संघनइं कीधी । तिहां थकी मंत्री मोरबी प्रमुष नगरं स्व ज्ञाति साधर्म्मिक प्रति नगरें नगरें गामिं गामिं पकवान आभूषण वस्त्रइं संतोषतो हूओ । श्री सिद्धाचल, श्री गिरिनारनी यात्रा करी देवकिं पाटणी संघ आव्यौ । तिहां मंत्रीइं नूतन प्रासाद निपजावि श्रीचंद्रप्रभ स्वामिना बिंब थाप्यौं । श्री सोमप्रभ सूरी १ श्री जगचंद्र सूरी २ प्रतिष्ठ्यौं । तिहां मंत्रीइं स्वज्ञात घणुं संतोषी सधर्म्मिकनि संतोष्या । अणहिल पाटणि संघयुक्त श्री सूरी अनि मंत्री आव्या । उ० श्री देवभद्र, श्री जगचंद्र, श्री देवेंद्र, श्री सोमप्रभ सूरीनी आज्ञा लही पाल्हणपुरइं चौमासाइं रह्या । श्री सोमप्रभ सूरी अंकवालीइं चोमासी रह्या । श्री मणिरत्न सूरीइं हिंदुआणि देशि विहार कर्यो । श्री सत्यपुरि चोमासी रह्या । श्रीवंत मंत्रीइं संघ यात्राना मनुष्य मनुष्य प्रति पाटणि सुवर्ण मुहर दीधी । चउमासइं उतरइं पाल्हणपुर (७२-२) थकी उ० श्री देवभद्र आ० श्री जगचंद्र सूरी, श्री देवेंद्र सूरी विहार करता आबु, दाहिआणाक, नंदिय, ब्राह्मण वाटक इत्यादि तीर्थ फरसी अजारी नगरइं श्री वीर प्रासादें श्री सुरीइं अठम तपिं श्री शारदानो स्मरण कीधो । ब्रह्माणी प्रसन्न हूई कहि तुझ किर्ति हूसि । ए सारदा दत्त वर लेई श्री सुरीइं मेवाड देसिं विहार कीधो । एहवि श्री सोमप्रभ सूरी एक शब्दना शत अर्थना कर्त्ता, पुनः श्री सिंदुर प्रकरण ग्रंथना कारक श्री श्रीपालि नगरि स्वर्ग हुओ ।१। अनि लघु गुरु भाइ श्री मणिरत्न सूरी नवतत्व प्रकर्ण कर्ता ते विमासि अंतरि श्री थिराद्र नगरइं स्वर्ग हुया ।२।

हवि मंत्रि वस्तुपालनइं अणहिल पट्टनि १ आसापल्लीइं २ खंभायति ३ प्रमुष नगरि छप्पन्न कोटि द्रव्य भूमध्ये जुइ २ शांति ते उपरि देवसनिधिओ भेरी शब्द हुई...ते समय द्रव्य सुकृति कीधो ते कहछइं—अढार कोटि द्रव्य तीर्थ यात्रामें उजमणि व्यय कीधा । आबु, पाटण, वडनगर, खंभायत, देवकि, पाटाणि, भृगुकच्छ, गुज्जा, थुडिआला, मांडरा, प्रमु (७३-१) ष नगरइं पांच हजार प्रासाद नीपजाव्या । सवा लाष जिन बिंब निपजाव्या । ते मांहि एकतालिस हजार सुवर्ण-पीतल धातुमयि जाणवा । श्री तारणगिरी, श्री भीलडी नगरि, श्री ईडरगढि, श्री विजानगरि, श्री शंखश्वरि, श्री विग्जापुरी चिंतामणि पास प्रासादि, पुरहातिज पद्मप्रभ प्रासादि. इत्यादि त्रेविश शत जिर्णोद्धार निपजाव्या । नव शत अनि चउरासी धर्म्मशाला निपजावी । पांच शत समोसरण निपजाव्या । पुनः देवकि पाटणि ज्ञान कोश ईग्यार लिषावी सोधाव्या । बत्रीस हजार श्वेत चंदननी ठवणी, उगाणीस हजार रहिल नीपजावी । बाहितालीस हजार सांपुडी कवली नीपजावी । पुनः स्मरणी श्वेत चंदन, मोती, प्रवाला, सूत्र, प्रमुषनी नीपजावी. नगरी गामि २ देशदेशांतरे पुण्यार्थे दीधी । पुनः द्रव्य संख्या कहइ छइं—आठकोडी अनि त्राणुं लाख टका यात्रा स्नात्र प्रासाद बिंब थापनइं, श्री पुंडरिक गीरीइं, आत्म हेतुना कारण माटि सुकृतिइं वाव्या १ । पुनः अढार कोटी अनि आसी लक्ष टका श्री रैवताचलि सुकृ(७३-२) तिइं कीधा २ । पुनः बारकोटि अनि त्रहिपन्न लक्ष अधिक श्री अर्बुदाचले सुकृति कीधा ३ । एतले ए ओगणीस सयकोटी, अनि आसी कोटि, अइसी लक्ष, वीस हजार, नवसय अनि ताणुं टका ते नव चउकडीइं उणा एतलो द्रव्य मंत्री श्री वस्तुपालइं त्रिहुं तिर्थे सुकृति कीधो । पुनः कवित:—

पांच अरबनइं खरव कीधां जेंण जीमण बारह ।
सात अरबनें खरब दीध दूबल परिवारह ।
द्रव्य पंच्यासीय कोडी दीध भोजक बड भट्ट ।
सत्ताणु सय कोडी फूल तंबोली हट्ट ।

चंदन चीर कपूर मषि कोडी बहूत्तरी कप्पडे ।
पोरवाड वंश श्रवणे सुण्यो श्रीवस्तुपाल महिमंडळे ।।

इत्यादिं अनेक सुकृतीकारक श्री भुवनचंद्र सूरी उपदेशात् श्री अंबिका कवडयक्ष सानिधकारक, प्रागवाट लघुशाषा विरुदधारक एवं वर्ष १८ सुकृत कीधु । सर्व आयु वर्ष ३६ संपूर्ण तेहनां वि० सं० १२९८ वर्षि अंकेवालीया गामि मं. श्री वस्तुपाल स्वर्ग हूओ १ पुनः वि० सं० १३०२ वर्षि लघुभाई मं. तेजपाल (७४-१) चंद्राणा गामि स्वर्ग हुओ । २ ।

इति मं० वस्तुपाल तेजपाल संबंध ।

४४ तत्पट्टे श्री जगच्चंद्र सूरी ।

श्री गुरु जावजीव आंबील तप अभिग्रहना धारक थका मेवाड भूमंडली विरहता श्री आहाडनगरि आव्या । एहवइं गच्छना साधु समुदाय प्रतइं क्रिया आचारि शिथलपणि जांणी पहिलां दीधां जे श्री आ० सागदाइं वर तेहनी कृपा थकी पुनः श्री देवभद्रनां साहज्य पामी उग्र क्रीयानो आरंभ श्री आहड नगरइं कीधो । तिहां श्री सूरि वर्षा कालि चउमासि रह्या । एहवे जावजीव आंबील तप करतां वर्ष बार हुया । तिवारइं चित्रोड पति राउल श्री जयसिंह राणा मनुष्य मुखि छ विगयना त्याग कारी, सचित्त परिहारी, आंबिल तपनाकारक सांभली चालाइं आवी देही कुशल कहे । ए श्री सुरीनो वडु अनि जिहां लगिणि चिरंजीवी हुइ तिहां लगण आंबिल तप देही कुशल देखी वांदी कहे—गुरांजी तुम्हारो कुण गच्छ अनि कुण तप ? तिवारि उ० श्री देवकुशल कहे...... एहवा वचन उ० श्रीदेवभद्र सांभली श्री जयतसिंह भूप क (७४-२) हूं—ए तप करता कटला वर्ष हुया । तिवारि सूरी श्री देविंद्र कहे—ए सुरीन तप करतां वर्ष बार हुया । तिवारि श्री जयतसिंह मनस्युं चिंतवइं—माहा योगिंद्र महायतीसी तपस्या बार वर्ष कही छै, अधिक नहीं । तेह थकी ए अधिक तप जाणी आश्चर्य पांमी राउल श्री जयतसिंह सकल मनुष्य वृंद समक्षइं कहि—भो भो लोको ! तुम्हे ए सूरीनइं आज थकी तपा कहीज्यो । एतलइं श्री वीर नीर्वाण हुया पछी सत्तर सय अनि पंचावन वर्ष गयइं हूंते, पुनः वि० सं० १२८५ वर्षे वैशाष सित त्रीजनें दीनी राऊल श्री जयतसिंह दत्त तपा गच्छ विरुद श्री जगचंद्र सूरीने हुओ । एतलइं प्रथम पट्टधर श्री सुधर्म्मा स्वामी थकी निर्ग्रंथ गच्छ एहवुं नाम प्रथम कहिवाणुं, ते आठ पाट लगइं ए विरुद कहिवाणो १.

तिवार पछी नवमइं पाटिं श्री सुस्थित स्वामी अनि सुप्रतिबुद्ध स्वामी ए बिहुं गुरु भाइइं काकंदी नगरीइं कोटी वार सूरी मंत्रनो स्मरण कीधा, तेह थकी बीजुं नाम कोटिक एहवुं गच्छ कहिवाणुं. ते गच्छ छ पाट लग-(७५-१) ए विरुद जांणवो २.

तिवार पनरम पाटि श्री वज्रसेन सूरीनो शिष्य श्री चंद्र सूरी हूया तेह थकी चंद्र गच्छ ए त्रीजो ३.

पुनः सोलम पाटि सामंतभद्र सूरी ते निस्पृहपणा थकी वननें विषे रहि । ते सूरी थकी वनवासी गच्छ ए चोथु नाम ४. ते सोल पाट सुधी.

तिवार पछी तेवीसमे पाटें सर्वदेवसूरीनें उद्योतन गुरुइं आबु तलहटी नइं वने वड वृक्ष हेठि आठ शिष्यने सूरी पद कीधा तेहथी वड गच्छ एहवुं पांचमुं नाम ५. ए इग्यार पाट लगइं.

तिवार पछी चउमालिसिमें पाटि श्री जगचंद्र सूरी हुया । तेणइं आयु पर्यंत आंबिल तप करतां वर्ष १२ हुया, तिवारी श्री जगच्चंद्र सूरीनें तपा विरुद हूओ ।तेह थकी हवणां छठो तपा गच्छ नाम कहिवाणो ६. ते पहिला वड गच्छ कहिवातो । एतले कह्या ए पांच आचार्य तेहने एक एक विरुद कहिवाणो अने श्री जगचंद्र सूरी पांच विरुद कहिवाणा ते कहे छे.—कोटिक वंश १ चंद्र कुल २ वज्री शाषा ३ वड गच्छः ४ अनि पांचमो तपा गच्छ विरुद ५; ए पांच विरुद श्री (७५-२) आ० जगच्चंद्र सूरी ने कह्या । ते किम जे श्री जगच्चंद्र सूरी पछी एहवा विरुद धारक कोई आचार्य हूया नही । ते माटे श्री जगचंद्र सूरीनें पांच विरुदनी उपमा कही । श्री जगचंद्र कीया उद्धार कीधो । तिवारे एकासी गोत्र

उ० श्री देवभद्रना शिष्यनें दीधा। ते शिष्य सीता नगरें शालाधारक हुई रह्या। श्री सूरी आहड नगर थकी विहार करता श्री नडलाइ नगरि देव दर्शन करी श्री सीरोही नगरइं चौमासि रह्या। तिहां उ० श्री देवकुशलनो स्वर्ग हुओ। तिहां थकी श्री जगचंद्र सूरी १ श्री देविंद्रसूरी २ ए बिहुं गुरुभाई विहार करता गुजराति धवलकि नगरि चउमासि रह्या। एहवि तिहां माणश गांम वास्तव्य ओ० वृ० आंव गौत्रि सा० विजयचंद्र, राजा श्री वीरधवलनें गामनी उत्पती खपती लषतो कोईक मोटि अपराधि राजाइं कारागारि दीधो। ते किमही काढई नही। तिवारें विजयचंदइं श्री देविंद्र सूरिनें कह्यौ जे मुझनें कारागार थकी कढावओ तो हू तुंम्हारो सिष्य थाउं। तिवारि श्री देविंद्र सूरीइं मंत्री वस्तुपालनें कही सा० विज (७६-१) यचंदनें बंदीषांणांथी कढाव्यो। तिणें श्री जगतचंद्र सूरी हस्ते दिक्षा लीधी। रु० विजयचंद्रनाम दीधुं। पिण लिगारेक अभिमान धरइं। चउमासी संपूर्णि धवलकइं थकी श्री जगतचंद्रइ विहार कीधो। मेवाडि धावल नगरि आव्या। तिहां रु० विजयचंद्रनें उत्तम पात्र जाणी श्री जगत्चंद्रि वि० सं० १२८८ वर्षि आ० पद देइ श्री विजयचंद्र सूरी नाम दीधो। श्री जगत्चंद्र सूरी १ श्री देवेंद्र सूरी २ आ० श्री विजयचंद्रसूरी ३ विहार करता कउआणा नगरें चौमासि रह्या। तिहां थकी मासिल गामि आव्या। तिहां सात दिगंबराचार्यस्युं जैन वाद हुओ। श्री श्रुतदेवीनी कृपा थकी तेहनें जीत्या। एतलें जैन शासन वादि हार्या नहिं, तिवारी हीरानी परें निर्मल अभेद्य देषी लोकें ' हीरला श्री जगचंद्र सूरी ' एहवी कीर्ति कही। तिहां नाणावाल, कोरंटक, पिपलीक, वडगछ, राजगछ, चंद्रगछ इत्यादि केतलाक शाषाधारीइं श्री सूरी हस्तें किया उद्धरी तेहनें स्वगछे लीधा। तिहां श्री सूरीइं वंदणक, विवंदणक, प्रतिक्रमणा (७६-२) दि प्रमुष स्वगछनी सामाचारी थापी। ते पाहिलां छ आवश्यक क्रमाणि किया करता, श्री सूरी आंबिल तपनो आराधन करता, निर्म्मल तपाचार धरता, योग्य जीव प्रति सुउपदेशे करी संसार थकी उधरता, मेवाडदेशि विचरता, अनुक्रमिं वीरशालि गामें आयु पर्यंत आंबिल व्रत कारक, तपागछ सामाचारी धारक, पुनः श्री तपागछ बिरुद धारक, श्री जगत्चंद्र सूरीनो वि० सं० १२९७ वर्षि स्वर्ग हुओ। पुनः की दृश श्री गुरु ?

श्रीगुरु षट् दर्शनकारा मुक्ति दान
दूरी कृत दूषण गुण निधान
युग पद धारक जयतीशः
भवि मानव कुवलय भामिनीशः ॥ १ ॥

४४ तत्पट्टे श्री देवेंद्र सूरी।

लघु गुरु भाई श्रीविजयचंद्र सूरी २। ए बेहुं मेवाड देश थकी विहार करता मालवइं उज्जेणी नगरइं श्री अवंती पासनी यात्रा कीधी। तिहां श्री देविंद्र सूरीइं श्री विजयचंद्र सूरीनो गुजराति विहार करवानी आज्ञा कीधी। तिवारि श्री विजयचंद्र सूरी गुज्जराति गया। श्री खंभायति आवी रह्या। अनी श्री देवेंद्र सूरी मासकल्पि उ(७७-१) ज्जेणी रह्या। तिहां खंडेरवाल ज्ञाति सा. जिनचंद्र तेहना पुत्र वीरधवल १ अनि भिमसिंह २ ए बिहुं संभव प्रति पाणिग्रहणनइं ओलसवि श्री गुरुइं धर्म्मोपदेश देइ वि० सं० १२९८ वर्षि बि भाइने दीक्षा देइ वीपर्षि १ अनि भीमर्षि २ ए नाम दीधा। तिहां थकी हरियाणी नगरी चउमासि रही श्री पावकाचलि संभव देव वंदी श्री देविंद्र सूरी कर्पटवाणिज नगरी आव्या। हवि श्री खंभायत नगर श्री विजयचंद्र सूरी रह्या छे, तिण श्री देवेंद्र सूरीनी आज्ञा विना क्रियाइं शिथिल मान प्रति पं० उ० दिक्षादिक दिई स्व आज्ञाइं यत्नें किया अनि गृहस्थनें आवर्जन निमित्तें प्रतिक्रमणादि क्रिया करता हुवा। पुनः मालवइं थकी आवी मोटी पोशाल ते श्रावकनें उपाश्रयइं एकवासि रह्या। किहांइं विहार न कीधो, नगरमां मास कल्पपि ण न मानन्यो। एहवओ गछना साधु मुष थकी सांभली श्री देविंद्र सूरी कर्पटवाणिज्य नगर थकी खंभायति श्री संघण यात्राइं आव्या। तिवारि श्री विजयचंद्र सूरी नणा तेहनी (७७-२) पक्षना साधु महमांि

थकी । श्री देवेंद्र आवी साधवीनें उपाश्रे नांहनी शालाइं आवी रह्या । तिवारी गृहस्थ माहां माही पूछइं—जे तुम्हे गुरु वांदवानइं कुण शालाइं जास्यो ? ते सांभली अन्य श्राद्ध कहइं बिहुं ए सूरी एक गुरुना शिष्य छइं तेह थकी आप आपणुं चित्त प्रशन्न हुइ तिहां जाइ वंदना करो । एबलइं श्री विजयचंद्र सूरी तो पहेला थकीज वृद्ध शालाइं रह्या, एतलइं विजयचंद्र सूरीना साधु समुदायनइं मनुष्यें वृद्धशालि कह्या, अनि श्री देवेंद्र सूरीना साधु समुदायनइं, नांनी शालाइं रह्या तेह थकी श्रावके लघुशालिक कह्या । एतले श्री विजयचंद्र थकी वि० सं० १३०१ वर्षि श्री वृद्दशाला नामिं गछ जुदो हूओ । हवी लघुशालिक श्री देवेंद्र सूरी पाल्हणपुरें श्री पाल्ह विहारी श्री पासनें नमवा आव्या । तिहां तिणहीज प्रासादी दिन प्रतिदीन अक्षत एक मुडो अनि सो मण सोपारी आवे छे । एतले जैन गृहस्थ घणा छइं । श्री सूरी चउमासि रह्या । तिहां धिप (७८-१) थिनें श्री गुरुइं सूरिपदे, श्री विद्यानद सूरी नाम दीधो । अनी बीजा भीमर्षीनें पाठकपदे श्री धर्मकीर्ति नाम दीधो । श्री गुरुइं श्री विद्यानंद सूरीनें इडरगाढि श्री शांति दर्शननइं विहारनी आज्ञा कही । श्री देवेंद्र सूरी खंभायति आवी चौमासी रह्या । श्री गुरु सदैव उपगारी पणि धर्म्म कथा कहे छे । एकदा गुरु वांणी रंजित थका श्री गुरु प्रति श्री मालि सा० सोनी भीमजी वीनती कहइं--श्री गुरु मुझने कृपा करी कांइक हित शिक्षा कहो । तिवारी गुरु कहइं—सत्य वचन मुख थकी बोली मनुष्य जन्म सफल करओ । ते सांभली भीमजी मनस्युं विचारइं जे सोनारनओ व्यापार तो मिथ्या वचननो ज छइं, पिण मुझस्युं गुरुनु वचन किम लोपाइं; एहवुं मनिं धारी गुरुमुखि सो. भीमजीइं एहवुं नियम लीधुं जे मइं सदाकालि सत्य बोलवुं पिण असत्य नही । ते घणे यत्नें सत्यनीयम जालवीनें राषइं । एकदा सोनी भीमजीनइं महितादि चोरे ग्रह्यो । भीमजीनइं भील पूछइं तुझ घरी केतलो द्रव्य छइं ? ति (७८-२)वारें सोनी भीमजी मनस्युं विचारीनें कहे छइं जे चार हजार टक्कनो घर वापरो छइं । भील तेतलोज द्रव्य मांगइं, तिवारइं सो. भीमजीनइं पुत्रइं खोटा नीकलची द्रव्यें नीपजावी डंड भरवानी चोरनो आप्या । कही, परषी लीओ । भील कहि, इहां कुण पारखुं । एहिज सोनार छइं । कारागार थकी काढी कहइं—आ द्रव्यनी परिक्षा करी । तिवारइं भीमजी चित्त स्यु विचारइं जे—कृत कर्म उदय आव्या छइं, अनि वली उदय आवइं, तओ हुं मिथ्या न कहुं । एहवुं जांणी, कही ए द्राम सकल खोटा छे । ते भीमजीनु वचन चोर सांभली मनस्युं चिंतवइं जे एकतओ आपणा पुत्रमें झुठा कीधा, अनि आपि पण बंदीखाने रह्यो । इणि सोनी भीमजीइं किस्यु कीधुं ? तिवारइं भीमजी कहइं—मिथ्या कह्यानो माहरइं नीयम छे । चोर पिण निमज अन्य मनुष्य मुखि सांभल्युं । सत्यवादी जांणी पल्लीपतिइं पांच वस्त्र पहिरावी गांमनो कामदार थापी घणें आदरें घरें मुक्यो । श्रीगुरुकार्नि हुई । इति सूरी उपदेशात् सत्ये सा० भीमजी संबंध । (१९-१)

श्री देविंद्र सूरीइं श्रीखंभायत नयरि छ कम्मग्रंथ—सूत्र अनि तेहनी टीका, सिद्धपंचासीका–सूत्र अने तेहनी टीका, श्राद्धदिनकृत्य–सूत्र अनि तेहनी टीका, पुनः भाष्य ३ तेहनी टीका; इत्यादि ग्रंथकारक श्री देवेंद्र सूरी सत्यपुर नगरें वि. सं १३३४ वर्षि स्वर्ग हूओ । एहवे देवना योग थकी श्री गुजरातइं बीजापुर नगरइं श्रीविद्यानंद सूरी पिण दिन तेरनइं आंतरइं स्वर्ग हूआ । तिवारि छ मास लगणइं गछ निराधार हूओ । पछी वडगछीक वृद्धशालिक श्री क्षेमकीर्ति सूरी प्रमुष गोत्रीक आचार्य मीली श्री पाल्हणपुर नगरि उ० श्री धर्म्मकीर्तिनइं सूरी पद देइं श्रीधर्मघोष सूरी नामइं पाट थापना कीधी । तिणहीज अवसरि ते प्रासाद मंडपि गोमुख यक्षि कुंकुम वृष्टि कीधी । एहवइं वृद्धशाला बिरुदधारक श्री विजयचंद्र सूरी तत्पट्टे श्री क्षेमकीर्त्ति सूरीइं श्री बृहत्कल्पनी टीका वि० सं० १३३४ वर्षि बहितालीस हज्जार नीपजावी ।

४६ तत्पट्टे श्री धर्म्मघोष सूरी।

विजयवंत विहार करता तारणगिरें (७९-२) श्री अजितनाथ वांदी श्री वीज्जापुरें चौमासिं रह्या। तिहां सकल गृहस्थ सदेव श्रीगुरु मुखि धर्म्म व्याख्या सांभलि। एतलि श्री माली वृद्ध शाखा सा पेथड उपदेश सांभली शुभाशय थकी बूज्यौ। श्री गुरुनइं कहइं-मुझ पूर्व तुछ पुण्यनइं योगे करी महारइं घरे सामानपणाइं अल्प द्रव्य छइं तेह थकी मुझनें पांचमो परिग्रह परिमांण व्रत उचरावओ। आत्मार्थे माहरइं रुक्म पंचशत राषवा ते उपरांत नीयम। तिवारें श्री सूरी कहे-हे गृहस्थ! तुम्हारा पूर्व कृत पुण्ये करी तुम्हारे भाग्यनो उदय हुणहार छइं, तेह थकी तुम्ह निमित्तइं पांच हज्जार रुक्मनो जयणा राखो। अधिक हुइं ते सुकृति करज्यौ। इम कही परिग्रह प्रमांण व्रत श्रीगुरुइं उच्चराव्यो। तिवार पछी सा० पेथड लाटारली गामि वस्त्र, गुड, घी, साकर, खांड, लवण, तेल, हींग, हल्दद प्रमुख व्यापार थकी केतलेक दिने पुन्योदये राजा श्री-सारंगदेवनो कामदार हुओ। माहा रुद्धि पाम्यो। तिवारइं पोताना पुत्र झांझणनें वडाउली गामि पर (८०-१) णाव्यो। सा० झांझण पोताना स्वामी जाणी राजा श्री सारंगदेवनइं जुहार करवा गयो। तिवारें सारंगदेवइं सा० झांझणनी बाल स्त्रीनें ओत्सवइं बइसारी पोताने देशि, नगर, गाम प्रति प्रतिमनुष्यइं सुवर्ण गदीयाणो एक कंचूकीनें ठिकाणें दीधो। तिवारि सा० पेथडनइं घरें थोडइं दिनइं घणा सुवर्ण हुओ। मनस्युं विचारइं जे माहरइं तो श्रीगुरु वचनानुसारी पांच हजार रुकानो खप छइ। पिण द्रव्य अधिक सुकृतइं देवओ। एहवइं श्री पर्व आव्यइं हुंते परिग्रह परमाण व्रतना दायक उपगारि गुरु श्री धर्म्मघोष सूरीनें चैत्य परवाडि श्री चिंतामणी पासना दर्शनना अवसरें ७२ हजार टका संघनें पहिरामणी कीधी। संघ वात्सल कीधो। श्री गुरु उपदेश थकी बावन देव कुलिका युक्त कोडाकोडी नामि प्रासाद प्रमुख ८४ प्रासाद निपजाव्या। शत जीर्णोद्धार निपजाव्या। पुनः च्यार ज्ञान कोश अण हिल्ल पत्तनें लिषाव्या। त्रि शत प्रासादनें शिषरइं स्वर्ण कलस निपजाव्या। श्री गुरुनें वचने श्रीसि(८०-२) द्धाचलि १, तारणगिरे २, श्री वीजानगरे ३, श्री पोसीना गामि ४, इडरगाढि ५, ए पंच तीर्थनो संघपति हुओ। छप्पन्न घडी सुवर्ण व्ययइं श्री सिद्धाचलइं श्री वर्त्तमान चौवीसीइं प्रथम जिनना मुखागलइं सा० पेथडे इंद्रमालक पिंहरी। वर्ष बत्रीस समइं श्री गुरुमुषि ब्रह्म व्रत लीधो। पुनः एकवीस घडी सुवर्णनी खोल, आंगुल त्रणनी प्रमांण जाडी उपजावी ते खोली मूल गंभारानो मंडप कीधो। इणि परि सा० पेथड पूत्र सा० झांझणे अढार भार कांचन वावरी स्वन्यायोपार्ज्जित लक्षमी सफली कीधी।

एकदा एकादशी दिनें वृद्ध सभ (?) श्राद्धी व्याख्यान अवसरइं श्री गुरुनें वांदी कहे-चेलाओ! तुम्हे ते पाट महेलवा किम विसरी गया। तिवारइं गुरु कहि इम हाज वइसओ। तिवारें ते श्राद्धी व्यंतरी कही अमारी नीति-हुइ ते किम मिटइं। एतलि ससश्राद्धी रुप व्यंतरीने चेल पाटला आघा लीधा ते बेठे एतले श्री गुरुइं पाटलइं थंभी। धर्म्म कथा विसर्ज्जन (८१-१) इ ते घरें जायवा उठी, तिवारें पाटला आसनी विलगा आव्या। लोके हास्य हुओ। ते व्यंतरी श्राद्धी घणुं लज्जा पामी। अन्य दर्शनी तथा जैन गृहस्थ एकठा हुआ। ते व्यंतरी रोक पणुं मुखइं उचरइं, आज पछी एहवो साधुनो अविनय नहीं करुं। श्री गुरें दया आणी, पाटलाना बंधन थकी मुंकी। ते गुरु वांदी घरे पुहती, पिण चित्त गुरु उपरि रोष वहइं। एकदा ते श्राद्ध कामण ५ वटका साधुनें वहिराव्या। ते वटक गोचरी आलोतां श्री सूरीइं दीठा। तिवारइं ते व्यंतरी गुरुदृष्टि नाठि, ते वटक श्री सूरीइं साधुनें आहारे निषेध्या। एकांति भूमि मुंकाव्या। बिजे दिनइं प्रभाति जोया ते पाषाणना वटक दीठा। पुनः केतलेक दिनें ते व्यंतरीइं श्री गुरुनो सुस्वर जांणी, स्वरभंग करवानें गुरुनी गलनालकांठे केशनो गुच्छ कीधो। एतले श्रीसूरिइं ते व्यंतरी कर्तव्य जांणी गलनाल-कंठि रजहरण फेरव्यो। श्रीसूरि नइं समाध हुइं। उण

कालि श्री वजीापुर थकी विहार करता गांधिरा नगरइं अव्या। (८१–२) तिहां डाकिणिना उपद्रव थकी सांजनी वेलाइं साधु घंटाकर्णने मंत्री मंत्रीने कपाट देता, अनें जे दीवसइं श्रीसूरी आव्या तेहिज दिनें उतावली रात्रिइं कोइक अजाण साधुइं घंटाकर्णनो मंत्र भण्या विगर शालाना कपाटनी जयणा कीधी । गुरु पिण पोरसी कही पाटि संथार्या छइं, निद्राइं आव्या । एतली व्यंतरी च्यारे मीली आवी गुरु संथार्यानी पाटि च्यारे पाइया उपाडी आकासें लेई चाली । एतलइं श्री गुरु जाग्या, डाकिणी जांणी, चिहुं दिसि रजहरण फेरव्यो । तेतलें डाकिणी आकासें मस्तकिं पाट सहित अधर लटकइं । वाच दीधी तुम्हारइं गछइं उपद्रव नहीं करुं । प्रभात कालि संघाग्रहि मूकी । तिहां थकी सूरि विहार करता मालव देशि मांडवगढि आव्या । तिहां श्री सूरीना उपदेश थकी प्राग्वाट ज्ञाति वृद्ध शाषाइं सं० पृथवीधर बाहितालीस हेम घडी चैत्य प्रासाद एकवीस स्वदेसि अनें धार नगरइं प्रमुषइं निपजाव्या । ते माहि मूल नायक सकल बिंब सप्त धातुना थाप्या । श्री धर्मघोष (८२–१) सूरीइं प्रतिष्ठया । श्री गुरु मंडल नगरें आव्या, तिहां रात्रि अहिडंस हुओ, संघनें व्यग्र चित्त जांणी श्री सूरी संघ प्रति कहइं–प्रभाति नगरनी पोल उघडसि, तिवारइं प्रथम सुका काष्टनी भारी आवस्यइं, ते माहि काष्ट वीणि सकल महा विषापहारण नामि ओषधीनो मूल सर्प्पाकारी हुसइं, तेहनी आदा सूंठसु घसी अहिडंके देज्यो । एतलि मुझनी समाधि थास्यें । श्री संघि तिमज कीधो । श्री गुरु समाधि पणि हूआ । ते दिन थकी श्री सूरीइं जावजीव लगी छ विगयनो नीम लीधो, अनि सदाकाल युगंधरीनो आहार करवो, ए बिहु नीम लीइं, श्री सूरी अवंती पासना दर्शनइं उत्कंठीत थका उज्जणी नगरइं आव्या । तिहां पाखंडीना उपद्रव्य थकी यती कोई चोमासु न रहइं । ते सकल वार्ता श्री गुरुइं संघनी पूछी निर्णय कीधो । एतलें मध्यानें यति गौचरी जाता बाजारी दर्श पाखंडी जड़ीलें यतीनें बोलावी कहें–तुह्म अत्र चौमासइं थिर हुई रहिस्यो । तिवारइं ते यति कहें–रहिवानइं आव्यो छुं, ते रहिस्युं ज । ते सांभली (८२-२) तिणे पाषंडीए यतीनें क्रूर दांत देषाड्या । तिवारइं यतीइं तेहनी कूहणी देषाडी । ते सकल वार्ता साधुइं आवी श्री सूरीनें कही । गुरु कहइं भलु । एतलें संध्यानइं समयइं प्रतिक्रमण कीधा पछी तिणें जटिलें शालाइं कोइक मंत्रनइं योगइं करी मूषक मेल्या । साधुइं गुरुनि कह्यो, एतलि श्री सूरीइं नूतन घटनइं मूषइं कल्पक आछादी गुरु दत्त आम्नाय स्मरण कीधो । तिवारइं ते जट्टील बुंबाट करतो आवी गुरुनइं नमी कहइं–आज पछी तुह्म गछि उपद्रव नही करुं । मइं तुम्हनें जांण्या नहीं । इम कही स्वथानिकेगयो । श्रीगुरु कीर्ति हुइ । तिहां थकी विहार करता नोलाई नगरें चौमासि रह्या । एहवइं संघाचार १, कालसत्तरि २, कायस्थिति ३, प्रमुष ग्रंथकारक विक्र० सं० १३४७ वर्षि श्री धर्मघोष सूरी स्वर्ग हूओ ।

एहवइं गुज्जराति वीसलनगरा वाडव मंत्री माधव माइ केशव थकी राजा श्री कर्ण लडीनइं तूरकाणी राज्य हूओ ।

पुन: वि० सं० १३६३ वर्षि सिद्धपुरनगरि सि- (८३-१) धराय कृत रुद्रालयनो छेद हूओ ॥

४७ तत्पट्ट श्रीसोमप्रभ सूरी ।

तेहनो वि० सं० १३१० वर्षे जन्म । वि० सं० १३२१ वर्षि व्रत । वि० सं० १३३२ वर्षि सूरी पद । श्रीसूरीने इग्यार अंग सूत्रार्थ तदूभय जिह्वाग्रि नित्यें स्वाध्याय करता । भूमंडलि शील, तप, संजम आराधतां मालव देशि विचरइं । एहवि स्वर्गौत्रिया वृद्धशालिक श्रीरत्नाकर सूरी प्रगट हूया, तेहनो संबंध कहइं छइं ।

श्रीरत्नाकर सूरी ।

गूर्ज्जर देशि रायखंडी वडली नगरि वृद्धशालाइं श्री रत्नाकर सूरी सप्त कलसि मुक्ताफलना परिग्रह धारक रहेइं छे । एहवे धवलका नगरनो वासी प्राग्वाट वृद्ध शा० सा० रुनो व्यवसायार्थि तिहां आव्यो । श्री चिंतामणि पासने नमी शालाइं श्री रत्नाकर सूरी वंद्या, सपरिग्रहि दीठा । तथापि श्री सूरीनें महा उत्तम जांणी सा०

रुनओ कहइं—स्वामी तुम्हे मुझनें षट्मासनो नियमनो प्रासाद करो । तिवारी श्री रत्नाकर सुरी कहें—किस्यो नियम ? सा० रुनओ कहइं तुम्ह वांदि अन्न लेवो । जे दिने न वांदु तओ अन्न न लीऊ । तेहनी श्री गुरुइं तिमज नियम दिधो । एतले ते श्रावक छ (८३-२) मासनो अभिग्रही हूओ । निरंतर सूर्योदयें श्री पासनइं नमी पछी रत्नाकर सूरीनें त्रिण्य प्रदिक्षणाइं वांदी मुखाग्रि उभो रहि बिहु हाथ जोडी मुषी महर्षि उपसमनी गाथा कही विरुदावइं छइं । ते गाथा—

गोयम सोहम जंबू पभवो सिज्जंभवा य आयरिया ।
अन्नेवि जुगप्पहाणा ते दीटहं सुगुरु ते दीटा ॥१॥
अज्ज कयत्थो जम्मो अज्ज कयत्थो जीवीयं मुज्झ ।
जेण तुह वदणामयरसेण सिद्धाइं नैणाइं ॥ २ ॥
ववरीया सुरधेणु संजाया मह गिहे कणयवुठ्टि ।
दारिइं अज्ज मयं दिठे तुह सुगुरु मुह कमले ॥३॥
पुनः—पंचिंदिय संवरणो० ॥ ४ ॥
पंचमहव्वयजुत्तो० ॥ ५ ॥

एहवा वृद्ध आचार्यनी उपमा आपी हेटो बेसइं धिर्यपणइं श्री सूरी प्रति ललित वाक्यि करी ए गाथानो अर्थ पूछइं । ते गाथा—

दोसस्स मूलजालं पुव्वीरिषि विवज्जियं जइ वत्थं ।
अयं वहसी अनवं किं च अन्नथं तवं चरसी ॥ १ ॥

इणि परि ते गाथानो अरथ पूछतां संपूर्ण छमास हूआ । श्री सूरी पिण तेहनी निरंतर बुद्धिनें प्राक्रमइ थकी ते गाथानो नवो नवो अर्थ कही समुज्झावइं । अनुक्र (८४-१) मि छमासनें अंतें सा० रुनो गुरुनें वांदी कहइं भवतारक निर्ग्रंथ स्वामी ! मूझ अजाणनइं जेहवो अर्थ हुइं तेहवो ज कहओ । तिवारइं श्री सूरी मनस्युं विचारि जे ए गृहस्थ घणें उद्यमिं मुजनइं हितूपणाइं हुइं छइं । गुरु कहे छइं हे गृहस्थ ! तुम्हे प्रभाति अवस्य आवीवो । किस्या माटि जे हिवणां सत्य अर्थ कह्यानो समय छइं नही । इम कही विसर्जव्यो । तिवारि संध्याइं श्रीगुरु कलसी सात मुक्ताफलनो परिग्रह असार जाणी धरटीइं पीसी छारी दीधो, एतले स्व शिष्य आ० श्री रत्न प्रभ सूरी कहें—श्री गुरु आ किस्यु ? तिवारि गुरु कहिं—मुझ प्रतिबोधक गृहस्थनें ए गाथानो सत्यार्थ कहिवो छइं तेह थकी कहिणी अनि करणीमां फेर हुइं बीजइं दीनें प्रभातें ते सा० रुनओ आवी पहिलानी परि वांदि मुष थकी कहइं तुम्हे कृपानिधि मुझने प्रसन्न हुइं । सत्यार्थ कहो । ते गृहस्थ वचन सांभली श्रीगुरि रजहरण मुषपट्टी प्रमुख साधु धर्म्मना उपगरण संभाली नीरवद्य थकी (८४-२) 'दोष समूल जाला० ॥ १ ॥' ए गाथानो यथार्थ अर्थ कह्यो । एतलि ते श्रावकि सात कलसा मुक्ताफलनो चूर्ण छारी दीधो देषी कहइं आज मइं तुह्म मुखि सत्यार्थ घणे दिहाडइं सांभल्यो तुम्हारी कृपा थकी हुं भव निसार्यो । आज तुह्मारा दर्शन थकी मुझ जन्म कृतार्थ हुओ । तुह्मे श्री वीरना पट्टधर हुई शासन शोभावओ । इम बिरुदावि सा० रुनओ अनुक्रमिं स्व घरें धवलकइं नगर पुंतो । एतलि श्री गुरुइं स्वशिष्य श्री रत्नप्रभ सूरनि गछ भलावी श्री संघनी आज्ञा लही निस्पृह हुइ विहार कीधो । केतलेक दिने श्री सूरी चित्रोड गढी आव्या । तिहां ओ० व्रु० कुर्कट चुपडा गोत्रि सा० समरा प्रति धर्म्मोपदेश कहे छइं । यतः—

सद्द्रव्यं १ सुकुले जन्म २ सिद्धिक्षेत्र ३ समाधयः ।
संघश्चतुर्विधो लोके ५ सकाराः पंच दुर्लभाः ॥१॥
अष्टषष्टीषु तीर्थेषु यत्पुण्यं किल यात्रया ।
आदिनाथस्य देवस्य दर्शनेनापि तद् भवेत् ॥ २ ॥
जिनं कत्वा मुनिं भक्त्या, कृत्वा साधर्मिवात्सलं ।
एन केन प्रकारेण पुरुषः प्रसिद्धो भवेत् ॥ ३ ॥

श्रीगु (८५-१) रुनो उपदेश एहवो सा० समरो पाम्यो श्री सिद्धशैलि श्री सोमप्रभ सूरी युक्त वि लक्ष मनुष्यइं संघपति हुइ वि० सं० १३७१ वर्षे श्री शत्रुंजय गिरें श्री रुषभ बिंब थपि पंदरमो उद्धार निपजाव्यो ।

तिहां संघ साक्षि श्री रुषभना मुष आगलि श्री रत्नाकर सूरीइं स्व चारित्र षडण आलोयाणि रुपि 'श्रेयः श्रियां मंगल०' रुप स्तवने पंचवीसी निपजावी ।

तेह मांहि पोताना आत्मानी शिक्षा रुपइं वैराग्यना काव्य कहे छै–

वैराग्यरंगो परवंचनाय० ॥ १ ॥

परोपवादे मुखं मदोषं० ॥ २ ॥

एहवा ८ काव्य रुप आलोयण लेई लघु कर्म्मि हूइं घणा जीवनें उपगारी थका वि० सं० १३८४ वर्षि सा० समर उपदेशक श्री रत्नाकर सूरीनो स्वर्ग हूओ । यदोक्तं—

महयाडंवर जत्तो सूरी पयवडा पल्लीए जायं ।

रयणायर सूरी ना मेण जाओ मासणंमि सिणगारो ॥ १ ॥

इणि परि श्री रत्नाकार सूरि संबंधः ॥

पुनः वि० सं० १३७५ वर्षि श्री सोमप्रभ सूरी स्वर्ग हूओ ।

४८ तत्पट्टे श्री सोमतिलक सूरी ।

तेहनो वि० सं० १३५५ वर्षि जन्म । (८५-२) वि० सं०१३६९ वर्षि दीक्षा । वि० सं० १३७३ वर्षि सूरी पद । श्री सूरी विहार करता श्रीसिरोही नगरइं चोमासि रह्या । तिहां श्री चंद्रशेखर सूरी १, श्री जयानंद सूरी २, श्री देवसुंदर सूरी ३, ए त्रिहु शिष्यानें श्री सूरीइं सूरी पदि कीधा। एहवइं 'देवा प्रभोयं' स्तवनकारक श्री जयानंद सूरि श्री गुरु चिरजीवी थका स्वर्ग हूया । नव्य क्षेत्रसमास, सत्तरी-सयठाणा, श्री तीर्थराज स्तुती प्रमुष ग्रंथकारक श्री सोम तिलक सूरी वि० सं० १४२४ वर्षि स्वर्ग हूआ ।

४९. तत्पट्टे श्री देवसुंदर सूरी ।

लघु गुरुभाइ श्रीचंद्रशेखर सूरी ।

श्री देवसुंदर सूरीनो वि० सं० १३९६ वर्षि जन्म । वि० सं० १४०४ वर्षि लघु मरुदेसि महेश्वर गामि व्रत । वि० सं० १४२० वर्षि अणहिल्ल पत्तनी सूरी पद । एहवइं वि० सं० १४४८ वर्षि श्री अहीमदावाद नयर पणुं । वि० सं० १४५५ वर्षि ओ० वृ० सा० आंबा भाई सा० गणिआ श्री सिद्धाचालि संघपति हुया । पुनः वि० सं० १४५६ वर्षि सा० आंबाइं व्रत लीधो । श्री देवसुंदर सूरीनो शिष्य हूओ । वि० सं० (८६–१) १४६२ वर्षि पातसाह गज्जनी षांन आव्यइं हूंतइं श्री सिद्धाचलि सा० समरा थापक मूल नायक बिंब श्री चक्रेश्वरीइं असुरनो उपद्रव जांणी अलोप कीधो । पछी सवा त्रोण पहोर पाछो मूक्यों । पुनः रायखंडि वडाली वास्तव्य ओ० वृ० सा० गोविंदइं असुरनो उपद्रव देषी तारणगिरइं श्री कुमार–पाल थापित प्रवालानो श्री अजितनाथनो बिंब भूमी गृह भंडारी प्रासाद मध्ये नवीन बिंब थाप्यो । श्री देवसुंदर सूरीइं प्रतिष्ठयो । तिहां श्री सूरीइं स्व पंच शिष्य तेहनें सूरी पदे कीधा । ते पांचना नांम कहे छइं ।

पहिला श्री ज्ञानसागर सूरी ते आवश्यक अवचुरी १ ओघनिर्युक्तिनी अवचूरी २ प्रमुष ग्रंथकारक ॥ १ ॥

बीजा श्रीकुलमंडन सूरी ते श्री कुमारपाल चरित्रना कारक ॥ २ ॥

त्रीजा श्री गुणरत्न सूरी जेहनी अवष्टंभ १ रोष २ अनि विकथा ३ ए त्रिहुनी ते नाम छइं । क्रियारत्नसमुच्चय १ षट्दर्शनसमुच्चय २ प्रमुष ग्रंथ कारक ॥ ३ ॥

चोथा श्री साधुरत्न सूरी ते यति जीतकल्प (८६-२) नी टीकाना कारक ४. ए च्यार शिष्य श्री गुरु चिरंजीव थकइं अल्प आयुइं स्वर्ग हूआ । अनि पांचमा शिष्य श्रीसोमसुंदर सूरी विद्यमान विहरंत जाणी श्रीसूरीइं श्रीसोमसुंदर सूरीनें कच्छ देशि विहारनी आज्ञा दीधी । एतलइं श्रीसोमसुंदर सूरी केतलेक दिनें देवकइं पत्तने गया । नवखंडइं, श्रीसिद्धक्षेत्र, श्रीरैवताचल फरसी देवके पत्तने गया । गुरु देवसुंदर गोपगिरइं श्रीवीरदर्शन करी केतलेक दिनें दोली नगरइं पुहता । तिहां श्रीमाली वृ० सा० जगसिंह १ भाइ सा०महणसिंहि २ श्री तपागछइं समस्त संघनें संघवाछल्ल नीपजावी श्रीजिनदर्शननइं समयइं चुरासि हजार टका सुकृति करी सद्वस्त्र आभूषणि तिलक ए रीति हूओ । एहवइं ओडछा नगरइं वि० सं० १४६२ वर्षि श्रीदेवसुंदर सुरी स्वर्ग हूओ ।

५० श्री तत्पट्टे सोमसुंदर सूरी ।

तेहनो वि० सं० १४३० वर्षे जन्म । विक्र० सं० १४३७ वर्षि व्रत । वि० सं० १४५० वर्षि वाचकपद ।

वि० सं० १४ (८७-१) ५७ वर्षि सूरीपद हूओ। श्रीगुरु भुजपत्तनइं, अंजारइं, मांडवी, प्रमुख नगर विचरता चउवारी नगरीइं महाक्रियावंत महिमामंदिर गुरु प्रतिदेषी तिहां कोइक रुठइं द्रव्यलींगीइं द्रव्यदेइं शस्त्र-धारक पुरुषनइं गुरुघातार्थि सज्ज कीधो। ते दुर्बुद्धि वसतींइं गुरु घातार्थि गुप्तपणइं रह्यो। जेतलइं अनुचित काम करवा उद्यम करइं एतलइं चंद्रमाने अजूआलइं श्रीगुरु रजहरणि निद्रा मांहि पुंजी पासु पालटयूं। वधकारक पुरुषइं चिंतव्यूं जे निद्रामांहि पिण जेहनइं जीव उपरइं एहवी कृपा छइं, एहवा महापुरुषनो वध करी मुझनीं कुण गति जावुं। एहवो विचारी परलोक थकी बीहतो श्रीसूरीनइं नमी स्ववर पोहतो। तिहां थकी गुरु विहार करता केतलेक दीनें मालव देशि आमझेर नगरइं आव्या। एहवइं सो० संग्राम प्रगट थया, तेहनो संबंध कहे छे।

सो० संग्रामसिंह—

गुजरात देशि वढीयार खेडे लोलाडा ग्रामि प्राग्वाट वृ० पूस गोत्री सोनी अवटंकइं संग्राम नाम रहि छइं। ते कोइ समयानुयोगि मालव (८७-२) देशि मांडव गढि चिकथा श्रीग्यासदीननें राज्यें, माता नाम देवां, स्त्री नाम तेजां, पुत्री नाम हांसां, ए परिवार सहित जेतलइं मांडवगढि नगरनी पोलि पइसइं तेहवइं डावी दिशि महामणीधरें फ्रूण कीधो छइं अनि तेह फणि उपरि दुर्गा पईठि सहर्षित शब्द करइं छइं। ते अचरिज देषी सपरिवारि संग्राम उभो रह्यो। एहवइं तिहां एक आहेडी उभो छइं। ते संग्रामनं देशांतरी जाणी कहइं ए शकुनी जे नगरमां पइसइं तेहने ते महाऋद्धिना देणहार छै। तेह चिकथा श्री ग्यासदीन हज्मुर रहइं। ते शब्द अनि शकुन सांभली चित्त धरी सहर्ष ओल्हाड सो० संग्रामइं नगरपोलि प्रवेश कीधो। राजदरबार पासइं आवी रह्यो। अल्प द्रव्य थकी थोडु २ तेल, नाना प्रकारनो घी, गुड, हिंग, मिरची, साकर, श्वेत, रक्त वस्त्र, पुनः सौगंधिक प्रमुषनो व्यापार करइं। पून्य प्रमाणि सुषि तिहां काल नीगमी। एकदा उष्ण कालि चि० श्रीग्यासदीनें असवारी कीधी। एतलइं घणा तापयोगि चिकथा स्ववरवारनी (८८-१) वृक्षवाटीकाइं, सुंदराकार शाषाइं, प्रतिशाषाइं, हरिकुंपल पत्रइं, मनोहर सुघटाइं, शीतल सुछाया देषी उभा रही वीसामओ लेइ स्वस्त हूई। ते सहकारनें देखी आरामिकनइं चिकथा कहइं 'सब आंबकु फल हइं पिण इस आंबकू फल क्युं नहीं' तिवारें आरामिक कहइं 'पा० सिलामित इसू आंबके दर्सनमें सब गुण अछें, पिण एक अपत्र बुरी हइं, जे फल नहीं। वांजीए आंब हइं।' एहवो वचन पुष्पपालकनो सांभली श्रीग्यासदीन कहइं 'इस् वांझीए आंवकी सूरतदेषी कुण कामका। इसै वार्डीस काट डालो।' एहवइं पुन्योदय थकी सो० संग्राम पिण ते वाटिकानइं जुई छइं। तिणि चिकथा कहिण सांभली मनस्युं विचारि जे ए उत्तम नवपल्लव वृक्ष ते तूरत काढसिइं, एहनइं हु अभयदान देउ। धर्म्म प्रभावि महा मंगलिक हुसइं। तिणाहिज वेलाइं दृढ चित्तइं संग्रामि सकल जन देषतां चिकथा श्रीग्यासदीननें सिलाम करी अरजी करइं छइं—'जे ए आंब जन्मवंध्य हइं पिण मुजे एक मुह (८८-२) मांग्या दीओ। महा पसाय करो। आवतइं जेष्ठ मासें ईस् आंवके फल श्रीपातसाहकु भेट करुं।' ते अचिरज वात सांभली चिकथा संग्राम नइं कहइं—'आवतई जेष्ठी इणि दिनें ईस आंबके फल न लाया तओ इस् आंवका जैस हवाल तैसे तेरा हवाल।' ते वात संग्रामि अंगिकार कीधी। चिकथो १, अनि संग्राम २ स्वघरि आव्या। पूर्वोदयना योग थकी सो० संग्रामनो अत्र थकी भाग्योदय हुओ। ते वात सघली मातानइं स्त्रीनइं कही। हवइं संग्रामइं ते सहकारनइं पछवाडइं किनायत तथा चंदूआ बंधावी स्नात्रादिकइं सुचि हुइ पवित्र वस्त्र धरी निर्मल चित्ते धूप, दीप, चंदन, अक्षत, पुष्प ते आवानइं अर्चइं एतले शील गुणइं साहसीक जांणीनइं; पूर्वभवी वणिक सा० आंबो नामि द्रव्य धारक इणि स्थानिकें रहितो, 'ते वांझियो मरण पांमी इणहीज स्वद्रव्य स्थानिके बीजें भवइं आंबो वृक्ष हुओ। ते आंबानो जीव आवी संग्रामनइं कहइं ते मुझनि अभयदान दीधो छई तेह थकी हुं तुंज प्रति तूठो। ए

(८९–१) आंबाना मूल हेठि द्रव्य छइं ते तूं भूमि षणिं काढि लेजे । ए तूझ भाग्यनो छइं ।' ते वचनें संग्रामि तिमज लघु लाववी कलाना योग थकी माता स्त्री पूत्री प्रमुषी ते द्रव्य स्वगृहे थाप्यो । आंबानी मूलि पाणी लूण माटीइं करी सिंच्यो । अनुक्रमि उष्णकालि ते सहकारी सुगंध मुहर आवी तिमज फल हूया । ते फल यत्ने जालवी सध्वाश्चि आछादि गीत वाजीत्रइं चि० श्री ग्यासदीनने चरणे भेटी कीधा । संग्राम हाथ जोडी कहइं 'पा० सिलामति ! ए फल सुगंधओ वांजीए आंबके' । ते सांभली ग्यासदीन त्रूठो, पांच वस्त्र दइं वरि कांमदार कीधो । ते संपदावंत हूओ । एहवइं तिहां विहरता श्री सोमसुंदर सूरी आव्या । सो० संग्राम संघ समस्तना आग्रहइं तिहां मांडवगढि श्री सूरी चउमासइं रह्या । सदैव सुर्योदयी श्री भगवती अंगनी व्याख्या कहइं । सो० संग्राम १ माता २ स्त्री ३ सहित निश्चल निर्म्मलइं चित्ते सद्दहणाइं सांभली । जिहां छत्रीस हज्जार वार 'गोयमा ! गोयमा !' एहवू नाम आवइं (८९–२) तिहां सो० संग्राम नांमि नांमि एक एक सोनइआ मुकइं । एतलइं श्री भगवती सूत्र अंग संपूर्णि छत्रीस हज्जार सोनइआ सो० संग्रामदत्त नेश्राइं हूया । तेह थकी अर्ध सोनइओ मातानी नेश्रानो । तेह थकी अर्ध सोनइओ भार्यानी नेश्राइं हूओ । एवं संख्याइं त्रहिसठि हज्जार सोनइया हुया । सो० संग्राम श्रीगुरुनइं कहइं आ ज्ञान द्रव्य लीओ । गुरु कहइं साधु हुइं ते ए द्रव्य पाप दोषनुं मूल जांणी एह थकी वेगला रहि, जेह थकी पंचमहाव्रत जाइं । तिण थकी ए ज्ञान द्रव्यइं ज्ञाननो यत्न करो ।

लिखापयंति जिनशासनपुस्तिकानि
व्याख्यानयंति च पठति च पाठयंति ।
श्रृण्वंति रक्षणविधौ च समाद्रियंते
ते मर्त्यदेवशिवशर्म नरा लभंते ॥ १ ॥

भक्ष्याभक्षं तथापेयं पेयं वा कृत्याकृत्ययोः ।
गम्यागम्यं तथा ज्ञेयं हेयोपादेयकादिकं ॥ २ ॥

जेह थकी श्री वीरवांणी आलखी प्राणी प्रत्यक्ष सुखनं वरइं । एहवुं वचन श्री गुरुनुं सांभली सोनी संग्रामे पाहिलांना त्रहिसठि हज्जार सोनइया, पुनः अन्य द्रव्य स्ववर थकी लीधो तेहनी संख्या एक लाष अनि पिस्तालिस हजार सोन (९०–१) इया एकठा मेली वि. स. १४७१ वर्षि श्री कल्पाध्ययन सूत्र १ अनि आ० श्री कालक सूरी कथा २ एवं सचित्रोत स्वर्णाक्षर तथा रुपाक्षरि लिखावी सकल साधु प्रति ज्ञानपुण्यार्थे ते प्रति वांचवा भणवा दीधी । केतलिक प्रति ज्ञांन कोशि ज्ञानलाभार्थि थापि । पुनः गुरु वाक्ये मालव मंडले श्री मांडवगढि श्री सुपासनओ प्रासाद, मुगसिपुरइं श्री मुगसिपासनो बिंब प्रासाद वि. सं. १४७२ वर्षि थाप्यो । मेइ, मंदसोर, ब्रह्मंडल, सामलीया, धार, नगर, खेडी, चंडाउलइं प्रमुष नगरइं सो. संग्रामि सत्तर प्रासाद निपजाव्या । इणिहित सूरीइं प्रतिष्ठया । एकावन जीर्णोद्धार निपजाव्या । इत्यादिक सुकृत श्री गुरु वचनि सो. संग्रामइं कीधो इति ॥

श्री सूरी चरित्र, तप, शीलनइं आराधता, द्रव्य १ क्षेत्र २, काल ३, भाव ४, अनुमाने विहार करता, पुनः गुर्ज्जरि वटपद्र नगरइं, संखेहडा नगरइं, डभोइ नगरें जंबूसर न०, आमोद्र न०, खंभायत न०, अहिमदाबाद न०, आमापल्लीइं, कोटर्व (?) पुरइं, फूरमान वाटिकाइं, शिक (९०–२) दर पूरी, विसलनगरि, श्री वृद्धनगरइं आव्या । तिहां प्राग्वाट वृ० सं० देवराजें श्री अभिनंदन स्वामिनओ बिंब सप्त धातुमयि निपजाव्यो । ते श्री सूरीइं प्रतिष्ठ्यो । तिणहिज अवसरि सं० देवराजिनइं हर्षि स्वच्यार शिष्यनइं सूरी पद कीधा । तेहना नांम प्रथम मोहननंदन नांम श्री मुनीसुंदर सूरी नांम दीधो १ । बीजा शिष्य जयउदय नांम श्री जिनकिर्त्ति सूरि दीधो । २ । त्रीजा शिष्य श्री भुवनधर्म्मनो नांम श्री भुवनसुंदर सूरी दीधो । ३ । चोथा जयवंत हर्ष तेहनो नांम श्री जिणसुंदर सूरी दीधो । ४ । वि० सं० १४७८ वर्ष छत्रीस हजार टका व्ययइं सूरी पदो त्सव कीधा । ए च्यार शिष्य युक्त श्री सूरि नगरी गामइं स्नात्रोपदेशना दायक तिहां थकी तारणगिरि श्री अजित दर्शन करी हणाद्र, पोसीणा नगरइं आव्या । श्री गुरुना उपदेशें

प्रा० वृ० सा धुलइं श्री रुषभ १ श्री शान्ति २ श्री नेमि ३ श्री पास ४ श्री वीर ५ एवं पंचतीर्थोना प्रासाद पांच जुदा जुदा निपजाव्या । तिहां थकी श्री अर्बुदाचलनी यात्रा करी श्री भार्या नगरइं आव्या । तिहां समस्त संघइं श्री गुरुनें (९१-१) उपदेशी भार्या नगरइं प्रासाद कीधो । एवं भद्रां प्रमुष नगरइं अर्बुदासनि श्री सूरीना उपदेश थकी सम प्रासाद नीपजाव्या । एकवीस जीर्णोद्धार हूया । श्री सूरी नीतोहडा नगर आव्या । तिहां संप्रति नृपकारक प्रासादि वि० सं० १४८१ वर्षि देवका पत्तन थकी तेडावीनें वावायक्षनी मूर्ति नीतोडे प्रासादमां थापि । तिहां थकी श्री सूरी जीवित स्वामी नंदीपुरें, पुनः वीरदाटके श्री बंभणवाडिनी यात्रा करी सरस्वतीनें नमी अनुक्रमि मेवाडदेशी गोडवाड खंड नाडलाइ नगरि श्री नेमि प्रमुष सकल प्रासादना देव नमी तिहां वर्षा कालि रह्या । केतलेक वर्षे श्री सूरि राणपुर नगरइं चौमासि रह्या । पातसाह श्री पीरोजना हूकमथी प्रा० वृ० सं० धरणि श्री गुरुनो उपदेश लही वि० सं० १४६९ वर्षे श्री राणपुरें प्रासादारंभ कीधो । पुनः वी० सं० १४९८ वर्षि चतुर्मुष प्रासाद संपूर्ण हुओ । तिहां श्री सूरीइं कृष्ण सरस्वती बिरुद धारक श्री मुनिसुंदर सुरी १ महाविद्याविडंबनटीकाना कारक श्री (९१-२) जिनकीर्ति सूरी २ कंठगत एकादशांग सूत्रार्थ धारक श्री भुवनसुंदर सूरी ३ दीपालीकादि माहात्म्य कारक श्री जिनसुंदर सूरी ४ ए च्यार शिष्य युक्ति शुभसकल, वसादि नव पाठक युक्त; पंडित, गणि, रुषी युक्त इत्यादि पांच शत साधुनइं परिवारि करी सहीत वि०सं०१४९९ वर्षे सा० धरण निर्म्मापित त्रैलक्य दिपिका नामि चतुर्मुष प्रासादें श्री रुषभादि अनेक बिंबनी प्रतिष्ठा कीधी । प्रथम सं० १४९५ वर्षि सा० धरणो श्री सिद्धाचलि संघवि हूओ । श्री वर्षे १८ मइं सा० धरणो वर्ष २१ मइं श्री सिद्धाचली मुख्य तीर्थकरनें आगली श्री पातसाह मंत्री ते सं० संघाने इंद्र मालनइं अवसरइं मजोड चोथु व्रत उच्चरी, गुरु मुखी तिहां पोते सं० धरणि इंद्रमाल पिहिरि । पुनः सं० धरणो मुख्य जिनना गुण गाते बिहु हाथ जोडी शुभ निर्म्मलाशयथी विनती करी किसु मांगइ छइं ? गाथा—

सुलहो विमाणवासे
एगच्छत्ता वि मेइणिय सुलहा ।
दुलहा पुण जीवाणं
जिणंदवरसासणे बोही ॥ १ ॥ (९२-१)

इणि परि सुशील व्रत आराधतो, निरंतर श्री जिन भक्ति साचवतो अन्य घणा साधर्म्मिक पोषतो संसारनि विषइं रहि छइं ।

श्री गुरुइं स्व शिष्य श्री भुवनसुंदर सूरीनइं श्री शीरोही नगरइं चौमासानी आज्ञा दीधी । पुनः श्री जिनसुंदर सूरीनें श्री श्रीमाल नगरी चोमासानी आज्ञा कही । तेणे तिहां गुरु आज्ञा लही विहार कीधो । श्री गुरु राणकपुर थकी बिहुं शिष्य युक्ति नाडओलनगरी चोमासी आव्या । वर्षाकाल संपूर्ण स्वपट्टधर श्री मुनिसुंदर सूरीनइं गछ भलावी श्री गुरु आम नृपति निर्मापित श्रीवीर दर्शनइं उत्कंठित गोपनगरें चउमासी रह्या । एहवइं भाष्य त्रिणनी चूर्णि १, कल्याणकस्तव २, रत्नकोश ३, पुनः योग शास्त्रनो ४, उपदेश मालानो ५, षडावश्यकनो ६, नव तत्वनो ७, आराधना पताकानो ८, इत्यादि ग्रंथनो बालावबोधना कारक श्री सोमसुंदर सूरी वि०सं० १५०१ वर्षे स्वर्ग हुया ।

५१ तत्पट्टे श्री मुनिसुंदर सूरी ।

तेहनो वि. सं. १४३६ वर्षि जन्म । (९२-२) सं. १४४३ वर्षे व्रत । सं. १४६६ पाठक पद । सं. १४७८ वर्षि सूरी पद । वाटलीना नादना एकशत अनि आठ शब्द तेहना ओलखणहार, श्री कृष्णसरस्वती बिरुदधारक, श्री उपदेश रत्नाकर ग्रंथकारक, श्री शांतिकर स्तवन निर्मापितेन तन्मंत्रांतजलेन योगिनिकृत मारि उपद्रवनिवारक, सुलभबोधी प्राणिनें उपदेश दायक, श्री मुनि सुंदर सूरि सं. १५०३ वर्षि श्री कोरंटानगरें स्वर्ग लह्यो ॥

५२ तत्पट्टे श्री रत्नशेखर सूरी । श्री जयचंद्र सूरी ।

श्री रत्नशेखर सूरीनो सं. १४५७ वर्षि जन्म । सं.

१४६३ वर्षे व्रत । सं. १४८३ वर्षे पं. पद । सं. १४९१ वर्षे वाचक पद । सं. १५०२ वर्षे सूरी पद। श्री सूरीइं अजमेर नगर पार्श्वे वीठारपुरें श्री नेमि बिंब प्रतिष्ठ्यों । श्राद्धविधि सूत्र-वृत्ति १ श्राद्धप्रतिक्रमण सूत्र-वृत्ति २, आचारप्रदीप ३, प्रमुख ग्रंथकारक। श्री सूरिनइं वांण देव्यः दत्त वर थकी हस्त सिद्धि जांणवी । सं. १५११ वर्षे स्वर्ग हुओ ॥ १ ॥ लघु गुरुभाई श्री जयचंद्र सूरी (९३-१) प्रतिक्रमण गर्भहेतु १, वीसस्थानिकनो विचारामृत संग्रह २, इत्यादि ग्रन्थकारक कुमुदीइं गांमि स्वर्ग हुया ॥ २ ॥

५३ तत्पट्टे श्री लक्ष्मीसागर सूरी ।

२ श्री सोमदेव सूरी ।

३ श्री सोमजय सूरी ।

श्री लक्ष्मीसागर सूरी तेहनो वि. सं. १४६४ वर्षे जन्म हुओ । सं. १४७० वर्षे व्रत । सं. १४७९ वर्षे पं. पद । वि. सं. १५०१ वर्षि पाठक पद । सं. १५०८ वर्षे आ. पद । सं. १५१५ वर्षे गच्छनायक पद । श्री सूरीना उपदेश थकी वागडदेशि गिरिपुर नगरे सो. साल्हे श्री गंभीरापासनो प्रासाद निपजाव्यों । पुनः मालव देशि धारनगरे श्री गुरुना उपदेशी प्रा. वृ. सं. हर्षसिंहइं सम थई सुवर्ण सुकृति प्रासाद इग्यार निपजाव्या । एहवे गुज्जराति अणहिल्ल पत्तनइं जिन बिंबोत्थापक सा. लुंको प्रगट हुओ ।

सा० लुकानी उतपत्ती कहि छइं ।

यथा गुर्जर अणहिल्लाख्य पत्तने नतन पाटकि प्रा० वृ० धंवचा गोत्रे सा. लुंको एक सामान्य पणि रहि छइं। ते पुनिमगच्छ गुरु संयोगइं जैन लिपि शिख्यो (९३-२) तिणे वि. सं. १५२८ वर्षे ज्ञानकोशि जैन सिद्धान्त वार ७ लिख्या । ते सकल ज्ञानद्रव्य लेतां थकां साडासत्तर दोकडा रह्या लिखवाना । सा० लुकां गृहस्थने कहे साडासत्तर दोकडा...ज्ञान पिण घणो लिख्ये छै । ज्ञानद्रव्य मांहि थकी काढी आप्यो। तिवारे गृहस्थ कहे—सा० लुका! तुम्हे जैन सुधर्मि छो, एतलो तुम्हने ज्ञान लाभ हुओ । शालाइं जाइं साधुनइं कहै तुम्हे श्रावकनइं कहो—तुम्हारइं उपदेशि ज्ञानकोश ए लिखावइं छइं । साधु कहे अम्ह पासि द्रव्य नहि अनि पुस्तक पिण ज्ञान कोश थकी गृहस्थ पासइं मांगी वांची पाछा ते गृहस्थनइं दीजइं छइं । ज्ञान द्रव्य पिण गृहस्थ जाणइं । सांभली सा० लुंका क्रोधी घरे आव्यो । एहवइं संध्यानें अवसरे उत्सवइं जिन भक्ति जिन मंदिरि वाजारि थया । तिहां वांमभागे कपालि देव मंदिरनो थंभ भागो । प्रभाति कुणगिरि वाजारि काइक हाटि बेठो । एतलि तिहां गुजराति सेयद लेखक मित्र मिल्यो। ते पिण म्लेच्छनी पारसीना हिरफइं बराबर लिखइं । ते पिण कह्यु सा० लुंका (९४-१) लेखक ! ए तुम्हारइं कपालि क्या लगा हइं । लुंको कहि—देवमंदिरका थंभा लगा । ते सांभली म्लेच्छ कहइ—तुम्हारे जे फकीर दुनीया छोडिके हुये सो साहिबकी बंदगी करइ के, साहिब के हजूर मुक्तिमइं बेठा, हे अल्ला अनंत ने जय अखंड हइ, असत्या नापाकीसे दूर हइ । ते म्लेच्छ वचन सांभली सा लुकाने चित्तइं म्लेच्छ बुद्धि प्रगट हुइं । सा० लुकानइं म्लेच्छ धर्म प्यारा जांणी तिणे सयदइं पीर हाजीनो आम्नाय दीधो । अनि साडासत्तर दोकडा पिण गृहस्थें न दीधा । तेहना क्रोध थकी म्लेच्छनी बुद्धि चित्त धरी । सा० लुंको गृहस्थनइं कहइ—ए गुरु सावद्य उपदेश कहइं छइं । जेह वचन थकी हिंसानो पोष हुइं । निरवद्य वचननो उपदेश कही नहि छइं । अनि साधु प्रति इम कहइं—साधुनी जम में पिण आगमना पुस्तक वार सात लिख्या छइं तिहां श्रावकनी कीयाइं जिन—पडिमा नो पाठ किहाइं मइं न दीठो । अनि छइं पिण नही ते मारि पंचेंद्री जीव ते एकेंद्री जीवनइं नमइं अनि ए एकेंद्रीयना बल थकी (९४-२) छ कायना जीवनी विराधना हुइं । तेह थकी जिन बिंब आराधक नही । ए प्रासाद बिंब सर्व मिथ्या छइं । ते सांभली साधु कहइं—सा० लुंका ! तुम्हे प्रत्यक्ष पाणि किम अनंत संसारी थाओ छओ । श्री सिद्धांत द्रव्य थकी लिखावी साधु पोतानइं भणवा सिद्धांतनी यत्न करइं । तिवारि ते द्रव्य नेश्राइं कहिवांणो । तेह थकी

ठवण नीक्षेप७९ छइं अनी नंदी प्रमुष सिद्धान्ते पूर्वि चोरासी आगिम कह्या छइं ते वीर नीर्वाण हुया पछी त्रिणवार बार दु:काल पडयो तिहां ८४ आगिमनो विछेद थयो । तिवारे सकल सुविहित गितार्थे मिली साधु मुष थकी जिम सांभल्युं तिम उद्धर्युं छइं। पछी तो ते केवलीनइं गम्य, मनुष्य कुण मात्र । हा पिण नहि ना पिण नही । इम घणइं नयइं उपनयइं श्री गीतार्थि समझाव्यौ पिण ते लुको कदाग्रह न मुकइं। जिन बिंबनी निंदा करतो जांणी ज्ञाती पंक्ति बाह्य कीधो । तेह थकी घणे कोधी संसार पणुं तजी वि० सं० १५३० वर्षे समणोपासक वेष आदरी अणहील वाडा पाटण थकी (९५-१) सिद्धपुर नगरे आव्यो । तिहां प्राग्वाटि तपा लुकाइं ज्ञाति भेद हुओ । तिहां थकी केतलेक दीनें श्री सीरोही देशि अरटवाडि गामइं आव्यों तिहां उपकेश वृद्ध शाषाइं सा० भाणो रहि छइं तिणि समणोपासक सा० लुकानो उपदेश सांभली स्वहस्ति सा० भाणें दिक्षा लीधी । वि० सं० १५३२ वर्षि प्रथम वेषधर रु० भाणो हुओ । पुन: वि० सं० १५४० वर्षि श्री सीरोही नगर वास्तव्य ओ० स० वृ० साथरीया गौत्रइं सा० भीदें रु० भाणा हस्ति दीक्षा लीधी । एतले वि० सं० १५३५ वर्षे श्री सत्यपुरे सा० लुकानो आयु पूर्ण हुओ । तिहां थकी रु० भाणो शिष्य रु० भीदा गुजराति अहिमदावाद नगर माहि शाहापुरी उष्ण कालि आवी रह्या । तिहां रु० भीदानो उपदेश सांभली श्रीमाली लघु शाषाइं सा० नानचंदि रु० भीदा हस्ते दिक्षा लीधी । नानां रुषि नांम दीधुं । तेहनो शिष्य रुप रुषि हुओ । इत्यादि कुमती छे तेहनो संग तजवो । सुमति भजवो । उत्तम जीवे स्व आत्म हित कारणि चिनई (९५-२) शुद्ध सद्दहणा धरी श्री जिन भक्ति तेहिज मुक्ति पंथ गमन रुप जांणी आदरवी । यथोक्त:—

वर गंध १ धूप २ चोखएहि ३ कुसुमेहि ४ पवरदीवेहि ५ नेवेद्य ६ फल ७ जलेहि ८ जिण पूआ अठहा होई ॥ १ ॥

इत्यादि अष्ट विधिना जिनराज पूजा
ख्याता कृता सुरनरगणैः सदैव
खंडी कृता सुमतिभिः कलिकाल योगात् ॥

इति श्री जिन बिंब उथापक सा० लुका उत्पत्ति समाप्त।

एहवि मांडवी बिंदरे तपा श्री सोमदेव सूरी १, खरतर श्री जिनहंस सूरी २, अंचलीक श्री जयकेसर सूरी ३, ए त्रिहुं गछना आचार्य तिहां आव्या । तिवारइं सोरठ देशि लुकाना मतनो विस्तार जांणी ए त्रिहुं गीतार्थे मिलि वि० सं० १५३९ वर्षि आपआपणा गछ थकी आज्ञा धर्म्म थाप्यो । एतलइं इहां थकी आदेश निर्देशनी मर्यादा थपाणी । पुन: पात्रमांहि सफेदानी ओली एक दोधानी आलोयण अठमनी साधुनइं कहावी । ते पाहिला स्व स्व संघाटक समुदाय मध्ये जे गीतार्थ दीक्षाइं वृद्ध हुइं तेहनइं (९६-१) मोटा मोटा क्षेत्रनी श्री पूज्य चीर्ठीका देता । इम सकल संघाडे ए नीती । पछइं ते वृद्ध गीतार्थ साधु प्रमाणे क्षेत्रि आज्ञा लही साधु वे तथा च्यार विहार करता । एहवे वि० सं० १५४७ वर्षि गुर्जर देशि धानधार खंडइं श्री यक्षनी उत्पत्ति हुइ । श्री सुरीइं भुतगामे बलदुटइं पांच प्रासाद प्रतिष्ठया । वि० सं० १५३७ वर्षि हाडोती देशि सुमाहली गांम श्री सुरीनो स्वर्ग हुओ । २ आचार्य श्री सोमदेव सुरीनो वागड देशि वडियार नगरे स्वर्ग हुओ ।

५४ तत्पट्टे श्रीसुमतीसाधु सूरी ।

तेहनो जन्म अर्बुदासने वेलांगरी नगर प्रा० वृ० नारण गोत्रि सा० टिट्ठु, स्त्री रुडी कुक्षे वि०सं० १४९४ वर्षे जन्म । वि० सं० १५११ वर्षे दीक्षा । वि० सं० १५१८ वर्षे गछनायक पद । श्रीसूरीयें जेसलमेर, कृष्ण गढ, अर्बुदासनइं, देवके पट्टणि, गढे नगरे, खंभायतें, गंधार, ईडर नगरइं ज्ञानकोश गितार्थ पासी सोधाव्या । ज्ञान जत्न कीधो । श्रीगुरुना उपदेश थकी मालव देशी मांडवगढि प्रा० वृ० सगहडीया गोत्री पातसाहना द्रव्यना भंडारी खजानाना (९६-२) भलामणिया सा० सहसा भाई सुलतान श्रीअर्बुदगिरि उपरि अचलगढि

इग्यार लाख द्रव्य सुकृति करी पांच लक्ष मनुष्यनो संघ लेई श्रीरुषभदेवनो चतुर्मुष प्रासाद नीपजावी ते माही सप्तधातु चउद शत मण प्रमाणें तेहना बिंब चार कराव्या। तेमांहि आठ बिंब काउसगीया अने च्यार बिंब चतुर्मख प्रासादि मूलनायक श्रीरुषभदेवना जांणवा । वि० सं० १४५४ वर्षे श्रीसुमति साधु सुरिइं प्रतिष्ठ्यो । श्रीसूरी अतिचार रहित चारित्र धर्म्मने आराधता, सुध परुपक बिरुद धारक वि० सं० १५५१ वर्षे खमणुर गामिं श्रीसूरीइं स्वर्ग हुओ ।।

५५ तत्पट्टे श्रीहेमविमल सूरी ।

(२) श्रीकमलकलस सूरी ।

(३) श्रीइंद्र नंदी सूरी ।

ए त्रिहु गुरुभाइ तेमांहि श्रीकमल कलस सूरी थकी वि० सं० १५५५ वर्षे कमलकलसा गछ हुओ ।

पुनः श्रीइंद्रनंदीसूरी अणहिल्ल वाडा पाटण पार्श्वे कुतपुर ग्रामें स्वशिष्यनें आ० पद देइ गामनें नामें श्री-कुतपुर सूरी नाम दीधु। तिहां थकी वि० सं० १५५८ वर्षि कुतपुरा गछ (९७-१)कहिवाणो । एतलइं ए बिहुं लघु गुरुभाइना भिन्न गछ हुंया । अनि श्रीहेमवि-मल सूरी जे किया भ्रष्ट साधु समुदाय गछ मर्यादा शि-थल जांणी देश आज्ञा देता हुया । श्रीगुरु ब्रह्मचारी चुडामणि बिरुद धारक निर्लोभतापणें सकल जन वि-ख्यात कीर्ति संवेग रंगइं समतावंत पक्वान्नादिक त्याग्यता, घणा जीव लुपाक मतनइं तजी श्रीसूरी हस्ति दीक्षा लेइ तपानिश्राइं चारित्रना भजनारा हुवा । रु० गणपति रु० श्रीपति रु० वीपा रु० जगा प्रमुष नवदी-क्षित साधु ६८ युक्ति प्रतिबोधी तपा कीधा । त्यारे अन्य साधु किया उद्धारवा तत्पर थया । सपरिग्रहि जे त्रांबा-ना पात्रां, त्रपणी, लोट प्रमुष जेहने जांणता तेहने संघ अने पंक्ति बाहिरनी आलोयणा कहेता । एक भुक्त उप-वास, पारणि नीवी छठ अठम, नीवी पारणें गंठीसही प्रमुख तपना कारी भूमंडलें विचरइं । एहवये समयइं क-टुक नामि गृहस्थनी परुपणा हुइ । जे किया शि-थिल साधु समुदायमां रहि ते चारित्रियानें (९७-२) चारित्र न संभवे । पिण ते इम न कहिवु। इम हुंति पिण गछनायकनें चारित्र संभवइं—यदागमे—

सालं नाम एगे आयरिए एरंडे नाम परिवारे ।

एव चउभंगी जांणवी । हवइं कटुक गृहस्थनी उत्पती कहइं छइं—गुर्ज्जरात देशि वडनगरें नागर ज्ञाति वृद्ध शाषाइं टोकर गौत्रि सा० वाणारसी, तेहनी स्त्री हरी, पुत्र कडुओ नामि छइं । पिण ते देव गुरुनो...। पं० हर्ष कीर्तिगुरु मिल्या । तिणी भव्यात्मा जांणी कडु-ओ बोलाव्यो । यती जांणी नम्यो । गुरु पासें रह्यौ । वृद्ध जांणी कडुओ विशेष भक्ति साचवें । एहवइं गुरु आणा लही शिष्य अम्मदाबादइं चोमासें गया । गुरुनी सेवा करतां केतलेक दिनें गुरु मुख थकी कडुओ श्री सिद्धांतनो समझ थयो । सचित्त त्यागी श्रावकनो कर-णीइं आगलो हूओ । तिवारि गुरु कहइं सा० कडुया तुमे घरे जाओ संसारि थाओ । ते गुरु वचन सांभली कडुओ कहइं, तुम जे हवा...। सा० कडुया ना वचन सांभली योग्य जांणी प्रसन्न पणइं गुरु मुखि वीसइं वर्षे सा० कडुइं चोथु व्रत आदर्यु । (९८-१) श्री पंडितजीइं कह्यु—जे तुम्हे गुरु लोपा न थासो । तिवारइं कडुओ कहइं—पिता माता जो वृद्ध नागर हुइं अनि वणि-कनो पुत्र छुं तओ उपगारी गुरुनें नहि लोपुं । तिवारें गुरें सा० कडुयानइं क्षेत्रपालनो वर दीधो । गुरु कहें तुमारो उदय थिरापद्र नगरइं श्रीमालि वृद्ध शाषा धु अ-वटंकि छइं, असिमन् देसि नही छइं । ते माटि तुम्हे तिहां जाओ । सा कडुओ गुरु वांदी आणा लही केतलेक दिनें श्री शंखेश्वर पासनइं नमी अनुकमि थिरापद्रइ आव्यो । जिम श्री पंडित श्रीहर्ष कीर्तिइं कहयुं हुतुं, ते तिमज सत्य हूओ । एकदा सा० कडुओ गृहस्थ प्रति उपदेश कहइं—बिहज्जार अनि च्यार युग प्रधान कहइं छइं, पण ते बिहज्जार अनि बि जांणुं, एक एह संदेह । १ । पुनः पांचमा आरामां सुसाधु सुचारित्री नही, ए संदेह छइ । २। संप्रति वर्तमान कालि चारित्रिया साधु मुज दृष्टि आवता नथी, एतलें एहनो पिण संदेह । ३ ।इम-गुरु लोपी मिथ्या प्ररूपणा करतां त्रिण थुईइं (९८-२)

स्वमत थापतो हूओ। एतलइं गुरु वेष तथा गुरु कथन लोप्युं। तेह थकी कडूयाने शिष्यने उदय न हुइं। एतली वि० सं० १५६२ वर्षे साधु वेषोत्थापक कडूक गृहस्थ थकी कडुक नाम मति प्रगट हूओ।

इति कडुक मतोत्पत्ति।

पुनः एहवइं लुकांना गछ थकी रु० विजयइं विज्जा मति नामि मत प्रवर्ताव्यो। एहवइं पासचंद मति प्रगट हूओ तेहनी उत्पती कहइं छइं।

पासचंद मत।

अबुर्दासन्नि हमिरपुरनगरइं लिंब गोत्रिइं प्रा० वृ० सा० पासवीर नांमी अल्पद्रव्ये भारवाहकनी आजीविका करतो रहइ छइं। एकदा हाथिं कुठार लेइ पर्वत दिशि वडि पीप्पल वृक्ष चढतां इंधण लेतां भूमि पड्यो। देही गाढो लागो। पिप्पल वृक्ष हेठि उभो छइं। एहवइं तिहां नागुरी शाषाइं शाला धारक श्री चंद्रकीर्ति सूरी, तेहना शिष्य पं० लक्ष्मीनिवास, तेहना शिष्य एकान्तरि चोविहार उपवास कारक पं० श्री साधुरत्नः तेहनी श्री आबूनी यात्रा करी वाटी उतरी (९९-१) हमीरपूरने मारगि आवता देषी पासवीरे वंदणा कीधी। पं० साधुरत्ने योग्य जांणी धर्म्मोपदेश कह्यो। तेहमां वनस्पति छेद्याना मोटा पाप कह्या। ते सांभली लघु कर्मि प्रांणी तुरत वूझ्यो। कांणद्र नगरे वि० सं० १५६५ वर्षे पासवीरने दीक्षा देइ रु० पार्श्वचंद्र नाम दीधुं। तिहां थकी गुरु १, शिष्य २, नागोर नगर आवी शालाइं रह्या। एकदा ओरडइं जीर्ण यंत्रनी मुद्रा दीधी देषी रु० पासचंद्र गुरु श्री साधुरत्ननइं—इणि ओरडइं किस्युं छइं। कदहि उघाडता नथी। तिवारइं गुरु कहइं आगि महा बारावर्षि दुर्भिक्ष हुओ, ते समयइं साधु शिथलचारि जांणि तेहना पुस्तक ज्ञान आसातना देखि, तिहां वृद्ध गितार्थे मिली ए ओरडामां ज्ञाननां डाबा भरी यंत्र कीधो छइं। ते थकी आपणे कांस्ये कामि उघाडवुं नहीं। वृद्ध वचन कुण लोपाइं। एहवओ वाक्य गुरु श्री साधुरत्ननुं सांभली शिष्य रु० पासचंद्र मौन हुइ रह्यो। एक दिन गुरु नगरमां कोइक (९९-२) कार्यार्थि गया। एतले पासचंद्री गुरु आज्ञा विगर ते ओरडो उघाडी जोयको। पुस्तक जिम तिम मुक्यां दीठा। एहवे गुरु आव्या एतलि उतावलिमां आगले पड्या ते अढा पत्र लेइ रजोहरणि घालि यत्ने राख्या। पछी गुरुने किमाड उघाड्यो। गुरु कहइं एवडी देर क्युं हुई। शिष्य कहइं इमहिज। पछी ते अढी पत्र वांची क्षेत्रपालनो आम्नाय जांणी एकांति ठिकांणे साधन विधि कीधो। एतलइं कालो अनि गोरओ बिहुं क्षेत्रपाल आवी वर दीधो। अनुक्रमि वि० सं० १५७४ वर्षे रु० पासचंद्रे वीरदत्त वर साहज्य थकी पासचंद्र नामि मति उत्पन्नः।

ते मांहि थकी श्री पासचंद्र शिष्य रु० ब्रह्म नामइं, तेह थकी अणहिल्ल पटनि वि० सं० १५७८ वर्षी ब्रह्म मति गछ प्रगट हुओ। एतलइं जे जिहां थकी फाटो हुओ, तिणइं तिहां थकी पोताना मूल गुरुनी सामाचारी लोपिने सूत्र विरुद्ध सामाचारी प्रवर्तावी। अने सूत्रांक जे पर्व ते पुनः अन्यथा कीधा। पोतानि मति भेदी करी नवा नवा गछना नांम थाप्या। (१००-१) तिवारि ए मति कहीइं।

इति पासचंद्र मतोत्पति।

हवइं श्री हेम विमलनो वि० सं० १५२२ वर्षे जन्मः। सं० १५३८ वर्षि दीक्षा, हेमधर्म्म नाम दीधुं। सं. १५५५ वर्षि गुर्जरात्रि वडियार खंडि पंचासरा नगरइं श्रीमाली वृ० सं० पातइं सूरी पदोत्सव कीधो। सं० १५५६ वर्षे किया उद्धरी। सं० १५६८ वर्षे स्वर्ग हुओ।

५ ६तत्पट्टे श्री आणंद विमल सूरी।

(२) श्री सोभाग्य हर्ष सूरी।

श्री आणंद विमलसूरीनो वि० सं० १५४७ वर्षे जन्म। सं० १५५२ वर्षे व्रत, अमृत मेरु नाम दीधो। सं० १५७० वर्षे कर्प्पट वाणिज्य नगरइं आ० पद हुओ। सं० १५८२ वर्षे देसूरी नगरइं गछ नायक पद हुओ। एकदा गुरु श्री सौभाग्य हर्ष सूरीनइं कहइं। आपणे बिहुं किया उद्धरीइं। तिवारि श्री सोभग्य हर्ष सूरी कहें आपाणि शाला धारक बिरुद गुरुनो छइं।

तिवारइं श्री आणंद विमल सूरी कहे .... बावन्न साधुस्युं किया उद्धरि सपरिग्रही जाणता ते साधुनें गछ बाहिर काडता, भव्य जीवनइं धर्मोपदेश देइ तारता, (१००—२) पुन: जेसलमेरु देसि जल दुर्लभ जांणि श्री सोमप्रभ सूरीइं विहार निषेध्यों छइं । पिण लुकामत व्यापितुं जांणी उ० श्री विद्यासागरनइं विहारनी आज्ञा देता हुया । तथा जेसलमेर खरतर, मेवाति विजामति, मोरबीइ लुका, वीरमगामि पासचंद्र, इत्यादि नगरि श्री सूरीइं छठ तपनइं पारणि रक्षा तकनइं करवइं, घर विगय त्यागी, महा तपस्वी जांणी घणा जीव श्री जीन पूजानी सद्दहणा आणी । पुन: श्री सुरीना उपदेश थकी ओ० वृ० बापणा गोत्रे सां० कर्मि चितोडगढ वास्तव्य सं. १५८७ वर्षे श्री सिद्धाचलि सोलमों उद्धार कराव्यों। श्री सूरीइं अजयामेरु, सांगानयर, जेसलमेर, मंडोवर, नागोरि, नाडलाईइ, सादडीइ, सीरोही नगरे, पाटणि, महिसाणे प्रमुख अनेक नगरे घणा जिनबिंब प्रतिष्ठया । कलियुगि श्रीसूरि युगप्रधानोपम: सम जांणिवा । यत:उक्तं-वदन्ति यस्मैति जना निरीक्ष्य निरीहितज्ञानतप:क्रियाढ्य। अवातरन्मसंवगुण: किमेष श्रीमज्जगश्चंद्रगुरु र्द्वितीय: ॥

श्री सूरी छठ, अठम, (१०१—१) चउथ, विंशतिस्थानक, तपना कारक, षट काय जीव यत्नावंत, समता समुद्र, जन्म पर्यंत अतिचार आलोइ । पांचदिवस अणसणइं अहिम्मदावाद नगरइं निशा पाश्चिक वि. सं. १५९६ वर्षे श्री आणंद विमल सूरी स्वर्ग हुओ ।

अनि श्री सौभाग्य हर्ष सूरी थकी गुर्जराति विजापुर नगरइं वि. सं. १५८२ वर्षे लघुशाली नाम गछ भिन्न हुओ । एहने समइ श्री सिद्धाचलि असुरनो उपद्रव हुओ ते कहइ छइं ।

गुर्जर देशि अणहिल पत्तन पासि कुणगिर नगरी श्रीमाली लघुशाषा अडालजा गोत्रि सो. भाणसा रहे छे। तेहनी स्त्री कोडाइ नामि अत्यंत रूप सुदराकार देषी चिकथो श्री शेरशाह आसक्त हुओ । ते स्त्रीनइं दरबारि राखी, तेहनी मोहनीइं क्षण वेगलो न रहि । एकदा कोडाइ पवित्र पणि स्मरणि स्मरइं छइं, एतलइं शेरशाह काम विह्वलि आव्यो । कोडाइं कहइं ' तसबी पढति हूं।' शेरशाह कहइं 'किणके नामकी ।' कोडाइ कहइं ' मेरे पीरके नामकी ।' ते सांभली शेरशाह कहइं ' उनकी जमी अस्थल किहां है ।'. कोडाइ कहइं ' सोरठ देशि (१०१—२) है शत्रुंजय पाहाडइं रहइं छइं ।' तिवारें स्त्रीनो प्रेर्यो शेरशाह शैन्य लेइ देश द्रव्य उपरावा नीकल्यौं। अनुक्रमिं पालिताणि नगरी आव्यो । सैन्य सर्व तिहां उतर्यो । तिणहिज रात्रि शेरशाह १, कोडाइ २ अनि चमरनो विजनार विलाति फकीर आंगारशाह नामि ३, ए त्रिहुं लस्कर थकी छांना पाहाड चड्या । श्री ऋषभ दर्शन कोडाइने हुओ । कोडाइ कहइं' ए बेटे सो मेरे पीर ।' एतलइं चिकथइं सुवर्ण मुहरनो ढिग जिननें आगि कीधो । ते देखी महाम्लेछ अंगारस्याह द्वेषी हुओ, मनि विचारइं जे–'औरतके लीइ चिकथने काफिराणा कीया । पूतलेंकु पाउ लगा ।' एतलइं चिकथो अनि कोडाइं ए बिहुं दर्शन करी उतावलि पाछा निकल्या । अंगारशाह कपट थकी पछवाडे अंतरइ रह्यौ । मूर्दिं श्री मूलनायक उपरि गुर्ज शस्त्र नांषी आसातना कीधी । तिवारि तीर्थ रक्षक देव कोप्या । म्लेछ नाठो। हिंदु जक्ष जांणी त्रासतो चिहु दिशि भयंकर देखि सुहाली पुग थारिइं थकी षसी देवल बाहिरइं अथडाइं (१०२—१) हेठो भूमी पड्यौ, तत्काल निधन हुओ । प्रत्यक्ष पीर हुइ, हिन्दु यक्षनइं कहइं, असुरनो उपद्रव्य जिवारि किवारइं श्री क्षेत्रि हुइं तिवारइं मुझ ठिकांणि धूप, दीप, अबीर, अक्षत, यव, तथा युगंधरी, पुष्प मरूओ, सवा वहित गातो वस्त्र, गुलीरंगनो नीलो वस्त्र, बांधण चंदुओ, तथा ध्वजा सवा वहितनी, सवासेर गुड बांटि देवो, तिहां हुं महा असुरांणइ साहज्यकारी छुं । ए तीर्थनो उपद्रव टालवा समर्थ छुं । तुम्ह सकल देवनो भक्ति छुं । तिणि तीर्थ रक्षक देवि असुरांण जांणी स्थानीक किधुं । केतलेक दीनें चिकथो अनि कोडाइ पाटणिं आव्या । एतलि वि. सं. १५९५ वर्षे श्री सिद्धाचलि असुरनो उपद्रव्य हुओ, तिवारइं सकल संघ श्वेतांबराचार्य एकठा मिली ए तीर्थे दुग्ध धाराइं जैनमतना आम्नायना प्रयोग

करवइं थकी श्री गिरी थकी असुर छाया निवारण कीधी।

५७ तत्पट्टे श्री विजयदान सूरी ।

तेह गुर्जरखंडि राओदेशि जामला नगरइं ओ० वृ० करमयागोत्रि सा० जगमाल (१०२-२) स्त्री सुर्याई पुत्र । तेहनो वि० सं० १५५३ वर्षे जन्म । वि० सं० १५६२ वर्षे व्रत, उदयधर्म्म नाम दीधुं । वि० सं० १५८७ श्री सीरोही नगरइं गछ नायक पद हूओ । श्री सूरी अप्रमत्तपणि भव्य जीवनइं धर्म्मोपदेश देता भूमंडलि विहार करता संप्रति श्री तपागछि सर्वोपम सुमता समुद्रे वैराग्य निधि आगिम ४५ ना कोश खंबायति, गंधारि, पाटणि, सिद्धपुरी, विजापुरे, देवकिपाटणि, नागौरी. प्रमुष नगरे गीतार्थेन पासि संघाव्या । स्वद्रव्यना विगयना अभिग्रहधारि श्री मुगसीवासनइं दर्शनि आव्या । मांडवगढ चैमासी रही पुनः गुजरातिगोधरा नगरे रही उमरठ नगरे आव्या । तिहां उपकेश गछि विवंदणिक विरुद धारक श्री सिद्ध सूरी वंशि ओ० श्री जीवकलसं——लोके केकोजो भट्टारक एहवुं नाम जाणवुं——वि० सं० १५८४ वर्षे श्री विजयदान सूरीनें वंद्या । सकल सच्चित त्यागी एकांतर उपवास चुविहार तपना कारक यति धर्म्मि आगला योग्य जांणी श्री विजय दांन सुरीइ अणहिल पाटणि माणिकार (१०३-१) पाटकी वि० सं० १५११ वर्षे गछ नायक पद दीइ स्वपाटि श्री राजविजय सूरी नाम दीधुं । श्री गुरु शिष्ययुक्त हिंदुआणि देशी विहार करता भरडुया नगरइं आव्या । एहवइं कोइक रुचि शाखाना गीतार्थ प्रति श्री भीन्नमाल प्रमुष क्षेत्रनइं वदलवइं जांणी वि० सं० १६१३ वर्षि मोरवी नगरइं श्री राजविजय सूरीनो गच्छ भिन्न हुओ । सं० १६१९ वर्षे उ० श्री धर्म्म सागरनइं गछ बाहीर कीधो । कंदकुदाल नामा ग्रंथ जलसरण कीधो । तेहनो लिषाववो, विस्तार करवो, तेहनो मिथ्या दुकड दीधो । एकदा सुरीनइं स्वप्नइं आवी यक्ष श्री माणिभद्र कहइं—तुम्हारी विजयशाखाइं पाट थापना कीजो । अपर शाषा तुम्ह पाटि आज थकी नहीं छइं । पाटि नाम थाप्यो तिवारि महारा नाम माहीलो एक अक्षर लेइ तेहनो नाम देज्यो । हुं तुम गछि कुशलपणुं करीस । विजय शाषाइं विजयवंत गछ पाट हुस्यइं । श्रीविजयदानसूरी पिहिलो श्रीजी पेढीइं शाषा फरती । श्रीसूरीइं हाडोति देशि, (१०३-२) दुंढाड देशि, कछ देशि, मालव देशे, महिशाणा प्रमुख नगरइं अनेक जिन बिंब थाप्या । एहवइं अणहिल पत्तन आसनी वडली गामि वि० सं० १६२२ वर्षे श्री विजयदानसूरी स्वर्ग हुओ ।

५८ तत्पटे श्रीहीरविजय सूरी ।

तेहनो गुज्जराति पालणपुर नगरे ओ० खरमसरा गोत्रि सा० कुयरा स्त्रीनाथी कुक्षे वि० सं० १५८३ वर्षे जन्म । पुत्र हीराचंद नाम । एकदा पाटणि बहिननें मिलवा आव्यो, तिहां खडाकोटडीइं श्रीविजयदान सूरी गुरुनो उपदेश सांभळी वि० सं० १५९६ वर्षे दीक्षा लीधी । हीरहर्ष नाम दीधुं । सं० १६०७ वर्षे नाडुलाइ नगरे श्रीरुषभ प्रासादि पं० पद हुओ । १६०८ वर्षे नाडउल नगरे श्रीनेमीनाथ प्रासादे पाठक पद हुओ । सं० १६१० वर्षे सीरोही नगरइं श्रीरुषभप्रासादि गछ नायक पद हुओ । तिणहीज वर्षे श्रीअजितनाथ बिंब थाप्यो । तिहां थकी श्रीसूरी नंदीय, लोटांणक, ब्राह्मणवाटक, अजारी, आबु, ईडरगढ, पोसीनापास, (१०४-१)विजापुर, प्रमुषइं विहार करता अहिम्मदावादि शिकंदरपुरइं चोमासी तप करी रह्या । एहवे आगरा नगरइं श्रीपर्व आवे थकी ओ० वृ० दो० कृष्णचंद्र स्त्री चांमाइ दोढ मासि तप कीधो छइं । महा आडंबरी देवदर्शनी जाई छइं । ते देखी श्रीअकबर षांमांनइं तेडी कहइं 'कंत दीनके रोजे भर हइं । ' तिवारि षांमा कहइं ' दोढ मासके रोजे लीये हइ । ' शाह कहे ' तेरे कुंण पीर ' षांमा कहइ ' मेरा पीर सो हीर गुजराति रहइं । ' एहवि कीर्ति सांभळी पातसाहइं फुरमांन लिषी पं० भाणचंद्रनइं अहमदावादि तेडवाने श्रीसूरीपासे मोकल्या । एटले श्रीसूरि शिकंदरपुरथकी चोमासइं वोलइं श्रीशेषेश्वर पास नमी वोटी, गायधन्यपुरइं आव्या । तिवारि पं० भाणचंद्र पिण तिहां आवी श्रीसूरीनें सकल वात आगरानी कही

श्रीसूरी प्रसन्न हुया। पं० भाणचंद्रने पाठक पद देई लाहोरनी आज्ञा दीधी। एतलि श्री पाठकनइं तपगच्छ उद्योतकारक जांणि वाचक (१०४—२) प्रमुष एह आशिर्वाद वचन कह्या छइं। दुहाः—

सूर उदय दिनकर समइं
चंद्रउदय निशि होत।
दोनु याके नामपर
सो गुरु सदा उद्योत ॥ १ ॥

एहवइं श्रीवड गछि चतुर्दशिक पक्षे पिप्पलिशाषाइं श्रीमालदेवइं श्रीहारीज नगरें वि० सं० १६३५ वर्षे श्रीहीरविजय सूरीनि वंद्या। श्रीसूरीइं पिण पोताना गोत्री जांणि आदर देइ पासइं राष्या। अनुक्रमइं श्रीसूरीइं मालदेव सहित दीली नगरइं पोहता। श्रीसूरीनइं पातिशाह कहे—बेठो। तव हीर कहे जीवत दिया विछात उठाइ देषइतो पा० मेवा धर्‍या हे तिणमुं कीडी आइ (?) प्रथम दिन एता जीव हुओ। बिज दीन पातसाहीनो बहुमान देषी विछात नीचे षाडकर वकरी एक सगर्भा मांहि घाली दरीमाना कीयो। पातसाह कहइं—विजहीर बेठो। तदा हीर कहे इस जमींमे जीव हइं। सा० कहइं केता जीव। तदि गुरु कहे—तीन जीव हे। पातसाह खोलकर देषी तो १ बकरी २ बचा हुआ। सो देष पातसाह कहे (१०५—१) ए दूसरा षुदा हइं, सच्चे पीर हो, तुम्ह अम्हारे गुरु होइसो। पातसाहनो सन्मान देषी म्लेछ मुल्लांणीया द्वेष धरी कहइं अयसे सब फकीर हइ तो अल्लाकी बंदगीसे हजुर कछु करामत देषावइं। ते सांभली एक पातसाह मुल्लांणीया सहित श्रीसूरीनें सभाइं आदर देइं कहइं आप अपणी करामत देखाओ तिवारि पिपीलिका १ अजा सर्पागेह २ विछात ठिकाणे कहे वली रजहरण १ टोपी २ वली अनेक वीद्या करामत देखी पा० तूठो थको कहि—तुम्ह बडे दर्शनी हो। इम कही सकलात्मीय देशि पर्व आर्वाद आठ दिन जलचर थलचर तीर्यच जीव प्रमूषनी आमारी पलावी, प्रवर्तावी। पुनः श्रीसिद्धाचले पातसाह मनुष्य मूंडकादि द्रव्य लेता तेहनी माफी कीधी। अकबराग्रहि सं० १६३६ वर्षे श्रीचिंतामणी पास प्रतिष्ठ्या। पुनः श्रीरावणपास जुहारी दिल्ली नगर चोमासुं रही सं० १६३७ वर्षे अकबर मूगल वंदावी आगरें मरुते आवी जालंधरादिक (१०५—२) नगरइं चोमासो कीधो। श्रीसूरीनी कीर्त्ति सांभली याचक प्रमुष श्रीसूरीने ओपम रूप (?) वीरुदावइ। दूहो—

हीर वइरागर नीपनइं खांमसरारी खांण।
पातसाह प्रतिबोधिओ अकबर मानी आंण ॥१॥

श्रीसूरी अकबरदत्त जगद्गुरु विरुद भाग्ता, भिनमाल हुइ रायधनपुर नगरइं आव्या। तिहां स्वपाटि श्रीविजयसेन सूरी नाम प्रतिष्ठ्यो। आ० पद लही गुरु आण लही श्रीविजयसेन सूरी पाटणि सीरोहीइं विहार कीधो। अने श्रीगुरु अहिमदावादि वजीरपूर नगरइं आव्या। तिहांलुंका गछि रु० मेघजी सतार्वाश शिष्यइं श्री सूरी प्रतिबंद्या। सूरीइं पिण तेहनो स्व शिष्य थापि कुशल, वर्द्धन, आनंद, सोभाग्य, ए च्यार शाषाइं नाम दीधा। श्री गुरु अढार शाखाइं विस्तार करी विचरता जंगम कल्पवृक्ष समान सोभइं। अथ अष्टादश शाषा नाम—श्रीमद विजय १, विमल २, सागर ३, चंद्र ४, हर्ष ५, सोभाग्य ६, सुंदर ७, रत्न ८, सुधर्म्म ९, हंस १०, आनंद ११, वर्द्धन १२, सोम १३, रुचि १४, (१०६-१) सार; १५, राज १६, कुशल १७, उदय १८, निरमल नाम। श्री सूरी खंबायति हुइं गंधार बिंदिरइं आव्या। तिहां गुरु उपदेश थकी सा० रामजीइं वि० सं० १६४९ वर्षे श्री वीर चउमुख प्रासाद निपजाव्यो। चोमासि उतर्ये पतनइं आव्या। एतलइं श्री सूरीइं तिहां बारबोल प्रगट कीधा। तिहां थकी श्री सूरी श्री सिद्धाचलि आव्या। एतलइं तिहां मेवाड, वागड, मरुधर, ढुंढाड, दक्षिण, गुजरात, मालव, सोरट, देवका पतन, प्रमुष सकल द्वि लक्ष मनुष्य वृंद सहित वि० सं० १६५० वर्षे महा महोत्सवि श्री सूरीइं श्री प्रथम तीर्थंकरनो दर्शन कीधो। तिहां घणा याचकने दान हुया। छात्र, अष्टभेदी, सत्तरभेदी, अष्टोतर, साधार्मिक वात्सल

ब ुला जाणीवा । किंबहुना ! श्री सूरि उ० सोमविजय, उ० विमलहर्ष, उ० कल्याण विजय पांचसें विबुध युक्त पुनः श्री सकल संघ युक्त श्री रैवताचलि श्री नेमि दर्शन कीधो। तन्निवासि संघाग्रही जीर्णगढि चउमासि(१०६–२) रह्या । अनुक्रमि श्री सूरी उन्ना नगरि आव्या । तिहां द्विप वास्तव्य ओ० वृ० पासाहस्सें (?) स्फाटिक बिंब श्री शान्ति नाथनो प्रतिष्ठाव्यो । तिहां संघाग्रही चउमासी रह्या । एहवइं श्री गुरु तेजस्वी यशस्वी हुतइं उ० श्री सोमविजय ग०, उ० श्री विमल हर्ष ग० गच्छ भलामण कीधी । श्री विजयसेन सूरीनें संघ भलामणि कहीराखी । पं० श्री गुणहर्ष, पं० श्री कुशलराज ग० प्रमुख गीतार्थ श्री सूरीनें उत्तराध्ययन, नंदीसूत्र, चउसरण संभलावइं । अखंड निश्चल शुभ ध्यानइं नमस्कार समरता, श्री तपागच्छाधीश्वर, शाह श्री अकबर प्रतिबोधक, तत्प्रदत्त जगद्गुरु बिरुद धारक, अनेक जल, स्थल, तिर्यंच जंतु जाति अभय अमारी पटहाभिवादनोपदेश दान प्रवृत्यनिलाभ ग्राहक निरातिचार अणशण आराधक सर्व आयु वर्ष ६९ अनि मास त्रिक संपूर्णि भट्टारक श्रीमद्श्री हीर विजय सूरी वि० सं० १६५२ वर्षि भा० सीतकादशी दिनें सूर प्रतिबोधी स्वर्ग पहुता । ते माटे श्री सूरीनइं नाम स्मरणी कुशल श्रेणी हुइ ।। यदुक्तं

श्री अकबरभुपालं कृपालुं भूशिरोमणिम् ।
विदधे येन तस्मै स्तात् श्री हीरगुरवे नमः ।। १ ।।

५९ तत्पट्टे श्री विजयसेन सूरी ।

तेहनो वि० सं० १६०४ वर्षे ओ० वृ० इगमल गोत्रि सा...कुक्षि जन्म । सं० १६१३ वर्षे व्रत । सं० १६२६ वर्षे प०।पद । वि० सं० १६४१ वर्षे गच्छ नायक पद हुओ । ते श्रीसूरीइं अहिम्मदावादी जिहां–गिरपुर नगरे पातीसाह श्री जिहांगीरनी सभाइं लाहोरना अपर मति शास्त्रवादि जीत्या । तिवारइं जिहांगीर साही तणइं आदर थकी श्रीगुरुने 'सवाइ जगतगुरु' बिरुद दीधो । एहवइं सं० १६७१ वर्षे अहिम्मदावादी नगरइं हाजापाटाणि चतुर विधि संघ शाखि उ० श्रीधर्म्म सागरइं पांच बोलनो मिथ्या दुःकृत दीधो । पुनः श्री सूरीनी आज्ञा लही समस्त गीतार्थ मिलि सर्वज्ञ शतक १ धर्म्म तत्त्व विचार २, प्रवचन परीक्षा ३, इरीयावही कुलक ४, प्रमुख ग्रंथ...शानकोशी अहिम्मदावादि खंभायति, पाटाणि, गंधारी, प्रमुख नगरइं थाप्या । वि० सं० १६६९ पत्तनि उ० श्री सोमविजयने सागर आश्री वांत सूरीनें संवातइं विरोध हुओ । वि० सं० १६७१ वर्षे श्री खंभायति पासि नायर गामि श्री विजय सेन सूरी स्वर्ग हुया ।

६० तत्पट्टे श्री विजयतिलक सूरी ।

तेह गुजरात देशि वीशल नगरइं प्रा. वृ. हल्सर गोत्रि सा. देवराज श्री जयवंती गृह सं. १६५१ वर्षे पुत्ररत्न जन्म्यो । वि. सं. १६६२ वर्षे पावइं गढि व्रत, रामविजय नाम । सं. १६६७ वर्षे पं. पद. जिर्णगढि हुओ । सं. १६७३ वर्षे खंभायते गच्छ नायक हुओ । तेहना अमात्य उ. श्री सोमविजय ग. उ. सिधचंद्र ग. पं. श्री श्री हर्ष, पं. हर्षाणंद, प. राजविमल, प्रमुख गीतार्थ युक्त श्री मरुधर देशि विचरे । एहवइं वि. सं. १६७३ वर्षे चातुर्मुर्ख थकी वांत पक्ष कहिवाणो । ते मांहि थकी वि. सं. १६८६ वर्षे अहिमदावादी उ. श्री धर्म्मसागर तस्य शिष्य पं. लब्धिसागर तस्य शिष्य पं. नेमिसागर. उपाध्याय श्री मुक्तिसागर थकी सागर गच्छ कहिवाणो (१०८–१) । एहवइं लुकागच्छ थकी वि. सं. १६७० वर्षी ढुंढक मती हुओ । वि. सं. १६७५ (?) वर्षे श्री शीरोही नगरइं श्री विजयतिलक सूरी स्वर्ग हुओ।

६१ तत्पट्टे श्री विजयानंद सूरी ।

मरूधर देशि रोहा नगरे स० १६४२ वर्षे चायण सा चहुआण गोत्रि सा० श्रीवंत भार्या सिणगारदे पुत्र । तेहनो जन्म...। सा० श्रीवंतइं श्री हीरविजय सूरीना मुख थकी उपदेश सांभली संसारनो स्वरूप असार जाणी दश मनुष्य संघाति व्रत लीधो । तेह देशना नाम–मुख्य पिता सा० श्रीवंत वृद्ध तेहनु नाम ६० श्रीवंत दीधो । हवो च्यार पुत्रना नाम, वृद्ध पुत्र ते भाणो तेहनुं नाम धर्म्मविजय, २ बीजो पुत्र आजो तेहनु नाम अमृतविजय ३, त्रीजा पुत्र मेघानुं नाम मेरुविजय ४, लघु पुत्र वर्ष ९

नो कह्यो नांम तेहनुं नांम कमलविजय ५, ए पांच पिता सहित पुत्र ते । पुनः सा० श्रीवंतनो बनेवी सं० सादूल वृद्ध छै, मांहि रु० सादूल नांम दीधो ६, तस्य पुत्र स० भक्ति तेहनें नांम भक्तिविजय १, सा० श्री वंतनी (१०८-२) बहिन रंगादे तेहनो नाम रंगश्री दीधो ८, सा० श्रीवंतनी पत्नी सिणगारदे तेहनो नांम लाभश्री दीधो ९, सा० श्रीवंतनी पुत्री सहिजां तेहनो नांम सहीज श्री दीधो १० । एवं दश संबंधी साथी ब्यारसें अनि सत्तावन मण वृति जाति, गोत्रि, मित्र, साधर्मिक प्रमुख समक्षेत्र पंच जीर्णोद्धार इत्यादि सुकृति करीने श्रीहीरें स्व नेश्राइं श्री सिरोही नगरइं श्री ऋषभ चैत्ये सं० १६५१ वर्षे वतइं, पहिला कह्या ए नाम दीधा । ते मांहि लघु कमलविजयने श्री गुरुए समतादिक गुणि योग्य जांणी उ० श्री सोमविजय ग० ने वाचनाइं भलाव्या । अनुक्रमि पुन्योदयि षट् शास्त्रना ज्ञाता हुया । तिवारि श्री विजयसेन सूरीइं अणहिल पत्तनइं श्री पंचासर पास प्रासादि कमलविजयनें पं० पदि कीधा । वि० सं० १६७५ वर्षे श्रीसिरोही नगरइं गछ नायक पद हुओ । प्रा० वृ० पोलिछ्या गोत्रि सं० वीरपाल सुत सं० आंवा भाइ सं० महाजालि पद महोत्सव कीधो । सकल साहिर पुनः साधर्मिक संतोषी मनाष्यि मनुष्यि पीरें जो एक एक दीधी । श्री सूरीनें उपदेशि रंजित थको श्री सिद्धाचल १ (१०९-१) गिरिनार २, तारणगीरी ३, अर्बुदगीरि ४, घोघा नव खंड पास ५, शंखेश्वर पास ७, बंमणवाड ६, एवं सप्त तीर्थनो संघाधिपति हुओ । ते संघनो वर्णन ।

कवित:—

सत्तर सहस्र गुजरात मुभट मिल सोरठ सारी । होंटा बद्ध हज्जार वडके वडके व्यापारी । खंभायत निजक्षेत साहिर घोघा भारिखा । हीला झाला हलक्ष पालि कीधा पारिखा । परव उत्तर दक्षिण पश्चिम कृपाण कोइ न सकि कालि । ताहरि संघ वीरपाल तणा महाजल दुनीआं मली । १ ।

श्री सीरोहीइं, नाडलाइं, भमराणी, चचरडी, आबु प्रमुखि एकसठि प्रासादि जीर्णोद्धार कीधो । वि० सं० १६८२ वर्षे श्री शांतीलपुर नगरें श्री संघाग्रही विजयदेव सूरीनें श्री विजयानंद सूरीनें गछ मेल हुओ । पुनः सं० १६८५ वर्षे अणहिलपटनि श्री विजयानंद सूरी थकी कपट करीनें श्री विजयदेव सूरी गछ भेद करी सागरनें गछ माहि लेइने देवसूरी जुदा हुया । २ गछ हुया अणहिल पत्तनि । श्री विजयानंद सूरीयें संखेडइं नगरइं श्री आसापुरी प्रासाद दत्त वर थकि (१०९-२) सं० १६९१ वर्षे पंचांगुलीनो उपद्रव देवसूरीइं कीधो । ते श्री सूरीइं आसपुरी देव्याइं उपद्रव टाल्यो । जय हुओ। श्री गुरु गछि मंगल श्रेणि हुइ । केतलेक दिने मुगसी पासनी यात्रा कीधी । श्री गुरुने अंतरीक पासनी यात्रानो हर्ष हुओ । केतलेक वर्षे दक्षिण बुहरानिपुर नगरें चोमासइं रह्या । खानदेश कुंकुण विचरता सूरति चोमासी रह्या । अनुक्रमि कान्हमि विचरता खंभायति तत् शाषा श्री अकबरपुर नगरें श्री सूरी संघाग्रही चउमासि रह्या । तिहां श्रीमालि वृ० शाखाइं परिख वजीयाना आग्रह थकी श्री विजयराज सूरीनें भट्टारकपद दीधो । पा० वजीयायें पदोत्सव कीधो । श्री गुरुनी आज्ञा लही श्री विजयराज सूरीइं दोसी मनीयानें आग्रही अहमिदावाद नगरें विहार कीधो । एकदा श्री गुरु मुखि पा० वजीओ सभा समक्ष धर्मोपदेश समाधि पणि सांभलि छइं । एहवें वाणोतरइं आवी वधामणी दीधी जे लोहना गंजनें अधिकरणें भर्या जिहाज समुद्रि आव्या । वाणोतर कहे शेठजी लाभ बहोत (११०-१) छे । एतले श्री गुरुइं खांडा, कुसि, कुदाला, छरी, तेहना शास्त्र पाप देखाडया । श्री गुरुनइं वचनइं रंजित थको घणा जीवनइं असमाधिनाकारक एह लोहना गंजनइं समुद्रमांहि जल सरणि कीधा । गुरु मुखि एहनी आलोयणि लीधी । जो तेहनइं समुद्र मांहि.........जहां लगइं चिरंजीवी रहुं आयु पर्यंत जण जण दीठ प्रवालानी जपमालीका देवी पूण्यार्थे । पुनः श्री सूरीनें उपदेशि समुद्र जलचर जीवनी घणी यत्ना कीधी । श्री गुरुनइं एहवा परोपकारी देखी

प्रथम गुणवाणीया प्रमुख ए आशिर्वचन कहे छइं।

श्रीमज्जैन प्रवचन रहस्य प्रकाशिवचन गुण।
श्री विजयानंद सूरीजयतु चिरं संघहितकर्ता।१।

एहवइं आशापुरी दतवर थकी स्व आयु नजीक जांणी कर्म्म रोग टालवा हेति धर्म्मरुप ओषध धैर्य धरी करता हुया। गछनी मलामणी उ० श्री हीरचंद्र ग० उ० श्री वीजयराज ग० ने दीधी। संघनी हित शिक्षा श्री आचार्यने कहावी। श्री गुरुने उ० श्री कुशलवर्धन, उ० श्री देवविमल ग० प्रमुख गितार्थ उत्तराध्ययन (११०-२) चउसरणि निआमणि चउद पूर्वनो सार नमस्कार करता सवी आयु ६९ वर्ष संपूर्णि दिन ३ अणसण आराधी सं० १७११ वर्षे आसाढ कृष्ण प्रतीपदइं श्री अकबरपुर नगरइं बालपणि व्रतधारक जल थल चर तिर्यंच जीव रक्षाकारक युग पवर सम बिरुद ग्राहक श्री गुरु हीरवचनाराधक सूरी श्री विजयानंदनो स्वर्ग हुओ। यथोक्तः—

शुद्ध प्रागवाट् वंशाभ्र प्रभासनदिवाकरः।
वद्याद्यानंदमानदः सद्गुरुः सततोदयः।२।

६२ तत्पट्टे श्री विजयराज सूरी।

तेहनो गुज्जर देशि कडी नगरें श्रीमाली वृ० शाखाइं गोत्रि मणिकार अवटंक सा० खीमचंद तंद्गृहिनी गमतादे पुत्र सं० १६७९ वर्षि जन्म, नें नाम कुंवरजी। सं० १६८९ वर्षि वजीर पुरइं व्रत, नाम कुशलविजय। सं० १७०१ वर्षे चांपानेर नगरइं पंडित पद हुओ। सं० १७०४ वर्षे श्री सिरोही नगरें आचार्य पद हुओ। श्रीमाली वृद्धशाखा पा० वजियइं पाट महोत्सव कीधो। प्रा० सा० राउते पदोत्सव कीधो। सं० १७०६ वर्षे श्री खंभायत (१११-१) भट्टारक पद हुओ। श्री सूरीनइं उपदेशि श्री अहिम्मदावाद नगरं वास्तव्य गोत्री चांपानेरी अवटंकि श्रीमाली वृ० शाखा दो० मनीया सुत दोसी शांतिदासि दुर्भिक्षना योग थकी घणा प्राणी सीदाता जाणी सं० १७२० वर्षे दुर्बल रंक संसारीने मास १९ पर्यंत वस्त्र अन्न घृत गुड खांड शरकरा धातुपात्र गृह नानाविधि ओषध दान शालाइं आपवइं करी अभयदानं आधारपणं हुयो। यथोक्तः

काव्यः—

व्योम युग्म मिताब्द वाह शशधर प्रोज्जृंभमाणप्रथं
नानादेश दरिद्र दीन जनताऽन्नादि प्रदानायुधैः।
सत्रागाररणांगणे निहतवान दुर्भिक्ष विश्वाद्विषं
हाजापाटकमंडनः स जयति श्रीशांतिदासो भटः।१।

अथ कवितः—

गयो महा निर्मलो नेत्र धुंधलो दीठो......
माडरंव न भांजवा आमुसाइ मुइ महली आसा।
चाल्या महिना च्यार मुइ नर वहोत हुआ निरासा।
विपरीत काल वासोतणे प्राणिमात्र पोषण भरण
शांतिदास मनीया सुत तसु कना आगा तो शरण॥१॥

अर्बुद उपरि स० १७२५ वर्षे स्वनामि श्री शांतिनाथनो (१११-२) प्रासाद नीपजाव्यो। पुनः श्री हमीराचल, तारणागिरि, आरासणि, नडोय, राणकपुर, संखेश्वर, भीलडीआ, एवं सम तीर्थइ जीर्णोद्धार कीधो। पुनः स्फाटिक श्री शांतिनाथ प्रमुख बिंब २१ थाप्या। सं० १७४२ वर्षि श्री विजयराज सूरी स्वर्ग हुआ।

६३ तत्पट्टे श्री विजयमान सूरी।

तेहनो दक्षिण देशि बुरहानपुर नगर प्रा० वृ० शे० वाघजी श्री स्त्री वीरां पुत्र स० १७०७ वर्षे जन्म। सं० १७१७ वर्षे मालपुरे व्रत। स० १७३६ वर्षे श्री सीरोही नगरइं सा० धर्म्मसी धनराजि आचार्य पदनो उछव कीधो। सं० १७४२ वर्षे नाडुलाइ नगरे गछ नायक पद हुओ। एहवइं अणहिल पाटण पासे संडेर नगरइं सं० १७४९ वर्षे पं० नयविमल थकी संवीज मत हुओ। सं० १७७१ वर्षे श्री साणंद नगरे श्री विजयमान सूरी स्वर्ग हुआ।

६४ तत्पट्टे श्री विजयऋद्धि सूरी।

वृद्ध मरुधर देशि मेडाहला नगरे श्रा० वृ०(११२-१) लिंब गोत्रि सा० जसवंत स्त्री यसोदा तेहनो पुत्र सं० १७२७ वर्षे जन्म। सं० १७४२ वर्षे पिता सा जसवंत पुत्र सहित श्री रूकपुरे दीक्षा। सं. १७६६ वर्षे

श्री सीरोही नगरे आचार्य पद हूओ, सा० हरराज खोम-करणइं पदोत्सव कीधो । सं. १७७१ वर्षे गछनायक पद श्री साणंद नगरे हूओ । महेता देवचंद महेता मदन तिणे पाट महोत्छव कीधो । सं. १८०६ वर्षे श्री सूरति बंदर स्वर्ग हूओ ।

अथ आसीर्वाद कही छै:—

जयंतु गुरवो जैनास्तीर्थ क्षेत्र शिष्यसंतति ।
येषां नाम्नापि जायंते रसना सफला सतां ।। १ ।
संसारवांछां य तन्य भूयसीं
जग्राह दीक्षां शिवर्भातदां वरां ।
ज्ञानामृतापूरीत मानसः सन
नित्यं पुनातु प्रतिवासरं गुरुः ।। २ ।।
पट्टावलीयं रचिता सुयत्नैः
शृणोति यो मंजुल भावभक्त्या ।
तस्यालये चिंतित कामसिद्धिः
श्री कल्पवल्लीव फलानि जन्यात् ।। ३ ।।

इति श्री सुविहित तपागछ पट्टधर नाम्नी श्री वीर वंशावली समाप्तः ।।

।। संवत १९६२ वर्षे कारतक वदी ७ ।।

विषय सूचि।

ENGLISH.

१ वीर वंशावलि अथवा तपागच्छ वृद्ध पट्टावलि.

भूल संशोधन.

इस अंकमें जो अंग्रेजी लेख दिया गया है वह प्रुफ-करेक्टरकी गैर हाजरीमें छप जानेके सबबसे उसमें कुछ विशेष भूले छप गई है जिनमेंसे कुछ महत्त्वकी यहांपर सुधार दी जाती हैं। पाठक इनको सुधारकर फिर उस लेखको पढे।

पृष्ठ	कालम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	२	१	their	in their
९	२	७	spoken in	spoken to in
१०	२	१	or the	of the
१०	२	३	enjoying	engaging
१०	२	४	love	low
११	१	७	forests	of forests
११	१	२६	the	and the
१२	१	१६	menner	manner
१३	१	२८	Nevaras	Nivaranas
१३	१	३१	condition	times
१३	१	३७	ward	word
१३	१	३७	mataphors	metao.
१३	२	१५	सेलो यथा	सेलो यथा
१४	२	४	canenot	caonot

पढ़िए

महावीर

पढ़िए

(हिन्दी–गुजराती पाक्षिक पत्र)

संपादक—मुनिराज श्रीजिनविजयजी

महाशय,

क्या आप भगवान महावीर के अनुयायी हैं? क्या आप महावीर के वीर धर्मका मर्म समझना चाहते हैं? क्या आप अपने आपमें वीरत्वकी भावना जागृत करना पसंद करते हैं? क्या आप जैन समाजकी वर्तमान स्थिति के सच्चे हालके जाननेकी उत्कंठा रखते हैं? और क्या आप जैन समाजमें जो जडता, अकर्मण्यता, विचारहीनता और रूढीकी प्रबलता जमी हुई है उसे उखाड दूर फेंकनेकी मनोभावना रखते हैं?

यदि इन सब प्रश्नोंका उत्तर 'हां' ऐसा देना है तो, आज ही एक कार्ड लिखकर 'महावीर' की ग्राहक श्रेणिमें अपना नाम दर्ज करा दीजिए; और चाहें तो नमूनेके लिए महावीरका एक अंक मुफ्त मंगा देख लीजिए।

यह पत्र मुनि श्रीजिनविजयजी के संपादकत्वमें गत 'महावीर जयन्ती' के दिनसे प्रकाशित होने लगा है। प्रत्येक मासकी प्रति प्रतिपदा (एकम) के दिन यह पत्र प्रकाशित होता है। इसमें सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक और विविध विषयके अच्छे अच्छे विद्वानोंके लिखे हुए उत्तम लेख छपते हैं। "जैन धर्म–परिचय" नामक एक मननीय दर्शनीय लेखमाला शुरू हुई है जिसमें जैन समाज, इतिहास, साहित्य और तत्त्वज्ञानकी सरल और सुबोध रीतीसे प्रामाणिक चर्चा की जाती है। प्रत्येक जैनको–चाहे श्वेतांबर हो चाहे दिगंबर हो–सभी को इसकी यह लेखमाला अवश्य पढते रहना चाहिए।

पत्रमें गुजराती और हिन्दी दोनों तरह के लेख रहते हैं। वार्षिक मूल्य मनिऑर्डरसे ३ तीन रुपये और वी. पी. से ३। (सवा तीन) रुपये है।

पत्रव्यवहार करनेका पत्ता –

व्यवस्थापक – 'महावीर'
ठि. भारत जैन विद्यालय, पूना सिटी.

Publisher – Seth Kalidas Manekchand, Jain Sahitya Samshodhaka Samaja,
Fergusson College Road, Poona City.
Printer – Laxman Bhaurao Kokate " ... nan Press' Sadashiv, 300 Poona City

संरक्षक—श्रीयुत हरगोविंददास रामजी शाह—मुंबई

॥ अर्हम् ॥

॥ णमो त्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

खण्ड १] **जैन** [अंक ४

साहित्य संशोधक

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि विषयक सचित्र त्रैमासिक पत्र

संपादक

मुनिराज श्रीजिनविजयजी

प्रकाशक–

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय

ठि० भारत जैन विद्यालय, पूना सिटी।

वार्षिक मूल्य ५॥ रु०] [प्रस्तुत अंक मूल्य १॥ रु०

इसे अवश्य पढ़िए

इस अंकके साथ जैन साहित्य संशोधकका प्रथम खंड समाप्त होता है; इस लिए ग्राहकोंका मूल्य भी पूरा होता है। आगामी अंकसे दूसरा खण्ड प्रारंभ होगा। जो सज्जन दूसरे खण्डके ग्राहक बनना चाहें वे अपना मूल्य, जो साडे पांच रूपया है, मनिऑर्डर करके यथावकाश भेज दें।

बहुतसे सज्जनोंने इस विषयमें हमें उपालंभ दिया है कि पत्र नियमित समय पर नहीं निकलता। उनका उपालंभ यथार्थ है, परंतु जिन कठिनाइयोंके कारण हमको अनियमितताका शिकार होना पडा है उनमेंसे कुछकका जिक्र हमने तीसरे अंकके मुखपृष्ठ २ र पर किया है, और विशेष स्मरणार्थ फिर भी उसे यहां पर उध्दृत करते हैं।

* * *

पत्रके संपादक मुनिजीका आजकल अधिक रहना अमदाबाद होता है। उनके शिरपर, गुजरातके राष्ट्रीय विद्यापीठकी एक नहीं पर दो दो संस्थाओंका कार्यभार रहा हुआ है—वे 'गुजरात पुरातत्त्व मंदिर' और 'आर्यविद्या मंदिर' नामक महत्त्वकी संस्थाओंके 'आचार्य' बनाये गये हैं, इस लिए वहांके कामका संभालना उनका प्रथम कर्तव्य है। जब वहांके कामसे कुछ फुर्सद मिलती है तब वे यहां (पूने) आ कर इस पत्रका काम शुरू करते हैं। यह पत्र इतना बडा है कि इसके छपनेमें कमसे कम दो-ढाई महिने लगते हैं। जो भी प्रेसवालोंकी कृपा होती है तो-नहीं तो इससे भी ज्यादह समय लग जाता है। इस लिए यथासमय पत्र नहीं निकल सके तो उसमें हमारा कोई इलाज नहीं; ऐसा समझना चाहिए

* * *

दूसरी बात यह है कि इस प्रकारके पत्र सभी इसी तरह विलंबसे निकला करते हैं। हमारे पत्रकी तो बात जाने दीजिए; खुद गवर्मेंटकी ओरसे प्रकाशित होनेवाले 'इन्डियन एन्टीक्वेरी' और 'एपीग्राफिया इन्डिका' जैसे जगप्रसिद्ध जर्नलस् भी कभी कभी १२ महिने विलंबसे 'लेईट' छपते हैं।

* * *

यह पत्र कोई कमाईके लिये नहीं निकाला जाता; केवल साहित्यके प्रकाशनार्थ ही प्रकट किया जाता है। इसका खर्च कोई ग्राहकोंकी फीससे पूरा नहीं होता। ग्राहकोंकी जितनी फी आती है उससे तो तिगुनासे भी अधिक खर्च इस संस्थाको गांठका जोडना पडता है। यदि सारा खर्च ग्राहकों ही की जिम्मेवारी पर रखकर इसको प्रकाशित करना हो तब तो इसका मूल्य ५॥ रूपयेके बनिस्बत 'इन्डियन एन्टिक्वेरी' आदि जर्नलोंकी तरह २० रूपये वार्षिक रखना पडे। परंतु न समाजमें ऐसे विषयोंके जिज्ञासुओंकी उत्कंठाका जब खयाल किया जाय तो शायद एक भी जिज्ञासु ऐसा नहीं निकलेगा जो २० रूपये वार्षिक दे कर इसका ग्राहक बने। इससे पाठक समझ सकेंगे कि जैन साहित्य संशोधककी क्या परिस्थिति है।

* * *

परिस्थिति ऐसी होने पर भी पत्रके संरक्षक शेठ श्री हरगोविंददास रामजीकी निष्कामभावपूर्ण उदार आर्थिक सहायता और पत्रके संपादक मुनिजीकी जैन साहित्यविषयक सेवापरायणताके विशिष्ट प्रयत्नसे जिस प्रकार इस पत्रने अपना प्रथम वर्ष निर्विघ्न रूपसे उत्तमता और सुन्दरताके साथ परिपूर्ण किया है उसी प्रकार यह अपना भावि वर्ष भी करेगा ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

* * *

यहां पर हम अपने ग्राहकोंसे सिर्फ यह निवेदन करते हैं कि जिस प्रकार हम अपना कर्तव्य बजानेमें कटिबद्ध हैं उसी प्रकार ग्राहकोंको भी अपना कुछ कर्तव्य बजाना चाहिए। हम ग्राहकोंसे और कुछ नहीं चाहते सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि प्रत्येक ग्राहक इस वर्ष एक एक नया ग्राहक बना दें जिससे इस पत्रके लिये उठाया जानेवाला परिश्रम कुछ सफल हो सके।

जैन साहित्य संशोधकना संरक्षक



शेठ हरगोविंददास रामजी शाह

मुंबई.

जैन साहित्य संशोधक समिति

पेट्रन.

श्रीयुत हीरालाल अमृतलाल शाह. बी. ए. मुंबई.

वाईस पेट्रन

श्रीयुत केशवलाल प्रेमचंद मोदी. बी. ए. एल्.एल्. बी. वकील अमदाबाद.

शेठ चिरंजी लालजी बडजात्या वर्धा.

सहायक.

शेठ परमानंददास रतनजी, मुंबई.

श्रीयुत मनसुखलाल रवजीभाई मेहता, मुंबई.

शेठ कांतिलाल गगलभाई हाथीभाई, पूना.

शेठ केशवलाल मणीलाल शाह, पूना.

शेठ बाबूलाल नानचंद भगवानदास झवेरी, पूना.

लाईफमेंबर.

श्रीयुत बाबू राजकुमार सिंहजी बद्रीदासजी, कलकत्ता.

श्रीयुत बाबू पूरणचंदजी नाहार. एम्. ए. एल्. एल् बी. कलकत्ता.

शेठ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, वडोदरा (मुंबई).

शेठ नरोत्तमदास भाणजी, मुंबई.

शेठ दामोदरदास, त्रिभुवनदास भाणजी, मुंबई.

शेठ त्रिभुवनदास भाणजी जैन कन्याशाला, भावनगर.

शेठ केशवजीभाई माणेकचंद, मुंबई.

शेठ देवकरणभाई मूळजीभाई, मुंबई.

शेठ गुलाबचंद देवचंद, मुंबई.

श्रीयुत मोतीचंद गिरधरलाल कापडिया बी. ए. एल्.एल्. बी. सोलीसीटर, मुंबई.

श्रीयुत केशरी चंदजी भंडारी इंदौर.

शाह अमृतलाल एण्ड भगवानदास कं० मुंबई.

शाह चंदुलाल वीरचंद कृष्णाजी, पूना.

शाह धनजीभाई वखतचंद सागदवाळा, हाल पूना.

शाह बालुभाई शामचंद, तळेगाम (ढमढेरे).

शाह चुनिलाल झवेरचंद, मुंबई.

शाह भोगीलाल चुनिलाल, सोलापुरबजार, पूना केप.

जैन साहित्य संशोधकना द्वितीय खण्डमां
केवा केवा विषयो आवशे ते जाणवुं होय
तो आ नीचेनी नोंध ध्यानपूर्वक वांचो

बीजा खण्डमां, जैन धर्मना प्राचीन गौरव उपर अपूर्व प्रकाश पाडनारा अनेक प्राचीन शिलालेखो अने ताम्रपत्रो प्रकट थशे.

बीजा खण्डमां, जैन संघना संरक्षक जुदा जुदा गच्छोनी पट्टावलियो प्रसिद्ध थशे.

बीजा खण्डमां, जैन साहित्यना आभूषणभूत ग्रन्थोना परिचयो अने तेनी प्रशस्तिओ प्रसिद्ध थशे.

बीजा खण्डमां, जैन अने बौद्ध साहित्यनी तुलना करनारा प्रौढ अने गंभीर लेखो आवशे.

बीजा खण्डमां, भगवान् महावीर देवना निर्वाण समय संबंधी जुदा जुदा विद्वानोए लखेला लेखोनां भाषान्तरो तथा स्वतंत्र लेख आवशे.

बीजा खण्डमां, प्रो० वेबरनी लखेली जैन आगमो वेबरनी विस्तृत समालोचना आपवामां आवशे

बीजा खण्डमां, जैन साहित्यमां उल्लिखित प्राचीन स्थळोनां वर्णनो आवशे.

बीजा खण्डमां, बौद्ध साहित्यमां जैन धर्मविषये शा शा विचारो लखाएला छे तेना विचित्र उल्लेखो आवशे.

बीजा खण्डमां, जैन संघमां आज पर्यंत थई गएला बधा प्रसिद्ध पुरुषोनो टुंक परिचय आपवामां आवशे.

आ सिवाय बीजा पण अनेक नाना मोटा अपूर्व अपूर्व लेखो प्रकट करवामां आवशे अने साथे तेवां ज सुन्दर, मनहर, दर्शनीय अने संग्रहणीय अनेक चित्रो पण यथायोग्य आपवामां आवशे.

॥ अर्हम् ॥

॥ णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

जैन साहित्य संशोधक

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि विषयक

सचित्र त्रैमासिक पत्र ।

प्रथम खण्ड

संपादक

मुनिराज श्रीजिनविजयजी

प्रकाशक

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय

भारत जैन विद्यालय, पूना सिटी

वीरनिर्वाण संवत् २४४७—विक्रम संवत् १९७७

प्रकाशक—
शा. केशवलाल माणेकचंद
भारत जैन विद्यालय.
पुना सिटी

मुद्रक—
लक्ष्मण भाऊ कोकाटे
हनुमान प्रेस, सदाशिव पेठ
पुणे—सिटि.

प्रथमखण्ड–विषयसूचि.

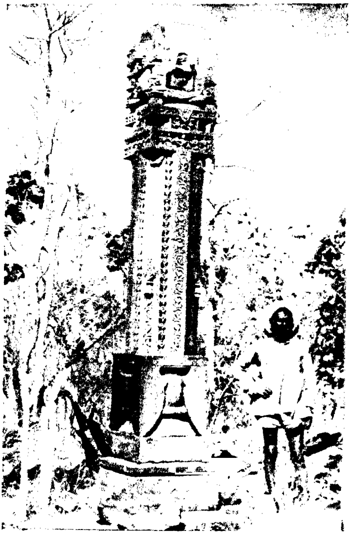
(हिन्दी लेखविभाग)

(गुजराती लेख विभाग)

[इंग्रेजी लेख.]

[परिशिष्ट]

चित्रसूचि.



जैनमंदिर मानस्तंभ, देवगढ़ (झांसी)

॥ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

'पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्साणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।'

'जे एगं जाणइ से सव्वे जाणइ; जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।'

'दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ ।'

—निर्ग्रन्थप्रवचन—आचारांगसूत्र ।

खंड १] हिन्दी लेख विभाग [अंक ४

LOGIC FOR THE MASSES.

By C. R. JAINA, Bar-at-Low.

[This little article owes its existence to my growing conviction that the real cause of India's downfall has been the disappearance of what might be termed the scientific or logical turn of mind from her people. How to restore this logical tendency to the Indian mind speedily and in a simple manner naturally flowed from such a conviction. The solution of this troublesome problem has at last been found in the Jaina *nyaya* upon which this monogram is grounded. May it fulfil its great purpose, will. I doubt not, be the heartfelt wish of every true patriot.

C. R. JAIN.]

FOREWORD.

Reader,

Has it ever occurred to you to find out why a simple rustic who knows nothing of the three Rs and who is most certainly innocent of all pretensions to logic immediately infers the presence of fire at the sight of smoke? How do

you account for the unerring accuracy of his inference in this matter? Is it not that there is inherent in the human mind a natural capacity for valid deduction independently of a school or collegiate education?

Well, this is what may be termed natural logic which, as you see, is a very simple thing. Compared with this the modern system of logic which forms part of the higher education that is imparted only to advanced students, is but a bundle of artificial forms and formulae. It is cumbersome and too much loaded with technicalities, definitions and diagrams which only go to confuse the mind and confound the sense. Besides, it is meant only for a certain class of college students, is learnt with difficulty and is productive of no practical good outside. Natural logic, on the other hand, is a practical function of life, and, therefore, natural to every man, woman and child. It only requires the drawing of attention to a few principles which can be understood and mastered by any one in a short time. There is certainly nothing in the nature of an impossibility in its principles to place it beyond the reach of the moderately intelligent man in the street. How quickly one masters this branch of practical learning, depends on the way it is imparted to men. Certainly, their failure, if any, is to be laid at the door of their instructor.

It would be out of place to compare in detail the method advocated here with what is taught as logic in our colleges, but it is well-known that the highest achievement of artificial logic is the possession of a set of rigid diagrams and forms which it applies to each and every proposition to test its formal validity quite irrespective of the question whether the statement of fact or facts involved in its premises be, in reality, true or not. The least advantage to be derived from natural logic, on the contrary, is the acquisition of what may be termed the logical turn of mind that seeks to discover and establish actual relations among things and the true principles of causation of events in nature. The highest gain from this system of natural deduction must, consequently, imply a complete mastery over the empire of nature for our individual and racial good.

It only remains to be said that logic is the one science which is the crown of glory of Intellectualism. It is highly practical, useful in every department of learning and the sweetener of life. It was logic which was truly the source of undying fame to the ancient rishis and philosophers of our land; and it is logic whose neglect has reduced us to the lowest level of existence to day. It is, therefore, the duty of every true well-wisher of India and Indians, as well as of the entire human race, to spread the knowledge of this most important science amongst men; and most certainly it should be taught to our boys and girls in their child-hood to impart to them that logical attitude which is the source of all auspiciousness and good.

Hardoi,
22nd August 1920.

CHAMPAT RAI JAIN,
Bar-at-law.

LOGIC FOR THE MASSES.

LESSON I.

Logic is the method of valid deduction. A valid deduction is only possible where there is a *fixed rule* to lead the mind to a particular conclusion from a given mark or fact.

Illustration.

1. There is fire in this room, because it is full of smoke.

[Here smoke is the mark of fire. The sight of smoke immediately leads one to the conclusion that there is fire in the room, because smoke is not produced except by fire.]

2. It will be Monday to-morrow, because it is Sunday to-day.

Where there is no fixed rule there can be no valid deduction there, *e. g.*, you cannot tell the number of keys in my pocket, because there is no fixed rule that I should always have a partilar number of keys into my pocket and never more or less.

LESSON II.

A fixed logical rule means something more than a mere long course of practice, or a series of disconnected events. Suppose a man has hitherto always carried 5 keys in his pocket and never any more or less: does it entitle any one to say that he will have only five keys in his pocket to-morrow also? No, because we have here only a long course of practice which might be discontinued any moment. Suppose further that I have a friend who is the father of one dozen boys and who has never had a girl born to him, and suppose that his wife expects to become a mother again: can any one say what will be the sex of the next child of my friend? No, because there is no fixed rule in nature that a particular person should always get boys and never a girl.

It is thus evident that a long course of practice or even an uninterrupted series of natural events does not justify an inference which can only be drawn from certain fixed natural or quasi-natural rules.

LESSON III.

There is a fixed logical rule to guide the mind from :--

(1) Cause to effect.

Illustration.

Moist fuel if set burning produces smoke.

(2) Effect to cause.

Illustration.

Where there is smoke there is fire.

(3) Antecedent to consequent.

Illustration.

i Monday following Sunday;
ii Youth following childhood;
iii Old age following youth.

(4) Consequent to Antecedent.

Illustration.

i Saturday preceding Sunday.
ii Youth preceding old age.
iii Childhood preceding youth.

(5) Concomitance.

Illustration.

i Age and experience.
ii Childhood and inexperience.
iii Marks of ripeness and deliciousness of taste in fruit.

(6) Container and contained, *i. e.*, the whole includes the part, or, what comes to the same thing, the attributes of the whole are to be found in the part.

Illustraion.

There is no fruit tree in this garden;

Therefore there is no mango tree in this garden.

The instructor should illustrate these

six kinds of fixed rules by many illustrations.

LESSON IV.

A conclusion may be drawn from an affirmative logical relationship, *e. g.*, wherever there is smoke there is fire. This is called the *anvaya* form. Hence when you see smoke you immidiately say that there must be fire present at its source. But the sight of fire does not entitle you to conclude that smoke must be there too; for while smoke is always caused by fire, every kind of fire does not produce smoke, *e. g.*, red hot charcoal fire. But you may sefely infer from the relationship of fire and smoke that where there is no fire there is no smoke. This is technically known as *vyatireka*.

Thus from the relationship between fire and smoke we can infer

1. the existence of fire wherever there is smoke, and

2. the non-existence of smoke where there is no fire.

But we cannot infer

1. the existence of smoke from fire, nor

2. the non-existence of fire where there is no smoke.

Anvaya and *vyatireka* taken together establish the validity of a logical relationship.

LESSON V.

The argument or reason is either of a contradictory type or of a non-contradictory one. The former of these implies the existence of a fact which is incompatible with the existence of the fact expressed in the conclusion. The other type is the non-contradictory one.

Illustration.

1. There is no fire in this pitcher, because it is full of water.

2. There is fire on thls hill, because there is smoke on it.

The *hetu* (reason) in the first of these illustrations is called contradictory because it (water) is opposed to the nature of fire the presence of absence of which is the subject of inference; the pitcher being full of water which is hostile to and destructive of fire there can be no fire in it. The second illustration is a simple case of non-contradictory *hetu* (reason).

Further illustrations

Non-contradictory affirmative reason:

1. Sound is subject to modification, because it is a product.

(Explanation: All products are liable to modification: sound is a product; therefore, sound is subject to modification).

This is an instance of the rule that part is included in the whole, *i. e.*, the attributes of a class are to be found in the individual.

2. There is fire on this hill because there is smoke on it.

(Effect to cause.)

3. It must be raining yonder, because potent rain-bearing clouds are gathered there.

[(Active) Cause to effect.]

4. It will be Sunday to-morrow because it is Saturday to-day.

[Antecedent to consequent.]

5. Yesterday was a Sunday, because it is Monday to-day.

[Consequent to antecedent]

6. This mango has a delicious taste, because it is ripe yellow in colour.

[Concomitance.]

Contradictory negative reason:

7. The atmosphere inside a steam boiler when fire is burning in it is not cold, because heated bodies are not cold.

[This is an instance of the whole and part tpye. Its amplified form would be :--

All heated bodies are not cold. A steam boiler is a heated body when a fire is burning in it.

Therefore, a steam boiler when a fire is burning in it is not cold.]

8. This woman is not barren, because she has a grandchild (which is the effect of the antithesis of female barrenness).

[Effect to cause, antithetical.]

9. This man is not happy, because he has present in him the causes of misery (the opposite of happiness).

[Cause to effect, antithetical].

10. Tomorrow will not be a Sunday, because it is Friday to-day.

[Antecedent to consequent, antithetical.]

11. Yesterday was not a Friday, because it is Tuesday to-day.

[Consequent to antecedent, antithetical]

12. This wall is not devoid of an outside, because it has an inside.

[Concomitance, antithetical.]

Non-contradictory negation :

13. There is no oak in this village, because there is no tree in it.

[Whole and part]

14. There are no potent rain-bearing clouds here, because it is not raining here.

[Effect to cause.]

15. There is no smoke in this place, because there is no fire here.

[Cause of effect.]

16. It will not be Sundy to-morrow, because it is not Saturday to-day.

[Antecedent to consequent.]

17. It was not Monday yesterday, because to-day is not Tuesday.

[Consequent to antecedent.]

18. The right hand pan of this pair of scales is not touching the beam, because the other one is on the same level with it.

[Concomitance.]

Contradictory affirmation :

19. This animal is suffering from some disease, because it has not got the appearance of health.

[Effect to cause.]

20 This woman is feeling unhappy, because she has been forcibly separated from her lover.

[Cause to effect, antithetical]

बा ल न्या य

[लेखकः—श्रीयुत चंपत रायजी जैन, बारिष्टर–ऍट–लॉ.]

(प्रथम वक्तव्य)

अध्यापकजी !

यह लेख जो आपके सम्मुख उपस्थित है; बालकों अर्थात् छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाके छात्रोंको न्यायमें प्रवेश करानेके लिये लिखा गया है। "युरुपीय-न्याय" तो कालिजहीमें अध्ययन कराया जाता है; किन्तु यह प्रकट है कि जो मनुष्य प्राकृतिक न्यायको जानता है, वह बिना कालिज तक पढे भी उचित नतीजा निकाल सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राकृतिक न्याय अत्यन्त सरल और सुबोध है। मेरा विचार है कि छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाके बालकोंको भले प्रकार "न्याय" की शिक्षा दी जा सकती है।

इसमें योग्यता केवल अध्यापकमें होनी चाहिये, जो कि प्रत्येक पाठ तथा दृष्टान्त भलीभांति विद्यार्थीको समझा दे। इस शिक्षामें स्मरण शक्तिपर बलात् बल डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं–यदि छात्रको समझा दिया जाय। और न इसमें कोई बात ऐसी ही है, कि उपरोक्त छात्र भलीभांति न समझ सके। इससे स्वयं छात्रकी नैतिक शक्तियां न्यायका प्रतिबिम्ब हो जायगी, और उसका मन स्वयं न्यायमें प्रवृत्त होने लगेगा। आशय यह है, कि यदि बालकों की समझमें न्याय न आये तो अध्यापक महाशयकी त्रुटि है और किसीकी नहीं।

"न्याय" के गुणोंके बारेमें भी इतना कहना उचित प्रतीत होता है कि बिना इसके जाने हुये बुद्धि तीक्षण नहीं होती, और जो इसको जानता है उसीका जीवन सफल समझना चाहिये। न्याय ही की बदौलत भारत वर्षके प्राचीन कालमें ऋषि, मुनि और विद्वान पंडितगण सारे संसारमें प्रख्यात हो गये; और न्यायके जाते रहने हीका यह फल है कि वर्तमान कालमें भारतमें चारों ओर अविद्या और अज्ञान फैला हुआ है। अतः जो मनुष्य देश और जातिके शुभचिंतक हैं, उनका कर्तव्य है कि वे यथासंभव शैशवकालहीमें अपनी सन्तान और छात्रोंके मनको "न्याय" में प्रवृत्त करावें।

इसप्रकार "न्याय" में प्रवेश करनेके अर्थ उचित है कि छठी–सातवीं कक्षा तक तो यही पाठ–जो आप लोगों के सन्मुख उपस्थित हैं–पढाये जायं। तत्पश्चात् आठवीं श्रेणीमें "न्याय दीपिका" "परीक्षा मुख" अथवा इसी प्रकारकी किसी अन्य पुस्तका अध्ययन कराया जाय। इस प्रकार छात्रोंमें न्यायकी योग्यता स्वयं बढती जायगी।

प्रथम पाठ

(क)

प्रश्न—बच्चो ! आज रविवार है; तुम बतला सकते हो कि कल कौन दिन होगा ?

उत्तर—सोमवार।

प्र०—क्या तुम बता सकते हो कि कल मंगल, बुध, या बृहस्पति वार क्यों नहीं होगा ?

उ०—क्यों कि रविवारके बाद सदैव सोमवार ही होता है, कभी दूसरा दिन नहीं होता।

प्र०—इस लिये यदि हम यह कहें, कि कल बुध होगा तो क्या हमारा कहना ठीक होगा ?

उ०—नहीं साहब ! आपका ऐसा कहना नितान्त भ्रमात्मक होगा।

(ख)

प्र०—बच्चो ! हमारी जेबमें चाबियोंका एक गुच्छा है; क्या तुम बतला सकते हो कि उसमें कितनी कुंजियें हैं ?

उ०—नहीं साहब !

प्र०—क्यों ?

उ०—इस लिये कि कोई ऐसा नियम नियत नहीं है कि जिससे किसी गुच्छेकी कुंजियोंकी संख्या निर्धारित हो सके।

उपरोक्त प्रश्नोत्तर–रीतिसे यह प्रकट है कि न्यायके अनुसार नतीजा वहीं निकाला जा सकता है कि.

१—जहां कोई निर्धारित नियम हो, और

२— वहां कोई न्यायका नतीजा नहीं निकल सकता जहां कोई निश्चित नियम नहीं है

दूसरा पाठ

बच्चो !

कल तुमको यह बताया गया था कि जहां कोई नियम नहीं है वहां कोई ठीक नतीजा नहीं निकाला जा सकता। आज हम दो उदाहरणोंपर और विचार करेंगे, कि " नियम " से क्या प्रयोजन है।

१—कल्पना करो कि एक ग्वाला सूर्य निकलनेसे पूर्व शहरमें दूध बेचनेके लिये मेरे मकानके सामनेसे जाया करता है। और यह भी कल्पना कर लो कि यह मनुष्य ५० वर्षसे लगातार योंही मेरे मकानसे जाता है—और कोई नागा कभी इससे नहीं हुई। तो क्या तुम बता सकते हो, कि प्रातःकाल भी वह मेरे मकान के सामने से गुजरेगा, या नहीं ?

२—कल्पना करो मेरा एक मित्र रामदत्त है जो १२ लडकोंका पिता है; और जिसके आज तक कभी लडकी पैदा नहीं हुई। इस रामदत्तकी पत्नी गर्भवती है। क्या तुम बता सकते हो कि उसका गर्भस्थ–बालक पुत्र होगा या पुत्री ?

इन दोनों प्रश्नोंके उत्तर "नहीं" में है। क्यों कि पहिले प्रश्नमें दूध बेचनेवालेका बीमार हो जाना अथवा किसी अन्य आवश्यककार्य या लाभकारी व्यापारमें लग जाना, या दूध ही का अभाव हो जाना संभव है। दूसरे उदाहरणमें प्रकृतिका कोई ऐसा नियम नहीं है, कि अमुक मनुष्यके घर सदैव लडके ही हों—लडकी कभी न हो।

बस हम देखते हैं कि " न्याय " के नियमका प्रयोजन ऐसी घटनाओंसे नहीं है, जो किसी मुख्य बातमें अब तक प्रचलित रहीं हों; किन्तु उस नियत नियमसे है—जो अबतक सत्य पाया गया है—और भविष्यमें भी कभी असत्य नहीं हो सकता। जैसे बालक–पनका युवावस्थासे पहले होना।

तृतीय पाठ

उपरोक्त निर्धारित नियम ६ प्रकारके हो सकते हैं, अधिक नहीं।

१—कारणके ज्ञात होनेसे कार्यका अनुमान। जैसे सुलगते हुये गीले ईंधनसे धुंवाका ज्ञान।

नोट—अध्यापकका कर्तव्य है कि बालकों के मन पर नाना उदाहरणों द्वारा यह सिद्धान्त अंकित कर दे।

२—कार्यसे कारणका ज्ञान ।

उदाहरण—धुंवेसे अग्निका बोध ।

३—पूर्व पक्षसे उत्तर पक्षका बोध ।

उदाहरणः—१—रविवारके पश्चात सोमवारका होना ।

२—शैशव कालके पश्चात् युवावस्था ।

३—युवावस्थाके पश्चात् वृद्धावस्था ।

४—उत्तरपक्षसे पूर्वपक्षका ज्ञान ।

उदाहरण—१रविवारके पूर्व शनिवारका बोध ।

—२वृद्धापेसे पूर्व युवावस्था ।

५—एक साथ होनेवाली बातोंका ज्ञान ।

उदाहरण—१ जैसे वय और अनुभव ।

—२ बालकापन और अबोधता ।

—३ फलमें उसके पकनेके चिन्ह और उसका स्वाद विशेष ।

६—व्याप्य—व्यापक अर्थात् कुलमें जुज (अंश) शामिल है; या यों कहो कि जातिके गुण व्यक्तिमें पाये जाते हैं ।

उदाहरण—१ इस फुलवाडीमें कोई फलदार वृक्ष नहीं है; अतः इसमें आम भी नहीं है ।

अध्यापकका कर्तव्य होगा कि इन ६ प्रकारके नियमोंको भली भांति बालकोंको समझा दे और नाना प्रश्नों द्वारा इस बातका भी निश्चय करा दे कि केवल ६ ही प्रकार के नियम प्रकृति में हैं—न्यूनाधिक नहीं।

चतुर्थ पाठ

बच्चो !

न्यायका सिद्धान्त "धनरूप" नियमसे निकाला जा सकता है, जिसको "अन्वय" कहते हैं ।

उदाहरण—जहां कहीं धुंवा है; वहां अग्नि अवश्य है ।

इस लिये जब कभी तुम धुंवा देखो तो मनमें तुरन्त नतीजा निकाल सकते हो कि वहां अग्नि अवश्य होगी; किन्तु अग्निको देख कर तुम यह नहीं कह सकते कि धुंवा भी वहां है । क्यों कि धुंवा तो बिना आगके हो नहीं सकता; किन्तु आग बिना धुंवाके भी हो सकती है । जैसे सुलगते हुये अंगारे की आग । और आग तथा धुंवेके पारस्परिक संबधसे तुम यह भी नतीजा निकाल सकते हो कि जहां जहां आग नहीं होती वहां वहां धुंवा भी नहीं होता । क्यों कि धुंवा बिना आगसे नहीं होता । यह 'ऋणरूप' है और इसको 'व्यतिरेक' कहते हैं ।

बस यह प्रकट है कि आग और धुंवेके संबंधसे ४ नतीजे निकलते हैं ।

१—अग्निका ज्ञान धुंवेके ज्ञानसे ।

२—धुंवेके अभावका ज्ञान अग्निके अभावके ज्ञानसे।

३—धुंवेका ज्ञान अग्निके ज्ञानसे ।

४—अग्निके अभावका ज्ञान धुंवेके अभावके ज्ञानसे।

इनमेंसे पहिले दो तो नियमानुसार हैं और इस कारणसे ठीक हैं । और पिछले दो नियमके प्रतिकूल हैं अतः ठीक नहीं । जहां अन्वय और व्यतिरेककी तुलना होती है, वहां नियम सिद्ध समझा जाता है । यथा—

१—जहां जहां धुंवा होता है वहां वहां अग्नि होती है । (अन्वय)

२—जहां जहां अग्नि नहीं होती वहां वहां धुंवा भी नहीं होता । (व्यतिरेक)

पञ्चम पाठ

बच्चो !

इस उदाहरणमें कि "इस पहाडपर अग्नि है, क्यों कि इसपर धुंवा है" अग्निको साध्य कहते हैं और धुंवेको हेतु ।

साध्य वह कहा जाता है जो सिद्ध किया जाय ।

नोट—सप्ताह दो सप्ताहमें जब यह बात बालगण समझ जावें, तो फिर आगे बढ़ो ।

हेतु वह है जिसके द्वारा साध्यकी सिद्धी हो।

यह हेतु साध्यका चिन्ह या संबंधी हुआ करता है; जैसे अग्निका चिन्ह धुंवा। क्यों कि धुंवा किसी और वस्तुका चिन्ह नहीं है। कारण यह कि धुंवा अग्नि हीसे पैदा होता है; और अग्निके अभावमें नहीं पैदा हो सकता। अतः वह अग्नि हीका चिन्ह है और इसी कारणसे तुरन्त अग्निका बोध करा देता है।

हेतु दो प्रकार का होता है, विरुद्ध व अविरुद्ध।

विरुद्ध—वह है जो साध्यके विरोधी का चिन्ह हो और जिससे साध्यके प्रतिकूल नतीजा निकले। जैसे इस घड़ेमें आग नहीं है; क्यों कि यह पानीसे भरा हुआ है। यहां पानी अग्निका विरोधी है। अतः अग्निके अस्तित्वका निषेध करता है।

अविरुद्ध हेतु—वह है जो सरलता पूर्वक साध्यके अस्तित्वको सिद्ध करता है। जैसे इस पहाड़ की चोटीपर आग है, क्यों कि वहांसे धुंवा उठ रहा है।

(विभिन्न उदाहरण)

(क) अविरुद्ध-विधि-साधक अर्थात् जिनसे अस्तित्व सिद्ध हो। जैसे—

१—शब्द परिणामी होता है; क्योंकि वह कियासे उत्पन्न होता है।

यह उदाहरण व्याप्य-व्यापकके संबंधमें है; जिसका पूरा रूप इस प्रकार बैठता है। शब्द परिणामी होता है क्यों कि वह कार्यसे उत्पन्न होता है। जो जो किये हुये होते हैं वे वे पदार्थ परिणामी होते हैं। जैसे घट। उसी प्रकार शब्द भी किया जाता है, अतएव वह भी परिणामी होता है। अथवा जो पदार्थ परिणामी नहीं होते वे किये भी नहीं जाते। जैसे बन्ध्या स्त्रीका पुत्र। बस उसी प्रकार शब्द कृतक होता है इसी कारण परिणामी भी होता है।

२—इस प्राणीमें बुद्धि है; क्यों कि बुद्धिके कार्य बचन आदि इसमें पाये जाते हैं। यहां बुद्धि साध्य है और बचनादि हेतु। कार्यसे कारण का ज्ञान होता है।

३—यहां छाया है; क्योंकि छत्र मौजूद है। यहां समर्थ कारणसे कार्यका बोध हुआ।

४—कल इतवार होगा; क्यों कि आज शनिवार है। यहां पूर्व-पक्षसे उत्तर-पक्षका ज्ञान हुआ।

५—कल इतवार था; क्यों कि आज सोमवार है। यहां उत्तर-पक्षसे पूर्व-पक्ष का ज्ञान हुआ।

६—इस आममें रस है; क्यों कि यह पका हुआ पीले रंगका है। यह सहचरका उदाहरण है।

(ख) विरुद्ध-निषेध-साधक।

७—यहां शीत स्पर्श नहीं है; क्यों कि अग्नि-ताप मौजूद है। यहां अग्नि, शीत से विरुद्ध है और ताप, अग्नि का व्याप्य है। अतः वह अग्नि का ज्ञान कराता है।

८—यह मनुष्य अस्वस्थ है; क्यों कि शय्याग्रस्त है। यह उदाहरण कार्यसे कारणके निषेधका ज्ञान विरुद्ध रूप से कराता है। क्यों कि स्वास्थ्यके निषेधका बोध होता है—उसके विरोधी बीमारीके कार्य अर्थात् शय्या-ग्रस्त होने से।

९—इस जीवको सुख नहीं है; क्यों कि उसके हृदयमें व्यग्रता मौजूद है। यहां दुखका कारण हृदयकी व्यग्रता है। अतः वह दुखको जनावेगी और दुखके अस्तित्वमें—जो सुखका विरोधी है—सुख का होना असम्भव है ही।

१०—कल इतवार नहीं होगा; क्यों कि आज शुक्र है। यह उदाहरण पूर्व-पक्षसे उत्तर पक्षका है। शुक्रवार यहां शनिवारका विरोधी माना गया है।

११—कल शुक्रवार नहीं था; क्यों कि आज मंगल है। यहां मंगलको बृहस्पतिका विरोधी मानकर उत्तर पक्षसे पूर्व पक्षका अनुमान किया है।

१२—इस भीतमें उस ओरके भागका अभाव नहीं है; क्यों कि इस ओरका भाग मौजूद है। यह सहचरका दृष्टान्त हुआ।

(ग) अविरुद्ध-निषेध-साधक।

१३—इस नगरमें शीसम नहीं है; क्यों कि यहां

वृक्षका अभाव है। यह उदाहरण व्याप्य-व्यापकके संबंधमें है।

१४—यहां बरसाऊ बादल नहीं है; क्यों कि यहां वर्षा नहीं हो रही। यह उदाहरण कार्य्य-कारणके संबंधका है।

१५—यहां धुंवा नहीं है; क्यों कि यहां अग्नि नहीं है। यहां कार्य्यसे कारणकी ओर ध्यान गया।

१६—कल रविवार नहीं होगा; क्यों कि आज शनिवार नहीं है।

१७—कल सोमवार नहीं था; क्यों कि आज मंगल नहीं है।

१८—इस तराजूका दाहिना पलडा डंडीको नहीं छू रहा है; क्यों कि दूसरा पलडा उसके बराबर है। यह सहचरका उदाहरण है।

(घ) विरुद्ध–विधि–साधक।

१९—इस प्राणीमें रोग है; क्यों कि इसकी चेष्टा निरोग नहीं पाई जाती।

२०—इस स्त्रीके हृदयमें पीडा है; क्यों कि यह अपने पतिसे हठात् पृथक् कर दी गई है।

अध्यापक महाशय को उचित है कि नाना उदाहरणों द्वारा इन चारों किसमके अनुमानोंका ज्ञान बालकोंको करा दें॥ इति।

सम्पादकीय टिप्पणी—ऊपरके दोनों लेख (इंग्रेजी और हिन्दी) लेखक महाशयने, खास करके बालकोंको न्यायशास्त्रका सरल रीतिसे बोध करा देनेके हेतुसे लिखे हैं। मनुष्यमें रही हुई बुद्धि–शक्तिको विकसित करने और सत्यासत्यके विचारकी जिज्ञासाको तृप्त करने में एकमात्र साधन न्यायशास्त्र ही है। न्यायवेत्ताओंकी दृष्टिमें जिस मनुष्यने न्यायशास्त्रका अध्ययन नहीं किया वह, चाहे, फिर अन्य सभी विषयोंमें पारंगत क्यों न हो, परंतु " बाल " ही कहलाता है। " अधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रः बालः। " (जिसने व्याकरण, काव्य, कोश आदिका अध्ययन तो कर लिया है परंतु न्यायशास्त्रका अध्ययन नहीं किया वह 'बाल' ही है) यह नैयायिकोंके " बाल " का लक्षण है। इस लक्षणमें सत्यता अवश्य रही हुई है। क्यों कि विना न्यायशास्त्रका अध्ययन किये मनुष्य सत्यासत्यका भी निर्णय नहीं कर सकता और पदार्थके कार्य–कारणका भी ज्ञान नहीं कर सकता। न्यायतत्त्वके जाने बिना मनुष्यकी बुद्धिशक्ति कुंठित हो रहती है और विचारशक्ति अन्धी बनी रहती है। अतः इस कथनमें कोई भी अत्युक्ति नहीं है कि न्याय शास्त्रके अध्ययन विनाका मनुष्य बिलकुल " बाल " ही है।

भारतके प्राचीन विद्वानोंने न्यायशास्त्रका कितना सूक्ष्म और विस्तृत परिशीलन किया है इसकी साधारण जनोंको तो कल्पना भी आनी कठिन है। उन्होंने एक एक विषयपर तो क्या परंतु एक एक मामूली विचारपर भी सेंकडों ग्रंथ और हजारों श्लोक लिख डाले हैं! उनके इन गहन तर्कोंको देख कर आज कलके विद्वान् मनुष्यका मस्तिष्क भी चकराने लगता है तो फिर औरोंकी तो बात ही क्या। एक तो यों ही यह विषय कठिन है और फिर उसपर इनकी भाषा संस्कृत होकर इसकी शैली उससे भी कठिनतर है। इस लिये विना संस्कृतका अच्छा अभ्यास किये न्यायतत्त्वका ज्ञान होना आज प्रायः हमारे देशवासियोंके लिये दुर्लभ्य हो रहा है। इस दुर्लभताको कुछ सुलभ बनानेके लिये और सर्व साधारणको सहज ही में इस विषयका परिचय प्राप्त करा देनेके लिये श्रीयुत जेनीजीने यह प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। आप इस बारेमें लिखते हैं कि—" मेरा दृढ विश्वास है कि मनुष्य यदि प्राकृतिक नियमोंका विधिपूर्वक अनुशीलन कर ले तो न्यायशास्त्रका दुरूहपथ उसके लिये भलीभांति प्रशस्त हो सकता है। इसी विचारको भविष्यमें कार्य रूप प्रदान करनेके निमित्त यह लेख प्रकाशित कराया जाता है। ताकि इस शास्त्रके धुरंधर विद्वानों द्वारा इसकी उचित समालोचना हो जाय। अगर इन नियमोंमें यदि किसी महानुभावको संशोधन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो पूरी छानबीनके बाद कर दी जाय। इस लेख द्वारा इस शैलीकी उपयोगिता सिद्ध हो जाने पर इस विषयको पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका उद्योग किया जायगा। जिससे मातृभाषा भाषी छात्र न्यायमें प्रवेश करके सत्यासत्यका स्वयं निर्णय कर सकें। "

आशा है कि विद्वानवर्ग जेनी महाशयके इस उच्च आशयको लक्ष्यमें लेकर इस बारेमें अपनी योग्य सम्मति प्रकाशित करेंगे।

दक्षिण भारतमें ९ वीं-१० वीं शताब्दिका जैन धर्म।

[लेखकः—स्वर्गस्थ कुमार देवेन्द्र प्रसादजी जैन]

गंग वंश।

भारतवर्षके प्राचीन राजवंशोंमें पश्चिमके गंगवंशीय राजा जैनधर्मके कट्टर अनुयायी थे। यह बात परम्परासे चली आई है कि नंदीगण सम्प्रदायके सिंहनन्दी नामक एक जैनधर्मके आचार्यने, गंगवंशके प्रथम राजा शिवमारको राज्यसिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता दी थी। एक शिलालेखमें इस बातका वर्णन है कि शिवमार कोंगुणी वर्मा सिंहनन्दीका शिष्य था, और दूसरेमें यह कि सिंहनन्दी मुनिकी सहायता से गंगवंश वैभवसंपन्न हुआ। एतदर्थ इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जैन-ग्रन्थोंमें इस भावके श्लोक पाए जायं कि गंगवंशीय राजा सिंहनन्दीकी चरणवन्दना करते हैं[3]। अथवा जिस राजवंशका जन्म एक जैन धर्माचार्यकी कृपासे हुआ हो उसके राजाओंका कट्टर जैनधर्मावलम्बी होना भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसे लेख विद्यमान हैं जो इस बातको निस्संदेह सिद्ध कर देते हैं कि गंगवंशीय राजा जैनधर्मके उन्नायक और रक्षक थे। ईस्वाकी चौथीसे बारहवीं शताब्दी तकके अनेक शिलालेखोंसे इस बातका प्रमाण मिलता है कि गंगवंशके शासकोंने जैन मन्दिरोंका निर्माण किया, जैन प्रतिमाओंकी स्थापना की, जैनतपस्वियोंके निमित्त चट्टानोंसे काट काटकर गुफाएं तैयार कराईं और जैनाचार्योंको दान दिया।

मारसिंह द्वितीय।

इस वंशके एक राजाका नाम मारसिंह द्वितीय था, जिसका शिलालेखोंमें धर्ममहाराजाधिराज 'सत्यवाक्य' कोंगुणिवर्मा—परमानडी मारसिंह नाम मिलता है। इस राजाका शासन काल चेर, चोल, और पाण्ड्य वंशोंपर पूर्ण विजयप्राप्तिके लिये प्रसिद्ध है। मारसिंह द्वितीयने अपने शत्रु वज्जलदेवके साथ सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त किया और गोनूर और उच्छंगीमें उसने बहुत घनघोर युद्ध लड़े। जैन सिद्धान्तोंका सच्चा अनुयायी होनेके कारण इस महान नृपने अत्यन्त ऐश्वर्यसे राज्य करके राजपद त्याग दिया और धारवार प्रांतके बांकापुर नामक स्थानमें अपने प्रसिद्ध धर्म-गुरु अजितसेनके सन्मुख

१ देखो Repertoire d'epigraphie Jaina (A. A. Guerinot शिलालेख नं. २१३ और २१४; तथा चन्द्रगिरि पहाड़ी पर स्थित पार्श्वनाथबस्तीके शिलालेखका निम्न लिखित पद्य—

"योऽसौ घातिमलद्विषद्बलशिला—स्तम्भावली—खण्डन—
ध्यानासिः पटुरर्हतो भगवतः सोऽस्य प्रसादीकृतः।
छात्रस्यापि स सिंहनन्दिमुनिना नो चेत् कथं वा शिला-
स्तम्भो राज्यरमागमाध्वपरिघस्तेनासिखण्डो घनः"॥
(श्रवण बेळगोल शिलालेख, नं. ५४, पृष्ठ ४२)

२ सलेम जिलेकी Manual-Revd.T F.Foulkes द्वितीय भाग, पृ० ३६८ का निम्न लिखित पद्य देखिए—

"यस्याभवत् प्रवरकाश्यपवंशजोऽग्रे
कण्वो महामुनिरनल्पतपःप्रभावः।
यः सिंहनन्दिमुनिपप्रतिलब्धवृद्धि—
गंगान्वयो विजयतां जयतां वरः सः॥"

लुईस राईसके पाठानुसार 'महित' की जगह 'मुनिप' पाठ दिया है, जो ठीक संगत मालूम देता है।

३ "श्रीदेशीयगणाब्धिपूर्णमृगभृच्छ्रीसिंहनन्दिव्रति—
श्रीपादाम्बुजयुग्ममत्तमधुपः सम्यक्त्वचूडामणिः॥
श्रीमज्जैनमताब्धिवर्द्धनसुधासूतिर्महीमण्डले
रेजे श्रीगुणभूषणो बुधनुतः श्रीराजमल्लो नृपः॥"
(बाहुबली चरित्र, श्लोक ८)

तीन दिनोंके व्रतसे शरीर त्याग दिया। मारसिंह द्वितीयकी समाधिका लेख कुगे ब्रह्मदेव खंभ नामक स्तम्भके निम्न भागमें चारों ओरके शिलालेखोंमें विद्यमान है। वह स्तम्भ श्रवण बेलगोल (माइसोर) की चन्द्रगिरी पहाडियोंपर स्थित मन्दिरोंके द्वारपर है४। यद्यपि इस लेखमें कोई तिथि नहीं लिखी है,—तथापि मारसिंह द्वितीयके मृत्युकी तिथि एक दूसरे शिलालेखके आधारपर सन ९७५ ई० निश्चय की गई है५।

चामुण्डराय।

चामुण्डराय या चामुण्डराज इस महान नृपतिक६ सुयोग्य मंत्री था। इस मन्त्रीके शौर्यही के कारण मारसिंह द्वितीय वज्जलसे तथा गोनूर और उच्छंगीके रणक्षेत्रोंमें विजय प्राप्ति कर सका। श्रवणबेलगोलके एक शिलालेखमें चामुण्डराय की इस प्रकार प्रशंसा की हुई है—" जो सूर्यकी भांति ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी उदयाचलके शिरकी मणिकी नाई भूषित करता है; जो चंद्रमाकी भांति अपने यशरूपी किरणोंसे ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी समुद्रकी वृद्धि करता है; जो ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी खानियुक्त—पर्वतसे उत्पन्न मालाका मणि स्वरूप है और जो ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी अग्निको प्रचण्ड करनेके हेतु प्रबल पवनके समान है; ऐसा चामुण्डराय है।

"कल्पान्त क्षुभित समुद्रके समान भीषणबलवाले और पातालमलके अनुज वज्जलदेवको जीतनेके हेतु इन्द्र नृपतिकी आज्ञानुसार, जब उसने भुजा उठाई; तब उसके स्वामी नृपति जगदेकवीरके विजयी हाथीके सन्मुख शत्रुकी सेना इस प्रकार भाग गई जैसे दौडते हुए हाथीके सन्मुख मृगोंका दल।

"जिसकी उसके स्वामीने नोलम्बराजसे युद्धके समय इस प्रकार प्रशंसा की थी " जो वज्ररूप दांतोंसे शत्रुके हाथियोंके मस्तकको विदीर्ण करता है और जो शत्रुरूपी हिंस्र जीवोंके लिये अंकुशके समान है। ऐसे हाथीवत् आप जब वीर से वीर योद्धाओंके सन्मुख विराजमान हैं तो ऐसा कौन नृप है जो हमारे कृष्णवाणोंका ग्रास न बने"।

" जो नृप रणसिंहसे लडते हुए इस प्रकार गर्ज कर बोला, " हे नृपति जगदेकवीर! तुम्हारे तेजसे मैं एक क्षणमें शत्रु को जीत सकता हूं, चाहे वह रावण क्यों न हो, उसकी पुरी लंका क्यों न हो, उसका गढ त्रिकूट क्यों न हो, और उसकी खाई क्षारसमुद्र क्यों न हो।"

"जिसको स्वर्गांगनाओंने यह आशीर्वाद दिया था " हम लोग इस वीरके बहुतसे युद्धोंमें उसका कण्ठालिंगनसे उत्कंठित हुई थीं, परन्तु अब उसकी खड्गकी धारके पानीसे हमलोग तृप्त हुई है। हे रणरंगसिंहके विजेता! तुम कल्पांत तक चिरंजीव रहो। जिसने चलदंकगंग नृपतिकी अभिलाषाओंको व्यर्थ कर दिया, जो अपने भुजविक्रमसे गंगाधिराज्यके वैभवको हरण करना चाहता था; और जिसने वीरोंके कपालरत्नोंके प्याले बना कर और उनको वीरशत्रुओंके शोणितसे भरकर खूनके प्यासे राक्षसोंकी अभिलाषाको पूर्ण किया।" उपरोक्त शिलालेख स्वयं चामुण्डराजका लिखा हुआ अपना वर्णन है। परन्तु ऐसा जान पडता है इस शिलालेखका अधिक भाग अप्राप्य है। ऐसा मालूम देता है कि हेग्गडे कन्नने, अपने लिए केवल अढाई पंक्तिओंका लेख लिखनेके लिए, चामुण्डरायके मूल—लेखको तीन और अच्छी तरहसे घिसा दिया; और केवल एकही ओरके लेखको

४ देखो, लुईसराईस रचित 'श्रवणबेलगोलके शिलालेख' नं ३८।

५ देखो, मेलागानिका शिलालेख जिसको लुईस राईसने अपने 'श्रवण बेलगोलके शिलालेखोंकी भूमिकाकी पाद टीकामें उद्धृत किया है। पुनः देखो, एपिग्राफिया इन्डिका, भाग ५, शिलालेख नं. १८।

६ इन्द्र चतुर्थ, तृतीय कृष्णका पोत्र-देखो 'एपिग्राफिया इन्डिका' भाग ५, लेख नं० १८।

७-८ "ब्रह्मक्षत्रकुलोदयाचलशिरोभूषामणिर्भानुमान
ब्रह्मक्षत्रकुलाब्धिवर्द्धनयशोरोचिः सुधादीधितिः।
ब्रह्मक्षत्रकुलाकराचलभवश्रीहारवल्लीमणिः
ब्रह्मक्षत्रकुलाग्निचण्डपवनश्चामुण्डराजोऽजनि॥
कल्पान्तक्षुभिताब्धिभीषणबलं पातालमल्लानुजम्
जेतुम् वज्जलदेवमुद्यतभुजस्येन्द्रक्षितीन्द्राज्ञया।

रख छोड़ा, जिसका अनुवाद ऊपर दिया है। "चामुण्डरायने एक ग्रन्थकी रचना की जिसका नाम चामुण्डराय पुराण है और जिसमें २४ तीर्थंकरोंका संक्षिप्त इतिहास है और उसके अन्तमें ईश्वर नाम शक संवत्सर ९०० (९७८ ईस्वी) उसकी तिथि दी हुई है[९]"। उपरोक्त शिलालेखके श्लोकोंमें दिया हुआ वर्णन चामुण्डरायपुराणके वर्णनसे मिलता जुलता है। उस पुराणके प्रारंभके अध्यायमें यह लिखा है कि उसका स्वामी गंगकुल चूडामणि जगदेकवीर नोलम्बकुलान्तक-देव था; और वह ब्रह्मक्षत्रवंशमें उत्पन्न हुआ था। अन्तके अध्यायमें यह लिखा है कि वह अजितसेनका शिष्य था।

पत्युः श्रीजगदेकवीरनृपतेर्जैत्रद्विपस्याग्रतो
धावद्दन्तिनि यत्र भग्नमहतानीकं मृगानीकवत् ॥
अस्मिन् दन्तिनि दन्तवज्रदलितद्विट्कुम्भिकुम्भोपले
वीरोत्तंसपुरोनिषादिनि रिपुव्यालाङ्कुशे च त्वयि।
स्यात् को नाम न गोचरः प्रतिनृपो मद्वाणकृष्णोरग-
ग्रासस्येति नोलम्बराजसमरे यः श्लाघितः स्वामिना ॥
खातः क्षारपयोधिरस्तु परिधिश्चास्तु त्रिकूटः पुरी—
लङ्कास्तु प्रतिनायकोऽस्तु च सुरारातिस्तथापि क्षमे।
तं जेतुं जगदेकवीरनृपते त्वत्तेजसीतिक्षणात्
निर्व्यूढं रणसिंहपार्थिवरणे येनार्जितं गर्जितम् ॥
वीरस्यास्य रणेषु भूरिषु वयं कण्ठग्रहात्कण्ठया
नृमाः सम्प्रति लब्धनिर्वृतिरसास्तत्-खड्गधाराम्भसा।
कल्पान्तं रणरङ्गसिंहविजयि जीवेति नाकाङ्गना
गीर्वाणीकृतराजगन्धकरिणे यस्मै वितीर्णाशिषः ॥
आक्रष्टुं भुजविक्रमादभिलषन् गङ्गाधिराज्यश्रियं
येनादौ चलदङ्कगङ्गनृपतिर्व्यर्थाभिलाषी कृतः।
कृत्वा वीरकपालरत्नचषके वीरद्विषः शोणितं
पातुं कौतुकिनश्च कोणपगणाः पूर्णाभिलाषीकृताः ॥

(त्यागद ब्रह्मदेवस्तम्भका शिलालेख, ई. स. ९८३; देखो, लु. रा. श्रवणबेलगोल. पृष्ठ ८५)

९. लुईस राईस 'श्रवणबेलगोलके शिलालेख' भूमिका पृ. २२; तथा कर्नल मेकेञ्जीका कलेक्शन (एच. एच. विल्सनद्वारा संपादित, भाग १, पृ. १४६; जहां यह लिखा है कि चामुण्डराय पुराणमें जैन धर्मके ६३ प्रसिद्ध पुरुषोंका वर्णन है।

तथा कृतयुगमें वह षण्मुख था, त्रेतामें राम, द्वापरमें गाण्डीवि और कलियुगमें वीर मार्तण्ड था। फिर उसकी अनेक उपाधियोंके प्राप्त होनेके कारण लिखे हैं। खेडग युद्धमें विज्जलदेवको परास्त करनेसे उसको समरधुरन्धर-की उपाधि मिली। नोलम्बयुद्धमें गोनूर नदीकी तीर, उसकी वीरतापर 'वीरमार्तण्ड' की उपाधि, उच्छंगी गढके युद्धके कारण'रणरंगसिंह'की उपाधि,बागलूरके किलेमें' त्रिभुवन-वीर' और अन्य योद्धाओंका वध करने और गोविन्दको उस किलेमें प्रवेश कराने के उपलक्ष्यमें 'वैरीकुलकालदण्ड' की उपाधि; काम नामक नृपति के गढमें राजा तथा अन्य लोगोंको हरानेसे 'भुजविक्रम' की उपाधि, अपने कनिष्ठ भ्राता नागवर्मा को उसके द्वेषके कारण मारडालने के निमित्त 'चलदंकगंग' की उपाधि; गंगभट मुद्दु राचय्यके वधसे 'समर-परशुराम' और 'प्रतिपक्ष-राक्षस' की उपाधियां; सुभटवीर के गढको नाश करनेके कारण 'भटमारि' की उपाधि; अपनी और दूसरोंके वीरगुणोंकी रक्षाके कारण 'गुणवं काव' की उपाधि; उसकी उदारता एवं सद्गुण आदिके कारण 'सम्यक्त्व रत्नाकर' की उपाधि; दूसरोंके धन दारा हरण की इच्छा न करनेसे 'शौचाभरण' की उपाधि; हास्यमें भी कभी असत्य न बोलनेसे 'सत्य युधिष्ठिर' की उपाधि; अत्यन्त वीर योद्धाओंके शिरोमणि होनेके कारण 'सुभटचूडामणि' की उपाधि मिली। अन्तमें अपने ग्रन्थमें वह अपनेको 'कविजनशेखर' भी कहता है।

इन उपरोक्त उल्लेखोंमेंसे बहुतोंका और कहीं वर्णन नहीं है। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि इतने प्रसिद्ध और गौरवान्वित कार्योंके साथ उसके एक भी धार्मिक कार्यका वर्णन नहीं है। प्रत्युत आदिसे अन्त तक युद्ध और रक्तपातकी ही कथा वर्णित है।[१०]

परन्तु इस बातको सिद्ध करने के लिए सन्देह रहित प्रमाण उपस्थित है कि वृद्धावस्था प्राप्त होनेपर चामुण्ड-

१०. देखो, लुईस राईस, 'श्रवण बेलगोलके शिलालेख, 'भूमिका, पृ. ३४.

राय अधिकतर अपने गुरु अजितसेनकी सेवामें, धार्मिक विचारोंमेंही, अपना समय व्यतीत करता था और श्रवण बेलगोल (माइसोर) के विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि पर गोमटेश्वर और नेमिनाथकी विशाल मूर्तियोंकी स्थापना करने और अपनी सम्पत्तिके अधिक भागका इन मूर्तियोंकी पूजामें व्यय करने के कारण उसका नाम जैनमतके महान् उन्नायकों में अमर हो गया।

राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीय।

गंगवंशीय मारसिंह द्वितीयके मरणोपरान्त पाञ्चालदेव, जिसका पूरा नाम धर्ममहाराजाधिराज सत्यवाक्य कोंगुणी वर्मा पाञ्चलदेव था, सिंहासनारूढ हुआ। उसके अनन्तर राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीय[11] राजा हुआ जिसका पूर्ण नाम धर्म–महाराजाधिराज सत्यवाक्य कोंगुणीवर्मा राचमल्ल था। चामुण्डराज राचमल्ल अथवा राजमल्ल द्वितीयका भी मन्त्री था। एक शिलालेखमें लिखा है, "राय (अर्थात् चामुण्डराय) नृपति राचमल्ल का श्रेष्ठ मन्त्री"[12], और दूसरे में "चामुण्डराय जो वैभवमें नृपति राचमल्ल का द्वितीय है"[13] बाहुबली–चरित्र नामक एक जैनग्रन्थमें यह लिखा है कि राजमल्ल नामक एक नृपति था, जो सिंहनन्दी मुनिका चरणोपासक था। चामुण्डभूप (अथवा राज) उसका मन्त्री था।[14] एक हस्तलिखित पुस्तकमें लिखा है कि "चामुण्डराय जो 'रणरङ्गमल्ल' 'असहाय–पराक्रम' 'गुणरत्नभूषण' 'सम्यक्त्व–रत्न–निलय' आदि उपाधिधारी है, जो सिंहनन्दी महामुनिद्वारा अभिनन्दित गंगवंशीय नृपति राजमल्लदेवका महामात्य (प्रधानमन्त्री) है"[15]।

चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्तियों और मन्दिरों का वर्णन करनेके पूर्व यह उत्तम होगा कि हम उन स्थानोंका संक्षेप वर्णन करें जिनमें उक्त धार्मिक स्मारक स्थित हैं और जो आजकल जैनयात्रियोंके लिये अत्यन्त पवित्र तीर्थ है।

श्रवण बेलगोल।

श्रमण बेलगोल अर्थात् श्रमण या जैनियोंका बेलगोल माइसोरमें हसन जिलेके चन्नरायपत्न तालुकेमें एक ग्राम है। हल्ले बेलगोल और कोडी बेलगोल नामक दो बेलगोलोंसे पृथक् करनेके लिये यहां बेलगोलके पूर्व श्रवण शब्दका प्रयोग हुआ है। कानडी भाषामें बेलगोलका अर्थ है "श्वेतसरोवर" और बहुतसे शिलालेखोंमें "धवल सरोवर" "धवल सरस" और "श्वेतसरोवर" का उल्लेख है,[16] और उस स्थान पर स्थित मनोहर सरोवर ही के कारण उसका यह नाम पड़ा होगा। वहां दो पहाडियां हैं। एक उसके उत्तरमें और एक दक्षिणमें। उनके

---

११ डॉ० फ्लीटके मतमें राचमल्ल नाम शुद्ध है (देखो, एपिग्राफिया इन्डिका, भाग ५, लेख नं. १८) और कुछ शिलालेखोंमें भी यह नाम मिलता है, पर जिन शिलालेखोंका हमने भूमिकामें उध्दृत किया है वे राजमल्ल नाम हीका उपयोग करते है। और देखो, एपिग्राफिया करणाटिका, भाग २, लेख नं. १०७.

१२ 'राचमल्ल भवरवग मंत्री–रायने।'

(भांडारी बस्ती शिलालेख, ल. रा. श्रवण बेलगोल, लेख पृ० १०३)

१३ "राचमल्ल जगन नुतन अभिभिषण द्वितीयविभवं चामुण्डरायम" (द्वारपालक दरवाजे के बाईं ओरका शिलालेख, देखो, ल. रा. श्रवण० पृ० ६७

१४ "श्रीदेशीयगणाब्धिपूर्णमृगभृच्छ्रीसिंहनन्दिव्रति—
श्रीपादाम्बुजयुग्ममत्तमधुपः सम्यक्त्वचूडामणिः।
श्रीमज्जैनमताब्धिवर्धनसुधासूतिर्महीमण्डले
रेजे श्रीगुणभूषणो बुधनुतः श्रीराजमल्लो नृपः॥...
तस्यामात्यशिखामणिः सकलवित् सम्यक्त्वचूडामणि
र्भव्याम्भोजविरोचनमणिः गुणनन्दिव्रातचूडामणिः।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रकुमणिः कीर्त्यौघमुक्तामणिः
पादन्यस्तमहीशमस्तकमणिश्चामुण्डभूपोऽग्रणीः॥"

(बाहुबलीचरित्र, श्लोक ६–११)

१५ सिंहनन्दिमुनीन्द्राभिनन्दितगङ्गवंशललाम......
श्रीमद्राजमल्लदेव—महीवल्लभमहामात्यपदविराजमान–रणरङ्गमल्ला—सहायपराक्रम—गुणरत्नभूषण—सम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणग्रामनामसमासादितकीर्ति...श्रीमच्चामुण्डराय—भव्यपुण्डरीक—द्रव्यानुयोगप्रश्नानुरूपं......"

(अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्तीरचित गोमटसार टीका)

१६ श्रवण० शिलालेख नंबर १०८ तथा ५४.

नाम क्रमशः चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि हैं, जिनपर जैनियोंके मन्दिर और प्रतिमाएं हैं; और शिलालेख भी हैं जिनसे जिनमतके प्राचीन इतिहासपर बहुत प्रकाश पडता है । एक परम्परागत किम्वदन्तीके अनुसार चन्द्रगिरि नाम चन्द्रगुप्तके कारण पडा है, जो अपने गुरु भद्रबाहु और उसके १२००० शिष्योंके साथ एक भयंकर दुर्भिक्ष के निकट आनेपर पाटलिपुत्र छोडकर दक्षिणकी ओर चला गया था । चन्द्रगिरि ही पर भद्रबाहुने अपने नश्वर शरीरका त्याग किया और अन्तकालमें उसके निकट केवल एक ही शिष्य उपस्थित था और वह उपरोक्त चन्द्रगुप्त था । यदि हम जैन–किम्वदन्तीको स्वीकार करलें तो परिणाम यही निकलता है कि उपरोक्त चन्द्रगुप्त जो भद्रबाहु मुनिका शिष्य था, प्रसिद्ध मौर्य–सम्राट् ही है ।[१७]

चन्द्रगिरि ही पर चामुण्डरायने एक भव्य मंदिर निर्माण करा था जिसमें उसने २२ वें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्ति स्थापित करवाई । तदनन्तर चामुण्डरायके पुत्रने उसका दूसरा खण्ड भी बनवा दिया और उसमें तइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति स्थापित की गई । यह दोनों खण्ड ईसाकी दसवीं शताब्दी में निर्मित हुए और उनसे उस समयकी गृह निर्माण कलाका उत्तम बोध होता है ।

गोम्मटेश्वर ।

विन्ध्यगिरिपर चामुण्डरायने बाहुबली अथवा भुजबलीकी, जिनका अधिक लोकप्रसिद्ध नाम गोम्मटस्वामी अथवा गोम्मटेश्वर है, एक विशाल प्रतिमाका निर्माण किया । कालान्तरमें चामुण्डरायके अनुकरण करके वीर–पाण्ड्यके मुख्याधिकारीने कर्कल (दक्षिणी कनारा) में सन् १४३२ ई० में गोम्मटेश्वर की दूसरी मूर्ति बनवाई । और कुछ काल उपरान्त प्रधान तिम्मराज ने येनूर (दक्षिणी कनारा) में सन् १६०४ ई० में गोम्मटेश्वरकी उसी प्रकारकी एक और मूर्ति बनवाई ।[१८]

ये "विशाल एक ही पत्थरमें बनी हुई नग्न जैन-मूर्तियां संसारके आश्चर्योंमेंसे हैं"[१९] ये "निस्संदेह जैन-प्रतिमाओंमें सर्वोत्कृष्ट और समस्त एशियाकी पृथक्-स्थित प्रतिमाओंमें सबसे बडी हैं । ऊंचाई पर स्थित होनेके कारण, कोसोंतक दृष्टि गोचर होती हैं । और एक विशिष्ट सम्प्रदायकी होने पर भी, उनका विशाल गुरुत्व और दिव्य शान्ति-प्रकाशक स्वरूपके कारण हमें उन्हें प्रतिष्ठा युक्त ध्यानसे देखना पडता है । श्रवण बेलगोल वाली सबसे बडी मूर्तिकी ऊंचाई लगभग ५६½ फीट है और कटिके निम्नभागमें उसकी चौडाई १३ फीट है । वह 'नीस (Gneiss)' पत्थरके एक बडे टुकडेसे काटकर बनाई गई है; और ऐसा जान पडता है कि जिस जगह पर वह आज स्थित है वहीं पर वह बनी थी । कर्कलवाली मूर्ति जो उसी पत्थर की है, परन्तु जिसकी लम्बाई १५ फीट कम है, अनुमानसे ८० टन तौलमें होगी । इन भीमकायमूर्तिओंमें सबसे छोटी येनूरवाली मूर्ति है जो ३५ फीट लम्बी है । ये तीनों मूर्तियां लगभग एकसी हैं, परन्तु येनूरवाली मूर्तिके कपोलोंमें गड्ढे हैं और उससे गंभीर मुसकुराहट-कासा भाव प्रकट होता है, जिसके कारण लोगोंका यह कहना है, कि उसके प्रभावोत्पादक–भावमें न्यूनता आ गई है । जैन कलाकी अति एकनियमबद्धताका यह उत्तम प्रमाण है कि यद्यपि येनूरवाली मूर्तिकी मुसकराहटको छोडकर वस्तुतः तीनों विशाल मूर्तियां एक हीसी हैं, तथापि उनके निर्माण कालोंमें बडा अन्तर है[२०] ।"

१७ इस विषय पर विशेष देखनेके लिये देखो—एपिग्राफिया कर्नाटका, भाग २, भूमिका पृ० १–२४ और भी देखो मिसज सिनक्लेयर स्टिवन्सन रचित "दि हार्ट आव जैनीजम" पृ० १२ ।

१८ श्रवण बेलगोलकी मूर्तियोंके लिये देखो—'इन्डियन एन्टीक्वेरी' भाग २, पृ. १२९; 'एपिग्राफिया इन्डिका,' भा. ७ पृ. १०८, लुईस राईसका 'माईसोर और कुर्ग' पृ. ४७ । कर्कलकी मूर्तियोंके लिये देखो—'इन्डियन एन्टीक्वेरी' भाग २, पृ. ३५३, 'एपिग्राफिया इन्डिका' भा. ७, पृ. ११२ । —येनूरकी मूर्तियोंके विषयमें देखो—'इन्डि. एन्टी.' भा. ५, पृ. ३७, एपि. इन्डि. भा. ७, पृ. ११२ ।

१९ देखो—'इम्पीरियल गेझेटियर आव इन्डिया' पृ. १२१.

२० देखो—विन्सेण्ट स्मीथ रचित 'ए हिस्टरी आव फाईन आर्ट इन इन्डिया एन्ड सिलोन' पृ. २६८ ।

चामुण्डराय–निर्मित मूर्ति "केवल तीनोंमें अधिक प्राचीन अथवा लम्बी ही नहीं है, किन्तु बडी ढालू पहाडीकी चोटीपर स्थित होने और एतदर्थ उसके निर्माणमें बडी कठिनाइयोंका सामना करनेके कारण उसका वृत्तान्त सबसे अधिक रोचक है। यह मूर्ति दिगम्बर है और उत्तराभिमुख सीधी खडी है......जंघोंके ऊपर वह बिना सहारेके है। उरुस्थल तक वह वल्मीकसे आच्छादित बनी हुई है, जिसमेंसे सर्प निकल रहे हैं। उसके दोनों पदों और बाहुओंके चारों ओर एक वेलि लिपटी हुई है जो बाहुके ऊपरी भागमें फलोंके गुच्छोंमें समाप्त होती है। एक विकसित कमलपर उसके पैर स्थित हैं।"[२१]

श्रवण बेलगोलकी गोमटेश्वरकी मूर्त्तिके निम्न भागका शिलालेख।

श्रवण बेलगोलकी गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके दाहिने और बाएं पैरोंके समीप छोटासा लेख है। दाहिने पैरका लेख यह है:—

श्रीचामुण्डराजं माडिसिदं;
श्रीचामुण्डराजन [शे] ग्व [व] इत्तां:
श्रीगंगराज सुत्तालयवं माडिसिद:

अर्थात्—

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया,
श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया,
श्रीगंगराजने चैत्यालय निर्माण कराया।

"प्रथम और तृतीय पंक्तिकी लिपि और भाषा कानडी है। द्वितीय पंक्ति प्रथम पंक्तिका तामिल अनुवाद है, और उसमें दो शब्द हैं जिनमें पहला 'ग्रन्थ' और दूसरा 'वट्टलुत्तु' लिपिमें है। पहिली दो पंक्तियोंमें यह लिखा है कि चामुण्डराजने मूर्त्ति बनवाई; और तीसरी पंक्तिमें लिखा है कि गंगराजने मूर्त्तिके आसपासका भवन बनवाया।"[२२]

बाईं ओरके पत्थरमें यह लेख है—

श्रीचामुण्डराजे करविपलें
श्रीगंगराजे सुत्ताले करविपले।

अर्थात्—

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया।
श्रीगंगराजने चैत्यालय निर्माण कराया।

"इसकी लिपि नागरी है और भाषा मराठी है... शायद महाराष्ट्र देशके जैनयात्रियोंके लाभार्थ मराठी भाषाका प्रयोग किया गया है।"[२३]

चित्र ई ६ में† हमने उपरोक्त शिलालेखोंकी प्रतिलिपि दी है। पहिले बाईं ओरका लेख है। दोनों पंक्तियोंमें एकही प्रकारके अक्षर होनेके कारण बाईं ओर के लेखका गंगराजके समयमें खुदा जाना माना जाता है, जब उसने चामुण्डराज स्थापित गोमटेश्वर मूर्तिके चारों ओर भवन निर्माण कराया। यह देखते हुए भी यह बात सम्भव जान पडती है कि बाईं ओरका लेख दाहिनी ओर वालेका केवल दूसरी भाषामें रूपान्तर है।

गंगराज।

गंगराज होयशाल–वंशीय–नृपति विष्णुवर्धनका मन्त्री था, जिसने ईसाकी १२ वीं शताब्दीमें शासन किया। लगभग सन् ११६० ई० के एक शिलालेखमें गंगराज, चामुण्डराय और हुल्लकी प्रशंसा इस प्रकार पाई जाती है।

"यदि यह पूछा जाय कि प्रारम्भमें (श्रवण बेलगोलमें) जैन–मतके कौन २ उन्नायक थे–तो कहना होगा कि (वे थे) राचमल्ल नृपति का मन्त्री राय, उसके

इन मूर्तियोंकी शिल्पकलाका विशेष वर्णन जाननेके लिये—स्लरक (Slurrock) रचित 'मन्युअल आव साउथ कनारा, पृ. ८५, फर्गुसन साहबकी 'हिस्टरी आव इन्डियन आर्किटेक्चर, पृ. २६७, 'फ्रेजर्स मेगजीन' के मई १८७५ के अंकमें प्रकाशित मि. वालहाउस का लेख, इत्यादि देखने चाहिए।

२१ देखो, एपिग्राफिया कर्नाटिका, भाग २, भूमिका पृ. २८.

२२-२३ देखो, एपिग्राफिया इन्डिका. भाग ७, पृ. १०८-९।

† इस लेखके साथ लेखकने कई चित्र देने चाहे थे परंतु उनका अकाल स्वर्गवास होजानेके कारण वे चित्र हमें न मिल सके।

संपादक।

अनन्तर, नृपति विष्णुका मन्त्री गंग; और उसके पश्चात् नृसिंहदेव नृपतिका मन्त्री हुल्ल । यदि और भी इसके योग्य हैं, तो क्या उनके नाम न लिये जायंगे ? ''[२४]

मूर्तिके नीचेके शिलालेखके अतिरिक्त ११८० ई० के लगभगके एक और शिलालेखमें इस प्रकार इसका वर्णन है—

" जिसमें बुद्धिमत्ता, धर्मिष्ठता, वैभव, उत्तमाचरण, और शौर्यका समावेश है, ऐसा राचमल्ल गंगवंशका चन्द्र था, उसका यश भूमंडल व्यापी था । नृपतिसे वैभवमें द्वितीय [उसका मन्त्री चामुण्डराय], मनुके समान, क्या उसीने अपने प्रयत्नसे यह गोम्मट नहीं बनवाया ? ''[२५]

भुजबलीका वृत्तान्त, किम्वदन्तियोंके आधार पर । तीनों मूर्त्तियां बाहुबली, या भुजबलीको व्यक्त करती हैं, जिनको गोम्मटेश्वर भी कहते हैं और जो जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर आदिजिन ऋषभनाथके पुत्र थे । लोककथाके अनुसार ऋषभनाथ एक राजा थे और उनके दो स्त्रियां थीं, जिनके नाम थे नन्दा (या कुछ लोगोंके मतमें सुमंगला) और सुनन्दा । नन्दा या सुमंगलाने दो जुड़वे उत्पन्न किए; जिनमें एक लड़का था और एक लड़की थी और जिनके नाम थे क्रमशः भरत और ब्राह्मी । जब ऋषभदेवने अनन्त ज्ञानकी खोजमें वनवास स्वीकार किया; तब उन्होंने अपने राज्यका भार भरतको सौंपा । बाहुबली और उनकी बहिन सुन्दरी सुनन्दाकी सन्तान थे, और जब उनके पिताने अपने पुत्रोंको राज बांट दिया तो बाहुबली तक्षशिलाके सिंहासनपर सुशोभित हुए । भरतके पास एक अद्भुत चक्र था जिसका सामना कोई भी योद्धा रणमें न कर सकता था । इस चक्रकी सहायतासे पृथ्वी, विजय करके भरत अपनी राजधानीको लौट आया । परन्तु चक्र राजधानीमें (अथवा दूसरोंके मतसे—अस्त्रालयमें) प्रविष्ट नहीं होता था । भरतने इसका अर्थ यह समझा कि पृथ्वीमें कोई ऐसा राज्य शेष है जिसको उसने नहीं जीता है; और विचार करनेपर यह फल निकला कि केवल तक्षशिलाका राज्य शेष था, जहां उसका भाई भुजबली राज्य करता था । तब भरतने अपने भाई भुजवली पर युद्ध ठान दिया परंतु उस घोर युद्धमें विजयलक्ष्मी भुजवलीको प्राप्त हुई । भरतके चक्रसे भी भुजवलीको कोई हानि नहीं पहुंची। परन्तु विजयी होनेपर भी इस संसारको असार जानकर भुजवली क्षणभर में समाधिस्थ हो गए । भरतने भुजबलीकी वंदना की और फिर अपने स्थानको लौट आए। फिर भुजवली कैलाश पर्वतके शिखरोंमें चले गए और वहां (अथवा दूसरे वर्णनके अनुसार—युद्धभूमिमें) वर्षभर मूर्तिकी भांति खड़े रहे[२६] तटस्थ वृक्षोंमें लपटी हुई लताएं उनके गलेमें लिपट गईं । उन्होंने अपने वितानसे उनके शिरपर छत्र सा बना दिया और उनके पैरोंके बीचमें कुश उग आए और देखनेमेंमें वे मानों वल्मीक प्रतीत होने लगे[२७] । अन्तमें भुजबलीको अनन्त ज्ञानकी प्राप्ति हुई और वे केवली हो गए ।

परन्तु एक शिलालेखमें यह लिखा है कि भुजवली या बाहुवली और भरतके पिता पुरु थे[२८] । और उसके आगे यह लिखा है कि,—''पुरुदेवके पुत्र भरतने, जिसके चारों ओर उसके पराजित राजा वास करते हैं, प्रसन्नतासे विजयी बाहुवली केवली की मूर्त्ति निर्माण कराई जो पौदनपुरके समीप है और ५२५ चाप लम्बी है । बहुत समयके अनन्तर अनेक लोक भयकारी कुक्कुट-सर्प उस

२४ देखो, एपिग्राफिआ करनाटिका, भाग २, भूमिका पृ. ३४. हुल्ल होयशालवंशीय नृपति नरसिंह प्रथमका मंत्री था । वह १२ वीं शताब्दीमें विद्यमान था।

२५ देखो, एपि. कर्ना. भा. २, पृ. १५४. मूर्तिके निर्माणके संबंधमें यह पंक्ति है—" चामुण्डरायं मनुप्रतिमं गोम्मट अल्ते माडिसिदन् इन्ती वेवनं बतनदिम् "

२६ देखो, जिनसेन रचित हरिवंश पुराण, अध्याय ११ । कुछ भिन्न वर्णनके लिए देखो, कथाकोश (टवेनी द्वारा इंग्रेजीमें अनुवादित) पृ. १९२-९५.

२७ देखो, कथाकोश, पृ. १९२-९५.

२८ " पुरुसुतु-बाहुबलि-बोळ् " एपि. कर्ना. भा. २ शिलालेख नं. ८५, पृ. ६७.

जैनकी मूर्ति के आसपास उत्पन्न होगए और इसी कारण मूर्तिका नाम कुक्कुटेश्वर पड़ गया " [२९]

इन लोकप्रसिद्ध कथाओंके द्वारा हम समझ सकते हैं कि उन वल्मीकमयी मूर्त्तियों का क्या भाव है जिनसे सर्प निकल रहे हैं, तथा श्रवण बेलगोल कर्कल और येनूर गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तियोंमें लिपटी हुई लताओंका क्या तात्पर्य है ? " तीनों मूर्तियोंमें ये सब बातें एक समान हैं और उनसे यह भाव प्रकट होता है कि, वे तपस्या में ऐसे पूर्ण लीन होगए हैं कि उनके पैरों पर वल्मीक लग जाने; और शरीरमें लताओंके चिपट जाने पर भी सांसारिक विषयोंपर उनका ध्यानभंग नहीं होता । " [३०]

चामुण्डरायकी मूर्त्तिके स्थापनका वृत्तान्त ।

बाहुबली चरित्र नामक एक संस्कृत काव्य में चामुण्डराय—द्वारा—स्थापित गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिकी स्थापनाकी कथा इस प्रकार वर्णित है ।

बाहुबली चरित्रकी कथा ।

द्रविड देशकी मधुरा नगरी (वर्तमान मदुरा) में राजमल नामक एक राजा था; जिसने जैन सिद्धान्तों के प्रचारका उद्योग किया और जो देशीय—गण [३१] के सिंहनन्दिका उपासक था । उसके मन्त्रीका नाम चामुण्डराय था । एक दिन जब राजा अपनी सभामें मन्त्रीयोंके सहित विराजमान था, एक पथिक व्यापारी आया और उनसे कहा कि उत्तरमें पौदनपुरी नामक एक नगर है जहां भरत द्वारा स्थापित बाहुबली अथवा गोम्मटकी एक मूर्ति है । यह सुनकर भक्त चामुण्डरायने उस पवित्र मूर्त्तिके दर्शन करनेका विचार किया और घर जाकर अपनी माता कालिकादेवीसे यह वृत्तान्त कहा, जिसपर उसने भी वहां जानेकी इच्छा प्रकट की । चामुण्डराय तब अपने गुरु अजितसेनके पास गया, जो सिंहनन्दिका उपासक था । उसने सिंहनन्दिके सन्मुख यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं बाहुबली मूर्त्तिके दर्शन न कर लूंगा तब तक मैं दूध न ग्रहण करूंगा । नेमिचन्द्र अपनी माता और अनेक सैनिकों एवं सेवकोंके सहित चामुण्डराजने यात्रा प्रारंभकी और विन्ध्यगिरि (श्रवण बेलगोल) में जा पहुंचा । रात्रिमें जैनदेवी कुष्माण्डी (बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी यक्षिणी दासी) ने चामुण्डराज नेमिचन्द्र और कालिकाको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि पौदनपुरीको जाना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इसी पहाडीपर पहिले पहिल रावण द्वारा स्थापित बाहुबलीकी एक मूर्त्ति है । और उसके दर्शन तभी हो सकते हैं, यदि एक सुवर्ण—बाणसे इस पहाडीको फाड दिया जाय । स्वप्नके अनुसार, दूसरे दिन चामुण्डरायने दक्षिणाभिमुख पहाडीपर खडे होकर अपने धनुषसे एक सुवर्ण-बाण छोडा । तत्क्षण पहाडके दो टुकडे होगए और बाहुबलीकी एक मूर्त्तिके दर्शन हुए । चामुण्डरायने तब उस मूर्त्तिकी स्थापना और प्रतिष्ठा की तथा उसके पूजार्थ कुछ भूमि लगा दी । जब नृपति राजमलने यह वृत्तान्त सुना तो उसने चामुण्डराजको 'राय'की उपाधि प्रदान की और उस मूर्त्तिकी नियमित पूजाके लिए और भी भूमि प्रदान की ।

राजावली कथेके अनुसार कथा ।

देवचन्द्र-द्वारा-रचित कानडी भाषाकी एक नवीन पुस्तकमें भी यही कथा वर्णित है, परंतु कहीं कहीं कुछ बातोंमें अन्तर है । उसमें लिखा है कि चामुण्डराय राजा

२९ " धृत—जयबाहु—बाहुबलिकेवलि—रूपसमान—पञ्चविंशति—समुपेत—पञ्चशतचापसमुन्नतियुक्तम् अप्प तन्—प्रतिकृतियं मनोमुददे माडिसिदं भरतं जिताखिलक्षितिपतिचक्रि पौदनपुरान्तिकदोल् पुरुदेव—नन्दनम् । चिरकालं सल नज्जिनाकृति—धरित्री—देशदोल् लोकभीकरणं कुक्कुटसर्पसंकुलं असंख्यं पुट्टि दल् कुक्कुटेश्वरनामन्......" (देखो, एपि. कर्ना. भा. २, पृ. ६७.)

३० लु. रा. का, श्रवण बेलगोल, भूमिका पृ. ३३.

३१ जब नन्दी संघके जैन आचार्य सारे देशमें फैल गये, तब उनके संघका नाम 'देशीयसंघ' हो गया ।

देखो बाहुबली चरित्रका निम्न श्लोक—

" पूर्वे जैनमतागमाब्धिविधुवच्छ्रीनन्दिसंघेऽभवन्
सुज्ञानर्द्धितपोधनाः कुवलयानन्दा मयूखा इव ।
सत्सङ्गे भुवि देशदेशनिकरे श्रीसुप्रसिद्धे सति
श्रीदेशीयगणो द्वितीयविलसन्नाम्ना मिथः कथ्यते ॥"

राजमल्लका एक अधीन-शासक था। उसकी माताने पद्म पुराणका पाठ सुनते समय यह सुना कि पौदनपुरमें बाहुबलीकी एक मूर्त्ति है। इस लिए अपने पुत्रसमेत वह उस मूर्त्तिके दर्शनको चली, परन्तु मार्गमें एक पहाडीपर, जहां भद्रबाहु स्वामीका देहान्त हुआ था उसने स्वप्न देखा जिसमें पद्मावती देवीने उसे दर्शन देकर कहा कि उसी पहाडीपर बाहुबलीकी एक मूर्त्ति है जो पत्थरोंसे आच्छादित है, और जिसकी पूर्व समयमें राम, रावण, और मन्दोदरीने पूजा की थी। फिर दूसरे दिन एक बाण मारनेसे बाहुबलीकी मूर्त्ति दृष्टि-गोचर हुई।

इस प्रकार जैनियोंकी किम्बदन्तियोंके अनुसार यह पता लगता है कि चामुण्डरायने उस मूर्त्तिको नयी निर्माण नहीं कराया, किन्तु उस पहाडीपर एक मूर्त्ति विद्यमान थी जिसकी उसने सविधि स्थापना और प्रतिष्ठा कराई। इन लोक-कथाओंके अनुसार श्रवण बेलगोलके प्रधान पुरोहितने भी यह कहा था, कि प्राचीन कालमें इस स्थानपर एक मूर्त्ति थी, जो पृथ्वीसे स्वतः निर्मित हुई थी, और जो गोम्मटेश्वर स्वामीके स्वरूपकी थी। उसकी राक्षसराज रावण सुखप्राप्तिके हेतु उपासना करता था। चामुण्डरायको यह विदित होनेपर उसने कारीगरों द्वारा उस मूर्त्तिके सब अंगोंको उचित रूपसे सुडौल बनवाया। उसके सब अंग मोक्षकी इच्छासे ध्याना-वस्थित गोम्मटेश्वर स्वामीके असली स्वरूपके समान थे। उसने उनके चारों ओर बहुतसे मन्दिर और भवन बनवाए। उनके बनजानेपर उसने बडे उत्सव एवं भक्ति-पूर्वक मूर्त्तिकी उपासनाका क्रम प्रारंभ किया।[३२] स्थल-पुराणसे उद्धृत एक अवतरणमें यह लिखा है जो उपरोक्त कथासे मिलता-जुलता है।

स्थल-पुराणमें वर्णित कथा।

" चामुण्डराजने सपरिवार, पदनपुरस्थित-देव गोम्म-टेश्वर एवं उसके आसपास स्थित १२५४ अन्य देवताओंके दर्शनार्थ यात्रा प्रारंभ की। देव गोम्मटेश्वरके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुनकर, वह मार्गमें श्रवण बेलगोल क्षेत्रमें जा पहुंचा। वहां उसने गिरे पडे मन्दिरोंका जिर्णोद्धार किया और अन्य विधानोंके साथ पंचामृत-स्नान की भी प्रक्रिया कि। दैनिक, मासिक, वार्षिक एवं अन्य उत्सवोंके संचालनके, लिए उसने सिद्धान्ता-चार्यको मठका गुरु नियत किया। मठमें उसने एक 'सत्र' स्थापित किया जहां यात्रियोंके लिए भोजन औषध और शिक्षाका प्रबन्ध था। उसने अपनी जाति-वालोंको इस लिए नियत किया, कि वे तीनों वर्णोंके यात्रियोंकी, जो दिल्ली, कनकाद्रि, स्वितपुर, सुवापुर, पापापुरी, चम्पापुरी, सम्मिदगिरि, उज्जयन्तगिरि, जय-नगर आदिस्थानोंसे आवें, आदरपूर्वक सेवासुश्रूषा करें। इस कार्यके लिए मन्दिरमें कई ग्राम लगादिए गए। उसने चारों दिशाओंमें शिला-शासन लगवा दिए। १०९ वर्षों तक उसके पुत्रपौत्रोंने इस दानको निय-मित रक्खा "[३३]

अब हमें इस बातका निर्णय करना उचित है कि यह बात कहांतक ठीक है कि चामुण्डराय श्रवण बेल-गोलकी गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिका केवल अनुसन्धानकर्त्ता था। भुजबली चरित्र अथवा बाहुबली चरित्र नामक ग्रन्थ संस्कृत छन्दोंमें है, और उसमें केवल जनश्रुति-योंका समुच्चय है, और कई मुखोंतक पहुंचनेके कारण उनमें विचित्रता आगई है। इस ग्रन्थका रचनाकाल ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। परन्तु इसकी लेखशैलीसे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके स्थापनाके बहुत काल पश्चात् बना होगा। राजावली कथे जैन इतिहास, किम्बदन्ती, आदिका बृहत् संग्रह है जिसको वर्तमान शताब्दीके पूर्व-भागमें माईसोर राजवंशकी एक महिला देवी रम्मके निमित्त मलेपूरकी जैनसंस्थाके देवचन्द्रने रचा था।[३४]

३२ बेली पागलका ऐतिहासिक और किम्बदन्तियोंके आधार पर वर्णन. (एशियाटिक रिसर्च, भाग ९, पृ. २६३.)

३३ " स्थल पुराण " से लिया हुआ केप्टेन आई. एस. एफ. मेकेंजीका अवतरण (इन्डियन एन्टीक्वेरी, भाग २, पृ० १३०).

३४ देखो, ल. रा. का श्रवण बेलगोल, भूमिका पृ. ३, (१८८९).

एतदर्थ यह ग्रन्थ भी प्रस्तुत प्रश्नके निर्णयके हेतु प्रमाणकोटिमें नहीं परिगणित किया जा सकता। राजावली-कथे और स्थलपुराणमें, ग्रन्थकर्ताओंने ऐतिहासिक घटनाओंकी यथार्थताके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया है, क्योंकि उनका विषय दन्तकथाओं एवं जनश्रुतियोंका संग्रह था। यह सत्य है कि इन कथाओंमें कहीं कहीं ऐतिहासिक सामग्री विद्यमान है, परन्तु उनको तबतक बिना जांचे ऐतिहासिक घटनाएं न मान लेना चाहिए, जबतक अन्य अधिक विश्वस्तसूत्रोंके आधारपर उनकी यथार्थता सिद्ध न हो जाय। स्थलपुराणकी निर्मूल बातोंके उदाहरण स्वरूप यह पंक्ति लिखी जा सकती है—"चामुण्डराज, दक्षिण मदूराका राजा, और जैन-क्षत्रिय-पाण्डु-वंशोत्पन्न था।"[३५] इससे इस बातका पता लगेगा कि किस प्रकार किम्वदन्तियोंमें मन्त्री चामुण्डरायको मदूराका राजा वर्णन किया गया है।

यदि यह सिद्ध करनेके लिए, कि, इस मूर्त्तिको किसने निर्माण कराया, कोई विश्वस्त अथवा समकालीन लेख न होता तो इन किम्बदन्तियोंके आधारपर यह बात संदिग्ध रहती कि चामुण्डरायने स्वयं इस मूर्त्तिको बनवाया। परन्तु हमारे लिए यह सौभाग्यकी बात है कि यह सिद्ध करनेके लिए लेख विद्यमान है कि, चामुण्डराय हीने न कि और किसीने, गोम्मटेश्वरकी मूर्त्ति बनवाई।

सबसे प्रथम, उस मूर्त्तिके पैरोंवाला शिलालेख है—जिसका वर्णन पहिले हो चुका है—जिसमें यह साफ साफ लिखा है कि चामुण्डरायने इस मूर्त्तिको निर्मित किया। द्वितीय, एक अन्य शिलालेखमें, जिसकी तिथि ११८० ई० है, हम ऊपर देख चुके हैं कि चामुण्डरायने निज उद्योगसे इस मूर्त्तिको बनवाया। इन लेखोंका समर्थन एक पुस्तकसे होता है, जिसका नाम है गोम्मटसार और जिसको आचार्य नेमिचन्दने, जो चामुण्डरायके समकालीन थे, रचा है। उसमें निम्नलिखित वर्णन है।

"गोम्मटसंग्रहसूत्रकी जय हो, जिसमें गोम्मटगिरि स्थित गोम्मटजिन और गोम्मटराज-निर्मित दक्षिण-कुक्कुट—जिनका वर्णन है।"

"उस गोम्मटकी जय हो, जिसके द्वारा मूर्त्तिका मुख निर्मित हुआ, जिसको सब सिद्ध और देवताओंने देखा।"[३६]

गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके कारण जिस गिरिपर यह स्थित थी उसका नाम गोम्मटगिरि होगया और इस बारेमें नेमिचन्द्र यह शब्द प्रयुक्त करते हैं। "चामुण्डराय द्वारा निर्मित (विणिम्मिय)"। हम कह चुके हैं कि पोदनपुरमें भरत द्वारा स्थापित गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिका नाम कुक्कुटेश्वर हो गया, जब उसके चारों ओर सर्प निकल आए। चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्त्तिका नाम दक्षिण कुक्कुट-जिन होगया, जिससे उत्तरीय मूर्त्तिसे वह भिन्न जानी जा सके। इस मूर्त्तिको बनवानेके कारण चामुण्डरायका नाम गोम्मटराय पड़गया।

इन प्रमाणोंसे इस बातमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि चामुण्डराय ही ने इस मूर्त्तिका निर्माण कराया। इस महान् कार्यके कारण वह स्वयं गोम्मटराय कहलाने लगा। परन्तु यदि उसने केवल मूर्त्तिका अनुसन्धान ही किया होता तो कदापि यह बात न होती। चामुण्डरायके गुरु नेमिचन्द्र मूर्त्तिस्थापनके समय अवश्य विद्यमान होंगे (क्योंकि बाहुबली चरित्रतकमें यह लिखा है कि उस अवसरपर नेमिचन्द्र भी उपस्थित थे) अतएव

---

३५ केप्टेन मेकेन्जी द्वारा उद्धृत 'स्थलपुराण' का अवतरण (इन्डि. एन्टी. भाग २, पृ. १३०) यह कहना भी उचित होगा कि सेनगणकी पट्टाबिलिमें भी ऐसा ही लिखा हुआ है—"दक्षिण मधुरानगर निवासि—क्षत्रियवंश शिरोमणी—दक्षिण तैलंग कर्नाटक देशाधिपति चामुण्डराय प्रतिबोधक—बाहुबील प्रति बिम्ब गोमट प्रतिष्ठापकाचार्य—श्री अजितसेन भट्टारकाणाम्।" (देखो, जैन सिद्धान्तभास्कर, भाग १, सं. १, पृ. ३८.)

३६ "गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥
जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वहुसिद्धिदेवेहिं ॥
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥
(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, श्लोक ९६८-६९)

नेमिचन्द्रके शब्दोंको, जिनका समर्थन शिलालेखसे होता है, इस प्रश्नके सम्बन्धमें प्रमाणित मानना चाहिए।

तो फिर इसका क्या कारण है कि बाहुबली चरित्र राजावली कथे आदिग्रन्थोंमें चामुण्डरायको मूर्त्तिका केवल अन्वेषकही लिखा गया है? शायद कारण यह हो कि इन ग्रन्थोंके लेखक मूर्त्तिको अधिक प्राचीन कहकर अधिक पूज्य और पवित्र बनाना चाहते थे।

गोम्मटरायकी मूर्त्तिके सम्बन्धमें एक और किम्बदन्ती है जिसमें इस बातका वर्णन है कि ऐसी मूर्त्तिको स्थापन करनेके कारण चामुण्डरायके गर्वने किस प्रकार नीचा देखा। कथा इस प्रकार है:—

"इस मूर्त्तिको स्थापित करनेके अनन्तर चामुण्डराय यह सोचकर मारे गर्वके फूला न समाया कि मैंने अपने ही सामर्थ्यसे, इतने धन और परिश्रमसे इस देवताकी स्थापना करा ली। तदनन्तर जब उसने देवताकी पंचामृत-स्नान-विधि की, तो इस पदार्थसे भरे अनेक पात्र चुक गए, परन्तु देवताकी अलौकिक मायासे, पंचामृत तोंदीसे नीचे न जा सका, जिससे उपासकके व्यर्थाभिमानका नाश हो। कारण न जानकर चामुण्डरायको यह सोचकर अत्यन्त शोक हुआ कि पंचामृतसे समस्त मूर्त्तिको स्नान करानेकी मेरी इच्छा पूर्ण न हुई। जब वह इस अवस्थामें था, देवताकी आज्ञानुसार पद्मावती नाम्नी अप्सरा एक वृद्धा निर्धन स्त्रीका रूप धारणकर प्रकट हुई, जिसके हाथमें एक बेलियगोलमें (छोटी चांदीकी कटोरी) मूर्त्तिके स्नानके हेतु पंचामृत था। उसने चामुण्डरायसे मूर्त्तिको स्नान करानेका प्रस्ताव प्रकट किया। परन्तु चामुण्डराय यह समझकर, उस असंभव प्रस्तावपर हंस दिया, कि जिसको मैं नहीं कर सका उसे यह करने चली है। परन्तु विनोदार्थ उसने उसे यह करनेकी आज्ञा देदी। तब दर्शकोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसने उस चान्दीके छोटे पात्रहीसे समस्त मूर्त्तिको स्नान करा दिया। तब चामुण्डरायने अपने अपराध एवं गर्वके लिए शोक प्रकाशित करके, बड़े आदरसे, द्वितीय बार स्नानकी विधि की, जिसमें पहिले उसने इतनी सामग्री व्यर्थ खो दी थी, और पूर्ण रूपेण उसने मूर्त्तिके समस्त शरीरको स्नान कराया। उस समयसे इस स्थानका नाम, उस चान्दीके पात्रके कारण, जो पद्मावती हाथमें लिए थी, बेलियगोल पड़ गया।"[३७]

मूर्त्ति निर्माणकी तिथि।

अब हम अनुमानसे उस तिथिका निश्चय करेंगे जिसमें चामुण्डरायने गोम्मटेश्वरकी मूर्त्ति निर्माण कराई। हम कह चुके हैं कि चामुण्डराय मारसिंह द्वितीय और राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीयका मन्त्री था। किम्बदन्तीके अनुसार राजमल्लके समयमें मूर्त्ति स्थापित हुई। हम देख चुके हैं कि मारसिंह द्वितीयके शासनकालमें चामुण्डरायने अनुपम शौर्यकी ख्याति प्राप्त की थी और एक शिलालेखमें, जिसमें उसने अपना वृत्तान्त दिया है, वह केवल अपनी जीतोंका वर्णन करता है। उसके द्वारा किए हुए किसी धार्मिक कार्यका उनमें वर्णन नहीं है। यदि मारसिंह द्वितीयके समयमें उसने इस विशाल-मूर्त्तिका निर्माण कराया होता तो वह इस बातका अवश्य वर्णन करता। क्योंकि इससे उसका नाम अमर हो गया है। मारसिंह द्वितीयकी मृत्यु सन ९७५ ई० में हुई। चामुण्डराय अपने ग्रन्थ चामुण्डराय पुराणमें अपनी वीरताका सविस्तर वर्णन करता है और अपनी समस्त उपाधियोंका वर्णन करके उनके प्राप्तिके कारण भी बताता है; परन्तु गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके निर्माणका तनिकभी उल्लेख नहीं किया है। इस ग्रन्थके अन्तमें, उसका रचना काल शक ९०० (९७८ ईस्वी) दिया है। अतएव ९७८ ईस्वीके अनन्तर और राजमल्ल या राचमल्ल द्वितीयके शासनके अन्तिम वर्षके पूर्व गोम्मटेश्वरकी इस मूर्त्तिका निर्माण हुआ होगा। राजमल्ल द्वितीयने ९८४ ईस्वीतक राज्य किया। इस लिए

---

३७ एशियाटिक रीसर्च, भाग ९, पृ. २६६। उपरोक्त वर्णनमें श्रवण बेलगोलके नाम पडनेका बिल्कुल दूसरा कारण बताया गया है। अभी कुछ दिन हुए जैनोंने गोम्मटेश्वरका पंचामृत स्नान कराया था।

९७८ और ९८४ ईस्वीके अन्तर्गत कालमें इस मूर्त्तिका निर्माण हुआ होगा।

बाहुबली चरित्रमें एक श्लोक है जो मूर्त्तिस्थापनका ठीक ठीक समय बताता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

कल्क्यब्दे षट्शताख्ये विनुतविभवसंवत्सरे मासि चैत्रे,
पञ्चम्यां शुक्लपक्षे दिनमणिदिवसे कुम्भलग्ने सुयोगे।
सौभाग्ये मस्तनाम्नि प्रकटितभगणे सुप्रशस्तां चकार
श्रीमच्चामुण्डराजो वेल्गुलनगरे गोमटेश-प्रतिष्ठाम्॥"

अर्थात्—श्रीचामुण्डरायने बेलगुल नगरमें कुम्भलग्नमें, रविवार शुक्ल पक्ष चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन विभवनाम कल्कि-संवत्सर ६०० के प्रशस्त मृगशिरा नक्षत्रमें, गोमटेशकी प्रतिष्ठा की।

यदि हम उपरोक्त तिथिको यथार्थ मान लें, क्योंकि सम्भव है ऐसे उत्तम मुहूर्तमें ऐसा बडा कार्य किया गया हो, तो हमें यह निकालना पडेगा कि ९७८ और ९८४ ईस्वीके अन्तर्गत किस दिन यह सब योग पडते थे। हमने भलीभांति सावधानीसे ज्योतिषकी रीतियोंके अनुसार सर्व सम्भाव्य तिथियोंको जांचा है और उसका परिणाम यह निकलता है कि रविवार ता० २ अप्रैल सन ९८० ई० को मृगशिरा नक्षत्र था और पूर्व दिवससे (चैत्रकी बीसवीं तिथि) शुक्ल पक्षकी पंचमी लगगई थी, और रविवारको कुम्भ लग्न भी था। अतएव जिस दिन चामुण्डरायने मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की उसकी हम यही तिथि मान सकते हैं परन्तु उपरोक्त श्लोकमें एक बात है जो प्रथम बार देखनेसे इतिहासके विरुद्ध जान पडती है। इस श्लोकमें यह कहा गया है कि कल्क्यब्द ६०० विभवनाम संवत्सरमें गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा हुई। शक सम्वत् महावीरके निर्वाणके ६०५ वर्ष ५ मास पश्चात् प्रारम्भ होता है[३८] और कल्कि संवत् शक संवत्के ३९४ वर्ष ७ मास अनन्तर प्रारम्भ होता है। अर्थात् वीरनिर्वाणके १००० वर्ष अनन्तर कल्कि संवत् आरम्भ होता है। अतएव, कल्कि संवत्का आरम्भ ४७२ ईस्वीसे होता है। इसलिए कल्कि संवत् ६०० (४७२+६००) १०७२ ईस्वी सन् होगा। परन्तु यह बात इतिहासके विरुद्ध है, क्योंकि राचमल्ल द्वितीयका शासन सन् ९८४ ईस्वीमें समाप्त होता है। इसके अतिरिक्त ज्योतिष गणनासे भी यह ज्ञात होता है कि कल्कि संवत् ६०० में चैत्र शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथि, चैत्रके तेईसवें दिन शुक्रवारको पडती है, जो उपरोक्त श्लोकसे विरुद्ध है क्योंकि उसके अनुसार उस साल चैत्र शुक्ल पंचमीको रविवार था।

अतएव कल्कि संवत् ६०० का अर्थ कल्कि संवत्की छठी शताब्दी लेना चाहिए। विभव संवत्को ८ वां मानना चाहिए जिससे इतिहासानुसार ठीक ठीक बैठे। इसलिए विभवनाम कल्कि संवत् ६०० के अर्थ लेना चाहिए कल्कि संवत्की छठी शताब्दीका ८ वां वर्ष—अर्थात् ५०८ कल्क्यब्द। यदि हम इस तिथिको स्वीकार कर लें तो ठीक ९८० ईस्वीको यह सम्वत् पडता है और श्लोकमें वर्णित सर्व ज्योतिषके योग भी मिल जाते हैं।

अतएव अब हमारे माननेके लिए दो मार्ग हैं। प्रथम; कि हम बाहुबली चरित्रके श्लोकको इतिहास-विरुद्ध कहकर प्रमाणित न मानें, या जैसा हमने किया है वैसा उसका अर्थ लगावें, जिससे वह शिलालेखकी तिथिसे मिल जाय। और हमारी समझमें तो दूसरा मार्ग ग्रहण करनाही सर्वोत्तम है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती।

अब हम द्रव्यसंग्रहके लेखकके सम्बन्धमें समस्त प्राप्य सामग्री एकत्र करनेका प्रयत्न करेंगे। इस ग्रन्थके अन्तिम श्लोकसे यह पता लगता है कि इसके रचयिता मुनि नेमिचन्द्र थे।[३९] बाहुबली चरित्रमें यह लिखा है

३८ देखो, नेमिचंद्र रचित त्रिलोक सा᳚का निम्न उल्लेख—
'पण छ सयवस्स पण मासजुदं
गमिय वीरणिवुइदो सगराजा॥'
अर्थात् वीरनिर्वाणके अनन्तर ६०५ वर्ष और ५ मास व्यतीत होने पर शकराजा हुआ। (इन्डियन एन्टिक्वेरी, भाग १२, पृ. २१.)

३९ देखो, द्रव्यसंग्रह (श्लोक ५८)—
'दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥'

कि देशीय गणके नेमिचन्द्र मुनि, चामुण्डराय और उसकी माताके साथ पौदनपुर गोम्मटेश्वरके दर्शनार्थ गये थे। और नेमिचन्द्रने स्वप्न देखा कि विन्ध्यगिरिपर गोम्मटेश्वरकी एक मूर्त्ति है, और चामुण्डरायने मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा करानेके अनन्तर उसकी नित्य पूजा और त्यौंहारोंके हेतु नेमिचन्द्रके चरनोंपर कुछ ग्राम प्रदान किए जिनकी आय ९६००० मुद्रा थी।[४०]

माइसोरके शिमोगा जिलेके नगर तालुकेमें स्थित पद्मावतीके मन्दिरके हातेमें खुदे हुए लगभग सन् १५३० ईस्वीके एक शिलालेखके निम्नलिखित श्लोकसे यह पता लगता है कि चामुण्डराय नेमिचन्द्रके चरणकमलोंकी पूजा करता था। :—

" त्रिलोकसार-प्रमुख.........
.........भुवि नेमिचन्द्र।
विभाति सैद्धान्तिक-सार्वभौमः
चामुण्डराजार्चित-पादपद्मः ॥ "

अर्थात् " त्रिलोकसार और अन्य (ग्रन्थों) के रचयिता......नेमिचन्द्र सिद्धान्त सार्वभौम सुशोभित है, उसके चरणकमल चामुण्डराज द्वारा अर्चित हैं "[४१] यद्यपि इस श्लोकका कुछ भाग मिट गया है, तथापि भाव सुस्पष्ट है। ' सिद्धान्त-सार्वभौम ' सिद्धान्तचक्रवर्ती नामक उपाधिका पर्याय वाची है जो बहुधा नेमिचन्द्रके साथ प्रयुक्त होता है।

स्वयं नेमिचन्द्रने अपने ग्रन्थ गोम्मटसारमें गोम्मटराय या केवल राय की प्रशंसा की है और ऐसा हम देख चुके हैं कि यह चामुण्डरायका उपनाम है। उन प्रशंसात्मक श्लोकोंमे नेमिचन्द्रने लिखा है कि अजितसेन उस चामुण्डराय के गुरु थे जिसने गोम्मटेश्वरकी मूर्ति निर्माण कराई।[४२]

अभयचन्द्र रचित गोम्मटसारके भाष्यमें लिखा है कि यह ग्रन्थ चामुण्डरायकी इच्छानुसार रचा गया; जिसको जैनियों के पवित्र ग्रन्थोंमें वर्णित द्रव्योंकी व्याख्याका अध्यन करनेकी अभिलाषा थी। नेमिचन्द्र-रचित त्रिलोकसारकी एक अति प्राचिन सचित्र हस्तलिखित पुस्तकमें एक चित्र है जिसमें चामुण्डराय अनेक समासदोंके साथ नेमिचन्द्रसे जैन-सिद्धांतोंकी व्याख्या सुन रहे हैं।

नेमिचन्द्रके ग्रन्थ।

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवतीने इन ग्रथोंकी रचना की:— (१) द्रव्यसंग्रह (२) गोम्मटसार (३) लब्धिसार (४) क्षपणसार, और (५) त्रिलोकसार। बाहुबली चरित्रमें लिखा है कि " नेमिचन्द्र, गोम्मटसार, लब्धिसार, और त्रिलोकसारके रचयिता हैं "[४३] द्रव्यसंग्रहके अन्तिम श्लोकमें नेमिचन्द्रने अपना नाम प्रकट किया है।[४४] इसी प्रकार गोम्मटसारके एक श्लोकसे यह ज्ञात

---

४० " मास्वद्देशीगणाग्रेसररुचिरसिद्धान्तविन्नेमिचन्द्र—
श्रीपादाग्रे सदा षण्णवतिदशशतद्रव्यभूग्रामवर्यान्।
दत्वा श्रीगोमटेशोत्सवसवननित्यार्चनावैभवाय
श्रीमच्चामुण्डराजो निजपुरमथुरां संजगाम क्षितीशः।
(बाहुबलि चरित्र, श्लोक ६१.)

४१ एपि. कर्णा. भाग ८, लेख नं. ४६.

४२ "गोम्मट संगहसुत्तं गोम्मटसिंहरुवरि गोम्मटजिणे य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥
जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥
वज्जयणं जीणभवणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु।
तिहुवणपडिमाणिक्कं जेण कयं जयउ सो रायो ॥
जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ ॥
जम्हि गुणा विस्संता गणहरदेवादि—इड्ढिपत्ताणं ॥
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरु जयउ सो राओ "

४३ सिद्धान्तामृतसागरं स्वमतिमन्थक्ष्माभृदालोड्य मध्ये
लेभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणाग्रेसरः।
श्रीमद्गोमटलब्धिसारविलसत् त्रैलोक्यसारामर-
क्ष्माजश्रीसुरधेनुचिन्तितमणिन् श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥
(बाहुबलि चरित्र, श्लोक ६३)

४४ ' णेमिचंद मुणिणा भणियं जं '
(द्रव्यसंग्रह, श्लो० ५८)

होता है कि नेमिचन्द्रने इसकी रचना की है।[४५] हम समझते हैं, इस स्थानपर नेमिचन्द्रके ग्रन्थोंका संक्षिप्त वृत्तान्त दे देना उत्तम होगा।

गोम्मटसार।

इसका नाम गोम्मटसार पडनेका कारण यह है कि यह चामुण्डरायके पठनार्थ लिखा गया था, और हम बतला चुके हैं कि चामुण्डरायका दूसरा नाम गोम्मटराय था। इस ग्रन्थको पञ्चसंग्रह भी कहते हैं[४६] क्योंकि इसमें इन पाँच बातोंका वर्णन दिया है (१) बन्ध (२) बध्यमान (३) बन्धस्वामी (४) बन्धहेतु और (५) बन्ध-भेद।

यह ग्रन्थ प्राकृतमें है और इसमें १७०५ श्लोक हैं। इसके दो भाग हैं जिनके नाम हैं जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड। इनमें क्रमानुसार ७३३ और ९७२ श्लोक हैं। जीवकाण्डमें मार्गणा, गुणस्थान, जीव, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, और उपयोगका वर्णन है। कर्मकाण्डमें ९ अध्याय हैं, जिनके नाम हैं—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, बन्धोदयसत्त्व, सत्त्वस्थानभंग, त्रिचूलिका, स्थानसमुत्कीर्तन, प्रत्यय, भवचूलिका, त्रिकरणचूलिका, और कर्मस्थिति-रचना। आठ प्रकारके कर्म और कर्मबन्धका अपनी अपनी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके साथ सविस्तर वर्णन भी दिया हुआ है। कर्मके सम्बन्धके अन्य अनेक विषयोंका भी इसमें वर्णन है। संक्षेपसे गोम्मटसारके प्रथम भागमें जीवोंके स्वाभाविक गुण, और उनकी उन्नतिके उपायों और उपकरणोंका वर्णन है; और दूसरे भागमें उन कर्मबन्ध उत्पन्न करनेवाली अडचणोंका वर्णन है, जिनके निवारण करनेसे जीवोंको मुक्ति प्राप्त होती है। ग्रन्थकर्ता सर्वदा जीवकी उत्तरोत्तर उन्नतिको ध्येय मानता है, और इसी लक्ष्यसे उसने गोम्मटसारमें जैन-आचार्योंके सिद्धान्तोंका सार दिया है। साधारण रूपसे इस ग्रन्थमें जैन-दर्शन शास्त्रके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका समावेश है।

गोम्मटसारके भाष्य।

स्वयं चामुण्डरायने कानडी भाषामें गोम्मटसारकी एक टीका रची थी। गोम्मटसारके अन्तिम श्लोकमें इस बातका उल्लेख है कि चामुण्डरायने सर्व साधारणकी भाषामें वीर-मार्तण्डी नाम्नी एक टीका रची।[४७] चामुण्डरायकी एक उपाधि-वीर-मार्तण्ड थी, इस लिए उसने अपनी टीकाका नाम रक्खा 'वीर-मार्तण्डी' अर्थात् वीर-मार्तण्डकी रची हुई। चामुण्डरायकी उक्त टीका अब अप्राप्य है, अन्य एक दूसरी टीकामें अब केवल इसका उल्लेख मात्र है, जिसका नाम है केशववर्णीया वृत्ति, (अर्थात् केशववर्णी रचित)। उसके प्रथम श्लोकमें लिखा है "मैं कर्नाटक-वृत्तिके आधारपर गोम्मटसारकी वृत्ति लिख रहा हूं।"[४८] गोम्मटसारपर एक और टीका है जिसका नाम है मन्द-प्रबोधिका, और जिसके टीकाकार हैं अभयचन्द्र।[४९] इन्हीं टीकाओंके आधारपर टोडरमलने हिन्दी भाषामें एक टीका लिखी है; जिसका वर्तमान समयके जैन-पंडितोंमें बहुत प्रचार है।

नेमिचन्द्रके गुरु।

गोम्मटसारमें अनेक मुनियोंके नाम दिये हैं जिनको नेमिचन्द्र आचार्य कहकर वन्दना करता है। वे नाम इस प्रकार हैं:—अभयनन्दि, इन्द्रनन्दि, वीरनन्दि,

४५ सिद्धं तुदयतडुग्गयाणिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया।
गुणरयणभूसणं बुहिमइवेला भरउ भुवणयलं॥
(गोम्मटसार, कर्मकांड, गाथा ९६७)

४६ 'श्रीमच्चामुण्डराय प्रश्नानुरूपं गोम्मटसारनामधेयं पञ्चसंग्रहशास्त्रं प्रारंभमानः।'
(अभयचन्द्ररचित गोम्मटसारवृत्ति)

४७ गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण या कया देसी।
सो राओ चिरं कालं णामेण य वीरमत्तण्डी॥
(गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ९७२)

४८ नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम्।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः॥
(केशववर्णीयावृत्ति)

४९ मुनिं सिद्धं प्रणम्याहं नेमिचन्द्रं जिनेश्वरम्।
टीका गोम्मटसारस्य कुर्वे मन्दप्रबोधिकाम्॥
(अभयदेवकी वृत्ति)

और कनकनन्दि ।[50] वीरनन्दि रचित एक 'चन्द्रप्रभ चरितं' नामका ग्रन्थ है जिसके अंतमें लिखा है कि वे अभयनन्दिके शिष्य थे,[51] और अभयनन्दि गुणनन्दिके शिष्य थे। गोम्मटसारके उल्लेखानुसार कनकनन्दि इन्द्रनन्दिके शिष्य थे ।[52] इससे नेमिचन्द्रकी गुरुपरंपराका टेबल इस प्रकार होता है ।

गुणनन्दि
- अभयनन्दि
  - वीरनन्दि
- इन्द्रनन्दि
  - कनकनन्दि
    - नेमिचन्द्र

[यह लेख, आरासे जो द्रव्यसंग्रहकी इंग्रेजी आवृत्ति प्रकाशित हुई है, उसकी प्रस्तावनाका अविकल अनुवाद स्वरूप है, ऐसा पीछेसे उसके साथ मिलान करनेसे मालूम हुआ है ।

—संपादक जै. सा. सं.]

---

५० "णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ।। "
तथा—
" वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ।। "
(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड ।)

५१ "बभूव भव्याम्बुजपद्मबन्धुः पतुर्मुनीनां गणभृत्समानः।
सदग्रणीर्देशिगणाग्रगण्यो गुणाकरः श्रीगुणनन्दिनामा ॥
मुनिजननुतपादः प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः ।
अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी—
स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः ।।
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत् समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत् ।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सतां
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥"
[चन्द्रप्रभचरितप्रशस्तिः । श्लोकः १, ३, ४,]

५२ वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणन्दिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ।।
(गोम्मटसार, कर्मसार, गा० ३८६)

जंबुद्दीव पण्णत्ति।

(ग्रंथ परिचय)

[ले. श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी]

जैन साहित्यमें करणानुयोगके ग्रंथोंकी एक समय बहुत प्रधानता रही है। जिन ग्रंथोंमें ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, और मध्यलोकका; चारों गतियोंका, और युगोंके परिवर्तन आदिका वर्णन रहता है, वे सब ग्रन्थ करणानुयोगके[1] अन्तर्गत समझे जाते हैं। आजकलकी भाषामें हम जैन धर्मके करणनुयोगको एक तरहसे भूगोल और खगोल शास्त्रकी समष्टि कह सकते हैं। दिगंबर और श्वेतांबर दोनोंही संप्रदायमें इस विषयके सैकडों ग्रन्थ हैं और उनमें अधिकांश बहुत प्राचीन हैं। इस विषयपर जैन लेखकोंने जितना अधिक लिखा है उतना शायदही संसारके किसी संप्रदायके लेखकोंने लिखा हो। परंरापरासे यह विश्वास चला आता है कि इन सब परोक्ष और दूरवर्ती क्षेत्रों या पदार्थोंका वर्णन साक्षात् सर्वज्ञ भगवानने अपनी दिव्य–ध्वनीमें किया था। जान पडता है कि इसी अटल श्रद्धाके कारण इस प्रकारके साहित्यकी इतनी अधिक वृद्धि हुई और हजारों वर्ष तक यह जैन धर्मके सर्वज्ञ प्रणीत होनेका अकाट्य प्रमाण समझा जाता रहा।

हिंदुओंके पौराणिक भूवर्णनको पढनेसे ऐसा मालूम होता है कि दो ढाई हजार बरस पहले भारतके प्रायः सभी संप्रदायवालोंका पृथ्वीके आकार–प्रकार और द्वीप–समुद्र–पर्वतादिके सम्बन्धमें करीब करीब इसी प्रकारकी धारणा थी, जिस प्रकार कि जैन धर्मके करणानुयोगमें पाई जाती है। पृथ्वी थालीके समान गोल और चपटी है, उसमें अनेक द्वीप और समुद्र हैं, द्वीपके बाद समुद्र और समुद्रके बाद द्वीप, इस प्रकार क्रम चला गया है; जम्बूद्वीपके बीचमें नाभीके तुल्य सुमेरु पर्वत है, इत्यादि। परन्तु पीछेसे विद्वान लोगोंके अन्वेषण और निरीक्षणसे इस विषयका ज्ञान बढता गया, और आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि महान ज्योतिषिओंने तो पूर्वोक्त विचारोंको बिलकुलही बदल डाला। इसका फल यह हुआ कि इस विषयका जो प्रारंभिक हिन्दु साहित्य था उसका बढना तो दूर रहा, मगर वह धीरे धीरे क्षीण होता गया और इधर चूंकि जैन विद्वानोंका विश्वास था कि यह साक्षात सर्वज्ञ प्रणीत हैं; अतएव वे इसे बढाते चले गये और नई खोजों तथा आविष्कारोंकी और ध्यान देनेकी उन्होंने आवश्यकताही नहीं समझी।

यह करणानुयोगका वर्णन केवल इस विषयके स्वतंत्र ग्रन्थोंमें ही नहीं है, प्रथमानुयोग या कथानुयोगादिके ग्रन्थोंमें भी इसने बहुत स्थान रोका है। दिगम्बर संप्रदायके महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराणादि प्रधान २ पुराणोंमें तथा अन्य चारित्र ग्रन्थोंमेंभी यह खूब विस्तारके साथ लिखा गया है। श्वेताम्बर संप्रदायके कथा ग्रन्थोंका भी यही हाल है। बल्कि इस संप्रदायके तो आगम ग्रंथोंमें भी इसका दौरदौरा है। भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति) आदि अंग और जम्बू-

१ लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव यथामतिरवैति करणानुयोगं च॥
—रत्नकरण्ड श्रा०

द्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि उपांग ग्रन्थ करणानुयोगकेही वर्णनसे लबालब भरे हुए हैं।

दिगम्बर संप्रदायमें इस विषयका सबसे प्राचीन और विशाल ग्रन्थ त्रिलोकप्रज्ञप्ति है। इसका और लोकविभाग ग्रन्थका परिचय हम जैनहितैषी (भाग १३-अंक १२) में दे चुके हैं। त्रैलोक्यसार नामक ग्रन्थ मूल प्राकृत और संस्कृत टीका सहित माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो चुका है। आज इस लेखमें हम जम्बुद्दीवपण्णत्तिका परिचय देना चाहते हैं। इसी नामका और एक ग्रन्थ माथुरसंघान्वयी अमितगति आचार्यका भी है। अमितगतिने चन्द्रप्रज्ञप्ति और सार्द्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ भी इसी विषयपर लिखे हैं। परन्तु ये अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आये। जम्बुद्दीवपण्णत्ति नामका एक ग्रन्थ श्वेताम्बर संप्रदायका भी है। इसका संकलन करनेवाले गणधर सुधर्मास्वामी कहे जाते हैं। यह छठ्ठा उपांग है और आगमग्रन्थोंकी शैलीसे लिखा हुआ है। इसकी श्लोक संख्या ४१४६ है। मुर्शिदाबादके राय धनपतिसिंह बहादुरके द्वारा यह वाचनाचार्य रामचन्द्र गणिकृत संस्कृत टीका और ऋषि चंद्रभाणजीकृत भाषा टीका सहित छप चुका है।

दिगम्बरसम्प्रदायी जम्बुद्दीवपण्णत्तिकी दो प्रतियां हमने देखी हैं; एक स्वर्गीय दानवीर शेठ माणिकचन्द्रजीके चौपाटीके ग्रन्थभाण्डारमें है और दूसरी पूनेके भांडारकर ओरिएन्टल रीसर्च इन्स्टिट्यूटमें। पहली प्रति सावन वदि १२ सं० १९६० की लिखी हुई है और इसे सेठजीने अजमेरसे लिखवाकर मँगवाई थी। दूसरी प्रतीपर उसके लिखे हुएका समय नहीं दिया है; परन्तु वह कुछ प्राचीन मालूम होती है।

यह ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और गाथाबद्ध है। इसमें १३ उद्देश या अध्याय, २४२७ गाथायें और भरत, ऐरावत, पूर्व विदेह, उत्तर विदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु, लवणसमुद्र, ज्योतिषपटल आदिकावर्णन है। वर्णन त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी अपेक्षा कुछ संक्षिप्त है।

इसके कर्ताका नाम सिरिपउमणंदि या श्रीपद्मनन्दि है। वह अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार बतलाते हैं— वीरनन्दि, बलनन्दि, और पद्मनन्दि। अपने लिए उन्होंने गुणगणकलित, त्रिदण्डरहित, त्रिशल्यपरिशुद्ध, त्रिगारवरहित, सिद्धान्तपारगामी, तप-नियम-योग-युक्त, ज्ञानदर्शनचारित्र्योद्युक्त और आरम्भकरणरहित विशेषण दिये हैं। अपने गुरूओंकी भी उन्होंने ज्ञान और तप आदिके विषयमें प्रशंसा की है। उन्होंने ऋषिविजय गुरुके निकट जिनवचन-विनिर्गत सुपरिशुद्ध आगमको श्रवण करके, उनहींके कृपामाहात्म्यसे इस ग्रन्थकी रचना की है। विजयगुरुका विशेष परिचय वे नहीं देते, इससे उनकी गुरुपरम्परापर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। माघनन्दी नामके एक विख्यात आचार्य थे जो राग-द्वेष-मोहसे रहित, श्रुतसागरके पारगामी, प्रगल्भ मतिमान्, और तपःसंयम-संपन्न थे। उनके शिष्य सकलचन्द्र गुरु हुये, जो नव नियमों और शीलका पालन करते थे, गुणी थे और सिद्धान्त महोदधिमें जिन्होंने अपने पापोंको धोडाला था। इनके शिष्य नंन्दिगुरुके लिए—जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यसम्पन्न थे—यह ग्रन्थ बनाया गया है।

आचार्य पद्मनन्दि जिस उमय बारानगरमें थे, उस समय यह ग्रन्थ रचा गया है। इस नगरकी प्रशंसामें लिखा है कि उसमें वापिकायें, तालाब, और भुवन बहुत थे, भिन्नभिन्न प्रकारके लोगोंसे वह भरा हुआ था, बहुतही रम्य था, धनधान्यसे परिपूर्ण था, सम्यग्दृष्टि-जनोंसे, मुनियोंके समूहसे, और जैन मंदिरोंसे विभूषित था। यह नगर पारियत्त (पारियात्र) नामक देशके

१ इसके कर्ता श्रीयतिवृषभाचार्य हैं, और इसकी रचना लगभग १००० वीरनिर्वाणसंवत् में हुई है।

२ इसके कर्ता मुनि सर्वनन्दि हैं और यह शक संवत् ३८० में लिखा गया है। इस ग्रन्थका संस्कृत अनुवाद उपलब्ध है।

१ पुराणसारके कर्ता श्रीचन्द्रमुनि—जो वि. सं. १०७० के करीब हुए हैं—अपने गुरूका नाम श्रीनन्दि लिखते हैं। वे इनसे पृथक् व्यक्ति जान पड़ते हैं। वसुनन्दि आचार्यकी गुरुपरम्परामें भी एक श्रीनन्दि हैं।

अन्तर्गत था। बारानगरके प्रभु या राजाका नाम शक्ति[1] या शान्ति था। वह सम्यग्दर्शनशुद्ध, व्रती, शीलसम्पन्न, दानी, जिनशासनवत्सल, वीर, गुणी, कलाकुशल और नरपतिसंपूजित था।

आचार्य हेमचन्द्रके कोषमें लिखा है--" उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्रः "। अर्थात् विन्ध्याचलके उत्तरमें पारियात्र है। यह पारियात्र शब्द पर्वतवाची और प्रदेशवाची भी हैं। विन्ध्याचलकी पर्वतमालाका पश्चिम भाग जो नर्मदा तटसे शुरू होकर खंभाततक जाता है और उत्तर भाग जो अर्बलीकी पर्वतश्रेणीतक है पारियात्र कहलाता है। अतः पूर्वोक्त बारानगर इसी भूभागके अन्तर्गत होना चाहिए। राजपूतानेके कोटा राज्यमें एक बारा नामक कसबा है, जान पडता है कि यही बारानगर होगा। क्योंकि यह पारियात्र देशकी सीमाके भीतरही आता है। नन्दिसंघकी पट्टावलीके[2] अनुसार बारामें एक भट्टारकोंकी गद्दी रही है और उसमें वि. सं. (विक्रमराज्याभिषेक) ११४४ से १२०६ तकके १२ आचार्योंके नाम दिये हैं। इससे भी जान पडता है कि सम्भवतः वे सब आचार्य पद्मनन्दि या माघनन्दि की ही शिष्यपरम्परामें हुये होंगे और यही बारा--कोटा जम्बुद्वीप प्रज्ञप्तिके निर्मित होनेका स्थान होगा।

ज्ञानप्रबोध नामक भाषाग्रन्थमें (पद्यबद्ध) कुन्दकुदाचार्यकी कथा दी है। उसमें कुन्दकुन्दको इसी बारापुर या बाराके धनी कुन्दश्रेष्ठी और कुन्दलताका पुत्र बतलाया है। पाठकोंसे यह बात अज्ञात न होगी कि कुन्दकुन्दका एक नाम पद्मनन्दि भी है। जान पडता है कि जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्ता पद्मनन्दिकोही भ्रमवश कुन्दकुन्दाचार्य समझकर ज्ञानप्रबोधके कर्ता, कर्नाटकदेशके[3] कुन्दकुन्दका जन्म स्थान बारा[1] बतलानेका प्रयत्न कर बैठे हैं। पर इससे यह बात बहुत कुछ निश्चित हो जाती है कि मालवेके या कोटा राज्यके इसी बारामें यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है।

शान्ति या शक्तिराजा जान पडता है कि कोई मामूली ठाकुर होगा। यद्यपि उसे नरपतिसंपूजित लिखा है, परन्तु साथ ही ' बारानगरस्य प्रभुः ' कहा है। यदि कोई बडा राजा या मांडलिक आदि होता, तो वह किसी प्रदेश या प्रान्तका राजा बतलाया जाता। राजाका वंश आदिभी नहीं बतलाया है, जिससे राजपुतानेके इतिहासोंमे उसका पता लगाया जा सके और उससे पद्मनन्दि आचार्यका निश्चित समय मालूम किया जा सके।

पद्मनन्दि नामके अनेक आचार्य और भट्टारक हो गये हैं। उनमें पद्मनन्दिपंचविंशतिकाके कर्ता बहुत प्रसिद्ध हैं। वे अपने गुरूका नाम वीरनन्दि[2] लिखते हैं और प्रज्ञप्तिके कर्ताके गुरु बलनन्दि हैं। इस लिये ये दोनों एक नहीं हो सकते। इसके सिवाय 'पंचविंशतिका' अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थ है। हमारे अनुमानसे वह १३ वीं शताब्दीसे पहलेका नहीं हो सकता। उस समय दिगम्बर मुनि[1] जिनमन्दिरोंमें रहने लगे थे और यह उपदेश दिया जाने लगा था कि बिम्बाफलके पत्तेके भी बराबर मन्दिर और जोके भी बराबर जिनप्रतिमा बनवानेवालेके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता[2]।

१. पूनेकी प्रतीमें सन्ति (शान्ति) और बम्बईकी प्रतीमें सत्ति (शक्ति) पाठ है।

२. देखो जैनसिद्धान्तभास्कर किरण ४; और इन्डियन ॲन्टिक्वेरी २० वी जिल्द।

३ कर्नाटक देशके कोण्डकुण्डनामक ग्रामके निवासी होनेके कारण इनका नाम कोण्डकुण्ड हुआ था। कुन्दकुन्द उसीका श्रुतिमधुर संस्कृत रूप है।

१ सुना है कि बारामें पद्मनन्दिकी कोई निषियाभी है।

२ यत्पादपङ्कजरजोभिरपि प्रमाणलग्नैः शिरस्यमलबोधकलावतारः। भव्यात्मनां भवति तत्क्षणमेव मोक्षः स श्रीगुरुर्दिशतु मे मुनिवीरनन्दी॥

४ यह ग्रन्थ काशीमें छप चुका है। इसमें अनेक विषयोंके २५ प्रकरण हैं।

१. सम्प्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।
धर्मस्य दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम् ॥
उपासकाचार प्रकरण।

२. बिम्बादलोन्नति यवोन्नतिमेव भक्त्या--

प्रशस्तीके कर्ता पद्मनन्दि कब हुए हैं, यह बतानेके लिये अभीतक हमें कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है। परन्तु हमारा अनुमान है कि यह ग्रन्थ विक्रमकी दसवीं शताब्दीके बादका तो नहीं है, पहलेका भले ही हो। क्यों कि—

१) ग्रन्थकी रचनाशैली बिलकुल त्रिलोक प्रज्ञप्तिके सदृश है और भाषा भी अपेक्षाकृत प्राचीन मालूम होती है।

२) नववीं दसवीं शताब्दीके बादके ग्रन्थकर्ता अपनी गुरुपरम्परा बतलाते समय संघ और गण गच्छादिका परिचय अवश्य देते हैं। पर इस ग्रन्थमें किसी संघ या गण गच्छादिका नाम नहीं है। मंगराजकविके शिलालेखके[1] अनुसार अकलंकभट्टके बाद देव, नन्दि, सेन, और सिंह इन चार संघोंकी स्थापना हुई है। अतः हमारी समझमें यह ग्रन्थ अकलङ्कदेवसे पहलेका होना चाहिए। अकलङ्कदेवका समय विक्रमकी ८ वीं शताब्दी है।

३) ऐसा मालूम होता है कि इस ग्रन्थसे पहले इस विषयका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं था। पद्मनन्दि मुनिने श्रीविजयगुरुके निकट आचार्य परम्परासे चला आया हुआ यह विषय सुनकर लिखा है। किसी एक या अनेक ग्रंथोंके आधार आदीसे नहीं। इस विषयमें नीचे लिखी हुई गाथायें अच्छी तरह विचारने योग्य हैं।

ते वंदिऊण सिरसा वोच्छामि जहाकमेण जिणदिट्ठं ।
आयरियपरम्परया पण्णत्तिं दविजलधीणं ॥ ६ ॥

× × × × ×

आयरियपरम्परया सायरदीवाण तह य पण्णत्ती ।
संखेवेण समत्थं वोच्छामि जहाणु पुव्वीए ॥ १८ ॥

× × × × ×

ये कारयन्ति जिनसद्म जिनाकृतिं वा ।
पुण्यं तदीयमिह वागपि नैव शक्ता—
स्तोतुं परस्य किमु कारयितुर्द्वयस्य ॥ २२ ॥

१. देखो श्रवण बेल्गोला इन्स्क्रिप्शनका १०८ वां शिलालेख और जैनसिद्धान्त भास्कर किरण ३।

......सिरिविजयगुरुत्ति विक्खाओ ॥ १४४ ॥
सोऊण तस्स पासे जिणवयण विणिग्गयं अमदभूदं ।
रइदं किंचुद्देसे अत्थपदं तहव लध्दूणम् ॥ १४५ ॥

यदि यह अनुमान ठीक हो कि दिगम्बर सम्प्रदायमें इस विषयका यह पहला ग्रन्थ है तो अवश्यही यह पुराना है। और आश्चर्य नहीं जो त्रिलोकप्रज्ञप्तिके रचे जाने के[1] समयमें अथवा उससे कुछ पीछे लिखा गया हो। इस ग्रन्थमें 'उक्तं च' कह कर अन्य गाथायें या श्लोकादि भी उध्दृत नहीं हैं। इससे भी इसे प्राचीन माननेकी इच्छा होती है।

यह ग्रन्थ जिन नन्दिगुरुके लिये बनाया गया है, उनके दादागुरुका नाम माघानन्दि था, और वे बहुतही विख्यात, श्रुतसागरपारगामी, तपःसंयमसम्पन्न, तथा प्रगल्भबुद्धि थे। इन्द्रनन्दीने अपने[2] श्रुतावतारमें लिखा है कि वीरनीर्वाणसे ६८३ वर्ष बाद तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। उनके बाद अर्हद्बलि आचार्य हुए और उनके कुछ समय बाद (तत्कालही नहीं) माघनन्दि आचार्य हुए। आश्चर्य नहीं जो नन्दिगुरुके दादागुरु यही माघनन्दि हों। उन्हें जो विशेषण दिये गये हैं उससेभी मालूम होता है कि वे कोई सामान्य आचार्य न होंगे। इन्द्रनन्दिके कथनक्रमसे माघनन्दीका समय वीरनिर्वाणसंवत् ८०० लगभग तक आसकता है। और इस हिसाबसे नन्दिगुरु और पद्मनन्दीका समय वीरनिर्वाणकी ९ वीं शताब्दि माना जा सकता है। पर इस विषयमें अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि इन्द्रनन्दिकथित माघनन्दि और यह माघनन्दि एकही होंगे।

इस ग्रन्थमें भगवान् महावीरके बादकी आचार्य-परम्पराके विषयमें जो कुछ लिखा है उसका आशय इस प्रकार है।

विपुलाचलके ऊंचे शिखरपर विराजमान वर्धमान

१ वीरनिर्वाण संवत १००० के लगभग।
२ यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके 'तत्त्वानुशासनादि-संग्रह' नामक १३ वे अंकमें छप चुका है।

जिनेन्द्रने गौतममुनीको प्रमाणसंयुक्त अर्थ कहा। उन्होंने लोहार्यको, लोहार्यने–जिनका नाम सुधर्मा भी है–जम्बुस्वामीको कहा। ये तीनों गणधर, गुणसमग्र, और निर्मल चारज्ञानके धारी थे। ये केवल ज्ञानको प्राप्त करके मोक्षको प्राप्त हुए। इनको मैं नमस्कार करता हूं। इनके बाद नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पांच पुरुषश्रेष्ठ चौदह पूर्व और बारह अंगके धारक हुए। इनके बाद क्रमसे विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन, ये दस पूर्वधारी हुए। फिर नक्षत्र, यशःपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन, और कंस ये पांच ग्यारह अंगके धारक हुए। इनके बाद सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और अन्तिम लोह (लोहाचार्य) ये आचारांगके धारक हुए।

इस परम्परासे एक यह विशेष बात मालूम हुई कि सुधर्मास्वामीका दूसरा नाम लोहार्य भी था। लोहार्य नामके एक और भी आचार्य हुए हैं जो आचारांगधारी थे। उन्हें दूसरे लोहाचार्य समझना चाहिए। श्रवण बेल्गोलकी चन्द्रगुप्तवस्तीके [1]शिलालेखके–' **महावीरसवितरि परिनिर्वृते भगवत्परमर्षि–गौतमगणधरसाक्षाच्छिष्य–लोहार्य**–जम्बु–××" आदि वाक्यमें जो लोहार्यको गौतमगणधरका साक्षात् शिष्य लिखा है, उसका भी इससे खुलासा हो जाता है। अभीतक इस बातका स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिला था कि सुधर्मास्वामीका दूसरा नाम लोहार्यभी था।

१ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १.

इस परम्परामें और त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी परम्परामें कोई अन्तर नहीं है। आचार्य गुणभद्रकृत उत्तर-पुराण, ब्रह्म हेमचन्द्रकृत श्रुतस्कन्ध, और इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें भी बिलकुल यही परम्परा दी हुई है। परन्तु हरिवंशपुराण, नन्दिसंघ–बलात्कार गण–सरस्वतीगच्छकी प्राकृत पट्टावली, [2]सेनगणकी पट्टावली और [3]काष्ठासंघकी पट्टावलीमें नन्दिकी जगह विष्णु नाम मिलता है। इसके सिवाय नन्दिसंघकी पूर्वोक्त पट्टावलीमें और काष्ठासंघकी पट्टावलीमें यशोबाहुके स्थानमें भद्रबाहु नाम है। जान पडता है नन्दीका नामान्तर विष्णु और यशोबाहुका भद्रबाहु भी होगा।

लोहाचार्य तककी यह गुरुपरम्परा दिगम्बर संप्रदायमें एकसी मानी जाती है। इसमें कोई मतभेद नहीं है। परन्तु यह बडे आश्चर्यकी बात है कि श्वेताम्बर संप्रदायमें जम्बूस्वामीके बाद जो परम्परा मानी जाती है, वह इससे सर्वथा भिन्न है। यद्यपि ये दोनों संप्रदाय वि० सं० १३६ के लगभग पृथक् हुए कहे जाते हैं। यदि यह समय सही है तो आचारांगधारियों तककी परम्परा दोनों संप्रदायोंमें एकसी होनी चाहिए थी। या तो यह समय ही ठीक नहीं है–जम्बूस्वामीके बादही यह सम्प्रदाय भेद हो गया होगा, या फिर दोनोंमेंसे किसी एकने अथवा दोनोंने ही पीछेसे भूलमाल जानेपर इन्हें गढा होगा। इतिहासके विद्यार्थियोंके लिये यह विषय खास तौरसे विचार करने योग्य है।

१. यह ग्रन्थभी तत्वानुशासनादि-संग्रहमें छपा है।
२-३-४ -देखो जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण ४।

परिशिष्ट--

जंबुद्दीवपण्णत्तिका आदि और अंतका कुछ भाग नमूनेके तौर पर यहां पर दिया जाता है ।

देवासुरिंदमहिदे दसद्धरुवूण कम्मपरिहीणे । केवलणाणालोए सद्धम्मुवएसदे अरुहे ॥ १ ॥
अट्ठविहकम्मरहिए अट्ठगुणसमण्णिदे महावीरं । लोयग्ग--तिलयभूदे सासयसुहसंट्ठिदे सिद्धे ॥ २ ॥
पंचाचारसमग्गे पंचेंदियनिजिदे विगयमोहे । पंचमहव्वयानिलए पंचमगइनायगायरिए ॥ ३ ॥
परसमयतिमिरदलणे परमागमदेसए उवज्झाए । परमगुणरयणणिवहे परमागमभाविदे वीरे ॥ ४ ॥
णाणागुणतवणिरए ससमयसब्भावगहियपरमत्थे । बहुविहजोगज्जुत्ते जे लोए सव्वसाहुगणे ॥ ५ ॥
ते वंदिदूण सिरसा वोच्छामि जहा कमेण जिणदिट्ठं । आयरियपरंपरया पण्णत्तिं दीवजलधीणं ॥ ६ ॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

विउलगिरितुंगसिहरे जिणिंदइंदेण वड्ढमाणेणं । गोदमसुणिस्स कहिदं पमाणणयसंजुदं अत्थं ॥ ९ ॥
तणवि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण । गणधरसुधम्मणा खलु जंबूणामस्स णिद्दिट्ठं ॥ १० ॥
चदुरमलबुद्धिसहिदे तिन्नेदे गणधरे गुणसमग्गे । केवलणाणपईवे सिद्धिपत्ते णमंसामि ॥ ११ ॥
णंदी य णंदीमित्तो अवराजिदमुणिवरो महातेओ । गोवद्धणो महप्पा महागुणो भद्दबाहू य ॥ १२ ॥
पंचेदे पुरिसवरा चउदसपुव्वी हवंति णायव्वा । बारसअंगधरा खलु वीरजिणिंदस्स णायव्वा ॥ १३ ॥
तहय विसाखायरिओ पोट्ठिल्लो खत्तियओ य जयणामो । णागो सिद्धत्थो बिय धिदिसेणो विजय णामोय ॥
बुद्धिल्ल-गंगदेवो धम्मसेणो य होइ पच्छिमओ । पारंपरेण एदे दसपुव्वधरा समक्खादा ॥ १५ ॥
णक्खत्तो जसपालो पंडु-धुवसेण-कंस-आयरिओ । ऐयारस[1] अंगधरा पंचजणा होंति णिद्दिट्ठा ॥ १६ ॥
णामेण सुभद्दमुणी जसभद्दो तहय होइ जसबाहु । आयारधरा णेया अपच्छिमो लोहणामो य ॥१७॥
आयरियपरंपरया सायरदीवाण तहय पण्णत्तिं । संखेवेण समत्थं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ १८ ॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

परमेट्ठिभासिदत्थं उद्धाधोतिरियलोयसंबंधं । जंबूदीवणिबद्धं पुव्वावरदोसपरिहीणं ॥ १४० ॥
गणधरदेवेण पुणो अत्थं लध्दूण गंथिदं गंथं । अक्खरपदसंखेज्जं अणंतसत्थेहि संहुतं ॥ १४१ ॥
आयरियपरंपरेण य गंथत्थं चेव आगयं सम्मं । उवसंहरीय लिहियं समासदो इहय णायव्वं ॥ १४२ ॥
णाणाणरवइमहिदो विगयभमुसंगभंग--उम्मुक्को । सम्मद्दंसणसुद्धो संजय--तव--सील--संपुण्णो ॥ १४३ ॥
जिणवर-वयण-विणिग्गयपरमागमदेसओ महासत्तो। सिरिनिलओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरु त्ति विक्खाओ।
सोऊण तस्स पासे जिणवयणविणिग्गयं अमदभूदं । रइदं किंचुद्देसे[3] अत्थपदं तह व लध्दूणं ॥ १४५ ॥

\+ \+ \+ \+ \+ \+

अहतिरिय--उड्ढलोएसु तेसु जे होंति बहुवियप्पा दु । सिरिविजयस्स महप्पा ते सव्वे वण्णिदा किंचि।१५३।
गयरायदोसमोहो सुदसायरपारओ मइ--पगब्भो।तवसंजमसंपण्णो विक्खाओ माघनंदिगुरू ॥ १५४ ॥
तस्सेव य वरसिस्सो सिद्धंतमहोदहिम्मि धुयकलुसो । णवणियमसीलकलिदो गुणउत्तो सयलचंद गुरू १५५

१ 'एयारसंगधारी' भी पाठ है. २ 'भउ' पाठ द्वितीय पुस्तक में है। ३ 'किंचिद्देसं' भी है।

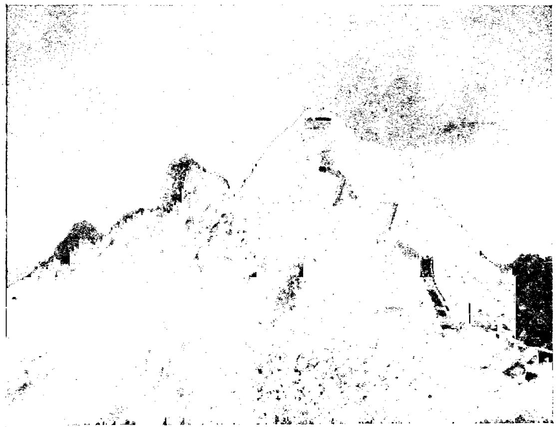
तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरणसंजुत्तो । सम्मद्दंसणसुद्धो सिरिणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥१५६॥
तस्स णिमित्तं लिहियं जंबूदीवस्स तहय पण्णत्ती । जो पढइ सुणइ एदं सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥ १५७ ॥
पंचमहव्वयसुध्दो दंसणसुद्धो य णाणसंजुत्तो । संजमतवगुणसहिदो रागादिविवज्जिदो धीरो ॥ १५८ ॥
पंचाचारसमग्गो छज्जीवदयावरो विगदमोहो । हरिस-विसाय-विहूणो णामेण य वीरणंदित्ति ॥१५९॥
तस्सेव य वरसिस्सो सुत्तत्थवियक्खणो मइप्पगब्भो । परपरिवादणियत्तो णिस्संगो सव्वसंगेसु ॥ १६० ॥
सम्मत्तअभिगदमणो णाणेण तह दंसणे चरित्ते य।परतंतिणियत्तमणो बलणंदि गुरु त्ति विक्खाओ॥१६१॥
तस्स य गुणगणकलिदो तिदंडरहियो तिसल्लपरिसुद्धो । तिण्णिवि गारवरहियो सिस्सो सिद्धंतगयपारो।१६२॥
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदंसणचरित्ते।आरंभकरण रहियो णामणे य पउमणंदीत्ति ॥ १६३ ॥
सिरिगुरुविजयसयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं । मुणि--पउमणंदिणा खलु लिहियं एयं समासेण ॥१६४॥
सम्मद्दंसणसुद्धो कदवदकम्मो सुसीलसंपण्णो ॥ अणवरयदाणसलिो जिणसासणवच्छलो वीरो ॥१६५॥
णाणागुणगणकलिओ णरवइसंपूजिओ कलाकुसलो ॥ वाराणयरस्स पहू णरुत्तमो सत्तिभूपालो ॥ १६६ ॥
पोक्खराणि--वावि--पउरे बहुभवणविहूसिए परमरम्मे । णाणाजणसंकिण्णे धनधन्नसमाउले दिव्वे ॥ १६६ ॥
सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहि मंडिए रम्मे । देसम्मि पारियत्ते जिणभवणविहूसिए दिव्वे ॥ १६८ ॥
जंबूदीवस्स तहा पण्णत्ती बहुपयत्थसंजुत्तं (त्ता) । लिहियं संखेवेणं वाराए अच्छमाणेण ॥ १६९ ॥
छद्मत्थेण विरइयं जं किंपि हवेज्ज पवयणविरुद्धं । सोहंतु सुगीदत्था तं पवयण वच्छलत्ताए ॥ १७० ॥

× × × × ×

विउघ-वइ-मउड-मणिगण-कर-सलिलसुधोयचारु पयकमलं । वरपउमणंदि णमियं वीर जिणिंदं णमंसामि ॥१७६॥

इय जं दीवपण्णत्तिसंगहे पमाणपरिच्छेदो णाम तेरमी उद्देसो सम्मत्तो ॥ १३ ॥

१ 'रइयं' पाठ पूनेकी प्रतिमें है ।



गिरनारपर्वत — पंचमी टोंक.

अर्हम्

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

खंड १] गुजराती लेख विभाग [अंक ४

सप्तभंगी

अथवा

सत्-असत्-तत्त्वमूलक प्रमाण पद्धति

[ले० अध्यापक रसिकलाल छोटालाल परीख. बी. ए.]

जैन दर्शन अथवा आर्हत दर्शनना तत्त्वज्ञाननो मूल पायो सप्तभंगी उपर रचाएलो छे. सप्तभंगी एटले वस्तु तत्त्वना स्वरूपनो संपूर्ण विचार प्रदर्शित करवा माटे योजेली सात प्रकारनी वाक्यरचना. ते आ प्रमाणे छे:—

(१)	[वस्तु]	कथंचित्	छे. *
(२)	,,	,,	नथी.
(३)	,,	,,	छे अने नथी.
(४)	,,	,,	अवाच्य छे.
(५)	,,	,,	छे अने अवाच्य छे.
(६)	,,	,,	नथी अने अवाच्य छे.
(७)	,,	,,	छे,नथी,अने अवाच्य छे.

* संस्कृत वाक्यो आ प्रमाणे:—

(१) स्यादस्ति (४) स्यादवक्तव्यम्
(२) स्यान्नास्ति (५) स्यादस्ति अवक्तव्यम् च
(३) स्यादस्ति नास्ति (६) स्यान्नास्ति अवक्तव्यम् च
(७) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यं च

आ प्रमाणे सप्तभंगीनी वाक्यरचना छे. सामान्य वाचकने बहु विचित्र, निरुपयोगी अने हास्यजनक लागे तेवु तेनु बाह्य स्वरूप देखाय छे. परंतु गंभीर विचारपूर्वक जो ते संबंधी ऊहापोह करवामां आवे तो तेमां रहेलां तत्त्वो सर्वसाधारण अने सर्वव्यापी छे एम स्पष्ट जणाई आवशे. ए विचार पद्धतिमां सत्–असत् अनेक धर्मवत्त्व, अने एक वाक्य एक समये एक धर्मनो निर्देश ज करी शके; ए तत्त्वोनो अन्तर्भाव थएलो छे. ए तत्त्वोए आ विशिष्ट स्वरूप क्यारे अने कई परिस्थितिमां धारण कर्युं तेनो निर्णय करवो हजी सुलभ नथी. परंतु जैन न्यायशास्त्रना अध्ययन उपरथी तेनो विकास अने प्रयोजन तो आपणे चोक्कस जाणी शकीए तेम छीए.

जैनोना आ विशिष्ट सिद्धान्तना इतिहास विषे हालमां हूं आटलुं जणावी शकुं छुं:—उत्तराध्ययन सूत्रमां एनो निर्देश नथी. भद्रबाहुनी आवश्यक सूत्रनी निर्युक्तिमां

you account for the unerring accuracy of his inference in this matter? Is it not that there is inherent in the human mind a natural capacity for valid deduction independently of a school or collegiate education?

Well, this is what may be termed natural logic which, as you see, is a very simple thing. Compared with this the modern system of logic which forms part of the higher education that is imparted only to advanced students, is but a bundle of artificial forms and formulae. It is cumbersome and too much loaded with technicalities, definitions and diagrams which only go to confuse the mind and confound the sense. Besides, it is meant only for a certain class of college students, is learnt with difficulty and is productive of no practical good outside. Natural logic, on the other hand, is a practical function of life, and, therefore, natural to every man, woman and child. It only requires the drawing of attention to a few principles which can be understood and mastered by any one in a short time. There is certainly nothing in the nature of an impossibility in its principles to place it beyond the reach of the moderately intelligent man in the street. How quickly one masters this branch of practical learning, depends on the way it is imparted to men. Certainly, their failure, if any, is to be laid at the door of their instructor.

It would be out of place to compare in detail the method advocated here with what is taught as logic in our colleges, but it is well-known that the highest achievement of artificial logic is the possession of a set of rigid diagrams and forms which it applies to each and every proposition to test its formal validity quite irrespective of the question whether the statement of fact or facts involved in its premises be, in reality, true or not. The least advantage to be derived from natural logic, on the contrary, is the acquisition of what may be termed the logical turn of mind that seeks to discover and establish actual relations among things and the true principles of causation of events in nature. The highest gain from this system of natural deduction must, consequently, imply a complete mastery over the empire of nature for our individual and racial good.

It only remains to be said that logic is the one science which is the crown of glory of Intellectualism. It is highly practical, useful in every department of learning and the sweetener of life. It was logic which was truly the source of undying fame to the ancient rishis and philosophers of our land; and it is logic whose neglect has reduced us to the lowest level of existence to day. It is, therefore, the duty of every true well-wisher of India and Indians, as well as of the entire human race, to spread the knowledge of this most important science amongst men; and most certainly it should be taught to our boys and girls in their child-hood to impart to them that logical attitude which is the source of all auspiciousness and good.

Hardoi,
22nd August 1920.

CHAMPAT RAI JAIN,
Bar-at-law.

LOGIC FOR THE MASSES.

LESSON I.

Logic is the method of valid deduction. A valid deduction is only possible where there is a *fixed rule* to lead the mind to a particular conclusion from a given mark or fact.

Illustration.

1. There is fire in this room, because it is full of smoke.

[Here smoke is the mark of fire. The sight of smoke immediately leads one to the conclusion that there is fire in the room, because smoke is not produced except by fire.]

2. It will be Monday to-morrow, because it is Sunday to-day.

Where there is no fixed rule there can be no valid deduction there, *e. g.*, you cannot tell the number of keys in my pocket, because there is no fixed rule that I should always have a partilar number of keys into my pocket and never more or less.

LESSON II.

A fixed logical rule means something more than a mere long course of practice, or a series of disconnected events. Suppose a man has hitherto always carried 5 keys in his pocket and never any more or less : does it entitle any one to say that he will have only five keys in his pocket to-morrow also? No, because we have here only a long course of practice which might be discontinued any moment. Suppose further that I have a friend who is the father of one dozen boys and who has never had a girl born to him, and suppose that his wife expects to become a mother again : can any one say what will be the sex of the next child of my friend? No, because there is no fixed rule in nature that a particular person should always get boys and never a girl.

It is thus evident that a long course of practice or even an uninterrupted series of natural events does not justify an inference which can only be drawn from certain fixed natural or quasi-natural rules.

LESSON III.

There is a fixed logical rule to guide the mind from :--

(1) Cause to effect.

Illustration.

Moist fuel if set burning produces smoke.

(2) Effect to cause.

Illustration.

Where there is smoke there is fire.

(3) Antecedent to consequent.

Illustration.

i Monday following Sunday;
ii Youth following childhood;
iii Old age following youth.

(4) Consequent to Antecedent.

Illustration.

i Saturday preceding Sunday.
ii Youth preceding old age.
iii Childhood preceding youth.

(5) Concomitance.

Illustration.

i Age and experience.
ii Childhood and inexperience.
iii Marks of ripeness and deliciousness of taste in fruit.

(6) Container and contained, *i. e.*, the whole includes the part, or, what comes to the same thing, the attributes of the whole are to be found in the part.

Illustraion.

There is no fruit tree in this garden;

Therefore there is no mango tree in this garden.

The instructor should illustrate these

six kinds of fixed rules by many illustrations.

LESSON IV.

A conclusion may be drawn from an affirmative logical relationship, *e. g.*, wherever there is smoke there is fire. This is called the *anvaya* form. Hence when you see smoke you immidiately say that there must be fire present at its source. But the sight of fire does not entitle you to conclude that smoke must be there too; for while smoke is always caused by fire, every kind of fire does not produce smoke, *e. g.*, red hot charcoal fire. But you may sefely infer from the relationship of fire and smoke that where there is no fire there is no smoke. This is technically known as *vyatireka*.

Thus from the relationship between fire and smoke we can infer

1. the existence of fire wherever there is smoke, and

2. the non-existence of smoke where there is no fire.

But we cannot infer

1. the existence of smoke from fire, nor

2. the non-existence of fire where there is no smoke.

Anvaya and *vyatireka* taken together establish the validity of a logical relationship.

LESSON V.

The argument or reason is either of a contradictory type or of a non-contradictory one. The former of these implies the existence of a fact which is incompatible with the existence of the fact expressed in the conclusion. The other type is the non-contradictory one.

Illustration.

1. There is no fire in this pitcher, because it is full of water.

2. There is fire on thls hill, because there is smoke on it.

The *hetu* (reason) in the first of these illustrations is called contradictory because it (water) is opposed to the nature of fire the presence of absence of which is the subject of inference; the pitcher being full of water which is hostile to and destructive of fire there can be no fire in it. The second illustration is a simple case of non-contradictory *hetu* (reason).

Further illustrations

Non-contradictory affirmative reason :

1. Sound is subject to modification, because it is a product.

(Explanation : All products are liable to modification ; sound is a product ; therefore, sound is subject to modification).

This is an instance of the rule that part is included in the whole, *i. e.*, the attributes of a class are to be found in the individual.

2. There is fire on this hill because there is smoke on it.

(Effect to cause.)

3. It must be raining yonder, because potent rain-bearing clouds are gathered there.

[(Active) Cause to effect.]

4. It will be Sunday to-morrow because it is Saturday to-day.

[Antecedent to consequent.]

5. Yesterday was a Sunday, because it is Monday to-day.

[Consequent to antecedent]

6. This mango has a delicious taste, because it is ripe yellow in colour.

[Concomitance.]

Contradictory negative reason :

7. The atmosphere inside a steam boiler when fire is burning in it is not cold, because heated bodies are not cold.

[This is an instance of the whole and part tpye. Its amplified form would be :—

All heated bodies are not cold. A steam boiler is a heated body when a fire is burning in it.

Therefore, a steam boiler when a fire is burning in it is not cold.]

8. This woman is not barren, because she has a grandchild (which is the effect of the antithesis of female barrenness).

[Effect to cause, antithetical.]

9. This man is not happy, because he has present in him the causes of misery (the opposite of happiness).

[Cause to effect, antithetical].

10. Tomorrow will not be a Sunday, because it is Friday to-day.

[Antecedent to consequent, antithetical.]

11. Yesterday was not a Friday, because it is Tuesday to-day.

[Consequent to antecedent, antithetical]

12. This wall is not devoid of an outside, because it has an inside.

[Concomitance, antithetical.]

Non-contradictory negative :

13. There is no oak in this village, because there is no tree in it.

[Whole and part]

14. There are no potent rain-bearing clouds here, because it is not raining here.

[Effect to cause.]

15. There is no smoke in this place, because there is no fire here.

[Cause of effect.]

16. It will not be Sundy to-morrow, because it is not Saturday to-day.

[Antecedent to consequent.]

17. It was not Monday yesterday, because to-day is not Tuesday.

[Consequent to antecedent.]

18. The right hand pan of this pair of scales is not touching the beam, because the other one is on the same level with it.

[Concomitance.]

Contradictory affirmation :

19. This animal is suffering from some disease, because it has not got the appearance of health.

[Effect to cause.]

20. This woman is feeling unhappy, because she has been forcibly separated from her lover.

[Cause to effect, antithetical]

बा ल न्या य

[लेखकः—श्रीयुत चंपत रायजी जैन, बारिष्टर-ऍट-लॉ.]

(प्रथम वक्तव्य)

अध्यापकजी !

यह लेख जो आपके सम्मुख उपस्थित है, बालकों अर्थात् छटी, सातवीं और आठवी कक्षाके छात्रोंको न्यायमें प्रवेश करानेके लिये लिखा गया है। "युरुपीय-न्याय" तो कालिजहीमें अध्ययन कराया जाता है, किन्तु यह प्रकट है कि जो मनुष्य प्राकृतिक न्यायको जानता है, वह बिना कालिज तक पढे भी उचित नतीजा निकाल सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राकृतिक न्याय अत्यन्त सरल और सुबोध है। मेरा विचार है कि छटी, सातवी और आठवी कक्षाके बालकोंको भले प्रकार "न्याय" की शिक्षा दी जा सकती है।

इसमें योग्यता केवल अध्यापकमें होनी चाहिये, जो कि प्रत्येक पाठ तथा दृष्टान्त भलीभांति विद्यार्थीको समझा दे। इस शिक्षामें स्मरण शक्तिपर बलात् बल डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं-यदि छात्रको समझा दिया जाय। और न इसमें कोई बात ऐसी ही है, कि उपरोक्त छात्र भलीभांति न समझ सके। इससे स्वयं छात्रकी नैतिक शक्तियां न्यायका प्रतिबिम्ब हो जायंगी, और उसका मन स्वयं न्यायमें प्रवृत्त होने लगेगा। आशय यह है, कि यदि बालकों की समझमें न्याय न आये तो अध्यापक महाशयकी त्रुटि है और किसीकी नहीं।

"न्याय" के गुणोंके बारेमें भी इतना कहना उचित प्रतीत होता है कि बिना इसके जाने हुये बुद्धि तीक्षण नहीं होती, और जो इसको जानता है उसीका जीवन सफल समझना चाहिये। न्याय ही की बदौलत भारत वर्षके प्राचीन कालमें ऋषि, मुनि और विद्वान पंडितगण सारे संसारमें प्रख्यात हो गये। और न्यायके जाते रहने हीका यह फल है कि वर्तमान कालमें भारतमें चारों ओर अविद्या और अज्ञान फैला हुआ है। अतः जो मनुष्य देश और जातिके शुभचिंतक हैं, उनका कर्तव्य है कि वे यथासंभव शैशवकालहीमें अपनी सन्तान और छात्रोंके मनको "न्याय" में प्रवृत्त करावें।

इसप्रकार "न्याय" में प्रवेश करनेके अर्थ उचित है कि छठी-सातवीं कक्षा तक तो यही पाठ-जो आप लोगों के सन्मुख उपस्थित हैं-पढाये जायं। तत्पश्चात आठवीं श्रेणीमें "न्याय दीपिका" "परीक्षा मुख" अथवा इसी प्रकारकी किसी अन्य पुस्तका अध्ययन कराया जाय। इस प्रकार छात्रोंमें न्यायकी योग्यता स्वयं बढती जायगी।

प्रथम पाठ

(क)

प्रश्न—बच्चो ! आज रविवार है; तुम बतला सकते हो कि कल कौन दिन होगा ?

उत्तर—सोमवार।

प्र०—क्या तुम बता सकते हो कि कल मंगल, बुध, या बृहस्पति वार क्यों नहीं होगा ?

उ०—क्यों कि रविवारके बाद सदैव सोमवार ही होता है, कभी दूसरा दिन नहीं होता।

प्र०—इस लिये यदि हम यह कहें, कि कल बुध होगा तो क्या हमारा कहना ठीक होगा ?

उ०—नहीं साहब ! आपका ऐसा कहना नितान्त भ्रमात्मक होगा।

(ख)

प्र०—बच्चो ! हमारी जेबमें चाबियोंका एक गुच्छा है; क्या तुम बतला सकते हो कि उसमें कितनी कुंजियें हैं ?

उ०—नहीं साहब !

प्र०—क्यों ?

उ०—इस लिये कि कोई ऐसा नियम नियत नहीं है कि जिससे किसी गुच्छेकी कुंजियोंकी संख्या निर्धारित हो सके।

उपरोक्त प्रश्नोत्तर-रीतिसे यह प्रकट है कि न्यायके अनुसार नतीजा वहीं निकाला जा सकता है कि,

१—जहां कोई निर्धारित नियम हो, और

२—वहां कोई न्यायका नतीजा नहीं निकल सकता जहां कोई निश्चित नियम नहीं है

दूसरा पाठ

बच्चो !

कल तुमको यह बताया गया था कि जहां कोई नियम नहीं है वहां कोई ठीक नतीजा नहीं निकाला जा सकता। आज हम दो उदाहरणोंपर और विचार करेंगे, कि "नियम" से क्या प्रयोजन है।

१—कल्पना करो कि एक ग्वाला सूर्य निकलनेसे पूर्व शहरमें दूध बेचनेके लिये मेरे मकानके सामनेसे जाया करता है। और यह भी कल्पना कर लो कि यह मनुष्य ५० वर्षसे लगातार योंही मेरे मकानसे जाता है—और कोई नागा कभी इससे नहीं हुई। तो क्या तुम बता सकते हो, कि प्रातःकाल भी वह मेरे मकान के सामने से गुजरेगा, या नहीं ?

२—कल्पना करो मेरा एक मित्र रामदत्त है जो १२ लडकोंका पिता है; और जिसके आज तक कभी लडकी पैदा नहीं हुई। इस रामदत्तकी पत्नी गर्भवती है। क्या तुम बता सकते हो कि उसका गर्भस्थ-बालक पुत्र होगा या पुत्री ?

इन दोनों प्रश्नोंके उत्तर "नहीं" में है। क्यों कि पहिले प्रश्नमें दूध बेचनेवालेका बीमार हो जाना अथवा किसी अन्य आवश्यककार्य या लाभकारी व्यापारमें लग जाना, या दूध ही का अभाव हो जाना संभव है। दूसरे उदाहरणमें प्रकृतिका कोई ऐसा नियम नहीं है, कि अमुक मनुष्यके घर सदैव लडके ही हों—लडकी कभी न हो।

बस हम देखते हैं कि "न्याय" के नियमका प्रयोजन ऐसी घटनाओंसे नहीं है, जो किसी मुख्य बातमें अब तक प्रचलित रहीं हों; किन्तु उस नियत नियमसे है—जो अबतक सत्य पाया गया है—और भविष्यमें भी कभी असत्य नहीं हो सकता। जैसे बालक-पनका युवावस्थासे पहले होना।

तृतीय पाठ

उपरोक्त निर्धारित नियम ६ प्रकारके हो सकते हैं, अधिक नहीं।

१—कारणके ज्ञात होनेसे कार्य्यका अनुमान। जैसे सुलगते हुये गीले ईंधनसे धुंवाका ज्ञान।

नोट—अध्यापकका कर्तव्य है कि बालकों के मन पर नाना उदाहरणों द्वारा यह सिद्धान्त अंकित कर दे।

२—कार्यसे कारणका ज्ञान।

उदाहरण—धुंवेसे अग्निका बोध।

३—पूर्व पक्षसे उत्तर पक्षका बोध।

उदाहरणः—१—रविवारके पश्चात सोमवारका होना।

२—शैशव कालके पश्चात् युवावस्था।

३—युवावस्थाके पश्चात् वृद्धावस्था।

४—उत्तरपक्षसे पूर्वपक्षका ज्ञान।

उदाहरण—१रविवारके पूर्व शनिवारका बोध।

—२बुढापेसे पूर्व युवावस्था।

५—एक साथ होनेवाली बातोंका ज्ञान।

उदाहरण—१ जैसे वय और अनुभव।

—२ बालकपन और अबोधता।

—३ फलमे उसके पकनेके चिन्ह और उसका स्वाद विशेष।

६—व्याप्य—व्यापक अर्थात् कुलमें जुज (अंश) शामिल है; या यों कहो कि जातिके गुण व्यक्तिमें पाये जाते हैं।

उदाहरण—१ इस फुलवाडीमें कोई फलदार वृक्ष नहीं है; अतः इसमें आम भी नहीं है।

अध्यापकका कर्तव्य होगा कि इन ६ प्रकारके नियमोंको भली भांति बालकोंको समझा दे और नाना प्रश्नों द्वारा इस बातका भी निश्चय करा दे कि केवल ६ ही प्रकार के नियम प्रकृति में हैं—न्यूनाधिक नहीं।

चतुर्थ पाठ

बच्चो!

न्यायका सिद्धान्त "धनरूप" नियमसे निकाला जा सकता है, जिसको "अन्वय" कहते हैं।

उदाहरण—जहां कहीं धुंवां है; वहां अग्नि अवश्य है।

नोट—सप्ताह दो सप्ताहमें जब यह बात छात्रगण समझ जावें, तो फिर आगे बढ़।

इस लिये जब कभी तुम धुंवा देखो तो मनमें तुरन्त नतीजा निकाल सकते हो कि वहां अग्नि अवश्य होगी; किन्तु अग्निको देख कर तुम यह नहीं कह सकते कि धुंवा भी वहां है। क्यों कि धुंवा तो बिना आगके हो नहीं सकता; किन्तु आग बिना धुंवाके भी हो सकती है। जैसे सुलगते हुये अंगारे की आग। और आग तथा धुंवेके पारस्परिक संबधसे तुम यह भी नतीजा निकाल सकते हो कि जहां जहां आग नहीं होती वहां वहां धुंवा भी नहीं होता। क्यों कि धुंवा बिना आगसे नहीं होता। यह 'ऋणरूप' है और इसको 'व्यतिरेक' कहते हैं।

बस यह प्रकट है कि आग और धुंवेके संबंधसे ४ नतीजे निकलते हैं।

१—अग्निका ज्ञान धुंवेके ज्ञानसे।

२—धुंवेके अभावका ज्ञान अग्निके अभावके ज्ञानसे।

३—धुंवेका ज्ञान अग्निके ज्ञानसे।

४—अग्निके अभावका ज्ञान धुंवेके अभावके ज्ञानसे।

इनमेंसे पहिले दो तो नियमानुसार हैं और इस कारणसे ठीक हैं। और पिछले दो नियमके प्रतिकूल हैं अतः ठीक नहीं। जहां अन्वय और व्यतिरेककी तुलना होती है, वहां नियम सिद्ध समझा जाता है। यथा—

१—जहां जहां धुंवा होता है वहां वहां अग्नि होती है। (अन्वय)

२—जहां जहां अग्नि नहीं होती वहां वहां धुंवा भी नहीं होता। (व्यतिरेक)

पञ्चम पाठ

बच्चो!

इस उदाहरणमें कि "इस पहाडपर अग्नि है, क्यों कि इसपर धुंवा है" अग्निको साध्य कहते हैं और धुंवेको हेतु।

साध्य वह कहा जाता है जो सिद्ध किया जाय।

हेतु वह है जिसके द्वारा साध्यकी सिद्धी हो।

यह हेतु साध्यका चिन्ह या संबंधी हुआ करता है; जैसे अग्निका चिन्ह धुंवा । क्यों कि धुंवा किसी और वस्तुका चिन्ह नहीं है । कारण यह कि धुंवा अग्नि हीसे पैदा होता है; और अग्निके अभावमें नहीं पैदा हो सकता । अतः वह अग्नि हीका चिन्ह है और इसी कारणसे तुरन्त अग्निका बोध करा देता है ।

हेतु दो प्रकार का होता है, विरुद्ध व अविरुद्ध ।

विरुद्ध— वह है जो साध्यके विरोधी का चिन्ह हो और जिसमें साध्यके प्रतिकूल नतीजा निकले । जैसे इस घड़ेमें आग नहीं है; क्यों कि यह पानीसे भरा हुआ है । यहां पानी अग्निका विरोधी है । अतः अग्निके अस्तित्वका निषेध करता है ।

अविरुद्ध हेतु—वह है जो सरलता पूर्वक साध्यके अस्तित्वको सिद्ध करता है । जैसे इस पहाड़ की चोटीपर आग है, क्यों कि वहांसे धुंवा ऊठ रहा है ।

(विभिन्न उदाहरण)

(क) अविरुद्ध विधि साधक अर्थात् जिनसे अस्तित्व सिद्ध हो । जैसे--

१—शब्द परिणामी होता है; क्योंकि वह क्रियासे उत्पन्न होता है ।

यह उदाहरण व्याप्य-व्यापकके संबंधमें है; जिसका पूरा रूप इस प्रकार बैठता है । शब्द परिणामी होता है क्यों कि वह कार्यसे उत्पन्न होता है । जो जो किये हुये होते है वे वे पदार्थ परिणामी होते हैं । जैसे घट । उसी प्रकार शब्द भी किया जाता है, अतएव वह भी परिणामी होता है । अथवा जो पदार्थ परिणामी नहीं होते वे किये भी नहीं जाते । जैसे वन्ध्या स्त्रीका पुत्र । बस उसी प्रकार शब्द कृतक होता है इसी कारण परिणामी भी होता है ।

२—इस प्राणीमें बुद्धि है; क्यों कि बुद्धिके कार्य बचन आदि इसमें पाये जाते हैं । यहां बुद्धि साध्य है और बचनादि हेतु । कार्यसे कारणका ज्ञान होता है ।

३—यहां छाया है; क्योंकि छत्र मौजूद है । यहां समर्थ कारणसे कार्यका बोध हुआ ।

४—कल इतवार होगा; क्यों कि आज शनिवार है। यहां पूर्व-पक्षसे उत्तर-पक्षका ज्ञान हुआ ।

५—कल इतवार था; क्यों कि आज सोमवार है । यहां उत्तर-पक्षसे पूर्व-पक्ष का ज्ञान हुआ ।

६—इस आममें रस है; क्यों कि यह पका हुआ पीले रंगका है । यह सहचरका उदाहरण है ।

(ख) विरुद्ध-निषेध-साधक ।

७—यहां शीत स्पर्श नहीं है; क्यों कि अग्नि-ताप मौजूद है । यहां अग्नि, शीत से विरुद्ध है और ताप, अग्नि का व्याप्य है । अतः वह अग्नि का ज्ञान कराता है ।

८—यह मनुष्य अस्वस्थ है; क्यों कि शय्याग्रस्त है । यह उदाहरण कार्यसे कारणके निषेधका ज्ञान विरुद्ध रूप से कराता है। क्यों कि स्वास्थ्यके निषेधका बोध होता है—उसके विरोधी बीमारीके कार्य अर्थात् शय्या-ग्रस्त होने से ।

९—इस जीवको सुख नहीं है; क्यों कि उसके हृदयमे व्यग्रता मौजूद है । यहां दुखका कारण हृदयकी व्यग्रता है । अतः वह दुखको जनावेगी और दुखके अस्तित्वमें—जो सुखका विरोधी है—सुख का होना असम्भव है ही ।

१०—कल इतवार नहीं होगा; क्यों कि आज शुक्र है । यह उदाहरण पूर्व-पक्षसे उत्तर पक्षका है । शुक्रवार यहां शनिवारका विरोधी माना गया है ।

११—कल शुक्रवार नहीं था; क्यों कि आज मंगल है । यहां मंगलको बृहस्पतिका विरोधी मानकर उत्तर पक्षसे पूर्व पक्षका अनुमान किया है ।

१२—इस भीतमें उस ओरके भागका अभाव नहीं है; क्यों कि इस ओरका भाग मौजूद है । यह सहचरका दृष्टान्त हुआ ।

(ग) अविरुद्ध-निषेध-साधक ।

१३—इस नगरमें शीसम नही है; क्यौ कि यहां

वृक्षका अभाव है। यह उदाहरण व्याप्य–व्यापकके संबंधमें है।

१४—यहां बरसाऊ बादल नहीं है; क्यों कि यहां वर्षा नहीं हो रही। यह उदाहरण कार्य्य-कारणके संबंधका है।

१५—यहां धुंवा नहीं है; क्यों कि यहां अग्नि नहीं है। यहां कार्य्यसे कारणकी ओर ध्यान गया।

१६—कल रविवार नहीं होगा; क्यों कि आज शनिवार नहीं है।

१७—कल सोमवार नहीं था; क्यों कि आज मंगल नहीं है।

१८—इस तराजूका दाहिना पलडा डंडीको नहीं छू रहा है; क्यों कि दूसरा पलडा उसके बराबर है। यह सहचरका उदाहरण है।

(घ) विरुद्ध–विधि–साधक।

१९—इस प्राणीमें रोग है; क्यों कि इसकी चेष्टा निरोग नहीं पाई जाती।

२०—इस स्त्रीके हृदयमें पीडा है; क्यों कि यह अपने पतिसे हठात् पृथक् कर दी गई है।

अध्यापक महाशय को उचित है कि नाना उदाहरणों द्वारा इन चारों किसमके अनुमानोंका ज्ञान बालकोंको करा दे॥ इति।

सम्पादकीय टिप्पणी—ऊपरके दोनों लेख (इंग्रेजी और हिन्दी) लेखक महाशयने, खास करके बालकोंको न्यायशास्त्रका सरल रीतिसे बोध करा देनेके हेतुसे लिखे हैं। मनुष्यमें रही हुई बुद्धि–शक्तिको विकसित करने और सत्यासत्यके विचारकी जिज्ञासाको तृप्त करने मे एकमात्र साधन न्यायशास्त्र ही है। न्यायवेत्ताओंकी दृष्टिमें जिस मनुष्यने न्यायशास्त्रका अध्ययन नहीं किया वह, चाहे, फिर अन्य सभी विषयोंमें पारंगत क्यों न हो, परंतु "बाल" ही कहलाता है। "अधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रः बालः।" (जिसने व्याकरण, काव्य, कोश आदिका अध्ययन तो कर लिया है परंतु न्यायशास्त्रका अध्ययन नहीं किया वह 'बाल' ही है) यह नैयायिकोंके "बाल" का लक्षण है। इस लक्षणमें सत्यता अवश्य रही हुई है। क्यों कि बिना न्यायशास्त्रका अध्ययन किये मनुष्य सत्यासत्यका भी निर्णय नहीं कर सकता और पदार्थके कार्य–कारणका भी ज्ञान नहीं कर सकता। न्यायतत्त्वके जाने बिना मनुष्यकी बुद्धिशक्ति कुंठित हो रहती है और विचारशक्ति अन्धी बनी रहती है। अतः इस कथनमें कोई भी अत्युक्ति नहीं है कि न्याय शास्त्रके अध्ययन विनाका मनुष्य बिलकुल "बाल" ही है।

भारतके प्राचीन विद्वानोंने न्यायशास्त्रका कितना सूक्ष्म और विस्तृत परिशीलन किया है इसकी साधारण जनोंको तो कल्पना भी आनी कठिन है। उन्होंने एक एक विषयपर तो क्या परंतु एक एक मामूली विचारपर भी सैकडों ग्रंथ और हजारों श्लोक लिख डाले हैं! उनके इन गहन तर्कोंको देख कर आजकलके विद्वान मनुष्यका मस्तिष्क भी चकराने लगता है तो फिर औरोंकी तो बात ही क्या। एक तो यों ही यह विषय कठिन है और फिर उसपर इनकी भाषा संस्कृत होकर उसकी शैली उससे भी कठिनतर है। इस लिये बिना संस्कृतका अच्छा अभ्यास किये न्यायतत्त्वका ज्ञान होना आज प्रायः हमारे देशवासियोंके लिये दुर्लभ हो रहा है। इस दुर्लभताको कुछ सुलभ बनानेके लिये और सर्व साधारणको सहज ही में इस विषयका परिचय प्राप्त करा देनेके लिये श्रीयुत जैनीजीने यह प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। आप इस बारेमें लिखते हैं कि—"मेरा दृढ विश्वास है कि मनुष्य यदि प्राकृतिक नियमोंका विधिपूर्वक अनुशीलन कर ले तो न्यायशास्त्रका दुरुहपथ उसके लिये भलीभांति प्रशस्त हो सकता है। इसी विचारको भविष्यमें कार्य रूप प्रदान करनेके निमित्त यह लेख प्रकाशित कराया जाता है। ताकि इस शास्त्रके धुरंधर विद्वानों द्वारा इसकी उचित समालोचना हो जाय। अगर इन नियमोंमें यदि किसी महानुभावको संशोधन करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो पूर्ण छानबीनके बाद कर दी जाय। इस लेख द्वारा इस शैलीकी उपयोगिता सिद्ध हो जाने पर इस विषयको पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका उद्योग किया जायगा जिससे मातृभाषा भाषी छात्र न्यायमें प्रवेश करके सत्यासत्यका स्वयं निर्णय कर सकें।"

आशा है कि विद्वत्वर्ग जैनी महाशयके इस उच्च आशयको लक्ष्यमें लेकर इस बारेमें अपनी योग्य सम्मति प्रकाशित करेंगे।

दक्षिण भारतमें ९ वीं–१० वीं शताब्दिका जैन धर्म।

[लेखक:—स्वर्गस्थ कुमार देवेन्द्र प्रसादजी जैन]

गंग वंश।

भारतवर्षके प्राचीन राजवंशोंमें पश्चिमके गंगवंशीय राजा जैनधर्मके कट्टर अनुयायी थे। यह बात परम्परासे चली आई है कि नंदीगण सम्प्रदायके सिंहनन्दी नामक एक जैनधर्मके आचार्यने, गंगवंशके प्रथम राजा शिवमारको राज्यसिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता दी थी। एक शिलालेखमें इस बातका वर्णन है कि शिवमार कोंगुणि वर्मा सिंहनन्दीका शिष्य था, और दूसरेमें यह कि सिंहनन्दी मुनिकी सहायता से गंगवंश वैभवसम्पन्न हुआ। एतदर्थ इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जैन ग्रन्थोंमें इस भावके श्लोक पाए जाय कि गंगवंशीय राजा सिंहनन्दीकी चरणवन्दना करते हैं[3]। अथवा जिस राजवंशका जन्म एक जैन धर्माचार्यकी कृपासे हुआ हो उसके राजाओंका कट्टर जैनधर्मावलम्बी होना भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसे लेख विद्यमान हैं जो इस बातको निस्संदेह सिद्ध कर देते है कि गंगवंशीय राजा जैनधर्मके उन्नायक और रक्षक थे। ईसाकी चौथीसे बारहवीं शताब्दी तकके अनेक शिलालेखोंसे इस बातका प्रमाण मिलता है कि गंगवंशके शासकोंने जैन मन्दिरोंका निर्माण किया, जैन प्रतिमाओंकी स्थापना की, जैनतपस्वियोंके निमित्त चट्टानोंसे काट काटकर गुफाएं तैयार कराई और जैनाचार्योंको दान दिया।

मारसिंह द्वितीय।

इस वंशके एक राजाका नाम मारसिंह द्वितीय था, जिसका शिलालेखोंमें धर्ममहाराजाधिराज 'सत्यवाक्य' कोंगुणीवर्मा–परमानडी मारसिंह नाम मिलता है। इस राजाका शासन काल चेर, चोल, और पाण्ड्य वंशोंपर पूर्ण विजयप्राप्तिके लिये प्रसिद्ध है। मारसिंह द्वितीयने अपने शत्रु वज्जलदेवके साथ सर्वोत्कृष्ट विजय प्राप्त किया और गोनूर और उच्छंगीमें उसने बहुत घनघोर युद्ध लड़े। जैन सिद्धान्तोंका सच्चा अनुयायी होनेके कारण इस महान नृपने अत्यन्त ऐश्वर्यसे राज्य करके राजपद त्याग दिया और धारवार प्रांतके बांकापुर नामक स्थानमें अपने प्रसिद्ध धर्म-गुरु अजितसेनके सन्मुख

---

१ देखो Repertoire d'epigraphie Jaina (A. Guerinot) शिलालेख नं. २१३ और २१४; तथा चन्द्रगिरि पहाड़ी पर स्थित पार्श्वनाथ बस्तीके शिलालेखका निम्न लिखित पद्य—

''योऽसौ घातिमलद्विषद्बलशिला—स्तम्भावली—खण्डन-
ध्यानासिः पटुरर्हतो भगवतः सोऽस्य प्रसादीकृतः।
छात्रस्यापि स सिंहनन्दिमुनिना नो चेत् कथं वा शिला-
स्तम्भो राज्यरमागमाध्वपरिघस्तेनासिखण्डो घनः''॥

(श्रवण बेलगोल शिलालेख, नं. ५४, पृष्ठ ४२)

२ सलेम जिलेकी Manual-Revd. T. F. Foulkes द्वितीय भाग, पृ० ३६८ का निम्न लिखित पद्य देखिए—

''यस्याभवत् प्रवरकाश्यपवंशजोऽत्रे
कण्वो महामुनिरनल्पतपःप्रभावः।
यः सिंहनन्दिमुनिपप्रतिलब्धवृद्धि—
गंगान्वयो विजयतां जयतां वरः सः॥''

लूईस राइसके पाठानुसार 'मनिप' की जगह 'मुनिप' पाठ दिया है, जो ठीक जंचता मालूम देता है।

३ ''श्रीदेशीयगणाब्धिपूर्णमृगभृच्छ्रीसिंहनन्दिव्रति—
श्रीपादाम्बुजयुग्ममत्तमधुपः सम्यक्त्वचूडामणिः॥
श्रीमज्जैनमताब्धिवर्द्धनसुधासूतिर्महीमण्डले
रेजे श्रीगुणभूषणो बुधनुतः श्रीराजमल्लो नृपः॥''

(बाहुबली चरित्र, श्लोक ८)

तीन दिनोंके व्रतसे शरीर त्याग दिया। मारसिंह द्वितीयकी समाधिका लेख कूगे ब्रह्मदेव खंभ नामक स्तम्भके निम्न भागमें चारों ओरके शिलालेखोंमें विद्यमान है। वह स्तम्भ श्रवण बेलगोल (माइसोर) की चन्द्रगिरी पहाडियोंपर स्थित मन्दिरोंके द्वारपर है[४]। यद्यपि इस लेखमें कोई तिथि नहीं लिखी है,—तथापि मारसिंह द्वितीयके मृत्युकी तिथि एक दूसरे शिलालेखके आधारपर सन ९७५ ई० निश्चय की गई है[५]।

चामुण्डराय।

चामुण्डराय या चामुण्डराज इस महान् नृपतिका सुयोग्य मंत्री था। इस मन्त्रीके शौर्यही के कारण मारसिंह द्वितीय वज्जलसे तथा गोनूर और उच्छंगीके रणक्षेत्रोंमें विजय प्राप्ति कर सका। श्रवणबेलगोलके एक शिलालेखमें चामुण्डराय की इस प्रकार प्रशंसा की हुई है—" जो सूर्यकी भांति ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी उदयाचलके शिरको मणिकी नाई भूषित करता है; जो चंद्रमाकी भांति अपने यशरूपी किरणोंसे ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी समुद्रकी वृद्धि करता है; जो ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी खानियुक्त–पर्वतसे उत्पन्न मालाका मणि स्वरूप है और जो ब्रह्मक्षत्र कुलरूपी अग्निको प्रचण्ड करनेके हेतु प्रबल पवनके समान है; ऐसा चामुण्डराय है।

" कल्पान्त क्षुभित समुद्रके समान भीषणबलवाले और पातालमल्लके अनुज वज्जलदेवको जीतनेके हेतु इन्द्र नृपतिकी[६] आज्ञानुसार, जब उसने भुजा उठाई; तब उसके स्वामी नृपति जगदेकवीरके विजयी हाथीके सन्मुख शत्रुकी सेना इस प्रकार भाग गई जैसे दौडते हुए हाथीके सन्मुख मृगोंका दल।

" जिसकी उसके स्वामीने नोलम्बराजसे युद्धके समय इस प्रकार प्रशंसा की थी " जो वज्ररूप दांतोंसे शत्रुके हाथियोंके मस्तकको विदीर्ण करता है और जो शत्रुरूपी हिंस्र जीवोंके लिये अंकुशके समान है। ऐसे हाथीवत् आप जब वीर से वीर योद्धाओंके सन्मुख विराजमान हैं तो ऐसा कौन नृप है जो हमारे कृष्णबाणोंका ग्रास न बने"।

" जो नृप रणसिंहसे लडते हुए इस प्रकार गर्ज कर बोला, " हे नृपति जगदेकवीर! तुम्हारे तेजसे मैं एक क्षणमें शत्रु को जीत सकता हूं, चाहे वह रावण क्यों न हो, उसकी पुरी लंका क्यों न हो, उसका गढ त्रिकूट क्यों न हो, और उसकी खाई क्षारसमुद्र क्यों न हो।"

" जिसको स्वर्गांगनाओंने यह आशीर्वाद दिया था " हम लोग इस वीरके बहुतसे युद्धोंमें उसको कण्ठालिंगनसे उत्कंठित हुई थीं, परन्तु अब उसकी खड्गकी धारके पानीसे हमलोग तृप्त हुई हैं। हे रणरंगसिंहके विजेता! तुम कल्पांत तक चिरंजीव रहो। जिसने चलदंकगंग नृपतिकी अभिलाषाओंको व्यर्थ कर दिया, जो अपने भुजविक्रमसे गंगाधिराज्यके वैभवको हरण करना चाहता था; और जिसने वीरोंके कपालरत्नोंके प्याले बना कर और उनको वीरशत्रुओंके शोणितसे भरकर खूनके प्यासे राक्षसोंकी अभिलाषाको पूर्ण किया।" उपरोक्त शिलालेख स्वयं चामुण्डराजका लिखा हुआ अपना वर्णन है। परन्तु ऐसा जान पडता है इस शिलालेखका अधिक भाग अप्राप्य है। ऐसा मालूम देता है कि हेग्गडे कन्नने, अपने लिए केवल अढाई पंक्तिओंका लेख लिखनेके लिए, चामुण्डरायके मूल–लेखको तीन ओर अच्छी तरहसे घिसा दिया; और केवल एकही ओरके लेखको

४ देखो, लूईसराईस रचित 'श्रवणबेलगोलके शिलालेख' नं ३८।

५ देखो, मेलागानिका शिलालेख जिसको लूईस राईसने अपने 'श्रवण बेलगोलके शिलालेखोंकी भूमिकाकी पाद टीकामें उद्धृत किया है। पुनः देखो, एपिग्राफिया इन्डिका, भाग ५, शिलालेख नं. १८।

६ इन्द्र चतुर्थ, तृतीय कृष्णका पौत्र–देखो 'एपिग्राफिया इन्डिका' भाग ५, लेख नं० १८।

७–८ "ब्रह्मक्षत्रकुलोदयाचलशिरोभूषामणिर्भानुमान
ब्रह्मक्षत्रकुलाब्धिवर्द्धनयशोरोचिः सुधादीधितिः।
ब्रह्मक्षत्रकुलाकराचलभवश्रीहारवल्लीमणिः
ब्रह्मक्षत्रकुलाग्निचण्डपवनश्चामुण्डराजोऽजनि॥
कल्पान्तक्षुभिताब्धिभीषणबलं पातालमल्लानुजम्
जेतुम् वज्जलदेवमुद्यतभुजस्येन्द्रक्षितीन्द्राज्ञया।

रख छोड़ा, जिसका अनुवाद ऊपर दिया है । "चामुण्डरायने एक ग्रन्थकी रचना की जिसका नाम चामुण्डराय पुराण है और जिसमें २४ तीर्थंकरोंका संक्षिप्त इतिहास है और उसके अन्तमें ईश्वर नाम शक संवत्सर ९०० (९७८ ईस्वी) उसकी तिथि दी हुई है"।[१] उपरोक्त शिलालेखके श्लोकोंमें दिया हुआ वर्णन चामुण्डरायपुराणके वर्णनसे मिलता जुलता है । उस पुराणके प्रारंभके अध्यायमें यह लिखा है कि उसका स्वामी गंगकुल चूडामणि जगदेकवीर नोलम्बकुलान्तक-देव था; और वह ब्रह्मक्षत्रवंशमें उत्पन्न हुआ था । अन्तके अध्यायमें यह लिखा है कि वह अजितसेनका शिष्य था ।

पत्युः श्रीजगदेकवीरनृपतेर्जैत्रद्विपस्याग्रतो
धावद्दन्तिनि यत्र मग्नमहतानीके मृगानीकवत् ॥
अस्मिन् दन्तिनि दन्तवज्रदलितद्विट्कुम्भिकुम्भोपले
वीरोत्तंसपुरोनिषादिनि रिपुव्यालाङ्कुशे च त्वयि ।
स्यात् को नाम न गोचरः प्रतिनृपो मद्बाणकृष्णोरग-
ग्रासस्येति नोलम्बराजसमरे यः श्लाघितः स्वामिना ॥
खातः क्षारपयोधिरस्तु परिधिश्चास्तु त्रिकूटः पुरी—
लङ्कास्तु प्रतिनायकोस्तु च सुरारातिस्तथापि क्षमे ।
तं जेतुं जगदेकवीरनृपते त्वत्तेजमीतिक्षणान्
निर्व्यूढं रणसिंहपार्थिवरणे येनोर्जितं गर्जितम् ॥
वीरस्यास्य रणेषु भूरिषु वयं कण्ठग्रहोत्कण्ठया
तृप्ताः सम्प्रति लब्धनिर्वृतिरसास्तत्-खड्गधाराम्भसा ।
कल्पान्तं रणरङ्गसिंहविजयि जीवेति नाकाङ्गना
गीर्वाणीकृतराजगन्धकरिणे यस्मै वितीर्णाशिषः ॥
आक्रष्टुं भुजविक्रमादभिलषन् गङ्गाधिराज्यश्रियं
येनादौ चलदंकगङ्गनृपतिर्व्यर्थाभिलाषी कृतः ।
कृत्वा वीरकपालरत्नचषके वीरद्विषः शोणितं
पातुं कौतुकिनश्च कोणपगणाः पूर्णाभिलाषीकृताः ॥

(त्यागद ब्रह्मदेवस्तम्भका शिलालेख, ई. स. ९८३; देखो, लु. रा. श्रवणबेलगोल, पृष्ठ ८५)

१. लुईस राईस 'श्रवणबेलगोलके शिलालेख' भूमिका पृ. २२; तथा कर्नल मेकेञ्जीका कलेक्शन (एच्. एच्. विल्सनद्वारा संपादित, भाग १, पृ. १४६; जहां यह लिखा है कि चामुण्डराय पुराणमें जैन धर्मके ६३ प्रसिद्ध पुरुषोंका वर्णन है।

तथा कृतयुगमें वह षण्मुख था, त्रेतामें राम, द्वापरमें गाण्डीवि और कलियुगमें वीर मार्तण्ड था । फिर उसकी अनेक उपाधियोंके प्राप्त होनेके कारण लिखे हैं । खड्ग युद्धमें विज्जलदेवको परास्त करनेसे उसको समरधुरन्धर-की उपाधि मिली । नोलम्बयुद्धमें गोनूर नदीकी तीर, उसकी वीरतापर 'वीरमार्तण्ड' की उपाधि, उच्छंगी गढके युद्धके कारण'रणरंगसिंह'की उपाधि,बागलूरके किलेमें 'त्रिभुवन-वीर' और अन्य योद्धाओंका वध करने और गोविन्दको उस किलेमें प्रवेश कराने के उपलक्ष्यमें 'वैरीकुलकालदण्ड' की उपाधि; काम नामक नृपति के गढमें राजा तथा अन्य लोगोंको हरानेसे 'भुजविक्रम' की उपाधि, अपने कनिष्ठ भ्राता नागवर्मा को उसके द्वेषके कारण मारडालने के निमित्त 'चलदंकगंग' की उपाधि; गंगभट मुद्दु राचय्यके वधसे 'समर-परशुराम' और 'प्रतिपक्ष-राक्षस' की उपाधियां; सुभट-वीर के गढको नाश करनेके कारण 'भटमारि' की उपाधि; अपनी और दूसरोंके वीरगुणोंकी रक्षाके कारण 'गुणवं काव' की उपाधि; उसकी उदारता एवं सद्गुण आदिके कारण 'सम्यक्त्व रत्नाकर' की उपाधि; दूसरोंके धन द्वारा हरण की इच्छा न करनेसे 'शौचाभरण' की उपाधि; हास्यमें भी कभी असत्य न बोलनेसे 'सत्य युधिष्ठिर' की उपाधि; अत्यन्त वीर योद्धाओंके शिरोमणि होनेके कारण 'सुभटचूडामणि' की उपाधि मिली । अन्तमें अपने ग्रन्थमें वह अपनेको 'कविजन-शेखर' भी कहता है ।

इन उपरोक्त उल्लेखोंमेंसे बहुतोंका और कहीं वर्णन नहीं है । परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि इतने प्रसिद्ध और गौरवान्वित कार्योंके साथ उसके एक भी धार्मिक कार्यका वर्णन नहीं है । प्रत्युत आदिसे अन्त तक युद्ध और रक्तपातकी ही कथा वर्णित है ।[१०]

परन्तु इस बातको सिद्ध करने के लिए सन्देह रहित प्रमाण उपस्थित है कि वृद्धावस्था प्राप्त होनेपर चामुण्ड-

---

१० देखो, लुईस राईस, 'श्रवण बेलगोलके शिलालेख,' भूमिका, पृ. २४.

राय अधिकतर अपने गुरु अजितसेनकी सेवामें, धार्मिक विचारोंमेंही, अपना समय व्यतीत करता था और श्रवण बेलगोल (माइसोर) के विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि पर गोमटेश्वर और नेमिनाथकी विशाल मूर्तियोंकी स्थापना करने और अपनी सम्पत्तिके अधिक भागको इन मूर्तियोंकी पूजामें व्यय करने के कारण उसका नाम जैनमतके महान् उन्नायकों में अमर हो गया।

राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीय।

गंगवंशीय मारसिंह द्वितीयके मरणोपरान्त पाञ्चालदेव, जिसका पूरा नाम धर्ममहाराजाधिराज सत्यवाक्य कोंगुणी वर्मा पाञ्चलदेव था, सिंहासनारूढ हुआ। उसके अनन्तर राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीय[११] राजा हुआ जिसका पूर्ण नाम धर्म–महाराजाधिराज सत्यवाक्य कोंगुणिवर्मा राचमल्ल था। चामुण्डराज राचमल्ल अथवा राजमल्ल द्वितीयका भी मन्त्री था। एक शिलालेखमें लिखा है, "राय (अर्थात् चामुण्डराय) नृपति राचमल्ल का श्रेष्ठ मन्त्री"[१२], और दूसरे में "चामुण्डराय जो वैभवमें नृपति राचमल्ल का द्वितीय है"[१३] बाहुबली–चरित्र नामक एक जैनग्रन्थमें यह लिखा है कि राजमल्ल नामक एक नृपति था, जो सिंहनन्दी मुनिका चरणोपासक था। चामुण्डभूप (अथवा राज) उसका मन्त्री था।[१४]

एक हस्तालिखित पुस्तकमें लिखा है कि "चामुण्डराय जो 'रणरङ्गमल्ल' 'असहाय–पराक्रम' 'गुणरत्नभूषण' 'सम्यक्त्व–रत्न–निलय' आदि उपाधिधारी है, जो सिंहनन्दी महामुनिद्वारा अभिनन्दित गंगवंशीय नृपति राजमल्लदेवका महामात्य (प्रधानमन्त्री) है"[१५]।

चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्तियों और मन्दिरों का वर्णन करनेके पूर्व यह उत्तम होगा कि हम उन स्थानोंका संक्षेप वर्णन करें जिनमें उक्त धार्मिक स्मारक स्थित हैं और जो आजकल जैनयात्रियोंके लिये अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं।

श्रवण बेलगोल।

श्रमण बेलगोल अर्थात् श्रमण या जैनियोंका बेलगोल माइसोरमें हसन जिलेके चन्नरायपत्न तालुकेमें एक ग्राम है। हेल बेलगोल और कोडी बेलगोल नामक दो बेलगोलोंसे पृथक् करनेके लिये यहां बेलगोलके पूर्व श्रवण शब्दका प्रयोग हुआ है। कानडी भाषामें बेलगोलका अर्थ है "श्वेतसरोवर" और बहुतसे शिलालेखोंमें "धवल सरोवर" "धवल सरस" और "श्वेतसरोवर" का उल्लेख है,[१६] और उस स्थान पर स्थित मनोहर सरोवर ही के कारण उसका यह नाम पड़ा होगा। यहां दो पहाड़ियां हैं। एक उसके उत्तरमें और एक दक्षिणमें। उनके

---

११ डॉ० फ्लीटके मतमें राचमल्ल नाम शुद्ध है (देखो, एपिग्राफिया इन्डिका, भाग ५, लेख नं. १८) और कुछ शिलालेखोंमें भी यह नाम मिलता है, पर जिन जैनलेखोंका हमने भूमिकामें उद्धृत किया है वे राजमल्ल नामहीका उपयोग करते हैं। और देखो, एपिग्राफिया करणाटिका, भाग २, लेख नं. २०७.

१२ 'राचमल्ल भवरवर मंत्री–रायने।'
(भांडारी बस्ती शिलालेख, लु. रा. श्रवण बेलगोल, लेख पृ० १०३)

१३ "राचमल्ले जगत नुतन अभिमाण द्वितीयविभवं चामुण्डरायम" (द्वारपालक दरवाजे के बाई ओरका शिलालेख, देखो, लु. रा. श्रवण० पृ० ६७

१४ "श्रीदेशीयगणाब्धिपूर्णमृगभृच्छ्रीसिंहनन्दिव्रति—
श्रीपादाम्बुजयुग्ममत्तमधुपः सम्यक्त्वचूडामणिः।
श्रीमज्जैनमताब्धिवर्धनसुधासूतिर्महीमण्डले
रेजे श्रीगुणभूषणो बुधनुतः श्रीराजमल्लो नृपः ॥...
तस्यामात्यशिखामणिः सकलवित् सम्यक्त्वचूडामणि
र्भव्याम्भोजविरोचनमणिः सुजनवन्दिकान्तचूडामणिः।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रशिखामणिः कीर्तिमुक्तामणिः
पादन्यस्तमहीशमस्तकमणिश्चामुण्डभूपोऽग्रणीः ॥"
(बाहुबलीचरित्र, श्लोक ६–११)

१५ "सिंहनन्दिमुनीन्द्राभिनन्दितगङ्गवंशललाम......
श्रीमद्राजमल्लदेव—महीवल्लभमहामात्यपदविराजमान—रणरङ्गमल्ल—सहायपराक्रम—गुणरत्नभूषण—सम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणग्रामनामसमासादितकीर्ति...श्रीमच्चामुण्डराय—भव्यपुण्डरीक—द्रव्यानुयोगप्रश्नानुरूपं......"
(अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्तीरचित गोमटसार टीका)

१६ श्रवण० शिलालेख नंबर १०८ तथा ५४.

नाम क्रमशः चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि हैं, जिनपर जैनियोंके मन्दिर और प्रतिमाएं हैं; और शिलालेख भी हैं जिनसे जिनमतके प्राचीन इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़ता है । एक परम्परागत किम्वदन्तीके अनुसार चन्द्रगिरि नाम चन्द्रगुप्तके कारण पड़ा है, जो अपने गुरु भद्रबाहु और उसके १२००० शिष्योंके साथ एक भयंकर दुर्भिक्ष के निकट आनेपर पाटलिपुत्र छोड़कर दक्षिणकी ओर चला गया था । चन्द्रगिरि ही पर भद्रबाहुने अपने नश्वर शरीरका त्याग किया और अन्तकालमें उसके निकट केवल एक ही शिष्य उपस्थित था और वह उपरोक्त चन्द्रगुप्त था । यदि हम जैन–किम्वदन्तीको स्वीकार करलें तो परिणाम यही निकलता है कि उपरोक्त चन्द्रगुप्त जो भद्रबाहु मुनिका शिष्य था, प्रसिद्ध मौर्य—सम्राट् ही है ।[17]

चन्द्रगिरि ही पर चामुण्डरायने एक भव्य मंदिर निर्माण करा था जिसमें उसने २२ वें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्ति स्थापित करवाई । तदनन्तर चामुण्डरायके पुत्रने उसका दूसरा खण्ड भी बनवा दिया और उसमें तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति स्थापित की गई । यह दोनों खण्ड ईसाकी दसवीं शताब्दी में निर्मित हुए और उनसे उस समयकी गृह निर्माण कलाका उत्तम बोध होता है ।

गोम्मटेश्वर ।

विन्ध्यगिरिपर चामुण्डरायने बाहुबली अथवा भुजबलीकी, जिनका अधिक लोकप्रसिद्ध नाम गोम्मटस्वामी अथवा गोम्मटेश्वर है, एक विशाल प्रतिमाका निर्माण किया । कालान्तरमें चामुण्डरायके अनुकरण करके वीर–पाण्ड्यके मुख्याधिकारीने कर्कल (दक्षिणी कनारा) में सन् १४३२ ई० में गोम्मटेश्वर की दूसरी मूर्ति बनवाई । और कुछ काल उपरान्त प्रधान तिम्मराज ने येनूर (दक्षिणी कनारा) में सन १६०४ ई० में गोम्मटेश्वरकी उसी प्रकारकी एक और मूर्ति बनवाई ।[18]

ये "विशाल एक ही पत्थरमें बनी हुई नग्न जैन-मूर्तियां संसारके आश्चर्योंमेंसे हैं "[19] ये "निस्संदेह जैन-प्रतिमाओंमें सर्वोत्कृष्ट और समस्त एशियाकी पृथक्-स्थित प्रतिमाओंमें सबसे बड़ी हैं । ऊंचाई पर स्थित होनेके कारण, कोसोंतक दृष्टि गोचर होती हैं । और एक विशेष सम्प्रदायकी होने पर भी, उनका विशाल गुरुत्व और दिव्य शान्ति-प्रकाशक स्वरूपके कारण हमें उन्हें प्रतिष्ठा युक्त ध्यानसे देखना पड़ता है । श्रवण बेलगोल वाली सबसे बड़ी मूर्तिकी ऊंचाई लगभग ५६½ फीट है और कटिके निम्नभागमें उसकी चौड़ाई १३ फीट है । वह 'नीस (Gneiss)' पत्थरके एक बड़े टुकड़ेसे काटकर बनाई गई है; और ऐसा जान पड़ता है कि जिस जगह पर वह आज स्थित है वहीं पर वह बनी थी । कर्कलवाली मूर्ति जो उसी पत्थर की है, परन्तु जिसकी लम्बाई १५ फीट कम है, अनुमानसे ८० टन तौलमें होगी । इन भीमकायमूर्तिओंमें सबसे छोटी येनूरवाली मूर्ति है जो ३५फीट लम्बी है । ये तीनों मूर्तियां लगभग एकसी हैं, परन्तु येनूरवाली मूर्तिके कपोलोंमें गड्ढे हैं और उससे गंभीर मुसकुराहट-कासा भाव प्रकट होता है, जिसके कारण लोगोंका यह कहना है, कि उसके प्रभावोत्पादक–भावमें न्यूनता आ गई है । जैन कलाकी अति एकनियमबद्धताका यह उत्तम प्रमाण है कि यद्यपि येनूरवाली मूर्तिकी मुसकराहटको छोड़कर वस्तुतः तीनों विशाल मूर्तियां एक हीसी हैं, तथापि उनके निर्माण कालोंमें बड़ा अन्तर है[20] ।"

---

१७ इस विषय पर विशेष देखनेके लिये देखो—एपिग्राफिया कर्नाटका, भाग २, भूमिका पृ० १–२४। और मि० देखो मिसज सिन्क्लेयर स्टिवन्सन रचित "दि हार्ट आव जैनीजम" पृ० १०।

१८ श्रवण बेलगोलकी मूर्तियोंके लिये देखो—'इन्डियन एन्टीक्वेरी,' भाग २, पृ. १२९; 'एपिग्राफिया इन्डिका,' भा. ७ पृ. १०८, लूइस राइसका 'माईसोर और कुर्ग' पृ. ४७। कर्कलकी मूर्तियोंके लिये देखो—'इन्डियन एन्टीक्वेरी' भाग २, पृ. ३५३, 'एपिग्राफिया इन्डिका' भा. ७, पृ. ११२। —येनूरकी मूर्तियोंके विषयमें देखो—'इन्डि. एन्टी.' भा. ५, पृ. ३७, एपि. इन्डि. भा. ७, पृ. ११२।

१९ देखो—'इम्पीरियल गेझेटियर आव इन्डिया' पृ. १२१.

२० देखो—विन्सेण्ट स्मीथ रचित 'ए हिस्टरी आव फाइन आर्ट इन इन्डिया एन्ड सिलोन' पृ० २६८।

चामुण्डराय–निर्मित मूर्ति "केवल तीनोंमें अधिक प्राचीन अथवा लम्बी ही नहीं है, किन्तु बडी ढालू पहाडीकी चोटीपर स्थित होने और एतदर्थ उसके निर्माणमें बडी कठिनाइयोंका सामना करनेके कारण उसका वृत्तान्त सबसे अधिक रोचक है। यह मूर्ति दिगम्बर है और उत्तराभिमुख सीधी खडी है......जंघोंके ऊपर वह बिना सहारेके है। उरुस्थल तक वह वल्मीकसे आच्छादित बनी हुई है, जिसमेंसे सर्प निकल रहे हैं। उसके दोनों पदों और बाहुओंके चारों ओर एक वेलि लिपटी हुई है जो बाहुके ऊपरी भागमें फलोंके गुच्छोंमें समाप्त होती है। एक विकसित कमलपर उसके पैर स्थित हैं।"[२१]

श्रवण बेलगोलकी गोमटेश्वरकी मूर्तिके निम्न भागका शिलालेख।

श्रवण बेलगोलकी गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके दाहिने और बाएं पैरोंके समीप छोटासा लेख है। दाहिने पैरका लेख यह है:—

श्रीचामुण्डराजं माडिसिदं;
श्रीचामुण्डराजन [शे] य्व [व] इत्तां;
श्रीगंगराज सुत्तालयवं माडिसिद;

अर्थात्—

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया,
श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया,
श्रीगंगराजने चैत्यालय निर्माण कराया।

"प्रथम और तृतीय पंक्तिकी लिपि और भाषा कानडी है। द्वितीय पंक्ति प्रथम पंक्तिका तामिल अनुवाद है, और उसमें दो शब्द हैं जिनमें पहला 'ग्रन्थ' और दूसरा 'वट्टलुत्' लिपिमें है। पहिली दो पंक्तियोंमें यह लिखा है कि चामुण्डराजने मूर्त्ति बनवाई, और तीसरी पंक्तिमें लिखा है कि गंगराजने मूर्तिके आसपासका भवन बनवाया।"[२२]

बाईं ओरके पत्थरमें यह लेख है—

श्रीचामुण्डराजे करविपलें
श्रीगंगराजे सुत्ताले करविपलें।

अर्थात्—

श्रीचामुण्डराजने निर्माण कराया।
श्रीगंगराजने चैत्यालय निर्माण कराया।

"इसकी लिपि नागरी है और भाषा मराठी है... शायद महाराष्ट्र देशके जैनयात्रियोंके लाभार्थ मराठी भाषाका प्रयोग किया गया है।"[२३]

चित्र ई ६ में† हमने उपरोक्त शिलालेखोंकी प्रतिलिपि दी है। पहिले बाईं ओरका लेख है। दोनों पंक्तियोंमें एकही प्रकारके अक्षर होनेके कारण बाईं ओरके लेखका गंगराजके समयमें खुदा जाना माना जाता है, जब उसने चामुण्डराज स्थापित गोमटेश्वर मूर्तिके चारों ओर भवन निर्माण कराया। यह देखते हुए भी यह बात सम्भव जान पडती है कि बाईं ओरका लेख दाहिनी ओर वालेका केवल दूसरी भाषामें रूपान्तर है।

गंगराज।

गंगराज होयशाल–वंशीय–नृपति विष्णुवर्धनका मन्त्री था, जिसने ईसाकी १२ वीं शताब्दीमें शासन किया। लगभग सन् ११६० ई० के एक शिलालेखमें गंगराज, चामुण्डराय और हुल्लकी प्रशंसा इस प्रकार पाई जाती है।

"यदि यह पूछा जाय कि प्रारम्भमें (श्रवण बेलगोलमें) जैन–मतके कौन २ उन्नायक थे—तो कहना होगा कि (वे थे) राचमल नृपति का मन्त्री राय, उसके

इन मूर्तियोंकी शिल्पकलाका विशेष वर्णन जाननेके लिये—स्लरक (Slurrock) रचित 'मन्युअल आव साउथ कनारा, पृ. ८५, फर्गुसन साहेबकी 'हिस्टरी आव इन्डियन आर्किटेक्चर, पृ. २६७, 'फिजर्स मेगज़ीन' के मई १८७५ के अंकमें प्रकाशित मि. वालहाउस का लेख, इत्यादि देखने चाहिए।

२१ देखो, एपिग्राफिया कर्नाटिका, भाग २, भूमिका पृ.२८.

२२-२३ देखो, एपिग्राफिया इन्डिका, भाग ७, पृ. १०८-९।

† इस लेखके साथ लेखकने कई चित्र देने चाहे थे परंतु उनका अकाल स्वर्गवास होजानेके कारण वे चित्र हमें न मिल सके। संपादक।

अनन्तर, नृपति विष्णुका मन्त्री गंग; और उसके पश्चात् नृसिंहदेव नृपतिका मन्त्री हुल्ल। यदि और भी इसके योग्य हैं, तो क्या उनके नाम न लिये जायंगे?"[२४]

मूर्तिके नीचेके शिलालेखके अतिरिक्त ११८० ई० के लगभगके एक और शिलालेखमें इस प्रकार इसका वर्णन है—

"जिसमें बुद्धिमत्ता, धर्मिष्ठता, वैभव, उत्तमाचरण, और शौर्यका समावेश है, ऐसा राचमल्ल गंगवंशका चन्द्र था, उसका यश भूमंडल व्यापी था। नृपतिसे वैभवमें द्वितीय [उसका मन्त्री चामुण्डराय], मनुके समान, क्या उसीने अपने प्रयत्नसे यह गोम्मट नहीं बनवाया?"[२५]

भुजबलीका वृत्तान्त, किम्वदन्तियोंके आधार पर। तीनों मूर्तियां बाहुबली, या भुजबलीको व्यक्त करती हैं, जिनको गोम्मटेश्वर भी कहते हैं और जो जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर आदिजिन ऋषभनाथके पुत्र थे। लोककथाके अनुसार ऋषभनाथ एक राजा थे और उनके दो स्त्रियां थीं, जिनके नाम थे नन्दा (या कुछ लोगोंके मतमें सुमंगला) और सुनन्दा। नन्दा या सुमंगलाने दो जुड़वे उत्पन्न किए; जिनमें एक लड़का था और एक लड़की थी और जिनके नाम थे क्रमशः भरत और ब्राह्मी। जब ऋषभदेवने अनन्त ज्ञानकी खोजमें वनवास स्वीकार किया; तब उन्होंने अपने राज्यका भार भरतको सौंपा। बाहुबली और उनकी बहिन सुन्दरी सुनन्दाकी सन्तान थे, और जब उनके पिताने अपने पुत्रोंको राज बांट दिया तो बाहुबली तक्षशिलाके सिंहासनपर सुशोभित हुए। भरतके पास एक अद्भुत चक्र था जिसका सामना कोई भी योद्धा रणमें न कर सकता था। इस चक्रकी सहायतासे पृथ्वी, विजय करके भरत अपनी राजधानीको लौट आया। परन्तु चक्र राजधानीमें (अथवा दूसरोंके मतसे—अस्त्रालयमें) प्रविष्ट नहीं होता था। भरतने इसका अर्थ यह समझा कि पृथ्वीमें कोई ऐसा राज्य शेष है जिसको उसने नहीं जीता है; और विचार करनेपर यह फल निकला कि केवल तक्षशिलाका राज्य शेष था, जहां उसका भाई भुजबली राज्य करता था। तब भरतने अपने भाई भुजवली पर युद्ध ठान दिया परंतु उस घोर युद्धमें विजयलक्ष्मी भुजवलीको प्राप्त हुई। भरतके चक्रसे भी भुजवलीको कोई हानि नहीं पहुंची। परन्तु विजयी होनेपर भी इस संसारको असार जानकर भुजवली क्षणभर में समाधिस्थ हो गए। भरतने भुजबलीको वंदना की और फिर अपने स्थानको लौट आए। फिर भुजवली कैलाश पर्वतके शिखरोंमें चले गए और वहां (अथवा दूसरे वर्णनके अनुसार—युद्धभूमिमें) वर्षभर मूर्तिकी भांति खड़े रहे[२६] तटस्थ वृक्षोंमें लपटी हुई लताएं उनके गलेमें लिपट गईं। उन्होंने अपने वितानसे उनके शिरपर छत्र सा बना दिया और उनके पैरोंके बीचमें कुश उग आए और देखनेमेंसे वे मानो वल्मीक प्रतीत होने लगे[२७]। अन्तमें भुजबलीको अनन्त ज्ञानकी प्राप्ति हुई और वे केवली हो गए।

परन्तु एक शिलालेखमें यह लिखा है कि भुजवली या बाहुवली और भरतके पिता पुरु थे[२८]। और उसके आगे यह लिखा है कि,—"पुरुदेवके पुत्र भरतने, जिसके चारों ओर उसके पराजित राजा वास करते हैं, प्रसन्नतासे विजयी बाहुवली केवली की मूर्त्ति निर्माण कराई जो पौदनपुरके समीप है और ५२५ चाप लम्बी है। बहुत समयके अनन्तर अनेक लोक भयकारी कुक्कुट-सर्प उस

२४ देखो, एपिग्राफिआ करनाटिका, भाग २, भूमिका पृ. ३४. हुल्ल होयशालवंशीय नृपति नरसिंह प्रथमका मंत्री था। वह १२ वीं शताब्दीमें विद्यमान था।

२५ देखो, एपि. कर्ना. भा. २, पृ. १५४. मूर्तिके निर्माणके संबंधमें यह पंक्ति है—" चामुण्डरायं मनुप्रतिमं गोम्मटं अल्ते माडिसिदन् इन्तो देवनं वत्नदिम् "

२६ देखो, जिनसेन रचित हरिवंश पुराण, अध्याय ११। कुछ भिन्न वर्णनके लिए देखो, कथाकोश (टवेनी द्वारा इंग्रेजीमें अनुवादित) पृ. १९२-९५.

२७ देखो, कथाकोश, पृ. १९३-९५.

२८ " पुरुसुतु-बाहुबलि-बोल् " एपि. कर्ना. भा. २ शिलालेख नं. ८५, पृ. ६७.

जैनकी मूर्त्ति के आसपास उत्पन्न होगए और इसी कारण मूर्त्तिका नाम कुक्कुटेश्वर पड गया " [२९]

इन लोकप्रसिद्ध कथाओंके द्वारा हम समझ सकते हैं कि उन वल्मीकमयी मूर्त्तियों का क्या भाव है जिनसे सर्प निकल रहे हैं, तथा श्रवण बेलगोल कर्कल और येनूर गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तियोंमें लिपटी हुई लताओंका क्या तात्पर्य है ? " तीनों मूर्त्तियोंमें ये सब बातें एक समान हैं और उनसे यह भाव प्रकट होता है कि, वे तपस्या में ऐसे पूर्ण लीन होगए हैं कि उनके पैरों पर वल्मीक लग जाने; और शरीरमें लताओंके चिपट जाने पर भी सांसारिक विषयोंपर उनका ध्यानभंग नहीं होता । " [३०]

चामुण्डरायकी मूर्त्तिके स्थापनका वृत्तान्त ।

बाहुबली चरित्र नामक एक संस्कृत काव्य में चामुण्डराय-द्वारा—स्थापित गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिकी स्थापनाकी कथा इस प्रकार वर्णित है ।

बाहुबली चरित्रकी कथा ।

द्रविड देशकी मधुरा नगरी (वर्तमान मदुरा) में राजमल्ल नामक एक राजा था; जिसने जैन सिद्धान्तों के प्रचारका उद्योग किया और जो देशीय-गण [३१] के सिंहनन्दिका उपासक था । उसके मन्त्रीका नाम चामुण्डराय था । एक दिन जब राजा अपनी सभामें मन्त्रीयोंके सहित विराजमान था, एक पथिक व्यापारी आया और उनसे कहा कि उत्तरमें पौदनपुरी नामक एक नगर है जहां भरत द्वारा स्थापित बाहुबली अथवा गोम्मटकी एक मूर्ति है । यह सुनकर भक्त चामुण्डरायने उस पवित्र मूर्त्तिके दर्शन करनेका विचार किया और घर जाकर अपनी माता कालिकादेवीसे यह वृत्तान्त कहा, जिसपर उसने भी वहां जानेकी इच्छा प्रकट की । चामुण्डराय तब अपने गुरु अजितसेनके पास गया, जो सिंहनन्दिका उपासक था । उसने सिंहनन्दिके सन्मुख यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं बाहुबली मूर्त्तिके दर्शन न कर लूंगा तब तक मैं दूध न ग्रहण करूंगा । नेमिचन्द्र अपनी माता और अनेक सैनिकों एवं सेवकोंके सहित चामुण्डराजने यात्रा प्रारंभकी और विन्ध्यगिरि (श्रवण बेलगोल) में जा पहुंचा । रात्रिमें जैनदेवी कुष्माण्डी (बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी यक्षिणी दासी) ने चामुण्डराज नेमिचन्द्र और कालिकाको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि पौदनपुरीको जाना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इसी पहाडीपर पहिले पहिल रावण द्वारा स्थापित बाहुबलीकी एक मूर्त्ति है । और उसके दर्शन तभी हो सकते हैं, यदि एक सुवर्ण-बाणसे इस पहाडीको फाड दिया जाय । स्वप्नके अनुसार, दूसरे दिन चामुण्डरायने दक्षिणाभिमुख पहाडीपर खडे होकर अपने धनुषसे एक सुवर्ण-बाण छोडा । तत्क्षण पहाडके दो टुकडे होगए और बाहुबलीकी एक मूर्त्तिके दर्शन हुए । चामुण्डरायने तब उस मूर्त्तिकी स्थापना और प्रतिष्ठा की तथा उसके पूजार्थ कुछ भूमि लगा दी । जब नृपति राजमल्लने यह वृत्तान्त सुना तो उसने चामुण्डराजको 'राय'की उपाधि प्रदान की और उस मूर्त्तिकी नियमित पूजाके लिए और भी भूमि प्रदान की ।

राजावली कथेके अनुसार कथा ।

देवचन्द्र-द्वारा-रचित कानडी भाषाकी एक नवीन पुस्तकमें भी यही कथा वर्णित है, परंतु कहीं कहीं कुछ बातोंमें अन्तर है । उसमें लिखा है कि चामुण्डराय राजा

---

२९ " धृत-जयबाहु-बाहुबलिकेवलि-रूपसमान—पञ्चविंशति-समुपेत-पञ्चशतचापसमुन्नतियुक्तम् अप्प तत्-प्रतिकृतियं मनोमुददे माडिसिदं भरतं जिताखिल-क्षितिपतिचक्रि पौदनपुरान्तिकदोल् पुरुदेव-नन्दनम् । चिरकालं सले नज्जिनांतिक-धरित्री-देशादोल् लोकभीकरण कुक्कुटसर्पसंकुलं असंख्यं पुट्टि दल् कुक्कुटेश्वरनामन्......" (देखो, एपि. कर्ना. भा. २, पृ. ६७.)

३० लु. रा. का, श्रवण बेलगोल, भूमिका पृ. ३३.

३१ जब नन्दी संघके जैन आचार्य सारे देशमें फैल गये, तब उनके संघका नाम 'देशीयसंघ' हो गया ।

देखो बाहुबली चरित्रका निम्न श्लोक—

" पूर्वे जैनमतागमाब्धिविधुवच्छ्रीनन्दिसंघेऽभवन्
सुज्ञानर्द्धितपोधनाः कुवलयानन्दा मयूखा इव ।
सत्सङ्घे भुवि देशदेशनिकरे श्रीसुप्रसिद्धे सति
श्रीदेशीयगणो द्वितीयविलसन्नाम्ना मिथः कथ्यते ॥"

राजमल्लका एक अधीन-शासक था । उसकी माताने पद्म पुराणका पाठ सुनते समय यह सुना कि पौदनपुरमें बाहुबलीकी एक मूर्त्ति है । इस लिए अपने पुत्रसमेत वह उस मूर्त्तिके दर्शनको चली, परन्तु मार्गमें एक पहाडीपर, जहां भद्रबाहु स्वामीका देहान्त हुआ था उसने स्वप्न देखा जिसमें पद्मावती देवीने उसे दर्शन देकर कहा कि उसी पहाडीपर बाहुबलीकी एक मूर्त्ति है जो पत्थरोंसे आच्छादित है, और जिसकी पूर्व समयमें राम, रावण, और मन्दोदरीने पूजा की थी । फिर दूसरे दिन एक बाण मारनेसे बाहुबलीकी मूर्त्ति दृष्टिगोचर हुई ।

इस प्रकार जैनियोंकी किम्बदन्तियोंके अनुसार यह पता लगता है कि चामुण्डरायने उस मूर्त्तिको नयी निर्माण नहीं कराया, किन्तु उस पहाडीपर एक मूर्त्ति विद्यमान थी जिसकी उसने सविधि स्थापना और प्रतिष्ठा कराई । इन लोक—कथाओंके अनुसार श्रवण बेलगोलके प्रधान पुरोहितने भी यह कहा था, कि प्राचीन कालमें इस स्थानपर एक मूर्त्ति थी, जो पृथ्वीसे स्वतः निर्मित हुई थी, और जो गोम्मटेश्वर स्वामीके स्वरूपकी थी । उसकी राक्षसराज रावण सुखप्राप्तिके हेतु उपासना करता था । चामुण्डरायको यह विदित होनेपर उसने कारीगरों द्वारा उस मूर्त्तिके सब अंगोंको उचित रूपसे सुडौल बनवाया । उसके सब अंग मोक्षकी इच्छासे ध्यानावस्थित गोम्मटेश्वर स्वामीके असली स्वरूपके समान थे । उसने उनके चारों ओर बहुतसे मन्दिर और भवन बनवाए । उनके बनजानेपर उसने बडे उत्साव एवं भक्ति-पूर्वक मूर्त्तिकी उपासनाका क्रम प्रारंभ किया।[३२] स्थल-पुराणसे उद्धृत एक अवतरणमें यह लिखा है जो उपरोक्त कथासे मिलता-जुलता है ।

स्थल-पुराणमें वर्णित कथा ।

" चामुण्डराजने सपरिवार, पदनपुरस्थित-देव गोम्मटेश्वर एवं उसके आसपास स्थित १२५४ अन्य देवताओंके दर्शनार्थ यात्रा प्रारंभ की । देव गोम्मटेश्वरके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुनकर, वह मार्गमें श्रवण बेलगोल क्षेत्रमें जा पहुंचा । वहां उसने गिर पर्ड मन्दिरोंका जिर्णोद्धार किया और अन्य विधानोंके साथ पंचामृतस्नान की भी प्रक्रिया कि । दैनिक, मासिक, वार्षिक एवं अन्य उत्सवोंके संचालनके, लिए उसने सिद्धान्ताचार्यको मटका गुरु नियत किया । मठमें उसने एक 'सत्र' स्थापित किया जहां यात्रियोंके लिए भोजन औषध और शिक्षाका प्रबन्ध था । उसने अपनी जातिवालोंको इस लिए नियत किया, कि वे तीनों वर्णोके यात्रियोंकी, जो दिल्ली, कनकाद्रि, स्वितपुर, सुधापुर, पापापुरी, चम्पापुरी, सम्मिदगिरि, उज्जयन्तगिरि, जयनगर आदिस्थानोंसे आवें, आदरपूर्वक सेवासुश्रूषा करें । इस कार्यके लिए मन्दिरमें कई ग्राम लगादिए गए । उसने चारों दिशाओंमें शिला-शासन लगवा दिए । १०९ वर्षों तक उसके पुत्रपौत्रोंने इस दानको नियमित रक्खा ।"[३३]

अब हमें इस बातका निर्णय करना उचित है कि यह बात कहांतक ठीक है कि चामुण्डराय श्रवण बेलगोलकी गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिका केवल अनुसन्धानकर्त्ता था । भुजबली चरित्र अथवा बाहुबली चरित्र नामक ग्रन्थ संस्कृत छन्दोंमें है, और उसमें केवल जनश्रुतियोंका समुच्चय है, और कई मुखोंतक पहुंचनेके कारण उनमें विचित्रता आगई है । इस ग्रन्थका रचनाकाल ठीक ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता । परन्तु इसकी लेखशैलीसे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके स्थापनाके बहुत काल पश्चात् बना होगा । राजावली कथे जैन इतिहास, किम्बदन्ती, आदिका बृहत् संग्रह है जिसको वर्तमान शताब्दीके पूर्वभागमें माईसोर राजवंशकी एक महिला देवी रम्मके निमित्त मलेपूरकी जैनसंस्थाके देवचन्द्रने रचा था ।[३४]

३२ वेली पागलका ऐतिहासिक और किम्बदन्तियोंके आधार पर वर्णन. (एशियाटिक रिसर्च, भाग ९, पृ. २६३.)

३३ " स्थल पुराण " से लिया हुआ कैप्टेन आई. एस. एफ. मेकेंजीका अवतरण (इन्डियन एन्टीक्वेरी, भाग २, पृ० १३०).

३४ देखो, लु. रा. का श्रवण बेलगोल, भूमिका पृ. ३, (१८८९).

एतदर्थ यह ग्रन्थ भी प्रस्तुत प्रश्नके निर्णयके हेतु प्रमाणकोटिमें नहीं परिगणित किया जा सकता। राजावली-कथे और स्थलपुराणमें, ग्रन्थकर्ताओंने ऐतिहासिक घटनाओंकी यथार्थताके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया है, क्योंकि उनका विषय दन्तकथाओं एवं जनश्रुतियोंका संग्रह था। यह सत्य है कि इन कथाओंमें कहीं कहीं ऐतिहासिक सामग्री विद्यमान है, परन्तु उनको तबतक बिना जांचे ऐतिहासिक घटनाएं न मान लेना चाहिए, जबतक अन्य अधिक विश्वस्तसूत्रोंके आधारपर उनकी यथार्थता सिद्ध न हो जाय। स्थलपुराणकी निर्मूल बातोंके उदाहरण स्वरूप यह पंक्ति लिखी जा सकती है—"चामुण्डराज, दक्षिण मदूराका राजा, और जैन-क्षत्रिय-पाण्डु-वंशोत्पन्न था।"[३५] इससे इस बातका पता लगेगा कि किस प्रकार किम्वदन्तियोंमें मन्त्री चामुण्डरायको मदूराका राजा वर्णन किया गया है।

यदि यह सिद्ध करनेके लिए, कि, इस मूर्त्तिको किसने निर्माण कराया, कोई विश्वस्त अथवा समकालीन लेख न होता तो इन किम्वदन्तियोंके आधारपर यह बात संदिग्ध रहती कि चामुण्डरायने स्वयं इस मूर्त्तिको बनवाया। परन्तु हमारे लिए यह सौभाग्यकी बात है कि यह सिद्ध करनेके लिए लेख विद्यमान है कि, चामुण्डराय हीने न कि और किसीने, गोम्मटेश्वरकी मूर्त्ति बनवाई।

सबसे प्रथम, उस मूर्तिके पैरोंवाला शिलालेख है—जिसका वर्णन पहिले हो चुका है—जिसमें यह साफ साफ लिखा है कि चामुण्डरायने इस मूर्त्तिको निर्मित किया। द्वितीय, एक अन्य शिलालेखमें, जिसकी तिथि ११८० ई० है, हम ऊपर देख चुके हैं कि चामुण्डरायने निज उद्योगसे इस मूर्तिको बनवाया। इन लेखोंका समर्थन एक पुस्तकसे होता है, जिसका नाम है गोम्मटसार और जिसको आचार्य नेमिचन्द्रने, जो चामुण्डरायके समकालीन थे, रचा है। उसमें निम्नलिखित वर्णन है।

"गोम्मटसंग्रहसूत्रकी जय हो, जिसमें गोम्मटगिरि स्थित गोम्मटजिन और गोम्मटराज-निर्मित दक्षिण—कुक्कुट—जिनका वर्णन है।"

"उस गोम्मटकी जय हो, जिसके द्वारा मूर्त्तिका मुख निर्मित हुआ, जिसको सब सिद्ध और देवताओंने देखा।"[३६]

गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके कारण जिस गिरिपर यह स्थित थी उसका नाम गोम्मटगिरि होगया और इस बारेमें नेमिचन्द्र यह शब्द प्रयुक्त करते हैं। "चामुण्डराय द्वारा निर्मित (विणिम्मिय)"। हम कह चुके हैं कि पोदनपुरमें भरत द्वारा स्थापित गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिका नाम कुक्कुटेश्वर हो गया, जब उसके चारों ओर सर्प निकल आए। चामुण्डराय द्वारा स्थापित मूर्त्तिका नाम दक्षिण कुक्कुट-जिन होगया, जिससे उत्तरीय मूर्त्तिसे वह भिन्न जानी जा सके। इस मूर्त्तिको बनवानेके कारण चामुण्डरायका नाम गोम्मटराय पडगया।

इन प्रमाणोंसे इस बातमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि चामुण्डराय ही ने इस मूर्तिका निर्माण कराया। इस महान् कार्यके कारण वह स्वयं गोम्मटराय कहलाने लगा। परन्तु यदि उसने केवल मूर्तिका अनुसन्धान ही किया होता तो कदापि यह बात न होती। चामुण्डरायके गुरु नेमिचन्द्र मूर्तिस्थापनके समय अवश्य विद्यमान होंगे (क्योंकि बाहुबली चरित्रनकमें यह लिखा है कि उस अवसरपर नेमिचन्द्र भी उपस्थित थे) अतएव

---

३५ केप्टेन मेकेञ्जी द्वारा उद्धृत 'स्थलपुराण' का अवतरण (इन्डि. एन्टी. भाग २, पृ. १३०) यह कहना भी उचित होगा कि सेनगणकी पट्टाबिलिमें भी ऐसा ही लिखा हुआ है—"दक्षिण मधुरानगर निवासि—क्षत्रियवंश शिरोमणी—दक्षिण तिलंग कर्नाटक देशाधिपति चामुण्डराय प्रतिबोधक—बाहुबील प्रतिबिम्ब गोमट प्रतिष्ठापकाचार्य—श्री अजितसेन भट्टारकाणाम्।" (देखो, जैन सिद्धान्तभास्कर, भाग १, सं. १, पृ. ३८.)

३६ "गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ॥
जेण विणिम्मिय-पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं॥
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ॥
(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, श्लोक ९६८-६९.)

नेमिचन्द्रके शब्दोंको, जिनका समर्थन शिलालेखसे होता है, इस प्रश्नके सम्बन्धमें प्रमाणित मानना चाहिए ।

तो फिर इसका क्या कारण है कि बाहुबली चरित्र राजावली कथे आदिग्रन्थोंमें चामुण्डरायको मूर्त्तिका केवल अन्वेषकही लिखा गया है? शायद कारण यह हो कि इन ग्रन्थोंके लेखक मूर्त्तिको अधिक प्राचीन कहकर अधिक पूज्य और पवित्र बनाना चाहते थे ।

गोम्मटरायकी मूर्त्तिके सम्बन्धमें एक और किम्बदन्ती है जिसमें इस बातका वर्णन है कि ऐसी मूर्त्तिको स्थापन करनेके कारण चामुण्डरायके गर्वने किस प्रकार नीचा देखा । कथा इस प्रकार है:—

" इस मूर्त्तिको स्थापित करनेके अनन्तर चामुण्डराय यह सोचकर मारे गर्वके फूला न समाया कि मैंने अपने ही सामर्थ्यसे, इतने धन और परिश्रमसे इस देवताकी स्थापना करा ली । तदनन्तर जब उसने देवताकी पंचामृत-स्नान-विधि की, तो इस पदार्थसे भरे अनेक पात्र चुक गए, परन्तु देवताकी अलौकिक मायासे, पंचामृत तोंदीसे नीचे न जा सका, जिससे उपासकके व्यर्थाभिमानका नाश हो । कारण न जानकर चामुण्डरायको यह सोचकर अत्यन्त शोक हुआ कि पंचामृतसे समस्त मूर्त्तिको स्नान करानेकी मेरी इच्छा पूर्ण न हुई । जब वह इस अवस्थामें था, देवताकी आज्ञानुसार पद्मावती नाम्नी अप्सरा एक वृद्धा निर्धन स्त्रीका रूप धारणकर प्रकट हुई, जिसके हाथमें एक बेलियगोलमें (छोटी चांदीकी कटोरी) मूर्त्तिके स्नानके हेतु पंचामृत था । उसने चामुण्डरायसे मूर्त्तिको स्नान करानेका प्रस्ताव प्रकट किया । परन्तु चामुण्डराय यह समझकर, उस असंभव प्रस्तावपर हंस दिया, कि जिसको मैं नहीं कर सका उसे यह करने चली है । परन्तु विनोदार्थ उसने उसे यह करनेकी आज्ञा देदी । तब दर्शकोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसने उस चान्दीके छोटे पात्रहीसे समस्त मूर्त्तिको स्नान करा दिया । तब चामुण्डरायने अपने अपराध एवं गर्वके लिए शोक प्रकाशित करके, बड़े आदरसे, द्वितीय बार स्नानकी विधि की, जिसमें पहिले उसने इतनी सामग्री व्यर्थ खो दी थी, और पूर्ण रूपेण उसने मूर्त्तिके समस्त शरीरको स्नान कराया । उस समयसे इस स्थानका नाम, उस चान्दीके पात्रके कारण, जो पद्मावती हाथमें लिए थी, बेलियगोल पड गया । "[३७]

मूर्त्ति निर्माणकी तिथि ।

अब हम अनुमानसे उस तिथिका निश्चय करेंगे जिसमें चामुण्डरायने गोम्मटेश्वरकी मूर्त्ति निर्माण कराई । हम कह चुके हैं कि चामुण्डराय मारसिंह द्वितीय और राचमल्ल या राजमल्ल द्वितीयका मन्त्री था । किम्बदन्तीके अनुसार राजमल्लके समयमें मूर्त्ति स्थापित हुई । हम देख चुके हैं कि मारसिंह द्वितीयके शासनकालमें चामुण्डरायने अनुपम शौर्यकी ख्याति प्राप्त की थी और एक शिलालेखमें, जिसमें उसने अपना वृत्तान्त दिया है, वह केवल अपनी जीतोंका वर्णन करता है । उसके द्वारा किए हुए किसी धार्मिक कार्यका उनमें वर्णन नहीं है । यदि मारसिंह द्वितीयके समयमें उसने इस विशाल-मूर्त्तिका निर्माण कराया होता तो वह इस बातका अवश्य वर्णन करता । क्योंकि इससे उसका नाम अमर हो गया है । मारसिंह द्वितीयकी मृत्यु सन ९७५ ई० में हुई । चामुण्डराय अपने ग्रन्थ चामुण्डराय पुराणमें अपनी वीरताका सविस्तर वर्णन करता है और अपनी समस्त उपाधियोंका वर्णन करके उनके प्राप्तिके कारण भी बताता है; परन्तु गोम्मटेश्वरकी मूर्त्तिके निर्माणका तनिकभी उल्लेख नहीं किया है । इस ग्रन्थके अन्तमें, उसका रचना काल शक ९०० (९७८ ईस्वी) दिया है । अतएव ९७८ ईस्वीके अनन्तर और राजमल्ल या राचमल्ल द्वितीयके शासनके अन्तिम वर्षके पूर्व गोम्मटेश्वरकी इस मूर्त्तिका निर्माण हुआ होगा । राजमल्ल द्वितीयने ९८४ ईस्वीतक राज्य किया । इस लिए

---

३७ एशियाटिक रीसर्च, भाग ९, पृ. २६६ । उपरोक्त वर्णनमें श्रवण बेलगोलके नाम पड़नेका बिल्कुल दूसरा कारण बताया गया है । अभी कुछ दिन हुए जैनोंने गोम्मटेश्वरका पंचामृत स्नान कराया था ।

९७८ और ९८४ ईस्वीके अन्तर्गत कालमें इस मूर्तिका निर्माण हुआ होगा।

बाहुबली चरित्रमें एक श्लोक है जो मूर्तिस्थापनका ठीक ठीक समय बताता है। वह श्लोक इस प्रकार है—

कल्क्यब्दे षट्शताख्ये विनुतविभवसंवत्सरे मासि चैत्रे,
पञ्चम्यां शुक्लपक्षे दिनमणिदिवसे कुम्भलग्ने सुयोगे।
सौभाग्ये मस्तनाम्नि प्रकटितभगणे सुप्रशस्तां चकार
श्रीमच्चामुण्डराजो वेल्गुलनगरे गोमटेश-प्रतिष्ठाम्॥"

अर्थात्—श्रीचामुण्डरायने बेलगुल नगरमें कुम्भलग्नमें, रविवार शुक्ल पक्ष चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन विभवनाम कल्कि-संवत्सर ६०० के प्रशस्त मृगशिरा नक्षत्रमें, गोमटेशकी प्रतिष्ठा की।

यदि हम उपरोक्त तिथिको यथार्थ मान लें, क्योंकि सम्भव है ऐसे उत्तम मुहूर्तमें ऐसा बडा कार्य किया गया हो, तो हमें यह निकालना पडेगा कि ९७८ और ९८४ ईस्वीके अन्तर्गत किस दिन यह सब योग पडते थे। हमने भलीभांति सावधानीसे ज्योतिषकी रीतियोंके अनुसार सर्व सम्भाव्य तिथियोंको जांचा है और उसका परिणाम यह निकलता है कि रविवार ता० २ अप्रैल सन ९८० ई० को मृगशिरा नक्षत्र था और पूर्व दिवससे (चैत्रकी बीसवीं तिथि) शुक्ल पक्षकी पंचमी लगगई थी, और रविवारको कुम्भ लग्न भी था। अतएव जिस दिन चामुण्डरायने मूर्तिकी प्रतिष्ठा की उसकी हम यही तिथि मान सकते हैं परन्तु उपरोक्त श्लोकमें एक बात है जो प्रथम बार देखनेसे इतिहासके विरुद्ध जान पडती है। इस श्लोकमें यह कहा गया है कि कल्क्यब्द ६०० विभवनाम संवत्सरमें गोम्मटेश्वरकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा हुई। शक सम्वत् महावीरके निर्वाणके ६०५ वर्ष ५ मास पश्चात् प्रारम्भ होता है[३८] और कल्कि संवत् शक संवत्के ३९४ वर्ष ७ मास अनन्तर प्रारम्भ होता है। अर्थात् वीरनिर्वाणके १००० वर्ष अनन्तर कल्कि संवत् आरम्भ होता है। अतएव, कल्कि संवत्का आरम्भ ४७२ ईस्वीसे होता है। इसलिए कल्कि संवत् ६०० (४७२+६००) १०७२ ईस्वी सन् होगा। परन्तु यह बात इतिहासके विरुद्ध है, क्योंकि राचमल्ल द्वितीयका शासन सन् ९८४ ईस्वीमें समाप्त होता है। इसके अतिरिक्त ज्योतिष गणनासे भी यह ज्ञात होता है कि कल्कि संवत् ६०० में चैत्र शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथि, चैत्रके तेईसवें दिन शुक्रवारको पडती है, जो उपरोक्त श्लोकसे विरुद्ध है क्योंकि उसके अनुसार उस साल चैत्र शुक्ल पंचमीको रविवार था।

अतएव कल्कि संवत् ६०० का अर्थ कल्कि संवत्की छठी शताब्दी लेना चाहिए। विभव संवत्को ८ वां मानना चाहिए जिससे इतिहासानुसार ठीक ठीक बैठे। इसलिए विभवनाम कल्कि संवत् ६०० के अर्थ लेना चाहिए कल्कि संवत्की छठी शताब्दीका ८ वां वर्ष—अर्थात् ५०८ कल्क्यब्द। यदि हम इस तिथिको स्वीकार कर लें तो ठीक ९८० ईस्वीको यह सम्वत् पडता है और श्लोकमें वर्णित सर्व ज्योतिषके योग भी मिल जाते हैं।

अतएव अब हमारे माननेके लिए दो मार्ग हैं। प्रथम; कि हम बाहुबली चरित्रके श्लोकको इतिहास-विरुद्ध कहकर प्रमाणित न मानें, या जैसा हमने किया है वैसा उसका अर्थ लगावें, जिससे वह शिलालेखकी तिथिसे मिल जाय। और हमारी समझमें तो दूसरा मार्ग ग्रहण करनाही सर्वोत्तम है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती।

अब हम द्रव्यसंग्रहके लेखकके सम्बन्धमें समस्त प्राप्य सामग्री एकत्र करनेका प्रयत्न करेंगे। इस ग्रन्थके अन्तिम श्लोकसे यह पता लगता है कि इसके रचयिता मुनि नेमिचन्द्र थे।[३९] बाहुबली चरित्रमें यह लिखा है

३८ देखो, नेमिचंद्र रचित त्रिलोक सारका निम्न उल्लेख—
'पण छ सयवस्स पण मासजुदं
गमिय वीरणिवुइदो सगराजा॥'
अर्थात् वीरनिर्वाणके अनन्तर ६०५ वर्ष और ५ मास व्यतीत होने पर शकराजा हुआ। (इण्डियन एन्टिक्वरी, भाग १२, पृ. २१.)

३९ देखो, द्रव्यसंग्रह (श्लोक ५८)—
'दव्वसंग्गहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥'

कि देशीय गणके नेमिचन्द्र मुनि, चामुण्डराय और उसकी माताके साथ पौदनपुर गोम्मटेश्वरके दर्शनार्थ गये थे । और नेमिचन्द्रने स्वप्न देखा कि विन्ध्यगिरिपर गोम्मटेश्वरकी एक मूर्त्ति है, और चामुण्डरायने मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा करानेके अनन्तर उसकी नित्य पूजा और त्यौंहारोंके हेतु नेमिचन्द्रके चरनोंपर कुछ ग्राम प्रदान किए जिनकी आय ९६००० मुद्रा थी ।[४०]

माइसोरके शिमोगा जिलेके नगर तालुकेमें स्थित पद्मावतीके मन्दिरके हातेमें खुदे हुए लगभग सन् १५३० ईस्वीके एक शिलालेखके निम्नलिखित श्लोकसे यह पता लगता है कि चामुण्डराय नेमिचन्द्रके चरणकमलोंकी पूजा करता था । :—

" त्रिलोकसार-प्रमुख.........
.........भुवि नेमिचन्द्र ।
विभाति सैद्धान्तिक-सार्वभौमः
चामुण्डराजार्चित-पादपद्मः ॥ "

अर्थात् " त्रिलोकसार और अन्य (ग्रन्थो) के रचयिता......नेमिचन्द्र सिद्धान्त सार्वभौम सुशोभित हैं, उसके चरणकमल चामुण्डराज द्वारा अर्चित हैं "[४१] यद्यपि इस श्लोकका कुछ भाग मिट गया है, तथापि भाव सुस्पष्ट है । ' सिद्धान्त-सार्वभौम ' सिद्धान्तचक्रवर्ती नामक उपाधिका पर्याय वाची है जो बहुधा नेमिचन्द्रके साथ प्रयुक्त होता है ।

स्वयं नेमिचन्द्रने अपने ग्रन्थ गोम्मटसारमें गोम्मटराय या केवल राय की प्रशंसा की है और ऐसा हम देख चुके हैं कि यह चामुण्डरायका उपनाम है। उन प्रशंसात्मक श्लोकोंमें नेमिचन्द्रने लिखा है कि अजितसेन उस चामुण्डराय के गुरु थे जिसने गोम्मटेश्वरकी मूर्ति निर्माण कराई ।[४२]

अभयचन्द्र रचित गोम्मटसारके भाष्यमें लिखा है कि यह ग्रन्थ चामुण्डरायकी इच्छानुसार रचा गया;जिसको जैनियोंके पवित्र ग्रन्थोंमें वर्णित द्रव्योंकी व्याख्याका अध्यन करनेकी अभिलाषा थी । नेमिचन्द्र-रचित त्रिलोकसारकी एक अति प्राचिन सचित्र हस्तलिखित पुस्तकमें एक चित्र है जिसमें चामुण्डराय अनेक समासदोंके साथ नेमिचन्द्रसे जैन-सिद्धांतोंकी व्याख्या सुन रहे हैं ।

नेमिचन्द्रके ग्रन्थ ।

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने इन ग्रथोंकी रचना की:—(१) द्रव्यसंग्रह (२) गोम्मटसार (३) लब्धिसार (४) क्षपणसार, और (५) त्रिलोकसार । बाहुबली चरित्रमें लिखा है कि " नेमिचन्द्र, गोम्मटसार, लब्धिसार, और त्रिलोकसारके रचयिता हैं "[४३] द्रव्यसंग्रहके अन्तिम श्लोकमें नेमिचन्द्रने अपना नाम प्रकट किया है ।[४४] इसी प्रकार गोम्मटसारके एक श्लोकसे यह ज्ञात

४० " मास्वदेशीगणाग्रसरुचिरसिद्धान्तविन्नेमिचन्द्र—
श्रीपादाग्रे सदा षण्णवतिदशशतद्रव्यभूग्रामवर्य्यान् ।
दत्वा श्रीगोमटेशोत्सवसवननित्यार्चनावैभवाय
श्रीमच्चामुण्डराजो निजपुरमथुरां संजगाम क्षितीशः ।
(बाहुबलि चरित्र, श्लोक ६१.)

४१ एपि. कर्ना. भाग ८, लेख नं. ४६.

४२ "गोम्मट संगहसुत्तं गोम्मटसिंहरुवरि गोम्मटजिणे य ।
गोम्मटरायविणिम्मियदक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥
जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं ।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥
वज्जयणं जिणभवणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु ।
तिहुवणपडिमाणिक्कं जेण कयं जयउ सो रायो ॥
जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया ।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ ॥
जम्हि गुणा विस्संता गणहरदेवादि-इड्ढिपत्ताणं ॥
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरु जयउ सो राओ "

४३ सिद्धान्तामृतसागरं स्वमतिमन्थक्ष्माभृदालोड्य मध्ये
लेभेऽभीष्टफलप्रदानपि सदा देशीगणाग्रेसरः ।
श्रीमद्गोमटलब्धिसारविलसत् त्रैलोक्यसारामर-
क्ष्माजश्रीसुरधेनुचिन्तितमणिन् श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥
(बाहुबलि चरित्र, श्लोक ६३)

४४ ' णमिचंद मुणिणा भणियं जं '
(द्रव्यसंग्रह, श्लो० ५८)

होता है कि नेमिचन्द्रने इसकी रचना की है।[45] हम समझते हैं, इस स्थानपर नेमिचन्द्रके ग्रन्थोंका संक्षिप्त वृत्तान्त दे देना उत्तम होगा।

गोम्मटसार।

इसका नाम गोम्मटसार पडनेका कारण यह है कि यह चामुण्डरायके पठनार्थ लिखा गया था, और हम बतला चुके हैं कि चामुण्डरायका दूसरा नाम गोम्मटराय था। इस ग्रन्थको पञ्चसंग्रह भी कहते हैं[46] क्योंकि इसमें इन पाँच बातोंका वर्णन दिया है (१) बन्ध (२) बध्यमान (३) बन्धस्वामी (४) बन्धहेतु और (५) बन्ध-भेद।

यह ग्रन्थ प्राकृतमें है और इसमें १७०५ श्लोक हैं। इसके दो भाग हैं जिनके नाम हैं जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड। इनमें क्रमानुसार ७३३ और ९७२ श्लोक हैं। जीवकाण्डमें मार्गणा, गुणस्थान, जीव, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, और उपयोगका वर्णन है। कर्मकाण्डमें ९ अध्याय हैं, जिनके नाम हैं—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, बन्धोदयसत्त्व, सत्त्वस्थानभंग, त्रिचूलिका, स्थानसमुत्कीर्तन, प्रत्यय, भवचूलिका, त्रिकरणचूलिका, और कर्मस्थिति-रचना। आठ प्रकारके कर्म और कर्मबन्धका अपनी अपनी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके साथ सविस्तर वर्णन भी दिया हुआ है। कर्मके सम्बन्धके अन्य अनेक विषयोंका भी इसमें वर्णन है। संक्षेपसे गोम्मटसारके प्रथम भागमें जीवोंके स्वाभाविक गुण, और उनकी उन्नतिके उपायों और उपकरणोंका वर्णन है; और दूसरे भागमें उन कर्मबन्ध उत्पन्न करनेवाली अड़चणोंका वर्णन है, जिनके निवारण करनेसे जीवोंको मुक्ति प्राप्त होती है। ग्रन्थकर्ता सर्वदा जीवकी उत्तरोत्तर उन्नतिको ध्येय मानता है, और इसी लक्ष्यसे उसने गोम्मटसारमें जैन-आचार्योंके सिद्धान्तोंका सार दिया है। साधारण रूपसे इस ग्रन्थमें जैन-दर्शन शास्त्रके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंका समावेश है।

गोम्मटसारके भाष्य।

स्वयं चामुण्डरायने कानडी भाषामें गोम्मटसारकी एक टीका रची थी। गोम्मटसारके अन्तिम श्लोकमें इस बातका उल्लेख है कि चामुण्डरायने सर्व साधारणकी भाषामें वीर-मार्तण्डी नाम्नी एक टीका रची।[47] चामुण्डरायकी एक उपाधि-वीर-मार्तण्ड थी, इस लिए उसने अपनी टीकाका नाम रक्खा 'वीर-मार्तण्डी' अर्थात् वीर-मार्तण्डकी रची हुई। चामुण्डरायकी उक्त टीका अब अप्राप्य है, अन्य एक दूसरी टीकामें अब केवल इसका उल्लेख मात्र है, जिसका नाम है केशववर्णीया वृत्ति, (अर्थात् केशववर्णी रचित)। उसके प्रथम श्लोकमें लिखा है "मैं कर्नाटक-वृत्तिके आधारपर गोम्मटसारकी वृत्ति लिख रहा हूं।"[48] गोम्मटसारपर एक और टीका है जिसका नाम है मन्द-प्रबोधिका, और जिसके टीकाकार हैं अभयचन्द्र।[49] इन्हीं टीकाओंके आधारपर टोडरमलने हिन्दी भाषामें एक टीका लिखी है; जिसका वर्तमान समयके जैन-पंडितोंमें बहुत प्रचार है।

नेमिचन्द्रके गुरु।

गोम्मटसारमें अनेक मुनियोंके नाम दिये हैं जिनको नेमिचन्द्र आचार्य कहकर वन्दना करता है। वे नाम इस प्रकार हैं:—अभयनन्दि, इन्द्रनन्दि, वीरनन्दि,

---

४५ सिद्धं तुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया।
गुणरयणभूसणं बुहिमइवेला भरउ भुवणयलं॥
(गोम्मटसार, कर्मकांड, गाथा ९६७)

४६ 'श्रीमच्चामुण्डराय प्रश्नानुरूपं गोम्मटसारनामधेयं पञ्चसंग्रहशास्त्रं प्रारंभमानः।'
(अभयचन्द्ररचित गोम्मटसारवृत्ति)

४७ गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण या कया देसी।
सो राओ चिरं कालं णामेण य वीरमत्तण्डी॥
(गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा ९७२)

४८ नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम्।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः॥
(केशववर्णीयावृत्ति)

४९ मुनिं सिद्धं प्रणम्याहं नेमिचन्द्रं जिनेश्वरम्।
टीकां गोम्मटसारस्य कुर्वे मन्दप्रबोधिकाम्॥
(अभयदेवकी वृत्ति)

और कनकनन्दि।[50] वीरनन्दि रचित एक 'चन्द्रप्रभ चरितं' नामका ग्रन्थ है जिसके अंतमें लिखा है कि वे अभयनन्दिके शिष्य थे,[51] और अभयनन्दि गुणनन्दिके शिष्य थे। गोम्मटसारके उल्लेखानुसार कनकनन्दि इन्द्रनन्दिके शिष्य थे।[52] इससे नेमिचन्द्रकी गुरुपरंपराका टेबल इस प्रकार होता है।

- गुणनन्दि
  - अभयनन्दि
    - वीरनन्दि
  - इन्द्रनन्दि
    - कनकनन्दि
      - नेमिचन्द्र

[यह लेख, आरासे जो द्रव्यसंग्रहकी इंग्रेजी आवृत्ति प्रकाशित हुई है, उसकी प्रस्तावनाका अविकल अनुवाद स्वरूप है, ऐसा पीछेसे उसके साथ मिलान करनेसे मालूम हुआ है।

—संपादक जै. सा. सं.]

---

५० "णमिऊण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं॥"

तथा—

"वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥"
(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड।)

५१ "बभूव भव्याम्बुजपद्मबन्धुः पतुर्मुनीनां गणभृत्समानः।
सदग्रणार्देशिगणाग्रगण्यो गुणाकरः श्रीगुणनन्दिनामा॥
मुनिजननुतपादः प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः।
अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी—
स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत् समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत्।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सतां
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशाः॥"
[चन्द्रप्रभचरितप्रशस्तिः। श्लोकः १, ३, ४,]

५२ वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणन्दिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥
(गोम्मटसार, कर्मसार, गा० ३८९)

जंबुद्दीव पण्णत्ति।

(ग्रंथ परिचय)

[ले. श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी]

जैन साहित्यमें करणानुयोगके ग्रंथोंकी एक समय बहुत प्रधानता रही है। जिन ग्रंथोंमें ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, और मध्यलोकका; चारों गतियोंका, और युगोंके परिवर्तन आदिका वर्णन रहता है, वे सब ग्रन्थ करणानुयोगके[1] अन्तर्गत समझे जाते हैं। आजकलकी भाषामें हम जैन धर्मके करणनुयोगको एक तरहसे भूगोल और खगोल शास्त्रकी समष्टि कह सकते हैं। दिगंबर और श्वेतांबर दोनोंही संप्रदायमें इस विषयके सैकडों ग्रन्थ हैं और उनमें अधिकांश बहुत प्राचीन हैं। इस विषयपर जैन लेखकोंने जितना अधिक लिखा है उतना शायदही संसारके किसी संप्रदायके लेखकोंने लिखा हो। परंरापरासे यह विश्वास चला आता है कि इन सब परोक्ष और दूरवर्ती क्षेत्रों या पदार्थोंका वर्णन साक्षात् सर्वज्ञ भगवानने अपनी दिव्य–ध्वनीमें किया था। जान पडता है कि इसी अटल श्रद्धाके कारण इस प्रकारके साहित्यकी इतनी अधिक वृद्धि हुई और हजारों वर्ष तक यह जैन धर्मके सर्वज्ञ प्रणीत होनेका अकाट्य प्रमाण समझा जाता रहा।

हिंदुओंके पौराणिक भूवर्णनको पढनेसे ऐसा मालूम होता है कि दो ढाई हजार बरस पहले भारतके प्रायः सभी संप्रदायवालोंका पृथ्वीके आकार–प्रकार और द्वीप–समुद्र–पर्वतादिके सम्बन्धमें करीब करीब इसी प्रकारकी धारणा थी, जिस प्रकार कि जैन धर्मके करणानुयोगमें पाई जाती है। पृथ्वी थालीके समान गोल और चपटी है, उसमें अनेक द्वीप और समुद्र हैं, द्वीपके बाद समुद्र और समुद्रके बाद द्वीप, इस प्रकार क्रम चला गया है; जम्बूद्वीपके बीचमें नाभीके तुल्य सुमेरु पर्वत है, इत्यादि। परन्तु पीछेसे विद्वान लोगोंके अन्वेषण और निरीक्षणसे इस विषयका ज्ञान बढता गया, और आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि महान ज्योतिषिओंने तो पूर्वोक्त विचारोंको बिलकुलही बदल डाला। इसका फल यह हुआ कि इस विषयका जो प्रारंभिक हिन्दु साहित्य था उसका बढना तो दूर रहा, मगर वह धीरे धीरे क्षीण होता गया और इधर चूंकि जैन विद्वानोंका विश्वास था कि यह साक्षात सर्वज्ञ प्रणीत है; अतएव वे इसे बढाते चले गये और नई खोजों तथा आविष्कारोंकी ओर ध्यान देनेकी उन्होंने आवश्यकताही नहीं समझी।

यह करणानुयोगका वर्णन केवल इस विषयके स्वतंत्र ग्रन्थोंमें ही नहीं है, प्रथमानुयोग या कथानुयोगादिके ग्रन्थोंमें भी इसने बहुत स्थान रोका है। दिगम्बर संप्रदायके महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराणादि प्रधान २ पुराणोंमें तथा अन्य चारित्र ग्रन्थोंमेंभी यह खूब विस्तारके साथ लिखा गया है। श्वेताम्बर संप्रदायके कथा ग्रन्थोंका भी यही हाल है। बल्कि इस संप्रदायके तो आगम ग्रंथोंमें भी इसका दौरदौरा है। भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति) आदि अंग और जम्बू-

---

१ लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव यथामतिरवैति करणानुयोगं च॥
—रत्नकरण्ड श्रा०

द्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि उपांग ग्रन्थ करणानुयोगकेही वर्णनसे लबालब भरे हुए हैं।

दिगम्बर संप्रदायमें इस विषयका सबसे प्राचीन और विशाल ग्रन्थ त्रिलोकप्रज्ञप्ति है। इसका और लोकविभाग ग्रन्थका परिचय हम जैनहितैषी (भाग १३–अंक १२) में दे चुके हैं। त्रैलोक्यसार नामक ग्रन्थ मूल प्राकृत और संस्कृत टीका सहित माणिकचन्द्र ग्रन्थ-मालामें प्रकाशित हो चुका है। आज इस लेखमें हम जम्बुद्दीवपण्णत्तिका परिचय देना चाहते हैं। इसी नामका और एक ग्रन्थ माथुरसंघान्वयी अमितगति आचार्यका भी है। अमितगतिने चन्द्रप्रज्ञप्ति और सार्द्धद्वयद्वीपप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ भी इसी विषयपर लिखे हैं। परन्तु ये अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आये। जम्बुद्दीवपण्णत्ति नामका एक ग्रन्थ श्वेताम्बर संप्रदाय-का भी है। इसका संकलन करनेवाले गणधर सुधर्मास्वामी कहे जाते हैं। यह छठा उपांग है और आगमग्रन्थोंकी शैलीसे लिखा हुआ है। इसकी श्लोक संख्या ४१४६ है। मुर्शिदाबादके राय धनपतिसिंह बहादुरके द्वारा यह वाचनाचार्य रामचन्द्र गणिकृत संस्कृत टीका और ऋषि चंद्रभाणजीकृत भाषा टीका सहित छप चुका है।

दिगम्बरसम्प्रदायी जम्बुद्दीवपण्णत्तिकी दो प्रतियां हमने देखी हैं; एक स्वर्गीय दानवीर शेठ माणिकचन्द्रजीके चौपाटीके ग्रन्थभाण्डारमें है और दूसरी पूनेके भांडारकर ओरिएन्टल रीसर्च इन्स्टिटयटमें। पहली प्रति सावन वदि १२ सं० १९६० की लिखी हुई है और इसे सेठजीने अजमेरसे लिखवाकर मँग-वाई थी। दूसरी प्रतीपर उसके लिखे हुएका समय नहीं दिया है; परन्तु वह कुछ प्राचीन मालूम होती है!

यह ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और गाथाबद्ध है। इसमें १३ उद्देश या अध्याय, २४२७ गाथायें और भरत, ऐरावत, पूर्व विदेह, उत्तर विदेह, देवकुरु, उत्तरकुरु, लवणसमुद्र, ज्योतिषपटल आदिकावर्णन है। वर्णन त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी अपेक्षा कुछ संक्षिप्त है।

इसके कर्ताका नाम सिरिपउमणंदि या श्रीपद्मनन्दि है। वह अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार बतलाते हैं—वीरनन्दि, बलनन्दि, और पद्मनन्दि। अपने लिए उन्होंने गुणगणकलित, त्रिदण्डरहित, त्रिशल्यपरिशुद्ध, त्रिगारवरहित, सिद्धान्तपारगामी, तप-नियम-योग-युक्त, ज्ञानदर्शनचारित्र्योद्युक्त और आरम्भकरणरहित विशेषण दिये हैं। अपने गुरूओंकी भी उन्होंने ज्ञान और तप आदिके विषयमें प्रशंसा की है। उन्होंने ऋषिविजय गुरुके निकट जिनवचन–विनिर्गत सुपरिशुद्ध आगमको श्रवण करके, उनहींके कृपामाहात्म्यसे इस ग्रन्थकी रचना की है। विजयगुरुका विशेष परिचय वे नहीं देते, इससे उनकी गुरुपरम्परापर कोई प्रकाश नहीं पडता। माघनन्दी नामके एक विख्यात आचार्य थे जो राग-द्वेष-मोहसे रहित, श्रुतसागरके पारगामी, प्रगल्भ मतिमान्, और तपःसंयम –संपन्न थे। उनके शिष्य सकलचन्द्र गुरु हुये, जो नव नियमों और शीलका पालन करते थे, गुणी थे और सिद्धान्त महोदधिमें जिन्होंने अपने पापोंको धोडाला था। इनके शिष्य नैन्दिगुरुके लिए–जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान-चारित्र्यसम्पन्न थे–यह ग्रन्थ बनाया गया है।

आचार्य पद्मनन्दि जिस उमय बारानगरमें थे, उस समय यह ग्रन्थ रचा गया है। इस नगरकी प्रशंसामें लिखा है कि उसमें वापिकायें, तालाब, और भुवन बहुत थे, भिन्नभिन्न प्रकारके लोगोंसे वह भरा हुआ था, बहुतही रम्य था, धनधान्यसे परिपूर्ण था, सम्यग्दृष्टि-जनोंसे, मुनियोंके समूहसे, और जैन मंदिरोंसे विभूषित था। यह नगर पारियत्त (पारियात्र) नामक देशके

१ इसके कर्ता श्रीयतिवृषभाचार्य हैं, और इसकी रचना लगभग १००० वीरनिर्वाणसंवत् में हुई है।

२ इसके कर्ता मुनि सर्वनन्दि हैं और यह शक संवत् ३८० में लिखा गया है। इस ग्रन्थका संस्कृत अनुवाद उपलब्ध है।

१ पुराणसारके कर्ता श्रीचन्द्रमुनि—जो वि. सं. १०७० के करीब हुए हैं—अपने गुरूका नाम श्रीनन्दिलिखते हैं। वे इनसे पृथक् व्यक्ति जान पडते हैं। वसुनन्दि आचार्यकी गुरुपरम्परामें भी एक श्रीनन्दि हैं।

अन्तर्गत था। बारानगरके प्रभु या राजाका नाम शक्ति[1] या शान्ति था। वह सम्यग्दर्शनशुद्ध, व्रती, शीलसम्पन्न, दानी, जिनशासनवत्सल, वीर, गुणी, कलाकुशल और नरपतिसंपूजित था।

आचार्य हेमचन्द्रके कोषमें लिखा है—" उत्तरो विन्ध्यात्पारियात्रः " । अर्थात् विन्ध्याचलके उत्तरमें पारियात्र है। यह पारियात्र शब्द पर्वतवाची और प्रदेशवाची भी है। विन्ध्याचलकी पर्वतमालाका पश्चिम भाग जो नर्मदा तटसे शुरू होकर खंभाततक जाता है और उत्तर भाग जो अर्बलीकी पर्वतश्रेणीतक है पारियात्र कहलाता है। अतः पूर्वोक्त बारानगर इसी भूभागके अन्तर्गत होना चाहिए। राजपूतानेके कोटा राज्यमें एक बारा नामक कसबा है, जान पडता है कि यही बारानगर होगा। क्योंकि यह पारियात्र देशकी सीमाके भीतरही आता है। नन्दिसंघकी पट्टावलीके[2] अनुसार बारामें एक भट्टारकोंकी गद्दी रही है और उसमें वि. सं. (विक्रमराज्याभिषेक) ११४४ से १२०६ तकके १२ आचार्योंके नाम दिये हैं। इससे भी जान पडता है कि सम्भवतः वे सब आचार्य पद्मनन्दि या माघनन्दि की ही शिष्यपरम्परामें हुये होंगे और यही बारा—कोटा जम्बुद्वीप प्रज्ञप्तिके निर्मित होनेका स्थान होगा।

ज्ञानप्रबोध नामक भाषाग्रन्थमें (पद्यबद्ध) कुन्दकुन्दाचार्यकी कथा दी है। उसमें कुन्दकुन्दको इसी बारापुर या बाराके धनी कुन्दश्रेष्ठी और कुन्दलताका पुत्र बतलाया है। पाठकोंसे यह बात अज्ञात न होगी कि कुन्दकुन्दका एक नाम पद्मनन्दि भी है। जान पडता है कि जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्ता पद्मनन्दिकोही भ्रमवश कुन्दकुन्दाचार्य समझकर ज्ञानप्रबोधके कर्ता, कर्नाटकदेशके[3] कुन्दकुन्दका जन्म स्थान बारा बतलानेका प्रयत्न कर बैठे हैं। पर इससे यह बात बहुत कुछ निश्चित हो जाती है कि मालवेके या कोटा राज्यके इसी बारामें यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है।

शान्ति या शक्तिराजा जान पडता है कि कोई मामूली ठाकूर होगा। यद्यपि उसे नरपतिसंपूजित लिखा है, परन्तु साथ ही ' बारानगरस्य प्रभुः ' कहा है। यदि कोई बडा राजा या मांडलिक आदि होता, तो वह किसी प्रदेश या प्रान्तका राजा बतलाया जाता। राजाका वंश आदिभी नहीं बतलाया है, जिससे राजपुतानेके इतिहासोंमे उसका पता लगाया जा सके और उससे पद्मनन्दि आचार्यका निश्चित समय मालूम किया जा सके।

पद्मनन्दि नामके अनेक आचार्य और भट्टारक हो गये हैं। उनमें पद्मनन्दिपंचविंशतिकाके कर्ता बहुत प्रसिद्ध है। वे अपने गुरुका नाम वीरनन्दि[2] लिखते हैं और प्रज्ञप्तिके कर्ताके गुरु बलनन्दि है। इस लिये ये दोनों एक नहीं हो सकते। इसके सिवाय 'पंचविंशतिका' अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थ है। हमारे अनुमानसे यह १३ वीं शताब्दीसे पहलेका नहीं हो सकता। उस समय दिगम्बर मुनि जिनमन्दिरोंमे[1] रहने लगे थे और यह उपदेश दिया जाने लगा था कि बिम्बाफलके[2] पत्तेके भी बराबर मन्दिर और जौके भी बराबर जिनप्रतिमा बनवानेवालेके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता।

---

१. पूनेकी प्रतीमें सन्ति (शान्ति) और बम्बईकी प्रतीमें सत्ति (शक्ति) पाठ है।

२. देखो जैनसिद्धान्तभास्कर किरण ४; और इन्डियन ऍन्टिक्वेरी २० वी जिल्द।

३ कर्नाटक देशके कोण्डकुण्डनामक ग्रामके निवासी होनेके कारण इनका नाम कोण्डकुण्ड हुआ था। कुन्दकुन्द उसीका श्रुतिमधुर संस्कृत रूप है।

१ सुना है कि बारामें पद्मनन्दिकी कोई निषियाभी है।

२ यत्पादपङ्कजरजोभिरपि प्रमार्जितलक्ष्मीः शिरस्यमलबोधकलावतारः। भव्यात्मनां भवति तत्क्षणमेव मोक्षः स श्रीगुरुर्दिशतु मे मुनिवीरनन्दी ॥

४ यह ग्रन्थ काशीमें छप चुका है। इसमें अनेक विषयोंके २५ प्रकरण हैं।

१. सम्प्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः।
धर्मस्य दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम् ॥
उपासकाचार प्रकरण।

२. बिम्बादलोन्नति यवोन्नतिमेव भक्त्या—

प्रशस्तीके कर्ता पद्मनन्दि कब हुए हैं, यह बतानेके लिये अभीतक हमें कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है। परन्तु हमारा अनुमान है कि यह ग्रन्थ विक्रमकी दसवीं शताब्दीके बादका तो नहीं है, पहलेका भले ही हो। क्यों कि—

१) ग्रन्थकी रचनाशैली बिलकुल त्रिलोक प्रज्ञप्तिके सदृश है और भाषा भी अपेक्षाकृत प्राचीन मालूम होती है।

२) नववीं दसवीं शताब्दीके बादके ग्रन्थकर्ता अपनी गुरुपरम्परा बतलाते समय संघ और गण गच्छादिका परिचय अवश्य देते हैं। पर इस ग्रन्थमें किसी संघ या गण गच्छादिका नाम नहीं है। मंगराजकविके शिलालेखके[1] अनुसार अकलंकभट्टके बाद देव, नन्दि, सेन, और सिंह इन चार संघोंकी स्थापना हुई है। अतः हमारी समझमें यह ग्रन्थ अकलङ्कदेवसे पहलेका होना चाहिए। अकलङ्कदेवका समय विक्रमकी ८ वीं शताब्दी है।

३) ऐसा मालूम होता है कि इस ग्रन्थसे पहले इस विषयका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं था। पद्मनन्दि मुनिने श्रीविजयगुरुके निकट आचार्य परम्परासे चला आया हुआ यह विषय सुनकर लिखा है। किसी एक या अनेक ग्रंथोंके आधार आदीसे नहीं। इस विषयमें नीचे लिखी हुई गाथायें अच्छी तरह विचारने योग्य है।

ते वंदिऊण सिरसा वोच्छामि जहाकमेण जिणदिट्ठं ।
आयरियपरम्परया पण्णत्तिं दविजलधीणं ॥ ६ ॥

× × × × ×

आयरियपरम्परया सायरदीवाण तह य पण्णत्ती ।
संखेवेण समत्थं वोच्छामि जहाणु पुव्वीए ॥ १८ ॥

× × × × ×

......रिसिविजयगुरुत्ति विक्खाओ ॥ १४४ ॥
सोऊण तस्स पासे जिणवयण विणिग्गयं अमदभूदं ।
रइदं किंचुद्देसे अत्थपदं तहव लध्दूणम् ॥ १४५ ॥

यदि यह अनुमान ठीक हो कि दिगम्बर सम्प्रदायमें इस विषयका यह पहला ग्रन्थ है तो अवश्यही यह पुराना है। और आश्चर्य नहीं जो त्रिलोकप्रज्ञप्तिके रचे जाने के[1] समयमें अथवा उससे कुछ पीछे लिखा गया हो। इस ग्रन्थमें 'उक्तं च' कह कर अन्य गाथायें या श्लोकादि भी उध्दृत नहीं हैं। इससे भी इसे प्राचीन माननेकी इच्छा होती है।

यह ग्रन्थ जिन नन्दिगुरुके लिये बनाया गया है, उनके दादागुरुका नाम माघनन्दि था, और वे बहुतही विख्यात, श्रुतसागरपारगामी, तपःसंयमसम्पन्न, तथा प्रगल्भबुद्धि थे। इन्द्रनन्दीने अपने[2] श्रुतावतारमें लिखा है कि वीरनीर्वाणसे ६८३ वर्ष बाद तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही। उनके बाद अर्हद्बलि आचार्य हुए और उनके कुछ समय बाद (तत्कालही नहीं) माघनन्दि आचार्य हुए। आश्चर्य नहीं जो नन्दिगुरुके दादागुरु यही माघनन्दि हों। उन्हें जो विशेषण दिये गये हैं उससेभी मालूम होता है कि वे कोई सामान्य आचार्य न होंगे। इन्द्रनन्दिके कथनक्रमसे माघनन्दीका समय वीरनिर्वाणसंवत् ८०० लगभग तक आसकता है। और इस हिसाबसे नन्दिगुरु और पद्मनन्दीका समय वीरनिर्वाणकी ९ वीं शताब्दि माना जा सकता है। पर इस विषयमें अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि इन्द्रनन्दिकथित माघनन्दि और यह माघनन्दि एकही होंगे।

इस ग्रन्थमें भगवान् महावीरके बादकी आचार्य-परम्पराके विषयमें जो कुछ लिखा है उसका आशय इस प्रकार है।

विपुलाचलके ऊंचे शिखरपर विराजमान वर्धमान

ये कारयन्ति जिनसद्म जिनाकृतिं वा ।
पुण्यं तदीयमिह वागपि नैव शक्ता–
स्तोतुं परस्य किमु कारयितुर्द्वयस्य ॥ २२ ॥

१. देखो श्रवण बेल्गोला इन्स्क्रिप्शनका १०८ वां शिलालेख और जैनसिद्धान्त भास्कर किरण ३।

१ वीरनिर्वाण संवत १००० के लगभग।

२ यह ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके 'तत्त्वानुशासनादि-संग्रह' नामक १३ वे अंकमें छप चुका है।

जिनेन्द्रने गौतममुनीको प्रमाणसंयुक्त अर्थ कहा । उन्होंने लोहार्यको, लोहार्यने—जिनका नाम सुधर्मा भी है—जम्बुस्वामीको कहा । ये तीनों गणधर, गुणसमग्र, और निर्मल बारज्ञानके धारी थे । ये केवल ज्ञानको प्राप्त करके मोक्षको प्राप्त हुए । इनको मैं नमस्कार करता हूं । इनके वाद नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पांच पुरुषश्रेष्ठ चौदह पूर्व और बारह अंगके धारक हुए । इनके बाद क्रमसे विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन, ये दस पूर्वधारी हुए । फिर नक्षत्र, यशःपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन, और कंस ये पांच ग्यारह अंगके धारक हुए । इनके वाद सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और अन्तिम लोह (लोहाचार्य) ये आचारांगके धारक हुए ।

इस परम्परासे एक यह विशेष बात मालूम हुई कि सुधर्मास्वामीका दूसरा नाम लोहार्य भी था । लोहार्य नामके एक और भी आचार्य हुए हैं जो आचारांगधारी थे । उन्हें दूसरे लोहाचार्य समझना चाहिए । श्रवण वेल्गोलकी चन्द्रगुप्तवस्तीके [1]शिलालेखके—' महावीरसवितरि परिनिर्वृते भगवत्परमर्षि—गौतमगणधरसाक्षाच्छिष्य—लोहार्य—जम्बु—××" आदि वाक्यमें जो लोहार्यको गौतमगणधरका साक्षात् शिष्य लिखा है, उसका भी इससे खुलासा हो जाता है । अभीतक इस बातका स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिला था कि सुधर्मास्वामीका दूसरा नाम लोहार्यभी था ।

१ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १.

इस परम्परामें और त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी परम्परामें कोई अन्तर नहीं है । आचार्य गुणभद्रकृत उत्तर-पुराण, ब्रह्म हेमचन्द्रकृत श्रुतस्कन्ध, और इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें भी बिलकुल यही परम्परा न्दी हुई है । परन्तु हरिवंशपुराण, नन्दिसंघ—बलात्कार गण—सरस्वतीगच्छकी प्राकृत पट्टावली, [3]सेनगणकी पट्टावली और [4]काष्ठासंघकी पट्टावलीमें नन्दिकी जगह विष्णु नाम मिलता है । इसके सिवाय नान्दिसंघकी पूर्वोक्त पट्टावलीमें और काष्ठासंघकी पट्टावलीमें यशोबाहुके स्थानमें भद्रबाहु नाम है । जान पडता है नन्दीका नामान्तर विष्णु और यशोबाहुका भद्रबाहु भी होगा ।

लोहाचार्य तकको यह गुरुपरम्परा दिगम्बर संप्रदायमें एकसी मानी जाती है । इसमें कोई मतभेद नहीं है । परन्तु यह बडे आश्चर्यकी बात है कि श्वेताम्बर संप्रदायमें जम्बुस्वामीके बाद जो परम्परा मानी जाती है, वह इससे सर्वथा भिन्न है । यद्यपि ये दोनों संप्रदाय वि० सं० १३६ के लगभग पृथक हुए कहे जाते हैं । यदि यह समय सही है तो आचारांगधारियों तककी परम्परा दोनों संप्रदायोंमें एकसी होनी चाहिए थी । या तो यह समय ही ठीक नहीं है—जम्बुस्वामीके बादही यह सम्प्रदाय भेद हो गया होगा, या फिर दोनोंमेंसे किसी एकने अथवा दोनोंने ही पीछेसे भूलमाल जानेपर इन्हें गढा होगा । इतिहासके विद्यार्थियोंके लिये यह विषय खास तोरसे विचार करने योग्य है ।

१. यह ग्रन्थभी तत्त्वानुशासनादि—संग्रहमें छपा है ।
२-३-४ —देखो जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण ४ ।

परिशिष्ट-

जंबुद्दीवपण्णत्तिका आदि और अंतका कुछ भाग नमूनेके तौर पर यहां पर दिया जाता है ।

देवासुरिंदमहिदे दसट्ठरुवूण कम्मपरिहीणे । केवलणाणालोए सद्दम्मुवएसदं अरुहं ॥ १ ॥
अट्ठविहकम्मरहिए अट्ठगुणसमण्णिदे महावीरे । लोयग्ग-तिलयभूदे सासयसुहसंट्ठिदे सिद्धे ॥ २ ॥
पंचाचारसमग्गे पंचेंदियनिज्जिदे विगयमोहं । पंचमहव्वयानिलए पंचमगइनायगायरिए ॥ ३ ॥
परसमयतिमिरदलणे परमागमदेसए उवज्झाए । परमगुणरयणणिवहे परमागमभाविदे वीरे ॥ ४ ॥
णाणागुणतवणिरए ससमदसब्भावगहियपरमत्थे । बहुविहजोगज्जुत्ते जे लोए सव्वसाहुगणे ॥ ५ ॥
ते वंदिदूण सिरसा वोच्छामि जहा कमेण जिणदिट्ठं । आयरियपरंपरया पण्णात्तिं दीवजलधीणं ॥ ६ ॥

+ + + + + +

विउलगिरिगुंगासिहरे जिणिंदइंदेण वड्ढमाणेणं । गोदममुणिस्स कहिदं पमाणणयसंजुदं अत्थं ॥ ९ ॥
तणवि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण । गणधरसुधम्मणा खलु जंबूणामस्स णिद्दिट्ठं ॥ १० ॥
चदुरमलबुद्धिसहिदे तिन्नेदे गणधरे गुणसमग्गे । केवलणाणपईवे सिद्धिंपत्ते णमंसामि ॥ ११ ॥
णंदी य णंदीमित्तो अवराजिदमुणिवरो महातेओ । गोवद्धणो महप्पा महागुणो भद्दबाहू य ॥ १२ ॥
पंचेदे पुरिसवरा चउदसपुव्वी हवंति णायव्वा । बारसअंगधरा खलु वीरजिणिंदस्स णायव्वा ॥ १३ ॥
तहय विसाखायरिओ पोट्ठिल्लो खत्तियओ य जयणामा । णागो सिद्धत्थो बिय धिदिसेणो विजय णामोय ॥
बुद्धिल-गंगदेवो धम्मसेणो य होइ पच्छिमओ । पारंपरेण एदे दसपुव्वधरा समक्खादा ॥ १५ ॥
णक्खत्तो जसपालो पंडु-धुवसेण-कंस-आयरिओ । एयारस अंगधरा पंचजणा होंति णिद्दिट्ठा ॥ १६ ॥
णामेण सुभद्दमुणी जसभद्दो तहय होइ जसबाहु । आयारधरा णेया अपच्छिमो लोहणामो य ॥१७॥
आयरियपरंपरया सायरदीवाण तहय पण्णत्तिं । संखेवेण समत्थं वोच्छामि जहाणुपुव्वीए ॥ १८ ॥

+ + + + + +

परमट्ठिमासिदत्थं उड्ढाधोतिरियलोयसंबंधं । जंबूदीवणिबद्धं पुव्वावरदोसपरिहीणं ॥ १४० ॥
गणधरदेवेण पुणो अत्थं लध्दूण गंथिदं गंथं । अक्खरपदसंखेज्जं अणंतसत्थेहि संहुत्तं ॥ १४१ ॥
आयरियपरंपरेण य गंथत्थं चेव आगयं सम्मं । उवसंहरीय लिहियं समासदो इहय णायव्वं ॥ १४२ ॥
णाणाणरवइमहिदो विगयमयसंगभंग-उम्मुक्को । सम्मद्दंसणसुद्धो संजय-तव-सील-संपुण्णो ॥ १४३ ॥
जिणवर-वयण-विणिग्गयपरमागमदेसओ महासत्तो। सिरिनिलओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरु त्ति विक्खाओ।
सोऊण तस्स पासे जिणवयणविणिग्गयं अमदभूदं । रइदं किंचुद्देसे अत्थपदं तह व लध्दूणं ॥ १४५ ॥

+ + + + + +

अहतिरिय-उड्ढलोएसु तेसु जे होंति बहुवियप्पा दु । सिरिविजयस्स महप्पा ते सव्वे वण्णिदा किंचि।१५३।
गयरायदोसमोहो सुदसायरपारओ मइ-पगब्भो।तवसंजमसंपण्णो विक्खाओ माघनंदिगुरू ॥ १५४ ॥
तस्सेव य वरसिस्सो सिद्धंतमहोदहिम्मि धुयकलुसो । णवणियमसीलकलिदो गुणउत्तो सयलचंद गुरू १५५

१ 'एयारसगधारी' भी पाठ है. २ 'भउ' पाठ द्वितीय पुस्तक में है। ३ 'किंचिद्देसं' भी है।

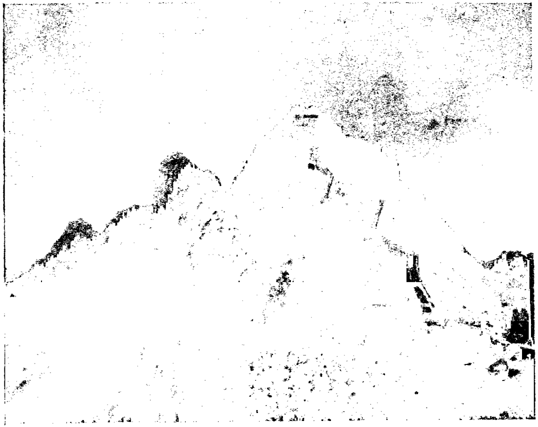
तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरणसंजुत्तो । सम्मइंसणसुद्धो सिरिणंदिगुरु त्ति विक्खाओ ॥१५६॥
तस्स णिमित्तं लिहियं जंबूदीवस्स तहय पण्णत्ती । जो पढइ सुणइ एदं सो गच्छइ उत्तमं ठाणं ॥ १५७ ॥
पंचमहव्वयसुध्दो दंसणसुद्धो य णाणसंजुत्तो । संजमतवगुणसहिदो रागादिविवज्जिदो धीरो ॥ १५८ ॥
पंचाचारसमग्गो छज्जीवदयावरो विगदमोहो । हरिस-विसाय-विहूणो णामेण य वीरणंदित्ति ॥१५९॥
तस्सेव य वरसिस्सो सुत्तत्थवियक्खणो मइप्पगब्भो । परपरिवादणियत्तो णिस्संगो सव्वसंगेसु ॥ १६० ॥
सम्मत्तअभिगदमणो णाणेण तह दंसणे चरित्ते य।परतंतिणियत्तमणो बलणंदि गुरु त्ति विक्खाओ॥१६१॥
तस्स य गुणगणकलिदो तिदंडरहियो तिसल्लपरिसुद्धो । तिण्णिवि गारवरहियो सिस्सो सिद्धंतगयपारो।१६२॥
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदंसणचरित्ते।आरंभकरण रहियो णामणे य पउमणंदीत्ति ॥ १६३ ॥
सिरिगुरुविजयसयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं । मुणि--पउमणंदिणा खलु लिहियं एयं समासेण ॥१६४॥
सम्मइंसणसुद्धो कदवदकम्मो सुसीलसंपण्णो ॥ अणवरयदाणसीलो जिणसासणवच्छलो वीरो ॥१६५॥
णाणागुणगणकलिओ णरवइसंपूजिओ कलाकुसलो ॥ वाराणयरस्स पहू णरुत्तमो सत्तिभूपालो ॥ १६६ ॥
पोक्खराणि—वावि—पउरे बहुभवणविहूसिए परमरम्मे । णाणाजणसंकिण्णे धनधन्नसमाउले दिव्वे ॥ १६६ ॥
सम्मादिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहि मंडिए रम्मे । देसम्मि पारियत्ते जिणभवणविहूसिए दिव्वे ॥ १६८ ॥
जंबूदीवस्स तहा पण्णत्ती बहुपयत्थसंजुत्तं (त्ता) । लिहियं संखेवेणं वाराए अच्छमाणेण ॥ १६९ ॥
छदमत्थेण विरइयं जं किंपि हवेज्ज पवयणविरुद्धं । सोदं तु सुगीदत्था तं पवयण वच्छलत्ताए ॥ १७० ॥

× × × × ×

विउध-वइ-मउड-मणिगण-कर-सलिलसुधोयचारु पयकमलं। वरपउमणंदि णमियं वीर जिणिंदं णमंसामि ॥१७६॥

इय जंबूदीवपण्णत्तिसंगहे पमाणपरिच्छेदो णाम तेरमी उद्देसो सम्मत्तो ॥ १३ ॥

४ 'एयं' पाठ पूनेकी प्रतिमें है ।



गिरनार पर्वत — पंचमी टोंक.

अर्हम्

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

खंड १] गुजराती लेख विभाग [अंक ४

सप्तभंगी

अथवा

सत्-असत्-तत्त्वमूलक प्रमाण पद्धति

[ले० अध्यापक रसिकलाल छोटालाल परीख. बी. ए.]

जैन दर्शन अथवा आर्हत दर्शनना तत्त्वज्ञाननो मूळ पायो सप्तभंगी उपर रचाएलो छे. सप्तभंगी एटले वस्तु तत्त्वना स्वरूपनो संपूर्ण विचार प्रदर्शित करवा माटे योजेली सात प्रकारनी वाक्यरचना. ते आ प्रमाणे छे:–

(१)	[वस्तु]	कथंचित	छे. *
(२)	,,	,,	नथी.
(३)	,,	,,	छे अने नथी.
(४)	,,	,,	अवाच्य छे.
(५)	,,	,,	छे अने अवाच्य छे.
(६)	,,	,,	नथी अने अवाच्य छे.
(७)	,,	,,	छे,नथी,अने अवाच्य छे.

आ प्रमाणे सप्तभंगीनी वाक्यरचना छे. सामान्य वाचकने बहु विचित्र, निरुपयोगी अने हास्यजनक लागे तेवुं तेनुं बाह्य स्वरूप देखाय छे. परंतु गंभीर विचार-पूर्वक जो ते संबंधी ऊहापोह करवामां आवे तो तेमां रहेलां तत्त्वो सर्वसाधारण अने सर्वव्यापी छे एम स्पष्ट जणाई आवशे. ए विचार पद्धतिमां सत्--असत् अनेक धर्मतत्त्व, अने एक वाक्य एक समये एक धर्मनो निर्देश ज करी शके; ए तत्त्वोनो अन्तर्भाव थएलो छे. ए तत्त्वोए आ विशिष्ट स्वरूप क्यारे अने कई परिस्थितिमां धारण कर्युं तेनो निर्णय करवो हजी सुलभ नथी. परंतु जैन न्यायशास्त्रना अध्ययन उपरथी तेनो विकास अने प्रयोजन तो आपणे चोक्कस जाणी शकीए तेम छीए.

जैनोना आ विशिष्ट सिद्धान्तना इतिहास विषे हालमां हुं आटलुं जणावी शकुं छुं:—उत्तराध्ययन सूत्रमां एनो निर्देश नथी. भद्रबाहुनी आवश्यक सूत्रनी निर्युक्तिमां

---

* संस्कृत वाक्यो आ प्रमाणे:—

(१) स्यादस्ति (४) स्यादवक्तव्यम्

(२) स्यान्नास्ति (५) स्यादस्ति अवक्तव्यम् च

(३) स्यादस्ति नास्ति (६) स्यान्नास्ति अवक्तव्यम् च

(७) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यं च

पण एनो उल्लेख दुर्लभ छे, तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमा पण ते उपलब्ध नथी. पण आना जेवी दखाती चर्चा भगवती सूत्रमा मळी आवे छे. नयचक्रना कर्ता मल्लवादी “ नय ” ना सिद्धान्त माटे आगम प्रमाण आपती वखते भगवती सूत्रना केटलाक वाक्यो टाके छे. गौतम गणधर भगवान महावीरने पूछे छे ‘ भगवन ’ आत्मा ज्ञान [मय] छे के नहि ? ’ स्वामी समजावे छे ‘गोतम ! नियम करीने ज्ञान [मय] छे. कारण के, ज्ञाननी आत्मा विना गति दखाती नथी, पण आत्मा ज्ञान पण होय अने अज्ञान पण होय (आया पुण सिय णाणे सिय अन्नाणे) ” अहि आ ‘ सिय ’ शब्द ए ‘ स्यात ’ नु प्राकृत रूप छे, ते लक्षमा राखवा जेवु छे. आ उपरथी जणाय छे के, आ सिद्धान्तना बीज घणा जुना आगमोमा मळी आवे ए शक्य छे, छता आ विशिष्ट स्वरूप तो तेमा करता अर्वाचीन छे. आ सिद्धान्त एना आ स्वरूपमा तो सौथी पहलो कुंदकुंदाचार्यना पंचास्तिकायमा अने प्रवचनसारमा मळी आवे छे. दिगंबरो कुंदकुंदाचार्यने घणा प्राचीन गणे छे तेमनी परंपरा प्रमाणे तेओ विक्रमनी पहेली शताब्दीमा थएला छे. ते पछीना तो जैन न्यायना श्वेतांबर अने दिगंबर बन्नेना—प्रत्येक ग्रंथमा आ सिद्धान्तनी स्पष्ट चर्चा मळी आवे छे अने तेनो विषयमा दरेकना समान मत छे.

आ सिद्धान्तनी प्रमाणनी नहि पण चर्चा करी हती तेमा वस्तुस्वरूपना जे तत्त्वो रहेला छे तेनी चर्चा कर्याथी विषय समजवामा वधारे सरलता थशे.

सा काई सहलाईथी समजी शके छे के वस्तु सत्स्वरूप छे. पण वस्तु असत्स्वरूप छे अने वळी एक साथे ते सदसद्रूप छे, एम साभळीने तो घणा डाह्या माणसो आश्चर्य पाम्या वगर रहे नहि. ज्यारे एलीयाना मुसाफरे थीएटटसने कह्यु के ‘ अमुक अर्थमा ” असत छे, अने “ सत ” नथी ” त्यारे तेना मननी स्थिति एवीज थई हशे. एने जो एम कहवामा आव्यु होत के “ सदसद्रूप वस्त्वङ्गीकर्तव्यम् ” त्यारे पण तेना मनमा एवाज भाव थात. परंतु असत अथवा अभाव शब्दना अर्थ जरा वधारे उदाहरण साथे समजवामा आवे तो आ बाबत समजवी सहेली थई पडे. प्लेटो ना साफीस्ट नामना संवादमा एलीयाना मुसाफर कहे छे के–“ज्यारे आपण असत विषे बोलीए छीए त्यारे, हु धारु छु के, आपण सत्थी विरुद्ध एवी कोई वस्तु विषे बोलता नथी पण आपण फक्त अन्यना अर्थमा वापरीए छीए.”

न्यायदर्शनमा चार प्रकारना अभाव मानेला छे– १) प्रागभाव, २) प्रध्वंसाभाव ३) अत्यन्ताभाव अने ४) इतरेतराभाव आमा पहेला त्रण वस्तुना स्वरूपने स्पर्शता नथी ज्यारे इतरेतराभाव ए अन्य वस्तुनी अपेक्षाए तेना अभाव छे आ तत्त्व वस्तुना तेमना विशिष्ट स्वरूपने जणावे छे अने आ अर्थमा जैन आचार्यो कहे छे के वस्तु सदसद्रूप छे सत्–स्वभावनी अपेक्षाए, अने असत् अन्यवस्तुनी अपेक्षाए. आ सिद्धि करवा जैन आचार्यो जेनी घणी चर्चा करे छे अने जे प्रमाणो आपे छे ते जाणवा जेवा छे. तेनु टुंकु संक्षिप्त स्वरूप हु अहिया आपु छु.

---

१ सप्तनयात्मकमनेकान्तात्मकं वस्तु इति वस्तुन्यवस्थापनं भगवति निरूपितमेव—उक्तं—नियमेन ज्ञानं ‘ आया भंते नाणे अन्नाणे ’ इति स्वामिना व्याख्यातम् .... नाणे नियमा .... तेनो आत्मा .... तिरस्करण प्रदर्शनाय ।

—‘ आया पुण सिय णाणे सिय अन्नाण । ’

—नयचक्र स्याद्वादमर्यादिति प्रकरणने अने .... पूज्य मुनिश्रीजिनविजयजीना आभारी छु.

२ पंचास्तिकाय, अधिकार १, गाथा , प्रवचनसार, स्कन्द २, गाथा ......

३. “ In certain sense not-being is, and that being on the other hand, is not. ” पा. ३३० वा.४ The Dialogues of Plato-- (त्रि. आवृत्ति.)

४ When we speak of not-being, we speak, I suppose not of something opposed to being, but only different. ” पा. ३६१ वा ४. Dialogues of Plato.

अष्टसहस्त्रीना कर्ता विद्यानन्दी कहे छे के "तेमां 'सत्त्व' वस्तु धर्म छे; तेनो अस्वीकार करतां गधेडाना सींगडानी माफक वस्तु वस्तुत्व विनानी थई जाय छे; ते प्रमाणे कथंचित् 'असत्त्व' छे, कारण के स्वरूपादिथी जेम सत्त्व अनिष्ट नथी तेम पर रूपादिथी पण अनिष्ट न होय तो प्रतिनियत स्वरूपना अभावथी वस्तु प्रतिनियमनो विरोध थाय तेथी" (एम मानवुं जोईए के स्वरूपनी अपेक्षाए जेम सत इष्ट छे तेम पररूपादिनी अपेक्षाए नथी.)

अनेकान्तजयपताकाना कर्ता हरिभद्र सूरि कहे छे के "ते (वस्तु) स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-रूपे सत् छे, अने-परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूपे 'असत्' छे. तेथी ते'सत्' अने 'असत्' छे. नहिं तो तेना अभावनो प्रसंग आवे (घटादिरूप वस्तुनो अभाव थाय) एटले के—जो ते जेम स्वद्रव्य क्षेत्र काल भाव रूपे 'सत्' छे, तेम परद्रव्यादिरूपे पण होय, तो ते घट वस्तुज न थाय. कारणके ते परद्रव्यादिरूपे पण, तेनाथी अन्य पोताना स्वरूपनी माफक, हयात छे. ते प्रमाणे तो जेम परद्रव्य क्षेत्र काल भावरूपे ते 'असत्' छे तेम स्वद्रव्यादिरूपे पण 'असत्' होय, तो एम पण गधेडाना सींगडानी माफक घट वस्तुज न थाय. आ प्रमाणे तेनो (वस्तुनो) अभाव थाय तेथी ते सदसद्रूप ज कबूल करवी जोईए."

ते ज ग्रंथमां अन्य स्थाने हरिभद्रसूरि जणावे छे के 'न हि स्वपरसत्ताभावाभावरूपतां विहाय वस्तुनो विशिष्टतैव सम्भवति।' 'स्वसत्तानो भाव अने परसत्तानो अभाव न होय तो वस्तुनी विशिष्टतानो ज सम्भव नथी" प्रमेयरत्नकोषमां चन्द्रप्रभसूरि आवुं ज तत्त्व दर्शावे छे.

५ तत्र सत्त्वं वस्तुधर्मः, तदनुपगमे वस्तुनो वस्तुत्वायोगात्, खरविषाणादिवत्। तथा कथंचिदसत्त्वं, स्वरूपादिभिरिव पररूपादिभिरपि वस्तुनोऽसत्त्वानिष्टौ प्रतिनियतस्वरूपाभावाद् वस्तुप्रति नियमविरोधात्। अष्टसहस्त्री पृ. १२६

६ यतस्तत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण सद्—वर्तते, परद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण चासत्। ततश्च सच्चासच्च भवति। अन्यथा तदभावप्रसंगात्। (घटादिरूपस्य वस्तुनोऽभावप्रसंगात्) इत्यादि। अनेकान्तजयपताका, पृ० ३०

ते कहे छे के जो आ तत्त्व स्वीकारवामां न आवे तो एक ज घटादि वस्तु सर्वत्र व्यापि अने तेथी एक वस्तु सर्व पदार्थ थवानो दोष नीपजे."

जोसेफ 'Introduction to Logic' नामना पोताना ग्रंथमां पण आज मुद्दानी वात करे छे. ते कहे छे के "निषेधात्मक वचनने आपणे वस्तुओनो वास्तविक व्यवच्छेद दर्शावनार गणवुं जोईए......अमुक धर्मोनी अने अस्तित्वना अमुक प्रकारोनी परस्पर व्यवच्छेदकता ए निषेधमां रहेलुं वास्तविक सत्य छे. जो एम न होय तो दरेक वस्तु दरेक अन्य वस्तु थई जाय; एटले के अस्तित्वना आ विविधप्रकारना जेटलो विध्यात्मक थई जाय."[८]

हरिभद्र सूरि आ प्रमाणे वस्तु तत्त्वनी दृष्टिए ऊहापोह करी तेनी सदसदात्मकता सिद्ध करी ज्ञान तत्त्वनी दृष्टिए पण एज बाबत सिद्ध करे छे. 'स्वपररूपानुवृत्तव्यावृत्तरूपमेव तदस्त्वनुभूयते।'—स्वरूपे अनुवृत्त अने पररूपे व्यावृत्त ज अमुक वस्तु अनुभवाय छे. टुंकामां एमना कारणो आ प्रमाणे छे. 'प्रथम तो संवेदन वस्तु छे. अने वस्तु उभय रूप छे, माटे ते पण उभय रूप छे.' आनो अर्थ आपणे एम ज करवो जोईए के अमुक संवेदन स्वरूपे सत् छे अने अन्य संवेदन दृष्टिए असत् छे. एटले आ पण वस्तु तत्त्व विचारमां ज समाई जाय छे. पण

७ तद्यथा यथा स्वद्रव्याद्यपेक्षया सत्त्वं तथा परद्रव्याद्यपेक्षयापि सत्त्वं, तथा तदैकं घटादि वस्तु सर्वत्र प्राप्नोति। ततश्च सर्वपदार्थानामेकत्वं प्रसज्येत। प्रमेयरत्नकोष,० पृ०

८. "Hence we must accept the negative Judgment as expressing the real limitation of things......The reciprocal exclusivness of certain attributes and modes of being is the real truth underlying negation But for that every thing would be every thing else; that is as positive as these several modes of themselves." पृष्ठ १७२-१७३.

बाह्य विषयनी दृष्टिए पण वस्तु-अनुरूप-संवेदन पण उभय रूप ज छे. "आगल रहेलो घट पोताना भाव अने इतरना अभावना अध्यवसाय एटले के निर्णय रूपे ज ओळखाय छे.........सदसद्रूप वस्तुनुं केवल सदात्मक ज्ञान खरूं ज्ञान नथी. कारण के ते सम्पूर्ण अर्थनुं प्रतिभासन करतुं नथी. जेम नरसिंहना रूपनुं ज्ञान केवल सिंहना ज्ञानथी पूरूं थतुं नथी. अने आ प्रमाणे उभयनो प्रतिभास करतुं ज्ञान न थाय एम नथी, कारण के संवित्ति तदन्य-विविक्तताथी विशिष्ट छे (एटले के अन्य पदार्थथी जे भिन्नता, तेनाथी विशिष्ट छे) अने तदन्य विविक्तता एटले अभावे."

९.........सदसद्रूपस्य वस्तुनो व्यवस्थापितत्वात् । संवेदनस्यापि च वस्तुत्वात् । तथा युक्तिसिद्धश्च । तथाहि संवेदनं पुरोऽवस्थित घटादौ तद्भावेतराभावाध्यव सायरूपमेवोपजायते ।......न च सदसद्रूपे वस्तुनि सन्मात्रप्रतिभीस्वयं तत्त्वतस्तत्प्रतिभास्येव, संपूर्णार्थाप्रतिभासनात्, नरसिंह-सिंहसंवेदनवत् । न चैतदुभयप्रतिभासि न संवद्यते तदन्यविविक्तता.विशिष्टस्यैव संवित्तेः । तदन्यविविक्तता चाभावः । अनेकांतजयपताका. पृ. ६२.

आ साथे जहॉन केर्डना नीचेना विचारो सरखावा जेवा छे:—

Nor, again, can you reach this unity merely by predication or affirmation, by asserting, that is, of each part or member that it is and what it is. On the contrary, in order to apprehend it, with your thought of what it is you must in seperably connect that also of what it is not. You cannot determine the particular number or organ save by reference to that which is its limit or negation. It does not exist in and by itself, but in and through what is other than itself...... It can exist only as it denies or gives up any seperate self-identical being and life-only as it finds its life in the larger life and being of the whole. You cannot apprehend its true nature under the category of 'Being alone, for at every moment of its existence it at once is and is not; it is in giving up or losing itself; its true being is in ceasing to be. Its notion includes negation as well as affirmation." An Introduction to the Philosophi of Religion. P. 219.

उपर जे अवतरणो आप्यां छे ते उपरथी जैनाचार्योनो वस्तुस्वरूपविषयक ख्याल स्पष्ट थाय छे. प्लेटोना शब्दोमां ते नीचे प्रमाणे मूकी शकाय "त्यारे अभाव गति अने अन्य पदार्थ वर्गमां छे; कारण के अन्यत्व ते सर्वमां व्यापी प्रत्येकने अस्तित्वथी अन्य करे छे. एटले के 'असत्' करे छे. अने तेथी आ रीते आपणे ते बधा विषे आस्तिकताथी कही शकीए के ते बधा 'असत्' छे अने वली तेओ अस्तित्व वाळा छे माटे एम कही शकाय के ते सत् छे."[१०]

आ प्रमाणे वस्तुना सदसदात्मक स्वभावनी समजणथी सप्तभङ्गीनुं एक तत्त्व सुगम थाय छे. तेमां बीजुं जे तत्त्व रहेलुं छे ते अनेकान्ततानुं छे. म्हारा समजवा प्रमाणे आ तत्त्व जैन तत्त्वज्ञानना इतिहासमां 'सदसत्' ना करतां वधारे प्राचीन हशे अने जैन मार्गनुं तेना उत्पत्तिना समयमां विशिष्ट लक्षण हशे. विक्रम पूर्वेनी पांचमी अने छट्ठी शताब्दिमां आर्यावर्तमां अनेक मतो अने सम्प्रदायो उत्पन्न थया हता; ते समए आ अनेक अने केटलीक वार विरुद्ध तत्त्वोने प्रत्येकनी दृष्टिए

१०. Then not-being necessarily exists in the case of motion and of every class; for the nature of the other entering into them all, makes each of them other than being and so non-existent; and therefore, of, all of them, in like manner, we may truly say that they are not; and again in as much as they partake of being, that they are and are existent पा. १९१. Dialogues of Plato. Vol. IV.

जोई तेनो समन्वय जैन दर्शने अनेकांतता द्वारा कर्यो होय एम मानवाने वांधो लागतो नथी.*

आ तत्त्व समजवुं बहुज सहेलुं छे; अने जैन तत्त्वज्ञान ते वडे व्याप्त थएलुं छे. प्रमितिनी दृष्टीए कहीए तो एक वस्तुविषे अनेक धर्मोनो आरोप करवो शक्य छे, वस्तुनी दृष्टीए कहाए तो वस्तु अनेक गुणमय छे अने अनेक पर्यायो धारण करे छे. वस्तु स्वभावना आ तत्त्वना स्वीकारथी कोई पण प्रकारना सदेकान्तिक के असदेकान्तिक मतथी आ सिद्धान्त स्पष्ट रीते जुदो पडी जाय छे.

आपणे जोई गया के जैनाचार्यो वस्तुनो स्वभाव सदसदात्मक सिद्ध करे छे. आ सिद्धान्तमांथी सामान्य अने विशेषनो सिद्धान्त सहेलाई थी निपजावी शकाय छे. कारण के वस्तुना सामान्य गुणो 'सन्मूलक' अने विशेष गुणो 'असन्मूलक' छे. (असत् शब्दनो अर्थ उपर जणाव्या प्रमाणेज लेवानो) शाथी जे, वस्तु अमुक विशिष्ट वस्तु बीजी वस्तुओ नथी तेना वडे छे. एटले के विशिष्टतानो आधार 'असत्' उपर छे, अने तेथी जैनाचार्यो कहे छे के वस्तु सामान्य विशेष मय छे. 'सतकार्य' अने 'असत्कार्य' नो सिद्धान्त पण आमांथी ज निकली शके छे. अमुक वस्तु अथवा कार्य पोताना कारणमां ऊर्ध्व सामान्य परतुं तो छे ज. अने पोताना विशेष वडे पोताना कारणमां नथी. तेथी कारणमां कार्य सत् अने असत् बन्ने छे. आवां अनेक द्वन्द्वो जैनाचार्यो घटावे छे अने चन्द्रप्रभ सूरिना शब्दोमां कहीए तो "वयं खलु जैनेन्द्राः एकं वस्तु सप्रतिपक्षानेकधर्मरूपाधिकरणं ' इत्याचक्ष्महे ।" अमे जैनेन्द्रो एक वस्तु प्रतिपक्ष युक्त अनेक धर्मोनुं अधिकरण छे एम मानीए छीए." [11]

*प्रारंभना समयमां एम होय के न होय तो पण सिद्धसेन दिवाकरना न्यायावतार उपर टीका करनार सिद्धर्षि आ रीते अनेकान्तवाद ने समजावे छे. लेखक.

११ सरखावो—' अनेकात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम् ।' न्यायावतार.—वळी ' तदेवमनेकधर्मपरीतार्थग्राहिका बुद्धिः प्रमाणम् । न्या. टीका.

ग्रीक फीलसुफ प्लेटोनी, वस्तुनी सदसदात्मकता विषेनी मान्यता आपणे पहेलां जोई गया. अनेकान्तता विषे पण तेनी आने मळतीज मान्यता छे अने ते आ प्रमाणे छेः—

"एलीयानो मुसाफर—अनेक वस्तु विषे आपणे शी रीते अनेक धर्मोनो आरोप करीए छीए, ते बाबत आपणे विचार करीए.

थीएटेटस—उदाहरण आपो.

मुसाफर—उदाहरण तरीके हूं एम कहेवा मांगु छूं के एक माणस विषे आपणे अनेक नामो वडे व्यवहार करीए छीए—एटले के तेने विषे रंग, रूप, परिमाण, गुण अने दोषादिनो आरोप करीए छीए. आमां अने बीजा सेंकडो उदाहरणोमां आपणे तेने माणस कहीए छीए एटलुंज नहीं पण तेने 'ते भलो छे' अने एवा अनेक गुणवालो छे एम कहीए छीए. अने ए ज रीते हर कोई वस्तु जेने आपणे शरूआतमां एक धारता होईए छीए तेने आपणे अनेक कहीए छीए अने अनेक नामो वडे तेनो व्यवहार करीए छीए.

थीएटेटस—बराबर छे." [12]

१२ जुओ.—Dialogues of Plato-Vol. iv. पा. ३८३ (आवृत्ति त्राजी.)

Str. Let us enquire, then, how we come to predicate many names of the same thing.

Theart. Give an example.

Str. I mean that we speak of man, for example under many names–that we attribute to him colours and forms and magnitudes and virtues and vices, in all of which enstances and in ten thousand others we not only speak of him as a man, but also as good, and having numberless other attributes; and in the same way anything else which we originally supposed to be one is describ-

अहिंयां एक बाबत विषे सावधान रहेवानी जरूर छे. अनेकान्तताने अनिर्धारणात्मकता के अनिश्चितस्वरूपता गणवानी भूल थई जवानो संभव छे. म्हारा समजवा प्रमाणे जैनाचार्यो कदी पण कहेता नथी के वस्तुनुं स्वरूप अनिश्चित के अनिर्धारणात्मक छे. शंकराचार्ये स्याद्वादना खंडनमां आज भूल करी छे. डॉ. बेलवेलकर जेवा विद्वाने पण आ भूलनुं अनुसरण कर्युं छे. जैनाचार्यो फक्त एटलुं ज कहे छे के वस्तु अनेक धर्मात्मक छे; अने एक वखते एक ज धर्मनो निर्देश थई शके. तेथी एक वाक्यमां वस्तु स्वरूपनुं संपूर्ण कथन करवुं अशक्य छे. वस्तु स्वरूप निश्चित ज छे. पण साधारण माणस अने सर्वज्ञमां ए अन्तर छे के सर्वज्ञ सर्व पदार्थो ने संपूर्ण रीते एना विविध स्वरूपमां एक साथे जाणे छे ज्यारे साधारण माणस एक वस्तुने पण पूर्ण रीति जाणी शकतो नथी.[13] पण वस्तुनुं आ स्वरूप ध्यानमां रहे तेथी तेओए वाक्य रचना एवी करी छे के उपर उपरथी जोनारने एम लागे के आ बधां वाक्यो संशयमूलक छे. पण वस्तुस्थिति एम नथी ए अकलंकदेवना तत्त्वार्थसूत्रउपरना राजवार्तिकना नीचेना वार्तिकथी स्पष्ट थाय छे.

" संशयहेतुरिति चेन्न विशेषलक्षणोपलब्धेः (सू. ६ वा. ५)

तेना उपर टीका आ प्रमाणे छे.

इह प्रत्यक्षाद् विशेषाप्रत्यक्षाद् विशेषस्मृतेश्च संशयः। ....नच तद्वदनेकान्तवादे विशेषानुपलब्धिर्यतः स्वपरादेशावशीकृता विशेषा उक्ताः। व्यक्ताः प्रत्यर्थमुपलभ्यन्ते।

'जो कोई एम कहे के सप्तभंगी संशयनो हेतु छे तो तेम नथी.—शाथी जे विशेष लक्षणनुं ज्ञान थाय छे" अहिंयां [अमुक] प्रत्यक्ष थवाथी [जेना वडे वस्तु निश्चय थाय ते] विशेष न देखावाथी अने विशेषोनी स्मृति थवाथी संशय थाय छे......ते प्रमाणे अनेकान्तवादमां विशेषनी उपलब्धि थति नथी एम नथी; शाथी जे स्वादेश अने परादेश ने वशेकरी विशेषो प्रत्येक अर्थमां कहेला अथवा सूचवेला (व्यक्त ?) जणाई आवे छे. आगल कहे छे.—

" विरोधाभावात् संशयाभावः " । सू. ६, वा. ५

[विशेषोमां] विरोध न होवाथी संशयनो अभाव छे "

" अर्पणाभेदादविरोधः पितापुत्रादिसंबंधवत् । सू. ६ वा. १०

" अर्पणाना भेदथी (एटले के दृष्टिबिन्दुना भेदथी) विरोध रहेतो नथी. एक ज माणसने विषे पिता पुत्र विगेरेना संबंधनी माफक (जेम एकज माणसने जुदा जुदा संबंधनी जुदी जुदी दृष्टि अथवा अर्पणा वडे पिता पुत्र भाई इत्यादि कहेवामां विरोध नथी तेम स्व अने परना दृष्टि बिन्दुथी सत् अने असत् कहेवामां विरोध नथी.)

आ प्रमाणे आपणे सप्तभङ्गीना सिद्धान्तना आधार रूप बे तत्त्वो जोयां. आ तत्त्व विचारमांथी बे बाबत स्पष्ट थई आवे छेः—एक तो सप्तभंगीनी वाक्यरचनामां 'सत्' अने 'असत्' नो शो अर्थ छे ते, अने बीजो 'स्यात्' शब्द प्रत्येक वाक्यना प्रारंभमां केम मुकवामां आवे छे ते.

स्यात् ए सर्वथात्वनो निषेधक अने अनेकान्तना द्योतक कथंचित् अर्थमां वपरातुं अव्यय छे.[14] जे तत्त्वज्ञो वस्तुने अनेक धर्मात्मक मानता होय अने एम मानता होय के तेना निरूपणमां वपराता वाक्योमां एक साथे एक ज बाबतनुं निरूपण थई शके; तेओ अनेकान्तना सूचक आवो कोई शब्द मुके ए स्वाभाविक छे. जो के एम कर्याथी ते वाक्यो संशयात्मक देखाय छे अने वांचनारने भ्रमणामां नाखे छे. परंतु एम

ed as many, and under many names.

Theart. That is true.

१३ प्रवचनसार, १—५३

१४ अत्र सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तिकताद्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः। पंचास्तिकायटीका पृ० ३०.

कर्यानो मोटो फायदो ए छे के माणस कदाग्रही न थई शके.

सप्तभङ्गीनुं वधारे पृथक्करण कर्या पहेलां शंकराचार्ये तेनुं जे खंडन कर्युं छे तेनो टुंकामां उल्लेख करी जईए. सौथी प्रथम तो जणाववानुं ए छे के तेमणे पूर्व पक्षनुं कथन पूरेपूरुं कर्युं नथी. सप्तभङ्गीनुं स्यादस्ति स्यान्नास्ति इत्यादिथी वर्णन करती वखते तेमणे '**स्वरूपेण**' अने '**पररूपेण**' ए अगत्यना शब्दो छोडी दीधा छे. जो ए ध्यानमां होय तो ते छोडवामां वांधो नथी. पण शंकराचार्ये ए बाबत उपर लक्ष्य ज नथी आप्युं. अने एमनुं आखुं खंडन आ भूल उपर रचायेलुं छे. एमनो पहेलो वांधो ए छे के "एक धर्ममां एक साथ असत्त्वादि विरुद्ध धर्मनो समावेश सम्भवे नहि. शीतोष्णनी माफक."[15]

जो शंकराचार्ये स्वरूपेण अने पररूपेण ए शब्दो ध्यानमां लीधा होत अने सत् अने असत् शब्दने पूर्व पक्षीना अर्थमां समजवा प्रयास कर्यो होत तो तेमने समजात के 'सत्' अने 'असत्' एटला बधा विरोधी नथी. बीजो वांधो ए छे के जेनुं स्वरूप अनिर्धारित छे ते ज्ञान संशयनी माफक प्रमाण न थाय.[16] आ अने बीजा वांधाओ अनेकान्तताने अनिर्धारणात्मक गणवानी अने संशयमूलक गणवानी भूलने परिणाम छे. तेनो रदियो अकलङ्कदेवना उपर आपेला वार्तिकमां आपी जाय छे. त्रीजो वांधो उपर जणाव्युं ते प्रमाणे अनेकान्तताने जे अनिर्धारणात्मक गणवामां आवे छे ते छे. चोथो ए छे के ज्यारे वस्तुने अवक्तव्य कहो छो त्यारे वळी शी रीते ते अवक्तव्य कहेवाय. आ केवल शब्दखेल छे.

शंकराचार्यना मत अने जैनमत बन्ने विरोध वस्तुस्वभावना ख्यालमां छे. शंकराचार्य जगत्‌ने एक मात्र ब्रह्ममय माननार छे ज्यारे जैन अनेकान्त तत्त्वनुं प्रतिपादन करे छे. तेथी शंकराचार्ये जो आ दृष्टिए खंडन करवा प्रयास कर्यो होत तो ते वधारे योग्य कहेवात. तेमणे करेलुं खंडन तो भूल अने भ्रमणा उपर रचायेलुं छे.

हवे सप्तभंगीनो प्रमाण पद्धतिनी दृष्टिए विचार करीए अने आ विचारो आ विशिष्ट रूपमां कया प्रयोजनथी मुकाया ते पण जोईए.

प्रथम प्रश्न ए छे के प्रमाण पद्धतिनी दृष्टिए साते भंगो आवश्यक छे? एटले के वस्तुस्वभाव नक्की करवा माटे सातेनी आवश्यकता छे? आ बाबत तो स्पष्ट छे के एक विधान एक वखते एक ज निर्देश करी शके. विध्यात्मक के प्रतिषेधात्मक. सघळा विध्यात्मक वाक्योनो एक वर्ग अने निषेधात्मकनो एक वर्ग करी आपणे विध्यात्मक वर्गने विधि विधान कहीए अने निषेधात्मक वर्गने निषेध-विधान कहीए. हवे प्रश्न ए छे के वस्तु समजवा माटे आवा केटला विधानोनी जरूर छे. स्वाभाविक रीते प्रथम वस्तु पोते शुं छे तेनो निर्णय करीए. ए दृष्टिए 'स्यादस्ति' वाक्य बराबर छे. पछी वस्तु शुं नथी ते नक्की करीए अने ते दृष्टिए 'स्यान्नास्ति' भङ्ग बराबर छे. आ बन्नेमांथी नीपजतुं वस्तुस्वरूप '**स्यादस्ति नास्ति**' ते द्विवाक्यात्मक भंगथी दर्शावी शकाय. आ रीते प्रथम त्रण भंगोनी जरूर तो 'स्यादस्ति स्वरूपेण घटः; स्यान्नास्ति पररूपेण घटः; अने स्यादस्ति 'नास्ति क्रमेण'थी समजी शकाय. चोथो भङ्ग 'स्यादवक्तव्य' छे. आ भाषा तत्त्वनी दृष्टिए समजी शकाय तेम छे. एक वखते एक ज वाक्यमां विधि अने प्रतिषेध थई शके नहि. तेथी ते अपेक्षा सघळी वस्तु अवक्तव्य कहेवाय.

पण सप्तभंगीना निरूपणनुं बीजुं पण एक दृष्टिबिन्दु छे अने ते ए छे के सप्तभंगी अमुक प्रकारनी वाद पद्धतिमांथी उत्पन्न थएली छे अने आथी सप्तभंगीनुं प्रयोजन विशेष समजाय छे. आ साते भंगो सात प्रकारना प्रश्नोना

---

१५ न ह्येकस्मिन् धर्मिणि युगपत्सदसत्त्वादिविरुद्धधर्मसमावेशः संभवति शीतोष्णवत्। शांकरभाष्य, २-२-२२,२३.

१६ अनिर्धारितरूपं ज्ञानं संशयज्ञानवत् प्रमाणमेव न स्यात्।

१७ अतस्तदुभयात्मकोऽसौ। क्रमेण तच्छब्दवाच्यतामवस्कन्दन् स्याद् घटश्चाघटश्चेत्युच्यते। यदि तदुभयात्मकं वस्तु घट इत्यभिधीयेत, इतरात्मासंग्रहादितरथमेव स्यात्। अथाघट एव इत्युच्येत घटात्मानुपादनादनृतमेव स्यान्न वस्तु लायदेवेति। न चान्यः शब्दस्तदुभयात्मकावस्थतत्त्वाभिधायी विद्यतेऽतोऽसौ घटो वचनगोचरातीतत्वात् 'स्यादवक्तव्य' इत्युच्यते। राजवार्तिक पृ—६,

उत्तर रूपे छे. आ बाबत अकलंकदेवे आपेला तेना लक्षणथी स्पष्ट थाय छे. "प्रश्नने लईने एक वस्तुमां अविरोधथी विधि प्रतिषेधनी कल्पना ते सप्तभंगी" (अविरोधथी एटले दृष्ट अने इष्ट प्रमाण अविरुद्ध). जे माणसे सप्तभंगीनी प्रथम रचना करी हशे तेनो उद्देश ए शोधी कहाडवानो हशे के पुनरुक्ति कर्या विना माणस अमुक वस्तु स्वभाव विषे केटला प्रश्नो पूछी शके. (अथवा तो आपणे एम मानीए के सप्तभंगीनो विकाश धीमे धीमे थयो तो जे माणसे छेल्लां त्रण वाक्यो उमेर्या हशे तेनो उद्देश तो आवो ज कोई होवो जोईए.) दाखला तरीके कोई एम पूछे के 'स्याद्वक्तव्य' ने आठमा भंग तरीके केम स्वीकार्यो नथी ? तो एनो एवो जवाब अपाय के ज्यारे वस्तु विषे स्यादस्ति नास्ति कहेवामां आवे छे त्यारे ते वक्तव्य थाय छे. तेथी तेने आठमा भंग तरीके स्वीकारवानी जरूर नथी. आ रीते एक बाजुथी सप्तभंगी सत् अने असत् विषे उत्पन्न थता सर्व प्रश्नोनो उत्तर आपी शके छे अने बीजी बाजुए केवल सत् असत् माननारनुं खंडन करे छे. छतांए मने एम लागे छे के प्रमाण पद्धतिनी दृष्टिए तो प्रथम त्रण ज भंग आवश्यक छे; चोथाने भाषा-दृष्टिए स्थान छे पण छेल्ला त्रणनो तत्त्वज्ञाननी दृष्टिए खास उपयोग जणातो नथी.[18]

हवे जैन प्रमाण शास्त्रमां सप्तभंगीनुं स्थान क्यां छे ते आपणे जाणवुं जोईए. श्रीवादिदेवसूरि प्रमाणना बे भाग करे छे प्रत्यक्ष अने परोक्ष. परोक्षना पांच विभाग करे छे—स्मरण, प्रत्यभिज्ञा, तर्क, अनुमान अने आगम. आगमनुं बीजुं नाम शब्द प्रमाण छे. आप्त वचनमांथी निपजतुं ज्ञान शब्द प्रमाण. ते वचन, वर्ण, पद अने वाक्योनुं बनेलुं होय छे. शब्द स्वशक्तिथी अने समयथी ज्ञान पेदा करे छे. आ पछी वचननो सप्तभंगी साथे संबंध दर्शावे छे. "दरेक जग्याए आ शब्द विधिप्रतिषेध वडे पोताना अर्थने जणावतो सप्तभंगी ने अनुसरे छे."[19] आ रीते आपणे जोई शकीए छीए के सप्तभंगीनो आगम अथवा शब्दप्रमाणमां समावेश थाय छे.

आ निबंधमां जेनुं विवेचन कर्युं छे तेने प्रमाण सप्तभंगी कहे छे. आने मळती ज बीजी एक सप्तभंगी छे ते नय सप्तभंगी कहेवाय छे. प्रमाण अने नयमां ए तफावत छे के प्रमाण वस्तुना सकल स्वरूपनुं निरूपण करे छे, ज्यारे नय वस्तुना अंश मात्रनुं करे छे.[20] पण एनी विशेष चर्चा आ निबंधमां थई शके एम नथी. तेने माटे बीजो निबंध लखवानी जरूर रहे छे. इत्यलम्.

॥ ॐ शांतिः ॥

---

१८ 'सप्तविध एव तत्र प्रश्नः कुत इति चेत्, सप्तविधजिज्ञासाघटनात् । सापि सप्तधा कुत इति चेत्, सप्तधा संशयोत्पत्तेः । सप्तधैव संशयः कथमिति चेत्, तद्विषयवस्तुधर्मसप्तविधत्वात् ।
अष्टसहस्री, पृ. १२५

१९ तत् (प्रमाण) द्विभेदं प्रत्यक्षं परोक्षं च । स्मरण-प्रत्यभिज्ञा तर्का-नुमाना-गमभेदतस्तत्पंच प्रकारकम् ।

२० आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः । वर्णपदवाक्यात्मकं वचनम् । स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यामर्थबोधनं शब्दः । सर्वत्रायं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभंगीमनुगच्छति, ननु चानयोरेव नयसप्तभंगी, प्रमाणसप्तभंगीतश्च तस्याः किंकृतो विशेष इति चेत् सकलविकलादेशकृत इति ब्रूमः । विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभंगी वस्त्वंशमात्रप्ररूपकत्वात् । सकलादेशस्वभावा तु प्रमाण-सप्तभंगी यथावद्वस्तु प्ररूपकत्वात् ।
प्रमेयकमलमार्तंड, पृ. २०६.

बे नवा क्षेत्रादेश पट्टक

१

गया अंकमां जे क्षेत्रादेश पट्टकोनी नकलो आपी छे तेमां सौथी जुनो पट्टक वि. सं. १७७४ नी सालनो छे. परंतु पाछळथी एक तेनाथी पण १०० वर्ष जेटलो वधारे जुनो पट्टक मळी आव्यो छे जे अहिं आपवामां आवे छे. ए पट्टक तपागच्छना सुप्रसिद्ध आचार्य विजयसेन सूरि तरफथी संवत् १६६७ नी सालमां लखाएलो छे. आ पट्टक फक्त मेवातदेश माटेनो छे. आगरा अने तेनी आसपासना प्रदेशने ते वखते मेवात देशना नामथी ओळखवामां आवतो हतो. संवत् १६६७ नी सालमां जे यतियो ए प्रदेशमां रहेता–विचरता हता तेमनां चातुर्मास स्थळो जाहेर करवा माटे आ पट्टक लखायो हतो; गुजरात के राजपूताना आदि बीजा देशो माटे नथी. तेथी आमां फक्त १७ यतियोनां नामोज आपवामां आव्यां छे. नहीं तो विजयसेन सूरिनो यति समुदाय तो लगभग बे हजार जेटली संख्या वाळो हतो. आनी लंबाई ५ इंच अने पहोळाई ३½ इं. छे. पंक्ति कुल २० छे.

पट्टकनी नकल

र्द०॥ श्रीहीरविजय सूरीश्वर गुरुभ्यो नमः । संवत् १६६७ वर्षे श्रीविजयसेनसूरिभिर्ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टो लिख्यते ॥ मेवात देशे ॥

उपाध्याय श्री विवेक हर्ष ग० आगरे १ पार २
उपाध्याय श्री भानुचंद्र ग० आगरामध्ये
पं. जयविजय ग. पं. विजयहंस सत्क सांगानेर १
पं. हर्षविजयगणि नरायणुं १
पं. भीमविजय ग. पं. यसविजय गणि सत्क मालपुर १
पं. महानंद गणि अलवर १
पं. धनचंद्र गणि रयवाडी तथा दिल्ली १
पं. जयविजय ग. उ. श्री कल्याणविजय ग. सत्क शमाणुं १
पं. कमलविजय गणि हंसार १ महिम २
ऋ. पद्मकुशल गणि अभिरामाबाद १
ऋ. रत्नविमल गणि मांडलि १
ऋ. हर्षविमल गणि अणिआरं १
ऋ. लाभकुशल पर्वतसर १
ऋ. मुनि सौभाग्य ग. सेरपुर १
ऋ. शिवविजय ग. टुंक १
ऋ. कनकसागर ससदुं १
ऋ. रविसागर ग. टोडा १
ऋ. भोजविमल सिरवाडी १

२

हालमां, पं. श्रीगुलाबविजयजीना शास्त्र-संग्रहमांथी एक बीजो पट्टक मळी आव्यो छे जे आ नीचे आपवामां आवे छे. आ पट्टक सं. १८४५ नी सालनो छे. ते वखते आचार्यपद उपर विजयजिनेन्द्र सूरि हता.

॥ श्री ॥

॥ ३र्द० ॥ श्रीविजयधर्म्म सूरीश्वर गुरुभ्यो नमः
सं. १८४५ वर्षे म । श्रीविजयजिनेंद्रसूरीश्वर गुर्जर देश ज्येष्ठस्थित्या देश पट्टको लिख्यते ॥

पं. सौभाग्यविजय ग । श्रीजीसपरिकरा सूरति १ नवसारी २ वसरावी ३ बोराकठोर ४
उ. श्रीखुशालविजय ग । वृद्धश्रीजी स । पं. कल्याणचंद्र पं. खुषाल स । विरमगाम १ भोजया २ गोरीआ ३ ठा ४ अस्मत् पार्श्वे ।
पं. हितविजय ग । पं. हंसविजय ग । पं. सुजाण स । खंभात १ धारापरो २ वडोदरा ३

पं. न्यानविजय । पं. नेम स । पाटण १ कुणगर २
पं. जयविजय ग । पं. दीप स । राजनगर १ शरखेज २ राधपर ३ मोसायो ४ नवोवास ५
पं. भक्तिवि. । पं. कांति स । पं. कृष्णवि । पं. राज स । पं फतेवि । पं. कुसल स । राधनपूर १ कमालपूर२ भालोट ३ सेनेथ ४ धधाणा ५
पं. कल्याणवि । पं. प्रसिद्ध स । पं. जीन वि । पं. पद्म स । नाणसमो १ कंबोई सोलंकीनी २
पं. मोहनवि । पं. नय स । पं. पुन्यवि । पं. भक्ति स । वीसनगर १ कडा २ जासका ३ गोठुया ४
पं. उत्तमविजय । पं. सुमति स । रानेर ठा ४ अस्मत् पार्श्वे
पं. मुक्तिवि । वृद्धश्रीजी स । पं. डुंगरवि । पं. मुक्ति स पादरु १
पं. रत्नकुशल । पं. विनित स । पं. न्यान पं. रत्न स । वाराही १ धोलकडुं २ कोरडा ३ झझाम ४
पं. मनरूपसागर । पं. अनंत स । मालवदेशे
पं. कनकविजय । पं. शुभ स । पं. राजेंद्र । पं. कनक स । मियांगाम १
पं. अमृतविजय ग । पं. विवेक स । भरुयश १ देजबारुं २
पं. षुशालविजय । पं. जिन स । सोरठदेशे
पं. षुशालविजय पं. ऋद्धि स । धागधरु १ सायला २ पालीयाद ३ मडदा ४
पं. राजवर्धन । पं. सकल स । पं. विवेकवर्धन । पं. मेघ स । वडवाण १ पाणसाणा २
पं. सुबुद्धिविजय पं. रुप स । हेबदपूर १
पं. विनीतविजय । पं. नेम स । पाटडी १
पं. हीराचंद्र । पं. गुलाब स । पं. धीर्यचंद्र । पं. हीर स । ईडर १ वेराल्द २ सीपर ३ प्रांतिज ४
पं. पद्मविजय । पं. उत्तम स । राधनपुर मध्ये
पं. हस्तिविजय ग । पं. कुशल स । विजापूर
पं. अमीविजय ग । पं. सुख स । थिराद १ कोटबावली २
पं. हंसविजय ग । पं. गज स । माळण १

पं. लालविजय ग । पं. रत्न स । लींबडी १ अंधेवालीउं २
पं. माणिक्यविजय पं. मोहन स । इलोल १
पं. गुलालविजय ग । पं. राम स । सावली १
पं. लक्ष्मीविजय ग । पं. राम स । जामला १
पं. हेमविजय ग । पं. कपूर स । पंचासर १
पं. षुश्यालविजय । पं. राज स । वडावली १ आंकरा २
पं. जिनविजय ग । पं. जय स । दमण १ उडपाड २ अगासी ३
पं. शांतिविजय ग । पं. रंग स । मावड १ गोठडा २
पं. भाग्यविजय ग । पं. श्रीजी स । वेड १
पं. उमेदविजय ग । पं. वृद्धि स । आगलोड १
पं. पद्मविजय ग । पं. उमेद स । मेसाणा १ साभेतरा २
पं. लालविजय ग । पं. माणिक्य स । चीलोडा १ बदरषु २
पं. हर्षविजय ग । प. मोहन स । वडनगर १ उमता २
पं. हस्तिविजय ग । पं. रंग स । राणकपुर १
पं. ज्ञानविजय ग । पं. लक्ष्मी स. । साचोर १
पं. हस्तिविजय ग । पं. चतुर स । मातर १ वटादरुं २
पं. सुबुद्धिविजय ग । पं. जीव स । शमी १ दुधषा २ अणवरपूर ३ राफु ४
पं. वृद्धिविजय ग । पं. देव स । पं. तेजविजय । पं. रंग स । कंबोइ कोळीनी १ आंगणवाडु २
पं. षुशालविजय ग । पं. कपूर स । केसरडी १
पं. कस्तूरविजय ग । पं. मान स । इटोल
पं. वृद्धिविजय पं. सुजाण स । पं. रुपविजय पं. षुष्याल स कमोइ १ कारवण २
पं. रत्नविजय । पं. न्यांन स । लांघणोज १
पं. माणिक्यविजय । पं. मोहन स । पाटण मध्ये
पं. बुद्धिविजय ग । पं. मोहन स । वावि १ माडकुं २
पं. विवेकविजय । पं. ऋद्धि स । रानेर १ उंबरी २
पं. रविविजय । पं. केसर स । भांभेर १ तेरवाडु २
पं. मोहनविजय । पं. रत्न स । बसु १ मेता २

पं. गौतमविजय । पं. धन स । दसाडो १ कलाडो २
पं. अमृतविजय पं. प्रताप स. । गणाह्रहिः
पं. प्रतापचंद्र । पं. दान स । पं. भावचंद्र । पं. दोलत स । कुकुआव १
पं. जयविजय । पं. कांति स । कटोसण १ डांगरवुं २
पं. गुलाबविजय पं. कुंवर स । झीणोट १
पं. दयाचंद्र पं. हर्ष स । खेड ब्रह्मानी १
पं. नायक विजय पं. विनय स । दक्षण देश
पं. माणिक्यविजय पं. विनित स । कुंवर १ मुंजपर २
पं. चंद्रविजय पं. उत्तमविजय स । राजनगरमध्ये.
पं. हर्षविजय पं. जस स । धोलको १ मोरीयो २
पं ऋद्धि सागर पं. विमेंद्र स । छठीयाडा ।
पं. ज्योतिविजय पं. रत्न स । व्यारा १ बुहार २
पं. हीरविजय पं. माण स । चंदूर १ लोलारू २
पं. कांतिविजय पं. नायक स । पेटलाद १ वसोर २ वासज ३
पं. प्रेमविजय पं भाण स । देवाडमु १
पं. अमृतवि । पं. चंद्र स । पं. तेजवि । पं. माण स । छनायार १ देकावाडु २
पं. माणिक्यविजय पं. सुबुद्धि स । कोठ १
पं. जीवणविजय पं. लाल स । गांभु १ सरदारपूर २
पं. प्रेमवि । पं. दर्शन स । पं. रुपवि । पं. प्रेम स । वागड देशे
पं. कांतिविजय पं. दर्शन स. । वखतापुर १ वलासणु २
पं. भीमविजय पं. पुष्याल स । लींच १ पीपलदलकरवटीउं २
पं. देवविजय पं. दीप स । कडी १
पं. विनयचंद्र पं. भक्ति स । वडगाम १ भोतासकलाणा २
पं. हेमविजय पं. भीम स । काकर १
पं. कपूरवि. । पं. देवविजय १पं. अमी स । पालणपुर १ वगदा २ मयादर ३ दांतावसही ४
पं. नायकविजय पं. गुलाल स । द्यावड १
पं. वसंतविजय पं. माव स । डभोई १

पं. नित्यविजय पं. माण स । गोधावी १
पं. रत्नविजय पं. प्रेम स । नडियाद १
पं. गोविंदविजय पं. हेम स । लेंणप १ मोरवाडु २
पं. मेघविजय । पं. माणिक्य स । गोत्रकुं १
पं. जीवणचंद्र ग । पं. उदय स । थिरा १ वडा २ झालिम ३
पं. उत्तमचंद्र । पं. उदय स । लुंणपूर १ छत्राला २
पं. दोलतवि । पं. लक्ष्मीविजय पं. महिमा स । मुंजेठ १ नेवडा २
पं. राजविजय पं. सुंदर स । टपर १ वलण २
पं. षुष्यालविजय पं. प्रेम स । वडाली १
पं. जसविजय ग पं. प्रताप स । शंखेश्वर १
पं. सोभाग्यविजय पं. षिमा स । मुजपुर १ रचियाणुं २
पं. गुणविजय पं. षुष्याल स । पं. रविविजय पं. दोलत स । समु १ वाव २
पं. माणविजय पं. केशर स । वजाणुं १
पं. वृद्धिविजय पं. कांति स । पालुचुं १ मगरवाडु २
पं. जसविजय पं. कनक स । सोजतरा १
पं. नायकविजय पं. इंद्र स । मणोद १ संडेर २
पं. रविविजय पं. कनक स । नानोदरु १
पं. हंसविजय पं. जीवण स. । अहमदनगर १
पं. पुन्यसोम पं. केसर स । सोवनगढ १
पं. पानाचंद प. उदय स । झेरडा १ वरापाल २ झिंणाल ३
पं. माणिक्यविजय पं. दीप स । षेणोज १
पं. इंद्रविजय ग पं. अमृत स । गणाद्रही
पं. जिनविजय ग । पं. दर्शन स । हरसोर १ बलोल २
पं. वृद्धिविजय ग । पं. विनय स । गांगद १ फेदरा २
पं. कृष्णविजय ग पं. षुष्याल स । सीद्धपूर १ लालपर २ कलांणा ३
पं. विनयविजय पं. राजव स । घाषां १ धनेरा २
पं. उग्रचंद्रगणी । पं. मोहन स । डीसा १ राजपुर २ वडाल ३
पं. जीवनविजय पं. जीत स । आत्रोली १

पं. भवानविजय पं. नायक स । कसरा १
पं. रूपविजय पं. गौतम स । जामपूर १ वासाबावल वाडीया
पं. भवानविमल पं. ऋद्धि स । कुयारज १
पं. वसंतविजय पं. देव स । चांगा १
पं. मानविजय पं. रत्न स । गोला १
पं. हर्षविजय पं. खुश्याल स । नंदासण १
पं. न्यानविजय पं. कपूर स । मलगाम १
पं. भाग्यविजय पं. जस स । मांडल १
पं. मोहन सोभाग्य पं. भाग्य स । पाडला १
पं. मणिकविजय पं. मान स । रणोद १
पं. रत्नविजय ग । ऋ. देव स । सांपरा १ .
पं. गुणविजय पं. प्रेम स । खेमाण १
पं. श्रीमारुचि पं गणेश स । वणोद १
पं. देविंद्रविजय पं. हर्ष स । वालोल १
पं. भाग्यविजय पं. कुसल स । सांढवा १
पं. माणिक्यविजय पं. राम स । अस्मत्पार्श्वे
पं. रामविजय पं. तेज स । साहाणी १
पं. ज्ञानसागर पं. उदय स । मालक १
पं. दयासोम पं जीत स । मोभा सादडा १
पं. रविविजय पं. विनीत स । गणद्रही १

बृहट्टिप्पनिका नामक प्राचीन जैन ग्रंथ सूचि

बीजा अंकमां परिशिष्ट रूपे ए सूचि प्रकट करवामां आवी छे. ए सूचि कोणे अने क्यारे बनावी छे तेनो कांई पतो लाग्यो नथी. परंतु एमां आवेला ग्रंथोना नामो उपरथी एटलुं अनुमान करी शकाय छे के विक्रमना पंदरमा सैकाना मध्य भागमां कोई विद्वाने आ सूचि तैयार करी छे. कारण के सालवारना जे ग्रंथनामो आमां आपेलां छे तेमां सौथी छेवटनुं नाम, संवत १४४३ मां रचाएला कुलमंडनसूरिना 'प्रवचनपाक्षिकादि आलापक संग्रह'नुं छे (नं. १६४). तेना पछीनी सालनो रचाएलो कोई ग्रंथ ए सूचिमां दाखल थएलो जणातो नथी. तेनी पहेलां, सं. १४३६ मां रचाएला उपदेश चिंतामणि, (नं. २२३) सं. १४२९ मां रचाएली प्रश्नोत्तर रत्नमालावृत्ति (नं. २२२), १४२६ मां बनेली भक्तामरस्तवटीका (नं. १३२); इत्यादि ग्रंथोनी नोंध थएली एमां अवश्य जोवाय छे. परंतु ते पछीनुं एके नाम जोवातुं नथी. लगभग पंदरमां सैकाना त्रीजा ज पादमां थएला सोमसुंदर, मुनिसुंदर, गुणरत्न, ज्ञानसागर आदि प्रसिद्ध ग्रंथकारोना ग्रंथोनी नोंध एमां बिलकुल लेवाई नथी. तेथी हुं ए सूचिनी तैयार थवानी तारीख वि. सं. १४४० थी ६० नी वच्चे मूकुं छुं. एटले आज थी लगभग सवापांचसो वर्ष पहेलां ए सूचि थएली छे.

सूचि करनार कोई समर्थ विद्वान् अने उत्कृष्ट साहित्य प्रिय यतिजन ज होवो जोईए. तेणे ए सूचि घणीज बारीकी थी पूरेपूरी आंच साथे करेली छे. ग्रंथोने विषयवार तारवी काढ्या छे अने दरेक ग्रंथने तपासी तपासीने नोंध्या छे. सूचिमां ग्रंथ, तेना कर्ता, तेनी रचायानी साल अने तेनी एकंदर श्लोकसंख्या; एम चार बाबतो लीधी छे अने दरेक ग्रंथना संबंधमां शोध करी करी छेवटे आ ४ बाबतोमांथी जेटली मळी तेटली नोंधी छे.

सूचिकर्ताए मुख्य करीने पाटण (अनहिलपुर पत्तन), खंभायत (स्तंभतीर्थ), भरूच (भृगुपुर) अने प्रभास पाटण (देवपत्तन) ना मुख्य पुस्तक भंडारो जोईने आ सूचि बनावी छे. मारवाडना सुप्रसिद्ध जेसलमेरना ज्ञानभंडारनुं आमां नाम नथी तेथी ते जोवायो होय तेम जणातुं नथी. ए उपरथी एम पण अनुमानाय छे के सूचिकर्ता कोई गुजरातनो अने खास करीने तपागच्छनो विद्वान् होवो जोईए.

सूचिकर्तानी शोधकबुद्धिनो नमुनो आपणने १५५ नंबरवाळी नोंध उपरथी स्पष्ट जणाई आवे छे. ए नोंधमां 'शत्रुंजय महात्म्य' जेवा प्रसिद्ध अने प्रामाणिक कहेवाता ग्रंथने स्पष्टरुपे 'कल्पित' अने 'आधुनिक धनेश्वरकृत' बताव्यो छे! मूळ ग्रंथमां तो ग्रंथ कर्ताए ए 'माहात्म्य' ने घणुं ज प्राचीन अने तेथी घणुं ज प्रामाणिक होय तेवुं बताववा माटे आकाश–पाताळ एक कर्या छे. परंतु शोधक विद्वान्ना हाथमां जतां ते बधी कर्त्रिमता एकदम उघाडी पडी गई अने तुरत ज तेना माटे तेणे 'कल्पितता' नो चोखो शेरो मारी दीधो. प्रो. वेबर अने डॉ. बुल्हरने जो आ शेरानी खबर पडी होत तो ए महात्म्यने कल्पित सिद्ध करवा माटे जे मोटी महेनत तेमने उठाववी पडी हती ते जराए न पडत अने मात्र आ एक ज प्रमाणथी तेमनो सिद्धांत सत्य साबीत थई शकत. अस्तु.

आ सूचिमां जणावेला केटलाक ग्रंथोनो आजे क्यां ए पतो संभळातो नथी. तो ते माटे विद्वानोए शोध करवानी खास आवश्यकता छे. दाखला तरीके 'सम्मतितर्क' जेवा सुप्रसिद्ध अने जैन साहित्यभूषण ग्रंथनी आजे मात्र एक बृहद्वृत्ति ज मळी आवे छे. परंतु ए सूचिमां तेनी त्रण वृत्तिओ नोंधेली छे. (जुओ क्रमांक ३५८) तेमां प्रथम वृत्ति तो बहु ज महत्त्वनी छे, कारण के तेना कर्ता मल्लवादी जणाव्या छे. मल्लवादी सूरिए सम्मति उपर कांईक विवरण लख्युं छे तेनो पुरावो तो आपणने हरिभद्रसूरिना लेखमांथी पण मळी आवे छे. ऐतिहासिक

दृष्टिए मल्लवादीनी ए टीकानुं घणुं ज महत्त्व होई शके छे. कारण के तेना आधारे न्याय शास्त्रना विकास अने इतिहास संबंधी अनेक प्रश्नोनो विशिष्ट ऊहापोह करी शकाय छे; अने ते उपरथी अनेक अज्ञात बाबतोनुं ज्ञापन अने संदिग्ध वातोनुं निराकरण करी शकाय छे. तेथी सम्मतिनी ए टीकानी शोधखोळ करवा माटे दरेक विद्वानने आग्रहपूर्वक भळामण करवामां आवे छे.

सम्मतिनी एक त्रीजी टीकानी पण एमां नोंध करेली छे. तेनो कर्ता कोण छे ते एमां जणाव्युं नथी. फक्त 'अन्य कर्तृक' छे, एम जणावी छे. कदाच ए टीका कोई दिगंबर विद्वान् कृत होय, जेना संबंधमां अमारा विद्वान् मित्र श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीए जैनहितैषीना सन् १९२१ ना जान्युआरी-फेब्रुआरी मासना संयुक्त अंकमां एक महत्त्वनी टिप्पणी प्रकाशित करी छे. तो शोधक जनोए ए टीकानी पण गवेषणा करवी आवश्यक छे. आवी ज रीते बीजा पण अनेक ग्रंथोनां नामो जोवामां आवे छे के जे ए सूचिमां नोंधायला छे पण अत्यारे उपलब्ध थता नथी.

आ सूचि बे हस्तलिखित प्रतो उपरथी मुद्रित करवामां आवी छे जेमांनी एक प्रत तो लगभग ३००-४०० वर्ष जेटली जुनी हती अने एक नवी लखाएली हती. बंने प्रतो वडोदराना जैन ज्ञानमंदिर वाळा प्र. श्री कांतिविजयजीना शास्त्र संग्रहमांनी हती.

एक ऐतिहासिक पत्र

[नोटः—आ नोटनी नीचे आपेलो पत्र मने एक जूना भंडारमां पडेला रद्दी कागळोना ढगलामांथी मळ्यो छे. कोई कोई वार रद्दी कागळोमांथी बहु महत्त्वनी चीजो मळी जाय छे के जेने साधारण मनुष्य नकामी गणीने कचरामां फेंकी दे छे. आ पत्र विक्रम संवत् १८३१ मां लखायलो छे. ते मेवाड राज्यना प्रसिद्ध देवस्थान 'नाथदुआरा' थी तपागच्छना यति ऋषभविजयजीए पोताना कोई वृद्ध अने पूज्य यतिना उपर लखेलो छे. तेमनुं नाम पत्रनी किनारी फाटी जवाथी जतुं रह्युं छे. पत्रनी भाषा राजपूतानी—मुख्यत्वेकरी मेवाडी छे. आ पत्रमां ए समयनी राजपुतानानी राजकीय परिस्थितीनो बहु सारो अने मजेदार चितार आपेलो छे. ए जुना वखतमां ज्यारे रेलवे, टपाल, तेमज समाचारपत्र विगेरे साधनो न होतां त्यारे लोकोने एक बीजा प्रांतमां किंवा राज्यमां शी शी हीलचालो थई रही छे ए बहु ओछुं जाणवामां आवतुं हतुं. ए जमानामां सर्वसाधारण लोकोना करतां यति, संन्यासी, वनजारा अने बाजीगर आदि जे मनुष्य हमेशां देशाटण अथवा परिभ्रमण करता रहेता तेओ ज राष्ट्रीय तेम ज सामाजिक परिस्थितिथी विशेष वाकेफ रहेता. ए बीना आ कागळ उपरथी स्पष्ट थाय छे. राज्यक्रान्तिना वखतमां लोकोने केवा केवा संकटो भोगववा पडे छे, एनो पण ख्याल आ कागळ उपरथी थई शके छे. संसारनो संसर्ग तजीने यति—संन्यासी थयेला मनुष्योने पण देशनी अस्वस्थताने लीधे केवुं अस्वस्थ थई जवुं पडे छे ए बाबतनुं पण स्पष्ट अने अनुभूत वर्णन आ पत्रमां छे. संवत् १८३१ मां राजपूतानानी—विशेषतः मेवाडनी—सामाजिक, आर्थिक अने राजकीय परिस्थिति केवी हती एनुं संक्षेपमां पण पूर्ण विश्वसनीय वर्णन आ पत्रमां छे. ऋषभविजयजी एक सारा विद्वान् यति हता (जेना प्रमाण मने बीजा अनेक उल्लेखोमांथी मळ्या छे परन्तु ए बधानो अत्रे उल्लेख करवानी आवश्यकता नथी.) एथी तेमनी पासे अनेक प्रकारना मनुष्योनुं आवागमन रहेतुं ज हशे.

बीजुं मेवाड राज्यना घणा खरा कर्मचारीओ जैनी ओसवाळज वधारे हता, एथी तेमनी मारफते यति–साधुओनी पासे एवी बातोना विश्वसनीय खबरो विशेष रूपमां आवे ए पण स्वाभाविक छे. यतिवर्गना अधिकारवाळा जूना भांडारो-मांथी जो आवी जातना साहित्यनी शोध खोळ करवामां आवे तो एमांथी अनेक प्रकारना एवां ऐतिहासिक साधनो मळी शके के जे धर्म अने देश एम उभय दृष्टिथी बहु महत्त्वना थई पडे तेम छे.—संपादक]

|| ई० || स्वस्ति श्रीपार्श्व परमेश्वरं प्रणम्य श्रीमति तत्र श्रीजीदुआरातो से । ऋषभविजयस्सानंदेन लिखत्यपरं वंदणा १०८ वार अवधारवीजी. अत्र सुष व श्रेय छइं तथा श्रीपंडितजीना सुख पत्र देई हर्ष पोष करवाजी. अपरं श्रीपंडितजी परमेष्ट श्रेष्ठ सकल गुणगरिष्ठ विद्वज्जन वरिष्ठ संत दंत सज्जनसिरोमणि कृपानिधान सर्वत्र राजसभायां लब्धसन्मान गुणालंकृत परम प्रीतिपात्र गुणग्राहक मोटा सत्पुरुष छो. सेवकोपरि सदा हितप्रीति सुदृष्टि राषो छो तिमज राखवीजी. जे दिवसै श्रीपंडितजीस्युं मिलस्युं वातो करस्युं ते दिवस घणुं सफल करी जाणस्युं जी. अपंच गत वर्षे पत्र १ श्रीपंडीतर्जीनो गोढवाडनो, एक अनुचर हस्ते श्रीजीदुआरामें आव्यो हतो, वैशाष द्वितीय मैः ते हस्ते पत्र १ श्रीपंडितजीना नामनो...हस्ते मूक्यो हतो ते पोहताना समाचार नाव्याजीः बीजुं ईकतीसानो चौमासो श्रीजीदुआरे थयोजीः उदेपुरमै ठाणुं २ बैठा राख्या छेः वस्तुभाव कुशल षेमै रह्यौ छैः ओर सर्वस्थानक नष्ट थया पिण आपणो आलय कुशल षेमे रह्यो छेः भगवान राख्यो छे; माल्यानो साजबाज भंडाऱ्या मध्ये मूकी वे मालिम करी ने हुं श्रीजीदुआर आव्योः सर्व वणिक दिसोदिस नीकळे गयाः सकल साधासुं दषल थई. सात दिवस फतेषांन मावथनी ओरीयै ठाणुं १५ संघातै बैठा रह्याः सर्व महाजन चोरासीगच्छना मिली राद्य सहस्र तूक दीधा पंडित जमांन थयो त्यारै सातमें दिवस घडी २ दिन रहते अठे आव्या. सर्व श्रावक साथे पंडित साथै आवी साधांने पारणो कराव्योः पछे वणिक पिण नीकल्या ने अमे पिण नीकळी आघाट आव्याः मास बे तिहां रह्या; तिहां पिण पंडितजीनो कारण संधाइ लोप्युं त्यारें पंडित जावतो करी नाथदुआरे पोहचता कऱ्या; हवै रावत अर्जुनसिंघजी मैहतो लषमीचंद विजैसिंघ नाणावटी दिषणीना पंडित रूपनगर वालानो कांमदार देवीदास मुंणोत मिली उदेपुर आव्या; च्यार लाष रुप्या जूना देई ने संधी (सिंधी—काबुली) सर्व ने बारे काढ्या छेः दीवांण हमीर पासे रजपूतनो साथ मूकी संवनी चोकी रावला मांहिथी घणा कष्टथी काढी छेः हवे सतानी ठव्थारडानै थई छै जीः त्वारांनो जोर घणो वधी गयोः सहिर मध्ये नोग्यारां कोडा पांनै पख्यो; सर्व षोदे घणे ग्यारां ग्राह्य कीधो; हजी हजार ५० जूना देणा छैः ते दीधे सर्व नीकलस्यैः पंच महाजन नाडोल हता ते रावत अर्जुनसिंघना पत्रथी आव्या छेः वराड फेर हजार २८ नो नांष्यो छेः रुप्या हम्मीरसाई उदेपुरमै नवा पडे छेः टका २० चाले छेः ते दीधे संधीनो काटलो कटस्ये त्यारै लोक उदेपुर मै पाछा आवश्ये जीः हजी देशनो विग्रह मिट्यौ नहीं छैः दोय राणा छैः हमीरजी तो अडसीने पाट उदेपुर मै छैः रतनसिंघ कुंभलमेर मै बैठा छेः जोगी सावत छे; गोढवाड विजेसिंघजी ने छेः चीतोड, मांडलगढ, उदेपुर, राजनगर, ए जायगां राणा हमीरजीनो अमल छे. सेरोनलो, कुंभलमेर, कैलवाडो, देवगढ रतनसिंघजीनो अमल छैः देश मै लूटा षोसो पकडणो मारणो आमां सामो लागे रह्यो छे; नाथदुआरे महाराजनी फोज हजार बारेसे पड्या छेः ते तिमज छेः महाराज विजैसिंघनी फोज राघोदास मिली देवसूरी वाला ऊपरे आव्या हताः वास राट धूलधाणी मिली पिण देवसूरीवालो महाराजसुं नम्यो नही, सोलंषीनो मजो रह्योः फोज झषमारे पाछी गई. ढाणां मै बैठो छैः नाल देवसूरीनी कोई छोडी नहींः बीरम मडत्यो चांणोदवालो जोधपुर चाकरी मै पड्यो रहवडे छेः सोलंषी नी टेक घणी रहीः रांडने पगे लागो तथा विजेसिंघने पगे लागोः चाकर चितोडरो छुं. आउआ वाळा जेतसिंघने महाराज विजैसींघे ठारयो. चांपावत तेहना बेटा गुणावल कडुंजे छांडी आव्या छेः इस्यो रूप बणे रह्यो छेः जैपुर मैं पिण मेवाड सरीषो विषो लागे छै, रावत जसुंतसिंघजी ने जैपुरमांहिथी परा काढ्या छेः सोबोकरजी

आया सुण्या छेः रावत अर्जुनसींघजी लेवा जासीः एकलींगजी भेला वेसीः इसी बात छैः पछै तो वणै सो खरीः उदे-पुर नो...............नही पिण हवे रजपूत राणावतांरो साथ हजार दोय सहर मै आवे............यो हवे संधी सर्व बारै डेरा दीधा छे...............मांही छे बाकी रुप्या दीधासुं निजर आवसी. राज–देशविग्रह भारी ठेरयो मिटणो तो साहिबरे हाथ छैः वले एक टिखल थयो छेः सलुंबरना घरमे पहाडसिंघ रावत उजेणनी राडि मै काम आव्या पछे भीमसिंघजीने तरवार बंधावी राणे अडसीजीइ सलूंबरनी गादी बैठा. हवै पांच वरस पछी पाछा पहाडसिंगजी प्रगट थया छे. ए विग्रह नवो प्रगट्यो छे. हवणा महीना ५ छ थया छैः डुंगरपुरने चोखले आव्या छे. भीमसिंघजी चीतोड ऊपरे हता तिहांनो जावतो करी थांणो मेलीने सलुंबर दाखल थया छे. विग्रहमे पाछ नही छै. और समाचार छे ज्युं छे. अत्रत्य पं. नरोत्तमविजयगणि पं. प्रतापविजयगणि विनयविजयगणि लघुशिष्य गिरधरनी वंदणा जाणवीजी पं. क्षेमानंद ग. नेमविजयगणि ठाणु२ उदेपुरमे मेल्या छेः हेमविजयजी ग. झाडोल छे. ठाणुं २जासमे छे. रत्नानंद ग. मानविजयगणि, उदयपुरनो ढंग महीना एक दोयमें सुदरस्ये जी त्यारे उदेपुर नो ढंग सुदरसी जदी बुलावो आव्ये उदेपुर जावो थास्ये जी ते जांणवुंजी. तत्र पार्श्वस्थ साधुसमुदायेन पं. सौभाग्यविजय ग० पं. जयविजयग० पं. भाग्यविजयग० पं. फतेंद्रसागरगणि प्रमुख सर्व साधुसमुदायेन वंदणा कहवीजीः पं. हेमसोभाग गणिनी वंदणा पण जांणवीः पं. गुलाबहंसगणि ठाणुं २ नी वंदणा जांणवीः × × × मेदपाटमे ग्राम.........कोई कोई जायगा वसती छेः इस्यो ढंग ढोल देशनो छे जीः केटलुं लखवामें आवेजीः कृपापत्र वलमान कृपा करवी जीः देवदर्शनमें संभारवा मिती संवत् १८३१ रा मिगसरवदि अष्टम्यां रात्रौ पत्र—तुराई लष्युं छे जीः

एक श्रीमाली जैन कुटुंबनी जुनी वंशावली

श्वेतांबर जैन संप्रदायने अनुसरनारी मुख्य त्रण वैश्य जातो छेः १) ओसवाल, २) श्रीमाली, अने ३) पोरवाड. ओसवाल जातिनुं मूल उत्पत्ति स्थान ओसिया नगरी मनाय छे जे मारवाडनी जोधपुर राजधानीनी पासे आवेली छे. ए जातिनी वधारे वसती राजपूताना अने मालवामां रहेली छे. श्रीमाली जातिनुं मूल स्थान श्रीमाल नगर कहेवाय छे. एने हालमां भिन्नमाल कहे छे अने ए पण मारवाडना जोधपुर राज्यमां, राज्यनी उत्तरनी सीमा तरफ आवेलुं छे. ए जातिनी वधारे वसती गुजरात अने काठियावाडमां आवेली छे. पोरवाड जातिनुं जन्म स्थान क्यां छे ते चोक्कस जणातुं नथी पण किम्वदन्ती प्रमाणे अरवलीनी पर्वतमालामां वसेलो वागडदेश तेनुं उत्पत्ति स्थान होय एम जणाय छे. पोरवाडोनी मोटी संख्या मारवाड राज्यना गोडवाड—के जेने नानी मारवाड पण कहेवामां आवे छे—प्रांतमां प्रसरेली छे. गुजरात अने मालवामां पण ए जातिनी साधारण वसती छे. ए जातोनुं जन्म क्यारे अने कई रीते थयुं तेनो सविस्तर निर्णय करवा जेटलां साधनो हजी ज्ञात थयां नथी. साधारण मान्यता प्रमाणे जैनाचार्यो ए, ते ते प्रदेशमां वसता रजपूतो अने बीजा तेवा लोकोने धर्मबोध आपी जैन बनाव्या अने तेमने, पूर्वना बीजा बीजा व्यवसायो छोडी दई व्यापारनो व्यवसाय करवा तरफ प्रेरणा करी. ए जातोनुं निर्माण कोई एक ज आचार्य द्वारा अने एक ज वखते थयुं छे एम नथी. परंतु प्रथम एक आचार्ये केटलाक कुटुंबोने जैन बनावी तेमनी एक जात बनावी अने पछीथी बीजा बीजा आचार्योए प्रसंगे प्रसंगे बीजा बीजा स्थळोना लोकोने जैन बनावी बनावी ते ते जातिमां दाखल करता गया, अने तेम करी ए त्रणे जातिनी संख्यामां क्रमे क्रमे वधारो करता गया. श्रीमाली अने पोरवाड जातिनी आवी रीते क्यां सुधी वृद्धि थती रही तेनी तो माहिती हजी सुधी मळी नथी परंतु ओसवाल जातिनी तो छेक विक्रमना १७ मा सैका सुधी वृद्धि चालु रही होय एम जणाई आवे छे.

लोकमान्यता प्रमाणे, उपर जणाव्युं तेम, मूल तो ए त्रणे प्रसिद्ध अने समृद्ध जैन जातो मारवाडनी सीमामां ज उत्पन्न थएली, परंतु पाछळथी जनसंख्यानी वृद्धिने लईने, व्यापारना निमित्तने लईने, तेम ज राज्योनी उथल पाथलना कारणने लईने भारतना जुदा जुदा प्रदेशोमां ए प्रसरती गई.

ए जातोमां अनेक गोत्रो छे अने दशा-वीसा आदि जेवा केटलाक पेटा-भेदो छे. गुजरात अने काठियावाडमां वसनारा लोकोने फक्त दशा-वीसाना भेदनी तो माहिती रहली छे परंतु गोत्रनुं ज्ञान तो लगभग सर्वथा भुलाई जवायुं छे. मारवाडमां वसता लोकोने—अने तेमां खास करीने ओसवालोने—पोताना गोत्रोनी माहिती अवश्य होय छे. ए माहिती होवानुं खास कारण ए छे के त्यांना लोकोना कुलगुरु हजी हयात छे जेओ दरेक कुटुंबना विवाह आदि शुभ प्रसंगो उपर हाजर थई ते ते कुटुंबनी वंशावलि विगेरे वारंवार संभलावता रहे छे. ए वंशावलिओमां १०-१०, २०-२० पेढी सुधीना पूर्वजोना नामोनी तेमज केटलाकना ठाम अने मोटा कामोनी पण नोंधो करेली होय छे. जो के ए नोंधोमां कपोलकल्पित जेवुं पण घणुं होय छे तो पण जेटली नोंध —नोंधनी वही—वधारे जुनी होय तेटली ते वधारे विश्वसनीय होई शके छे. गुजरातमां तेवा कुलगुरुओनो सर्वथा अभाव थई गयो छे तेथी त्यांना वतनिओ पोताना गोत्रो पण भूली गया छे.*

* अने हवे तो केटलाक पोतानी जातने पण भूली जवानी कोशीस करता नजरे पडे छे! थोडा दिवस उपर अमदावादना एक श्रीमंत जैन गृहस्थना बालकोने तेमनी जाति पूछतां तेओ तेनो जवाब आपवा असमर्थ निवड्या हता. (त्यारे बीजी बाजुए तेओ इंग्लंडना इतिहासनी वातो अने आयरीश, इंग्लीश, स्काच विगेरे जातोना परिचयो झटापट आपी देता हता.) जे बालको

गुजरातना वासिओने भाग्ये ज पोताना पूर्वजोना संबंधमां कांई माहिती होय छे. तेओ पोतानी ३-४ पेढी उपरांतना वडवाओनां नामो सुधां जाणी शकता नथी तो पछी तेओ क्यांथी आव्या अने क्यां वस्या, तेमना पूर्वजो ए शां कामो कर्यां इत्यादि तो जाणे ज क्यांथी. तेमने कुलगुरुओ अने तेमनी नोंधवहिओनी पण कल्पना आवी शकती नथी.

आ नीचे एक श्रीमाली जैन कुटुंबनी जुनी वंशावलि आपवामां आवे छे, जे एक कुलगुरुनी जुनी नोंधवही-मांथी उतारी लेवामां आवी छे. ए नोंधवही लगभग ४०० ५०० वर्ष जेटली जुनी छे अने कपडा उपर लखेली छे. आ वही पाटणना एक प्राचीन पुस्तक भंडारमां छे. आ वंशावलिमां श्रीमालि-जातिना नोडा नामना शेठनी वंशपरंपरा आपेली छे. ए शेठ, आ नोंधमां जणाव्या प्रमाण, भिन्नमाल (जे श्रीमालनुं बीजु नाम छे) नगरमां रहेतो हतो. एनुं रहेठाण, नगरना पूर्वना दरवाजा तरफ आवेली भट्टनी पोलमां हतुं. मूल जातिए ए भारद्वाज गोत्रीय (ब्राह्मण ?) हतो. संवत् ७९५मां कोई आचार्यना प्रतिबोधथी ए जैन थयो हतो. ए मोटो व्यापारी हतो अने पांच क्रोडनी आसामी गणातो. एनी गोत्रजा अंबाई माता हती. तेनुं स्थान, नगरनी पासे आवेला गो...णी नामना सरोवरना कांठे, जे देविओनुं स्थान हतुं, तेमांनी ईशान कोनमां आवेली चंपकवाडीमां हतुं. ते वाडीमां, चार बाजु आंबाना झाडोथी ढंकाएलुं एक मन्दिर हतुं जेमां चार भुजा वाळी ए अंबामातानी रूपाना बनेली मूर्ति स्थापित हती. आसो अने चैत्र मासनी सुदी ९ ना दिवसे ए माताने नैवेद्य चढावी पूजा करवामां आवती. नैवेद्यमां लापसी, पुडला अने जवारनुं खीचडुं मुकवामां आवतुं.

ए शेठ नोडाथी १७ मी पेढिए नान्हा नामे पुरुष थयो. तेना वखतमां, संवत् ११११ नी सालमां, भिन्नमाल शहर भांग्युं. तेमां संख्याबन्ध माणसो मार्या गया तथा केदमां पकडाया. ते अवसरे शेठ नान्हा त्यांथी नासी छूट्यो अने कोलिहाराना पायची नामे गाममां जईने वस्यो. त्यां तेना पुत्र-पौत्र विगेरेनो परिवार वध्यो अने तेना वंशजो पाछळथी यथा समये पाटण, नरोली (गांभू पासे), मोढेरा, वलाद, सलखणपुर इत्यादि अनेक गामोमां जई जईने वस्या. एमांना केटलाकोए संघो काढ्या, मान्दिरो बन्धाव्या, महोत्सवो कर्या, जमण जमाड्या अने कोईक तो संसार छोडी यति पण थया. आवी रीते आ वहीनी अंदरथी केटलीए जाणवा जोग हकीकतो मळी आवे छे.

उपर जणाव्युं छे तेम ए वही ४००-५०० वर्ष जेटली जुनी छे तेथी एमां छेवटे जणावेला कुटुंबोना वंशो क्यां सुधी पहोंच्या अने आज तेमांनो कोई वंश हयात छे के नहिं ते जाणवा-जणाववानुं कशुं साधन नथी.

आ वंशावलिनी भाषा अस्सल प्रमाणे ज कायम राखी छे. तेम ज एमां फक्त नामो सिवाय बीजी कोई विशेष हकीकत पण जेथी वाचनारने कोई जातनी कठिनता पडे तेम पण नथी.

गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर
भाद्रपद पूर्णिमा } —संपादक.

अथ भारद्वाज गोत्रे संवत् ७९५ वर्षे प्रतिबोधित श्रीश्रीमालीज्ञातीयः श्रीशान्तिनाथ गोष्ठिकः । श्रीभिन्नमालनगरे भारद्वयज गोत्रे श्रेष्ठि नोडा. तेहनो वास पूर्वीली पोली भट्टनई पाडइ. कोडी पांचनो व्यवहारियो. तेहनी गोत्रजा अंबाई. नगरीनी परिसरि गो...एणी सरोवरी देव्यानां ठाम नेऊ सहिस तेहमांहि ईशाणकुणदिशि चंपकवाडी तेहमांहि चैत्य. चिहुपासइ आंबाना वृक्ष तिण स्यानाकि चतुर्भुजा गोत्रज स्वरूप रुप्यमई हादरि न हुई तुं कुंकुनी लीटी पाटली ३ कीजइ नैवेद्य लापसी पूडला खीचडुं जवारिनुं. चैत्री आसोइ ९, पुत्र जन्मइ पारणे नि मुंडणि जमणीनुं कापडुं. फइनइ सहर्षी १ पुत्र जन्मइ पुत्रीई अर्द्धकर कीजई ॥

आज आवी रीते पोतानी जातिने भूली जवानी तैयारीमां छे त्यां काले पोताना धर्म अने परम दिवसे देशने पण केम न भूली जाय ?

[सेठ नोडानी वंशपरंपरा—]

श्रेष्ठ नोडा, भार्या सूरमदे–
पुत्र गुणा, भार्या रंगाई–
पु. हरदास, भा० माहवी–
पु. भोला, भा० गंगाई–
पु. गोवाल, भा० मर्घी–
पु. अमा, भा० पुहती–
पु. वर्जांग, भा० करमी–
पु. शीवा, भा० पती–
पु. महीराज, भा० कमाई–
पु. राजा भा. पूरी–
पु. गुणपति, भा. रही–
पु. झांझण, भा० कपू–
पु. मणोर, भा० हापी–
पु. कुंयरपाल, भा० वाल्ही–
पु. पासा, भा० प्रेमी–
पु. वस्ता, भा० वनादे–
पु. कान्हा, भा० सांपू–

पु. नान्हा संवत् ११११ वर्षे श्रीभिन्नमाल-भग्नं. मनुष्यनी कोडी मरण गई. बंदि पड्या. श्रेष्ठी नान्हा नाठा. कोलीहारामांहि पायची ग्रामे वास्तव्य.

श्रेष्ठी नान्हा, भा० पूर्णा–
पु. अमरा, भा० आऊ–
पु:–१ हरदे, २ वरदे, ३ नरदे, ४ नगा.
हरदे भार्या हांसलदे
पु.—१गोपी, २ पदमा
गोपी भा० गुरदि
पु. जोगा, भा० हापू–
पु. नांदिल. भा. नांदलदे

पु. १ सारिंग २ महिपा ३ संवाड ४ भपा.—पत्तनि वास्तव्य सासरिं संवत् १२२५ वर्षे फोफलीया वाडि–

सारंग भा. नारिंगदे पु. १ सीधर २ जीवा.

सीधर भा. सरीयादे, एउ चली. गांभूपासे नेरली ग्रामे वास्तव्य सासरइं संवत् १२८५ वर्षे.

सीधर भा. सिरियादे–पु. १ अना, २ वन्ना.

अना भा. अनादे–पु. मूला.

—१ श्री आदिजिन बिंबं चउवीस वट्ट मराव्यउं. संवत् १३१६ वर्षे श्री अंचलगच्छे श्री अजितसिंह सूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठितं. एक कुप, गोत्रजा चैत्य, मूलाकेन एवं कृतं।

मूला भा. मालणदे पु. १ वर्धमान, २ जइता.

वर्द्धमान भा. वयजलदे–पु. १ करमण, २ लाला.

एउ चली मोढेरइ वास्तव्य. तेणइ मोढेरइ दांधलीऊ महं. कर्मा ते साहु तेणि समपणि संवत् १३९५ वर्षे महं. ।

करमण भा. करमादे

पु. महुया, भा. सोहागदे. पु. १ धना, २ हीरा ३ खीमा, ४ चुथा.

२ हीरा भा. हीरादे–पु. हेमा.

संवत् १४४५ वर्षे बिंब चुवीसवट्टो प्रतिष्ठामहोत्सव श्री अंचल गच्छे श्रीमेरुतुंग सूरि चोमासि कराव्या प्रतिष्ठितं महोच्छव करावी,

मोढेरि हेमा भा. हेमादे–

पु. भावड, भा. पूनी पु:–१ देवा, २ पर्वत, ३ नंदा.

देवा भा. सरियादे–पु. १ सूरा, २ लखमण.

लखमण भा. लखमादे. पु. १ हर्षा, २ जगा. हर्षा भा. पूर्गी पु:–१ नरपाल, २ वरजांग, ३ फतना, ४ रतना.

१ नरपाल भा. लीलादे.

पु. नरबद भा. नामल दे, पु. वस्ता.

२ वरजांग भा. सखी पु. १ राणा, २ श्रीवंत, ३ भाणा, ४ महीराज.

३ फतना भा. महणादे

पु. वेणा, भा. मरघादे पु. १ भीमा, २ अमा, ३ लहुया.

जगा भा. जस्मादे पु. १ सीपा, २ सामल

पर्वत भा. प्रेमलदे, पु. १ रामा, २ पदमा, ३ भादा.

१ रामा भा. ढद्दू, पु. १ नाथा, २ नारद, ३ सोमा.

नाथा भा. नागल दे

पु. आनंद नाकर भा. टांक, पु. १ सधारण, २ शिवसी, ३ गोपी.

वलाद्रग्रामे

नंदा भा. लाखू, पु. १ रूपा, २ आसा.

रूपा भा. कुंअरी पु. १ भचा, २ अजु, ३ महिपा, ४ कान्हा ।

भचा भा. नाथी.

पु. राघव भा. रीजलदे, पु. १ धना, २ वर्द्धमान ३ पोचा, ४ पोपट.

आजु भा. अजादे पु. १ रूडा, २ राजा. ३ नायक. रूडा भा. २ वयजलदे,—माणिकदे. वयजलदे पु. १ मेघजी, २ जगमाल.—माणिकदे पु. अभयराज.

नायक भा. नारिंगदे पु. १ देवराज, २ संवराज.

वलद्रि मं. नंदाख्येन मल्लिनाथ बिंब भराव्यो. ए आदे कुटुंबि बिंब ३ भराव्या. श्री अंचलगच्छे श्री विजयकेसरसूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठितं.

मं. नंदा भार्या हीरू

पु. साहू भा. सुहागदे.

पु. खीमा भा. देवलदे, पु. १ वीसा, २ देशल, ३ लाला.

वीसा भा. टूबी

पु. सहिसा भा. मरघाई, पु. मिघा

देशल भा. मकू.

पु. लाला भा. खीमाई पु. १ हरखा, २ मेघा, ३ जगा, ४ आणंद, ५ कीमा, ६ पेमा—दीक्षा लीधी, ७ अर्जुण.

हरखा भा. गुरी पु. १ वर्द्धमान, २ टाकुर.

अर्जुण भा. अहिवदे पु. मोहण.

पूर्वि करमण भाई लाला भा. लाडमदे.

पु. हरदास भा. हांसलदे पु. रहिया, २ महिया—दीक्षा लीधी,

महिया भा. मानबाई पु. हीरा—

एउ चली गोलवाडी वलद्रग्रामि वास्तव्य. मं. हीरा, भा. सखू—तेहनि डालिं सिद्ध शीकोत्तरी भाग. तेह कारणि पूछी कहीउं माहरइ गोत्रज जुहारू. तेह कारणे पांजरी नाम लेई गोत्रज जुहारइ. नणंदनइ सेर २ नी माल. पारणे त्रिमुंडाणि. माणा ४ ना लाडू कुटुंबमाही लाहि फईनइ सहर्षि १.

मं. हीरा भा. सखू—

पु. चाचा भा चांपल दे पु. १ पोमा, २ मका.

पोमा भा. प्रेमलदे.

पु. श्रीवंत भा. सरियादे

पु. भोला भा. भावलदे

. रीडा भा. सोभी

पु. सिंघा भा. जयवंती पु. १ कीला, २ अर्जुन, ३ वन्ना.

काला भा. मरघु पु. १ देवा, २ भीमा

देवा भा. नानु

पु. दूदा, भा. आनी पु. असा

भीमा भा. मरमादे

पु. जोधा भा. जसमादे

अर्जुन भा. माणिकदे

पु. नाकर भा. पुतली पु. १ सीहा, २ पथा, ३ नाईया ४ नगा, ५ पांचा.

सीहा भा. सरियादे पु. १ देवराज, २ शिवराज.

पत्तणिनगरे

पूर्वि महुया चतुर्थ पुत्र चुधा भा. चाहणिदे पु. सोभा संग्रहणं कृतं. नोरते वास्तव्यः संप्रति पत्तनि वास्तव्यः । संवत १४४१ वर्षे लघुशाखी बभूव ।

सोभा भा. रंगाई—

पु. माहव भा. देमी पु. १ रंगा, २ जागा.

रंगा भा. रंगादे

पु. वरसंग भा. जिस्मादे पु. १ सुंटा, २ राईया. दीक्षा लीधी.

सुंटा भा. करमादे पु. १ राजपाल, २ विजपाल, ३ ब्रह्मदास.

लहरी सलखणपुर पार्श्वे म. जगा फडीयाना व्यापारथीं फडीया अडक. जगा भा. जिस्मादे पु. १ जेगा.

पूर्वि वर्द्धमान भाई जयता. एऊ चली चाहणसांमि वास्तव्य: सासरा मांहि तव श्री मद्रेवा श्री पार्श्वनाथ चैत्यं कारापितं संवत् १३३५ वर्षे श्री अंचलगच्छे श्री अजितसिंह सूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठितं ।

म. जयता भा. जयवंती

पु. हपा भा. देमाई

पु. मांडण भा. मालणदे

पु. रहिया भा. रहियादे

पु. वस्ता. एऊ चली गेमदणि वास्तव्य:

वस्ता भा. वलादे

पु. वागुरणसी भा. रमादे पु. १ मदा, २ वाछा, ३ रामा.

मदा भा. सलखु पु. १ नगा, २ हापा, ३ तेजा.

नगा भा. धनी

हापा भा. मान

पु. करमसी भा. भोली पु. १ हाईया, २ भीमा, ३ गल्हया

भीमा भा. करमी पु. १ नायक, २ माली, ३ हरखा, ४ गोरा, ५ सामल, ६ कुंरा.

नायक भा. नायकदे

माली भा. मानु पु. १ सीहा, २ सरवण, ३ करमण

सीहा भा. टाकु पु. १ जागा. मेघा

जागा भा. जीवादे

सरवण भा. सहिजलदे पु. १ वीरम, २ खोखा, ३ जुठा. वीरम भा. वनादे

करमण भा कामलदे पु. १ रीडा, २ लखा

रीडा भा. राजलदे

पु. रावसी भा. सुषमादे

पु. लखा भा. लखमादे पु. १ जगसी, २ हरखा

,, ,, माणकदे पु. १ मेला, २ मांका, ३ जीवा, ४ नाथा.

मांका भा. मालणदे पु. १ श्रीवंत, २ वीणा, ३ धना, ४ धरमसी, ५ अजा

श्रीवंत भा. सरीयादे पु. १ पुंजा, २ देवा

पुंजा भा. रत्नादे

पु. वीणा भा. वलादे पु. रांका

डहिरवालिया

पूर्वि सीधर भाई जीवा पत्नति. मं. जीवा भा. जीवादे पु. जिणदत्त भा. पक्. पु. १ वना, २ विजय-दीक्षा लीधी. वना. एऊ चली सासरइ जांबुथी डाहरवालिवास्तव्य सं. १२९५ वर्षे

म. वना भा. सरु

पु. माधव भा. सांपू पु. १ नयणा, २ नगा, ३ रंगा

नयणा भा. नारिंगदे पु. सारिंग वयजलके वास्तव्य.

सारंग भा. सारियादे

पु. जेसा भा. नाकू पु. १ रंगा, २ मेला, ३ रामा

रंगा भा. जोमी पु. वाछा श्रीपार्श्वनाथ चैत्यं प्रतिष्ठितं श्री अंचलगच्छे श्री भुवनतुंगसूरीणामुपदेशेन

मं. वाछा भा. माऊ पु. १ करमण, २ लखमण चारित्र लीधुं.

करमण भा. करमादे

पु. मोका भा. पुरी पु. १ महीराज, २ मांडण

महिराज भा. माणिकदे पु. १ देवा, २ नगा.

मं. देवा भा. देवलदे

पु. माना भा. मानु

पु. जागा भा. देगी

पु. धरणि भा. पूरी

पु. पासा भा. अजी पु. १ शीवा, २ पोचा

शीवा भा. वलादि पु. १ जाणा, २ भाणा, ३ भावड, ४ नरसंघ, ५ करमसी

वढवाण पांसे वलदाणु

पूर्वि महिराज भाई मांडण, भा. सोमी पु. १ वरधा

२ काला, ३ नोला, ४ लखा

वरधा भा. देगी

पु. सांगा भा. सांगारदे

पु. कान्हडदे, एउ चली वडुद्रइ वास पछी बलदाणा वास्तव्यः । तत्र वसही कारापिता मूल नायक श्रीपार्श्वनाथ बिंब ।

कान्हडदे भा. कपूरदे पु. १ चांपा, २ अमीया

चांपा भा. प्रेमलदे

पु. सहसा भा. सरियादे पु. १ जीवा, २ खीमा. जीवा भा. टूबी पु. १ भीमा, २ शाणा, ३ भुजबल ४ जसा, ५ जाणा, ६ जोधा.

भीमा भा. भावलदे पु. १ श्रीवंत, २ जयचंद, ३ रंगा.

पूर्वि बलदांणे अधुना नागतेशठि–

शाणा भा. समाई

पु. शिवराज भा. अजादे पु. १ सामल, २ श्रीमल ३ मला, ४ भोजा

सामल भा. सुरमदे पु. १वाघा, २नागजी, ३हेमराज.

वाघा भा...पु. १आंबा, २ सिद्धराज.

नागजी भा. देवकी पु. १ सुरजी, २ हेमराज

,, ,, मेला पु. सहिजपाल, २ खेता.

—श्रीमल भा. शणगारदे पु. १ मेघा, २ मला

मेघा भा. सवीरा, पु.१ सिवगण, २ श्रीपाल.

श्रीमल द्वितीय भा. वीरमदे, पु. वेला.

खंभायत पासिं तारापुरि—

पूर्वि माधवपुत्र नगा. भा. नागदे पु. १ गोगन, २ गणपति । संवत् १४४५ वर्षे श्रीशत्रुंजय तीर्थनी यात्रा कृता । श्रीरंगरत्नसूरिनिं आचार्यपद स्थापना श्रीअंचलगच्छे गुजराती सोरठी चोरासी गच्छना यतिनिं वेस वुहराव्या । वाणोत्र मेलीनी एणि कारणि डहरवालीया प्रसिद्ध बिरुद ।

—गोगन भा. गुरादे पु. १ मंगल, २जिणदत्त.

मंगल भा. मयगलदे पु. १ खोजा, २ कान्हा.

खोजा भा. सहिजलदे पु. १ गहगा, २ गणपति

गहगा भा. मनाई पु. १ कुंभा, २ कुंरा.

कुंभा भा. कुंमलदे पु. १ पोपट, २ लाला, ३ वाला.

पोपट भा. माई

पु. विद्याधर भा. हर्षादे पु. १ वाछा, २ सहसा— दीक्षा लीधी. वाछा भा. दाडिमदे पु. १ भोजा, २ भीमा, ३ संतोषी.

भोजा भा. धनी पु. शिवसी अधुना.

—पूर्वि सारिंग भाई महिपा भा. फूलां, पु. माटा, ते सिद्धराज जेसिंगदेव राज्ये व्यापारी सहस्रलिंग उपरि-रायनुं आदेश चित्तकरी तिहां पाषाण अणावि ते पांच गज लाडलां दीट रखावई. वरतण माटे रायें गोभलेज गाम आप्युउ छई. चिडोत्तर मांहि मातर पासिं. तिणि गामि पाषाण मोकलई तिणि गामि तलाव १ कूप १२ कराव्या । श्रीशत्रुंजय प्रासादबिंब प्रतिष्ठित अंचल गच्छे । पछि कालांतर राजा रूठो देखी ए पाषाणनी राव (?) कीधी ।

मं. माटा मंडपदुर्गे वास्तव्यः । माटा भा. देमी—

पु. लुंभा भा. मानी पु. १ माधव, २ केशव

माधव भा. माल्हणदे पु. १ गांगा, २ गोरा.

गांगा भा. रूपी.

पु. जयवंत भा. जीस्मादे पु. १ मूमच, २ भरमा.

मूमच भा. रजाई पु. १ नाका, २ माका.

नाका भा. नयणादे पु. सोभा. एउ चली

वडोदरे वास खेतसीमइ पागटिं.

मं. सोभा भा. मरियादे पु. १ करमा, २ धरमा.

करमा भा. करमादे पु. भीमड, २ भावड.

भीमड भा. भीमादे.

पु. देवड भा. देमाई पु. १ राजड, २ चांपा.

राजड भा. पदमाई पु. १ मावड, २ भरमा.

भावड भा. रुपाई पु. टाकरसी. एउ चली खंभायति पार्श्वे तारापुरि वास्तव्यः । पछी सीगी वाडई.

टाकरसी भा. मलाई पु. १ जेसंग, २ वद्दा.

जेसंग भा. जिस्मादे. पु. सोभा भा. रूडी.

(समाप्त)

डॉ. हर्मन जेकोबीनी जैन सूत्रोपरनी प्रस्तावना

(भाग बीजो)

[अनुवादकः—श्रीयुत अंबालाल चतुरभाई शाह बी. ए. जैन साहित्य संशोधक कार्यालय]

[प्रथम अंकमां डॉ. हर्मन जेकोबीनी कल्पसूत्र (मूळ आवृत्ति) नी प्रस्तावना आपवामां आवी हती अने बीजा अने त्रीजा अंकमां, ' सेक्रेड बुक्स आफ धी ईस्ट ' नामनी प्रख्यात ग्रंथमाळाना २२ मां पुस्तकमां प्रसिद्ध थएला जैनसूत्रोना प्रथम भागनी प्रस्तावना प्रसिद्ध करवामां आवी छे. आ अंकमां ए ज जैन सूत्रोना बीजा भागनी (जे उक्त ग्रंथमाळाना ४५ मा पुस्तकरूपे बहार पडेल छे) प्रस्तावना आपीए छीए. आ भागमां, सूत्रकृतांग अने उत्तराध्ययन एम बे सूत्रोनुं इंग्रेजी भाषान्तर आपेलुं छे. डॉ. जेकोबीनी आ त्रणे प्रस्तावनाओए युरोपीय विद्वानोना जैनधर्मविषयक जुना विचारोमां घणुं संशोधन कर्युं छे अने सर्व साधारणमां जैन संबंधी व्यापेला अज्ञानने घणे अंशे दूर कर्युं छे. इंग्रेजी केळवणी पामेली आलमने जैनधर्मनुं जे कांई थोडुं घणुं खरुं ज्ञान मळ्युं होय तो तेनो बधो यश डॉ. जेकोबीनी आ महत्त्वनी प्रस्तावनाओने घटे छे. बौद्ध धर्मथी जैनधर्म तद्दन स्वतंत्र अने तेना करतां जुनो छे ए सिद्धान्त डॉ. जेकोबीए ज सौथी प्रथम अने सचोट रीते स्थापित कर्यो छे. जैनधर्मना सामान्य स्वरूपने समजवा माटे आ त्रणे प्रस्तावनाओ विद्वानोमां खास प्रमाणभूत मनाय छे.

आ साथे एक आटली सूचना करी लेवानुं हुं उचित समजुं छुं के आ प्रस्तावनाओमांना बधा विचारो मने सम्मत छे एम कोईए समजी लेवानी भूल न करवी जोईए. आमांना केटलाए विचारो साथे मारो मतभेद छे के जे हुं भविष्यमां सविस्तर प्रकट करवा इच्छुं छुं, अने ए ज विचारथी में आ प्रस्तावनाओ साथे कोई पण प्रकारनी टीका-टिप्पणी लखी नथी के जेम करवामाटे मने घणाक सज्जनो तरफथी सूचनाओ सुधां मळी हती.

आ अनुवादो में मारी जातीय देखरेख नीचे कराव्या छे अने पाछळथी घणी काळजी अने महेनत पूर्वक मूळ साथे संपूर्ण सरखाव्या छे. छतां जो कोई सज्जनने आमां क्यांए स्खलन विगेरे जणाय तो ते खास लखी जणाववा सूचना छे जेथी तेनुं संशोधन करी देवामां आवे.—संपादक.]

जैनसूत्रोना मारा भाषान्तरना प्रथम भागने प्रकट थए दश वर्ष थयां. ते दरम्यान केटलाक उत्तम विद्वानोद्वारा जैनधर्म अने तेना इतिहासविषयक आपणा ज्ञानमां घणो अने महत्त्वनो वधारो थयो छे. हिंदुस्तानना विद्वानोए संस्कृत अने गुजरातीमां लखेली सारी टीकाओ साथे सूत्र ग्रंथोनी साधारण आवृत्तिओ बहार पाडी छे. प्रो. ल्युमन[1] अने प्रो. होर्नले[2] आ सूत्र ग्रंथोमांना बे सूत्रोनी गुण-दोषना विवेचनवाळी आवृत्तिओ पण प्रकट करी छे; अने तेमांए प्रो. होर्नले तो पोतानी आवृत्ति साथे मूळनुं काळजीपूर्वक करेलुं भाषान्तर अने पुरतां उदाहरणो पण

१ दस्, औपपातिक सूत्र, Abhandlungen fur die kunde des Morgenlondes नामनी ग्रंथमाळा, पुस्तक ८; दशवैकालिक सूत्र अने निर्युक्ति, जर्नल आफ धी ओरिएन्टल सोसायटी, पृ. ४५.

२ उवासग दसाओ (बिब्लिओथिका इन्डिका) भाग १ मूळ अने टीका, कलकत्ता १८९०, भाग २, इंग्रेजी भाषान्तर, १८८८.

आप्यां छे. प्रो. वेबरे पोते तैयार करेला बर्लिनना हस्तलेखोना विस्तृत सूचिपत्रमां संपूर्ण जैन साहित्यनुं साधारण अवलोकन कर्युं छे. तेम ज तेमणे जैन सूत्रो उपर एक अति विद्वत्तापूर्ण मोटो निबंध पण प्रकट कर्यो छे.[५] प्रो. ल्युमने वळी जैन वाङ्मय अने शास्त्रना विकासनुं सारु अध्ययन कर्युं छे, तथा केटलीक जैन कथाओ अने तेना ब्राह्मण अने बौद्ध कथाओ साथेना संबंधनी तपासणी पण करी छे[६]. श्वेताम्बर संप्रदायना जुना इतिहासनी माहिती आपनारो एक महत्त्वनो ग्रंथ मे पण संपादित कर्यो छे[६]; तथा तेमना केटलाक गच्छोनो इतिहास हॉर्नल अने क्लाट द्वारा जाहेरमां आव्यो छे. आमांनो छेल्लो विद्वान (क्लाट) जे अत्यारे आपणी वच्चे मौजुद नथी, तेणे सघळा जैन लेखको अने ऐतिहासिक पुरुषोनो एक जीवन चरित्रात्मक महान् नामकोष (Onomasticon) तैयार कर्यो छे अने जेना केटलाक नमुना प्रकट पण थया छे. होफ्रेट बुल्हर सर्वविद्याविशारद एवा प्रसिद्ध विद्वान् हेमचंद्रनुं विस्तृत जीवन चरित्र लख्युं छे[७]. वळी तेमणे घणाक जुना शिलालेखोना अर्थो पण प्रसिद्ध कर्या छे. डॉ. फुहरेरे मथुरामांथी खोदी काढेला कोतर कामोनुं विवेचन कर्युं छे[८], अने मि. लेवीस राइसे श्रवण बेल्गोलमांना घणाक महत्त्वना शिलालेखो बहार पाड्या छे[९] एम्. ए. बार्थे जैनधर्म विषयक आपणा ज्ञाननी समालोचना करी छे[१०]. बुल्हरे पण एक मानो निबंध लखी तेवी आलोचना प्रकट करी छे[११]. अने छेवटे भांडारकरे संपूर्ण जैन धर्मनी एक महत्त्वनी अने घणी उपयोगी रूपरेखा आलेखी प्रसिद्धिमां मुकी छे[१२]. आ रीते, आपणा जैन धर्म विषयक ज्ञानमां थएला वधाराओए (जेमांना मात्र खास नोंधवा लायक ग्रंथोनो ज में अहिं उल्लेख कर्यो छे) आ आखा विषय उपर एटलुं बधुं अजवाळुं पाड्युं छे के जेथी हवे मात्र कल्पनाने आ विषयमां घणो ज थोडो अवकाश रहेशे. अने ऐतिहासिक तेम ज भाषाविज्ञानात्मक साची पद्धति, ते साहित्यना सघळा भागोने लागु पाडी शकाशे. तेम छतां, हजी केटलाक मुख्य प्रश्नोना खुलासा करवा बाकी रह्या छे, तथा जे निराकरणो आ अगाउ थई गयां छे ते हजी बधा विद्वानोने मान्य थयां नथी; तेथी आ सुअवसरनो लाभ लई आनंद पूर्वक हुं अहिं केटलाक विवादग्रस्त मुद्दाओनुं स्पष्टीकरण करवा इच्छुं छुं. आ मुद्दाओना खुलासाओ माटे आज पुस्तकमां भाषान्तरित थएला सूत्रोमांथी घणी किंमती सहायता मळी शके तेम छे.

ए बाबत तो हवे सर्व सम्मत थई चुकी छे के नातपुत्त (ज्ञातपुत्र) जे साधारण रीते महावीर अथवा वर्धमानना नामे ओळखाय छे ते बुद्धना समकालीन हता. निगण्ठो (निर्ग्रन्थो)[१३] जे हालमां जैन अथवा आर्हतना नाम-

---

३ बर्लिन १८८८ अने १८९२.

४. Indische Studien पु. १६, पृ. २११ आदि. इ. ए. मां अनुवाद तथा जुदा पुस्तक रूपे, मुंबई १८९३.

५. Actes du VI Congres International des Orientalistes, section Arieane पृ. ४६९. तथा Wienerzeitschrift für die Kunde des Morgenlandes पु. ५ अने ६. वळी, जर्नल आफ दी जर्मन ओरिएन्टल सोसायटी, पु. ४८.

६. हेमचंद्राचार्य रचित परिशिष्ट पर्व. कलकत्ता.

७. Denkschriften der philos-histor. Classe der Kaiserl. Akademie der Weissens chaften, Vol. XXXVII, p.171ff

८. Wiener Zeitschrift für die Kunde des Morgenlandes, Vols II and III. Epigraphia Indica, Vols. I and II.

९. बेंगलोर १८८९.

१०. The Religions of India. Bulletin des Riligions de l'Jande, 1889-94

११. Über die Indische Secte der Jaina, Wien 1881.

१२. रीपोर्ट सन १८८३-८४.

१३. निगण्ठ ए स्पष्टरूपे मूळ रूप ज होय एम जणाय छे. कारण के अशोकना शिलालेखोमां, पालीमां, अने केटलीक वखते जैन ग्रन्थोमां पण ए ज रूप मळी आवे छे. पण आ त्रणे बोलीओना स्वरशास्त्रना नियमो प्रमाणे तो तेनुं वधारे वास्तविक रूप 'निगन्थ' एवुं थवुं जोईए. अने आवुं रूप जैन ग्रंथोमां स्वीकारेलुं पण मळी आवे छे.

थी वधारे प्रसिद्ध छे; तेओ, ज्यारे बौद्ध धर्म स्थपाई रह्यो हतो त्यारे एक महत्त्वशाली संप्रदाय तरीके क्यारनाए प्रसिद्ध थई चुक्या हता. परंतु हजी ए प्रश्ननुं निराकरण थवुं बाकी रह्युं छे के—ए प्राचीन निर्ग्रन्थोनो धर्म, ते खास करीने वर्तमान जैनोना आगमो अने बीजा ग्रंथोमां जे वर्णवेलो छे ते ज हतो, के सिद्धान्तो पुस्तकारूढ थया त्यां सुधीना समयमां घणो रूपान्तरित थई गयो हतो.

आ प्रश्ननुं निराकरण करवा माटे, अत्यार सुधीमां प्रकट थएला बधा बौद्ध ग्रंथोमां, जेमने आपणे सौथी जुना समजीए छीए, तेमांथी जैन निगण्ठो, तेमना सिद्धान्तो अने तेमना धार्मिक आचारोना विषयमां जेटलां प्रमाणो जडी आवे ते बधानो ऊहापोह करवो जोईए.

अंगुत्तरनिकाय ३,७४ मां, वैशालीना लिच्छविओमांनो अभय[14] नामे विद्वान राजकुमार निगण्ठोना केटलाक सिद्धान्तोनुं नीचे प्रमाणे वर्णन करे छे:—'भदन्त! निगण्ठ नातपुत्त जे सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छे, जे संपूर्ण ज्ञान अने दर्शनथी संपन्न होवानो (आ आगळ जणावेला शब्दोमां) दावो करे छे के "चालतां, उभतां, ऊंघतां अने जागतां हुं सर्वज्ञ अने सर्वदर्शी छुं" ते जुना कर्मोनो तपस्या वडे नाश थवानुं प्ररूपे छे. अने संवरद्वारा नवा कर्मोने रोकवानो उपदेश आपे छे. ज्यारे कर्मनो क्षय थाय छे त्यारे दुःखनो क्षय थाय छे. ज्यारे दुःखनो क्षय थाय छे त्यारे वेदनानो अंत आवे छे. ज्यारे वेदना मटशे त्यारे सर्व दुःखनो क्षय थशे. आ रीते ज्यारे पापनो पूरो ध्वंस थशे त्यारे मनुष्य वास्तविक मुक्ति मेळवशे."

आ विचारोनुं जैन प्रतिबिंब उत्तराध्ययनना २९ मा अध्ययनमां मळी शके छे:—'तपथी मनुष्य कर्मने छेदी शके छे २७.' 'योगना त्यागथी अयोगपणुं प्राप्त थाय छे; कर्म रोकवाथी ते नवीन कर्मने ग्रहण करी शकतो नथी अने पूर्वे ग्रहण करेला कर्मोनो क्षय करे छे. ३७' आ प्रकारनी प्रवृत्तिनी बे अन्तिम दशाओ (सूत्र ७१ अने ७२ मां) वर्णवामां आवेली छे. अने वळी अध्ययन ३२, गाथा ५, ७ मां आवती नीचेनी हकीकत वांचीए छीए:—'जन्म अने मरणनुं कारण कर्म छे अने जन्म अने मरण ए ज दुःख कहेवाय छे.' आ उपरांत बीजी पण उपरना अर्थने मळती ३४, ४७, ६०, ७३, ८६ अने ९९ मी गाथानो संक्षिप्त अर्थ नीचे प्रमाणे छे:—'परंतु जे मनुष्य इंद्रियोना विषयोथी अने मानसिक मागणीओथी [आनो अर्थ बौद्ध तत्त्वज्ञाननी 'वेदना' ना अर्थ साथे घणो ज मळतो आवे छे] उदासीन रहे छे तेने शोक स्पर्श करी शकतो नथी. जो के ते संसारमां मौजुद छे तो पण ते दुःख परंपराथी, जेम कमलनुं पान पाणीथी अलिप्त रहे छे तेम, ते मनुष्य पण अलिप्त रहे छे.'

आ सिवाय बौद्ध ग्रंथमां, नातपुत्त सर्वज्ञान अने सर्वदर्शन प्राप्त कर्यानो दावो करे छे—ए प्रकारनुं जे कथन छे तेने स्पष्ट करवा माटे प्रमाण आपवानी जरूर नथी. कारण के आ तो जैन धर्मनुं खास एक मौलिक मंतव्य ज छे.

निगण्ठोना सिद्धांत विषयक बीजी वधारे माहिती महावग्ग ६, ३१ (S. B. E, पु. १७, पृ. १०८) आदिमांथी मळी आवे छे. ए स्थळे सीह[15] नुं एक वृत्तान्त आपेलुं छे. ते सीह लिच्छविओनो सेनापति हतो अने नातपुत्तनो उपासक हतो. ते बुद्धने मळवा इच्छतो हतो परंतु नातपुत्त क्रियावादी होई बुद्ध अक्रियावादी हतो तेथी तेनी पासे जवानी तेने ना कहेवामां आवती

१४ आ नामनो, स्पष्टरीते, बे पुरुषो मळी आवे छे. बीजो अभय श्रेणिकनो पुत्र हतो अने जैनोनो सहायक हतो. तेनो जैनोना सूत्रो तेम ज कथाओमां उल्लेख थएलो छे. मज्झिम निकायना ५८ मा (अभय कुमार) सुत्तमां एवुं वर्णन छे के निगण्ठ नातपुत्ते तेने बुद्धनी साथे वाद करवा मोकल्यो हतो. प्रश्न एवो चालाकी भरेलो तैयार करवामां आव्यो हतो के बुद्ध तेनो गमे तेवा हकार अगर नकारमां जवाब आपे पण ते स्वविरोध वाळा न्यायशास्त्र प्रसिद्ध दोषमां सपडाया वीना रहे ज नहि. परंतु आ युक्ति सफळ थई नहिं अने परिणाम तेथी उलटुं ए आव्युं के अभय बुद्धानुयायी थई गयो. आ वर्णनमां नातपुत्तना सिद्धांत उपर प्रकाश पाडे एवुं कांई तत्त्व नथी.

१५ 'सीह' नुं नाम भगवती [कलकत्ता आवृत्ति, पृ. १२६७ जुओ होर्नलनी उवासगदसाओ, परिशिष्ट, पृ. १०] मां महावीरना एक शिष्य तरीके पण आवेलुं छे, परंतु ते साधु होवाथी महावग्गमां आवता आ नाम साथे तेनी एकता बतावी शकाय तेम नथी.

हती. परंतु ते तेमनी आज्ञाने उलंघी पोतानी मेळे बुद्ध पासे गयो अने बुद्धनी मुलाखातना परिणामे ते तेनो अनुयायी बन्यो. आ वृत्तान्तमां निगण्ठोने जे क्रियावादी जणाववामां आव्या छे, ते बाबत आ पुस्तकमां अनुवादित सूत्रोना उल्लेखथी सुसिद्ध थाय छेः—सूत्रकृताङ्ग १, १२,२१, (पृ० ३१९) मां जणावे छे के ' तीर्थंकर—अर्हनने क्रियावाद प्ररूपवानो—उपदेशवानो अधिकार छे. ' आचारांगसूत्र १, १, १, ४ (भाग १ पृ० २) मां पण आ विचार, आ प्रमाणे दर्शावामां आव्यो छेः— ' ते आत्माने माने छे, जगत्ने माने छे, फळने माने छे, कर्मने माने छे, (एटले के ते आ पणां ज करेला छे अने जे आ प्रमाणेना विचारोथी स्पष्ट जणाय छे) ते कर्म मे कर्युं छे; ते बीजा पासे करावीश; ते हुं बीजाने करवा दईश. ' इत्यादि.

महावीरना जे बीजा शिष्यने बुद्धे पोतानो अनुयायी बनावी लीधो हतो तेनुं नाम उपालि हतुं. मज्झिमनिकायना ५६ मां प्रकरणमां जणाव्या प्रमाणे तेणे बुद्धनी साथे, ए बाबतनो वाद कर्यो हतो के—'निगण्ठ नातपुत्त कहे छे तेम कायिक पाप मोटुं छे, के बुद्ध माने छे तेम मानसिक पाप मोटुं छे ? ए संवादना प्रारंभमां उपालि कहे छे के, मारा गुरु साधारणरीते कर्म अथवा कृत्य माटे दण्ड (शिक्षा) शब्दनो उपयोग करे छे.' जो के आ उल्लेख साचो छे परंतु संपूर्णरूपे नहिं. कारण के जैनसूत्रोमां कर्म अर्थमां पण ' कर्म ' शब्दनो तेटलो ज उपयोग थएलो छे. अने दण्ड शब्दनो पण तेटलो ज थएलो छे. सूत्रकृताङ्ग २, २ (पृ० ३५७) मां १३ प्रकारना पापकर्मनुं वर्णन करेलुं छे जेमां पांच स्थळमां ' दण्डसमादान ' शब्द आवेलो छे अने बाकीनां स्थळमां ' किरियाथान ' शब्द आवेलो छे.

निगण्ठ उपालि विशेषमां जणावे छे के कायिक, वाचिक अने मानसिक एम त्रण प्रकारनो दण्ड छे. उपालिनुं आ कथन, स्थानांग सूत्रना त्रीजा प्रकरणमां (जुओ इन्डि. एन्टि. पु. ९, पृ० १५९) जणावेला जैन सिद्धान्तनी साथे पूर्ण मळतुं आवे छे.

उपालेनुं बीजुं कथन के, जेमां ते निगण्ठोने मानसिक पापो करतां कायिक पापोने वधारे महत्त्व आपनारा जणावे छे, ते कथन जैन सिद्धान्त साथे बराबर मळतुं आवे छे. सूत्रकृतांग २, ४ (पृ० ३९८) मां एवा एक प्रश्ननी चर्चा करवामां आवी छे के अणजाणपणे कराएला कृत्यनुं पाप लागे के नहिं. त्यां आगळ स्पष्ट रीते जणावेलुं छे के निश्चित रीते तेवुं पाप लागे छे. (सरखावो पृ० ३९९ टिप्पण ६) वळी ते ज सूत्रना ६ ठा अध्ययनमां (पृ० ४१४) बौद्धोना ए मंतव्यनुं के—' अमुक कर्म पापयुक्त छे के पापरहित छे तेनो निर्णय ते कर्म आचरनार मनुष्यना आशय उपर आधार राखे छे, ' खूब खण्डन अने उपहास करवामां आव्यो छे.

अंगुत्तर निकाय ३,७०,३ मां निगण्ठ श्रावकोना आचारोनुं वर्णन आपेलुं छे. ते भागनुं नीचे प्रमाणे भाषान्तर आपुं छुं. ' हे विशाखा, निगण्ठनामे ओळखातो श्रमणोनो एक संप्रदाय छे. तेओ श्रावकोने आ प्रमाणे उपदेश आपे छे. " हे भद्र, अहींथी पूर्वदिशा तरफ एक योजन प्रमाण भूमिथी बहार रहेता जीवतां प्राणिओनी हिंसाथी तमारे विरमवुं, तेवी ज रीते दक्षिण, पश्चिम अने उत्तर दिशा तरफनी योजन प्रमाण भूमिथी बहार रहेता प्राणिओनी हिंसाथी विरमवुं " आ रीते तेओ केटलांक जीवतां प्राणिओने बचाववानो उपदेश आपी दयानो उपदेश करे छे; अने एज रीते वळी तेओ केटलांक जीवतां प्राणियोने न बचाववानो बोध करी क्रूरता शिखवाडे छे. ' ए समजावतुं कठिण नथी के आ शब्दो जैनोना दिग्विरति व्रतने उद्देशीने कहेला छे के, जे व्रतमां श्रावकने अमुक हद बहार मुसाफरी के व्यापार विगेरे नहिं करवा संबंधीनो नियम उपदेशवामां आव्यो छे. आ व्रतनुं पालन करनार मनुष्य, अलबत्त, पोते छूटी राखेली भूमि बहारना प्राणीनी हिंसा तो न ज करी शके ए तो स्पष्ट ज छे. परंतु, आवा एक निर्दोष नियमने विरोधी सम्प्रदाये केवा विकृत रूपमां आलेख्युं छे ? पण एमां ए आश्चर्य जेवुं कशुं नथी. कारण के कोई पण धार्मिक सम्प्रदाय पासेथी, तेना विरोधी मतना सिद्धान्तोनुं यथा-

र्थ अने प्रामाणिक आलेखन मेळववानी आपणे आशा न ज राखवी जोईए. तेओ स्वाभाविक रीते, ते सिद्धान्तोनुं आलेखन एवा ज रूपमां करशे के जेथी तेमां देखाई आवता दोषो वधारे मोटा प्रमाणमां बतावी शकाय. जैनो पण आ बाबतमां बौद्धो करतां लेशमात्र उतरे तेम नथी. तेमणे पण बौद्धोना सिद्धान्तोने आ ज प्रमाणे विकृत रूपमां आलेख्या छे. बौद्धोना ए मंतव्यनुं के—पाप ए तेना आचारनारने आशय उपर आधार राखे छे, तेनुं जैनोए, आ पुस्तकना पृ० ४१४ उपर, केवुं असत्य निरूपण कर्युं छे ते जोवा जेवुं छे. ए ठकाणे जैनोए बौद्धोना एक महान सिद्धान्तने मिथ्या कल्पित अने मूर्खतापूर्ण उदाहरण साथे मेळवी उपहास पात्र बनावी दीधो छे.

अंगुत्तर निकायनो एक उल्लेख जेनी थोडीक चर्चा आ उपर करवामां आवी छे तेमां वळी आगळ चलावतां जणाववामां आव्युं छे के—'उपोसथना दिवसोमां तेओ (निगण्ठो) श्रावकोने आ प्रमाणे उपदेश आपे छे के "भद्र, तमारे सघळां वस्त्रो काढी नांखवां जोईए अने कहेवुं जोईए के —हुं कोईनो नथी अने मारुं कोई नथी." अहीं विचारवानुं छे के, तेना माता—पिता तेने पोतानो पुत्र तरीके माने छे अने ते पण तेमने पोताना माता—पिता माने छे. तेनो पुत्र अगर तेनी पत्नी, तेने पिता अगर पतिरूपे माने छे. अने ते पण तेमने पोताना पुत्र अगर पत्नी तरीके माने छे. तेना गुलामो अने नोकरो तेने पोतानो मालिक या शेठ माने छे अने ते पण तेमने तेओ पोताना गुलामो अगर नोकरो छे, तेम माने छे. आ कारणथी (निगण्ठो) तेमने (श्रावकोने) उक्त रीते बोलवानुं कही तेमनी पासेथी असत्य भाषण करावे छे. वळी ए रात्री व्यतीत थया बाद, तेओ, ते ते वस्तुओनो उपभोग करे छे जे सर्व (तेमना माटे) अदत्तादानरूप छे. आथी हुं तेमने अदत्तादान लेवाना पण दोषी तरीके मानुं छुं.'

आ वर्णन उपरथी समजाय छे के निर्ग्रन्थ—उपासकना उपोसथना दिवसोवाळा नियमो साधुजविनना नियमो जेवा ज होवा जोईए. गृहस्थ अने साधुजीवनना नियमोनुं भिन्नत्व बीजा दिवसोमां रहेतुं हतुं. परंतु आ वर्णन जैनोना पोसहव्रतना नियमो साथे पूरेपूरुं मळतुं आवतुं नथी. प्रो. भांडारकर, तत्त्वार्थसार-दीपिकाना आधारे पोसहव्रतनुं स्वरूप नीचे प्रमाणे आपे छे; अने आ वर्णन बीजा तेवा वर्णनो साथे बराबर संगत थाय छे. भांडारकर लखे छे:—'पोसह एटले दरेक पक्षनी अष्टमी अने चतुर्दशीना पवित्र दिवसे उपवास करवो अथवा एकाशन करवुं अथवा एक ज ग्रास खावो. ते दिवसोमां यतिनी माफक वैराग्य धारण करी स्नान, लेपन, आभरण, स्त्री संगमन, सुगन्धी धूप—दीप इत्यादिनो त्याग करवो' जो के वर्तमान जैनोनुं ए पोसहव्रत—पालन बौद्धो करतां घणुं सखत छे, ए वात खरी छे; तो पण ते, निगण्ठ—नियमो के जेमनुं वर्णन उपर आपवामां आव्युं छे, तेना करतां घणुं शिथिल होय तेम जणाय छे. मारा जाणवा प्रमाणे जैन गृहस्थ, पोसहमां कपडांनो त्याग करतो नथी. पण बाकीना आभूषणो अने बीजा विलासोनो त्याग करे छे. तेम ज दीक्षा ग्रहण करती वखते जेम साधुने त्यागना सूत्रो बोलवा पडे छे तेम तेने बोलवा पडतां नथी. आ उपरथी एम जणाय छे के—कां तो बौद्धोनुं आ वर्णन भूल भरेलुं अगर असत्यमूलक होय अने कां तो जैनोए पोताना नियमोमां कांईक शिथिलता दाखल करी होय.

दीघनिकाय १, २, ३८ (ब्रह्मजाल सूत्र) मां आवता निगण्ठ विषयक उल्लेख उपरनी पोतानी टीकामां एक ठेकाणे बुद्धघोष लखे छे के—'निगण्ठो आत्मा वर्णरहित छे एम माने छे; अने आजीविको आत्माना वर्णनी अनुसार समस्त मानव जातिना ६ विभागो पाडे छे. परंतु मृत्यु पछी पण आत्मानुं अस्तित्व धरावे छे अने ते बधा रोगोथी मुक्त (अरोगो) होय छे, ए बाबतमां निगण्ठो अने आजीविको बंने समानमत वाळा छे.' छेवटना शब्दोनो अर्थ गमे तेम हो, परंतु तेनी उपरनुं वर्णन तो, आ पुस्तकना पृ. १७२उपर आपेला जैनोना आत्मस्वरूपना वर्णन साथे बराबर मळतुं आवे छे. एक बीजा

फकरामां (I c p 168) बुद्धघोष जणावे छे के निगण्ठ नातपुत्त थंडा पाणीने सचेतन माने छे (सो किर सीतोदके सत्तसञ्ञी होति) अने तेथी ते तेनो उपयोग करता नथी. जैनोनुं आ मंतव्य अत्यंत प्रसिद्ध होवाथी तेनी साबीती आपवा माटे सूत्रोमांथी अवतरणो आपवानी आवश्यकताने हुं निरर्थक मानुं छुं.

पाली ग्रन्थोमांथी प्राचीन निगण्ठोना मंतव्यो संबंधी जे कांई माहीती हुं एकत्र करी शक्यो छुं, लगभग ते बधी उपर आपी दीधी छे. जो के आपणे इच्छीए तेना करतां ते घणी अल्प प्रमाणमां छे, तो पण तेथी तेनी किंमत बिल्कुल ओछी गणाय तेम नथी. प्राचीन निगण्ठोना मंतव्यो अने आचारोना संबंधमां जे उल्लेखो आपणे एकत्र कर्या छे ते सघळा, एक अपवादने बाद करतां, वर्तमान जैन मन्तव्यो अने आचारो साथे मळता आवे छे अने तेमांना केटलाक तो जैनोना खास मौलिक विचारो छे. आ उपरथी आपणने एम संदेह करवानुं जराए कारण नथी जडतुं के आ बौद्ध ग्रन्थोमांनी नोंधो अने जैन सिद्धान्तोनी रचना वच्चेना—अंतर्वर्ती काळमां जैन सिद्धान्तोमां झाझो फेरफार थयो होय.

मे जाणी जोईने ज निगण्ठ नातपुत्तना मत विषयक एक प्रधान फकरानुं विवेचन करवुं आ स्थळे मुलतवी राख्युं छे. कारण के ए फकरामां आपेली बाबत उपरथी आपणने एक नवी ज पद्धतिए तपास करवानी अगत्य रहे छे. आ फकरो दीघनिकायना सामञ्ञफलसुत्तमां आपेलो छे. हुं तेनुं अहिं सुमङ्गलविलासिनी नामे बुद्धघोषवाळी टीकाना अनुसारे भाषान्तर आपुं छुं—'महाराज, अहिंया एक निगण्ठ चार विभागो नियमनथी सुरक्षित छे (—चातुयाम संवरसंवुतो). हे महाराज, केवी रीते निगण्ठ चार दिशाना संवरथी रक्षित छे? महाराज, आ निगण्ठ सघळुं [थंडुं] पाणी वापरतो नथी. सर्व दुष्ट कर्म करतो नथी. अने सघळां दुष्कर्मोना विरमणवडे ते सर्व पापोथी मुक्त छे. अने सर्व प्रकारना दुष्कर्मोथी, सघळा पापकर्मोथी निवृत्ति अनुभवे छे. आ प्रमाणे हे महाराज, निगण्ठ चारे दिशाना संवरथी संवृत छे. अने महाराज, आ प्रमाणे संवृत होवाथी ते निगण्ठ नातपुत्तनो आत्मा मोटी योग्यतावाळो, संयत अने सुस्थित छे.''[1] अलबत्त, आ जैनधर्मनुं यथार्थ तेम ज संपूर्ण वर्णन नथी. परंतु तेमां जैनधर्मनुं विरोधी तत्त्व पण नथी. आना शब्दो जैनसूत्रोना शब्दो जेवा ज छे. मे बीजे[2] स्थळे जणाव्युं छे तेम 'चातुयाम संवर संवुतो' ए वाक्य मात्र टीकाकार ज नहीं परंतु मूळ ग्रन्थकार पण खोटी रीते समजेलुं छे. कारण के पाली शब्द 'चातुयाम' ते प्राकृत शब्द 'चाउज्जाम' नी बराबर थाय छे. अने आ प्राकृत शब्द तो एक प्रसिद्ध जैन पारिभाषिक शब्द छे जे महावीरना (पंच महाव्रत) पांच महाव्रतोथी भिन्न एवा पार्श्वनाथना चार व्रतोनो वाचक छे. आथी आ स्थळे बौद्धोए, जे सिद्धान्त वास्तविकमां महावीरना पुरोगामी पार्श्वनाथने लागु पडे छे तेने, महावीर उपर आरोपित करवामां भूल करेली छे, एम हुं धारुं छुं. आ उपरथी एम सूचित थाय छे के बौद्धोए आ शब्दने निगण्ठोना धर्मवर्णनमां लीधेलो होवाथी तेमणे ते पार्श्वनाथना अनुयायियोना मुखेथी सांभळ्यो हशे; अने बीजो ए पण कल्पना थई शके के महावीरना संशोधित मतो जो बुद्धना समयमां सर्व सामान्यरीते स्वीकाराया होत तो पार्श्वनाथना अनुयायियो पण ते वखते ते शब्दनो उपयोग नहीं करता होत. बौद्धोनी आ भूल द्वारा हुं जैनोनी ए परंपराने सत्य स्थापित करी शकुं छुं के महावीरना समयमां पण पार्श्वनाथना शिष्यो विद्यमान हता.

आ पद्धतिए तपास करवानी शरुआत करतां पहेलां हुं बौद्धोनी एक बीजी पण अर्थपूर्ण भूल तरफ

---

१ सुमंगलविलासिनी [पालीटेक्स्ट सोसायटी] पृ. [illegible]

१ ग्रिमब्लॉट, Pali sept suttas मां गोगर्ली (Gogerly) अने बर्नफ (Burnouf) नां जे भाषान्तरो आपेलां छे ते तेमणे टीकानो सहायता लीधा विना करेलां होवाथी दुर्लक्ष्य करवा जेवां छे. बुद्धघोषनुं वर्णन परंपरागत हतुं के कल्पित हतुं ते संदिग्ध छे.

२ जुओ. इन्डि. एन्टि. भा. ९, पृ. १५८ मां प्रकट थएलो मारो On Mahavir and his Predecessors नामनो निबन्ध.

वाचकनुं ध्यान खेंचवा मागुं छुं: बौद्धो नातपुत्तने अग्गिवेसन अर्थात् अग्निवैश्यायन कहे छे, परंतु जैनोना मतानुसार ते काश्यप हता; अने पोताना तीर्थकरो संबंधी आवी बाबतोमां जैनोनुं ज कहेवुं विश्वासपात्र मनावुं जोईए. वळी महावीरनो एक मुख्य शिष्य, जे सुधर्मा नामे हतो अने जेने सूत्रोमां महावीरना धर्मना मुख्य उपदेशक तरीके बतावेलो छे ते पोते अग्निवैश्यायन हतो; अने तेणे जैन धर्मनो प्रसार करवामां मुख्य भाग भजवेलो होवाथी बहारना बीजा माणसो शिष्यने गुरु समजी लेवानी भूल करी होय अने तेथी करीने शिष्यनुं गोत्र गुरुने लगाडी देवामां आव्युं होय, ते बणु संभवित छे. आ रीतनी बौद्धोए करेली बेवडी भूल महावीरनी पूर्वे पार्श्वनामना तीर्थकरनी तथा महावीरना मुख्य शिष्य सुधर्मानी हयातीनी साक्षी आपे छे.

पार्श्व ए एक ऐतिहासिक पुरुष हता ते वात तो बधी रीते संभावित लागे छे. केशी[1] के जे महावीरना समयमां पार्श्वना संप्रदायनो एक नेता होय तेम देखाय छे तेनो तथा अन्य पण तेवा अनुयायीओनो जैन सूत्रोमां घणे ठेकाणे उल्लेखो थएला छे; अने ते उल्लेखो एवी सरळ रीते थएला छे के जेथी करीने तेनी सत्यासत्यताना संबंधमां शंका उठाववाने कारण मळतुं नथी. उत्तराध्ययनना २३ मा अध्ययनमां जुना अने नवा संप्रदायनो परस्पर मेळ केवी रीते थई गयो हतो ते बतावनारी; एक कथा आ विषयमां घणी ज अगत्यनी छे. केशी अने गौतम के जेओ बंने जैन धर्मना बे संप्रदायोना प्रतिनिधि तथा नेता हता, तेओ पोताना शिष्यपरिवार सहित एक वखते श्रावस्ती पासेना उद्यानमां भेगा मळे छे, अने महाव्रतोनी संख्या विषयक तथा सचेलकाचेलक अवस्था विषयक तेमना धार्मिक मतभेदो वधारे विवेचन कर्या सिवाय मात्र सहज समजावीने दूर करवामां आवे छे. अने त्वराथी मौलिक नीतिविषयक विचारोना संबंधमां प्रत्येक पक्ष दृष्टान्तो द्वारा एक बीजाना विचारो समजी समजावी निःशंक बनी संपूर्ण एकमत थाय छे. बन्ने संप्रदायो वच्चे कांईक मतभेद जेवुं जोवामां आवे छे, परंतु परस्पर द्वेष या वेर बिलकुल जोवातुं नथी. जो के प्राचीन संप्रदायना अनुयायिओने 'पंच महाव्रत प्रतिपादनार' महावीरना धर्मनो स्वीकार करवो पड्यो हतो, ए वात खरी छे; तो पण तेओ पोतानी केटलीक जूनी रूढिओने पण वळगी रह्या हता. खास करीने वस्त्र वापरवाना विषयमां के जे रूढीनो महावीरे त्याग कर्यो हतो, तेम आपणे मानवुं जोईए. आ कल्पनानुसार आपणे श्वेताम्बर अने दिगम्बर संप्रदायरूपी बे फिरकानी उत्पत्तिनुं मूळ कारण पण बतावी शकीए छीए, के जेना संबंधमां श्वेताम्बर अने दिगम्बर बने संप्रदायमां भिन्न भिन्न अने परस्परविरोधी दंतकथाओ प्रचलित छे.[1] आ भेद देखीती रीते ज कांई आकस्मिक थयो न हतो; परंतु असलनो एक मतभेद [उदाहरण तरीके जेवो के श्वेताम्बर मतना केटलाक गच्छोनी वच्चे अत्यारे ए हयाती धरावे छे] काळे करीने विभागना रूपमां परिणत थयो अने आखरे तेणे एक महान् धर्मभेदनुं रूप लीधुं.

बौद्ध ग्रन्थोमां मळता आवता उल्लेखो, नातपुत्तनी पूर्वे पण निर्ग्रन्थोनी हयाती हती, ए प्रकारना आपणा विचारने दृढ करे छे. ज्यारे बौद्ध धर्मनो प्रादुर्भाव थयो त्यारे निर्ग्रन्थोनो संप्रदाय एक मोटा सम्प्रदायरूपे गणातो होवो जोईए. ए निर्ग्रन्थोमांना केटलाकने बौद्ध पिटकोमां, बुद्धना अने तेना शिष्योना विरोधी तरीके अने वळी केटलाकने तेना अनुयायी थएला तरीके वर्णवेला छे के जे उपरथी आपणे उपर प्रमाणे अनुमान करी शकीए छीए. एथी उलटुं ए ग्रंथोमां कोई पण स्थळे एवो उल्लेख के सूचन सरखुं पण थएलुं जोवामां नथी आवतुं के निर्ग्रन्थोना सम्प्रदाय ए एक नवीन सम्प्रदाय छे. आ उपरथी आपणे अनुमान करी शकीए छीए के निर्ग्रन्थो बुद्धना जन्म पहेलां घणा लांबा काळथी अस्तित्व धरा-

१ राजप्रश्नीमां पार्श्वने (?) राजा पएसी साथे संवाद थयो हतो अने त्यार बाद राजाने तेणे पोतानो धर्मानुयायी बनाव्यो हतो.

१ श्वेताम्बर अने दिगंबर सम्प्रदायोनी उत्पत्तिना संबंधमां जर्मन ओरिएन्टल सोसायटीना जर्नलना ३८ मा भागमां प्रकट थएलो मारो निबंध जुओ।

वता हशे. आ अनुमानने बीजी एक बाबत द्वारा पण टेको मळे छे. बुद्ध अने महावीरना समकालीन एवा मक्खलि गोसले मनुष्य जातिनी छ वर्गोमां वहेंचणी करी हती.[1] बुद्धघोषना कहेवा मुजब आ छ वर्गोमांना त्रीजावर्गमां निर्ग्रन्थोना समावेश करवामां आव्यो हतो. हवे विचारीए के निर्ग्रन्थो जो ते ज अरसामां हयातीमां आव्या होत तो तेमनी गणना एक खास–एटले के मनुष्य जातिना एक स्वतंत्र–पेटाविभाग तरीके कदापि न करवामां आवी होत. जरूर तेणे निर्ग्रन्थोने एक महत्त्वना अने साथे मारा मानवा प्रमाणे प्राचीन बौद्धो मानता हता तेम एक प्राचीन संप्रदायरूपे लख्या हशे. मारा उपरोक्त छेल्ला मतनी पुष्टिमां नीचे मुजबनी दलील पण छे. मज्झिमनिकाय, ३५ मां बुद्ध अने सच्चक नामना एक निर्ग्रन्थपुत्र वचे थएला वादनुं वर्णन आपेलुं छे. सच्चक वादमां नातपुत्तने हराव्यानी बडाई मारतो होवाथी ते निर्ग्रन्थ होय तेम लागतो नथी. अने बीजुं ए के जे सिद्धान्तोनुं ते समर्थन करवा मथे छे ते सिद्धान्तो जैनोना नथी. आ उपरथी ए विचारवा जेवुं छे के एक प्रसिद्ध वादी के जेनो पिता निर्ग्रन्थ हतो अने जे पोते बुद्धनो समकालीन हतो, तेना पुरावा उपरथी निर्ग्रन्थोनो संप्रदाय बुद्धना समयमां स्थापित थयो हतो तेम भाग्ये ज मानी शकाय.

हवे आपणे जे जे जैनेतर पाखंडी मतावलंबिओ सामे जैनोए पोतानो तात्त्विक विरोध बताव्यो छे, अने ते संबंधे जे उल्लेखो तेओए कर्या छे, ते तपासीए, अने तेनी साथे बौद्धोना उल्लेखो सरखावीए. सूत्रकृतांग २, १, १५ (पृ० ३३८) अने २१ (पृ० ३४३) मां घणे अंशे परस्पर मळता आवता एवा बे जडवादी सिद्धान्तोना उल्लेख छे. पहेला सूत्रमां जे लोको आत्माने एक अने अभिन्न माने छे तेमना एक अभिप्रायनुं वर्णन छे, अने बीजा सूत्रमां पंचभूतने नित्य अने बधुं तेनुं ज बनेलुं छे तेम माननार एक सिद्धान्तनुं वर्णन आपेलुं छे. बन्ने मतना अनुयायीओ जीवतां प्राणीनी हिंसा करवामां पाप मानता नथी. आवा ज प्रकारनो मत सामञ्ञफलसुत्तमां पूरण कस्सप अने अजित केशकंबलिनो होवानुं बताव्युं छे. पूरण कस्सप पुण्य अगर पाप जेवी कोई वस्तुने मानतो नथी अने अजित केसकम्बलानो एवो सिद्धांत छे के अनुभवातीत मंतव्य के जे लोकोमां प्रचलित छे तेने मळतुं कोई तत्त्व ज नथी. आ उपरान्त ते एम माने छे के 'माणस (पुरिसो) चार भूतोनो बनेलो छे; ज्यारे ते मरी जाय छे त्यारे पृथ्वी पृथ्वीमां, पाणी पाणीमां, अग्नि अग्निमां, वायु वायुमां, अने ज्ञानेंद्रियो हवामां[1] (अथवा आकाशमां) विलीन थई जाय छे. ठाठडीने उपाडनार, चार पुरुषो मुडदाने स्मशानभूमिमां लई जाय छे त्यारे कल्पांत करे छे; कपोत रंगना हाडकां बाकी रहे छे अने बीजा सघळां (पदार्थो) बळीने भस्मीभूत थई जाय छे. आ छेल्लं सूत्र थोडा फेरफार साथे सूत्रकृतांग ना पृ० ३४० उपर आवे छे:—' अन्य जनो मुडदाने बाळवा माटे लई जाय छे. ज्यारे अग्नि तेने बाळी नाखे छे त्यारे मात्र कपोतरंगना हाडकां बाकी रहे छे अने चार उपाडनारा ठाठडीने लई गाम तरफ पाछा वळे छे.'[2]

जडवादना बीजा सिद्धांत (पृ. ३४३, २२, अने पृ. २३७) ना संबंधमां एक बीजी शाखानो पण उल्लेख

१ दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त, २०.

२ सुमंगलविलासिनी पृ. १६२मां बुद्धघोष स्पष्ट जणावे छे के गोसाले पोताना शिष्यो जे श्वेत वर्गना हता तेना करतां निर्ग्रन्थोने हलकी प्रतिना गण्या छे. गोसाले तो भिक्खुओने तेथीए हलका प्रकारना गण्या छे के जे बाबत उपर बुद्धघोषे लक्ष्य आप्युं नथी, ते उपरथी स्पष्ट जणाय छे के आ भिक्खुओने बौद्ध साधुओ करतां त भिन्न मानतो हतो.

१ आकाशने बौद्ध ग्रंथोमां पांचमा तत्त्व तरीके मान्युं नथी, परन्तु जैन ग्रंथोमां ते मान्युं छे. जुओ आगळ पृ० ३४१ अने पृ० ३३० गाथा १५. आ मात्र एक शाब्दिक भेद छे नहीं के तात्त्विक.

२. हुं आ स्थळे जैन मूळ सूत्रोने सामसामे मूकुं छुं जेथी करीने तेमनी बन्नेनुं साम्य वधारे स्पष्टरीते समजी शकाय:—

आसन्दि पञ्चमा पुरिसा मतमा- | अ दहणाए परेहि निज्जइ; दाय गच्छन्ति याव अळाहना | अगणिज्झामिते सरीरे कपोतवण्णानि अट्ठीनि भवन्ति, कापोतकानि | तवण्णाई अट्ठीनि आसन्दि अट्ठीनि भवन्ति भस्सन्ता हुतियो | पञ्चमा पुरिसा गामं पच्चा गच्छन्ति

थएलो छे. ते मतमां पांच भूत उपरान्त छट्ठं तत्त्व नित्यात्मा मनाय छे. आ मत ते अत्यारे वैशेषिक नामना दर्शनथी जे प्रसिद्धिमां आवेलुं छे तेनुं प्राचीन अथवा लोकप्रसिद्ध रूप छे. बौद्धग्रंथमां आ दर्शनना संस्थापक तरीके पकुध कचायन निर्दिष्ट थएलो छे. तेनो मत एवो हतो के आखुं विश्व सात वस्तुनुं (पदार्थोनुं) बनेलुं छे. अने ते सर्वे पदार्थो नित्य निर्विकार अने परस्पर स्वतंत्र छे. ते पदार्थो चार भूत, सुख, दुःख अने आत्मा ए प्रमाणे छे. आ सर्वेनी एक बीजा उपर कांई असर थती नहीं होवाथी कोई पण पदार्थनो वास्तविक नाश थतो नथी. मारे कहेवुं जोईए के सुख अने दुःखने नित्य मानवा छतां पण ते बन्नेनी आत्मा उपर कांई असर थती न मानवी ते मारा अभिप्राय प्रमाणे तो अज्ञानता भरेलुं छे. परन्तु बौद्धोए कदाच असल सिद्धान्तोनुं असत्य आलेखन कर्युं होय तो ते पण संभवित छे. पकुध कचायनना विचारो अवश्य करीने अक्रियावादमां अंतर्गत थाय छे. अने आ बाबतमां ते वैशेषिक दर्शन के जे क्रियावादी छे तेनाथी भिन्न पडे छे. आ बन्ने वादो बौद्ध तेम ज जैन साहित्यमां आवता होवाथी तेमनी विशेष व्याख्या करवी अहीं अस्थाने नहीं गणाय. जे सिद्धान्त आत्माने क्रियाशील अने क्रियालिप्त (क्रियाथी जेना उपर असर थाय तेवो) माने छे ते क्रियावादी कहेवाय छे. आ वर्गमां जैनधर्म, ब्राह्मणधर्मो पैकी वैशेषिक अने न्यायदर्शनो (आ बे दर्शनोना स्पष्ट उल्लेखो बौद्ध अने जैन धर्मशास्त्रोमां थएला नथी) तथा बीजां पण एवां केटलांक दर्शनो—के जेनां नाम अत्यारे उपलब्ध थई शकतां नथी परंतु जेनी हयातीनी माहीती आपणे आपणा आ ग्रंथोमांथी मेळवी शकीए छीए, ते सर्वेनो—समावेश थाय छे. अक्रियावाद ते सिद्धान्त कहेवाय छे जेमां आत्मानुं नास्तित्व अगर निष्क्रियत्व अथवा कर्मालिप्तत्व प्रतिपादन करवामां आवे छे. आ वर्गमां सघळा जडवादी मतो; ब्राह्मणधर्मो पैकी वेदान्त, सांख्य अने योगदर्शनो; तथा बौद्ध धर्मनो अंतर्भाव थाय छे. बौद्ध धर्मना क्षणिकवाद तथा शून्यवादनो उल्लेख सूत्रकृतांग १, १४, ४ थी अने ७ मी गाथामां थएलो छे. साथे ए पण जणाववुं जोईए के वेदान्तिओ अथवा तेमना मंतव्योनो पण सिद्धान्तोमां घणे स्थले उल्लेख आवे छे. सूत्रकृतांगना बीजा पुस्तकना पहेला अध्ययनमां, पृ. ३४४ उपर, त्रीजा पाखंड मत तरीके वेदान्तनुं वर्णन थएलुं छे. छठ्ठा अध्ययनमां, पृ. ४१७ उपर, तेनुं फरीथी वर्णन आवेलुं छे. परंतु बौद्धोए गणावेला छ तीर्थिकोमां आ मतनो कोई पण आचार्य नहीं होवाथी आपणे ते उपर आ स्थळे ध्यान देता नथी. [1]

सूत्रकृतांगना बीजा भागना प्रथम अध्ययनमां, चोथा पाखंड मत तरीके दैववाद (Fatalism) नुं वर्णन आवेलुं छे. सामञ्ञफलसुत्तमां आ मतनुं मक्खली गोसाल नीचे प्रमाणे प्रतिपादन करे छेः—' महाराज, जीवात्माओनी अपवित्रतामां कोई हेतु अगर पहेलां हयाती धरावतुं एवुं कांई कारण नथी. ते अनन्यकृत छे. तेम ज ते पहेलां हयाती धरावतो कोई बीजी वस्तुथी उत्पन्न थयेली नथी. (तेवी ज रीते) जीवात्माओनी पवित्रतामां पण कांई कारण अगर पूर्वे हयाती धरावतो कांई हेतु नथी. ते अनन्यकृत छे. तेम ज तेनुं कोई उपादान कारण नथी. आनी उत्पत्ति व्यक्तिओना कोई आचारनुं परिणाम नथी. तेम ज पारकाना कार्यनी पण तेना उपर असर नथी. तेम मनुष्यप्रयत्ननुं पण ते फल नथी. जेने उत्पन्न करवामां, पुरुषनी शक्ति, प्रयत्न, बल, धैर्य, अगर सामर्थ्य एमांनुं कोई कारणभूत थतुं नथी. सर्वे सत्त्व, सर्वे प्राणिओ, सर्वे भूतो, अने सर्वे जीवो,* पछी ते पशु, अगर वनस्पति

---

१ एक वात याद राखवा जेवी छे के वेदान्तिओ पण बुद्धना प्रतिस्पर्धी तरीके काम बजावता अने तेओ वैदिक धर्मना तत्त्वज्ञोमां आगळ पडता होवाथी आपणे एम अनुमान करवुं जोईए के बौद्ध धर्मनी असरवाळा लोकोथी विद्वान ब्राह्मणो दूर ज रहेता.

* मळमां ' सब्बे सत्ता, सब्बे पाणा , सब्बे भूता, सब्बे जीवा, एवो पाठ छे. जैन सूत्रोमां पण आ ज क्रमथी अनेक ठेकाणेए पाठ आवे छे अने ए पाठनुं संक्षेपमां all classes of living beings

सचेतन प्राणिओना बधा वर्गो ' एवुं भाषान्तर करेलुं छे. बुद्ध घोषनी टीकानुं भाषान्तर, होर्नेले, उवासगदसाओना परिशिष्ट नं. २ जाना पान १६ उपर नीचे प्रमाणे आप्युं छे ' सब्बे

गमे ते हो पण तेमनामांना, कोईमां आंतर बल, शक्ति तथा सामर्थ्य नथी; परंतु आ दरेक जीव पोतानी स्वभावनियतिने वश थई, छ प्रकारमांनी कोई पण जातिमां रही सुख-दुःख भोगवे छे. इत्यादि.' आ सिद्धान्तोनुं सूत्रकृतांगमां (l. c.) आपेलं वर्णन जो के थोडा शब्दोमां छे, छतां पण सरखा भावार्थवाळुं छे; अलबत, ते स्थळे आ सिद्धान्तो मक्खलिपुत्र गोसालना छे एम स्पष्ट कहेवामां आव्युं नथी. जैनो प्रधानतया चार दर्शनोनो उल्लेख करे छेः—क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद अने वैनयिकवाद. आमांथी अज्ञानिकोना मतोनुं मूळमां स्पष्ट कथन करेलुं देखातुं नथी. आ सवळां दर्शनोना विषयमां टीकाकार जे समजुती आपेली छे, अने जे में पृ. ८३ नी २ नंबरनी टीपमां नोंधेली छे, ते घणी ज अस्पष्ट अने गेरसमजुती उत्पन्न करे तेवी छे. परन्तु ए अज्ञेयवादनो यथार्थ ख्याल आपणने बौद्ध ग्रंथोथी आवी शके तेम छे. सामञ्ञफलसुत्तमां जणाव्या प्रमाणे ते मत सञ्जय बेलट्ठिपुत्तनो हतो; अने त्यां नीचे प्रमाणे तेनुं वर्णन करेलुं छेः—'महाराज, जो मने तमे पुछशो के जीवनी कोई भावी अवस्था छे ? तो हुं जबाब आपीश के जो हुं भावी अवस्था अनुभवी शकुं, तो पछी हुं ते अवस्थानुं स्वरूप समजावी शकुं. जो मने पुछशो के शुं ते अवस्था आ प्रकारनी छे ? तो (हुं कहीश के) ते मारो विषय नथी. शुं ते ते प्रकारनी छे ? ते मारो विषय नथी. शुं ते आ बन्नेथी भिन्न छे ? ते पण मारो विषय नथी. नथी एम नथी ? ते पण मारो विषय नथी.' इत्यादि. आ ज रीते मृत्यु पछी तथागतनी हयाती रहे छे के नहीं ? रहे छे अने नथी रहेती ? रहे छे एमए नथी ? अने नथी रहेती एमए नथी ? आवा प्रश्नो जो कोई पूछे तो तेनो पण ते एज रीते जवाब आपे छे. आ उपरथी स्पष्ट छे के अज्ञेयवादीओ कोई पण वस्तुना अस्तित्व अने नास्तित्वना संबंधमां सर्वे प्रकारनी निरूपण पद्धतिओ तपासता हता अने जो ते वस्तु अनुभवातीत मालुम पडती तो तेओ सर्वे कथननी रीतिओनो इनकार करता हता.

बुद्ध अने महावीरना समयमां प्रचलित एवा अन्य तात्विक विचारोना विषयमां जैन तथा बौद्ध ग्रंथोमां मळी आवती नोंधो गमे तटली जूज होय, तो पण ते नामांकित कालना इतिहासकारने अति महत्त्वनी छे. कारण के आ नोंधो द्वारा ते कालना धार्मिक सुधारकने केवा प्रकारना पाया उपर तथा कया साधनोनी मददथी पोतानो मत उभो करवो पड्यो हतो ते जणाई आवे छे. एक बाजुए आ बधा पाखंडी मतोमां मळी आवती परस्परनी केटलीक साम्यता अने बीजी बाजुए जैन अगर बौद्धोनी जणाती विशिष्टता उपरथी स्पष्ट रीते अनुमान करी शकाय छे के बुद्ध अने महावीरे केटलाक विचारो तो आ पाखंडीओना मतोमांथी लीधा हता अने केटलाक तेओनी साथे चालता तेमना सतत वादविवादनी असरथी उपजावी कढाया हता. मारुं एम धारवुं छे के सञ्जयना अज्ञेयवादनी विरुद्ध महावीरे पोतानो स्याद्वादनो मत स्थाप्यो हतो. अज्ञानवाद जणावे छे के जे वस्तु आपणा अनुभवनी पर छे तेना संबंधमां अस्तित्व अगर नास्तित्व अथवा युगपत् अस्तित्व अने नास्तित्वनुं विधान, अगर निषेध करी शकाय नहीं. ते ज रीते पण तेथी उलटी दिशाए दोडता स्याद्वाद एम प्रतिपादन करे छे के एक दृष्टिए (अपेक्षाए) कोई पुरुष वस्तुना अस्तित्वनुं विधान करी शके (स्याद् अस्ति) तेम बीजी दृष्टिए तेनो निषेध करी शके (स्याद् नास्ति); अने तेवी ज रीते भिन्न भिन्न कालमां ते वस्तुना अस्तित्व तथा नास्तित्वनुं विधान करी शके (स्याद् अस्ति नास्ति) परन्तु जो एक ज कालमां अने एक ज दृष्टिए कोई मनुष्य वस्तुना अस्तित्वनुं तथा नास्तित्वनुं विधान करवा इच्छतो होय तेणे एम कहेवुं जोईए के ते वस्तु विषये कांई कही शकाय नहीं (स्याद् अवक्तव्यः). ते प्रमाणे केटलाक संयोगोमां अस्तित्वनुं विधान करवुं अशक्य छे (स्याद्

सत्ता—एटले ऊंट, बळद, गधेडा अने तेवा बीजा बधा पशुओ. सव्वे पाणा—एटले एकेन्द्रिय द्विन्द्रिय आदि चेतनावाळा प्राणिओ. सव्वे भूता—एटले अण्डज अने गर्भज जीवो; अने सव्वे जीवा—एटले डांगर, जव, घऊं इत्यादि (वानस्पतिक) जीवो.

नास्ति अवक्तव्यः); केटलाक प्रसंगे नास्तित्व (स्याद् नास्ति अवक्तव्यः); अने केटलीक वखते बन्नेनुं विधान करवुं अशक्य होय छे (स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्यः)[1]

आ वाद ते जैनोना प्रसिद्ध सप्तभंगी नय छे. शुं कोई पण तत्त्ववेत्ता पोताना भयंकर प्रतिस्पर्धीने चूप करवाना प्रयोजन सिवाय, अने प्रमाणनी जरूर नथी, एवी उघाडी बाबतोनी व्याख्या करवानी इच्छा करे खरो ? एम लागे छे के अज्ञेयवादिओना सूक्ष्म विवादोए प्राय तेमना घणा खरा समकालीन मनुष्योने गुंचवणमां नाख्या हशे अगर भमाव्या हशे; अने तेथी करीने ते सर्वेने अज्ञानवादनी भूल-भुलामणीमांथी बहार निकळवा माटे स्याद्वादनो सिद्धान्त एक क्षेममार्ग तरीके देखायो हशे. आ शास्त्रनी मददथी विरोधिओ उपर आक्रमण करनार अज्ञानवादिओ पोताना ज साम थई जता हता. आपणे नथी कही शकता के अज्ञेय-वादना केटला अनुयायिओ, आ सप्तभंगी नयना सत्यनी प्रतीति पामी महावीरना धर्ममां आवी गया हशे !

अज्ञेयवादनी बुद्धना उपर पण केटली बधी असर थई हती ते आपणे पाली ग्रंथोमां निरुपित बुद्धना निर्वाण विषयक सिद्धान्तमां जोई शकीए छीए. आ प्रकारनां नि-श्चयात्मक वाक्यो तरफ प्रथम ध्यान प्रो. ओल्डनबर्गे खेंच्युं हतुं. आ वाक्यो निःशंक पणे जणावे छे के मृत्यु बाद तथागत (अर्थात् मुक्तात्मा अथवा जेने वास्तवमां व्यक्तित्वनो हेतु कही शकाय ते) हयाती धरावे छे के नहीं; एवा प्रश्ननो उत्तर आपवा बुद्ध चोकखी ना पाडता हता. जो तेमना समयना लोकोना सांभळवामां आवा विचारो बिलकुल न आव्या होत अने आवी केटलीक बाबतो के जे मनुष्यना मनथी अतीत होई ते वणी महत्त्वनी गणाय छे तेना संबंधमां, तेवा प्रकारना उत्तरोथी ते लोकोने संतोष न वळतो होत तो तेओ, तेवा कोई धार्मिक सुधारक के जे ब्राह्मणधर्ममां तर्कसिद्ध निरुपित सघळी बाबतोना संबंधमां पोतानो स्पष्ट अभिप्राय न आपे, तेना उपदेशोने आदरपूर्वक सांभळे ए असंभवित छे. परन्तु वस्तुस्थिति जोतां एम लागे छे के अज्ञेयवादे बौद्धोना निर्वाणना सिद्धान्तने झीलवा माटे भूमि तैयार करी राखी हती[2]. एक बाबत खास नोंध लेवा जेवी छेः—संयुत्त-निकाय जेनुं भाषांतर प्रो. ओल्डनबर्गे करेलुं छे, तेमां एक ठेकाणे पसेनदि राजा अने खेमा नामनी आर्या वच्चे थएलो संवाद आवे छे. तेमां राजाए मृत्यु बाद तथागत हयाती धरावे छे के नहीं ए संबंधमां प्रश्नो पूछ्या छे. जे सूत्रोमां आ प्रश्नो पूछेला छे, तेमां सामञ्ञफलसुत्त —के जेनुं भाषांतर उपर आपेलुं छे,—मां जेवा शब्दो संजय वापरे छे तेवा ज शब्दो वापरेला छे.

बुद्धना समयना अज्ञेयवादनी असर बुद्ध उपर थई हती तेवा प्रकारना मारा अनुमानना पुष्टिमां हुं महावग्ग १, २३ अने २४ मां आपेली एक परंपरागत कथा अत्रे रजु करुं छुं. ते कथामां एम जणावेलुं छे के बुद्धना सौथी वधारे प्रख्यात एवा सारिपुत्त अने मोग्गलान नामना बे शिष्यो, तेमना अनुयायी थया पहेलां संजयना शिष्यो हता अने पछीथी तेओए पोताना जूना गुरुना मतना २५० शिष्योने पण बौद्धमार्गी बनाव्या हता. आ हकीकत बुद्धे बोधि प्राप्त कर्युं त्यार पछी तरत ज बनी हती. आथी ए संभवित छे के पोताना नवा मतना प्रारंभ काळमां बुद्धे शिष्यो मेळववा माटे ते वखते प्रचलित एवा बीजा मतो तरफ सर्वप्रकारनो योग्य वर्तणुक राखवानी कोशीश करी हशे.

महावीरना सिद्धान्तोना विकास उपर, मारी मान्य-

---

1 भांडारकर—रिपोर्ट सन १८८३–४ पृ. ९५

२ निर्वाणना स्वरूप-कथन संबन्धमां बुद्धे जे मौन धारण कर्युं हतुं ते तेमना वखतना मत उडावया भरेलुं गणायुं होय, परंतु ते संप्रदायना विकासने माटे ता तेमां घणां गेरलाभो समाएला हता. कारण के बौद्ध मतना अनुयायीओने, ब्राह्मण दार्शनिको जेवा दूषणोथी भरेला काढनारा तर्कशास्त्रीओनी विरुद्ध पोताना मतने टकावी राखवाने होवाथी, आ महान् प्रश्न के जे विषयमां तेमना धर्मसंस्थापके कांई पण निश्चयात्मक कथन कर्युं नहोतुं, ते उपर वधारे स्पष्ट विचारो जणाववानी फरज पडी हती. आ रीते पोताना गुरुए अधुरा राखेला महेनत पूर्ण करवा माटे सतत्की मेगी करवाना उद्देशथी बुद्धनिर्वाण पछी तरत ज बौद्धधर्म पुष्कळ संप्रदायना रूपमां विभक्त थई गयो हतो. आश्चर्य पामवानी जरूर नथी के सिलोन जे ब्राह्मणविद्याविषयक केन्द्रथी बहु दूर आवेलुं छे त्यां बौद्धोना आ निर्वाणनो सिद्धान्त असल रूपमां अबाधित रही शक्यो छे.

तानुसार, मक्खलिपुत्त गोसालनी मोटी असर थयेली छे. भगवती १५, १, मां आपेलो तेना जीवननो इतिहास, हॅर्नेले पोताना उवासग दसाओना भाषान्तरने अंते, एक परिशिष्टमां संक्षेपमां भाषान्तरित करेलो छे. तेमां ए प्रमाणे नोंधेलुं छे के, गोसाल महावीरनी साथे तेमना शिष्य तरीके श्रमणधर्म पाळतो थको छ वर्ष सुधी रह्यो हतो. परन्तु पछी ते तेमनाथी जुदो थई गयो अने पोतानो नवो धर्म स्थापी जिन तरीके आजीविकोनो नायक कहेवडाववा लाग्यो. परन्तु बौद्ध ग्रंथोमां तेना संबंधमां एवी नोंध मळी आवे छे के ते नन्द वच्छ अने किस संकिच्चनो उत्तराधिकारी हतो अने तेनो संप्रदाय साधुवर्गमां चिरस्थापित (लांबा वखत पूर्वे स्थापित थएलो एवो) मनातो होई अचेलक परिव्राजकना नामे प्रसिद्ध हतो. जैनोनी ए हकिकत के महावीर अने गोसाल ए बन्नेए केटलाक वखत सुधी साथे तपश्चर्या करी हती, तेमां शंका करवानुं कांई कारण नथी. परन्तु तेओ बन्ने वच्चे जे संबंध बताववामां आवे छे ते वास्तवमां तेनाथी जुदा प्रकारनो होय तेम लागे छे. मारुं एवुं मानवुं छे;—अने मारा आ अभिप्रायना पक्षमां हुं हमणा ज केटलीक दलीलो आपीश—के महावीर अने गोसाल ए बन्ने पोताना संप्रदायोने एक करवाना अने एकने बीजामां भेळवी देवाना इरादाथी परस्पर सहचारी बन्या हता; अने लांबा वखत सुधी आ बन्ने आचार्यो साथे रह्या हता. ए बाबत उपरथी चोक्कस अनुमान थाय छे के ते बन्नेना मतोनी वच्चे केटलुंक साम्य होवुं ज जोईए. आगळ पृ० २६ उपरनी टीपमां में जणाव्युं छे के 'सव्वे सत्ता, सव्वे पाणा, सव्वे भूता, सव्वे जीवा' ना स्वरूपनुं वर्णन गोसाल तेम ज जैनोनी वच्चे समान छे. अने टीकामां जणावेल एकेंद्रिय द्विन्द्रियादि वर्गरूप प्राणिओना विभागो के जे जैन ग्रंथोमां घणा ज साधारण छे, तेवा विभागोनो गोसाले पण उपयोग कर्यो छे. चमत्कारी अने लगभग असत्याभासरूप छ लेश्यानो जैनसिद्धान्त,—जेने पहेली ज वखत दृष्टिगोचर कर्यानुं मान प्रो० ल्यूमनने घटे छे—गोसाले करेला सघळी मनुष्यजातिना छ वर्गोना विभाग साथे संपूर्ण रीते मळतो आवे छे. परंतु आ बाबतना संबंधमां मारुं एवुं मानवुं छे के जैनोए मूळ आ विचार आजीविको पासेथी लीधो हतो, अने पाछळथी पोताना बीजा बधा सिद्धान्तोनी साथे ते संगत बने तेवी रीते तेमां फेरफार कर्यो हतो. आचार विषयक सघळा नियमोना संबंधमां, जेटला प्रमाणो उपलब्ध थाय छे ते उपरथी, लगभग सिद्ध थाय छे के महावीरे अधिक कठोर नियमो गोसालना लीधा हता. कारण के उत्तराध्ययन २३, १३ (पृ० १२) मां जणाव्या प्रमाणे पार्श्वना धर्ममां निर्ग्रंथोने नीचे अने उपरना भागमां एकेक वस्त्र पहेरवानी छूट हती. परंतु वर्धमानना धर्ममां कपडानो स्पष्ट निषेध करवामां आव्यो हतो. नग्न साधु माटे जैन सूत्रोमां अनेक स्थळे मळी आवतो शब्द 'अचेलक'[1] छे जेनो शब्दार्थ 'वस्त्र रहित' एवो थाय छे. बौद्धो अचेलको अने निर्ग्रंथोने भिन्न भिन्न माने छे. उदाहरण तरीके धम्मपद उपरनी बुद्धघोषकृत टीकामां केटलाक भिक्षुओना संबंधमां जणावेलुं छे के, तेओ अचेलको करतां निर्ग्रंथोने वधारे पसंद करता हता. कारण के अचेलको तद्दन नग्न रहे छे (सब्बसो अपटिच्छन्ना) परन्तु निर्ग्रन्थो कोई जातनुं टूंकुं आवरण राखे छे; जेने ते भिक्षुओ खोटी रीते 'लज्जानी खातर' मानता हता. अचेलक शब्दद्वारा बौद्धो मक्खलि गोसाल अने तेनी पूर्वे थई गएला किस संकिच्च अने नन्द वच्छना अनुयायिओने सूचवे छे; अने तेओना धार्मिक आचारोनुं वर्णन मज्झिमनिकायमां संगृहीत रहेलुं छे. तेमां ते स्थळे निगण्ठपुत्त सच्चक—जेनी ओळखाण आपणने उपर थई गएली छे

---

१ बीजो एक शब्द 'जिनकल्पक' छे जेनो अर्थ 'जिन जेवो आचार पाळनार' थई शके. श्वेताम्बरो कहे छे के जिनकल्पने बदले प्राचीन काळमां ज स्थविरकल्प स्थिर करवामां आव्यो हतो जेनी अंदर वस्त्र राखवानी छूट आपवामां आवी हती.

१ जुओ कुमारावनी आवृत्ति, पृ. ३९८

२ मूळमां आवेला 'ससक्कं पुरिमसमणिता व परिकच्छादन्ति' ए शब्दो बराबर स्पष्ट थता नथी. परंतु तेमां ओवामां आवता विरोध निश्चयरीते ए ज भावार्थ सूचवे छे. पाली शब्द 'सग्गक' ते मारा धारवा प्रमाणे संस्कृत 'शिश्नक' नुं रूप छे आ जो खरुं होय तो उपरना शब्दोनुं भाषान्तर नीचे प्रमाणे थई शके 'तेओ (शरीरना) आगला भाग उपर (कपडुं) पहेरी गुह्यांगने ढांके छे

ते—कायभावना एटले शारीरिक पवित्रतानो अचेलकोना आचारने उद्देशीने अर्थ समजावे छे. सघकना वर्णनमांनी केटलीक विगतो टीकाना अभावे नहीं समजी शकाय तेवी दुर्बोध छे. परन्तु केटलीक तो तद्दन स्पष्ट छे; अने ते, केटलाक प्रसिद्ध जैन आचारो साथे संपूर्ण सादृश्य धरावे छे. दाखला तरीके अचेलको पण जैन साधुओनी माफक भोजननुं आमन्त्रण स्वीकारता नथी. तेओने माटे अभिहत अथवा उद्दिस्सकत अन्न लेवानो निषेध छे. आ बन्ने शब्दो जैनोना अभ्याहृत अने औद्देशिक शब्दो (जुओ पृ० १३२ टिप्पण) समान होय तेम दरेक रीते संभवित छे. वळी तेओने मांस अने मदिरा खावानी छूट नथी. ' केटलाक मात्र एक ज घरे भिक्षा लेवा जाय छे अने मात्र एक ज ग्रास खोराक ले छे. केटलाक वधारेमां वधारे सात घेर भिक्षा माटे जाय छे; केटलाक एक ज वार आपेलुं अन्न लईने रहे छे; केटलाक वधारेमां वधारे सात वार सुधी आपेलुं लईने रहे छे ' आ प्रकारना ज जैन साधुओना केटलाक आचारो कल्पसूत्रनी सामाचारीमां वर्णवेला छे (२६, भाग १, पृ० ३००; अने आ ग्रंथना पृ० १७६; गाथाओ १५ अने १९). नीचे वर्णवेला अचेलकोना आचार अने जैनोना आचार बराबर एक ज छे एम स्पष्ट जणाय छे. 'केटलाक हमेश एक ज वखत भोजन करे छे अने केटलाक बे दिवसमां एक ज वखत भोजन करे छे,[1] इत्यादि; अने ए रीते वधता क्रमे केटलाक ठेठ एक पखवाडीए एक वार भोजन ले छे. ' अचेलकोना आवा बधा नियमो अने जैनोना नियमो या तो लगभग एक ज छे अगर तो अतिशय मळता छे. अने आ प्रकारनुं साम्य जोवामां आवतुं होवा छतां, तथा सच्चक एक निगण्ठपुत्त गणातो होवाना लीधे तेमना धार्मिक आचारोथी ते परिचित होवा छतां, कायभावनाना आदर्श तरीके निर्ग्रन्थोनो उल्लेख करतो नथी ते खरेखर आश्चर्यजनक लागे छे परन्तु आ आश्चर्यजनक बाबतने नीचेनी कल्पना द्वारा आपणे सहेलाईथी समजावी शकीए छीए, अने ते एवी रीते के बौद्ध ग्रंथोमां बहुधा जे असलना प्राचीन निर्ग्रन्थोनी बाबतना उल्लेखो मळी आवे छे, ते (निर्ग्रन्थो) जैन समाजनो जे एक वर्ग महावीरना उग्र व्रतोनो स्वीकार कर्यो हतो तेओ नहीं, परन्तु महावीरना मतना विरोधी न बनता जेओ ते संयुक्त संप्रदायमां रहीने पण पोताना प्राचीन संप्रदायना केटलाक खास आचारोने वळगी रह्या हता ते प्रकारना पार्श्वना अनुयायिओ हता. आ प्रकारना केटलाक कठोर नियमो के जे प्राचीन धर्मना अंगभूत मनाता न हता अने जेमने महावीरे ज दाखल करेला हता, ते संभवित रीते तेमणे गोसालना अचेलक अथवा आजीविक नामे प्रसिद्ध अनुयायिओना लीधा हता. अने आनुं कारण ते तेओए (महावीरे) जे छ वर्ष सुधी गोसालनी साथे अत्यंत निकट सहचर तरीके रही तपश्चर्या करी हती, ते छे. आ प्रमाणे आजीविकोना केटलाक धार्मिक विचारो अने आचारोनो स्वीकार करवामां महावीरनो आशय गोसाल अने तेना अनुयायिओने पोताना पक्षमां लेवानो होय एम लागे छे; अने केटलाक समय सुधी तो आ उद्देश सफळ पण थयो होय. परन्तु आखरे बन्ने नेताओनी वच्चे मतभेद थयो हतो, के जेनुं कारण घणुं करीने ए प्रश्न हतो के आ संयुक्त संप्रदायनो नेता कोण बने. गोसालनी साथे थएला आ टुंक समयना सम्बन्धथी स्पष्टरीते महावीरनी पदवी घणी सुस्थिर बनी हती; परन्तु गोसालक, जैन हकिकतो अनुसार, पोतानी प्रतिष्ठा गुमावी हती अने आखरे तेना शोकपूर्ण अवसानथी तेना संप्रदायना भाविने सखत फटको लाग्यो.

आपणे जो के ते बधुं साबीत न करी शकीए, परन्तु महावीरे अन्य संप्रदायोमांथी घणुं लीधुं छे ए वात निःसंशय छे. जैन धर्म यथार्थमां एक मौलिक स्वरूप दर्शन नहीं होवाथी तेमां नवा मतो तथा सिद्धान्तोना उमेरा घणा सहेलाईथी थई शके तेम हतुं. जे जे संप्रदाय अगर

1 आ प्रकारना उपवासोने जैनो चउत्थभत्त छट्ठभत्त इत्यादि नामो आपे छे (जुओ उ. त. ल्युमनसंपादित औपपातिक सूत्र ३० I A); अने आ उपवास करनारा साधुओ अनुक्रमे चउत्थभत्तिय, छट्ठभत्तिय, इत्यादि नामोथी ओळखाय छे. (जुओ दा. त. कल्पसूत्र सामाचारी ६१.)

हो तेना भागो महावीरनी सफल कार्यदक्षताने¹ लईने जैनधर्ममां आवता गया ते सघळा संप्रदायोना केटलाक प्रीतिपात्र विचारो तेम ज तेमना प्रिय गुरुओ, जेओने तेओ चक्रवर्ती अथवा तीर्थंकरना नामे ओळखता हता, ते सघळां दाखल थई गयां होय तो तेमां नवाई नथी. अलबत् आ एक मात्र मारूं अनुमान छे. परन्तु आ अनुमाननी मददथी आपणे जैनोनी आचार्यो साधुओ विषयक विलक्षण परंपरानुं उत्पत्ति कारण समजी शकीए छीए. प्रत्यक्ष प्रमाणनो ज्यां सर्वथा अभाव होय त्यां आपणने अनुमानो उपर ज आधार राखवो पडे छे, अने ए अनुमानोमां पण जे अनुमान विशेष सत्य—साांभळतां खरूं लागे एवुं—होय ते स्वीकारवा योग्य बने छे. फक्त आ बाबत ने छोडीने बाकीनी जे जे बाबतो आ प्रस्तावनाना प्रारंभनां पानाओमां में मारी कल्पनानुरूपे रजु करेली छे ते सघळी आना करतां वधारे प्रमाणभूत छे, ए हुं अत्रे खास जणावी दउं छुं. ए बधा विचारोमां मारुं कोई पण कथन नथी जैन परंपरागत कथन के—जे लेखी पुरावाओना अभावमां आपणने एक मात्र ते ज मार्गदर्शक बने छे—तेने आघात पहोंचतो नथी. अने बीजुं, मारी एके कल्पना पण एवी नथी के जे ते समयनी परिस्थिति अनुसार असंभवित लागे. जैन धर्मना प्राचीन इतिहासनी रचनामां मुख्य स्थान रोकनार जे, ए एक हकीकत छे के, महावीरना समयमां पार्श्वनाथना शिष्यो हयाती धरावता हता अने जेनो निर्देश बतावती परंपरा पण विद्यमान होई तेनी सत्यता पण अत्यारना सघळा विद्वानो एक अवाजे स्वीकारे छे, तेनो ज में अहिं उपयोग कर्यो छे.

हवे आ रीते जो जैनधर्म ए एक प्राचीन कालथी चालतो आवतो धर्म होय अने महावीर तेम ज बुद्ध करतां वधारे जुनो होय तो तेना तत्त्वज्ञानना स्वरूपमां पण कांईक प्राचीनतानां चिह्नो देखावां जोईए. आवुं एक चिह्न ए धर्ममां खास मळी आवे छे, अने ते तेनो, सघळी वस्तु चैतन्य युक्त छे, एम बतावतो सचेतनवाद छे. ते वाद जणावे छे के मात्र वनस्पतिमां ज नहीं परन्तु पृथ्वी, पाणी, अग्नि, अने वायुना कणोमां पण आत्मतत्त्व रहेलुं छे. मानवजातिशास्त्र (Ethnology) आपणने एम शीखवे छे के जंगली लोकोनी तत्त्वज्ञान विषयक सघळी मान्यताओ सचेतनवादमूलक होय छे. आ सचेतनवाद जेम जेम जनसंस्कृति वधती जाय छे, तेम तेम शुद्ध मनुष्यस्वरूपमां ज मात्र परिणत थतो जाय छे. आथी करीने जो जैन धर्मनुं नीतिशास्त्र मोटे भागे आ प्राचीन सचेतनवाद—मूलक होय तो जैनधर्मनी पहेल वहेली उत्पत्तिना समये ते सचेतनवादनो सिद्धांत हिन्दुस्ताननी प्रजाना मोटा भागोमां विस्तृतरूपे विद्यमान होवो जोईए. आ परिस्थिति ते अति प्राचीन समयनी होई शके के जे वखते हिन्दुस्तानना मनुष्योना मन उपर उंचा प्रकारनी धार्मिक मान्यताओए अने पूजानी पद्धतिओए असर करी न होती.

जैन धर्मनी प्राचीनतानुं बीजुं चिन्ह ते तेनी वेदान्त अने सांख्य जेवां बे सौथी प्राचीन ब्राह्मण दर्शनोनी साथे रहेली सिद्धांतविषयक समानता छे. ते प्राचीन कालमां तत्त्वज्ञानना (Metaphysics) विकास क्रममां गुण नामना पदार्थनो जेवो जोईए तेवो खुल्लो अने स्पष्ट ख्याल थई चूक्यो हजु न हतो; परन्तु ते पदार्थ द्रव्यपदार्थमांथी उत्क्रांत थई रह्यो हतो एम लागे छे. जे जे वस्तुने आपणे गुण तरीके ओळखीए छीए ते, ते वखते मूलथी वारंवार द्रव्य तरीके मनाई जती अने केटलीक वखते द्रव्य साथे तेनुं मिश्रण पण थई जतुं. वेदान्तमां परब्रह्मने शुद्ध सत्ता, ज्ञान, अने आनन्दरूप स्वाभाविक गुणथी सम्पन्न नहीं, परंतु सत्, चित्, अने आनंदस्वरूप ज मानवामां आव्युं छे. सांख्यमां पुरुष अथवा आत्माना स्वभावनुं वर्णन करतां वखते तेने ज्ञान अथवा तेजोरूप बतावबामां आव्यो छे. अने जो के सत्त्व, रजस्, अने तमस्,

१ अलबत्त महावीर तेमना पोताना मार्गमां एक महान व्यक्ति हशे, तेम ज तेमना समकालीन पुरुषोमां ते एक उत्तम प्रकारना नेता पण हशे, तेमां शक नथी. तेमणे तीर्थंकर पद—प्राप्तिमां जेटले अंशे, तेमणे पोताना मतनो प्रचार करवामां संपादित करेलो तेमनो अंश के स्तुत थयो छे तेटले बंधे अंशे तेमनुं पवित्र जीवन कारण भूत न होतुं थयुं

ए त्रण पदार्थोने गुणरूपे गणाव्या छे खरा, परंतु गुणनुं जे लक्षण आपणे स्वीकारीए छीए ते अनुसार ते गुणो थई शकता नथी. प्रो० गार्बेना जणाव्या प्रमाणे वास्तवमां ते मूळ प्रकृतिना अवयवो ज छे. आ ज प्रकारना सिद्धांतने लईने सामान्य रीते जैनोना प्राचीन सूत्रोमां द्रव्य अने तेना पर्यायोनो ज मात्र उल्लेख करेलो होय छे. सूत्रोमां गुण पदार्थनो ज्यारे कोईक ज ठेकाणे उल्लेख थएलो मळी आवे छे त्यारे पाछळना बीजा बधा ग्रंथोमां ते नियमित रीते वर्णवेलो होय छे. आ उपरथी एम स्पष्ट जणाय छे के ते पाछळना काळमां स्वीकारवामां आव्यो होवो जोईए. अने तेनुं कारण न्याय वैशेषिक दर्शनोना तत्त्वज्ञान अने साहित्यनी जे असर भीमे भीमे भारतवर्षना वैज्ञानिक विचारो उपर थती हती ते ज होवुं जोईए. पर्याय एटले विकास अगर अवस्थान्तरनी मान्यतामां गुण जेवा स्वतंत्र पदार्थने स्थान ज मळी शके तेम नथी. कारण के द्रव्य दरेक काळमां तेना पर्यायना रूपमां ज रहे छे. अने तेथी करीने पर्याय गुणात्मक ज होय छे; अर्थात् पर्यायोनी अंदर गुणोनो समावेश थई ज जाय छे. अने आ ज विचार प्राचीन सूत्रोमां लखेलो होय एम जणाय छे. अन्य एक उदाहरण, जैनोए जे अद्रव्यत्वयुक्त पदार्थ उपर द्रव्यत्वनो आरोप करी, वास्तविक रीते जे वस्तु गुणना वर्गमां आवी जाय छे तेवी 'धर्म' अने 'अधर्म' ए बे वस्तुओ, विषयक छे आ बे वस्तुओने जैनोए द्रव्य तरीके वर्णवी छे के जेनो साथे जीवनो संबंध रहेलो होय छे.[1] आ द्रव्योने आकाशनी साथे ज संपूर्ण लोकव्यापी मानेला छे. वैशेषिको पण आकाशने द्रव्य माने छे. जो ते समयमां द्रव्य अने गुण ए बेन पदार्थोनुं भिन्न भिन्न वर्गीकरण थयुं होत अने बन्ने अन्योन्याश्रित मनाता होत, के जेम वैशेषिको माने छे, (गुणाश्रयं द्रव्यम् अने द्रव्यान्तर्वर्ती गुणः) तो उपर जणावेल गोटाळा भरेला विचारो जैनोए कदापि स्वीकार्या नहोत.

उपरोक्त विवेचन उपरथी स्पष्ट जोई शकाय छे के वैशेषिक दर्शन साथे जैनोना केटलाक विचारो मळता आवता होवाथी जैनधर्मनी उत्पत्ति तेना पछी थई छे, एवो जे मत डॉ० भाण्डारकरे[2] उपस्थित करेलो छे तेनी साथे हुं संमत थई शकुं तेम नथी. वैशेषिक दर्शनना स्वरूपनुं संक्षिप्त वर्णन नीचे प्रमाणे आपी शकाय के— संस्कृत भाषा बोलनार तथा समजनार बधा माणसोए मनन करेला सर्वसाधारण विचारोनी जे पद्धतिसर व्यवस्था अने तेनुं जे तात्त्विक प्रतिपादन – निरूपण, ए ज वैशेषिक दर्शन छे. आ प्रकारनुं पदार्थविज्ञानशास्त्र प्राप्त करवानुं काम तो घणा प्राचीन काळथी शुरु थयुं हशे अने कणादना सूत्रोमां जेवुं ए शास्त्र संपूर्ण रूपे प्रतिपादित थयुं छे तेवुं तैयार थता पहेलां मनुष्योने घणी सदीओ सुधी धीरजथी मानसिक परिश्रम उठाववो पड्यो हशे; तेम ज तत्त्वज्ञानविषयक सतत चर्चाओ चलाववी पडी हशे. आथी वैशेषिक दर्शननी आदि अने अंतिम स्थापनानी वच्चेना काळमां जो वैशेषिक विचारो लई लेवानो खोटो या खरो आरोप जैनो उपर मूकवामां आवे तो, ते कदाच तेम संभवी शके खरूं. आ स्थळे बीजी एक बाबतनो उल्लेख करवो अस्थाने नहीं गणाय, अने ते ए छे के जे मुद्दाओ हुं अत्र चर्चवा इच्छुं छुं ते मुद्दाओने लईने डॉ० भाण्डारकरनो एवो मत थएलो छे के 'जैनोना विचारो ते एक बाजु सांख्य अने वेदान्तदर्शन अने बीजी बाजु वैशेषिक दर्शन एम बे पक्षनी वच्चेना समन्वयना आकारना छे.' परन्तु प्रस्तुत चर्चाने माटे तो ते बन्ने प्रकारना विचारो सरखा छेः—एटले के साक्षात् लेवुं अगर बे प्रकारना विरुद्ध विचारोनुं तडजोड करवुं, ए एक ज छे. उपरोक्त मुद्दाओ नीचे प्रमाणे छेः—(१) जैन दर्शन अने वैशेषिक दर्शन ए बन्ने क्रियावादी छे. अर्थात् ते बन्नेनुं मानवुं छे के आत्मा उपर कर्म, कषायो तथा वासनादिनी साक्षात् असर थाय छे. (२) बन्ने दर्शनो असत्कार्यना सिद्धान्तने माने छे; एटले के तेमना मते कार्य ते तेना उपादान कारणथी भिन्न छे. परन्तु

१ आ कल्पना मूळ वैदिक हिन्दुओनी हती, एम ओल्डनबर्गे पोताना Die Religion des veda नामना पुस्तकना पृ० ११७ उपर जणाव्युं छे.

२ जुओ तेमनो रीपोर्ट, सन १८८३—८४, पृ. १०१

वेदान्त अने सांख्य बन्ने सत्कार्य वादने माने छे: अर्थात् कार्य कारणने भिन्न माने छे. (३) ए बन्ने दर्शनोमां गुण अने द्रव्यनो पृथक् विभाग थएलो छे. ए छेल्लो बाबत तो आपणे उपर चर्ची गया छीए; तेथी हवे आपणे प्रथम बे मुद्दाओना संबंधमां विचार करवानो रह्यो छे. (१) अने (२) मां जे मन्तव्योनुं निरुपण करेलुं छे. ते व्यावहारिक ज्ञान–साधारण बुद्धिना विचारो छे. (अर्थात् सहु कोई समजी शके तेवा छे) कारण के आपणा उपर वासनाओनी साक्षात् असर थाय छे ज, तेम ज कारणथी कार्य भिन्न छे ते पण आपणा अनुभवनी बहारनी वात नथी. उ.त. बीज अने वृक्ष ए बंने परस्पर भिन्न छे, एम दरेक विवेकी माणस जाणे छे; अने ते मात्र सामान्य अनुभवनो विषय छे तेम पण लाग्या विना नहीं रहे. आवा विचारोने अमुक दर्शनना खास लक्षण रूपे मानी शकाय ज नहीं; अने एक बीजा मतोमां आवा विचारो समानरूपे जोवामां आवे ते उपरथी ते, एके बीजाना मतमांथी लीधेला छे तेम पण कही शकाय नहीं. परंतु जो बे भिन्न दर्शनोमां परस्पर विपरीत विचारदर्शी एक ज सिद्धान्त आव्यो होय तो ते बाबत अवश्य विचारणीय होय छे. आवो सिद्धान्त मूळ तो ते एक ज दर्शनमांथी उत्पन्न थएलो होय छे अने ते तेमां सुप्रतिष्ठित थया पछी ज अन्यद्वारा स्वीकृत थाय छे. दिक् अने आकाश ए बन्ने भिन्न द्रव्यो छे ए *जातनो वैशेषिकोनो खास स्वतंत्र तर्कसिद्ध सिद्धांत छे. ते जैन दर्शनमां बिलकुल देखातो नथी. वेदांत अने सांख्य जेवा अधिक प्राचीन दर्शनोमां तथा जैन दर्शनमां आकाश अने दिक् वच्चे बिलकुल भेद करवामां आव्यो नथी. ए दर्शनोमां एकलुं आकाश ज बन्नेनुं प्रयोजन सारे छे.

वैशेषिक अने जैन दर्शननी वच्चे मूल सिद्धान्तोमां भेदसूचक एवां केटलाक उदाहरणो नीचे प्रमाणे छे. पहेलाना मते आत्माओ अनन्त अने सर्वव्यापी (विभु) छे; परन्तु बीजाना (जैनोना) मते तेओ मर्यादित परिमाणवाळा छे. वैशेषिको धर्म अने अधर्मने आत्माना गुणो माने छे, परन्तु उपर जणाव्युं तेम जैनो ते बन्नेने एक जातना द्रव्यो माने छे. एक बाबतमां, एक विरुद्ध वैशेषिक विचार अने तद्भिन्न जैन सिद्धान्त वच्चे केटलुंक सादृश्य जोवामां आवे छे. वैशेषिक मतमां चार प्रकारना शरीरो मानेला छे—पार्थिव शरीर जेवुं के मनुष्य पशु आदीनुं, जलात्मक शरीर जेम वरुणनी सृष्टिमां छे, आग्नेय शरीर जेम अग्निनी सृष्टिमां छे, अने वायवीय शरीर जेम वायुनी सृष्टिमां मळी आवे छे. आ विचित्र विचार साथे सदृशता धरावनारो जैनदर्शनमां पण एक विचार छे. जैनो पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, अने वायुकाय; एम ४ काय माने छे. आ ४ भौतिक पदार्थो के जे मूळ तत्वो छे अथवा तो तेमना पण सूक्ष्मभागो छे, तेनी अंदर एक एक विशिष्ट आत्मा रहेलो छे, एम तेओ माने छे. आ जड चैतन्यवादनो सिद्धान्त उपर जणाव्या प्रमाणे असल सचेतनवादनुं परिणाम छे. वैशेषिकोनो एतद्विषयक विचार जो के मूळ एक ज विचार प्रवाहमांथी उत्पन्न थएलो छे खरो, परन्तु तेमणे ते विचार लौकिक पुराणोना अनुरूपे गोठव्यो छे. आ बन्नेमां जैनमत वधारे प्राचीन छे अने ते वैशेषिक दर्शनना चार प्रकारना शरीर वाळा मतना करतां पण तत्त्वज्ञानना वधारे पुरातन विकासक्रमना समयनो छे. मारा अभिप्राय मुजब वैशेषिक अने जैन दर्शननी वच्चे एवो कोई पण संबंध ज न हतो के जेथी एक दर्शने बीजामांथी विचारो लीधा छे, एम स्थापित करी शकाय. छतां पण हुं एम कबूल करूं छुं के ए बे दर्शनो वच्चे केटलुंक विचारसादृश्य अवश्य रहेलुं छे. वेदान्त अने सांख्यना मूळ तत्त्वभूत विचारो जैन विचारोथी तद्दन विरुद्ध छे; अने तेथी करीने जैनो पोताना सिद्धान्तने कांई पण आंच आव्या दीधा सिवाय तेमना विचारो स्वीकारी शके ज नहीं. परन्तु वैशेषिक ए एवा प्रकारनुं दर्शन छे के जेथी जैन सिद्धान्त पोताना मतने आघात पहोंचाड्या सिवाय केटलीक हद सुधी तेनी साथे संमत थई शके छे. अने आथी ज न्याय-वैशेषिक दर्शन उपरना ग्रंथकारोमां जैनोनां पण नामो जोवामां आवे तो तेमां नवाई पामवा जेवुं नथी. जैनो तो आनाथी पण आगळ वधीने त्यां

सुधी जणावे छे के वैशेषिक दर्शन स्थापनार तेमना मतनो ज एक कौशिक गोत्रीय छलुय रोहगुप्त नामनो निन्हव हतो जेणे वि. सं. ५४४ (इ. स. १८) मां त्रैराशिक मत नामनो छट्ठो नैन्हविक संप्रदाय स्थाप्यो हतो. आ दर्शननुं जे वर्णन आवश्यक सूत्र VV. 77–83 मां आपेलुं छे ते वांचवाथी जणाय छे के ते सघळुं वर्णन कणादना वैशेषिक दर्शनमांथी लीधेलुं छे. कारण के तेमां (सात नाहीं पण) छ पदार्थो अने तेना पेटा भेदोनुं वर्णन आपेलुं छे; अने आ उपरान्त गुणना वर्गमां (२४ नहीं परन्तु) १७ वस्तुओनुं वर्णन करवामां आवेलुं छे; जे वैशेषिक दर्शन १, १. मां आपेली हकिकत साथे बराबर मळी रहे छे.

मारुं मानवुं छे के, जैनो अनेक बीजी बाबतोनी माफक, हिंदुस्तानना प्रत्येक प्रसिद्ध पुरुषने पोताना धर्मना इतिहास साथे जोडी देवानी बाबतमां पोताने घटे तेना करतां अधिक माननो हक करे छे. उपरोक्त जैन दंतकथाने असत्य मानवामां मारां कारणो नीचे मुजब छे:— वैशेषिक दर्शन वास्तवमां एक आस्तिक ब्राह्मण दर्शन मनाय छे अने ते मुख्यत्वे करीने स्वधर्मनुरक्त हिन्दुओ द्वारा विकासित थयुं छे. आम होवाथी तेमणे सूत्रकारनुं जे नाम तथा काश्यप एवुं जे गोत्र बताव्युं छे ते संबंधमां तेओ असत्यालाप करे छे, एवी शंका करवानुं जराए कारण जणातुं नथी. अने बीजुं ए के समग्र ब्राह्मण साहित्यमां एवो क्यांए उल्लेख मळी आवतो नथी के वैशेषिक दर्शनना कर्तानुं खरुं नाम रोहगुप्त हतुं तथा तेनुं गोत्र कौशिक हतुं. तेम ज रोहगुप्त अने कणाद ए बन्ने नामो एक ज व्यक्तिनां होय तेम पण मानी शकाय नहीं, कारण के तेओना गोत्र स्पष्ट भिन्न भिन्न जोवामां आवे छे. 'कणादनो अनुयायी ते काणाद' ए शब्द, व्युत्पत्तिशास्त्रना अनुसारे काक-भक्षक एटले घुवड वाचक छे; अने एथी ते दर्शननुं उपहासात्मक नाम औलूक्य दर्शन पडेलुं छे. रोहगुप्तनुं बीजुं नाम छलुय छे. जेनुं संस्कृतरूप षडुलूक थाय छे. तेमां घुवड अने वर्णु करीने काणादोनुं सूचन थाय छे ए खरुं छे, परन्तु उलूक शब्द जैनोए रोहगुप्तना गोत्रने अर्थात् कौशिकने[3] उद्देशीने लखेलो होय तेम जणाय छे. कौशिक शब्दनो अर्थ पण घुवड ज थाय छे. परन्तु आ बाबतमां जैनोनी दंतकथा करतां सर्वब्राह्मणसंमत परंपरा वधारे पसंद करवा लायक होवाथी, आपणे जैनोना परंपरागत कथनने एवी रीते समजावी शकीए के रोहगुप्ते आ वैशेषिक दर्शनने नवुं प्ररूप्युं न होतुं परंतु पोताना नैन्हविक विचारोने समर्थित करवा वैशेषिक मतनो मात्र अंगीकार कर्यो हतो.

आ भागमां भाषांतरित करेलां उत्तराध्ययन अने सूत्रकृतांग सूत्रना विषयमां प्रो. वेबर Indische Studien, Vol XVI. p 259ff अने Vol. XVII, p 43ff. मां जे लख्युं छे ते उपरान्त मारे कांई विशेष उमेरवानुं नथी. आ बन्नेमां, सूत्रकृतांग ए बीजुं अंग गणाय छे अने जैन आगमोमां अंगोने प्रथम—प्रधान—स्थान आपवामां आवे छे, तेथी ते उत्तराध्ययन सूत्र, के जे प्रथम मूळ सूत्र गणातुं होई सिद्धान्तमां तेने छेल्लुं स्थान मळेलुं छे, तेना करतां वधारे प्राचीन छे. चोथा अंगमां आपेला सिद्धान्तोना सार उपरथी जणाय छे के सूत्रकृतांगनो मुख्य उद्देश नवीन साधुओने विरोधी आचार्योना पाखंडी मतोथी संरक्षित राखवानो अने ते रीते सम्यग् दर्शनमां स्थिर बनावी तेमने परमश्रेय प्राप्त कराववानो छे. आ हकिकत एकंदर साची छे, परन्तु सर्वांगपूर्ण नथी; ए आपणे आ पुस्तकनी शुरुआतमां आपेली विषय सूचि उपरथी जोई शकीए छीए. ग्रन्थनी शुरुआतमां विरोधी मतोनुं निराकरण आपवामां आवेलुं छे अने तेनो ते ज विषय फरीथी अधिक विस्तार साथे बीजा श्रुतस्कंधना प्रथम अध्ययनमां चर्चवामां आवेलो छे. प्रथम श्रुतस्कं-

१ जुओ, कल्पसूत्रनी मारी आवृत्तिनुं पृष्ठ. ११५

२ अक्षरशः—छ घुवड आ शब्दना पहेलो 'छ' शब्द वैशेषिक दर्शनना छ पदार्थोनो सूचक छे.

३ भाग ६, पृष्ठ २९०; परन्तु प्रो. ल्युमेने I. c. p. 131. उपर भाषान्तर करेली एक दंतकथामां तेनुं गोत्र 'छऊलू' तरीके लख्युं छे.

धर्मां आगी पछी पवित्र जीवन गाळवा संबंधी, साधुना परिषहो संबंधी, जेमां खास करीने तेमना मार्गमां बताववामां आवतां प्रलोभनो तथा असाधुजनो तरफथी मळता शारीरिक कष्टो संबंधी, तथा धर्मना आदर्शभूत महावीरनी स्तुति विषयक अध्ययनो आवेलां छे तेनी पछी बीजा पण तेवा ज विषयोपर अध्ययनो छे. बीजो श्रुतस्कंध जे लगभग संपूर्ण गद्यमां ज लखाएलो छे तेमां पण आवा ज प्रकारना विषयोनुं निरूपण करेलुं छे परन्तु तेना विविध भागो वच्चे कोई पण देखीतो संबंध जोवामां आवतो नथी. आ उपरथी ते स्कन्ध अनुपूर्तिरूपे गणी शकाय अने तेथी ते पाछळना कालमां प्रथम स्कंधमां थएलो एक उमेरो छे. प्रथम स्कन्धनो उद्देश स्पष्ट रीते युवान साधुओने मार्ग बताववानो छे.[1] तेनी रचना शैली पण आ ज प्रयोजनने उपकारक थाय तेवी राखवामां आवी छे. तेमां घणा छंदोनो पण उपयोग करवामां आव्यो छे, जेथी तेमां कवित्वनो पण समावेश थएलो छे एम मानवुं जोईए. आमाथी केटलीक गाथाओनुं रूप कृत्रिम लागे छे अने ते उपरथी ए ग्रंथ एक ज कर्तानो रचेलो होय तेम आपणे मानी शकीए छीए. बीजो स्कन्ध प्रथम स्कन्धमां चर्चेला विषयो उपर लखेला निबन्धोनो एक समूह होय एम जणाय छे.

उत्तराध्ययन अने सूत्रकृतांग बन्ने सूत्रोनो उद्देश तथा तेमां चर्चाएला केटलाक विषयो परस्पर समान छे, परंतु सूत्रकृतांगना मूळ भाग करतां उत्तराध्ययन वधारे लांबुं छे तेम ज ते सूत्रनी योजना पण वधारे कुशळतापूर्वक करवामां आवी छे. तेनो मुख्य आशय नविन साधुने तेनी मुख्य फरजोनो बोध आपवानो, तथा शिक्षा अने उदाहरणो द्वारा यति जीवननी प्रशंसा करवानो, तेना दीक्षाकाळ दरम्यान आवता विघ्नो सामे चेतवणी आपवानो, तथा केटलुंक तात्त्विक ज्ञान आपवानो पण छे. पाखंडीमतोनुं घणाक ठेकाणे सूचन मात्र करवामां आव्युं छे परंतु तेमने विस्तृत रीते चर्चवामां आव्या नथी. ते दीक्षामांथी आवतां विघ्नो जेम जेम वखत जता मोळ्यो तेम तेम स्पष्ट रीते ओछा थता गया अने जैनधर्मनी संस्थाओ सुदृढ रीते स्थिर थती गई. नविन साधुने जीवाजीवनुं बराबर ज्ञान वधारे उपयोगी मनातुं होय तेम लागे छे. कारण के आ विषय उपर एक मोटुं अध्ययन आ ग्रंथना अंते आपवामां आव्युं छे. जो के आ आखा ग्रंथमां आवेला जुदा जुदा बधां अध्ययनोनी पसंदगी तथा गोठवणीमां काईक योजना जेवी देखाय छे खरी परंतु ते सघळां अध्ययनो एक ज कर्ताना रचेलां छे के लेखी अगर मौखिक परंपरागत साहित्यमांथी चूंटी काढेलां छे, ए एक विचारणीय बाबत छे. कारण के आवा प्रकारनुं साहित्य जैन संप्रदायमां, तेम ज अन्य संप्रदायोमां पण, धर्मशास्त्र ग्रंथोनी रचनानी पूर्वे वर्तमान होवुं ज जोईए. मारुं एम मानवुं छे के आ अध्ययनो प्राचीन परंपरागत साहित्यमांथी ज उद्धृत करी लीधेलां छे. कारण के तेनी वर्णनशैली तथा भाषाशैली परस्पर भिन्न होय तेम स्पष्ट जणाई आवे छे. अने ते बाबत एक ज कर्तानी कल्पना साथे संगत थई शकती नथी; अने आम मानवानुं बीजुं कारण ए छे के वर्तमान सिद्धांतोमां घणा ग्रंथो आ ज प्रकारे उत्पन्न थया छे; एम मान्या विना छुटको नथी. क्या समयमां आ प्रस्तुत ग्रंथो रचवामां आव्या अथवा तो वर्तमान स्वरूपमां मुकवामां आव्या ते प्रश्ननो संतोषदायक निर्णय करी शकाय तेम नथी. परंतु आ ग्रंथनो वाचनार स्वाभाविक रीते ज आ बाबतमां भाषांतरकारनो अभिप्राय जाणवानी आशा राखतो होवाथी, हुं अत्यंत संकोचपूर्वक मारो मत जाहेर करुं छुं के, सिद्धान्त ग्रंथोना घणा खरा भागो, प्रकरणो तथा आलापको खरेखर जुनां छे. अंगोनुं आलेखन प्राचीन काळमां (परंपरानुसार भद्रबाहुना समयमां) थयुं हतुं; सिद्धान्तना अन्य ग्रंथो काळक्रमे वधुं करीने ई. स. पूर्वेनी पहेली शताब्दिमां संगृहित थया हता. परंतु देवर्धी गणिए सिद्धान्तोनी आ छेल्ली आवृत्ति तैयार करी (वि. सं. ९८० ई. स. ४५४) त्यां सुधी तेमां उमेराओ तथा फेरफारो थता गया हता.

उत्तराध्ययन अने सूत्रकृतांगनुं भाषान्तर, मे,मने मळेली जूनामां जूनी प्राचीन टीकाओमां स्वीकारेला मूळना आधारे करेलुं छे. आ मूळ, हस्तलिखित अन्य प्रतिओ तथा

---

१ पुराणी परंपरा अनुसार दीक्षा लीधा पछी चार वर्ष वीत्या बाद सूत्रकृतांगनुं अध्ययन करावावामां आवतुं हतुं.



गिरनारपर्वत—नेमिनाथकी टोंक.

मुद्रित प्रतिओना मूळथी थोडेक अंशे ज भिन्न छे. में एकत्रित करेली केटलीक हस्तलिखित प्रतिओ उपरथी एक स्वतंत्र मूळ तैयार करी लीधुं हतुं के जे मने मुद्रित मूळ साथे मेळवी जोवामां घणुं उपयोगी थई पड्युं छे.

उत्तराध्ययन सूत्रनी कलकत्ता वाळी आवृत्ति (संवत् १९३६ ई. १८७९) मां गुजराती विवरण उपरांत खरतरगच्छीय लक्ष्मीकीर्ति गणिना शिष्य लक्ष्मीवल्लभनी रचेली सूत्र दीपिका आपेली छे. आ टीकाथी वधारे प्राचीन देवेन्द्रनी टीका छे अने ते ज टीका उपर में मुख्य आधार राख्यो छे. ए टीका संवत् ११७९ एटले ई. स. ११२३ मां रचाई छे अने ते प्रकटरीते शांत्याचार्यनी बृहद्वृत्तिना सारांश रुपे छे. शांत्याचार्य वाळी वृत्ति में वापरी नथी. मारी पासे स्ट्रेस्सबर्ग युनिवर्सिटी लाइब्रेरीनी मालीकीनी अवचूरिमां पण एक सुंदर प्राचीन हस्तलिखित प्रति छे. आ ग्रंथ पण स्पष्टरीते शान्त्याचार्यनी वृत्तिनो संक्षेप मात्र छे. कारण के लगभग ए तेने अक्षरशः मळतो आवतो जणाय छे.

सूत्रकृतांगनी मुंबईवाळी आवृत्ति (संवत् १९३६— ई. स. १८८०) मां त्रण टीकाओ आपेली छे: (१) शीलांकनी टीका: जेमां भद्रबाहुनी निर्युक्ति पण आपेली छे. आ टीका सर्वे विद्यमान टीकाओमां सौथी प्राचीन छे. परंतु आना पहेलां पण बीजी टीकाओ थएली हती. कारण के शीलांक केटलेक स्थळे प्राचीन टीकाकारोनो उल्लेख करे छे. शीलांक नवमी शताब्दिना पश्चार्धमां थई गया होय एम जणाय छे, कारण के तेमणे आचारांग सूत्रनी टीका शक वर्ष ७९८ एटले ई. स. ८७६ मां समाप्त करी हती, एम कहेवाय छे. (२) ए टीकामांथी हर्षकुले करेलो संक्षेप जेनुं नाम दीपिका छे, ते संवत् १५८३ अथवा ई. स. १५१७ मां रचेलो छे. मारी पासे दीपिकानी एक प्रति छे जेनो में उपयोग कर्यो छे. (३) पासचन्द्रनो बालावबोध—एटले गुजराती टीका. माहीतीना मुख्य ग्रंथ तरीके में साधारण रीते शीलांकनी ज टीका वापरी छे. ज्यारे शीलांक अने हर्षकुळ बंने मळता आवे छे त्यारे टीप्पणमां में तेमने बताववा 'टीकाकारा' एम लख्युं छे. ज्यारे शीलांकनो अमुक टीकांश हर्षकुले पडतो मुकेलो होय छे त्यारे हुं मात्र शीलांकनु ज नाम आपुं छुं; अने ज्यारे कोई उपयोगनी असल हकिकत हर्षकुल ज आपे छे त्यारे त्यां आगळ में तेनुं ज नाम आपेलुं छे. मारे आ स्थळे खास जणावी देवुं जोईए के मारी एक हस्तलिखीत प्रतिमां हासियामां तथा बे बे लीटिओनी वच्चे केटलीक संस्कृत नोटी आपेली छे के जेनी मददथी हुं केटलीक वखते मूळनो खास अर्थ निश्चित करी शक्यो छुं.

बोन
नवेंबर, १८९४.

एच्. जेकोबी.

अहिंसा अने वनस्पति आहार–खास करीने बौद्ध धर्ममां

[बुद्धिस्ट रिव्युना, पुस्तक ६, अंक १ मां प्रकट थएला—

डॉ. F. OTTO SCHRADER, PH. D. ना लेखनो अनुवाद.]

अहिंसा—एटले जीवित प्राणिओने कोई पण प्रकारनी इजा करवामांथी अलग रहेवानुं–व्रत हिंदुस्तानना आर्योमां ज जन्म पाम्युं हतुं. याहुदी–खिस्ती संस्कारोथी ए व्रत केटलुं बधुं विदेशीय छे, ए वात नीचेना विरोध-दर्शक दृष्टान्तोथी जणाई आवे छे.[1] ज्यारे क्राईस्ट पिटरने मळ्या त्यारे पिटरे पोतानुं माछलीओ पकडवानुं काम शरु कर्युं हतुं. पिटरे जलमां नाखेली जाळोने क्राईस्टे एटला बधा आशीर्वादो आप्या के जेथी पकडाएली माछलीओना मोटा समूहने लीधे होडीओ डुबी जवाना भयमां आवी पडी. एथी उलटुं, पाणीमां नांखेली पोतानी जाळोने बहार खेंची काढवानी तैयारी करता केटलाक माछीमारो ज्यारे पायथागोरसनी दृष्टिए पड्या त्यारे तेणे ते माछीमारो पासेथी जाळग्रस्त बधी माछलीओ वेचाती लई लीधी अने पछी ते बधा माछलीओ तेम ज ते जालमां पकडाएल बीजा प्राणिओने पण तेणे मुक्त कर्यां. जो के अत्यारे आर्य ओलादनो दरेक पश्चिमवासी पोताना पौर्वात्य बन्धु जेटलो ज अहिंसाव्रतनो पक्षपाती होय छे. छतां हजुए पश्चिममां सामान्यरीते बन्धनकारक नियम तरीके तो अहिंसाव्रतनो स्वीकार घणो ज अल्प छे.

अहिंसाने धार्मिक तत्त्वनुं स्थान क्यारे मळ्युं ए कहेवुं मुश्केल छे; परन्तु अत्यारे अस्तित्व धरावता **धर्मोमां जैनधर्म एक एवो धर्म छे के जेमां अहिंसानो क्रम सम्पूर्ण छे अने जे शक्य तेटली दृढताथी सदा तेने वळगी रह्यो छे.***

उत्तराध्ययन सूत्र नामक जैनोना एक आगम ग्रंथमां अहिंसाने उद्देशीने जैनोनुं दृष्टिबिन्दु आ प्रमाणे बताव्युं छे:[2]—

" कोईए पण जीवता प्राणिओनां हिंसामां अनुमति आपवी नहीं; तेम करवाथी मनुष्य सर्व दुःखमाथी मुक्त थशे; जे आचार्योए यतिधर्म कह्यो छे तेओए ए प्रमाणे आज्ञा करी छे.

" जे ज्ञानी पुरुष जीवता प्राणिओने इजा करतो नथी ते समित (चारे बाजुए जोनारो) कहेवाय छे. जेम जल उच्च प्रदेशनो त्याग करे छे तेम पापकर्म ते पुरुषने त्यजी देशे.

" जंगम अथवा स्थावर जे प्राणिओ जगत्‌मां रहेला छे तेमने हानि थाय तेवुं कांई पण कर्म मनथी, वचनथी के कायाथी मनुष्ये करवुं नहीं. "

"(मनुष्यो सहित) प्राणिओ, अग्नि अने पवन ए त्रस–चाली शके तेवा प्राणिओ छे; पृथ्वी, पाणी, अने वनस्पति ए स्थावर–न चाली शके एवा प्राणी छे. "

आचारांगसूत्र नामना एक बीजा प्राचीन अने आगम ग्रंथमां आ बधानो यथाक्रम संक्षेपमां नीचे प्रमाणे समावेश करवामां आव्यो छे.[3]

" ते पाप कर्मने जाणीने ज्ञानी पुरुषे पृथ्वी (जल तेज विगेरे)[4] प्रत्ये हिंसक रीते वर्तवुं नहीं, बीजाने ते प्रमाणे वर्तवा प्रेरवुं नहीं, तेम ज जेओ ते प्रमाणे वर्तता होय तेमने प्रशंसवा नहीं. "

जैन धर्ममां अहिंसाना विचार संबंधी जे उत्कटता छे तेनो आथी ख्याल आवे छे. जो के आ नियमो मात्र यतिओ माटे छे छतां हाली चाली शकतां प्राणिओनो वध न करवानुं अहिंसाणुव्रत–अहिंसा संबंधी नानो नियम–तो यति न होय तेने पण दृढताथी पाळवो पडे छे:—

---

* ब्लॅक टाईप अमे मुक्या छे.–संपादक जै. सा. सं.

" त्रस एटले चाली शके एवां प्राणिओने अभय दान आपवामां तत्पर रहेनार सत्पुरुषोए प्रमादक पान, मांस, मद्य अने रसवाळा वृक्षोना फळोनो हमेशां त्याग करवो जोईए.

" जेमां सूक्ष्म जंतुओनो नाश थाय छे अने अभक्ष्य वस्तुओ खवाय छे तेवुं रात्री भोजन, दयालु सज्जनो कदी करता नथी.

" जेओ स्थावर प्राणिओनो नाश करीने अन्नाहारी तरीके रहे छे अने जेओ त्रस प्राणिओनो नाश करीने मांसाहारी तरीके जीवे छे, ते बंनेना पापनुं अन्तर, सत्पुरुष जणावे छे के, परमाणुं अने मेरुना जेटलुं होय छे.

" अन्नाहारमां जे परमाणु जेटलुं पाप छे तेनो नाश प्रायश्चित्त मात्रथी करी शकाय छे, परन्तु मांसाहारमां पाप पर्वतराज जेवुं मोटुं छे अने तेथी तेनो नाश करी शकातो नथी". "

मध, रेशम अने ऊन विगेरेनी उत्पत्तिमां बने छे तेम प्राणिओनी संपत्ति खूंचवी लेवानी यति अने उपासक बन्नेने मना करवामां आवी छे. मध खावामां चोरी अने हिंसा बन्ने रह्या छे. हिंसा एटला माटे के " मधनुं दरेक बिन्दु असंख्य मक्षिकाओना वधथी ज प्राप्त थाय छे". " " जेटलुं पाप सात गामोने बाळी नांखवाथी थाय छे तेटलुं पाप मधनुं एक टीपुं खावाथी थाय छे". " ज्यां हजारो ढोरो भूखे मरे छे एवा हिन्द देशमां उपरना विचार साथे आश्चर्यजनक विरोध धरावनार वात तो ए छे के प्राणिओनुं दूध पीवामां पाप बिलकुल गणवामां आव्युं ज नथी !

अहिंसानो आवो उत्कट मार्ग अनुक्रम वगर एकदम उत्पन्न थाय ए भाग्ये ज मानी शकाय तेवुं छे, तेथी; तेम ज महावीर अने पार्श्वनाथ पण आमांना घणा नियमो उपर भार मूकता हता तेथी; आपणे एवी कल्पना तरफ दोराईए छीए के बुद्धनी पूर्वे बे शतक के तेथी पण पहेलां (एटले क्राईस्टनी पूर्वे ८०० वर्ष पहेलां) हाल जैन अहिंसानुं ' अणुव्रत ' कहेवामां आवे छे तेना जेवा एक मन्तव्यनी प्रथम स्थापना जैनो अथवा कोई अन्य धर्मानुयायीओ तरफथी करवामां आवी हशे. आ कल्पनाथी आपणे वैदिक युगनी समाप्ति सुधी पाछळ जईए छीए, अने अहिं छान्दोग्य उपनिषद्ना अन्तिम भागमां आपणे इच्छेलुं अहिंसा व्रतनुं प्रथम पगथियुं आपणने मळी आवे छे.–जो के वेखीती रीते ते मूळनी शरुआतनुं तो नथी ज. छान्दोग्य उपनिषद्नो ते भाग नीचे प्रमाणे छे–

" आचार्यना घरे यथाविहित समयमां, यथा विधि, वेदनो अभ्यास करीने जे गुरुना घेरथी पाछो आवे छे, तेणे पोतानी मेळे पोताने घेर पवित्र स्थानमां, ते पवित्र ग्रंथोनो अभ्यास करवो; सत्यशील शिष्योने भणाववा; पोतानी सकल शक्तिओनुं स्थान आत्माने बनाववो; पवित्र तीर्थो सिवाय अन्यत्र कोई पण प्राणीनी हिंसा करवी नहीं; ते खरेखर आ प्रमाणे यावज्जीवन रही ब्रह्मलोक मेळवे छे; अने पुनः आवतो नथी.—पुनः आवतो नथी. "

एनो अर्थ ए के—जे मोक्षनी आकांक्षा राखे छे ते यज्ञ सिवाय अन्यत्र पशुवध करी शके नहीं. ए ध्यानमां राखवुं जोईए के अहिं गृहस्थने उद्देशीने आ अहिंसाना नियमनुं वर्णन थाय छे. केम के घणु करीने ते समये, वैदिक युगना अन्तमां पण, ' सन्नयास ' नो प्रारंभ थयो न हतो.

परन्तु त्यार पछीना उपनिषदोमां चतुर्थाश्रम पूर्ण विकास पामेलो जोवामां आवे छे, अने तेने माटे आपेला नियमो जैन यतिना नियमोने केटलेक अंशे मळता आवे छे. जैन यतिनी जेम, ब्राम्हण संन्यासीने पण वर्षाऋतुमां फरवानुं बंध राखवुं पडे छे, अने पाणी पीधा पहेलां गाळवुं पडे छे. अने स्पष्ट पण ज—जो के चोक्कस नथी छतां—ते मांसाहार करी शकतो नहीं.' गमे तेम हो परन्तु आटलुं तो चोक्कस छे के ब्राम्हण धर्ममां पण घणा लांबा समय पछी सन्नयासिओ माटे आ सूक्ष्मतर अहिंसा विहित थई; अने आखरे वनस्पति आहारना रूपमां ब्राह्मण ज्ञातिमां पण ते दाखल थई हती. कारण ए छे के जैनोना धर्मतत्त्वोए जे लोकमत जीत्यो

हतो तेनी असर सज्जडरीते वधती जती हती. बुद्धना समये अने त्यार पछी पण केटलाक वखत सुधी ब्राह्मणोए वनस्पति आहारनो स्वीकार पूरे पूरो कर्यो न हतो ए वात सुप्रसिद्ध पंच पंचनख व्रतथी[9] साबीत थाय छे. महाभारत (१२, १४१, ७०) मां आ नियम नीचेना रूपमां आपेल छे—

" ब्राह्मण, क्षत्रिय अने वैश्ये मात्र पांच पांच नख वाळा प्राणीनुं भक्षण करी आ धर्म प्रमाणे चालवुं अने जे अभक्ष्य छे ते प्रत्ये मन दोरवुं नहीं. "

ए ध्यानमां राखवा जेवुं छे के ते ज नियम एक जूना बौद्ध जातकमां अने लगभग बधा जूना ब्राह्मण धर्मग्रंथो—स्मृतिओमां[10] मळी आवे छे. कूर्मपुराणमां तेने मनुए कहेलो बताव्यो छे, परंतु मनु (तेम ज गौतम) छ प्राणीओनी अनुमति आपे छे; अने आपस्तंब सातनी पण रजा आपे छे. महाभारतमां बीजे स्थळे (१२, ३७, २१–२४)[11] ब्राह्मणने अभक्ष्य एवा प्राणीओनुं एक लांबु लीष्ट व्यास मुनिए आप्युं छे. जो भक्ष्य प्राणीओनी संख्या बहु थोडी होत तो व्यास आटली मेहेनत लेत नहीं. परंतु समय जतां ज्यारे जैन अने बौद्ध धर्म देशमां प्रबळ थया त्यारे प्राणी—हिंसा अने मांस—भक्षण मात्र यज्ञमां ज करवां एवो नियम कर्या वगर ब्राम्हणोथी चलावी लेवायुं नहीं.[12] अने तेमां पण पशुहिंसा वधारे ने वधारे ओछी करवामां आवी अने अन्ते मांसनी इच्छा राखनारा (आमिषकांक्षिण:) पितृओने [जेओनो मांसभक्षणनो हक्क महाभारतना छल्ला भागोमां सहेज नामरजी साथे स्वीकारवामां आव्यो छे[13]] पण वनस्पति-भक्षक थवानी फरज पाडवामां आवी. अने आखरे दक्षिण हिंदमां इं. स. ना तेरमा सैकामां उत्पन्न थएला माधव संप्रदायना केटलाक प्रतिनिधिओए अन्तिम पगलुं लीधुं. तेमणे गमे ते प्रकारनी प्राणीहिंसाने पापवाळी गणीने धिक्कारी अने यज्ञमां प्राणी बलिदानने स्थाने कहेवातो पिष्ट—पशु एटले अन्ननी बनावेली प्राणीनी आकृति वापरवानो रिवाज दाखल कर्यो.[14]

परन्तु आ सर्व ब्राह्मणोने ज उद्देशीने छे; अथवा बहु तो द्विजोने उद्देशीने छे. वैदिक संप्रदायना अवशिष्ट वर्गोने मांसाहारमांथी मुक्त राखवामां आव्या न हता. तेथी आधुनिक स्थिति बहुशः नीचे दर्शाव्या मुजब छे. दक्षिण हिन्दमां सर्वत्र ब्राह्मणो वनस्पति आहार करनारा छे. उत्तरमां घणा ब्राह्मणो मत्स्य-भक्षक छे अने काश्मीरमां तो अन्य मांस पण खाय छे. क्षत्रियो सदा मोटे भागे मांस खाता ज हता अने हजुए खाय छे. वैश्यो (व्यापारी वर्ग, जेने दक्षिणमां चेटी-आर अने उत्तरमां वाणीआ विगेरे कहे छे तेओ) साधारण रीते ब्राह्मणोना भोजननुं अनुकरण करता देखाय छे. शूद्रो मांस-भक्षक तेम ज वनस्पति-भोजी पण होय छे. घणा भागे तेओ वनस्पति आहार उपर रहे छे, केम के मांस घणुं मोंघुं होवाथी तेमना माटे दुर्लभ जेवुं छे.

संन्यासीओना विषयमां तो में प्रथम ज कह्युं छे के जे नियमोने तेओ अनुसरे छे ते घणे अंशे जैन मतने मळता आवे छे. तेओ झाझे भागे तपस्या करे छे अने तेथी तेओमांना घणा तो मांसनो स्पर्श पण करता नथी; केम के इंद्रियोना विषयोनी वृत्तिओने तेथी पोषण मळे छे. परन्तु जन्मथी ब्राह्मण एवा एक आदर्श रूप अने विद्वान संन्यासी के जेना परिचयमां हुं आव्यो छुं, तेणे मने कह्युं के श्रद्धापूर्वक अर्पण करवामां आवेली मांसवाळी वस्तुनो पण अनादर करवो ए खरा भिक्षु माटे अयोग्य अने दौर्बल्यसूचक छे. तेनो विचार आवो होय एम जणाय छे, के जे यति तेने आपवामां आवेली खावायोग्य गमे ते वस्तु खावाने शक्तिमान न होय, ते तैत्तिरीय उपनिषद्मां (२, ७) कहेल, तेनी अने संसारनी वच्चे रहेला खाडानी ('उदरं अन्तरं' नी) पेली-पार जवाने फतेह थयो गणाय नहीं; तेम ज द्वन्द्व-मोह अने जुगुप्साने जीत्यो गणाय नहीं, के जे आत्म-साक्षात्कारमां मुख्य साधन मनाय छे. आ उपरथी ' मिलिन्दपह्न ' (३, ६) नो एक जाणवा जेवो उल्लेख स्मरणमां आवे छे, जेमां बौद्ध साधु कहे छे के " हे महाराज ! ते हजु रागथी मुक्त थयो नथी, जे भोजन करती वखते

स्वाद अने स्वादजन्य सुखनो पण अनुभव करे छे ज्यारे खरेखर राग रहित पुरुष तो भोजन करती वखते मात्र स्वादनो ज अनुभव करे छे परन्तु स्वादजन्य सुखनो अनुभव करतो नथी. ''

हवे आपणे बौद्धधर्म तरफ वळीए. अहिं अहिंसा अने वनस्पति आहारना संबंधमां एक विवादग्रस्त प्रश्न उत्पन्न थाय छे, के जे प्रश्ननो निर्णय मारा जाणवा प्रमाणे हजु कोई लावी शक्युं नथी. डॉ० न्यूमेन आदिनो पक्ष कहे छे, के बुद्ध वनस्पति आहार ज करता; ज्यारे बीजो पक्ष के जेमां घणा विद्वानो छे; तेओ 'अमुक खास प्रसंग सिवाय अन्यत्र बुद्ध मांसाहारनी मना करता हता,' ए वातनो इन्कार करे छे. पूर्वपक्ष ज्यारे, अहिंसा ए व्रत भिक्षु तेम ज गृहस्थे पाळवाना नियमोमां प्रथम स्थान धरावे छे, ए बाबत उपर भार मुके छे, त्यारे उत्तर पक्ष, धर्म ग्रंथोना केटलाक फकराओनो, तथा महायान तेम ज हीनयान ए उभय शाखाओना अनुयायीओनो मोटो भाग जे आज मांस भक्षण करवा छतां पोते अहिंसानु पालन करे छे एम माने छे, ते बाबतनो आश्रय ले छे.

मारा मत मुजब सत्य बन्ने पक्षमां रहेलुं छे अने तेना कारणो हवे हुं विस्तारथी आपुं छुं.

एक आश्चर्यजनक वात ए छे, के दक्षिण हिन्दना जैनोमां बुद्धसम्बन्धी अद्यापि जाणीती एवी एक हकिकत छे के ते 'बुद्ध एक घणो खराब माणस हतो अने मांसाहारने उत्तेजन आपतो हतो,' ब्राह्मणधर्मनुं उपहास आलेखतुं अने खण्डनमण्डन करतुं धर्मपरीक्षा नामे पुस्तक[१५] जे तामिल भाषान्तरना रूपमां बणुं प्रसिद्ध छे, तेमां उल्लेखेली बुद्धनी आ अपकीर्तिनुं कारण आपणे गोतवुं जोईए. ए पुस्तकमां बौद्धधर्म ऊपर घात पर्यो छे; अने तेमां पहेलो ज जे आक्षेप करवामां आव्यो छे ते ए छे के 'बुद्धना मत प्रमाणे मांसाहार करवामां पाप नथी. ' आ आक्षेप मात्र मनःकल्पित नथी. बीजा प्राचीन जैन पुस्तकोमां पण ते रूपान्तरथी मळी आवे छे. दृष्टांत तरीके सूयगडांगसूत्रमां[१६] एम कहेलुं छे के बुद्धे नीचे प्रमाणे उपदेश कर्यो हतो.

"(दुष्कालना वखतमां) एक गृहस्थ पोताना पुत्रने मारीने खाई शके, अने एक ज्ञानी भिक्षु जो तेमांथी मांस ले तो तेने पाप लागे नहीं.

" जो कोई माणस भूलथी भाननो ढगलो मानीने[१७] माणस अथवा बालकनो वध करे, तेने अग्नि उपर मूके, पकावे तो ते बुद्धोनो माटे योग्य एवुं भोजन होई शके. ''

आहिंया आ प्रमाणे घणा विलक्षण रूपमां बुद्धना एक मतने आलेख्युं छे के जे असलमां आपणे जोईए तो, आ प्रमाणे जडी आवे छे, के वध कराएला प्राणीना वधनुं कारण पोते कोई पण रीते न होय तेवा मांस सिवाय बौद्ध भिक्षुए अन्य कोई जातनो मांसाहार करवो नहीं.

चुल्लवग्गमां (७,३-१५) अने अन्य पिटकोमां घणी सारी रीते एक खुलासो आपवामां आव्यो छे, के ज्यारे मतभेद उत्पन्न करवानी इच्छाथी (अर्थात् पोतानी मागणी स्वीकारवामां नहीं आवे एम सारी रीते जाणतो होवा छतां) देवदत्त मत्स्य अने मांस आहारनी भिक्षुओने माटे मना कराववानी विनति करवा बुद्ध पासे जाय छे त्यारे बुद्ध तेनी विनतिनो अस्वीकार करे छे[१८] अने कहे छे के '......हे देवदत्त ! आठ मास सुधी वृक्षो नीचे शयन करवानी में रजा आपी छे.[१९] तेम ज अदृष्ट, अश्रुत अने अशंकित ए प्रमाणे त्रणे बाबतोमां जे तद्दन शुद्ध होय तेवा मत्स्य अने मांस [खावानी पण में रजा आपी छे.] '

अर्थात्, हत प्राणीतने माटे हणवामां आव्युं छे तेम ते भिक्षुना दीठामां आवेलुं न होय (अदिट्ठम्), तेना माटे हणाएलुं छे एम तेना सांभळवामां पण आव्युं न होय (अश्रुतम्), अने आ मारा माटे हणवामां आव्यो हशे के केम ? एम तेने शंका पण न आवी होय (अपरिशंकितम्), तेवा मांसने पवत्तमंस ('पहेलांथी ज अस्तित्वमां आवेलुं मांस') कहेवामां आवे छे, अने ते उद्दिसकतमंस (' हेतुपूर्वक तैयार करेला मांस ') थी उलटा प्रकारनुं मनातुं हतुं.[२०]

वळी सरखावोः–' हे भिक्षुओ ! मांस खावाना हेतुथी हणाएला प्राणीनुं मांस जाणी जोईने कोईए खावुं नहीं. जे कोई ए प्रमाणे करशे ते "दुकत" अपराध करशे. हे भिक्षुओ ! अदृष्ट, अश्रुत, अने अशंकित एम त्रण प्रकारे जे मांस शुद्ध होय ते खावानी हुं रजा आपुं छुं." (महावग्ग ६, ३१ ना अंतमां) वळी. "हे मूर्ख ! (मांस क्यांथी आव्युं छे ते) तपास्या विना तुं शी रीते ते मांस खाई शके ?.........हे भिक्षुओ ! तपास कर्या वगर कोईए पण मांस खावुं नहीं" (तेज ग्रंथ ६,२३)

बीजो नियम ए छे के–मांस काचुं न होवुं जोईए. (ब्रह्मजाल सुत्त १०, अंगुत्तरनिकाय १९३–१९९; मज्झिमनिकाय, ३८ विगेरे) संघमां दाखल थता नवा पुरुषो माटे वारंवार कहेवामां आव्युं छे के "तेओ काचुं (अन्न) स्वीकारता नथी [तेओ काचुं मांस स्वीकारता नथी.]"

छेवटे महावग्ग (५, २३) मां एक विचित्र आज्ञा करवामां आवी छे—अने हुं जाणुं छुं त्यां सुधी अन्यत्र ते जोवामां आवती नथी. ते स्थळे माणसनुं, हाथीनुं घोडानुं, कुतरानुं, सर्पनुं, सिंहनुं, वाघनुं, चित्तानुं, दीपडानुं, रींछनुं अने तरक्षुनुं मांस त्यजवा विषे कहेवामां आव्युं छे. आने आपणे व्यासनी यादीना (जुओ उपर) अवशिष्ट भाग तरीके गणी शकीए.

अहिंसोपदेशक धर्मना एक महान् प्रवर्तक मांसना उपभोगने धिक्कारे नहीं; मांसाहारनो सर्वदा त्याग कर्या सिवाय पोताना मनोविकारोने जीतवानी एक भिक्षु इच्छा राखे; आ बधुं, जेम अत्यारे पण बौद्धधर्मना परिचयमां, जे विचार शील पुरुषो आवे छे तेमने, एक न समजी शकाय एवी गुंचवण लागे छे, तेम ते समये पण घणा माणसोने आ विचार आश्चर्यजनक अने अतर्क्य लागतो हतो. परंतु ए एक सारी वात छे, के आ विचारनो बुद्ध पोते शी रीते निराकरण करता हता तेनो एक पुरावो आपणने मळी आवे छे.

सुत्त निपातना आमगंध सुत्तमां कोई एक पुरुष बुद्धने संबोधे छे; [२१]अने पछी पोताना वनस्पतिभोजीपणानुं वर्णन अने प्रशंसा करीने कहे छे के "स्वच्छताने (आमगंध एटले खराबगंधने) मारी साथे कांई संबंध नथी. आम तमे कहो छो (अने वळी) हे ब्रह्मबंधु ! [२२] सारी रीते तैयार करेल पक्षीना मांस साथे मेळवेला भात तमे खाओ छो; तेथी हे काश्यप ! हुं तमने पूछुं छुं के तमे अशुद्धतानो शो अर्थ करो छो ?" आनो बुद्ध उत्तर आपे छे केः "जीवतां प्राणिओने दुभववां, मारवां,कापवां,बांधवां,चोरी करवी, असत्य भाषण करवुं, छळ अने कपट करवुं, सार वगरनुं वाचवुं तेनुं नाम अशुद्धता छे; पण मांसभक्षण नहीं." आनी पछी आ प्रकारना बीजा छ श्लोको आवे छे जे दरेकनी अंते; "आ ते अशुद्धता छे; पण मांसभक्षण नहीं" आ शब्दो होय छे. अने तेमां कहे छे के "मत्स्याहार के मांसाहारनो त्याग, नग्नभ्रमण, मस्तकमुंडन, जटाधारण, धूल–निर्माल्य–भस्मधारण, अग्निहोम, आ सर्व, मायामांथी जे पुरुष मुक्त नथी तेने पवित्र करी शकता नथी. वेदाध्ययन, गुरुदान, देवयजन, धर्म अथवा शीत सहनद्वारा आत्मदमन, अने एवा बीजां, अमृतत्वनी इच्छाथी करवामां आवेलां तपो, मायाथी बद्ध पुरुषने पवित्र करी शकता नथी." [२३]

अलबत्, ए वात तो स्पष्ट ज छे के ऊपर बे प्रकारो वर्णवेला छे तेमां मांसने भिक्षुना भोजनना एक आवश्यक भाग तरीके तो स्थान आपवामां आव्युं नथी ज, पण सहेलाईथी जेनो सर्वदा त्याग करी शकाय एवा अपवाद रूपे ज मांसने स्थान आपेलुं छे. तथापि बुद्ध तेनो सर्वथा निषेध करवा इच्छता न हता. अने तेम करवामां तेमने मुख्य कारण, पोताना उपदेशनुं ए एक स्पष्ट अने शाश्वत उदाहरण बताववानी तेमनी इच्छा हती के "आहारना प्रश्नने धार्मिक शुद्धि–विशुद्धि साथे बिलकुल संबंध छे नहीं."

मांसना आ नियत उपयोग सिवाय, आपणा प्रस्तुत विषयमां बौद्ध अने जैन साधुओमां विशेष भेद नहीं हतो. जैन साधुनी जेम बौद्ध साधुने पण काळजीपूर्वक कोई पण प्राणीनी हिंसाथी दूर ज रहेवानुं हतुं. सुत्तनिपातमां (धम्मिक सुत्त १९) पण कह्युं छे केः—

"ચર તેમ જ અચર (તસ અને થાવર) ઉભય પ્રકારના પ્રાણીની હિંસાથી દૂર રહેવું, તેણે (ભિક્ષુએ) જીવને હાનિ કરવી નહીં, કરાવવી નહીં, બીજાને તેમ કરવામાં સમ્મતિ આપવી નહીં. "

તેજ પ્રમાણે ધમ્મપદ (૨૬,૨૩) માં:—

" જે ચરાચર પ્રાણીની હિંસાથી દૂર રહે છે તેને હું બ્રાહ્મણ કહું છું; જે પોતે હિંસા કરતો નથી, અને અન્યને હિંસા કરવા પ્રેરતો નથી (તેને હું બ્રામ્હણ ગણું છું.) "

" સારુપ્યમત્તનો—આત્માનું સારુપ્ય—અર્થાત્ જ્યાં જ્યાં જીવ છે ત્યાં ત્યાં તેના આત્માના જેવું જ કાંઈ છે " એ વાત ભિક્ષુએ ભૂલવી જોઈએ નહીં.[૨૪]

" લીલા રોપાઓને પગનીચે ચગદી નાખવાથી દૂર રહેવાને, વનસ્પતિ જીવનો હિંસાથી બચવાને, ઘણા નાના જીવોની જિંદગીનો ક્ષય થતો અટકાવવાને "[૨૫] માટે વર્ષા ઋતુમાં પર્યટન કરવાની ના કરી હતી. જે ફળોને અગ્નિથી, છરીથી, નખથી અચેતન કરવામાં આવ્યા હોય અથવા જેમાં એક પણ બીજ રહ્યું ન હોય અથવા જેમાં બીજનો (અર્થાત્ બીજમાં રહેલી બીજાં ફળો ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિનો) ક્ષય થઈ ગયો હોય, તેવાં જ ફળો ખાવાની રજા આપવામાં આવી હતી.[૨૬] આ સાથે—એટલે વનસ્પતિ જીવની અહિંસા સાથે " ઘાસ વગરની " જગામાં અન્નના અવિશિષ્ટ ભાગને ફેંકી દેવાનો આદેશ પણ ઘણે સ્થલે કરવામાં આવ્યો છે.

આ બધું તો બૌદ્ધ ભિક્ષુને ઉદ્દેશીને વિવેચન થયું. હવે આપણે એ નિર્ણય કરવાનો છે કે બૌદ્ધ ગૃહસ્થ માટે આ નિયમો છે કે નહીં ? અને જો હોય તો તે કેટલી મર્યાદા સુધી.

જૈનોની સ્થૂલ અહિંસાના જેવું એમાં પણ કાંઈ હોવું જોઈએ એ વિચાર, દૃષ્ટાંત તરીકે, સંયુત્ત નિકાય ૭, ૧, ૫ ના ઉલ્લેખથી દૃઢ થાય છે. તે સ્થળે જ્યારે અહિંસક નામનો બ્રાહ્મણ બુદ્ધપાસે આવીને કહે છે કે " આયુષ્માન્ ગોતમ, હું અહિંસક છું " ત્યારે તેનો ઉત્તર બુદ્ધ શ્લોકોમાં આ પ્રમાણે આપે છે:

" તું જેમ કહે છે તેમ ભલે તારું નામ અહિંસક હો: પરંતુ જે કાયાથી, વચનથી, અને મનથી કોઈની હિંસા કરતો નથી તેવો અહિંસક તું થા. કેમ કે તે જ ખરો અહિંસક છે જે બીજાની હિંસા કરતો નથી. "

પુનઃ અંગુત્તરનિકાય (૩, ૧૫૩ comp,૧૦, ૨૧૨ માં આપણે વાંચીએ છીએ કે:—

" હે ભિક્ષુઓ ! ત્રણ કાર્યવાળો માણસ નરકગામી થાય છે. કયા તે ત્રણ કાર્યો ? જે પોતે જીવની હિંસા કરતો હોય, બીજાને હિંસા કરવા પ્રેરતો હોય, અને બીજાને હિંસા કરવામાં સમ્મતિ આપતો હોય. "

" હિંસા, હે ભિક્ષુઓ ! હું ત્રણ પ્રકારની ગણું છું. લોભથી કરાએલી, દોષ—વિકારથી કરાએલી, અને અજ્ઞાન-મોહથી કરાએલી. "

આ વચનો અંગુત્તર નિકાય (૧૦—૧૭૪) માંનાં નિયમની જેમ માત્ર ભિક્ષુઓ માટે જ કહેવામાં નથી આવ્યાં.

આ વિષયમાં સૌથી વધારે વિચારવા લાયક સુત્તનિપાતનું ધમ્મિક સુત્ત છે. ભિક્ષુના નિયમનું વર્ણન કર્યા પછી, તેમાં (શ્લોક ૧૮ વિગેરે) કહ્યું છે કે " હવે હું તમને ગૃહસ્થના ધર્મો કહીશ, જેનું પાલન કરવાથી મનુષ્ય (બીજા જન્મમાં) શ્રમણ અને અર્હત્ થાય છે. કારણ કે એક ભિક્ષુ પાસેથી જે નિયમોના પાલનની આજ્ઞા રાખી શકાય, તેવા નિયામો પાલવા ગૃહસ્થ, કદાચ સમર્થ થાય નહીં. " અને ત્યાર પછી " ચર તેમ જ અચર—તસ થવર—ઉભય પ્રકારના " વિગેરે ઉપર ઉતારેલા શ્લોકો બૌદ્ધ ઉપાસક ગૃહસ્થના ધર્મોની તે ગણના ગણાવે છે.

આથી એ વિચાર સૂચવાય છે કે, જો કે " અચર-જીવો " એ પદનો બૌદ્ધ મતમાં અર્થ માત્ર " વનસ્પતિ-યોની " એટલો જ થાય છે, છતાં ચર અને અચર બન્ને પ્રકારનો અહિં સમાવેશ કરવામાં આવેલો હોવાથી બૌદ્ધ ધર્મી ગૃહસ્થ, જૈન ઉપાસક કરતાં વધારે વ્યાપક અર્થમાં અહિંસાનું પાલન કરે છે. પરંતુ કદાચ એ વિચાર બરાબર પણ નહીં હોય. કારણ કે પિટકોમાં એક જ શબ્દ ઘણી વાર જુદા જુદા અર્થમાં પ્રયોજાએલો નજરે પડે છે, અને તેથી તસ અને થાવરનો જે અર્થ અહિં એ લોકો કરતા

ते घणे भागे फुजबोले पोताना भाषांतरमां कर्यो छे तेवो ज हतो: एटले बस " जे भुंजे छे ते " अने थावर " जे बलवान् छे ते. "

गमे तेम हो, पण ए तो स्पष्ट छे के बौद्ध गृहस्थने मात्र जाते हिंसा करवामांथी ज नहीं, परन्तु मत्स्य अथवा मांस वेचातुं लेवामांथी, तेम ज अन्य रीते पण प्राणी वधने उत्तेजन आपवामांथी पण अलग रहेवानुं कहेवामां आव्युं हतुं. केम के जे माणस मत्स्य अथवा मांस खरीदे छे ते माछीमार अथवा कसाईना कार्यने अनुमति आपे छे ज. खरुं जोतां तो ते वधारे (पाप) करे छे. ते " बीजा पासे हिंसा करावे छे " " हिंसाने उत्तेजन आपे छे " अथवा (महाभारत १३, ११३, ४०) भीष्मना शब्दोमां कहीए तो ते " पोताना पैसा वडे हिंसा करे छे. "

हुं मानुं छुं के महावग्ग (६, ३१) ना उल्लेखमां रहेलो अर्थ आ ज छे. ए स्थळे राजा पवतमंस–एटले कोईए तैयार करेलुं मांस मंगावे छे, जेनुं परिणाम ए आवे छे के बलदना एक घातक तरीके तेनी निंदा करवामां आवे छे. वळी संयुत्त निकाय (१४; २५.३) जुओ. त्यां हिंसा करनाराओ साथेना संसर्गने पण निंदवामां आव्यो छे. महाभारत (१३, ११३, ४७) मां कह्युं छे के सात माणसो जीव–भक्षक छे, एटले हिंसानुं पाप करे छे. जेम के–जे माणस ते प्राणी ने लावे छे, जे अनुमाते आपे छे, जे हणे छे, जे वेचे छे, अथवा खरीदे छे, जे मांस तैयार करे छे, अने जे तेने खाय छे. छेल्ला बेने अपवादरूप गणिए तो बुद्धे कहेला नियमोने अनुसरतो ज महाभारतनो–आ उल्लेख छे. जो के बुद्धना अनुयायीओना वर्तन साथे तो ते असंगत छे.

परंतु कोई शंका करे के, जो गृहस्थ मांस वेचातुं पण लई शके नहीं तो भिक्षुओने जे त्रण प्रकारे शुद्ध एवा मांसने लेवानी रजा आपवामां आवी छे, ते मांस क्यांथी आवे ? आनो तो उत्तर स्पष्ट छे के बौद्ध साधुओ गमे त्यांथी भिक्षा ग्रहण करता हता; मात्र बुद्धानुयायी पासेथी ज नहीं.[४]

आपणा आ ऊहापोह उपरथी आपणे ए निश्चय उपर आवीशुं के पुराणा बौद्ध धर्ममां भिक्षु मांसाहार कचित् ज करतो, अने गृहस्थ तो तेना करतां पण ओछी वखत मांस खातो. केम के गृहस्थ कांई भिक्षा मांगतो नहीं. परंतु तेने प्रवास विगेरेना प्रसंग दार्मियान बौद्धेतर वर्ग पासेथी तेवो खोराक लेवानी रजा आपवामां आवी हती.

संपूर्ण अहिंसानुं पालन तो मोटामां मोटा ज्ञानी पुरुषने माटे पण अशक्य छे. अने जेम घणा माणसो धारे छे तेम आ कांई नवी पण शोध नथी. आ विषयमां महाभारतना वनपर्वमांनी धर्मव्याध–भक्तिमान शौनिकनी मनोरंजक वार्ता वांचवा जेवी छे. तेना अंते कहेलुं छे के ' चालवामां, बेसवामां, सुवामां, खावामां, विगेरे दरेक क्रियामां अने दरेक बाबतमां असंख्य प्राणीओनी हिंसा थाय छे. तेथी जगत्‌मां कोई अहिंसक नथी. (नास्ति कश्चिदहिंसकः)' आ निर्विवाद सत्य छे. आपणने जीववा माटे जीवनी हिंसा करवी पडे छे, ए आ जीवननी एक अत्यंत दुःखदायक बीना छे; "आ बधुं जीवता प्राणीओथी व्याप्त छे " अने " आ सर्व जीवता प्राणीओथी ग्रस्त छे. " (जीवैर्ग्रस्तमिदं सर्वं) ए उल्लेख सत्य छे. तेम छतां पण सर्व अनावश्यक हिंसाथी बचवानी आपणी फरज छे. ज्यां ज्यां आपणाथी बनी शके त्यां त्यां दुःख उत्पन्न थतुं अटकाववानी अने उत्पन्न थएल दुःखने घटाडवानी आपणी फरज छे. वृद्ध भीष्मना शब्दो (महाभारत–१३,११६,३४) ध्यानमां राखवा जोईए के. " जीवनदानथी अन्य महत्तर दान हतुं नहीं अने थशे नहीं. "

प्राणदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति

* *

[आ आखा लेखमां आवेली टीपो आ नीचे एक साथे ज आपी देवामां आवे छे.—संपादक.]

१ शॉपनहॉर, ग्रन्हेलज डर मॉरल, रेक्लम, पु० ३, पान ६२१

२. जेकॉबी, जैनसूत्र, पु. २, पा० ३१, ३४.

३. जेकॉबी, जैनसूत्र, पु. १, पा. ५

४. चातुर्भौतिक देहवाळा असंख्य आत्माओ छे. एवा बधा देह एकस्थाने भेगा थवाथी ज तेओ दृष्टिगोचर थाय छे. जेकॉबी.

५. जीवविचार तथा अन्य ग्रन्थोने आधारे तेनो अर्थ 'वनस्पती अने चारभूतो सिवाय अन्य सर्व' एम थाय छे.

६. अमितगतिनुं सुभाषितसंदोह, २१; ३, ५, तथा २१; ८, ९,

७. अमितगतिनुं सुभाषितसंदोह, २२; २,

८. " " " २२, ३

९. सरखावो, डयूसेननुं Geschich teder Philosoh hie, I,२, पा० ३४०. 'भिक्षा' ना अर्थ उपर तेनो आधार छे.

१० ब्युहर्स, Eine indische Speiseregel. जर्मन ओरिएन्टल सोसायटीनुं जर्नल १९०७ पा० ६४१

११. याज्ञ० १; १७७, वसि० १४; ३९, गौ० १७; २१, मनु ०५; १८, आप० १; ५, १७, ३७, विष्णु० ५१; ६.

१२ Schrader, Die Fragen des Koenigs Menandros परिशिष्ट, पा० २७

१३. पहेलां घणी वखत आ प्रमाणे करवामां आव्युं हतुं तेम; जुओ उपर.

१४. अल्पदोषमिह ज्ञयम् (१३, ११५, ४९).

१५. आ रिवाजनी तरफणमां तेम ज विरुद्धमां घणुं लखायुं छे, जुओ महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्रीनुं Notices on San Mss., 1907, p, . घणे भागे आ बाबतमां मध्व सुधारक हता. महाभारत १३, ११५, ५६ मा जणाव्युं छे के "पूर्वकल्पमां यज्ञपशु चोखाना लोटनो (व्रीहिमय) बनावता, अने ते वडे शुभ लोकनी इच्छावाळा पुरोहितो यज्ञ करावता एम कहेवाय छे." ते ज स्थळे ६३ मा श्लोकमां जैनधर्मनी असर जणाय छे ज्यां भीष्म मधु मांसनो उपयोग करवानो निषेध करे छे.

१६ 'Die Dharmapariksha des Amitag ati, Leipzig' 1905 मां एम० मीरोनोए तेनुं पृथक्करण कर्युं छे., पा० ३८.

१७. प्रो० जकोबीए तेनो अनुवाद कर्यो छे. सेक्रेड बु० ई०; पु० ४५, पा० २४३ तथा ४१५

१८ पूर्वपक्षीए शंका उठावी छे ते प्रमाणे शक्य नथी. विरुद्धपक्षमां बंधबेसता दृष्टान्तनुं विचित्र रूपांतर करवाने बदले लेखके एटलु ज कहेवुं जोईतुं हतुं के भूलथी हणेला प्राणीने खावामां कांई पाप नथी.

१९. "मत्स्यमांस" ओल्डनबर्ग, परंतु सरखावो अङ्गुत्तर निकाय ३, १५१, 'न मच्छं न मंसं.'

२० Dनी अन्य सूचना विषे जणावे छे.

२१ ओल्डनबर्गनुं विनयपिटकम्, पु० २, पा. ८१ वगेरे.

२२. आ स्थळे मूळमां कस्सप छे.पण ते कांई खास नोंधवा जेवी बाबत नथी,कारण के सगळा बुद्धोनो लगभग सरखो ज उपदेश छे

२३. दुष्ट ब्राह्मण.

२४ Rhys Davids. Buddhism, 8 th ed. पा० १३१, तथा सेक्रेड बु० ई०, पु०, १०. पा. ४०, ४१

२५. सुत्तनिपात १३, १० तथा अन्य स्थळे.

२६. महावग्ग, ३, १.

२७ चुल्लवग्ग, ५; ५, २ (सरखावो. ओल्डनबर्ग, पा. ७५)

२८. आ उपरथी एवुं अनुमान करवुं न जोईए के जे चुन्दनी पासेथी तेमने छेवटनी भिक्षा मळी हती ते बौद्धेतर तथा मांसाहारी हतो. केवी जातनो खोराक बनाववो ए निश्चय नहीं करी शकवाथी तेणे एक पाडोशीने मोकल्यो हतो. अहीं खास जाणवा जेवुं ए छे के आ फकरामां (४. १३—२०) चुन्द शब्द ज वपराएलो छे, तथा तेने 'लुहारना पुत्र' तरीके ओळखाव्यो छे; परंतु आगळ उपर तेने 'आवुसो' (४२) तथा 'भिक्खु' (४१) पण कहेलो छे.

डॉ० होर्नलना जैनधर्म विषेना विचारो.

[अनुवादक—श्रीयुत **नानालाल नाथाभाई शाह.** बी. ए.]

[स्वर्गस्थ डॉ० ए. एफ्. आर. हॉर्नलनुं नाम पुरातत्त्ववेत्ताओमां सुप्रसिद्ध छे. तेमणे चंडकृत प्राकृत लक्षण अने उवासगदसाओ सूत्र ए बे जैन ग्रंथो संशोधित–अनुवादित करीने प्रकट कर्या हता. ते सिवाय केटलीक जैन पट्टावलिओ पण तेमणे प्रसिद्धिमां मुकी हती. तेओ सन् १८९७ मां बंगालनी एसियाटिक सोसायटीना प्रमुख नेमाया हता. सन् १८९८ मां ज्यारे ए सोसायटीनी वार्षिक सभा मळी हती त्यारे तेमणे पोताना प्रमुख तरीकेना भाषणमां खास करीने 'जैनीजम् एण्ड बुद्धिजम्' तथा 'इन्डियन आर्किओलॉजी एन्ड एपिग्राफि' ए विषयो चर्च्या हता. आ नीचे आपेला विचारो तेमना ए ज भाषणमांथी लीधेला छे. आ मूळ भाषण प्रोसीडिंग्रास् ऑफ धी एशियाटिक सोसायटी ऑफ बेंगालना १८९८ ना फेब्रुवारीना अंकमां (पृ० ३९ थी ५३) प्रसिद्ध थएलुं छे.

सम्पादक.]

जैनधर्मविषेना आपणा ज्ञानमां गया वर्षोमां घणो ज वधारो थयो छे. हिंदुस्तानमां जैन अने बौद्ध ए बन्ने प्रतिस्पर्धी धर्मो होई सरखी रीते ज पुराणा छे, तो पण मध्यकालीन युगमां जैनधर्मनुं अस्तित्व ज नहीं हतुं एम आजपर्यंत घणा विद्वानोनुं मत हतुं; अने हजी पण तेना विश्वविख्यात प्रतिस्पर्धी—बौद्धधर्म—साथे सरखावतां मात्र नाम सिवाय तेनी विशेष माहिती जनसमुदायने नथी. परंतु हवे प्रो. जेकोबीए करेली गवेषणाओ, के जेमां प्रो. बुल्हर, में अने अन्य विद्वानोए पण मदद करी छे,[1] तेने लईने हिन्दुस्ताननना अति प्राचीन अने सुस्थित संप्रदायोमांनो ए पण एक छे एवी जातनुं पोतानुं अस्सल स्थान ए धर्मे पुनः प्राप्त कर्युं छे. ए ज गवेषणाओनो सारांश संक्षेपमां हुं आज अहीं आपवा इच्छुं छुं.

जैन आगमो विगेरेमां महावीरना नामथी ओळखाता महापुरुषने साधारण रीते जैन धर्मना प्रवर्तक तरीके मानवामां आवे छे. तेमनुं मूळ नाम वर्धमान हतुं. बौद्ध ग्रंथोमां तेमने 'नातपुत्त' एटले के नात क्षत्रियोना राजपुत्र तरीके ओळखाव्या छे. बुद्धनी माफक महावीर पण राजकुलोत्पन्न हता. तेमना पिता सिद्धार्थ ते नात अगर नाय नामनी क्षत्रिय जातना ठाकोर हता, जे वैशाली नामना आबादी भर्या शहेरना कोल्लाग नामना परामां रहेता हता. आ कारणथी महावीरने वैशालीय पण कहेवामां आवे छे. वैशालिनुं आधुनिक नाम बेसाढ छे, जे पटनाथी उत्तरे २७ मैल दूर आवेलुं छे. जुना वखतमां ते शहेरना त्रण भाग हता; वैशाली, कुंडग्राम अने वाणियगाम; जेमां अनुक्रमे ब्राह्मण, क्षत्रिय अने वाणीया रहेता हता. हालमां आ सर्व नाश पाम्युं छे. परंतु तेनी निशानीओ आधुनिक बेसाढ, बसुकुंड अने बनिया नामना गामोना रुपमां हजीए हयाती धरावे छे ते वखते तेमां गणस्वामिक नामनी विचित्र प्रजासत्ताक राज्यव्यवस्था चालती हती: एटले के त्यांना रहेवासी क्षत्रिय जातीना उमरावोनी बनेली एक समितिना हाथमां राज्यसत्ता रहेती हती. ए समितिमां एक सभापति रहेतो जेने राजा कहेवामां आवतो, अने तेनी मददमां एक उपसभापति अने बीजो सेनापति रहेतो. ए प्रजासत्ताक राज्यना ते समयना प्रमुख राजा चेटकनी त्रिसला नामे कन्या साथे सिद्धार्थना लग्न थयां हतां, अने तेना

---

१ आ बाबतनी विशेष हकीकत माटे प्रो० जकोबीना 'आचारांग अने 'कल्पसूत्र' तथा 'उत्तराध्यन' अने 'सूत्रकृतांग सूत्र' ना अनुवादो; तथा प्रो० बुल्हरनुं 'ईंडियन सेक्ट ओफ जैनस्' अने मारुं 'उपासक दशा'नुं भाषांतर जुओ. वळी, १८७९ मां प्रसिद्ध थयेलुं प्रो० जेकोबीनुं 'कल्पसूत्र' तथा 'ओरीजिन ओफ धी श्वेताम्बर एन्ड दिगम्बर' नामना जर्मन ओरीएन्टल सोसायटीना Volo XXXVIII जर्नलमां प्रसिद्ध थएलो तेमनो लेख वांचो.

ज पेटे ई० स० पूर्वे ५९९ मां अगर ते अरसामां महावीरनो जन्म थयो हतो. आ उपरथी तेओ एक उच्च कुलमां जन्म्या हता, ए स्वतः सिद्ध थाय छे. अने तेने लीधे ज बुद्धनी माफक महावीर पण शरुआतमां पोतानी जातना क्षत्रियो अने उच्च कुळना लोकोना संसर्गमां ज वधारे आव्या हता. महावीरनां लग्न यशोदा नामे स्त्री साथे थयां हतां. ते यशोदाने अनोज्जा नामनी पुत्री थई जेनां लग्न पण एक एवा ज उच्च कुळना जमाली नामना पुरुष साथे करवामां आव्यां. आ जमाली पाछळथी महावीरनो शिष्य थयो हतो. पोताना पिताना मरण सुधी महावीर गृहस्थवासमां ज रह्या. पितानी संपत्तिनो वारसो तेमना मोटा भाई नंदीवर्धने लीधा पछी, त्रीस वरसनी उमरे, पोताना कुटुंबना वृद्ध पुरुषोनी आज्ञा लईने तेमणे यतिजीवनमां प्रवेश कर्यो, के जे जीवनने युरोपनी माफक भारतवर्षमां पण कुलना जेष्ठ पुत्र शिवायना अन्य युवानो माटे महत्त्वाकांक्षाओ पूरी करवाना क्षेत्र तरीके मानवामां आवे छे. कोलागमां नाय वंशना क्षत्रियोए एक धार्मिक संस्था स्थापी हती, के जेवी संस्थाओ हजीए आ देशमां दृष्टिगोचर थाय छे. अहीं कलकत्तामां आपणी नजीक आवेला माणिकतोलामां ज आवी एक संस्था विद्यमान छे जेने आपणे बधा जाणीए छीए. आवी संस्थाओमां मंदिर अने मुनिओने रहेवा माटे उपाश्रय होय छे अने तेनी फरतुं उद्यान होय छे; केटलीक वखते तेमां स्तूप पण होय छे. आ बधाने साधारण रीते चैत्यना नामथी ओळखवामां आवे छे, जो के खरी रीते चैत्य नाम फक्त अंदरना मंदिर माटे ज वापरी शकाय. नाय वंशना आ चैत्यने दुईपलास कहेता, अने तेमां ते वंशमां पूज्य मनाता पार्श्वनाथना संप्रदायना साधुओ आवीने वसता हता.

पोताना यतिजीवनना आरंभकाळमां महावीर स्वाभाविक रीते ज दुईपलास चैत्यमां वसता पार्श्वनाथना संप्रदाय तळे रहेवा लाग्या; परंतु त्याग विषेना तेमना विचारो, जेमां दिगम्बरत्व मुख्य हतुं, तेने लीधे, ए संप्रदायना नियमो तेमने रोचक न लाग्या होय एम जणाय छे. तेथी एकाद वर्ष पछी तेओ त्यांथी नीकळी गया, अने निर्वस्त्र (दिगंबर) थईने विहारना दक्षिण तथा उत्तर प्रांतमां, तेम ज कदाचित् हालना राजमहाल सुधी तेओ खूब फर्या हता. नग्नवृत्तिवाळी दीक्षा लेवा तैयार थाय एवा अनुयायीओ मेळवतां तेमने बार वरस लाग्या होय तेम जणाय छे. ए पछी तेमने 'महावीर'नुं उपनाम मळ्युं अने ' जिन ' तरीके तेओ ओळखावा लाग्या. आ ' जिन ' पद उपरथी ज जैन अने जैनधर्म एवां नामो पडायां छे. महावीर प्रथम पार्श्वनाथना पंथमां दीक्षित थया हता, तेथी तेमनो उल्लेख जैन तीर्थंकरोनी परंपरामां पार्श्वनाथनी पछीना तीर्थंकर तरीके करवामां आवे छे. जैन मंदिरोमां पार्श्वनाथनी प्रतिमा स्थापवानुं पण आ ज कारण छे. जैन मंदिरोवाळा पवित्र पर्वतनुं पार्श्वनाथ पहाड (पारसनाथ-हिल) एवुं नाम पण आ उपरथी ज पडेलुं छे. पोतानी जींदगीना छेवटना त्रीस वरसोमां महावीरे धार्मिक उपदेश आप्यो छे, तथा पोताना संप्रदायनी व्यवस्था करी छे. ए काममां तेमने, तेमना मातृपक्षने लईने सगपणनां संबंधमां जोडाएला उत्तर अने दक्षिण विहारप्रदेशमांना विदेह, मगध अने अंग देशना राजाओनी घणी सहायता मळी हती. आ देशोमां आवेलां शहेरो अने गामडाओमां ज घणे भागे तेमणे पोतानुं धार्मिक जीवन गाळ्युं हतुं. परंतु नेपाळनी हद भणी आवेली श्रावस्ती नगरी तेम ज पारसनाथनी टेकरी सुधी पण तेमणे पोतानुं श्रमण लंबावेलुं खरुं. आ उपरथी एम कही शकाय के तेमनी धार्मिक मुसाफरी तेमना समकालीन बुद्धना जेटली ज लगभग हती. साधारण रीते तेमना जीवनमां एवा कोई खास बनावो बनेला नथी. बुद्ध तेमना एक भयंकर प्रतिस्पर्धी हता; तो पण तेमनी साथे कोई जाणवा जेवो वाद–विवाद थयो होय एम लागतुं नथी. जैनोना ग्रंथोमां बुद्धनो भाग्ये ज उल्लेख आवे छे, प्रत्युत ते ग्रंथोमां तत्कालीन एक बीजा ज मोटा धर्मगुरु साथे महावीरने थएला भयंकर वैरनो उल्लेख करेलो छे. आ धर्मगुरु ते गोसाल छे. जे एक मंखली (भिक्षु) नो पुत्र होई आजीविक

तेना साधुओनो आचार्य हतो. आ आजीविक साधु-संप्रदाय ते समये तेम ज तदनंतर पण एक घणो आगळ पडतो संप्रदाय हतो. तेनो उल्लेख अशोकना ई० स० पूर्वे २३४ ना स्तंभ-लेखमां पण आवे छे. परंतु त्यार बाद ते संप्रदाय नष्ट थयो लागे छे. ज्यारे महावीर पार्श्वमतमां नग्नावस्थामां फरवा लाग्या त्यारे आ गोसाल तेमनो पहेलो शिष्य थयो हतो एम लागे छे. पण छ वर्ष सुधी साथे रह्या पछी ते बन्नेमां विचार उत्पन्न थया, तेथी गोसाल तेमनाथी जुदो पड्यो अने एक नवा ज संप्रदायनो ते गुरु बन्यो; अने ते पण महावीर करतां बे वर्ष पहेलां. पोताने शिष्य पोतानी पहेलां गुरुपदने प्राप्त थयो, आथी स्वाभाविक रीते ज ते बेउमां वेर थयुं.[1] गोसाल शिवाय महावीरने मुख्य ११ शिष्यो हता ज सघळा भक्तिपूर्ण रह्या हता, अने तेमणे उपदेश आपी एकंदर ४२०० श्रमणो बनाव्या हता. आ श्रमणोमांथी महावीरनी पाछळ जीवतो रहेनार सुधर्मन् नामनो शिष्य हतो जेना लीधे हाल सुधी जैनधर्म चाल्यो आवे छे. महावीरनुं निर्वाण तेमना ७२ मा वर्षे पटना प्रांतमांना पावा नामना गाममां थयु हतुं के जे स्थान जैन लोकोमां हाल पण पवित्र मानवामां आवे छे. तेमना जन्म अने निर्वाणनी साधारण रीते मनाती तिथिओ ई० स० पूर्वे ५९९ अने ५२७ छे. अने हालनी शोधखोळो उपरथी पण ए बहु खोटां लागती नथी. आ प्रमाणे बुद्धनी मितिओ पण क्रमथी ई० स० पूर्वे ५५७ अने ४७७ छे. एटलुं तो निश्चित ज छे के आ बन्ने समकालीन हता, अने महावीर बुद्ध करतां पहेलां निर्वाण पाम्या हता. तेमनुं प्राबल्य पण बुद्ध जेटलुं ज हतुं, कारण के तेओ पण पोताना एक खास सम्प्रदाय चलावी शक्या छे. तेमणे खास करीने पार्श्वनाथना पंथने तो पोताना मतमां ज मेळवी लीधो हतो के जेथी पार्श्वनाथना पंथनुं निर्ग्रंथ नाम तेमना पंथने पण लगाडवामां आव्युं हतुं. ए बेऊना मतमां फक्त न्यूनाधिक वस्त्रो पहेरवा विषे ज मुख्य फेर पडतो हतो. पार्श्वनाथना पंथना साधुओ ते वखते तो आ बाबतमां एकमत थई गया हता. परंतु वस्त्र विषेनो आ मतभेद केटलाक समय सुधी गूढावस्थामां रहीने थोडा सैका बाद ए फरीथी जागी उठ्यो, अने आगळ उपर आपणे जोईशुं तेम, तेना लीधे श्वेताम्बर अने दिगम्बर एवा बे खास विभाग पडी गया. पहेलां जैन लोको निर्ग्रंथ अगर निगण्ठना नामथी ओळखाता हता. उपर कहेला ई० स० पूर्वे २३४ ना अशोकना स्तंभ-लेखमां पण आ ज नाम तेमने माटे वापरेलुं छे. त्यार पछीना घणा सैकापर्यंत पण आ ज नाम चाल्युं आव्युं हतुं. कारण के ई० स० पछीना सातमां सैकामां आवेला चीनी मुसाफर हुएनत्साग पण तेमने ए ज नामथी ओळखे छे. आ नाम केवी रीते उडी गयुं अने तेने स्थाने "जैन" नाम केम प्रचलित थयुं ते हजीपर्यंत समजायुं नथी.

अहिंया क्राईस्ट अने महावीरना साम्य विषे थोडीक टीका करवानुं मने मन थाय छे. ते बेऊने बार शिष्यो हता के जेमांथी बेऊने एक शिष्याभास हतो. आवी जातना केटलाक समान बनावोने लीधे बौद्धधर्म अने ईसाईधर्म वच्चे जेम परस्परनी सापेक्षिता बताववामां आवे छे, तेम जैन अने ईसाई वच्चे बताववानुं काम कोईए करेलुं नथी. आवा बनावोने घणी वार वधु महत्त्व आपवामां आवे छे. उपर्युक्त बनाव पण जरा विचारास्पद छे, जो के आवा छूटा छवाया बनावो बहु प्रमाणभूत तो न ज लेखाय.[2] जैन अने बौद्धधर्मनी तपास चलावतां मालुम पडे छे के महावीर अने बुद्धना जीवन तेम ज सिद्धान्तोमां घणी नानी मोटी बाबतोमां साम्य रहेलुं छे. आ साम्य उपरथी ज महावीरना वृत्तान्तमां तथा तेमनी

---

१ गोसाल विषे प्रो० जेकोबीना विचारो सहेज जुदा छे. तेमना मत प्रमाणे गोसाल अने महावीर बन्ने स्वतन्त्र मतस्थापक हता के जेओ पात पोताना पंथोने भेगा करवाना हेतुथी ज ६ वर्ष साथ रह्या हता, परन्तु संघटित पंथनो कोण नेता थाय ते विषयमां तकरार पडतां तेओनी वच्चे विरोध उत्पन्न थयो हतो.

२ आज वेपारीमां वात विषेना साम्य वाळा आवा एक बीजा बनाव माटे जुओ प्रो० जेकोबीनो उत्तराध्ययनसूत्रनो अनुवाद, पान २९.

पहेलां जैन धर्मना अस्तित्वमां घणाओने अश्रद्धा रहेली हती. परंतु उपर आपेली महावीरना जीवननी रूपरेषा उपरथी जणाशे के तेमनुं जीवन बुद्धना जीवन करतां चोक्कस भिन्न ज छे.

सिद्धान्तो अने व्रत—नियमोना साम्यनी बाबतविषे बोलतां पहेलां मारे जणाववुं जोईए के बौद्ध अगर जैन ए खरी रीते धर्मो नथी; परंतु एक जातनी साधु-संस्थाओ छे. युरोपमां जेम डॉमिनिकन्स अने फ्रान्सीस्कन्स जेवा साधुसंप्रदायो छे तेवा आ पण भिक्षुसंप्रदायो छे. बंने ई. स. पूर्वे पांचमा सैकाना आरंभमां अने छठ्ठा सैकाना अंतमां स्थपायेला छे. ए वखते उत्तर हिन्दमां धार्मिक चळवळ पुरजोशमां चालती हती. एवा घणा संप्रदायो ए वखते उद्भव्या हता. परंतु तेमां आ बे ज प्रचलित रही शक्या. त्रीजो संप्रदाय 'आजीविको' नो हतो, जेना विषे में उपर कहेलुं ज छे. आ उपरथी एम नहीं मानवानुं के आवा भिक्षु संप्रदायो ते वखतनी परिस्थितिमां खास सुधारारूप अगर नवा ज हता. आवी संस्थाओ मूळ चालता आवेला ब्राह्मण धर्ममां पण हती. ब्राह्मण धर्ममां चार आश्रमो विहित छे; जेम के विद्याभ्यासने माटे ब्रह्मचर्याश्रम, पछी गार्हस्थ्य, पछी एकांतवास माटे वानप्रस्थ, अने त्यार बाद छेल्लां वर्षो माटे संन्यस्त. आ संन्यासीओनी ढबे ज जैन अने बौद्धना संप्रदायो ई. स. पूर्वे छठ्ठा सैकामां अस्तित्वमां आव्या हता. फेर मात्र एटलो ज के जैनो तथा बौद्धोनी माफक ब्राह्मणोए मोटी भिक्षुसंस्थाओ रची न हती. ए धर्मोए ब्राह्मण संन्यासीओना विधि-नियमोनुं ज अनुकरण कर्युं हतुं. अने तेथी ज बौद्ध अने जैनोमां साम्य होवानुं कारण मळे छे. अहिंसानो सिद्धान्त जे बौद्धो अने जैनोमां खास अगत्यनो गणाय छे ते मूळ ब्राह्मण धर्मना संन्यासीओमांए पळातो हतो. काळक्रमे ब्राह्मणधर्ममां एवी एक वृत्ति उद्भवी के संन्यस्त आश्रममां ब्राह्मण शिवाय बीजा लोको दाखल थई शके नहीं; अने प्राय: ए कारणने लीधे ज, ब्राह्मणेतर ज्ञातिओ माटे आ जैन अने बौद्ध संन्यासी आश्रमो स्थपाया हता. एमां पण प्रथम तो क्षत्रिओने ज अवकाश हतो. परंतु पाछळथी, बीजा लोकोने पण दाखल करवामां आव्या. ब्राह्मण संन्यासीओ आवा ब्राह्मणेतर संन्यासी वर्गो तरफ घृणानी नजरथी जुवे, ए स्वाभाविक छे, अने तेथी तेमनामां परस्पर भेदभाव अने विरोध उत्पन्न थाय ए पण तेटलुं ज स्वाभाविक छे. आ कारणथी ब्राह्मण संन्यासीओनी जेम जैन अने बौद्ध श्रमणोए एकला कर्मकांडने ज तिलांजली आपी अटकी नहीं रह्या, पण तेमणे एक पगलुं आगळ जई वेदाध्ययन पण बंध कर्युं, के जेने लीधे तेओ खरी रीते ब्राह्मणधर्मथी बिल्कुल छूटा पड्या. जैनधर्म अने बौद्धधर्म ए सुधारक पक्षनी चळवळो होई खास करीने तेओ वर्णाश्रम सामे बंड उठावनार छे, एवुं जे मत अद्यापि प्रचलित जणाय छे ते तद्दन खोटुं छे. तेओ तो फक्त ब्राह्मण संन्यासीओना स्वातंत्र्य सामे ज विरोध उठावे छे. वर्णाश्रम धर्म उपर तेओनो धसारो नथी. तेमना संप्रदायोमां पण, जो के उदार रीते बधाने अवकाश छे एम जणाववामां आवे छे, छतां घणा भागे मात्र उच्च वर्णोने ज दाखल करवामां आवे छे. एक वात खास जाणवा जेवी छे, के आ पन्थोने माननारा गृहस्थ लोको साधारण रीते धार्मिक बाबतोमां पोताना पंथना व्रतनियमोने ज अनुसरनारा हता, तेम छतां, गर्भाधान, लग्नविधि, उत्तरक्रिया विगेरे संस्कारोमां तेओ ब्राह्मण-धर्मना उपाध्यायोने निमंत्रता हता. बौद्ध अगर जैन भिक्षुओ ते लोकोना धर्माचार्य तरीकेनुं काम करता, परंतु तेमनुं गोरपदुं तो ब्राह्मणो ज करता रहेता हता.

आ उपरथी जणाशे के बौद्ध अने जैनधर्ममां घणुं साम्य होवानुं कारण तेमना वखतनी परिस्थिति ज हती. बाकी सिद्धांत अने प्रक्रिया विषयक तेओमां घणी भिन्नताओ छे, अने ते एटली बधी तथा एटली झीणवटवाळी अने पारिभाषिक छे के आवा नाना लेखमां हुं भाग्ये ज तेनुं विवेचन करी शकुं. तेम ज तेवुं विवेचन घणाने नीरस पण लागे. जेमने तेमां रस पडे एम होय तेमने प्रो. जेकोबीनां जैन सूत्रोना भाषांतरोनी प्रस्तावनाओ जोवा मारी भलामण छे. बे बाबतो के जेना विषेनो उल्लेख बीजे कोई ठेकाणे थयो नथी ते, मारा मत प्रमाणे,

आ बे धर्मोना सिद्धांत अने प्रक्रियामांनो खास तफावत जणावी शके छे. 'त्रिरत्न' नामनो प्रख्यात शब्द बौद्धो अने जैनोने सामान्य छे, जेनो अर्थ बौद्धो बुद्ध, धर्म अने संघ करे छे; अने जैन लोको सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, अने सम्यक्आचार करे छे. बेऊ धर्मना आ मुद्रालेखो खास विचारसूचक छे. बौद्ध लोकोनो मुद्रालेख आधिभौतिक अर्थवाळो छे अने जैनोनो आध्यात्मिक अर्थमां छे. पहेला अर्थ उपरथी जणाय छे के बुद्ध धर्ममां व्यावहारिक अने जीवंत उत्साह भरेलो छे, अने बीजा अर्थ उपरथी जणाय छे के जैन धर्म विचारोमां वहनारो अने असाहसिक छे. आ अनुमानने बेऊ धर्मना इतिहासथी समर्थन मळे छे. पोताना चपळ अने प्रवर्तक उत्साहथी बौद्धधर्म, हिंदुस्ताननी बहार प्रसर्यो, अने फक्त एक भिक्षु संप्रदायमांथी विकासित थईने सिलोन, बर्मा, तिबेट, तथा अन्य भागोमां वधीने एक महान् धर्म तरीके परिणत थयो; पण जैनधर्म शान्तवृत्तीथी मात्र हिन्दमां ज चालु रह्यो. बीजो शब्द जेनो जैनो अने बौद्धो बंने उपयोग करे छे ते 'संघ' शब्द छे. जैनोना संघमां चार प्रकारना माणसोनो समावेश थाय छे—जेम के भिक्षु, भिक्षुणी, श्रावक अने श्राविका. बौद्ध लोकोना संघमां फक्त भिक्षुओ अने भिक्षुणीओनो ज समावेश थाय छे. ते पंथमां इतर लोकोने कोई खास नामथी संप्रदायमां जोडवामां आव्या नथी. पोताना पंथना लोको साथे कोई प्रकारना व्यवस्थित संबंध विना कोई पण भिक्षुसंघ नभी शके नहीं, ए स्पष्ट ज छे. कारण के पोताना संप्रदायना अस्तित्वनी खातर पोताना पंथना लोको पासेथी द्रव्य विगेरे मेळववानी दरेक संघने खास करीने जरूर रहे छे ज. पण ए बेऊ पंथोनुं वर्तन पोताना उपासको तरफ तद्दन भिन्न भिन्न प्रकारनुं हतुं. बौद्धोमां भिक्षुओनी बाबतमां कांई कहेवा—करवानो बीजाओने कोई अधिकार न हतो. लोकोने संघमां कोई विधिपुरस्सर दाखल करवामां आवता न हता. तेमने कोई जातनी प्रतिज्ञाओ लेवानी न हती. तेमना आचारोने माटे कोई विधि—निषेधनो खास ग्रंथ न हतो. तेमने माटे कोई विशिष्ट धर्मक्रिया करवामां आवती नहीं; तथा कोई दुष्टने बहिष्कृत पण करवामां आवतो नहीं; टुंकाणमां एज के तेमना पंथना साधारण लोकोनी स्थिति एवी शिथिल तथा असंबद्ध हती के बौद्ध पंथनो अनुयायी साथे साथे बीजा पंथनो पण होई शके; कारण के ते माटे कोई जातना खास नियमो न हता. हुं बुद्धना महान् संघमांनो एक छुं तथा तेना धार्मिक फायदाओ हुं उठावुं छुं; आवी मगरुरीनी लागणी राखवानो अधिकार बौद्ध उपासकोने न हतो. जैनोना श्रावकादिनी स्थिति आथी जुदी ज छे. बौद्ध उपासक करतां तद्दन जुदी ज रीते तेओ पोताना संघना खास आवश्यक अंग तरीके गणाता; अने पोतानो गाढ संबंध भिक्षुओ साथे जोडाएलो छे एम तेओ मानता. आ बाबतमां बौद्धधर्मे हिमालय जेवडी मोटी भूल करी छे; अने आ भूलने लीधे ज ते हिंदुस्तान के ज्यां तेनो खास प्रादुर्भाव थयो हतो त्यांथी, जडमूळथी जतो रह्यो छे. आगळ वधतां ई. स. ना सातमा सैकाथी असरकारक बनता जता लोकोना धार्मिक वळणमां फेरफार थतो होवाने लीधे प्रख्यात चीनी मुसाफर हुएन्त्संगना समयमां बौद्ध धर्ममां ओट थतो गयो; अने तेमां पण काळक्रमे नवमा सैकामां शंकराचार्ये प्रकटावेली ब्राह्मण धर्मनी संस्थाओना सचोट विरोधने लीधे पड्या पर पाटु मारवा जेवुं थयुं. आखेर ज्यारे बारमा अने तेरमा सैकामां भारतवर्ष उपर, उच्छेदक मुसलमानोनी स्वारीओ थवा लागी त्यारे, तारानाथ अने मिन्हाजुद्दीनना तवारीखोमां जणाव्या प्रमाणे थोडा घणां बाकी रहेला बौद्ध विहारो तथा चैत्योने सखत आघात पहोंच्यो, जेथी बौद्धधर्म केवळ छिन्नभिन्न दशामां आवी अंत नाश पाम्यो. तेणे मूळथी ज पोताना उपासकोने भिक्षुसंघसाथे गाढ संबंधमां राख्या नहीं, तेम ज पाछळथी पण ते संबंध योजाई शक्यो नहीं, तेथी करीने साधारण उपासको पाछा ब्राह्मण धर्ममां जोडाई गया अने तेथी ब्राह्मणो केवळ गोरपदुं करवाने बदले, पुनः बौद्ध धर्मना पहेलांना समय प्रमाणे गोरपदुं तेम ज आचार्यपदुं बंने करवा लाग्या. फक्त थोडाक लोको, अने खास करीने बंगाळना केटलाक लोको, ब्राम्हणधर्ममां न मळतां बुद्ध

तथा भिक्षुसंघ विना पण बौद्ध धर्मनी पतित अने विशीर्ण अवस्थामां पड्या रह्या के जेमने जोतां साधारण रीते पहेलाना जाहोजलालीवाळा बौद्धधर्मनुं भाग्ये ज कोईने भान थाय. बौद्धधर्मना आ अवशेष रहेला उपासकोनी शोध करवानुं मान आपणा जोईन्ट फिलोलोजिकल सेक्रेटरी पंडित हरप्रसाद शास्त्रीने घटे छे. तेमणे ज प्रख्यात बौद्ध त्रयीमांना 'धर्म' ना अनुयायी तरीके ते लोकोने शोधी कहाड्या छे, अने १८९५ ना आपणी संस्थाना जर्नलमां तेमनी हकीकत प्रसिद्ध करी छे. आ लोको उपरथी ज धर्मतोला स्ट्रीट आवुं नाम पडायुं छे, तथा हजी पण जाऊं बाजार स्ट्रीटमां तेमनुं धर्मचैत्य मौजूद छे.

बौद्ध धर्मना आ प्रकारना विनाशकाळ दरम्यान जैन धर्मनी स्थिति तद्दन जुदी ज हती. अने तेथी ते हजी पण निर्विघ्नपणे चाल्या करे छे, तथा तेना साधुसंघो अने श्रावकसंघो हजी पण पश्चिम तथा दक्षिण हिन्दमां अने बंगालमां दृष्टिगोचर थाय छे. तेमनी एवी एक संस्था आपणी नजीकमां आवेला माणिकतोला परामां ज मौजुद छे. जुना वखतनी धार्मिक भिक्षुसंस्थाओमांथी हाल जीवती जागती एवी फक्त ए एक जैनधर्मनी ज संस्था छे. अलबत् आवी ऐकांतिक संस्थाना इतिहासमांथी जनसमाजने रस पडे एवो खोराक तो भाग्ये ज मळी शके; तो पण ज एक बाबत आपणा ध्यान उपर खास पसारो करी शके छे ते ए छे, के आ धर्म पण श्वेताम्बर अने दिगंबर एवा बे पंथमां विभक्त थई गएलो छे. आ विभाग थवानुं कारण ए शब्दो उपरथी ज सूचित थाय छे. एटले के न्यूनाधिक वस्त्रो पहेरवाना विखवाद उपरथी आ भागो पडेला छे. आ उपरांत पाछळथी सिद्धांत अने प्रक्रियामां पण बेऊ संप्रदायोने केटलोक भेद थएलो छे, पण ते जनसमाज माटे विशेष रसोत्पादक नथी. जैनधर्मना आ बंने संप्रदायो विभक्त तेम ज विरोधी अवस्थामां रह्या करे छे. बेऊनुं साहित्य पण भिन्न छे; परंतु 'अंगो' अने 'पूर्वो' ना नामे जे जुनुं धार्मिक साहित्य छे ते मात्र श्वेताम्बरोनुं ज गणाय छे. वखत जतां आ बे विभागोमांथी संप्रदायो अने साधुओना अनेक फांटा निकळ्या छे. बौद्धोनो तथा जैनोनो ऐतिहासिक शोध एकसरखी रीते वृद्धिंगत थएलो छे. तेओए नियमित रीते पोताना धर्माचार्यो तथा गुरुओनी पट्टावलीओ जाळवी राखेली छे, जेमांनी घणी खरी प्रो. बुल्हेर, डॉ. क्लाटे, तथा मे इंडियन एन्टीक्वेरीमां अने एपिग्राफिआ इंडिकामां प्रसिद्ध करी छे. विशेषमां तेमना धार्मिक तथा अन्य पुस्तकोमां पण ऐतिहासिक बाबतोनी नोंधो वारंवार जोवामां आवे छे. आवी बाबतोने उपर्युक्त विद्वानो उपरांत प्रो. वेबर तथा प्रो. भाण्डारकरे पण जुदी जुदी कार्डोने संगृहीत करी छे.[४] ए साहित्यमांथी हजी पण एवी घणी बाबतो तारवी कढाय तेम छे, जेनी टूंक रुपरेषा हुं अहिं नीचे वर्णवुं छुं.

महावीरनुं निर्वाण थयां पछी बीजा सैकामां—ई०स० पूर्वे लगभग ३१० मां—मगध देशमां एटले हालना विहार प्रांतमां द्वादश वार्षिक दुकाल पड्यो. ते वखते जैनधर्म विहारप्रांत ओळंगी बहार नीकळ्यो हतो एम जणाय छे. ते समये त्यांना राजा मौर्यवंशीय चंद्रगुप्त हतो. तथा अद्यापि अविभक्त जैनधर्मना आचार्यपदपर भद्रबाहु प्रतिष्ठित हता. दुकाळनी आफतमां केटलाक साधुओ साथे भद्रबाहु दक्षिण तरफ कर्णाटकमां नीकळी गया अने मगधमां तेमनी जग्या स्थूलभद्र भोगववा लाग्या. लगभग दुकाळना अंतमां, पण भद्रबाहुनी गेर हाजरीमां, पाटलीपुत्र (पटना)मां एक सभा थई जेणे अग्यार अंगो तथा चौद पूर्वो के जेनो समावेश बारमा अंगमां थाय छे ते भेगां कर्यां. दुर्भिक्षना आपत्ति-समयमां जे जे हरकतो पेदा थई तेनी असर जैन धर्मनी प्रक्रिया उपर पण थई. साधुओने माटे साधारण एवो नियम हतो के तेमणे नग्न ज रहेवुं जोईए; जो के अपवादरूपे केटलाक नबळा साधुओने अमुक वस्त्र पहेरवानी रजा पण आपवामां आवेली हती. मगधमां रहेला ते केटलाक साधुओने वखतनी जरुरीयात

---

४. जुओ प्रो. वेबरनुं 'केटलाग ऑफ जैन मेन्युस्क्रीप्टस्' १८८८ ने ९२; तथा प्रो. भांडारकरनो रीपोर्ट ऑफ धी सर्चे फॉर मेन्युस्क्रीप्टस् १८८३-४. विशेष हकिकत माटे वळी जुओ. प्रो. जेकोबीनी जैनसूत्रोनी प्रस्तावना (भाग २).

प्रमाणे एम लाग्युं के नग्न दशा छोडी आपणे हवे श्वेत वस्त्र पहेरवां जोईए. एथी उलटुं केटलाक साधुओ धर्मोधताथी ए विचारने वश न थतां पोताना वर्गना साधुओने माटे निर्वस्त्र रहेवानो फरजीयात विधि बनाव्यो, अने तेमनाथी अलग थई दूर जता रह्या. दुर्भिक्ष पछी ज्यारे फरीथी देश आबाद थयो त्यारे ते पेला साधुओ पाछा आव्या परन्तु तेमनी गेरहाजरीमां श्वेतवस्त्र पेहरवानो नियम रूढ थई गएलो होवाथी तेओ त्यांना साधुओ साथे भेगा मळी शक्या नहीं. आ रीते दिगम्बरो अने श्वेतांबरोनी भिन्नताना पायो नंखायो. आना परिणामे पाटलीपुत्रमां संगृहीत थएला धार्मिक ग्रंथोने दिगम्बरोए मान्य राख्या नहीं अने तेथी तेओ कहेवा लाग्या के अमारा 'पूर्वो' अने 'अंगो' नष्ट थई गयां छे. शरुआतमां आ विभाग बहु महत्त्वनो न हतो परन्तु केटलाक सैका पछी एटले लगभग ई. स. ७९ अगर ८२ मां आ विभागोए चुस्त-रूप धारण कर्युं. विभक्त थवा विषे बेऊ पक्षनुं ऐकमत्य छे; परन्तु विभक्त थवाना वर्ष माटे ३ वर्षनी भिन्नता जोवामां आवे छे. आ समये विहार प्रांतमांथी नीकळीने जैनधर्म घणी दूर सुधी पोतानो प्रसार कर्यो हतो तथा पोतानी केटलीक संस्थाओ अने पक्षो वधार्या हता; अने आपणे आगळ जोईशुं के आ वखते तेमणे मथुरामां पण एक सारी संस्था स्थापी हती. तवारीख उपरथी एम जणाय छे के, आ प्रमाणे विस्तृत थवानी प्रवृत्ति खास करीने, ई. स. पहेलानां त्रीजा सैकामां श्वेताम्बराचार्य सुहस्तिनना समयमां वधी हती. कारण के ते वखतनी पट्टावलीमां विभागो अने उपविभागोनी असाधारण भरती जोवामां आवे छे. अने एटलुं तो निश्चित ज छे के ई. स. पहेलांना बीजा सैकानी मध्यमां जैनधर्म ओरीसाना दक्षिण भाग सुधी पहोंची गयो हतो. केम के कटक आगळना खंडगिरि पर्वतना खारवेलना लेखमां जैनोनो खास उल्लेख थएलो छे.

काळक्रमे पाटलिपुत्रमां संगृहीत थएला जैन सिद्धान्तो फरी केटलीक अव्यवस्थामां पड्या, अने हस्तलिखित प्रतोना अभावने लीधे तेमना नाशनी पण तैयारी थवा लागी. तेथी तेमने व्यवस्थित करवानी जैन समाजने अत्यंत आवश्यकता लागी अने तेटलामाटे आखरे संप्रदायना एक मुख्य आचार्य देवर्धिनी देखरेख तळे गुजरातमां आवेला वल्लभी नगरमां एक सभा भरवामां आवी.

आ दंतकथा उपरथी एम जणाय छे के श्वेताम्बरोए सुरक्षित राखेला जैन सिद्धान्तग्रंथो ई. स. पहेलांना लगभग चोथा सैकाना अंत अथवा त्रीजा सैकाना प्रारंभ जेटला जुना छे, कारण के पाटलीपुत्रनी सभा लगभग ई. स. पूर्वे ३०० मां थएली; अने ते वखते ज आ आगमो संगृहीत थया हता. आ हकीकत उपरथी सूचित थाय छे के ए ग्रंथो ते वखत पहेलां पण विद्यमान होवा जोईए अने जैन दंतकथा पण एम कहे छे के महावीरे पोताना मुख्य शिष्य गणधरोने प्रथम 'पूर्वो' शीखव्यां हतां अने ते पूर्वो उपरथी गणधरोए नवां 'अंगो' बनाव्यां हतां. 'पूर्वो' एटले 'पहेलां'ना ग्रंथो अर्थात् 'अंगो' नी पहेलां थएला ग्रंथो. पाटलीपुत्रनी सभा वखते, जैनोना कहेवा प्रमाणे ते ग्रंथोमांनो केटलोक भाग नाश पाम्यो हतो, अने तेथी बाकी रहेला भागने बारमा 'अंग' तरीके संगृहीत करवामां आव्यो. एक जैन दंतकथा एम जणावे छे के मूळमां जे सिद्धान्त ग्रंथो हता, तेमांथी बाकी रहेला ग्रंथोने पाटलीपुत्रनी सभामां पुनः संशोधित करी ते समयने अनुकूल आवे तेवा नवा रूपमां गोठववामां आव्या.

जैन धर्म अने तेना इतिहास विषे आ प्रमाणे दंतकथाओ छे. त्रीसेक वर्ष पहेलां आ दंतकथाओने बिलकुल बेबजूद गणवामां आवती हती, परन्तु हवे तेवी वृत्तिने, जैन साहित्यमां देखाई आवती ऐतिहासिक चोकसाई अने झीणवटने लीधे सखत फटको लाग्यो छे. गत वर्षोमां प्रो. जेकोबी, प्रो. ल्युमॅन अने में प्रसिद्ध करेला जैन पुस्तको उपरथी आ दंतकथाओनी सत्यता विशेष मालुम पडती जाय छे. प्रो. जेकोबीए जैन सिद्धान्त ग्रंथोनी भाषा अने शैलीनी बारीक तपास करीने तेमना पुराणपणा विषेनुं पोतानुं प्रामाणिक मत प्रसिद्ध कर्युं छे, तो पण ज्यां सुधी आ दंतकथाओ विषे अचुक अने

स्वतंत्र पुरावा मळी शके नहीं त्यां सुधी तेमना उपर संपूर्ण विश्वास राखी शकाय नहीं, ए स्वाभाविक ज छे. परंतु हवे आवा स्वतंत्र पुरावानी शोधो पण गया वर्षोमां थएली छे, अने तेनुं मान वीएनाना प्रो. बुल्हरनी तीव्र बुद्धिने घटे छे. ई. स. १८७१ मां मेजर जनरल सर ए. कनींगहामे मथुराना कंकाली टीलाना खंडेरोमांथी शोधी काढेला लेखोनुं पुनर्निरीक्षण करीने प्रो. बुल्हरे तेमांना केटलाक लेखोमां जैनोना केटलाक आचार्यो अने विभागोनां खास नामो शोधी काढ्यां; अने तेथी ते वखतना आर्कीओलॉजीकल सर्वे खाताना वडा डॉ० जे बर्गेस द्वारा ते टेकराने बराबर खोदाववानी व्यवस्था करवामां आवी, जे मुजब डॉ० फुहररना अध्यक्षपणा नीचे १८८९ थी १८९३ सुधी अने पुनः १८९६ मां तेनुं खोदाण काम करवामां आव्युं. आथी बीजा घणा नवा लेखो हाथ लाग्या अने तेनी नकलो डॉ० बुल्हर तरफ रवाना करवामां आवी. तेमणे ते लेखोनुं परीक्षण करी तेमांथी केटलाक खास खास लेखो चूंटी काढ्या अने वीएना ओरीएन्टल जर्नलमां तथा एपीग्राफीआ ईंडीकाना प्रथम बे पुस्तकोमां प्रसिद्ध कर्या. आमांना केटलाक लेखो घणा उपयोगी छे. कारण के तेमां इंडोसिथीयन संवत् एटले के इंडो—सिथीयन राजा कनिष्क, हविष्क अने वसुदेव उपयोग करेला संवतनी मितिओ आपली छे. आ राजाओ ई० स० ना प्रथम बे सैकाओमां थएला छे अने तेमनुं राज्य हिंदना उत्तर—पश्चिम किनारांथी ठेठ मथुरासुधी प्रसर्युं हतुं. आ लेखोनी मिति, ते संवतना ५ थी ९८ मां वर्ष सुधीनी छे, जे ई० स० ना ८३ थी १७६ वर्षनी बराबर थाय छे. आमांना घणा लेखो तो जैन प्रतिमाओनी बेसणी ऊपर कोतरेला छे. तेमां ते मूर्ति बनावनार श्रावक अगर श्राविकाओनां, जे मंदिरमां ते मूर्ति स्थापित करवामां आवी तेनां, जे साधु अथवा साध्वीओना उपदेशथी ए कार्य करवामां आव्युं तेनां अने जे गण अगर संघना तेओ अनुयायी हता तेनां नामो आपेलां छे. आ समर्पणना लेखोमांथी घणी उपयोगी बाबतोना विश्वसनीय पुरावाओ मळी आवे छे.

प्रथम तो आ लेखोमां उपदेशक तरीके उल्लिखित साधु अगर साध्वीओना जे जे गण—संघ आदिनां नामो एमां आपेलां छे ते गणादि ई. स. ना पहेला अने बीजा सैकामां विद्यमान हता ए बाबतनो पुरावो कल्पसूत्र अने बीजा जैन ग्रंथोमांथी आपणने मळी आवे छे. जे कौटिक नामना गणनो एमां वारंवार उल्लेख थएलो छे ते गण सुस्थिताचार्ये स्थापेलो हतो. आ सुस्थित ई. स. पूर्वेना बीजा सैकाना पूर्वार्धमां संघना आचार्य तरीके विद्यमान हता. स्पष्ट रीते ज आ गण जैनोनी श्वेतांबर शाखानो हतो. आ रीते आपणने आ लेखो उपरथी ई. स. पूर्वेना बीजा सैकाना मध्यमां जैन श्वेतांबर संप्रदायनी विद्यमानतानो परोक्ष पुरावो मळे छे एटलुं ज नहीं पण ई. स. ना प्रारंभना बे सैकामां ए संप्रदायनो कौटिक नामे गण मथुरासुधी फेलाएलो हतो तेनो प्रत्यक्ष पुरावो पण मळे छे. तथा ए लेखोमां तेनो जे वारंवार उल्लेख आवे छे तेथी ते मथुरामां सारी पेठे जामेलो हशे एम पण स्पष्ट जणाय छे. ते समय बुलन्दशहेरमां पण एक एवी संस्था हती जेनो पुरावो ए लेखोमां आवता उच्चनगर अथवा वारण नामना समुदायना साधुओनां नामो उपरथी मळे छे. ए बन्ने नामो उक्त शहेरना जुनां नामो हतां.

बीजी बाबत ए छे के, संघना एक अंग तरीके साध्वी वर्गने जे गणवामां आवे छे तेनी हयातीनो पुरावो पण आ लेखो पूरो पाडे छे. अने ते उपरथी विशेष ए पण हकीकत मळी आवे छे के पोताना धर्मनो विकास करवामां आ साध्वीओ पण घणो भाग लेती हती, अने खास करीने श्राविकाओमां. कारण के एक अपवाद सिवाय बधी ज श्राविकाओए साध्वीओना उपदेशथी प्रतिमा समर्पण करवानुं जणाव्युं छे. आ वातने जैन सिद्धान्त ग्रंथोना लखाणथी समर्थन पण मळे छे. जैन

१ आ विषयनी शोध खोळना तेमना लेखो वीएना ओरिएन्टल जर्नल, १८८७ थी ९१, अने १८९३ मां प्रसिद्ध थया छे; तेम ज १८९७ मा इम्पिरीयल एकेडेमी ऑफ सायन्सना जर्नलमां पण तेमणे ते प्रकट कराव्या छे.

१ जुओ तेमना सर्वे रिपोर्टस्, भाग २.

धर्ममां दिगंबर अने श्वेताम्बर ए बे विभागो घणा जुना वखतथी पडेला छे तेनो पण एक अधिक पूरावो आमांथी मळी आवे छे. दिगम्बरो पोताना संघमां स्त्रीओने सामेल करता नथी. फक्त श्वेताम्बरो ज तेम करे छे. तेथी आ लेखो उपरथी एम सिद्ध थाय छे के मथुरामांनी आ संस्था श्वेताम्बरोनी ज हती तथा ई. स. ना प्रथम सैकामां आ विभक्त अवस्था बराबर निश्चित थएली हती.

आ लेखो उपरथी एक बीजी हकीकत ए मळे छे के जैन संघमां श्रावक–श्राविकाओनी व्यवस्थित रचना करेली हे. मे उपर सूचना करेली ज छे के जैन संघमां आ पण एक अगत्यनो विभाग गणाय छे,के जे धर्मनी उन्नतिमां घणी महत्त्वनी बाबत छे. ए लेखोमां श्रावक अने श्राविका एवा शब्दो वपराएला छे जेने हाल सरावगी पण कहेवामां आवे छे. बौद्धोमां पण श्रावक शब्द वपराएलो छे पण त्यां तेनो अर्थ अर्हत् (अमुक कक्षानो साधु) एवो करवामां आवे छे. आ हकिकत श्रावकोनी चोक्कस स्थितिविषे उल्लेख करे छे एटलुंज नहीं, पण जैन अने बौद्ध ए बे महान् धर्मोनी विशिष्टतानुं पण स्पष्ट प्रतिपादन करे छे.

एक बीजी उपयोगी बाबत ए छे, के ते लेखोमां श्रावकोनी जातिविषे पण वारंवार उल्लेख आवेलो छे. जैन अगर बौद्धधर्म वर्णाश्रम दूर करवा मागे छे, एवी जे मान्यता छे ते तद्दन खोटी छे एम में पहेलां जणावेलुं छे. एक माणस श्रावक बनवाथी वर्णभ्रष्ट थतो नथी. ते पोतानी जातिनो धंधो–रोजगार छोडी शके छे, परन्तु कन्यानी आप ले माटे तथा अन्य व्यवहार माटे तो तेने पोतानी जुनी जातिनो ज आश्रित रहवुं पडे छे. एक लेखमां एक लुहार दान आप्यानुं वर्णव्युं छे. जैन थया पछी ते लुहार बन्यो हशे एम मानवुं भूल भरेलुं छे, कारण के श्रावकोने माटे तो लुहारना धंधानो निषेध करेलो छे. तेथी आ उल्लेख तेना बापदादानी तथा तेनी जाति माटे ज हशे. तो पण एम जणाय छे के हालनी माफक ते वखते पण घणा खरा श्रावको वेपारी वर्गना ज हता.

जैन ग्रंथोमां आपेली घणी बाबतोनुं समर्थन आ लेखोमांथी थई शके एम छे, ए सिद्ध करवा माटे घणा विस्तृत पूरावा हुं आपी शकुं तेम छुं; परन्तु तेम करवा करतां आ विषयमां रस लेनार सज्जनोने प्रो. बुल्हरना लेखो ज स्वयं वांची लेवानी हुं भलामण करवी योग्य धारुं छु. हजी जे एक बाबत मारे खास जणाववी जोईए, ते ए छे के, सुप्रसिद्ध चक्र अने स्तूप तथा तेना अन्य अंगो ए बौद्ध धर्मना ज खास बाह्य चिन्हो मनाय छे; पण १८८३ मां लीडन मुकामे भराएली छठ्ठी ' इन्टरनेशनल कॉंग्रेस ऑफ ओरीएन्टालीस्टस् ' आगळ वांचेला लेखमां मर्हुम पंडित भगवानलाल इंद्रजीए बतावी आप्युं हतुं के जैन लोको पण स्तूपोने पूजे छे. अने हवे प्रो. बुल्हरे ऊंडी शोध खोळ कर्या पछी सप्रमाण सिद्ध कर्युं छे के चक्र अने स्तूप विषेनी अद्यापि चालती आवती विद्वानोनी मान्यता केवळ भूल भरेली छे. मथुरामांथी एक जैन स्तूपनां अवशेष सुधां प्रकट रीते मळी आव्या छे. पहेलांथी थती आवती भूलने लीधे शरुआतमां एम लाग्युं हतुं के आ स्तूप पण बौद्धोनो हशे; परन्तु तेनी बाजुपरथी ज्यारे बे जैन मंदिरोना अवशेषो मळी आव्या तथा जैन लेखो अने प्रतिमाओ विगेरे पण त्यां मळी आव्यां त्यारे आ स्तूप पण जैनोनो ज होवो जोईए, ते विषयमां पछी कोई जातनी शंका रही नहीं. त्यारबाद केटलाक कोतरेला पत्थरो पण मळेला छे, जेना उपर तेना बीजा अवयवो साथे जैन स्तूपोनो आकार कोतरेलो छे. आपणे हाल सुधी जेने बौद्ध स्तूपो मानता आव्या छीए तेना जेवा ज आ स्तूपो छे. प्रो. बुल्हरे तो पोतानुं अनुमान आगळ दोडावीने एम पण कह्युं छे के स्तूप–पूजा ए जुना वखतमां फक्त जैन अने बौद्ध ज करता एम नहीं, परंतु चुस्त संन्यासीओ (ब्राह्मण धर्मना) पण करता हता. एक जैन प्रतिमानी बेसणी जेना उपर कोतरकाम नयो लेख छे तेनी शोध खास जाणवा जेवी छे. तेमां बौद्ध प्रतिमाओनी माफक ज एक त्रिशूल उपर चक्र काढेलुं छे. आ उपरथी एम सिद्ध थाय छे के चक्रनुं चिन्ह ए केवळ बौद्धोनुं ज नथी. ते लेखमां जणाव्या प्रमाणे, ते प्रतिमा, एक साधुना

उपदेशथी एक श्राविकाए प्रतिष्ठित करी हती. ए वेऊनी आकृतिओ पण, आ पवित्र चिन्हनी तेओ स्तुति करता होय तेम, कोतरवामां आवी छे. वळी लेखमां एम पण उल्लेख छे के, ई. स. १५७ ने मळती सालमां, आ देवनिर्मित स्तूपमां प्रतिमा बेसाडवामां आवी. 'देवनिर्मित' ए शब्दथी सूचित थाय छे के ए स्तूप बहु ज जुनो होवो जोईए. कारण के ई. स. ना बीजा सैकामां तेनो मूळ इतिहास भूली जवायो हतो अने तेनुं स्थान एक दंतकथाए लीधुं हतुं. तेथी आपणे तो ए ज निश्चय उपर आवी शकीए के घणा सैका पहेलां ए स्तूप निर्मित थयो हशे. प्रो. बुल्हरे शोधेली ए बाबतने एक जैन ग्रंथमांथी टेको पण मळे छे.[1] ते दंतकथा प्रमाणे ई० स० ना ९ मा सैकामां ते स्तूप हयाती धरावतो हतो अने ते वखते तेनी मरामत विगेरे करावामां आवी हती; तथा तेमां पत्थरो बेसाडवामां आव्या हता. मूळ ते स्तूप ईंटोनो बनेलो हतो अने पार्श्वनाथने समर्पित करेली सुवर्णथाळ तेमां मुकेली हती. एम कहेवामां आवे छे के ए सुवर्ण थाळ मथुरानां देवीए आपी हती अने घणा वखत सुधी जैनोने पूजा करवा माटे ते बहार राखवामां आवी हती. परंतु पाछळथी ज्यारे मथुरानां एक जुना राजानी ते थाळी पडावी लेवानी इच्छा थई त्यारे तेना उपर ईंटोनो आ स्तूप बनाववामां आव्यो आ समय ते, घणा भागे ई. स. पहेलांना बीजा सैकानो हशे, ज्यारे प्रथम ज जैनो मथुरामां वास करवा आव्या हता. ए धर्म तेओ कदाच बिहारमांथी लाव्या हशे, अने जे राजाए थाळ पडावी लेवानी इच्छा करी, ते कदाच ई. स. नी शरूआतमां अमल चलावतो इंडो-सीथियन कनिष्क राजा हशे.

[1] ए ग्रंथ ते जिनप्रभकृत तीर्थकल्प छे. ए विषयना विशेष वर्णन माटे वीएनां एकेडमी ऑफ सायन्सीझ्'ना. कार्य विवरणमां जुओ.

महावीर निर्वाणनो समय-विचार

[* जेमनी ऐतिहासिक विषय तरफ रुची छे अने जेओ ए विषयना लेखोनुं मननपूर्वक अध्ययन-श्रवण करे छे तेओ सारी पेठे जाणे छे के, जैन इतिहास अने जैन काळगणानाना ॐ नमः रूपे जे श्रमण भगवान श्री महावीर देवनो निर्वाण-समय छे तेना विषयमां पुरातत्त्ववेत्ताओमां आज घणां वर्षोथी परस्पर मतभेद अने वाद-विवाद चाली रह्यो छे. जैन धर्मना प्राचीन साहित्यमां पण खुद ए बाबतमां एकता जणाती नथी. महावीरदेवनो निर्वाण समय, ए जैन इतिहासमां तो सौथी अग्र भाग भजवे छे; परन्तु अखिल भारतीय इतिहासमां पण तेनी तेटली ज महत्ता छे अने ए कारणने लईने पुरातत्त्वज्ञोना माटे ते एक घणो ज अगत्यनो सवाल थई रह्यो छे.

सामान्य रीते जैन ग्रंथोनी वळण उपरथी एम मानवामां आवे छे के, हिन्दुस्तानमां वर्तमानमां जे विक्रम संवत्‌ना नामे संवत् प्रवर्ते छे तेना प्रारंभ पहेलां ४७० वर्षे, अने ई० स० ५२७ पूर्वे, श्रमण भगवान् श्री-महावीरनुं निर्वाण थयुं हतुं. जैन धर्मना दिगंबर अने श्वेतांबर नामना बंने प्राचीन संप्रदायोना घणा ग्रंथो उपरथी ए निर्णय निकळे छे. परंतु प्रसिद्ध जैन साहित्यज्ञ जर्मन विद्वान् डा० हर्मन जेकोबीए, आचार्य श्री हेमचन्द्रना एक उल्लेखथी प्रेराई ए निर्णयमां शंका उपस्थित करी अने तेने मळता बीजा केटलाक प्रमाणोनो आश्रय लई, ए जुनी मान्यताने असंबद्ध जणावी. त्यार पछी बीजा घणाक विद्वानोए ए संबंधमां, परस्पर खंडन-मंडन चालु कर्युं अने एक बीजाए पोत पोताना कथनने सत्य सिद्ध करवा अनेक जातनो ऊहापोह कर्यो. जार्ल चार्पेन्टियर नामना एक विद्वाने ' इंडियन एन्टीक्वेरी ' नामना सुप्रसिद्ध मासिक पत्रना सन् १९१४ ना जून, जुलाई अने आगष्ट मासना अंकोमां, ए विषयनो एक घणो ज विस्तृत लेख लख्यो अने तेमां महावीर निर्वाण विक्रम संवत् पूर्वे ४७० वर्षे नहीं परंतु ४१० वर्षे (ई० स० ४६७ पूर्वे) थयुं हतुं, अने परंपराप्रमाणे जे गणना गणवामां आवे छे तेमां ६० वर्ष वधारे छे ते कमी करवा जोईए, एम सिद्ध करवा विशेष प्रयास कर्यो हतो.

पोताना ए विस्तृत लेखमां प्रथम तो ए विद्वाने एम सिद्ध कर्युं के, मेरुतुंगाचार्य विगेरेना विचारश्रेणी आदि ग्रंथोमां जैन काळगणना संबंधी जे प्राचीन गाथाओ आपेली छे, तेमां जणावेला राजाओनो कांई पण प्रकारनो परस्पर ऐतिहासिक संबंध छे ज नहीं. तेम ज महावीर निर्वाण पछी ४७० वर्षे जे विक्रम राजा थयानो उल्लेख छे तेनो इतिहासमां क्यांए अस्तित्व नथी. माटे ए पुराणी गाथाओमां जे प्रकारे काळगणना करवामां आवी छे अने जे राजाओना राज्यकाळ आप्या छे ते निर्मूळ छे. लेखना बीजा भागमां ए विद्वाने एम बताव्युं के सामण्णफलसुत्त विगेरे केटलाक बौद्ध ग्रंथो उपरथी जणाय छे के, महावीरदेव अने बुद्धदेव बंने समकालीन हता; अने बौद्ध ग्रंथ प्रमाणे बुद्धदेवनो निर्वाण ई० स० पूर्वे ४७७ वर्षे थयुं हतुं. जनरल कनिंगहाम अने मोक्षमुल्लर पण ए तारीख मान्य राखी छे. बुद्धदेवनी मृत्युसमये ८० वर्षनी अवस्था हती. तो हवे जोवानुं के, गाथाओमां जणाव्या प्रमाणे जो महावीर देवनो अंतकाळ ई० स० पूर्वे ५२७ वर्षे थयो होय तो ते वखते बुद्धदेवनी उमर फक्त ३० वर्षनी हशे. परंतु ए सौ कोई माने छे के छत्रीस वर्षनी उम्मर पहेलां तो गौतम बुद्धने बोधिज्ञान पण थयुं न होतुं, तो पछी तेमना

---

* आ लेख चारेक वर्ष उपर लखायो हतो, अने एक पत्रमां ते वखत प्रकट करायो हतो. हवे आपणे विषयना बधा लेखो, आ पत्रमां क्रमथी प्रकट करवानो विचार राख्यो छे तेथी आ लेख अहीं प्रकट करवो आवश्यक मान्यो छे.—संपादक.

१ ए लेखनो अनुवाद हवे पछीना अंकोमां आपवामां आवशे.—संपादक.

अनुयायिओ तो थाय ज क्यां थी. तेथी हवे सिद्ध छे के महावीर देवनुं निर्वाण जो उक्त कथन प्रमाणे थयुं होय, तो पछी तेमनी, बुद्धदेवनी साथे समकालीनता शी रीते मळी शके छे ? वळी एम पण कहेवामां आवे छे के महावीर अने बुद्धदेव बंने अजातशत्रु (श्रेणिकना पुत्र) ना राज्यकाळमां मोजुद हता. ऐतिहासिक उल्लेखो प्रमाणे अजातशत्रु बुद्धदेवना मृत्यु पूर्वे ८ वर्षे राजगादीए बेठो हतो अने तेणे एकंदर ३२ वर्ष सुधी राज्य कर्युं. आ रीते उक्त जैन गाथाओ प्रमाणे जो महावीर निर्वाण मानवामां आवे तो आ हकीकत पण बंध बेसती आवे तेम नथी. तेथी या तो महावीरनिर्वाणनो समय उक्त समयथी आ तरफ आणवो जोईए अने या तो बुद्धदेवनो निर्वाणसमय पाछळ हटाववो जोईए. परंतु बुद्धदेवनो निर्वाणसमय तो चोक्कस गणतरीए गणेलो छे अने महावीरनो समय मात्र अनुमानथी कल्पी लीधेलो छे, माटे तेने ६० वर्ष आ तरफ खसेडवानी जरूरत छे. आनी पुष्टिमां हेमचन्द्राचार्यना **परिशिष्ट पर्व** नुं कथन पण उपलब्ध छे आ विषयमां, आवी रीते, ए लेखमां ते विद्वाने घणा ज लंबाणथी चर्चा करी छे.

उपर ज जणाव्युं छे के, जैन इतिहासना माटे आ एक घणो ज अगत्यनो सवाल छे अने एना निराकरण उपर ज जैनधर्मना साहित्य अने इतिहासनी वास्तविक अने क्रमिक रचना रची शकाय छे; अने तेटला माटे, जैन विद्वानोए, ए बाबत खास प्रयत्न करवानी जरूरत हती. परंतु जोईए छीए के संख्याबंध जैन आचार्यमांथी कोईए पण, जेमनी गादीना पोते वारस थवा जाय छे तेमनी, खरी तारीख खोळी काढवा माटे जराए प्रयत्न कर्यो नथी. प्रयत्न करवानी वात तो दूर रही, परन्तु दुनियाना बीजा विद्वानो ए विषयमां शी चड-बथळ करी रह्या छे तेनी खबर सुधां मेळववानी दरकार करता नथी !

अस्तु. श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवाल एम्. ए. (आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी) बारिस्टर-एट-लॉ करीने पटनामां एक विद्वान गृहस्थ छे. हिंदुस्तानना नामी ऐतिहासिकोमांना तेओ एक छे. तेमणे भारतना प्राचीन इतिहाससम्बंधी घणो ऊहापोह कर्यो छे अने केटलाक पाश्चात्योना भ्रांत विचारोनो घणी ज उत्तमतापूर्वक संस्कार कर्यो छे; अने अनेक ऐतिहासिक गुंचवाडाओ उकेल्या छे. प्रसंगोपातथी महावीरना निर्वाण समयनो पण तेमणे केटलेक ठेकाणे उल्लेख करेलो छे, अने उपर जणाव्या प्रमाणे ए गुंचवायला कोकडाने पण खोलवानो प्रशंसनीय प्रयास करेलो छे. बिहार अने ओरिसा रीसर्च सोसायटीना सने १९१५ ना सप्टेंबर मासना जर्नलमां **शैशुनाक अने मौर्य कालगणना** (Saisunaka and Mauyra Chronology) विषय तेमणे एक घणो ज महत्त्वनो निबंध लख्यो छे. तेमां तेने बुद्ध देव अने महावीर देवना निर्वाण-समयनुं पण घणी ज विद्वत्तापूर्वक विवेचन कर्युं छे, अने जैनोनी प्राचीन गाथाओनी गणतरीने ज सप्रमाण सिद्ध करी, जे विद्वानो उपर जणाव्या प्रमाणे ६० वर्षनी न्यूनता आणता हता तेमनी दलीलो तोडी पाडवानुं प्रयत्न कर्युं छे; तथा जैन, बौद्ध अने हिंदुओना ग्रंथोना प्रामाणिक आधारोने लईने तेमणे पोताना कथनने पुष्ट बनाव्युं छे.

हालमां ए विद्वाने एक अत्यंत महत्त्वना ऐतिहासिक लेखनुं संशोधन करी उक्त जर्नलना छेल्ला अंकमां प्रकट कर्यो छे. ए लेख ते सुप्रसिद्ध सम्राट् खारवेलनो उदयगिरिनी हाथीगुहावाळो लेख छे, जे स्व. डॉ. भगवानलालजीनी संशोधित करेली आवृत्ति प्रमाणे गये वर्षे गुजरातीमां बहार पाड्यो छे. डॉ. भगवानलालना संशोधनमां थोडा वर्ष उपर डॉ. फ्लीट विगेरे पुरातत्त्वज्ञोए शंका करी हती, अने कोई अधिकारी विद्वानना हाथे ए लेखनुं पुनः अवलोकन थवानी जरूर जणावी हती. ते कार्य श्रीयुत जायसवाल महाशये पूर्ण कर्युं छे अने ए लेखनी घणी ज सूक्ष्म बुद्धिथी छानबीन करी तेनी उत्तम आवृत्ति प्रसिद्धमां मूकी घणा नवा तत्त्वोनुं उद्घाटन कर्युं छे. ए लेखना एक बे भागो संबंधमां मारी साथे पण तेमणे केटलोक रसभर्यो पत्रव्यवहार चलाव्यो हतो. तेमना ए लेख-संशोधनथी जैनधर्मना तत्कालीन इतिहास उपर डॉ. भगवानलाल करतां पण वधारे प्रकाश पड्यो छे अने समुच्चय भारतीय

इतिहासनी महात्तामां पण एक विशेष उमेरो थयो छे. ए निबंधमां पण तेमणे महावीर–निर्वाण संबंधी सूचन कर्युं छे अने पोताना उपर्युक्त काळनिर्णयवाळा लेखमां करेला कथनने वधारे पुष्ट बनाव्युं छे. तेमनी आ बधी दलीलो पुरातत्त्वज्ञो मान्य करता जाय छे अने अर्लि हिस्टरी ऑफ इन्डिआना लेखक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि. वीन्सेंट स्मीथे पण हवे तेमना कथनने सादर स्वीकार्युं छे, एम श्रीयुत जायसवाल मने पोताना तारीख ९।७।१८ ना पत्रमां, खास रीते नीचे प्रमाणे जणावे छे.

" आप को यह सुन कर प्रसन्नता होगी कि V. Smith ने यह अब मान लिया कि बुद्धदेव तथा महावीरस्वामी का निर्वाण–काल जैसा हम कहते हैं वही ठीक है। अर्थात् जैसा कि उन के अनुयायी मानते हैं। यह खारवेल के लेख से सिद्ध हो गया। मि. विंसेंट स्मीथने पत्रद्वारा यह मुझे लिखा है।"

आवी रीते भारतीय इतिहासना एक घणा ज महत्त्वना प्रश्ननो घणा युगोनी वडनथल पछी एक भारतीय विद्वानना हाथे ज निर्णय थतो जोई दरेक भारतीयने प्रसन्न थवा जेवुं छे, अने खास करीने जैन समाजे तो पोतानी कृतज्ञता प्रकट करवा माटे श्रीयुत जायसवालने हार्दिक अभिनंदन आपवुं जोईए.

कालगणना विषयमां हमेशां कृपणता बतावनारा पाश्चात्य पुरातत्त्वज्ञोए महावीर–निर्वाणने ६० वर्ष आ तरफ खेंचीने पुराणा जैन ग्रंथोमां आपेली प्राचीन गाथाओने असत्य ठरावी हती, परंतु श्रीयुत जायसवाल ए ग्रंथकारोना पक्षमां वगर फीए बेरीस्टरी करवा तैयार थया अने अनाथ अने मूक एवा ए जीर्ण ग्रंथोना कथनने पोताना प्रतिभाबळे सत्य ठरावी विचारक जगत् आगळ तेमनो प्रतिष्ठाने पूर्ववत् स्थिर करी आपी छे.

श्रीयुत जायसवालना मत प्रमाणे महावीर स्वामीनुं निर्वाण वि. सं. पूर्वे ४७० वर्ष नहीं परंतु ४८८ वर्षे थयुं हतुं. कारण के पट्टावलिओ विगेरेमां जे ४७० वर्ष लख्या छे ते विक्रमना राज्यारोहण सुधीनां नथी; परंतु जन्म सुधीनां छे. विक्रम पोताना जन्मथी १८ मे वर्षे गादिए बेठो हतो, अने त्यारथी तेनो संवत् चाल्यो छे, तेथी विक्रम सं. नी शरूआत पहेलां ४८८ वर्ष उपर महावीर–निर्वाण थयुं हतुं ए सिद्ध थाय छे. आ गणत्री प्रमाणे आजे जे आपणे महावीर–निर्वाण संवत् २४४८ मानीए छीए तेना बदले २४६६ (२४४८+१८) मानवुं जोईए. केटलीक जूनी पट्टावलिओमांथी पण आ कथनने पुरावो मळे छे.

श्रीयुत जायसवाले आ संबंधमां छुटा छवाया घणा उल्लेखो कर्या छे, परंतु सघळा पुरावाओनो संक्षेपमां एकत्र संग्रह अने तेना उपरथी निकळतो सार; तेमणे उपर जणाव्या प्रमाणे बीहार अने ओरीसा रीसर्च सोसायटीना जर्नलना प्रथम भागना प्रथम अंकमां (The Journal of the Bihar and Orissa Research Society. Vol, 1. Part 1.) शैशुनाक अने मौर्यकालगणना तथा बुद्धनिर्वाणनी तारीख (Saisunaka and Maurya Chronology and the Date of the Buddha's Nirvana) नामना लेखनी अंते, खास महावीरनिर्वाण अने जैन कालगणना संबंधी एक स्वतंत्र प्रकरण उमेरीने तेमां आप्यो छे. जैन ग्रंथोमां वारंवार मळी आवता श्रेणिकादि शिशुनाकवंशीय अने चन्द्रगुप्तादि मौर्यवंशीय राजाओना वास्तविक राज्यकाल जाणवानी जिज्ञासावाळा दरेक जैन विद्वाने ए समग्र निबंध खास मननपूर्वक वांचवो जोईए. जिज्ञासु वांचकोनी खातर तेम ज विद्वान् मनाता जैन मुनिवरोना ज्ञाननी खातर, ए लेखमांनो अंतिम भाग जे महावीर–निर्वाण संबंधी लखाएलो छे तेनो अनुवाद अत्र आपवामां आवे छे. जैन विद्वानो तरफथी आ विषयमां वधारे ऊहापोह थवानी आशा तो राखी शकाय तेम छे ज नहीं परंतु जो तेओ एकवार मननपूर्वक आ बधुं समग्र वांची जाय, जेटली पण प्रवृत्ति करशे तो आ प्रयत्न माटे लेवायलो श्रम आशा आपनार निवडशे. तथास्तु.]

निर्वाण तिथिओ.

चंद्रगुप्त राजाना राज्यारोहण विषे जैनो तरफथी नीचे प्रमाणेनी हकीकत मळे छे.—जे वर्षमां नवमो नंद (शकटालनो स्वामी) मृत्यु पाम्यो अने चंद्रगुप्त गादीए बेठो ते ज वर्षमां स्थूलभद्राचार्ये*काल कर्यो हतो.[1] आ बनाव महावीरना निर्वाण पछी २१५ वर्षे बन्यो हतो.[2] हवे जो एम मानिए के महावीर चंद्रगुप्तना तख्तनशीन थया पहेलां २१९ वर्षे निर्वाण पाम्या, तो पछी महावीरना निर्वाण पछी ५३ के ६० वर्ष पछी बुद्ध निर्वाण पाम्या, एम मानवुं योग्य गणाय नहिं कारण के तेओ बंने समकालीन हता अने तेथी तेमनुं मृत्यु पण थोडा ज अंतरे थयुं होय एम मानवुं सकारण छे.

निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (महावीर) ज्यारे पावामां निर्वाण पाम्या त्यारे बुद्ध जीवता हता एवा भावार्थ वाळो उल्लेख जे अंगुत्तर निकायमांथी मळी आवे छे ते पूर्ण मानवा योग्य छे.[3] अने जे पुरावाओना विषयमां अत्रे ऊहापोह कर्यो छे, तेमांथी पण एज निकळी आवे छे, के महावीर चंद्रगुप्तना राज्यारोहण पूर्वे २१९ वर्षे निर्वाण पाम्या अने बुद्ध २१८ वर्षे. आ प्रमाणे चंद्रगुप्त ३२० A. M. J. (महावीर जिन पछी) (चालु) अने २१९ A. B. (= बुद्धदेव पछी) (चालु) गादिये बेठा; अने बुद्ध, महावीरना पछी एक वर्षे निर्वाण पाम्या.[4] जैनोनी कालगणना प्रमाणे चंद्रगुप्त ई. स. पूर्वे ३२६ या ३२५ ना नवेम्बर मासमां गादिए बेठा.[5]

हवे चंद्रगुप्तना राज्यारोहण पहेलानुं २१८ मुं वर्ष ते (३२६+२१८) ई. स. पूर्वेनुं ५४४ मुं वर्ष थाय, एटले के बुद्ध निर्वाणनुं वर्ष पण उपर जणाव्या प्रमाणे, ई. स. पूर्वेनुं ५४४ मुं ज थयुं.[6] अने सीलोन, बर्मा अने सीआमनी दंतकथाओ प्रमाणे पण बुद्धनिर्वाणनुं ए ज वर्ष आवे छे, जे जाणी आपणने सानुकूळ आश्चर्य थशे.

जैन कालगणना (Jaina Chronology)

डॉ० होर्नेल सरस्वती गच्छनी पट्टावलीनी १८ मी गाथाना आधारे विक्रम संवत्‌नी शरुआत माटे ४७० पछी बीजां १६ वर्ष वधारे ले छे. गाथानो अर्थ अथवा तो भावार्थ एवो छे के—विक्रम सोळ वर्षनी उमर सुधी

---

* जैन ग्रंथो प्रमाणे आ कथन बिल्कुल बंधबेसतुं नथी.
संपादक जै. सा. स.

1 तपगच्छनी पट्टावली I. A. ११–२५१ (इन्डियन एन्टीक्वेरी, पुस्तक ११, पृष्ठ २५१).

2 खरतगच्छनी पट्टावली. I. A.–११, २४६.

3 ओल्डेनबुर्ग, Z. D. M. G. ३४, ७४९.

4 बराबर चोकस बोलिए तो बुद्ध महावीर पछी एक वर्ष अने आठ दिवसे निर्वाण पाम्या कारण के महावीर कार्तिक वदी १५ ने दिवसे निर्वाण पाम्या (कल्पसूत्र, प्रकरण १२३) अने बुद्ध कार्तिक शुदी ८ ने दिवसे (फ्लीट, J. R. A. S. 1909, 22)

5 ॲलेकझेन्डर ज्यारे पंजाबमांथी पाछो फर्यो (ई. स. पूर्वे ३२६ ऑक्टोबर) त्यारे नन्दराजा राज्य करतो हतो. आ तारीखमां अने चंद्रगुप्तनो राज्यारोहणनी तारीखमां परस्पर कांई विरोध नथी. नन्दना सैन्य सामेथी ॲलेकझेंडरनो पाछा फरवानो अने पंजाबमां मॅसेडोनियन लष्करनी हयातीनो पण चंद्रगुप्ते लाभ लीधो. पंजाबना लोकोए चंद्रगुप्तने मगधनुं राज्य मेळववामां मदत करी हती, अने ते एवा इरादाथी करी हशे के मगधनुं महान् सैन्य पछी तेमना स्वतंत्र थवाना आशाने पुरी करे; एटलेके चंद्रगुप्त पोतानो विजय थया पछी ते सैन्यनो उपयोग तेमना माटे करे. ॲलेकझेन्डर कार्मेनियामां हतो एटलामां ज पंजाबना सुबा फिलिपोसनुं हिंदिओना हाथे खून थयुं; अने आ काम चंद्रगुप्तनी उश्केरणीथी थयुं होय तेम लागे छे. सरखावो, मुद्राराक्षसनी अंदर पर्वतकना मृत्युनी हकीकत. पर्वतक परवओ–पिरवओ= फिलिपोस) (मुद्राराक्षस विषयक म्हारो निबंध, I. A. आक्टोबर, १९१४.)

6 J. R. A. S. (जर्नल ऑफ धी रॉयल एशियाटिक सोसायटि) 1909, 2.

बुद्धदेवना निर्वाणनी तारीख उपर तक्षशीलानो इतिहास एक रीते अमुक प्रकारनो प्रकाश पाडे छे. ज्यारे बुद्ध उपदेश आपता हता त्यारे तक्षशिला ए एक स्वतंत्र संस्थाननी राजधानी हती, (BI, P. 28) अने हिन्दी विद्यानुं एक महान् केन्द्र हतुं. अशोकना अभिषेकनुं वर्ष बु० नि० पछीनुं २१८ मुं गणी तेना उपरथी गणना करतां बुद्धनो उपदेश समय (४४ वर्ष) ई. स. पूर्वे ५८८ थी ५४४ सुधीमां आवी जाय छे. परन्तु तक्षशिला लगभग ई. स. पूर्वे ५०५ वर्षना अरसामां हिन्दु राजधानी तरीके रही न हती. कारण के ते ज वर्षे अथवा तो तेना आसपासमां ज ते डेरीअसना हाथमां चाली गई हती. बुद्धना छेल्ला वीस वर्षना अरसामां तक्षशिला जो पर्शिअनोना ताबे रही होत तो भाग्ये ज कोई तेने एक स्वतंत्र राजधानी तरीके अथवा तो एक महत्त्वनुं स्थान तरीके गणी शकत.

गादिए बेठो हतो नहीं. एटले के १७ मा वर्षे तेनो अभिषेक थयो, एने एनो तात्पर्यार्थ एवो नीकळे छे के ते सत्तरमा वर्षना अंतमां अथवा तो ४८७ A. M. J. ना अंते गादिए बेठो. आनुं परिणाम ए आव्युं के जैनोए विक्रम संवत्‌ना प्रथम वर्ष (ई० स० पूर्वे ५८–५७) ना अंते अने ४७० A. M. J. पुरा थयानी वच्चे १८ वर्षनुं अंतर मुक्युं.[७]

"ब्राह्मण साम्राज्य" नामना म्हारा लेखमां, म्हें साबीत कर्युं छे के जैनो विक्रम नामथी सातकर्णि बीजाने ओळखे छे (जे नहपानने तावे करनार हतो अने जेना विषे नीचे जुओ–) के जे लगभग ई. स. पूर्वे ५७ वर्षे मृत्यु पाम्यो; अथवा तो तेनो पुत्र पुलुमायि के जे तेना पछी ते ज वर्षे गादिये बेठो. अने म्हारा पोताना मत प्रमाणे तो हवे पुलुमायि ए ज जैनोनो खरो विक्रम छे. (कारण के–लोकमां तेनुं बीजुं अने घणुं करीने वधारे प्रचलित नाम 'विलवय' हतुं (कुरु=राजा) [सरखावो, शिक्कानुं नाम विविलक (A–) पिलव, (I–) पुराणोनो विलक, W. and H, 196; V. P. 452 n] आज विलव (विडव) अथवा पिलव ने, क नो ल (ड) थई गएलो समजी जैनोए तेनो विक्रम करी न्हाख्यो छे.[८] मालवाना कार्तिकादि (कृतयुग) संवतना पहेला वर्षनो अने विलवना राज्यारोहणनो समय एक होवाथी, अथवा घणुं करीने तेओनो परस्पर समान काल होवाथी, ते बन्ने एक ज होय, एम मानी लेवामां आव्युं छे.

प्रद्योतोना समयथी लई शकराज्य अने विक्रम संवत्‌ सुधीनी जैन कालगणना नीचे प्रमाणे छे.

(अ) पालक (जेनुं प्रद्योत पछी गादिये आववानुं वर्णन पुराणोमांथी पण मळी आवे छे.) जे रात्रिए महावीर निर्वाण पाम्या ते रात्रिए (अर्थात् दिवसे) अवंतीनी गादिये बेठो.

(ब) तेना ६० वर्षो पछी नन्दोना राज्यने एक अगत्यनो समय गणवामां आव्यो छे. अने तेओना राज्यना एकंदर १५५ वर्ष गण्यां छे. पुराणोना हिसाबे, नंदवर्धनथी ते छेल्ला नन्द सुधी १२३ वर्ष थाय छे अने एटला काल सुधी ए लोकोनुं राज्य चाल्युं. ३२ वर्षनो जे वधारो छे ते आपणने उदायीना राज्यना प्रथम अथवा बीजा वर्ष आगळ लावी मुके छे. एटले के पालकवंशनो लक्ष्य खेंचवा लायक बीजो एक अगत्यनो समय, उदायीना राज्यारोहणथी शरु थाय छे. पण पुराणो प्रमाणे अजातशत्रुना छट्ठा वर्षनो (पालकना राज्यारोहण) अने उदायीना अभिषेकनी वच्चे आपणे ६४ वर्ष मुकी ए छीए, ज्यारे जैन कालगणना प्रमाणे पालक (एटले पालकवंश) ना ६० ज वर्ष छे.[९] आ रीते चंद्रगुप्तना समयमां पुन: ४ वर्षनो फरक आवे छे, अने तेथी ते महावीर पछी २१५ अथवा २१९ वर्षे गादिये बेठो एम जुदी जुदी तारीखो आपवामां आवे छे. आपणे आगळ जोईशुं तेम, आ तफावत शुंग समयनी शरूआत सुधी बराबर करवामां आव्यो न हतो अने तेथी ते पाछळथी करवामां आव्यो हशे.

(क) मौर्योना राज्यकाळना वर्षसमूहना बे विभागो करवामां आव्या छे १०८ अने ३०. (एकंदर १३८ वर्ष अने पुराणो प्रमाणे १३७) तेमां १०८ वर्ष मौर्यवंशना छे अने ३० वर्ष पुष्यमित्रना छे. बीजा शब्दोमां बोलीए तो पुष्यमित्रनुं पहेलुं वर्ष ते ज तेना छेल्ला वर्ष

७. I. A. 20, Page 347. सरस्वती गच्छनी पटावली, डॉ० होर्नलनी ३६० मा पृष्ठ उपरनी टीका. महावीरना निर्वाणथी ते शक सुधी ४७० वर्ष. सरखावो, I. A. XX, 363.) अने पछी विक्रम संवतनी शरूआत सुधी १८ वर्ष "वीरात् ४९२ विक्रम जन्मान्त वर्ष २२—राज्यान्त वर्ष ४" एटले के ४९२ A. M. J =४ विक्रम संवत. (पुरा थयां)

८ सरखावो, चांडना (हिन्दी) चंक्रमण (संस्कृत)
सड (हिं०) सकृत् (सं०)
अड (हिं०) अक (सं)
अडाव (हिं०) अक्रम (सं)
बिलम (हिं. धीमे चालवुं)= विक्रम.

९. I. A. II, 361; XX, 341.

१० अजातशत्रु २९
दरशक ३५
———
६४

तरीके जणाय छे. अने बलमित्र—भानुमित्र (बलमित्र वंशनो भानुमित्र ?) ना ६० गणी समय बराबर कर्यो छे. आ गणना आपणने महावीर पछी ४१३ वर्ष सुधी लई आवे छे. ४० वर्षनो बीजो आंकडो नहपानना राज्यकाल माटे आप्यो छे.[11] छेल्ला अंकोमां १३ वर्ष गर्दभिल्लना राज्यना छे अने ४ शकराज्यना छे. आवी रीते एकंदर संख्या ४७० थाय छे. अहिंआ गाथाओनी गणना बंध थाय छे. ते प्रथम शकोना पराजयथी समाप्ति पामे छे.[12] विक्रमसंवत् अने आ गणनानो (४७० महावीर पछी) परस्पर संबंध मेळववा, जैनो उपर जणाव्या प्रमाणे वच्चे १८ वर्षनो आंतरो मुके छे.[13]

गाथा, महावीरना निर्वाणनुं वर्ष (१७+५८+४७०=) ई० स० पूर्वे ५४५ मुं आपे छे, के जेने जैनो, महावीर पछी ४७० वर्षे, विक्रम जन्म अने तेना १८ मां वर्षे विक्रमराज्य प्रारंभ; एम जणावे छे. महावीर कार्तिक वदी १५ ना दिवसे निर्वाण पाम्या अने विक्रमना कार्तिकादी संवतनी शुरुआत थई ते वच्चे ४७० अने १८ वर्ष पूरेपूरां पसार थई गया हतां. हवे आ प्रमाणे चंद्रगुप्तना राज्यारोहणनुं प्रथम वर्ष, के जे महावीर पछी २१९ वर्षे आवे छे, ते ई० स० पूर्वे ३२६ ना नवेंबरना कोईक दिवसनी अने ई० स० पूर्वे ३२५ ना आक्टोम्बर—नवेम्बरना अंतनी वच्चे आवे. जैनोना अहेवाल प्रमाणेनी आ तारीख, अशोकना शिलालेखो प्रमाणेनी तवारीख अने तेनी ग्रीसना राजाओनी समकालीनता साथे बराबर मळती आवे छे.[14]

११ 'ब्राह्मण साम्राज्य' नामना में म्हारा लेखमां नहपाननी तारीखनी चर्चा करी छे. [अने ते समय १३३-९३ B. C छे]

१२ आ शकोनो पराजय सातकर्णि बीजाए कर्यो हतो...... ज्योतिषिओनो विक्रमादित्य ते बीजो शातकर्णि छे अने जैनोनो विक्रम ते पुलुमायी छे.

१३ जैन तवारीखने उज्जैननी तवारीख कही शकाय. ते पालकना राज्यथी शरू थई नहपान सुधी आवे छे अने पछी मालव संवतथी प्रारंभ थाय छे.

१४ जुओ, अशोकना अभिषेक उपर म्हारो लेख. J.A.S.B. आगस्ट—सप्टेंबर १९१३.

हेमचंद्राचार्यनी भूल.

हेमचंद्राचार्ये प्रद्योतोना जे ६० वर्ष मुकी दीधां छे, ते तेमनी एक म्होटी भूल छे अने ते स्पष्ट ज छे. कारण के जो आपणे शुरुआतना ते ६० वर्ष मुकी दईए तो, चंद्रगुप्त, स्थुलभद्र, सुभद्र अने भद्रबाहुनी समकालीनतामां विरोध आवे छे. प्रो० जेकोबीए मध्यकालीन हेमचंद्रना आ भांग्यातुट्या अहेवालने पोतानी गणनामां पाया तरीके लीधो छे. अने आम करवामां, पाली—लेखोमां आपेला अशोकना अभिषेकना मूलभरेला समयनी अने तेना उपर बांधेली निर्वाणकाल—गणनानी तेमना उपर वधारे असर थई छे.

पाली लेखोमां आपेला समय उपर बांधेली गणतरीए, ए ज लेखोमां लखायली अशोकना अभिषेकनी तारीख अने पूर्वपरराथी चालती आवेली तवारीख वच्चे लगभग ६० वर्षनो तफावत मुक्यो छे. हेमचंद्राचार्यनी भूलथी जैन तवारीखमां पण ६० वर्ष छोडी देवामां आवेला होवाथी, आ गणना—एकतरफ, कालगणना विषे संकुचित दृष्टि राखनार आधुनिक अभिप्रायने मजबुत बनाव्या छे. परंतु प्रद्योतनो पुत्र पालक, के जे अजातशत्रुनो समकालीन हतो, ते महावीर निर्वाण पछीना दिवसे अथवा वर्षे गादिये बेठो, ए मानवुं स्वाभाविक अने सप्रमाण छे. हेमचंद्राचार्यना कथन प्रमाणे, महावीर—निर्वाण पछी तुरत ज नंदवंशनुं राज्य शरू थयुं ए मानवुं तद्दन मूलभरेलुं अने अप्रमाणिक छे.

उपसंहार.

उपर जे ऊहापोह करवामां आव्या छे तेनो सारार्थ ए निकळे छे के—पुराणोनी गणना प्रमाणे बुद्धना निर्वाणनुं संवत्सर ई. स. पूर्वे ५४४ मुं वर्ष आवे छे. आ तारीखने जैन कालगणना पण पुष्टि आपे छे, अने बौद्धग्रंथ दीपवंशनी अंदरथी पण एवी हकीकत मळी आवे छे के जे आ निर्णयने मजबुत करे छे. अने आ बधा उपरथी ए सिद्ध थाय छे के बौद्धधर्मिओनो, तेमना धर्मसंस्थापकना निर्वाण—समय माटे वर्तमानमां जे अभिप्राय छे, ते यथार्थ ठरे छे. बीजो सारार्थ ए निकळे छे, के महावीरना निर्वाण

समय विषे जैनग्रंथोमां आपेला अंदाजने पुराणोमांथी टेको मळे छे.[१५]

वास्तविक रीते सोलोनना पाली—लेखोने पुराणनी गणना साथे विरोध नथी. ते तेने पूर्ण करे छे अने पुष्टि आपे छे तथा पोते तेनाथी पूर्ण थाय छे अने पुष्टि मेळवे छे. नंदोना विषयनो घोटाळो, के जेना परिणामे, सैकाओ सुधी बीजा घोटाळाओ उद्भव्या हता ते दूर थवाथी जैन कालगणनानी खरी किंमत जणाई आवे छे.[१६]

आ त्रणे संप्रदायोना कथनोमां जो के केटलोक परस्पर विरोधाभास देखाय छे परन्तु भावार्थ एक ज छे. आ त्रणे आस्तिक—नास्तिक पंथो खरेखरा इतिहासने अनुसर्या छे, अने तेनुं रक्षण कर्युं छे. बे हजार वर्ष जेटला लांबा समयमां जे कांई भूलो पेसी गई छे ते आवी रीते थोडी मेहनते अने थोडुं ध्यान आपे दूर करी शकाय एवी छे.

*
* *

[आ लेखना सूक्ष्म अवलोकनथी समजाशे के श्रीयुत जायसवाले जैन दंतकथा अने तेनी पुराणी गाथाओनी बौद्ध अने हिंदुपुराण ग्रंथोनी साथे केवी उत्तम रीते संबद्ध ठरावी छे, अने आज लगभग बे हजार वर्ष जेटला दीर्घकाळ सूधी, भारतना इतिहास युगना आदिभूत उल्लेखोमां, जे परस्पर विरोध अने असंगतता पुरातत्त्वज्ञोने जणाती हती तेनो केवी उत्तम पद्धतिए निकाल आप्यो छे. अलबत्त श्रीयुत जायसवालना विचारोनो सर्वांशे स्वीकार हजी सुधी विद्वानो तरफथी थयो न होय, के तेमां कांई कांई अंशे मतभेद होय तो ते स्वाभाविक छे; परंतु तेमणे भारतना प्राचीन इतिहासना निरीक्षणनुं एक जुदुं ज दृष्टिबिन्दु विचारक जगत् आगळ उपस्थित करी, इतिहासना गुंचाएला कोकडानुं नवी ज पद्धतिए पृथक्करण करवानुं एक अत्युत्तम साधन देखाडी आप्युं छे, तेमां कोईने संशय नथी. अने जैन काळगणना तथा महावीर—निर्वाण समयना विषयना तेमना विचारो म्हने तो घणे अंशे ग्राह्य जणाय छे. तो पण जो कोई विद्वानना मनमां आ संबंधी मतभिन्नता जणाती होय, तो तेणे अवश्य आवी रीते जाहेर ऊहापोह करीने, आपणा श्रमण भगवान श्रीमहावीरदेवना निर्वाण समयनो सदाने माटे निर्णय करी नाखवो जोईए. ज्यांसुधी आ रीते, कोई प्रमाणिकपणे श्रीयुत जायसवालना निर्णयमां शंका उपस्थित न करी शके अने आ विचारमां सप्रमाण मतभेद न जणावी शके त्यां सुधी हवे

---

१५ डॉ. होर्नलेए जैनकालगणनामांनो घणो घोटाळो दूर कर्यो छे. [जुओ, इंडिअन एंटीकवेरी, पु. २०, पृष्ठ १३०]

१६ संप्रति अने सुहस्ती विषे जे तारीख आपेली छे ते भूल भरेली छे. बधी प्रतोनो संप्रतिनी तारीख विषे एक मत नथी, [इ. ए पु. ११ पृ. २४६] तेओ २०२ A.M.J. अने २३५ A.M.J. नी वच्चे हता. [तेज ठेकाणे जुओ.] ज्यारे चंद्रगुप्तनी तारीख तरीके २१९ था २४३ A.M.J. ना वर्षो गणी लाधा छे. पुराणोना आधारे करेली गणना प्रमाणे २३५ A.M.J. ना बदले तेनी खरी तारीख [इ. स. पूर्व २२०, ५४५+२२० =] ३२५ A.M.J छे. [जुओ, एपेंडीक्स, C.] श्वेतांबर जैनो, सुहस्ती के, जे संप्रतिना समकालीन हता, तेमनी विद्यमानताना वर्ष तरीके २६५ A.M.J. वर्षने गणे छे. पण श्वेतांबर जैनो पालकना शरूआतना ५० अथवा वधारे—खरी रीते ५४—वर्ष [जुओ, विभाग ३४, ब.] मुकी दे छे. तेथी सुहस्तीनी खरी तारीख २६५+६०+४ =३२९ A.M.J छे. आ तेमना स्वर्गवासनी तारीख छे. आ प्रमाणे सुहस्ती, संप्रतिना गादीनशीन थया पछी चार वर्षे देवलोक पाम्या.

चंद्रगुप्त अने सुहस्तीना निर्वाणनी वच्चे श्वेतांबर जैनो १०९ अथवा ११० वर्ष मुके छे. [डॉ. जकोबीनी परिशिष्टपर्वनी प्रस्तावना पृ. ५] आ हकीगत पुराणोक्त कथन साथ मळती आवे छे. [जुओ एपेंडीक्स सी प्रकरण २४—२५] २४ वर्ष चंद्रगुप्त, २५ वर्ष बिंदुसार, ४० वर्ष अशोक, ८ वर्ष कुनाल, ८ दशरथ, ४ संप्रतीना राज्यना =एकंदर १०९ सरखावो एपेंडीक्स सी. ३.

हेमचंद्र अने बीजाओना लेखो प्रमाणे जैन राजपरंपरा नीचे प्रमाणे छे.

A. श्रेणिक [बिंबीसार].
B. कूणिक [अजातशत्रु] [अवंतीमां पालक].
C. उदायी.
D. नंद [नंद. वर्धन] अने, बीजा नंदो.
E. चंद्रगुप्त.
F. बिंदुसार.
G. अशोकश्री.
H. [कुनाल].
I. संप्रति.

आपणे ए ज निर्णयने कबूल करवो जोईए अने वह पछी वीर—निर्वाण संवत् ए ज गणतरीए लखवानो व्यवहार अने प्रचार करवो जोईए. आवता नवा वर्षना छपाता जैन पंचांगोमां वीर संवत् २४४५ ना बदले २४६३ लखवां जोईए. आशा छे के जैन पंचांग प्रकाशको अने जैन पत्र संपादको आ बाबत उपर लक्ष्य आपशे.

परिशिष्ट

[उपर जे लखवामां आव्युं छे, ते शरुआतमां जणाव्या प्रमाणे श्रीयुत जायसवालना एक इंग्रेजी विस्तृत निबंधना थोडाक भागना भाषांतररूपे छे. ए निबंधमां तेमणे जैन काळगणना संबंधी विस्तृत विवेचन करेलुं छे, अने ते आ लेख ध्यानपूर्वक वांची जवाथी तेनो कांईक ख्याल आवी जशे. आ इंग्रेजी निबंध लख्या पहेलां ४—५ वर्ष अगाउ ज्यारे श्रीयुत जायसवाल पाटलीपुत्र नामना हिन्दी पत्रना संपादक हता त्यारे ते पत्रमां पण तेमणे एक न्हानो सरखो लेख जैन निर्वाण संवत् उपर हिन्दीमां लख्यो हतो.ए लेख पण आ विषयने ज लगतो छे अने संक्षिप्तमां लखायेलो होई सहज समजवा जेवो छे तेथी ते पण, तेमनी ज भाषामां अत्र आपी देवमां आव छे.]

जैन निर्वाण--संवत्

जैनों के यहां कोई २५०० वर्षकी संवत्–गणना का हिसाब हिन्दुओंभर में सब से अच्छा है। उस से विदित होता है कि पुराने समयमें ऐतिहासिक परिपाटी की वर्षगणना यहां थी। और जगह लुप्त और नष्ट हो गई, केवल जैनोंमें बच रही। जैनों की गणना के आधार पर हमने पौराणिक और ऐतिहासिक बहुत सी घटनाओं को जो बुद्ध और महावीर के समय से इधर की हैं समयबद्ध किया और देखा कि उन का ठीक मिलान जानी हुई गणना से मिल जाता है। कई एक ऐतिहासिक बातों का पता जैनों के ऐतिहासिक लेख पट्टावलियों में ही मिलता है। जैसे नहपान का गुजरात में राज्य करना उस के सिक्कों और शिला-लेखों से सिद्ध है। इस का जिक्र पुराणों में नहीं है। पर एक पट्टावली की गाथा में जिसमें महावीरस्वामी और विक्रमसंवत् के बीच का अन्तर दिया हुआ है नहपाण का नाम हमने पाया। वह 'नहवाण' के रूप में है। जैनों की पुरानी गणना में जो असंबद्धता योरपीय विद्वानों द्वारा समझी जाती थी वह हमने देखा कि वस्तुतः नहीं है।

महावीर के निर्वाण और गर्दभिल्ल तक ४७० वर्षका अन्तर पुरानी गाथा में कहा हुआ है जिसे दिगंबर और श्वेतांबर दोनों दलवाले मानते हैं। यह याद रखने की बात है कि बुद्ध और महावीर दोनों एक ही समय में हुए। बौद्धों के सूत्रों में तथागत का निर्ग्रन्थ नातपुत्र के पास जाना लिखा है। और यह भी लिखा है कि जब वे शाक्यभूमि की और जा रहे थे तब देखा कि पावा में नातपुत्र का शरीरान्त हो गया है। जैनों के 'सरस्वती गच्छ' की पट्टावली में विक्रमसंवत् और विक्रमजन्म में १८ वर्ष का अन्तर माना है। यथा—"वीरात् ४९२ विक्रम जन्मान्तर वर्ष २२, राज्यान्त वर्ष ४" विक्रम विषय की गाथा की भी यही ध्वनि है कि वह १७ वें या १८ वें वर्ष में सिंहासन पर बैठे। इस से सिद्ध है कि ४७० वर्ष जो जैन–निर्वाण और गर्दभिल्ल राजा के राज्यान्त तक माने जाते हैं, वे विक्रम के जन्म तक हुए—(४९२=२२+४७०) अतः विक्रमजन्म (४७० म० नि०) में १८ और जोडने से निर्वाण का वर्ष विक्रमीय संवत् की गणना में निकलेगा अर्थात् (४७०+१८) ४८८ वर्ष विक्रम संवत् से पूर्व अर्हन्त महावीर का निर्वाण हुआ। और विक्रम संवत् के अब तक १९७१ वर्ष बीत गए हैं, अतः ४८८ वि० पू० १९७१=२४५९ वर्ष आजसे पहले जैन–निर्वाण हुआ। पर "दिगंबर जैन" तथा अन्य जैन पत्रों पर वि० सं० २४४१ देख पडता है। इस का समाधान यदि कोई जैन सज्जन करें तो अनुग्रह होगा। १८ वर्ष का फर्क गर्दभिल्ल और विक्रम संवत् के बीच गणना छोड देने से उत्पन्न हुआ मालूम देता है। बौद्ध लोग

लंका, श्याम, बर्मा आदि स्थानो मे बुद्ध निर्वाण के आज २४५८ वर्ष बीते मानते हैं। सो यहां मिलान खा गया कि महावीर, बुद्ध के पहले निर्वाण–प्राप्त हुए; नहीं तो बौद्ध गणना और 'दिगंबर जैन' गणना से अर्हन्त का अन्त बुद्ध–निर्वाणसे १६–१७ वर्ष पहेले सिद्ध होगा. जो पुराने सूत्रों की गवाही के विरुद्ध पडेगा।

विजयसेन सूरिने आगराना संघे मोकलेलो सचित्र सांवत्सरिक पत्र.

आ साथे जे एक चित्र आपेलुं छे, ते तपागच्छना सुप्रसिद्ध आचार्य विजयसेनसूरि उपर संवत् १६६७ मां आगराना जैन संघ मोकलेला एक सांवत्सरिक–क्षमापना पत्रनुं छे. सांवत्सरिक–क्षमापना पत्र एटले शुं ए जेने जाणवानी इच्छा होय तेणे अमारुं विज्ञप्ति त्रिवेणी नामनुं हिन्दी पुस्तक वांचवुं. ए पुस्तकमां अमे एवी जातना पत्रो–के जेने विज्ञप्ति पत्र पण कहेवामां आवे छे तेनुं विस्तृत वर्णन करेलुं छे.

आ सचित्र पत्र मुनिराज श्रीहंसविजयजी महाराजना शास्त्र–संग्रहमांथी मळी आव्युं छे. मळ पत्रना कोईए बे ककडा करी नाख्या छे अने तेमां पहेला ककडाना मथाळानो केटलोक भाग जतो रह्यो छे. आ बन्ने ककडानी भेगी लंबाई एकंदर लगभग १३ फूट जेटली छे अने पहोळाई १३ईंच छे. पहेला अने बीजा ककडानी वच्चेनो कोई चित्र–भाग जतो रह्यो छे के, छे ते बराबर छे, ते जाणवानुं कशुं साधन नथी. चित्रसमूहनी नीचे विज्ञप्ति–लेख छे अने तेणे एकंदर ३–७ जेटली जग्या रोकी छे.

आ सचित्र पत्रनी पूरेपूरी विगत समजवा माटे, एने लगतो थोडोक इतिहास अहिं आपवो आवश्यक छे.

जगद्गुरु श्रीहरिविजय सूरि अने तेमना पट्टधर आचार्य विजयसेनसूरि–बंने जैन इतिहासमां सुप्रसिद्ध छे. हीरविजयसूरिने मुगल सम्राट् अकबर बादशाहे केवी रीते पोतना दरबारमां बोलाव्या हता अने केवी रीते तेमनो आदर–सत्कार कर्यो हतो, ए विगेरेनो इतिहास अमारा कृपारसकोष नामना पुस्तकनी प्रस्तावनामां विस्तार साथे आप्यो छे. हीरविजयसूरि ज्यारे बादशाहनी अनुमति लई पाछा गुजरातमां आव्या त्यारे एक–बे वर्ष पछी बादशाहे विजयसेनसूरिने पण पोतानी पासे [illegible] अने तेमनुं पण तेणे सारुं सन्मान कर्युं हतुं. ए बाबतनो पण थोडोक उल्लेख उपर्युक्त पुस्तकमां कर्यो छे. संवत् १६५२ मां हीरविजयसूरि स्वर्गस्थ थया अने तेमनी पाटे विजयसेनसूरि अधिष्ठित थया. ते बनाव पछी १० वर्षे एटले संवत् १६६२ मां अकबर बादशाह गुजरी गया अने तेनी गादिए जहांगीर आव्यो. अकबर बादशाहे हीरविजयसूरिना उपदेशथी पोताना साम्राज्यमां पर्युषणा विगेरेना दिवसोमां जे जीवहिंसा–निषेधना फरमान आदि बहार पाड्या हता ते जहांगीरे रद कर्या हता एटलुं ज नहीं पण जैनोना धर्म–गुरुओ उपर पोतानी खफगी जाहेर करी अनेक रीते तेमने कनडवानी पण तेणे शुरुआत करी हती.

विजयसेन सूरिना शिष्य समूहमां महोपाध्याय विवेकहर्ष गणी करीने एक महान् विद्वान् अने अनेक राजदरबारोमां वधु मान सन्मान पामेला प्रभावशाली यतिवर हता. तेमणे संवत् १६६८ नी सालमां आगरामां चातुर्मास कर्यो अने राजा रामदासादि द्वारा जहांगीर बादशाहने मळीने पोतानी विद्वता अने शांतवृत्तिथी तेने संतुष्ट करी तेनी पासेथी, ते सालमां, तेना राज्यमां पर्युषणाना दिवसोमां जीवहिंसा न थवा पामे तेवुं फरमान बहार पडाव्युं. महोपाध्यायना आवा सुकृत्यथी आगराना जैन संघने घणो आनंद थयो हतो. तेणे पोताना ए आनंदने गच्छपति आचार्य के, जे ते वखते देवपाटण (काठियावाड) मां चातुर्मास रहेला हता तेमनी आगळ प्रकट करवा माटे उत्तम चित्रकार पासे सुन्दर अने भावदर्शक चित्रपट्ट तैयार करावी सांवत्सरिक क्षमापनाना पत्ररूपे तेमनी उपर मोकल्युं. आ चित्रपट्टमां केवी रीते महोपाध्याय विवेकहर्ष गणी राजा रामदासने साथे लई जहांगीर बादशाह पासे फरमान मेळववानी प्रार्थना करे छे; ते मळया पछी केवी रीते उपा

ध्यायना बे शिष्यो बादशाही नोकरोने साथे लई आगरा शहेरमां जाते ते बाबतनो ढंढेरो पीटता फरे छे; इत्यादि दृश्यो बहु सुन्दररीते चित्रेलां छे. चित्रना एक भागमां विजयसेनसूरिनी व्याख्यानसभा पण चित्रेली छे अने तेमां विवेकहर्ष गणी जाते ए फरमान पत्र लई आचार्यनी सेवामां समर्पित करी रह्यानो देखाव पण काढेलो छे.

आ चित्रमां आलेखेली आकृतियो बहु स्पष्ट अने तादृश छे. दरेक प्रधान आकृति उपर तेनुं नाम पण काळी शाहीथी लखेलुं छे. चित्रनी महत्ता एटला उपरथी ज समजी शकाशे के ते खुद बादशाही चित्रकारनी पींछीथी आलेखायुं छे. ए बाबत ए पत्रमां नीचे प्रमाणे खास उल्लेख करवामां आव्यो छे के—' उस्ताद सालीवाहन बादशाही चित्रकार छे. तेणे ते समये जोयो तेवो ज आमां भाव राख्यो छे. ' आथी आ सचित्र-पत्रनी ऐतिहासिक महत्ता केटली विशेष छे ते दरेक विद्वान् समजी शके तेम छे.

पत्रनी भाषा हिन्दी-मिश्रित गुजराती छे अने ते काना-मात्रना हिसाब वगर जेम व्यापारी लोको लखे छे तेवी रीते लखाएली छे. आ नीचे प्रथम पत्रनी मूळ नकल—असलनी भाषामां ज—आपी छे अने तेनी नीचे लाईनवार हालनी भाषा प्रमाणे शुद्ध-संस्कारी रूपान्तर आप्युं छे.

(मूळ नकल)

(१) स्वास्तश्रीचंतामणपारस्वजणप्रणामं श्रीदेवकापाटणमाहानगरसुमथाने पूजआरंद्धा माहाओतमो–
(२) अतमचारीतरपालसूरामणा कूमतंअंद्धकारनभोमणा कलकालगउतमोअवतार सरस्वती कंठआमरंणा–
(३) बउदवदानद्धांत ऐकाद्ध असंमना टालणाहार दुवद्ध द्धरंम परूपक त्रगा ततवना जाणा चार कखाअना.
(४) जीपक पंचमाहावरतना पाळणाहार छकाअना पीहर सातभअना टालणाहार आठ मद्ध सर्थानकना जीपक.
(५) नववाडवसद्धब्रभचरजानापालणाहार दसवद्धसरमणाद्धरंमरझपालक अगरअंगबार ऊपांगना जाणा.
(६) तेर काठीआना जीपक चऊदभेद जीवना परोपक पनर परमाधार्मना भेदना जाण सोलकलासं-
(७) पुरण चंद्रवदन सतरभेद संज्यमना प्रातिपालक अढार सहस सिलंग रथना
(८) धारकः उगणिस न्यतधरमना परूपक विस असमाधीथाने रहीतः ऐकाविस सबल—
(९) ना वारकः बावीस परीसहाना जीपकः तेवीस सुगडांग अधेनना जाण चैवि—
(१०) स तिथंकरनी आगन्यना प्रतिपालकः पंचविस भावनाना भायकः छविस—
(११) दसाकलपविवहारना जाण सताविस साधगुणना उपदेसक अठाविस आया—
(१२) रकलपना जाण उगणातिस पपसुत्त प्रसंगना टालणहारः तिस मोहनी स्थानीक—
(१३) ना जीपक ईकतिस सिधगुणना जाणः बत्तिसजोग संग्रहना प्रातिपालक ते—
(१४) तिस गुरनी आस्यतनाना वारणहारः चत्तिस अतीसैना जाणः पत्तिस श्रीवित—
(१५) रागवणीना गुणना कथकः छत्तिस छत्तिसी सुरगुणे वीरजमानः वादीगुर—
(१६) ड गोवींद वादीगोधुमघरट मरिदतवादी मरट सरसतिलवधप्रसादः दली—
(१७) त अनेक दुरवादवाद समुद्रनी परि गंभीरः मेरपरबतनि परी थिरः प्रापत सं—
(१८) सार समुद्र तिरः मायमही विडारणसीरः श्रीजिनसासन सहकारकीर
(१९) करमसत्त विडारणवीरः वाणि मीठि ईम्रतखीरः धरमकरतै न कर धीरः नीर—
(२०) मलचित जीम गंगानीरः उजल जससागर डंडीरः भंजण भवभिरः सोभा—
(२१) गगुणे अभिनवै गुरहीर जीण प्रतीबोध्य अकबर साह वडवीर दी—
(२२) न करणीपर अधीक प्रताप तेज सुविहत जणसु धरे हेज वड वैरागी अती—

(२३) सोभागी करणनि परी त्यागी मुगतिना रागी श्रीपातिसाह प्रबोधक अबोह जी—
(२४) व प्रतिबोह कालिकाल गोतीमा अवतार तपगछ सागार हार तपतेज दीवा—
(२५) कर गछाधीपति गछाधीराज सरवउदमाजोगः भटारिक पुरिंदर श्री श्री श्री श्री श्री—
(२६) श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री विजयसेन सुरसूरिस्वर स—
(२७) परिवार चरण कमलानं श्री आगराकोटातु सदा आदेसकारी चरणसेवक दासन—
(२८) दास पाइरज समान सदासेवकः साः विमलदास साः बंदीदास साः लालचंद दुरगदा—
(२९) सः संः चंदुभोपती साः ननजीः साः चंद्रसेनः संः प्रतापसीः साः नाथु भीषारीदास साः पुनूमना
(३०) साः समीदास दरगहमलः साः पेमन साः टोडरः संः वीरदास साः कवडू ननु संः धरमदास गटकाः संः नेतछीः साः लडाः साः भोजु साः सा—
(३१) गर संः कवरजी वरधमानः साः वैरा राई सीव साः कवरा धरमसी साः मोकल साः मेघा
(३२) साः कटारू पिरथीमल साः बोहीथ साः गोरा साः वघा कुहाड संः देवकरण साः पदमसोः साः मा—
(३३) नीकचंद सा तीलोकसी जैतसीः सः धरमदासः साः ताराचंद साः पतापीथाका साः रासाः साः षेत—
(३४) सी साः नेतसी सा मुलाः साः डुंगरः संः रीषभदास सा चाउ सा षेमन साः लीषमीदास साः मीरपाल साः मीमा साः भोजुराजु
(३५) साः भारूतारणः साः पतापसागिः साः तारूपसारी साः देवजीः सोनीः रीषभदास सोनी विमलदासः
(३६) साः अमीचंद साः देवकरण साः देवजी भीमजी साः जीवा संः उदा कमाः संः सीघु स सवल
(३७) संः समीदास संः लीलापती संः कडु संः वीरजीः संः कपुरा सादुल साः कल्याण सुगंधीः दरगह सुगंधीः
(३८) साः कचरा मुहणेत साः पदा मुहणेत साः जेसीघ मुहणेत साः जादू साः ईसर साः भाउ साः गोवल
(३९) साः सोमसीः साः पोमछी साः वरधमान साः राउ साः धनराज संः नीहालु साः रूडाः साः भोवाल सोनी
(४०) सकलन साः रतना साः संसारू साः वाघु साः जावड साः डगर वैद साः गगा साः मू डुगर साः सु—
(४१) रताणाः साः जेकरण आदेसकारी दवस वंदणाः लीकाइ सा कावः रायवनी अवधार जोः समस—
(४२) त संघनी द्वादस वदणा अवधारजोः ईह श्री पुजीजीनै प्रसाद कुसल षेम छै पुजीजोना—
(४३) कुसल षेमना सदा समाचार लीषवाजी त सेवकनै परम संतोष उपजैः अपर ईह श्री—
(४४) पजुसण प्रव नीराबाद पणे हुआ छै अमारी दीन १२ पजुसणनी विसेष सावदेसः पुरवदेसः
(४५) तथा ढीलमंडलः मेवातमंडल रीणथंभेरगढ देसाः बीजा ही घणे देसी अमारी वरती छै तेः संतोष मानजो
(४६) श्री सतरभेद पुजा १५ श्री जहगीर पातीसाह तषत बेठ पुठै ये अपुरव करणी हुई छै भ—
(४७) गवनजीनै प्रसाद श्रीतपागच्छनी उनित वीसेष हुई छै श्रीः पातिसाहजी फुरमान २ करी द—
(४८) नाः ते श्री पजुसण आव श्रीजीनुः रमदासजी आगै हुइ गुदरण हुकम दीआ ढंढोरा दीवाय—
(४९) पारीउर वार सारै दीना १२ अमारी वरताईः श्रीण वेल श्रीजी हुकम दीना तीणवेला दरीषन—
(५०) जुडथा श्रीजी झरोषे बैठा था राजा रमदासजी आगै था तीण पाछै फुरमान लीयः पंः विवेकहर्ष [हर्ष]
(५१) तिण पाछैः पंः उदैहर्ष (हर्ष) थाः पछे अमारी आसरो विनती की श्रीपातिसाहजी हुकम दीना
(५२) ततकालीः तीणवेलाः बीसा दरीषना जुडसु तीण समना ये लेष माइ सरव लाष छै

(५३) उसता सालीवहण पातिसाही चित्रकार छै तेण तीण समै देष छै ईसाही ईण चि–
(५४) त्र माहे भाव राष छै सु लेष देष प्रीछजो: उसता सालीवहण वंदणा विनवी छै प्रछ जो
(५५) ईह श्री: पजुसण श्रीसतर भेद पुजा १५ सनाथदीन ६१ तप मासषमण १॥ मासषम–
(५६) ण १। पाषषमण तथा अठाई तथा दशदसम दसम अठम बीजाही तप घणा हुआ छै.
(५७) छमछरी पोसह त ९०१ सहमी वछळ सा: बंदीदासकै: चैमासा पाषी अषटमी सदी सह–
(५८) मीवछळ चाल छै पुजीजीका प्रसादथी अरं ईह श्री जिन प्रासाद नवा सं: चंद्रु करय छै
(५९) प्रतीमा पीण माहासुदर हुई छै घणितु पीणा प्रतीस्टाना बणाई छै श्रीपुजीजी आवै तथा
(६०) श्रीआचारिजजी पधारतै जीणससणीना घणा उछाह होई सार संघना मनोरथ पैहचै
(६१) पुजीजी क्रिपाकर पधारजो: मही उपाध्याय श्रीसोमविजै पीण नेडा छै पुजी जलदथी लषी छै वि–
(६२) चारी भला जाण तम लीषजो जीम पुजी लीष तिम परमाण लेष प्रसाद वैगा मकुलजो
(६३) ईभरमावाद: पं: श्री: माहानंद ठण ३ छे दील: री जेठठण २ छै: पारो:गणसरतनई ठण २ पहली चै–
(६४) मास: पेरोजाबाद गणी षीमानंद रहथा विजा मतका आचारिज रहमाट: हीवक तै ते षाली
(६५) पद: हीवै चैमास पेरोजाबादकी षेतनी चीता करजो: पहले कैतही सात परहथा तै सरव मडराष
(६६) हीवै भीपु षेत षाली न रह तीम करजो: सावीकानी वंदणा विनवि छै ते प्रीछजो सही जाणजो.
(६७) सं: विमलादे बा: साहीजदे बा: मीरघ बा: जादव [पारमासहमनी वंदणा अवधारजो
(६८) बाई कपुर दे बा: लाछ बा: मोतांरा पयादी बा: जीवड दे १सा: ताराचंद सा: षेतावेद सा: मोहील
(६९) मणीक दे बा: कवर बा: सीरदे बा: भगत १ सा: छीतु सा: कासी सा: वेणीदास
(७०) बालादे वहु: मनोरथदे बा: गारबदे बा: राज १ सा: सागर सा: भैरू सा: मणकचंद
(७१) वहु केसरदे बा: होली बा: गरादे १ सा: मोवाल सा: ढोला सा: डगर
(७२) पुजीजी प्रतिस्टा उपरी वैग पधारजो ईहना संघना उतकंठा घणी छै ऐकवार तुमार चरण
(७३) देष समसत संघ संतोष पाम: नहीतर भहोउपाध्यनु आदेस देजो जीण सासणनी सो–
(७४) भा होई तीम करजो घण स्य लीषीअ पुजीजी ईहनी परचीता तुमन छे ते प्रीछजो
(७५) संवतु १६६७ मीती कार्तीसुदी २ सुभदीने सोमवारे सुभं भवतु: ली: सीकहसा सुत.

[उपरना लखाणनुं हालनी भाषामां शुद्ध संस्कारी रूपांतर]

(१) स्वस्ति श्रीचिन्तामणिपार्श्वजिनं प्रणम्य श्री देवपाटण महानगरे शुभस्थाने, पूज्य आराध्य महात्मा,
(२) उत्तम चारित्र पात्रशिरोमणि, कुमतान्धकार नभोमणि, कलिकाल गौतमावतार, सरस्वतीकंठाभरण,
(३) चउदविद्यानिधान, एक विध असंयमना टाळणहार, द्विविध धर्मप्ररूपक, त्रण तत्त्वना जाण, चार कषायना–
(४) जीपक, पंचमहाव्रतना पाळणहार, छकायना पिता, सात भयना टाळणहार, आठ मदस्थानकना जीपक,
(५) नववाड विशुद्ध ब्रह्मचर्यना पाळणहार, दशविध श्रमणधर्म प्रतिपालक, अग्यार अंग बार उपांगना जाण,
(६) तेर काठियाना जीपक, चऊद भेद जीवना प्ररूपक, पंदर परमाधार्मिकना भेदना जांण, सोलकला–

(७) संपूर्ण चन्द्रवदन, सतरभेद संयमना प्रतिपालक अढार सहस्र शीलांगरथना—
(८) धारक, ओगणीस ज्ञाताधर्म (कथा) ना प्ररूपक, वीस असमाधि स्थानक रहित, एकवीस सबल—
(९) [दोष] निवारक, बावीस परीषहना जीपक, त्रेवीस सूयगडांगना अध्ययनना जाण, चोवी—
(१०) स तीर्थंकरनी आज्ञाना प्रतिपालक, पंचवीस भावनाना भावुक, छव्वीस—
(११) दशाकल्प—व्यवहार [अध्ययन] ना जाण, सत्तावीस साधुगुणना उपदेशक, अठावीस आचा—
(१२) रप्रकल्पना जाण, ओगणत्रीस पापसूत्रप्रसंगना टाळणहार, त्रीस मोहनीयस्थानक—
(१३) ना वीपक, एकत्रीस सिद्धगुणना जाण, बत्रीस योगसंग्रहना प्रतिपालक, ते—
(१४) त्रीस गुरुनी आशातनाना वारणहार, चउत्रीस अतिशयना जाण, पांत्रीस श्रीवीत—
(१५) रागवाणीना गुणना कथक, छत्रीस छत्रीसी सूरिगुणे विराजमान, वादीमद—
(१६) गजेन्द्र, वादीगोधुमघरट्ट, मुदितवादीमरट्ट, सरस्वती लब्ध प्रसाद, दलि—
(१७) त अनेक दुरवादी वाद, समुद्रनी परे गंभीर, मेरु पर्वतनी परे धीर, प्राप्तसं—
(१८) सार समुद्रतीर, मायामही विदारणसीर श्रीजिनशासन सहकारकीर,
(१९) कर्मशत्रुविदारणवीर, वाणी मीठी अमृतक्षीर, धर्मकरतां न करे धीर, नि—
(२०) र्मल चित्त जिम गंगानीर, उज्ज्वल यश सागर हंढीर, भंजन भवभीर, सौभा—
(२१) ग्य गुणे अभिनवगुरुहीर, जेणे प्रतिबोध्यो अकबर शाह वडवीर, दि—
(२२) नकरनी परे अधिक प्रताप तेज, सुविहित जनथी धरे हेज, वड वैरागी, अति—
(२३) सौभागी, कर्णनी परे त्यागी, मुक्तिना रागी, श्रीबादशाह प्रबोधक, अबोधजी—
(२४) व प्रतिबोधक, कलिकाल गौतमावतार, तपागच्छ श्रृंगारहार, तपतेज दिवा—
(२५) कर, गच्छाधिपति, गच्छाधिराज, सर्वोपमायोग्य, भट्टारक पुरंदर (पांच श्री)
(२६) [१६ श्री] विजयसेनसूरि सूरीश्वर स—
(२७) परिवार चरणकमलान् श्री आगराकोटना सदा आदेशकारी, चरणसेवक, दासानु—
(२८) दास, पायरजसमान, सदा सेवक, सा. विमलदास, सा. वदीदास, सा. लालचंद दुगड,
(२९ थी ४२ मी लाईन सुधीमां आगराना आगेवान श्रावकोनां नामो मात्र आपेलां छे.)
४३)—समस्त संघनी द्वादशवंदना अवधारशो. अहिंया श्रीपूज्यजीना प्रसादे कुशल—क्षेम छे. पूज्यजीना
४४) कुशल—क्षेमना सदा समाचार कहवा, जेथी सेवकोने परमसंतोष उपजे. अपरं अहिंया श्री—
४५) पजुसण पर्व निराबाधपणे थया छे. अमारी दिन १२ पजुसणनी,—विशेष सावदेश, पूर्वदेश,
४६) तथा दिल्लीमंडल, मेवातमंडल, रणथंभोर गढदेश, श्रीजाए घणा देशे अमारी वरती छे, ते संतोष मानजो.
४७) श्रीसत्तरभेदी पूजा १५, श्रीजहांगीर बादशाह तखत बेठां पछी आ अपूर्व करणी थई छे.
४८) भगवन्तजीना प्रसादे श्रीतपागच्छनी उन्नति विशेष थई छे. श्रीपातशाहजीए फरमान २ करी दी—
४९) धा, ते श्रीपजुसण आव्ये श्रीजीना रामदासजी आगळ थई गुदरण (?) हुकम दीधो. ढंढेरो देवायो.
५०) पारीउरवारसारे (?) दिन १२ अमारी वरतावी. जे वेळा श्रीजीए हुकम दीधो ते वेळा दरीखानो
५१) भराणो हतो. श्रीजी झरोके बेठा हता. राजा रामदासजी आगळ हता. तेमनी पाछळ फरमान लई

५० विवेक हर्ष,



आ. सु. प्रेस.

श्रीमद् विजयधर्मसूरिने आगराना संघ तरफथी आवेलुं सांवत्सरिक पत्र.

(५२) तेनी पाछळ पं. उदयहर्ष हता. पछी अमारी बाबत विनंती कीधी. श्रीबादशाहजीए हुकम दीधो

(५३) तत्काल, ते वेळाए जेवो दरीखानो भराणो हतो, ते समयनो [चितार] आ लेखमां सर्व लख्यो छे.

(५४) उस्ताद सालीवहण बादशाही चित्रकार छे. तेणे ते समय जोयो छे एवो ज आ चि–

(५५) त्रमां भाव राख्यो छे. ते लेख जोई जाणशो. उस्ताद सालीवहणे वंदना विनवी छे. जाणशो.

(५६) अहिंया पजुसणमां श्रीसत्तरभेदी पूजा १५, मात्र दिवस ६१, तप मासक्षमण, दोढ मासक्षमण,

(५७) पाक्षिक क्षमण, तथा अठाई, तथा द्वादशम, दशम, अठम बीजांए तप घणां थयां छे.

(५८) सांवत्सरिक पौषध ९०१, साधर्मिकवात्सल्य सा. बंदीदासनुं, चौमासी, पखी, अष्टमी सुदी साह–

(५९) मीवच्छल थाले छे, पूज्यजीना प्रसादथी. अने अहिंया श्रीजिनप्रासाद नवो सा. चंदुए कराव्यो छे.

(६०) प्रतिमा पण महासुंदर थई छे. घणीने पण प्रतिष्ठानो घणो हर्ष छे. श्रीपूज्यजी आव्याथी तथा

(६१) श्रीआचार्यजी पधारतां जिनशासननो घणो उत्साह थशे. सारा संघना मनोरथ पहोंचशे.

(६२) पूज्यजी ! कृपाकरीने पधारजो. महोपाध्याय श्रीसोमविजय पण नजीक छे. पूज्यजी ! [विनंती] जल्दीथी लखी छे.

(६३) विचारीने मन्न जणाय तेम लखशो. जेम पूज्यजी लखशे तेम प्रमाण थशे. लेख–प्रसाद जल्दी मोकलावशो.

(६४) इब्राहीमाबादमां पं. श्रीमहानंद ठाणा ३ छे. दिल्लीमां ऋ. जेठा ठाणा २ छे. पारीनां (?) गणी श्रीरतनहर्ष ठाणा २. पहेलुं चौ—

(६५) मासुं पेरोजाबाद गणी श्रीमानंद रह्या हता. बीजा मतना आचार्य रह्या माटे. हमणा ते खाली

(६६) पड्युं. हवे चोमासा बाबत पेरोजाबादनी चिंता करशो. पहेलां केटलाए सातप (?) रहेता हता. ते सर्व मडराखी (?)

(६७) हवे मीपु (?) क्षेत्र खाली न रहे तेम करशो. श्राविकाओए वंदना विनवी छे, जे जाणशो. सही जाणशो

(६८ थी ७२ मी लाईन सुधीमां श्राविकाओनां नामो छे.)

(७३) पूज्यजी ! प्रतिष्ठा उपर जल्दी पधारशो. अहिंना संघनी उत्कंठा घणी छे. एकवार तमारां चरण

(७४) जोई समस्त संघ संतोष पामशे. नहीं तर महोपाध्यायने आदेश आपशो. जिनशासननी शो—

(७५) भा थाय तेम करशो. घणुं शुं लखीए. पूज्यजी ! अहिंनी पण चिंता तमने ज छे. ते जाणशो.

(७६) संवत् १६६७ मिती कार्तिक सुदी २ शुभ दिने सोमवारे. शुभं भवतुः श्रीः सीकहसा सुत ।।

महावीर तीर्थंकरनी जन्मभूमि.

(ब्राह्मणकुण्ड, क्षत्रियकुण्ड अने वैशाली; ए त्रणे एक ज शहरना विभागो छे)

[जैन समाजनी मान्यता प्रमाणे भगवान महावीरनी जन्मभूमि जे क्षत्रियकुण्ड के कुण्डग्राम नामे प्रसिद्ध छे ते एक मोटुं शहर होई स्वतंत्र राजधानी हती अने तेना अधिपति सिद्धार्थ ते एक मोटा राजा हता. अने ए स्थळ हालमां गया जिलामां लछवाड नामे जे एक नानुं सरखुं गाम छे त्यां आवेलुं हतुं. परंतु पश्चिमना शोधक विद्वानोना मते महावीरनी जन्मभूमी तरीके ओळखातुं कुण्डग्राम ते वैशालीनामे लिच्छविओनी राजधानी पासे आवेलुं एक साधारण परुं हतुं अने सिद्धार्थ ते त्यांना एक ठाकोर हता. प्रो. जेकोबीए जैन सूत्रोपरनी प्रस्तावना (प्रथम भाग, जुओ जै. सा. सं. अंक २, पृष्ठ ७०) मां ए बाबत केटलीक चर्चा करी छे; अने डॉ. होर्नले पण पोताना जैनधर्म विषेना विचारोमां (जुओ, आ ज अंकना पृ. १९४ उपर) ए बाबतनुं सूचन कर्युं छे. घणा जिज्ञासुओ आ विचार जाणी विचारमां पडे छे अने शा आधारे आ विद्वानो वैशालीने महावीरनुं जन्मस्थान माने छे ते जाणवा उत्सुक रहे छे. तेथी आ नीचे डॉ. होर्नलनी लखेली आ संबंधी एक नोट आपवामां आवे छे जेथी ए बाबतनो घणोक खुलासो जिज्ञासुओने मळी आवशे. ए नोट, उक्त विद्वाने पोताना ' उवासगदसाओ ' ना इंग्रेजी भाषांतरना पृष्ठ ३ उपर आवेला ' वाणियगाम ' शब्द उपर लखेली छे. ए वाणिय गामनो उल्लेख कल्पसूत्रमां पण आवे छे. जैन विद्वानोए आ नोटनुं मनन करी आ संबंधमां विशेष ऊहापोह करवानी आवश्यकता छे. संपादक]

वा णि य गा म (सं. वाणिज्यग्राम) ए वैशाली नामना सुप्रसिद्ध शहरनुं बीजुं नाम छे, जे लिच्छविओनी राजधानी मनाय छे. जूओ कनिंगहामकृत हिन्दुस्थानन्नी प्राचीन भुगोळ, पृ० ४४३. कल्पसूत्र १२२ मां तेने एक जुदा शहर तरीके, पण साथे वैशाली जोडे निकट संबंध धरावतुं, लख्युं छे. खरी वात तो ए छे के जे नगरीने आपणे वैशालीना नामे ओळखीए छीए ते बहु ज विस्तार वाळी नगरी हती (हुएन्त्सांगना वखतमां ते १२ माईल जेटली विस्तृत हती, जूओ कनिंगहामनो आर्किओलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग १, पृ. ५६) अने तेनी सीमामां वैशाली के जेने हालमां बेसार कहेवामां आवे छे, ते सिवाय बीजा पण केटलांक स्थळोनो समावेश थतो हतो. ए स्थळोमां एक वाणियगाम अने बीजुं कुंडगाम के कुण्डपुर मुख्य हतां. ए स्थळोनां अवशेष रूपे हजी पण बाणिया अने बसुकुण्ड नामे गामडाओ अस्तित्व धरावे छे. (जुओ, आर्किओलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट भाग १ मांनी २१ मी प्लेट, तथा भाग १६ मांनी बीजी प्लेट) आथी ए संयुक्त शहरने एना गमे ते प्रधान अंशभूत स्थळना अभिधानथी उल्लेखी शकाय ए स्पष्ट छे. वाणियगाम साथे लगाडेला नयर ए विशेषणथी ते मोटुं शहर होय एम जणाय छे; कारण के, चम्पा जे घणुं ज मोटुं शहर होवानुं प्रसिद्ध छे ते पण ' नयरी ' ना विशेषणथी उल्लिखित छे. (जूओ, रोखिलनुं बुद्ध चरित्र पृ. १३६) कुण्डगाम नाम पण वैशालीनुं ज हतुं अने तेथी वैशाली ए ज महावीरनी जन्मभूमि हती. आ ज [illegible] वीरने वैशालीय पण कहेवामां आवे छे. (जुओ, आचारांग सूत्रना भाषांतरनी जेकोबीनी प्रस्तावना, पृ. [illegible] अने वेबरनी Indian Studies पु. १६, पृ. २[illegible] बुद्ध चरित्रना पृ. ६२ मां आपेली एक बौद्ध आख्यायिकामां वैशालीना त्रण भाग हता एम जणावेलुं छे, अने ते कदाचित् वैशाली खास, कुण्डपुर अने वाणियगाम ज हशे के जेणे अनुक्रमे समग्र शहरना आग्नेय, ऐशान्य अने पाश्चिमात्य भागो व्याप्त करेला हता.

ईशान कोनमां कुण्डपुरथी आगळ कोल्लाग नामनुं (जुओ सूत्र ७) सन्निवेश अथवा परुं आवेलुं हतुं जेमां ' नातृ ' अथवा ' नाय ' जातना क्षत्रियो वसता हो

...म लागे छे, के जे ज्ञातमां महावीर जन्म्या हता. सूत्र ...१ मां ते परानो नायकुलना नामे उल्लेख थएलो छे. ... कोल्लाग सन्निवेश साथे संबंध धरावतुं, पण तेनी ...ं, दूइपलास नामे एक चैत्य हतुं (जुओ सूत्र १). ...रण चैत्यनी माफक तेमां एक मन्दिर अने तेनी आसपास उद्यान हतुं; आ कारणथी विपाकसूत्र (१; २) मां तेने 'दूइपलास उज्जाण' तरीके लखेलुं छे; अने ते ...कुलनुं ज हतुं ए तेना 'नायसण्डवणे उज्जाणे' ...गर 'नायसण्डे उज्जाणे' इत्यादि (कल्पसूत्र ११५ अने आचारांगसूत्र २; १५ सु. २२ मांना) वर्णन उपरथी सिद्ध थाय छे.

आ उपरथी, जे ठेकाणे कुण्डपुरने नयर तरीके उल्ले... ...लुं छे ते जैन कथन पण सत्य समजी शकाय छे. कार... ...के कुण्डपुर ए ज वैशाली एम आपणे मानवुं जोईए. ...पसूत्र १०० मां कुण्डपुर साथे 'नयरं—सब्भितर ...ह्रियं' एवुं विशेषण लगाडेलुं छे अने ते वैशालीनुं ज ... छे एम स्पष्ट जणाय छे. जे सूत्रनां आधारे (जुओ ... २.४, २२) कुण्डपुर के कुण्डगामने सन्निवेश ...नवामां आवे छे (जेकोबीनी आचारांगनी प्रस्तावना ... १० जणाव्या प्रमाणे) ते बराबर नथी का... ...के ए ठेकाणे वपराएला 'उत्तर-खत्तिय कुण्डपुर ...स' अथवा 'दाहिण-माहणकुण्डपुर-सन्निवेस' ...ुण्डपुरनो उत्तरनो क्षत्रियोनो भाग' एम ...ा नथी परंतु 'कुण्डपुरनुं उत्तर बाजुनुं क्षत्रियकुलनुं ...' जेमां (नायकुलना) क्षत्रियो वसता हता एवुं ...रनुं उत्तर बाजुनुं परुं' एम अर्थ थाय छे. आथी तेनो, ते ...ना दक्षिणना पराथी, के ज्यां आगळ ब्राह्मणो रहेता हता, भेद बताव्यो छे. आ अर्थने कल्पसूत्र २२ मां वपराएला 'खत्तियकुण्डगामे नयरे' अने 'माहणकुण्डगामे नयरे' ... विशेषणोथी प्रकट पुष्टि मळे छे. आ बधी बाबतोना ...चार उपरथी जणाय छे के महावीरना पिता सिद्धार्थ ए ...डगाम के वैशाली नगरना कोल्लाग नामे परामां वसता नाय ...तिना क्षत्रियोना मुख्य सरदार हता. जो के आपणे अ-पेक्षा राखीए ते प्रमाणे जैनोना धर्मग्रंथोमां तेनुं वधारे पडतुं वर्णन करेलुं छे, तो पण सिद्धार्थने 'कुण्डपुर के कुण्डगामना राजा' तरीके सर्वत्र वर्णवेलो नथी. बल्के एथी उलटुं सामान्य रीते तेने एक साधारण क्षत्रिय (सिद्धत्थे खत्तिये) रूपे ज वर्णव्यो छे. जे एक बे ठेकाणे तेने राजा (सिद्धत्थे राया) तरीके लख्यो छे, ते कथनने अपवादरूप ज मानवुं जोईए. अगर कोल्लागना क्षत्रियोना अधिपति तरीके ए विशेषण पण संगत होई शके तेम छे. आ उपरथी स्पष्ट थाय छे, के महावीरनी जन्मभूमि ए कोल्लाग ज हती अने ते ज कारणथी तेओ ज्यारे संसारत्यागी थया त्यारे, स्वाभाविक रीते ज पोतानी जन्मभूमि पासे आवेला दूइपलास नामना पोताना ज कुलना चैत्यमां प्रथम जईने रह्या. (जुओ कल्प. ११५–११६) महावीरना माता–पिता अने तेमनी साथे तेमनी ज्ञातिना बीजा पण बधा नायवंशी क्षत्रियो पार्श्वनाथना सिद्धान्तो अने आदेशोने अनुसरता हता (जुओ आचारां. २, १५–१६) अने तेथी ज्यारे पार्श्वनाथनुं पोताना शिष्यो साथे कुण्डपुरमां अमुक वखते आगमन थतुं ते वखते तेमनी सगवड माटे तेमणे एक चेइयनी स्थापना करी होय ए बहुं संभवित छे. महावीर दीक्षा लईने प्रथम पार्श्वना संप्रदायमां जोडाया होवा जोईए, के ज्यां तेओ थोडा ज समयमां मुख्य अधिष्ठाता थई तेना तेओ सुधारक बन्या हता. अहिं वधारामां एटलुं ए पण कही शकाय के, सूत्र ७७ अने ७८ मां वाणियगामने आपेला 'उच्चनीचमज्झिमकुलाइं–' ऊंच, नीच अने मध्यम वर्गवाळुं' ए विशेषण साथे दुल्व (रोखिलनुं बुद्ध चरित्र, पृ. ६२) मां आपेलुं नीचेनुं वर्णन मळतुं आवे छे; जेम के "वैशालीमां त्रण विभागो हता. जेमां पहेला विभागमां सुवर्ण कळसवाळा ७००० घरो हतां, वचला विभागमां रजतकळसवाळां १४००० घरो हतां अने छेल्ला विभागमां ताम्रकळसवाळा २१००० घरो हतां. ए विभागोमां अनुक्रमे ऊंच, मध्यम अने नीच वर्गना लोको वसता हता."

—:o:—

